महावीर : मेरी दृष्टि में

भगवान् श्री रजनीश

सम्पादन :
डॉ० दयानन्द भार्गव
स्वामी योग चिन्मय

जीवन जागृति आन्दोलन प्रकाशन, बम्बई

प्रकाशक :

साधु ईश्वर समर्पण

मंत्री, जीवन जागृति केन्द्र

३१; इजरायल मोहल्ला, भगवान् भुवन, पहला माला

मस्जिद बन्दर रोड

बम्बई-४००-००९.

प्रथम संस्करण : अगस्त, १९१७

मुद्रक :

उषा प्रिंटिंग वर्क्स

उस्मानपुरा, वाराणसी।

सम्पादकीय

(प्रथम संस्करण)

प्रस्तुत प्रवचनमाला की आयोजना के मूल प्रेरणा-स्रोत श्री सुन्दरलाल जैन, प्रोप्राइटर मैसर्स मोतीलाल बनारसीदास हैं। वे धर्म में बहुत रुचि रखते हैं। सत्य की खोज की लगन उनमें बहुत पुरानी है। महावीर और उनके सन्देश को जानने की उनमें उत्कट जिज्ञासा रही है। संसार के सम्मुख महावीर के सन्देश को प्रस्तुत करने का उनका आन्तरिक सङ्कल्प रहा है। इस आशय से उन्होंने अनेक प्रयत्न किये किन्तु सफलता न मिली। किन्तु उनका सङ्कल्प सत्य था क्योंकि वह अन्ततः फलवान् बना। **महावीर का मार्ग, जिसे काल ने धूमिल कर दिया था पुनः आलोकित हुआ रजनीश की उस रश्मि से** जो इस ग्रन्थ के रूप में प्रकाशित हो रही है।

सितम्बर का मास था। श्री सुन्दरलाल जी का आग्रह स्वीकार करके भगवान् श्री रजनीश श्रीनगर में डल झील के किनारे चश्मे-शाही पर उपस्थित थे। गिने चुने लोग उनके श्रोता थे। महावीर पर प्रवचन होते थे और प्रश्नोत्तर चलते थे। वही यहाँ प्रस्तुत है। जो भगवान् श्री के सम्पर्क में आये हैं उन्हें ज्ञात है कि उनके **अस्तित्व में ही एक सुगन्ध है**। उनका जीवन सहजता की मूर्ति है, **उनके विचार निर्विचारता में ले जाने का द्वार है। उनकी वाणी निरन्तर उस ओर इङ्गित करती है जो वाणी से परे है।** उनका स्पर्श मानों अपना ही स्पर्श है।

भगवान् श्री की दृष्टि में महावीर को जानने का एक ही उपाय है—सीधा और सरल, जिसमें न शास्त्र की जरूरत है, न सिद्धान्त की, न गुरु की। इसमें न कोई साथी है, न कोई संगी है। अकेले की उड़ान है अकेले की तरफ, बीच में कोई भी नहीं। जरा भी बीच में ले लेते हैं किसी को तो भटकन शुरू हो जाती है।

यह प्रेम का मार्ग है। प्रेम में कोई शर्त नहीं होती, कोई पूर्वाग्रह नहीं होता, अतः हम प्रेम के मार्ग से महावीर को जान सकते हैं। जानना मुश्किल नहीं है क्योंकि **उनके अनुभव की सूक्ष्म तरंगें, सूक्ष्म आकाश में, अस्तित्व की गहराइयों पर आज भी सुरक्षित हैं** और अगर हम प्रेम भरे चित्त से महावीर

का पूर्ण ध्यान लेकर इन गहराइयों पर उतरें तो हमारे लिए वे द्वार खुल जाते हैं जहां वे सूक्ष्म तरंगे हमें उपलब्ध हो जाएं। उधर अशरीरी आत्माएं भी प्रेम-वश, करुणावश हमारी आत्मा से सम्बन्ध जोड़ने को आतुर हैं, उत्सुक हैं। मन्दिरों में महापुरुषों की जो अचेत प्रतिमाएं प्रतिष्ठित हैं, वे भी उनकी अशरीरी आत्माओं से हमारा संपर्क कराने के ही साधन हैं।

भगवान् श्री व्यक्ति को किसी से नहीं बांधना चाहते। जीवन में जो मूल्यवान् है वह स्वयं उपलब्ध करना होता है, यही उसकी मूल्यवत्ता है यदि वह दूसरे से प्राप्त किया जा सके तो वह मूल्यवान् नहीं रह जायेगा। सत्य स्वयं में निहित है जिसे उघाड़ना है; वह न किसी से लिया जा सकता है, न किसी को दिया जा सकता है। जो सत्य पाने की आशा में किसी के आश्रित हो गये हैं, उनकी मुक्ति कैसे सम्भव है?

यह कृति न तो इतिहास ग्रन्थ है न शोध ग्रन्थ। इतिहास अतीत की घटनाओं का संकलन है, शोध दिये गये तथ्यों का विश्लेषण है। इसमें ये दोनों नहीं हैं। इस ग्रंथ में भगवान् श्री जी ने योग के बल पर अतीत की कुछ घटनाओं से अपना तादात्म्य स्थापित करके उन घटनाओं के तथ्यों में निहित कुछ ऐसे सत्यों का उद्घाटन किया है जो त्रैकालिक हैं। वे अतीत की मृत घटनाओं के सम्बन्ध में उत्सुक नहीं हैं; उनकी उत्सुकता उन घटनाओं में छिपे उन रहस्यों का उद्घाटन करने में है जिन रहस्यों के कारण वे घटनाएं मानवमात्र के लिए मूल्यवान् हैं। महावीर के जीवन से सम्बद्ध ऐसी अनेक घटनाओं का रहस्य इस ग्रंथ में प्रथम बार उद्घाटित हुआ है जिनके कारण उन घटनाओं को नया अर्थ प्राप्त हो गया है। इन रहस्यों के बिना वे घटनाएं आज के युग में अविश्वसनीय मिथ मात्र बन कर रह गई थीं। भगवान् श्री की व्याख्या से महावीर के जीवन की वे घटनाएं मानों हमारे अपने ही जीवन की सम्भावित घटनाएं बन गई हैं।

इस ग्रंथ की अर्थवत्ता न तो इसमें है कि हम जो भगवान् श्री ने कहा है उस पर विश्वास कर लें और न तर्क-वितर्क द्वारा इस ग्रंथ का खण्डन करने से ही किसी का कोई प्रयोजन सिद्ध होगा। यह ग्रंथ शास्त्र नहीं है। इस पर एकेडेमिक चर्चा नितान्त व्यर्थ है। इस ग्रंथ का एक मात्र प्रयोजन यह है कि पाठक स्वयं साधना में उतर जायें।

भगवान् श्री के दृष्टिकोण में तीन बातें महत्वपूर्ण हैं। प्रथम तो उनका दृष्टिकोण नैतिक नहीं, अतिनैतिक है। यह दृष्टि मूलतः जैन शास्त्रों की दृष्टि है।

उनमें पाप और पुण्य दोनों को लोहे और सोने की शृंखला माना गया है। दूसरे भगवान् श्री ने दर्शन को ही महत्त्वपूर्ण माना है; चरित्र को दर्शन का सहज प्रतिफल माना है। यह दृष्टि भी जैन शास्त्रों की मूल दृष्टि है। जैन शास्त्रों में सम्यक् दृष्टि के अभाव में अच्छे से अच्छे कर्म को भी निरर्थक माना गया है। सम्यक् दृष्टि के बिना, आचरण ऊपर से ओढ़ा जा सकता है किन्तु वह पाखंड है। वास्तविक आचरण सम्यक् दर्शन में स्वतः प्रस्फुटित होता है। वस्तुतः सम्यक्-दृष्टि जो करती है वही सम्यक् चारित्र है; यह कहना सत्य नहीं होगा कि सम्यक्-दृष्टि सम्यक् चारित्र का पालन करती है। सूर्य पूर्व में उदित नहीं होता बल्कि जिधर सूर्य उदित होता है उस दिशा को हम पूर्व दिशा कहते हैं। भगवान् श्री के इन प्रवचनों की तीसरी महत्त्वपूर्ण विशेषता यह है कि महावीर के जीवन के सम्बन्ध में जो साम्प्रदायिक मतभेद थे उनका इसमें निराकरण हो गया है। जिन्होंने तथ्य को देखा, उन्होंने यह पाया कि महावीर विवाहित और पुत्रीवान् हैं। किन्तु जिनकी दृष्टि सत्य पर गई, उन्होंने पाया कि वे अविवाहित हैं। विवाह उनका हुआ, यह एक घटना है; किन्तु साक्षिभाव के कारण वे विवाह करते हुए भी अविवाहित रहे, यह एक दार्शनिक सत्य है।

भगवान् श्री ने तर्कसंगत होने का आग्रह नहीं किया है। तर्क विरोध को स्वीकार नहीं करता, किन्तु जीवन विरोधी तत्त्वों से बना है—इसलिए जीवन तर्क की पकड़ से चूक जाता है। अतः जीवन का सत्य तर्क में नहीं, तर्क से परे है। भगवान् श्री की यह दृष्टि भी जैन शास्त्रों से मेल खाती है जिनका कहना है कि सत्य वहाँ है जहाँ से शब्द लौट आते हैं, जहाँ तर्क नहीं जा सकता और न जहाँ बुद्धि की पहुँच है—सव्वे सरा नियट्टंति, तक्का जत्थ न विज्जति। मति तत्थ न गाहिता (आचाराङ्ग)।

भगवान् श्री की दृष्टि में महावीर न परिग्रही हैं, न पलायनवादी हैं उन्होंने घर छोड़ा, जो घर नहीं था। एक सपना था, जो टूट गया। भोग और त्याग दोनों सपने हैं जो द्रष्टा हो जाने पर विदा हो जाते हैं। महावीर जब द्रष्टा हुए तब न भोग रहा, न त्याग रहा। राग-विराग, सुख-दुःख न रहे वह निर्द्वन्द्व हो गए। लेकिन अनुयायियों ने सोचा कि वह महात्यागी थे क्योंकि उन्होंने जीवन के सारी त्यागे, घर त्यागा, सम्पत्ति त्यागी। मगर सही अर्थों में उन्होंने कुछ भोगा ही नहीं। सिर्फ भोगी ही त्याग कर सकता है। भोग और त्याग, राग और विराग एक ही तराजू से उतर गए, वीतराग हो गए। फिर उनके तौल का सवाल ही नहीं उठता।

महावीर, निश्चित ही नग्न रहे, इसमें कोई विकल्प नहीं है। उनकी काया को देखकर लगता है कि ऐसी सुन्दर काया वाला कोई व्यक्ति नहीं हुआ। ऐसी सुन्दर काया न बुद्ध के पास थी, न जीसस के पास थी और लगता है कि इतना सुन्दर होने की वजह से वे नग्न खड़े हो सके। असल में नग्नता को छिपाना कुरूपता को छिपाना है। हम सिर्फ उन्हीं अङ्गों को छिपाते हैं जो कुरूप हैं। महावीर इतने सुन्दर थे कि छिपाने को कुछ भी नहीं था।

उनकी नग्नता उनके ज्ञान का अंग थी, उनके चरित्र का अंग नहीं थी। अगर किसी व्यक्ति को विस्तीर्ण ब्रम्हाण्ड से, मूक जगत् से सम्बन्धित होना है तो वस्त्र एक बाधा है। जितने ज्यादा वस्त्र पैदा होते जा रहे हैं, उतनी ज्यादा बाधाएँ बढ़ती जा रही हैं। नवीनतम वस्त्र चारों तरफ के वातावरण से शरीर को तोड़ देते हैं। जिस व्यक्ति को ब्रम्हाण्ड से संयुक्त होना है, जड़ के साथ भी तादात्म्य स्थापित करना है, पशु जगत् को भी सन्देश पहुँचाना है, उसके लिए किसी तरह के वस्त्र बाधा बन जाएंगे।

साधारणतः यह धारणा है कि अणुव्रत से महाव्रत फलित होता है। मगर गहराइयों पर उतरने से लगता है कि महाव्रत हमारे भीतरी विस्फोट का परिणाम है। जब चेतना पूरी की पूरी विस्फोट होती है, तब महाव्रत उपलब्ध होता है। वह अणुव्रतों से नहीं निकलता। साधारणतः कायक्लेश सम्बन्धी धारणाएँ भी भ्रामक हैं। शरीर को सताना ही कायक्लेश तप माना जाता है। बिना नहाए-धोए, बिना खाए-पिए शरीर की दुश्मनी में तप माना जाता है। यही मोक्ष का उपाय समझा जाता है। एक आदमी सुबह घंटे भर व्यायाम करता है, पसीना बहाता है, अपने स्वास्थ्य के लिए। वह भी कायक्लेश कर रहा है लेकिन शरीर के हित में, शरीर के विरोध में नहीं। महावीर की सुन्दर काया को देखकर लगता है कि उन्होंने शरीर के हित में ही कायक्लेश किया। शरीर को संवारने में, शरीर के हित के लिए जो हम क्लेश उठाते हैं, सही अर्थों में वही कायक्लेश है।

इसी प्रसंग में 'उपवास' का अर्थ भी देखें। उपवास का अर्थ है आत्मा के निकट होना, अर्थात् व्यक्ति आत्मा में इतना लीन हो गया है कि शरीर का पता नहीं चलता। लेकिन सामान्यतः इसे 'अनशन' का पर्याय समझ लिया गया है। इस भ्रान्त धारणाओं के कारण कायक्लेश और उपवास के सही अर्थों को नहीं समझा जा सका। उपवास अनशन से बिल्कुल उलटा है। उपवास का मतलब है कि चेतना एकदम भीतर आत्मा के निकट चली जाए कि उसको बाहर

का ख्याल ही न रहे। अनशन में, उपवास के बिल्कुल विपरीत, आदमी चौबीस घंटे शरीर के पास रहता है जितना कि खाने वाला भी नहीं रहता। उसके मन में दिन भर खाना चलता रहता है। उपवास और अनशन बिल्कुल विरोधी प्रक्रियायें हैं।

आत्मदर्शन की प्रक्रिया में ध्यान का गहरा स्थान है। वह आत्मानुभूति का एकमात्र उपाय है। ध्यान के दो चरण हैं: प्रतिक्रमण और सामायिक। प्रतिक्रमण का अर्थ है कि जहाँ-जहाँ चेतना गई, वहाँ-वहाँ से उसे वापिस पुकार लेना; मित्र के पास से, शत्रु के पास से, पत्नी के पास से, बेटे के पास से, मकान से, धन से, सब ओर से उसे वापिस बुला लेना। सामायिक का अर्थ है समय में यानी आत्मा में होना। प्रतिक्रमण प्रक्रिया है चेतना को भीतर लौटाने की। सामायिक प्रक्रिया है बाहर से लौटी हुई चेतना को आत्मा में बैठाने की। प्रतिक्रमण और सामायिक मार्ग हैं, दर्शन उपलब्धि है। सामायिक में स्थिर हो जाना आत्मा में प्रवेश करना है।

मोक्ष यात्रा का अन्त है। प्रत्येक मृत्यु में स्थूल देह मरती है, भीतर का सूक्ष्म शरीर नहीं मरता। सूक्ष्म शरीर एक जोड़ है जो आत्मा और शरीर को पृथक् नहीं दिखने देता। लेकिन जब व्यक्ति न कर्ता रहा है, न भोक्ता रहा है, न प्रतिक्रिया करता है, केवल साक्षी रह जाता है तब सूक्ष्म शरीर पिघलने लगता है, बिखरने लगता है। फिर आत्मा और शरीर पृथक् दिखते हैं और व्यक्ति समझ लेता है कि यह आखिरी यात्रा है।

मगर मोक्ष के द्वार से भी वह करुणावश लौट सकता है सत्य की अभिव्यक्ति के लिए। महावीर उन व्यक्तियों में हैं जो मोक्ष के द्वार से लौट आए हैं। उनकी बारह वर्ष की जो साधना है वह सत्य की उपलब्धि के लिए नहीं क्योंकि उपलब्धि तो उन्हें पिछले जन्म में ही हो गई है। साधना इसलिए है कि वह जीवन के सब तलों तक, सब रूपों तक, पत्थर से लेकर देवता तक, सत्य को अभिव्यक्त कर सकें। उनकी यह सतत चेष्टा रही है भूत, जड़, मूक जगत् में अनुभूति तरंगें पहुँचाने की। और इस चेष्टा में इतना गहरा तादात्म्य हो गया है मूक, जड़ जगत् से कि कान में कीलें भी ठुकें तो पता न चले क्योंकि वह चट्टान हो गए हैं। महीनों बीत जाएँ, भोजन की चिन्ता नहीं क्योंकि तादात्म्य हो जाने पर मूक जगत् से उन्हें सूक्ष्म भोजन भी मिल सकता है। महावीर के सम्बन्ध में यह धारणा भगवान् श्री की बिल्कुल अपनी मौलिक है।

महावीर की यह देन बिल्कुल अनोखी है। इस ओर न जीसस ने, न बुद्ध ने, न जरथुस्त्र ने, न मुहम्मद ने, न किसी दूसरे महामानव ने कोई मार्ग बताया है। अनुभूति की पूर्णता को कोई व्यक्ति प्राप्त हुए हैं मगर अभिव्यक्ति की पूर्णता महावीर को ही उपलब्ध हुई है।

महावीर की शाखा सूख गई है। शाखा सूख जाती है तो भी वृक्ष खड़ा रहता है। वह फिर से फूट सकता है, यदि महावीर को ठीक से समझा जा सके। फिर नये अंकुर आ सकते हैं इसमें और नये अंकुर आने चाहिए। भगवान् श्री का यह ग्रन्थ इस दिशा में ही एक चरण है।

—दयानन्द भार्गव

रामजस कालेज, दिल्ली।
२२-७-१९१७

अन्तर्वस्तु अनुक्रम

१

प्रवचन

मैं महावीर का, अनुयायी नहीं हूं, प्रेमी हूं, वैसे ही जैसे क्राइस्ट का, कृष्ण का, बुद्ध का, लाओत्से का ; और मेरी दृष्टि में अनुयायी कभी भी नहीं समझ पाता।

और दुनिया में दो ही तरह के लोग हैं। साधारणतया या तो कोई अनुयायी होता है या कोई विरोध में होता है। न अनुयायी समझ पाता है न विरोधी समझ पाता है।

एक और रास्ता भी है 'प्रेम'; जिसके अतिरिक्त हम और किसी रास्ते से कभी किसी को समझ ही नहीं पाते। अनुयायी की एक कठिनाई है कि वह एक से बंध जाता है और विरोधी की भी कठिनाई है कि वह विरोध में बंध जाता है। सिर्फ प्रेमी को एक मुक्ति है। प्रेमी को बंधने का कोई कारण नहीं है। और जो प्रेम बांधता है, वह प्रेम ही नहीं।

तो महावीर से प्रेम करने में महावीर से बंधना नहीं होता। महावीर से प्रेम करते हुए भी बुद्ध को, कृष्ण को, क्राइस्ट को प्रेम किया जा सकता है क्योंकि जिस चीज को हम महावीर में प्रेम करते हैं वह हजार-हजार लोगों में उसी तरह प्रकट हुई है। महावीर को थोड़े ही प्रेम करते हैं। वह जो शरीर है वर्धमान का, वह जो जन्मतिथियों में बंधी हुई है एक इतिहास रेखा है, एक दिन पैदा होना, और एक दिन मर जाना --उसे तो प्रेम नहीं करते। प्रेम करते हैं उस ज्योति को जो उस मिट्टी के दिये में प्रकट हुई। वह दिया कौन था, यह बहुत अर्थ की बात नहीं।

बहुत दियों में वह ज्योति प्रकट हुई है; जो ज्योति को प्रेम करेगा वह दिये से नहीं बंधेगा। और जो दिये से बंधेगा, उसे ज्योति का कभी पता नहीं लगेगा। क्योंकि दिये से जो बंध रहा है, निश्चित है कि उसे ज्योति का पता

नहीं चला। जिसे ज्योति का पता चल जाए उसे दिये की याद भी रहेगी? उसे दिया फिर दिखाई भी पड़ेगा? जिसे ज्योति दिख जाए, वह दिये को भूल जाएगा। इसलिए जो दिये को याद रखे हैं उन्हें ज्योति नहीं दिखी है और जो ज्योति को प्रेम करेगा, वह इस ज्योति को या उस ज्योति को थोड़े ही प्रेम करेगा, वह जो ज्योतिर्मय है उसे ही प्रेम करेगा। जब एक ज्योति में बंध जाएगा उसे तो कहीं भी ज्योति है, वहीं दिख जाएगी—सूरज में भी, घर में जलने वाले छोटे से दिये में भी, चाँद-तारे में भी, आग में—जहां कहीं भी ज्योति है, वहीं दिख जाएगी। लेकिन अनुयायी व्यक्तियों से बंधे हैं। विरोधी भी व्यक्तियों से बंधे हैं। प्रेमी भर को व्यक्ति से बंधने की कोई जरूरत नहीं।

तो मैं प्रेमी हूं। और इसलिए मेरा कोई बंधन नहीं है महावीर से। और बंधन न हो तो ही समझ हो सकती है—अण्डरस्टैंडिंग हो सकती है।

यह भी ध्यान में रखना जरूरी है कि महावीर को चर्चा के लिए क्यों चुनें? बहाना है सिर्फ। जैसे खूंटी होती है। कपड़ा टांगना, प्रयोजन होता है। खूंटी कोई भी काम दे सकती है। महावीर भी काम दे सकते हैं ज्योति के स्मरण में, बुद्ध भी, कृष्ण भी, क्राइस्ट भी। किसी भी खूंटी से काम लिया जा सकता है। स्मरण उस ज्योति का जो हमारे दिये में भी जल सकती है। स्मरण प्रेम मांगता है, अनुकरण नहीं। और वह स्मरण भी महावीर का जब हम करते हैं, तो भी महावीर का स्मरण नहीं है वह। स्मरण है उस तत्त्व का जो महावीर में प्रकट हुआ। और उस तत्त्व का स्मरण आ जाए तो तत्काल आत्म-स्मरण बन जाता है। और वही सार्थक है जो आत्म-स्मरण की तरफ ले जाए। लेकिन महावीर की पूजा से यह नहीं होता। पूजा से आत्म-स्मरण नहीं आता। बड़ी मजे की बात है।

पूजा आत्म-विस्मरण का उपाय है। जो अपने को भूलना चाहते हैं वे पूजा में लग जाते हैं। उनके लिए भी महावीर खूंटी का काम देते हैं, बुद्ध, कृष्ण—सब खूंटी का काम देते हैं। जिसे अपने को भूलना है वे अपने भूलने का वस्त्र खूंटी पर टांग देते हैं। अनुयायी, भक्त, अन्धे अनुकरण करने वाले भी महावीर, बुद्ध, कृष्ण की खूंटियों का उपयोग कर रहे हैं, आत्म-विस्मरण के लिए। पूजा, प्रार्थना, अर्चना सब विस्मरण है।

स्मरण बहुत और बात है। स्मरण का अर्थ है कि हम महावीर में उस सार को खोज पाए—किसी में भी, कहीं से भी। वह सार हमें दिख जाए; उसकी एक

झलक मिल जाए, उसका एक स्मरण हो जाए कि ऐसा भी हुआ है, ऐसा भी किसी व्यक्ति में होता है। ऐसा भी सम्भव है। यह सम्भावनाओं का बोध तत्काल हमें अपने प्रति जगा देता है कि जो किसी एक में सम्भव है, जो एक मनुष्य में सम्भव है, वही फिर मेरी सम्भावना क्यों न बने? और तब हम पूजा में न जायेंगे बल्कि एक अन्तर् पीड़ा, एक इनर सफरिंग में उतर जायेंगे। जैसे जले हुए दिये को देख कर एक बुझा हुआ दिया एक आत्मपीड़ा में उतर जाए और उसे लगे कि मैं व्यर्थ हूं, मैं सिर्फ नाम मात्र का दिया हूं क्योंकि वह ज्योति कहां, वह प्रकाश कहां? मैं सिर्फ अवसर हूं जिसमें ज्योति प्रगट हो सकती है, लेकिन अभी हुई नहीं है। लेकिन बुझे हुए दियों के बीच बुझा हुआ दिया रखा रहे तो उसे ख्याल भी न आए, पता भी न चले। तो करोड़ बुझे हुए दियों के बीच में भी जो स्मरण नहीं आ सकता वह एक जले हुए दिये के निकट आ सकता है।

महावीर, या बुद्ध, या कृष्ण का मेरे लिए इससे ज्यादा कोई प्रयोजन नहीं कि वे जले हुए दिये हैं, और उनका ख्याल उनके जले हुए दिये की लपट एक बार भी हमारी आंखों में पहुँच जाए तो हम फिर वही आदमी नहीं हो सकते जो हम कल तक थे, क्योंकि हमारी एक नई सम्भावना का द्वार खुल गया; जो हमें पता ही नहीं था कि हम हो सकते हैं उसकी प्यास जग गई। यह प्यास जग जाए तो कोई भी बहाना बनता हो, इससे कोई प्रयोजन नहीं। तो मैं महावीर को भी, क्राइस्ट को भी बहाना बनाऊंगा, कृष्ण को भी, बुद्ध को भी, लाओत्से को भी।

फिर हममें बहुत तरह के लोग हैं। और कई बार ऐसा होता है कि जिसे लाओत्से में ज्योति दिख सकती है, हो सकता है उसे बुद्ध में ज्योति न दिखे। और यह भी हो सकता है कि जिसे महावीर में ज्योति दिख सकती है उसे लाओत्से में ज्योति न दिखे। एक बार अपनी ही ज्योति दिख जाए तब तो लाओत्से, बुद्ध का मामला ही नहीं, तब तो सड़क पर चलते साधारण आदमी में भी ज्योति दिखने लगती है। तब फिर ऐसा आदमी ही नहीं दिखता जिसमें ज्योति न हो। तब तो आदमी बहुत दूर की बात है पशु-पक्षी में वही ज्योति दिखने लगती है। पशु-पक्षी भी बहुत दूर की बात है, पत्थर में भी वह ज्योति दिखने लगती है। एक बार अपने में दिख जाए तो सब में दिखने लगती है। लेकिन, जब तक स्वयं में नहीं दिखी तब तक जरूरी नहीं कि सभी लोगों को महावीर में ज्योति दिखे। उसके कारण हैं। व्यक्ति-

व्यक्ति के देखने के ढंग में भेद है और व्यक्ति-व्यक्ति की ग्राहकता में भेद है और व्यक्ति-व्यक्ति के रुझान और रुचि में भेद है। एक सुन्दर युवति है, जरूरी नहीं सभी को सुन्दर मालूम पड़े।

मजनू को पकड़ लिया था उसके गांव के सम्राट् ने। और मजनू की पीड़ा की खबरें उस तक पहुंची थीं। उसका रात देर तक वृक्षों के नीचे रोना और चिल्लाना; उसकी आंखों से बहते हुए आंसू; गांव भर में उसकी चर्चा। तो सम्राट् ने दया करके उसे बुला लिया, बोला तू पागल हो गया है। लैला को मैंने भी देखा है। ऐसा क्या है? बहुत साधारण है। उससे सुन्दर लड़कियाँ तेरे लिए मैं इन्तजाम कर दूंगा। देख। लड़कियां बुला ली थीं उसने। कतार लगा दी दीवार के सामने और कहा कि देख! नगर की सुन्दरतम लड़कियाँ वहां पर उपस्थित थीं, राजा का निमन्त्रण था। लेकिन, मजनू ने देखा तक नहीं। और मजनू खूब हंसने लगा। उसने कहा, आप समझे नहीं। लैला को देखने के लिए मजनू की आंख चाहिए। वह आंख आपके पास नहीं। तो हो सकता है लैला आपको साधारण दिखे। लैला को मैं ही देख सकता हूं असाधारण। मैं मजनू हूं। मजनू की आंख लैला को पैदा करती है, आविष्कार करती है, उद्घाटन करती है—यानी लैला होने के लिए मजनू चाहिए।

एक-एक व्यक्ति में बुनियादी भेद है। इसलिए दुनिया में इतने तीर्थंकर, इतने अवतार, इतने गुरु हैं। और इसलिए ऐसा हो सकता है कि बुद्ध और महावीर जैसे व्यक्ति एक ही जगह में एक ही दिन ठहरे और गुजरे हों, एक ही इलाके में वर्ष-वर्ष घूमे हों; फिर भी, गांव में किन्हीं को बुद्ध दिखाई पड़े हों, किन्हीं को महावीर दिखाई पड़े हों, और किन्हीं को दोनों न दिखाई पड़े हों।

जब मैं कुछ देखता हूं तो जो है, दिखाई पड़ रहा है, वही महत्त्वपूर्ण नहीं है। मेरे पास देखने की एक विशिष्ट दृष्टि है। और, दृष्टि प्रत्येक व्यक्ति की अलग है। किसी को महावीर में वह ज्योति दिखाई पड़ सकती है। और, तब उस बेचारे की मजबूरी है। हो सकता है कि वह कहे कि बुद्ध में कुछ भी नहीं है और वह कहे जीसस में क्या है? मुहम्मद में क्या है? लेकिन, उसकी नासमझी है। वह जरा जल्दी कर रहा है। वह सहानुभूतिपूर्ण नहीं मालूम हो रहा है। वह समझ नहीं रहा है। और जब कोई उससे कहेगा कि महावीर में कुछ भी नहीं है तो वह क्रोध से भर जाएगा। अब भी वह नहीं समझ पा रहा है। जब मैं कहता हूं कि जीसस में कुछ नहीं दिखाई पड़ रहा है तो हो सकता है कि किसी को महावीर में कुछ भी न दिखाई पड़े।

महावीर में जो है उसे देखने के लिए विशिष्ट आंख चाहिए। हां, जमीन पर भिन्न-भिन्न तरह के लोग हैं। बहुत भिन्न-भिन्न तरह के लोग। कोई इनकी जातियां बनाना भी मुश्किल है, इतने भिन्न तरह के लोग हैं। लेकिन, एक बार दिख जाए साम्य तो सब भिन्नताएं खो जाती हैं।

सब भिन्नताएं दिये की भिन्नताएं हैं—ज्योति की भिन्नता नहीं है। दिये भिन्न-भिन्न हैं। बहुत-बहुत आकार के हैं। बहुत-बहुत रूप के हैं। बहुत-बहुत रंगों के हैं। बहुत-बहुत कारीगरों ने उन्हें बनाया है। बहुत-बहुत उनके स्रष्टा हैं, उनके निर्माता हैं। तो हो सकता है कि जिसने एक ही तरह का दिया देखा हो, दूसरे तरह के दिये को देखकर कहने लगे कि यह कैसा दिया है। ऐसा दिया होता भी नहीं। लेकिन, जिसने एक बार ज्योति को देख लिया चाहे कोई भी रूप हो, चाहे कोई भी आकार हो—जिसने एक बार ज्योति देख ली—दूसरी किसी आकार की ज्योति को देखकर वह यह न कह सकेगा कि यह कैसी ज्योति है? क्योंकि ज्योतिर्मय का जो अनुभव है, वह आकार का अनुभव नहीं। और दिये का जो अनुभव है, वह आकार का अनुभव है। दिया एक जड़ है, पदार्थ है, ठहरा हुआ, रुका हुआ। ज्योति एक चेतन है, एक सत्य है जीवन्त, भागी हुई। दिया रखा हुआ है। ज्योति जा रही है। और यह कभी ख्याल किया कि ज्योति सदा ऊपर की ओर जा रही है। कोई भी उपाय करो, दिये को कैसा भी रखो......आड़ा कि तिरछा, ऊँचा कि नीचा, छोटा कि बड़ा, इस आकार का कि उस आकार का, ज्योति है कि बस भागी जा रही है ऊपर को। कैसी भी ज्योति है, भागी जा रही है ऊपर को। निराकार का अनुभव है ज्योति में और ऊर्ध्व-गमन की पहचान कि सिर्फ ऊपर ही ऊपर जाना। और, कितनी जल्दी ज्योति का आकार खो जाता है। देर नहीं लगती है, देख भी नहीं पाते कि आकार खो जाता है। पहचान भी नहीं पाते कि आकार खो जाता है। ज्योति कितनी जलती है। छोटा सा आकार लेती है, फिर निराकारमय हो जाती है, फिर खोजने चले जाओ, मिलेगी नहीं। थी कभी—अब थी, और अब नहीं, लेकिन ऐसा नहीं हो सकता है कि जो था, वह अब न हो जाए।

ज्योति एक मिलन है आकार-निराकार का। प्रतिपल आकार निराकार में जा रहा है। हम आकार तक देख पाएं तो भी हम अभी ज्योति को नहीं देख पाए, क्योंकि जो आकार के पार संक्रमण हो रहा है निराकार में, वही ज्योति है। और इसलिए ऐसा हो जाता है कि दियों को पहचानने वाले ज्योतियों के

सम्बन्ध में झगड़ा करते रहते हैं। और दियों को पकड़ने वाले ज्योतियों के नाम पर पंथ और सम्प्रदाय बना लेते हैं। और ज्योति से दिये का क्या सम्बन्ध ! ज्योति से दिये का सम्बन्ध ही क्या है ? दिया सिर्फ एक अवसर था जहां ज्योति घटी। और जो ज्योति का आकार दिखा था वह भी सिर्फ एक अवसर था, जहां से ज्योति निराकार में गई।

वर्धमान तो दिया है, महावीर ज्योति; सिद्धार्थ तो दिया है, बुद्ध ज्योति है; जीसस तो दिया है—क्राइस्ट ज्योति है। लेकिन हम दिये को पकड़ लेते हैं। और महावीर के सम्बन्ध में सोचते-सोचते हम वर्धमान के सम्बन्ध में सोचने लगते हैं। भूल हो गई। वर्धमान को जो पकड़ लेगा, महावीर को कभी नहीं जान सकेगा। सिद्धार्थ को जो पकड़ लेगा उसे बुद्ध की कभी पहचान ही नहीं होगी। और जीसस को, मरियम के बेटे को, जिसने पहचाना, वह क्राइस्ट को, परमात्मा के बेटे को कभी नहीं पहचान पाएगा। इनमें क्या सम्बन्ध है ? दोनों बात ही अलग है। लेकिन, हमने दोनों को इकट्ठा कर रखा है—जीसस, क्राइस्ट, वर्धमान, महावीर, गौतम बुद्ध को, दिये और ज्योति को, और ज्योति का हमें कोई पता नहीं है। दिये को हम पकड़े हैं।

मेरा दिये से कोई सम्बन्ध नहीं। कोई अर्थ ही नहीं देखता हूँ इनमें। तो फिर दिये तो हम हैं ही। इसकी चिन्ता हमें नहीं करनी चाहिए। दिये हम सब हैं ही। ज्योति हम हो सकते हैं, जो हम अभी नहीं हैं। ज्योति की चिन्ता करनी चाहिए। इधर महावीर को निमित्त बनाकर ज्योति पर विचार करना होगा। जिन्हें महावीर की तरफ से ज्योति पहचान में आ सकती है अच्छा है वहीं से पहचान आ जाए। जिनको नहीं आ सकती उनके लिये किसी और को निमित्त बनाया जा सकता है। सब निमित्त काम में आ सकते हैं।

बहुत विशिष्ट हैं महावीर—इसलिए सोचना तो बहुत जरूरी है उन पर। लेकिन विशिष्ट किसी दूसरे की तुलना में नहीं। आम तौर से हम ऐसा ही सोचते हैं कि कोई व्यक्ति विशिष्ट है तो हम पूछते हैं—किस से ? जब मैं कहता हूँ बहुत विशिष्ट हैं महावीर तो मैं यह नहीं कहता हूँ कि बुद्ध से, कि मुहम्मद से। तुलना मैं नहीं कर रहा हूँ बल्कि विशिष्ट हैं—इस अर्थ में—जो घटना घटी उससे। वह जो घटना घटी, वह जो ज्योतिर्मय होने की घटना और निराकार में विलीन हो जाने की घटना, उससे विशिष्ट हैं। उस घटना से जीसस विशिष्ट हैं। मुहम्मद विशिष्ट हैं, कनफ्यूसियस विशिष्ट हैं। उस अर्थ

में वही विशिष्ट है जो आकार को खोकर निराकार में चला गया है। यही है विशिष्टता।

हम अविशिष्ट हैं। हम साधारण हैं। साधारण इस अर्थ में कि वह घटना अभी नहीं घटी। दुनिया में दो ही तरह के लोग हैं—साधारण और असाधारण। साधारण से मेरा मतलब है जो अभी सिर्फ दिया है, ज्योति बन सकते हैं। साधारण असाधारण का अवसर है, मौका है, बीज है। और असाधारण वह है जो ज्योति बन गया और गया वहां, उस घर की तरफ जहां पहुँच कर शान्ति है, जहां आनन्द है, जहां खोज का अन्त है और उपलब्धि। इसलिए जब मैं विशिष्ट कह रहा हूं तो मेरा मतलब यह नहीं कि किसी से विशिष्ट। विशिष्ट जब मैं कह रहा हूं तो मेरा मतलब है—साधारण नहीं असाधारण। हम सब साधारण हैं। हम सब असाधारण हो सकते थे। और जब तक हम साधारण हैं, तब तक हम साधारण और असाधारण के बीच जो भेद खड़े करते हैं, वह एकदम नासमझी के हैं।

साधारण बस साधारण ही है। वह चपरासी है कि राष्ट्रपति, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। यह साधारण के ही दो रूप हैं। चपरासी पहली सीढ़ी पर और राष्ट्रपति आखिरी सीढ़ी पर। चपरासी भी चढ़ता जाए तो राष्ट्रपति हो जाए और राष्ट्रपति उतरता जाए तो चपरासी हो जाए। चपरासी चढ़ जाते हैं, राष्ट्रपति उतर आते हैं। दोनों काम चलते हैं। यह एक ही सीढ़ी पर सारा खेल है—साधारण की सीढ़ी पर। साधारण की सीढ़ी पर सभी साधारण हैं—चाहे वह किसी भी पायदान पर खड़े हों—नम्बर एक की कि नम्बर हजार की कि नम्बर शून्य की। इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। एक सीढ़ी साधारण की है और इस साधारण की सीढ़ी से जो छलांग लगा जाते हैं, वे असाधारण में पहुंच जाते हैं।

असाधारण की कोई सीढ़ी नहीं है। इसलिए असाधारण दो व्यक्तियों में नीचे-ऊपर कोई नहीं होता। फिर कई लोग पूछते हैं कि बुद्ध ऊंचे कि महावीर, कृष्ण ऊंचे कि क्राइस्ट। तो वे अपनी साधारण की सीढ़ी के गणित से असाधारण लोगों को सोचने चल पड़े। और ऐसे पागल हुए हैं कि किताबें भी लिखते हैं कि कौन किससे ऊंचा। और उन्हें पता नहीं कि ऊंचे और नीचे का जो ख्याल है, साधारण दुनिया का ख्याल है। असाधारण ऊंचा और नीचा नहीं होता। असल में जो ऊंचे-नीचे की दुनिया से बाहर चला जाता है, वही असाधारण है। तो भला कैसे तोलें कि कबीर कहां कि नानक कहां, और

ऐसी किताबें हैं, ऐसे नक्शे बनाए हैं, लोगों ने कि कौन किसके ऊपर खड़ा हैं। वहां भी कौन आगे हैं, कौन पीछे है, कौन किस खण्ड में पहुंच गया है। वे साधारण लोगों की दुनिया और साधारण लोगों के ख्याल हैं। वे वहां भी वही सोच रहे हैं। वहां कोई ऊँचा नहीं है, कोई नीचा नहीं है।

असल में ऊंचा और नीचा जहां तक है, वहां तक 'दिया' है। बड़ा और छोटा जहां तक है, वहां तक 'दिया' है। ज्योति बड़ी और छोटी होती नहीं। ज्योति या तो ज्योति होती है या नहीं होती। 'ज्योति' बड़ी और छोटी का क्या मतलब है? और निराकार में खो जाने की क्षमता छोटी ज्योति की उतनी ही है, जितनी बड़ी से बड़ी ज्योति की और निराकार में खो जाना ही असाधारण हो जाना है। तो छोटी ज्योति कौन? और बड़ी ज्योति कौन? छोटी ज्योति धीरे-धीरे खोती है, बड़ी ज्योति जल्दी खो जाती है यह वैसे ही भूल है, इसे थोड़ा समझ लेना उचित होगा।

हजारों साल तक ऐसा समझा जाता था कि अगर हम एक मकान की छत पर खड़े हो जाएं और एक बड़ा पत्थर गिराएं और एक छोटा पत्थर—एक साथ, तो बड़ा पत्थर जमीन पर पहले पहुंचेगा और छोटा पत्थर पीछे। हजारों साल तक यह ख्याल था किसी ने गिराकर देखा नहीं था, क्योंकि बात इतनी साफ-सीधी मालूम पड़ती थी और उचित तर्कयुक्त कि कोई यह कहता भी कि चलो जरा छत पर गिराकर देखो तो लोग कहते पागल हो। इसमें भी कोई सोचने की बात है। बड़ा पत्थर पहले गिरेगा, बड़ा है, ज्यादा वजन है। छोटा, पीछे गिरेगा। बड़ा पत्थर? बड़ा पत्थर जल्दी आएगा। छोटा पत्थर धीरे आएगा। लेकिन, उन्हें पता नहीं था कि बड़ा पत्थर छोटे पत्थर का सवाल नहीं है गिरने में—सवाल है ग्रेवीटेशन का, सवाल है जमीन की कशिश का। और वह कशिश दोनों पर बराबर काम कर रही है। छोटे और बड़े का उस कशिश के लिए भेद नहीं। तो जब पहली दफा एक आदमी ने चढ़कर 'पिसा' के टावर पर गिराकर देखा, वह अद्भुत आदमी रहा होगा। गिराकर देखे दो पत्थर छोटे और बड़े। और जब दोनों पत्थर साथ गिरे तो वह खुद ही चौंका। उसको भी विश्वास न आया होगा। बार-बार गिराकर देखा कि पक्का हो जाए, नहीं तो लोग कहेंगे पागल हो गया है—ऐसा नहीं हो सकता है। और जब दौड़कर उसने विश्वविद्यालय में खबर दी, जिसमें कि वह अध्यापक था, तो अध्यापकों ने कहा कि ऐसा कभी नहीं हो सकता। छोटा और बड़ा पत्थर साथ-साथ

कैसे गिर सकते हैं ? छोटा पत्थर छोटा है, बड़ा पत्थर बड़ा। बड़ा पहले गिरेगा, छोटा पत्थर पीछे गिरेगा। और उन्होंने जाने से इन्कार किया। पण्डित सबसे ज्यादा जड़ होते हैं; अध्यापक थे, विश्वविद्यालय के पण्डित थे। उन्होंने कहा यह हो ही नहीं सकता। जाने की जरूरत नहीं। फिर भी, बामुश्किल प्रयास करके वह ले आया और पण्डितों ने देखा कि बराबर दोनों साथ गिरे, तो उन्होंने कहा कि इसमें जरूर कोई जालसाजी है। क्योंकि ऐसा हो कैसे सकता है ? या शैतान का कोई हाथ है।

इस उदाहरण को मैं इसलिए कह रहा हूँ कि जमीन के अतिरिक्त और एक ग्रेवीटेशन (गुरुत्वाकर्षण) है। एक कशिश, एक गुरुत्वाकर्षण नीचे खींचने का। और परमात्मा में भी, निराकार में भी एक ग्रेवीटेशन है, एक कशिश है, ऊपर खींचने का। यह जो निराकार फैला हुआ है ऊपर, वह चीजों को ऊपर खींचता है। हम जमीन की कशिश को तो पहचान गए धीरे-धीरे, परन्तु ऊपर की कशिश को हम नहीं पहचान पा रहे हैं क्योंकि जमीन पर हम सब हैं, उस ऊपर की कशिश को कभी कोई जाता है और जो जाता है वह लौटता नहीं तो कुछ खबर मिलती नहीं। वह जो ऊपर की कशिश है, उसी का नाम ग्रेस है। इसकी ग्रेविटी, उसका ग्रेस। इसका गुरुत्वाकर्षण, उसका प्रभुप्रसाद। कोई और नाम भी दो तो उससे कोई फर्क नहीं पड़ता। वहां छोटी और बड़ी ज्योति का सवाल नहीं। वह ज्योति भर बन जाए बस। छोटी ज्योति उतनी ही गति से चली जाती है जितनी बड़ी, वह ग्रेस खींच लेती है निराकार की। इसलिए वहां कोई छोटा-बड़ा नहीं, क्योंकि वहां छोटे-बड़े का कोई अर्थ नहीं।

तो बुद्ध और महावीर में कौन बड़ा, कौन छोटा—यह साधारण लोगों की गणित की दुनिया है जिससे हम हिसाब लगाते हैं। और साधारण गणित की दुनिया से असाधारण लोगों को नहीं तोला जा सकता। इसलिए वहां कोई बड़ा-छोटा नहीं। साधारण से बाहर जो हुआ, वह बड़े और छोटे की गणना से बाहर हो जाता है। इसलिए इससे बड़ी भ्रान्ति कोई नहीं हो सकती कि कोई कृष्ण में, क्राइस्ट में, कोई बुद्ध में, कोई महावीर में तौल करने बैठे। कोई कबीर में, नानक में, रमण में, कृष्णमूर्ति में, कोई तौल करने बैठे कि कौन बड़ा, कौन छोटा; कोई छोटा-बड़ा नहीं है। लेकिन, हमारे मन को बड़ी तकलीफ होती है, अनुयायी के मन को बड़ी तकलीफ होती है, कि हमने जिसे पकड़ा है वह बड़ा होना चाहिए। और इसी-

लिए मैंने कहा कि अनुयायी कभी नहीं समझ पाता, समझ ही नहीं सकता। अनुयायी कुछ थोपता है अपनी तरफ से। समझने के लिए बड़ा सरल चित्त चाहिए; अनुयायी के पास सरल चित्त नहीं। विरोधी भी नहीं समझ पाता क्योंकि वह छोटा करने के आग्रह में होता है, अनुयायी से उल्टी कोशिश में लगा होता है। प्रेम ही समझ पाता है। इसलिए जिसे समझना है, उसे प्रेम करना है और प्रेम सदा बेशर्त है। अगर कृष्ण को इसलिए प्रेम किया है कि तुम मुझे स्वर्ग ले चलना तो यह प्रेम शर्तपूर्ण होगा, उसमें कन्डीशन शुरू हो गई। अगर इसलिए महावीर से प्रेम किया है कि तुम ही सहारे हो, तुम्हीं पार ले चलोगे भवसागर से, शर्त शुरू हो गई, प्रेम खत्म हो गया। प्रेम है बेशर्त। कोई शर्त ही नहीं। प्रेम यह नहीं कहता कि तुम मुझे कुछ देना। प्रेम का मांग से कोई सम्बन्ध ही नहीं। जहां तक मांग है, वहां तक सौदा है, जहां तक सौदा है वहां तक प्रेम नहीं है।

सब अनुयायी सौदा करते हैं। इसलिए कोई अनुयायी प्रेम नहीं कर पाता और विरोधी किसी और से सौदा कर रहा है, इसलिए विरोधी हो गया है! और विरोध भी इसीलिए हो गया है क्योंकि उसे सौदे का आश्वासन नहीं दिखाई पड़ रहा है कि ये कृष्ण केसे ले जाएंगे? तो कृष्ण को उसने छोड़ दिया है, इन्कार कर दिया है। प्रेम का मतलब है बेशर्त, प्रेम का मतलब है वह आंख जो परिपूर्ण सहानुभूति से भरी है और समझना चाहती है। मांग कुछ भी नहीं है।

महावीर को समझने के लिए पहली बात तो मैं यह कहना चाहूंगा कि कोई मांग नहीं, कोई सौदा नहीं, कोई अनुकरण नहीं, कोई अनुयायी का भाव नहीं। एक सहानुभूतिपूर्ण दृष्टि से कि व्यक्ति हुआ जिसमें कुछ घटा—हम देखें कि क्या घटा, पहचानें क्या घटा? खोजें कि क्या घटा? इसलिए जैन कभी महावीर को नहीं समझ पाएगा। उसकी शर्त बंधी है। जैन महावीर को कभी नहीं समझ सकता। बौद्ध बुद्ध को कभी नहीं समझ सकता। इसलिए प्रत्येक ज्योति के आसपास अनुयायियों का जो समूह इकट्ठा होता है, वह ज्योति को बुझाने में सहयोगी होता है; उस ज्योति को और जलाने में नहीं। अनुयायियों से बड़ा दुश्मन खोजना बहुत मुश्किल है। इन्हें पता ही नहीं कि ये दुश्मनी कर बैठते हैं।

अब महावीर का जैन होने से क्या सम्बन्ध? कोई भी नहीं। महावीर को पता ही न होगा कि वे जैन हैं। और पता होगा तो बड़े साधारण

आदमी थे, फिर उस असाधारण दुनिया के आदमी नहीं थे जिसकी हम बात करते हैं! महावीर को पता भी नहीं हो सकता सपने में भी कि मैं जैन हूँ। न क्राइस्ट को पता हो सकता है कि मैं ईसाई हूँ। और जिनको यह पता है वे समझ नहीं पाएँगे क्योंकि जैसे हम समझने से पहले कुछ हो जाते हैं तो जो हम हो जाते हैं वह हमारी समझ में बाधा डालता है; क्योंकि हम हो पहले जाते हैं और फिर हम समझने जाते हैं। **समझने जाना हो तो खाली मन जाइए।** इसलिए जो जैन नहीं है, बौद्ध नहीं है, हिन्दू नहीं, मुसलमान नहीं, वह समझ सकता है, वह सहानुभूति से देख सकता है। उसकी प्रेमपूर्ण दृष्टि हो सकती है क्योंकि उसका कोई आग्रह नहीं। उसका अपना होने का कोई आग्रह नहीं। और बड़े मजे की बात है कि हम जन्म से जैन हो जाते हैं, जन्म से ही बौद्ध हो जाते हैं। मतलब जन्म से हमारे धार्मिक होने की सम्भावना समाप्त हो जाती है। **अगर कभी भी मनुष्य को धार्मिक बनाना हो तो जन्म से धर्म का सम्बन्ध बिल्कुल ही तोड़ देना जरूरी है।** जन्म से कोई कैसे धार्मिक हो सकता है, और जो जन्म से ही पकड़ लिया किसी धर्म को तो वह समझेगा क्या? समझने का मौका क्या रहा? अब तो उसका आग्रह निर्मित हो गया—प्रेजूडिस, पक्षपात निर्मित हो गया। अब वह महावीर को समझ ही नहीं सकता क्योंकि महावीर को समझने के पहले महावीर तीर्थंकर हो गए, परम गुरु हो गए, सर्वज्ञ हो गए, परमात्मा हो गए। अब परमात्मा को पूजा जा सकता है, समझा तो नहीं जा सकता, तीर्थंकर का गुणगान किया जा सकता है, समझा तो नहीं जा सकता। **समझने के लिए तो अत्यन्त सरल दृष्टि चाहिए जिसका कोई पक्षपात नहीं।**

यह मैं कह सकता हूँ कि महावीर को समझ सका हूँ क्योंकि मेरा कोई पक्षपात नहीं, कोई आग्रह नहीं। लेकिन हो सकता है कि जो मेरी समझ हो, वह शास्त्र में न मिले। मिलेगी भी नहीं, न मिलने का कारण पक्का है। क्योंकि शास्त्र उन्होंने लिखे हैं जो बंधे हैं, शास्त्र उनके लिखे हैं जो अनुयायी हैं, शास्त्र उन्होंने लिखे हैं जो जैनी हैं, शास्त्र उनके लिए लिखे हैं जिनके लिए महावीर तीर्थंकर हैं, सर्वज्ञ हैं, शास्त्र उनके लिखे हैं जिन्होंने महावीर को समझने के पहले कुछ मान लिया है। मेरी समझ शास्त्र से मेल न खाए....और यह मैं आपसे कहना चाहता हूँ कि समझ कभी भी शास्त्र से मेल नहीं खाएगी। **समझ और शास्त्र में बुनियादी विरोध रहा है। शास्त्र नासमझ ही रचते हैं। नासमझ इन अर्थों में कि वे पक्षपातपूर्ण हैं।** नासमझ इन अर्थों में कि वे

कुछ सिद्ध करने को आतुर हैं। नासमझ इन अर्थों में कि उनमें समझने की उतनी उत्सुकता नहीं, जितनी कुछ सिद्ध करने की।

एक व्यक्ति हैं, वे आत्मा के पुनर्जन्म पर शोध करते हैं। मुझे किसी ने उनसे मिलाया तो उन्होंने मुझसे कहा; हिन्दुस्तान के बाहर न मालूम कितने विश्वविद्यालयों में वह बोले हैं। यहां के एक विश्वविद्यालय से सम्बन्धित हैं। एक उस विश्वविद्यालय में विभाग भी बना रहे हैं जो पुनर्जन्म के सम्बन्ध में खोज करता है। कुछ मित्र उन्हें लाए थे मेरे पास मिलाने। बीस-पचीस मित्र इकट्ठे हो गए थे। आते ही उनसे बात हुई तो मैंने उनसे पूछा आप क्या कर रहे हैं? तो उन्होंने कहा कि मैं वैज्ञानिक रूप से सिद्ध करना चाहता हूं कि आत्मा का पुनर्जन्म है। मैंने कहा कि एक बात मैं निवेदन करूं कि अगर वैज्ञानिक रूप से सिद्ध करना चाहते हैं, तो ऐसा कहते ही आप अवैज्ञानिक हो गए। वैज्ञानिक होने की पहली शर्त है कि हम कुछ सिद्ध नहीं करना चाहते, जो है उसे जानना चाहते हैं। वैज्ञानिक होना है तो आपको कहना चाहिए हम जानना चाहते हैं कि आत्मा का पुनर्जन्म होता है या नहीं होता है। आप कहते हैं कि यह वैज्ञानिक रूप से सिद्ध करना चाहता हूं कि आत्मा का पुनर्जन्म होता है तो आपने पहले ही मान लिया है कि पुनर्जन्म होता है। अब सिर्फ सिद्ध करने की बात रह गई सो आप वैज्ञानिक रूप से सिद्ध कर सकते हैं। तो अवैज्ञानिक आप हो ही गए। तो मैंने कहा इसमें विज्ञान का नाम पीछे मत डालें, व्यर्थ है। वैज्ञानिक बुद्धि कुछ भी सिद्ध नहीं करना चाहती; जो है, उसे जानना चाहती है। और शास्त्रीय बुद्धि इसलिए अवैज्ञानिक हो गई कि वह कुछ सिद्ध करना चाहती है, जो है उसे जानना नहीं चाहती।

जो है, हो सकता है हमारे मन में समझने-सोचने से बिल्कुल भिन्न हो, विपरीत हो। इसलिए शास्त्रीय बुद्धि का आदमी परम्परा से बंधा है, सम्प्रदाय से बंधा है, भयभीत है, सत्य पता नहीं कैसा है? और सत्य कोई हमारे अनुकूल ही होगा, यह जरूरी नहीं। और अनुकूल ही होता तो हम कभी का सत्य में मिल गए होते। सम्भावना तो यही है कि वह प्रतिकूल होगा। हम असत्य हैं, वह प्रतिकूल होगा। लेकिन हम सत्य को अपने अनुकूल ढालना चाहते हैं, तब सत्य भी असत्य हो जाता है। सब शास्त्रीय बुद्धियां असत्य की तरफ ले जाती हैं। तो मेरी बात न मालूम कितने तलों पर मेल नहीं खाएगी? मेल खा जाए कभी तो यही आश्चर्य है। खा जाए तो वह संयोग की बात है। न खाना बिल्कुल स्वाभाविक होगा। फिर शास्त्र से मेरी पकड़ नहीं है।

महावीर को खोजने का एक ढंग तो यह है कि महावीर के सम्बन्ध में जो परम्परा है, जो शास्त्र है, जो शब्द संग्रहीत है, हम उसमें जाएँ। और उस सारी परम्परा के गहरे पहाड़ को तोड़ें, खोजें और महावीर को पकड़ें कि कहाँ हैं महावीर। महावीर को हुए ढाई हजार साल हुए। ढाई हजार सालों में जो भी लिखा गया महावीर के सम्बन्ध में, हम उस सबसे गुजरें और महावीर तक जाएँ। यह शास्त्र के द्वारा जाने का रास्ता है जैसा कि आम तौर से जाया जाता है। लेकिन, मैं मानता हूँ कि इस मार्ग से कभी जाया ही नहीं जा सकता। कभी भी नहीं जाया जा सकता। आप जहां पहुंचेंगे उसका महावीर से कोई सम्बन्ध ही नहीं होगा। उसके कारण हैं। थोड़े हमें समझ लेने चाहिएं।

महावीर ने जो अनुभव किया है, किसी ने भी जो अनुभव किया, उसे शब्द में कहना कठिन है। पहली बात है। जिसे भी कोई गहरा अनुभव हुआ है, वह शब्द की असमर्थता को एकदम तत्काल जान पाता है कि बहुत मुश्किल होगी। परमात्मा का, सत्य का, मोक्ष का अनुभव तो बहुत गहरा अनुभव है। साधारण सा प्रेम का अनुभव भी अगर किसी व्यक्ति को हुआ हो तो वह पाता है कि क्या कहूँ? कैसे कहूँ? नहीं, शब्द में नहीं कहा जा सकता। प्रेम के सम्बन्ध में अक्सर वे लोग बातें करते रहेंगे जिन्हें प्रेम का अनुभव नहीं हुआ है। जो प्रेम के सम्बन्ध में बहुत आश्वासन से बातें करता हो, समझ ही लो कि उसे प्रेम का अनुभव नहीं हुआ है क्योंकि प्रेम के अनुभव के बाद हैजीटेशन आएगा, आश्वासन नहीं रह जाएगा। बहुत डरेगा वह, चिन्तित होगा कि कैसे कहूँ? क्या कहूँ? कहता हूँ तो गड़बड़ हो जाती है सब। कहना चाहता हूँ वह पीछे छूट जाती हैं। जो कभी सोचा भी नहीं था वह शब्द से निकल जाता है।

जितनी गहरी अनुभूति, उतने ही थोथे और व्यर्थ हैं शब्द। क्योंकि शब्द है सतह पर निर्मित। और शब्द हैं उनके द्वारा निर्मित जो सतह पर जिए हैं। अब तक सन्तों की कोई भाषा विकसित नहीं हो सकी है। जो भाषा है वह साधारण जनों की है उस भाषा में असाधारण अनुभव को डालना ऐसा ही कठिन है जैसा कि हम संगीत सुनें, जैसा कि हम संगीत सुनें और कोई बहरा आदमी कहे कि संगीत को मैं सुन नहीं सकता तो तुम संगीत को पेन्ट कर दो, चित्र बना दो! तो मैं शायद थोड़ा समझ जाऊँ। क्या किया जाए संगीत को पेन्ट करने के लिए? कैसे पेन्ट करें, की है कोशिश लोगों

ने; राग और रागिनियों को भी चित्रित किया है। लेकिन, वे भी उनकी ही समझ में आ सकती हैं, जिन्होंने संगीत सुना है। बहरे आदमी के वे भी कुछ समझ नहीं पड़ती। मेघ घिर गए हैं, वर्षा की बूंदें आ गई हैं, और मोर नाचने लगे हैं और एक लड़की है। उसकी साड़ी उड़ी जाती है और वह घर की तरफ भागी चली जाती है। उसके पैर के घुँघरू बज रहे हैं। अब किसी राग को, किसी ने चित्रित किया है। लेकिन बहरे आदमी ने कभी आकाश के बादलों का गर्जन नहीं सुना। इसलिए चित्र में भी बादल बिल्कुल शान्त मालूम पड़ते हैं। उनके गर्जने का सवाल ही नहीं उठता। बहरे आदमी ने कभी पैरों में बंधे घुंघरू की आवाज नहीं सुनी। तो घुँघरू दिख सकते हैं और उसे जो दिखता है घूंघरू-घूंघरू ही नहीं। जो दिखता है, वह दिया है, घूंघरू तो कुछ और ही है जो घटता है वह जो दिखता है वह और है। घूंघरू सुना जाता है। और जो जो दिखता है उसमें, और जो सुना जाता है उसमें, बड़ा फर्क है। एक चीज दिखाई पड़ रही है, घूंघरू पैर में बंधे। लेकिन, जिसने कभी घूंघरू नहीं सुने उसे क्या दिखाई पड़ता है? उसे एक चीज दिखाई पड़ रही है जिसका घूंघरू से कोई सम्बन्ध नहीं। वह चित्र बिल्कुल मृत है क्योंकि उस चित्र से ध्वनि का कोई अनुभव उस आदमी को नहीं हो सकता जिसने ध्वनि ही नहीं सुनी। मगर यह भी आसान है क्योंकि कान और आँख एक ही तन की इन्द्रियां हैं। यह इतना कठिन नहीं। है तो बिल्कुल कठिन फिर भी उतना कठिन नहीं है।

जब कोई व्यक्ति अतीन्द्रिय सत्य को जानता है तो सभी इन्द्रियां एकदम व्यर्थ हो जाती हैं और जवाब देने में असमर्थ हो जाती हैं। बोलना पड़ता है इन्द्रिय से और यह जाना गया है वह वहां जाना गया है, जहां कोई इन्द्रिय माध्यम नहीं है। एक इन्द्रिय माध्यम है जानने में तो दूसरी इन्द्रिय अभिव्यक्ति में माध्यम नहीं बन पाती। और अगर इन्द्रिय माध्यम ही न हो अनुभव की तो फिर इन्द्रिय कैसी रही? इसलिए जो जानता है, एकदम मुश्किल में पड़ जाता है। बहुत बार तो वह मौन हो जाता है। 'मौन' भी बड़ी पीड़ा देता है क्योंकि लगता है उसे कि कहूँ, लगता है कि कह दूँ। चारों तरफ वह ऐसे लोगों को देखता है जिनको भी यह हो सकता है। और आंसुओं से भरी हुई आंखें देखता है, क्लान्त चेहरा देखता है, चिन्ता भरे हुए हृदय देखता है। चारों तरफ रुग्ण, विक्षुब्ध मनुष्यों को देखता है। और भीतर देखता है, जहां परम आनन्द घटित हो गया है और उसे लगता है कि उसे भी देख सकता

है जो निकट खड़ा है। कोई कारण नहीं है, कोई बाधा नहीं है, कोई रुकावट नहीं है, तो उसे कह दूँ। और कहने में शब्द एकदम असमर्थ हो जाता है।

तो महावीर जैसा व्यक्ति जब बोलता है पहला झूठ वह हो जाता है जब वह बोलता है। वह जो उसने बोला वह एक प्रतिशत भी वह नहीं है जो उसने जाना। फिर भी वह हिम्मत करता है, साहस जुटाता है और सोचता है क्या है। नहीं हजार किरणें पहुंचेगी तो एक किरण पहुंचेगी। खबर तो पहुंच जाएगी। वह बोलता है। अगर महावीर की वाणी पकड़ कर ही कोई महावीर की खोज करने जाए तो भी महावीर नहीं मिलेंगे। ठेठ महावीर को सुनकर ही कोई अगर उनकी वाणी पकड़कर खोजने जाए तो एङ्गल बिल्कुल बदल जायेगा। जो महावीर की वाणी को ही पकड़कर महावीर को खोजने जायेगा तो कहीं पहुंचेगा जहां महावीर नहीं होंगे। बिल्कुल चूककर निकल जायेगा वहां से, बिल्कुल ही चूक जायेगा। क्योंकि शब्द ने नहीं जाना है। वह जाना है जो महावीर ने जाना है। वह जाना है निःशब्द ने। और हमने पकड़ा है शब्द। अब शब्द से हम जहां जाएंगे वह वहां नहीं ले जाने वाला है जहां निःशब्द में जाने वाला गया होगा। और फिर अढ़ाई हजार साल बाद महावीर का शब्द जिन्होंने सुना उनमें से जिन्होंने समझा होगा थोड़ा-बहुत, वे मौन में चले गये होंगे। जिनको थोड़ी भी समझ आई होगी, पकड़ आई होगी और निःशब्द की झलक का जरा सा इशारा मिला होगा, वे निःशब्द में भाग गए होंगे। जिनकी समझ में नहीं आई होगी वे शब्द-संग्रह करने में लग गये होंगे।

तो महावीर के पास जो समझा होगा वह मौन में गया होगा। जो नहीं समझा होगा वह गणधर बन गया होगा। अब यह बड़ा उल्टा मामला है। आम तौर से हम सोचते हैं कि महावीर के पास जो गणधर हैं, वे उनके सबसे अधिक समझने वाले लोग हैं। इससे बड़ा झूठ नहीं हो सकता। महावीर के पास जो सबसे ज्यादा समझने वाला होगा वह मौन में चला गया होगा। वह तो गया होगा खोज में वहाँ। और जो सबसे कम समझने वाला है, वह महावीर क्या बोल रहे हैं, उसको दूसरे तक पहुंचाने की व्यवस्था करने में लग गया होगा। तो गणधर वे नहीं हैं जो महावीर को सर्वाधिक समझ सकें। गणधर वे हैं जो महावीर की वाणी का यथार्थ मर्म तो समझ न पाए, किन्तु उनके शब्दों को पकड़ बैठे और उनका संग्रह करने म लग गए।

परिग्रही जो व्यक्ति होगा, वह चीज़ सब संग्रह करता है। चाहे धन संग्रह करे, चाहे शब्द संग्रह करे, चाहे यश संग्रह करे, इसमें कोई फर्क नहीं पड़ता। एक परिग्रह की वृत्ति है मनुष्य के अन्दर कि इकट्ठा कर लो। लेकिन कुछ चीजें ऐसी हैं जिनके इकट्ठा करने में कुछ थोड़ा-बहुत अर्थ भी हो सकता है— जैसे कि कोई धन इकट्ठा करे। धन इकट्ठा करने में थोड़ा अर्थ हो सकता है क्योंकि धन परिग्रह की वृत्ति से ही पैदा हुआ है और परिग्रही वृत्ति का ही वाहन है, परिग्रही वृत्ति की ही विनिमय मुद्रा है। यानी परिग्रही व्यक्ति का ही धन आविष्कार है। धन का कोई व्यक्ति संग्रह करे तो सार्थक भी है क्योंकि धन परिग्रह का ही माध्यम है और परिग्रह के लिए ही है लेकिन जिस अनुभव से महावीर गुजरे हैं वह अपरिग्रह में घटा है। और उनके शब्दों को जो इकट्ठा कर रहा है, वह परिग्रही वृत्ति का व्यक्ति है।

महावीर को उत्सुकता नहीं है शब्द संग्रह की, न बुद्ध को है, न क्राइस्ट को है। वैसे तो महावीर भी किताब लिख सकते थे लेकिन महावीर ने किताब नहीं लिखी, कृष्ण ने भी किताब नहीं लिखी, बुद्ध ने भी किताब नहीं लिखी और जीसस ने भी किताब नहीं लिखी। सिर्फ लाओत्से ने, इन असाधारण लोगों में से, किताब लिखी और वह भी जबरदस्ती में लिखी।

लाओत्से ने अस्सी साल की उम्र तक किताब नहीं लिखी। लोग कहते कि कुछ लिखो। और वह कहता कि जो लिखूंगा वह झूठ हो जाएगा। जो लिखना है वह लिखा नहीं जाता, इसलिए इस उपद्रव में मैं नहीं पड़ता। अस्सी साल तक बचा रहा लेकिन सारे मुल्क में यह भाव पैदा हो गया कि अब बूढ़ा हुआ जाता है, अब मर जाएगा, जो जानता है वह खो जाएगा। अन्तिम उम्र में लाओत्से पर्वतों की तरफ चला गया, सब छोड़-छाड़कर, पता नहीं कि वह कब मरा। उसने कहा कि इससे पहले कि मृत्यु छीने, मुझे खुद ही चला जाना चाहिए। आखिर मृत्यु की प्रतीक्षा क्यों करें, इतना परवश भी क्यों हों? जब वह चीन की रेखा सीमा छोड़ने लगा तो चीन के सम्राट् ने उसे रुकवा दिया अपनी चुंगी-चौकी पर और कहा कि टैक्स चुकाए बिना नहीं जाने देंगे। लाओत्से ने कहा कैसा टैक्स? न हम कोई सामान ले जाते हैं बाहर, न कुछ लाते हैं, अकेले जाते हैं। खाली; सच तो यह है कि जिन्दगी भर से खाली हैं। कुछ सामान कभी गया नहीं जिस पर टैक्स देना पड़े। टैक्स कैसा? सम्राट् ने बहुत मजाक किया और उससे कहा कि टैक्स तो बहुत-बहुत लिए जाते हैं। इतनी सम्पत्ति कभी कोई आदमी ले ही नहीं गया, सब कुछ

न कुछ दे ही जाते हैं। तुम बोलते नहीं हो कि क्या तुम्हारे भीतर है। वह सब चुका दो, कम से कम टैक्स दे दो, सम्पत्ति मत दो; नहीं तो हम क्या कहेंगे, एक आदमी के पास था, वह बिल्कुल ले गया, बिल्कुल ले गया चुपचाप? ऐसा नहीं हो सकता, इस चुंगी-चौकी के बाहर नहीं जाने देंगे। जबरदस्ती लाओत्से को रोक लिया। वह भी हंसा। उसने कहा: बात तो शायद ठीक ही है। लिए तो जाता हूँ। लेकिन देने का कोई उपाय नहीं है, इसलिए जाता हूँ और कुछ नहीं। देना मैं भी चाहता हूँ। तब उसने एक छोटी-सी किताब लिखी।

उस तरह के असाधारण लोगों में लिखने वाला वह अकेला आदमी है। पर पहला ही वाक्य यह लिखा है "बड़ी भूल हुई जाती है, जो कहना है वह कहा नहीं जाता। और जो नहीं कहना है वही कहा जाएगा। सत्य बोला नहीं जा सकता। जो बोला जा सकता है वह सत्य हो नहीं सकता। बड़ी भूल हुई जाती है। और मैं इसको जानकर लिखने बैठा हूँ, इसलिए जो भी आगे पढ़ोगे, इसको जानकर पढ़ना कि सत्य तोला नहीं जा सकता, कहा नहीं जा सकता। और जो कहा जा सकता है, वह सत्य हो नहीं सकता। That which can be said is not the Toa.' इसे पहले समझ लेना फिर किताब पढ़ना।" तो किसी ने किताब लिखी नहीं जिसने लिखी उसने प्रश्नचिह्न पहले लगा दिया। यानी सच तो यह है कि जो समझ जाएगा उसके आगे किताब पढ़ेगा ही नहीं। मामला यह है कि लाओत्से होशियार आदमी मालूम होता है। राजा समझा कि हम चुंगी ले रहे हैं। वह गल्ती में पड़ गया। जो समझेगा वह उसके आगे किताब पढ़ेगा नहीं। बात खत्म हो गई है। जो नहीं समझेगा वह पढ़ डालेगा। उससे कोई मतलब नहीं। तो नासमझ किताबें पढ़ते हैं, समझदार रुक जाते हैं।

बुद्ध महावीर जैसे लोगों ने किताब नहीं लिखी। कारण हैं बहुत। पक्का नहीं है कि जो कहना है वह कहा जा सकता है। फिर भी कहा। कहने का माध्यम उन्होंने चुना, लिखने का नहीं चुना। इसका भी कारण है। क्योंकि कहने का माध्यम प्रत्यक्ष है आमने-सामने और मैं गया, आप गए कि खो गया। लिखने का माध्यम स्थायी है, आमने-सामने नहीं है। परोक्ष है। न मैं रहूँगा, न आप रहेंगे, वह रहेगा, वह हम से स्वतन्त्र होकर जाएगा। कहने में भूल होती है लेकिन फिर भी सामने है आदमी। अगर मैं कुछ कह रहा हूँ, तो आप मुझे देख रहे हैं; मेरी आँख को देख रहे हैं, मेरी तड़प, मेरी पीड़ा को भी

देख रहे हैं : मेरी मुसीबत भी देख रहे हैं कि कुछ है जो नहीं कहा जा सकता। हो सकता है कि आप थोड़ा समझ जाएं। लेकिन, एक किताब है, न आंख है, न तड़प है, न पीड़ा है। सब साफ-सुथरा सीधा है। फिर, किताब बचती है।

इसमें से किसी ने भी यह फिक्र नहीं की कि किताब बचे। इन सबकी फिक्र यह थी कि कह दें तो बात खत्म हो जाए। इससे ज्यादा उसको बचाना नहीं है। लेकिन, बचा ली गई। बचाने वाले लोग खड़े हो गए। उन्होंने कहा इसको बचाना होगा; बड़ी कीमती चीज है; इसको बचा लो। उन्होंने बचाने की कोशिश की। फिर उनकी बचाई हुई किताब पर किताबें चलती आईं, टीकाएं होती रहीं। और वह बचाना भी महावीर के ठीक सामने नहीं हो सका। उसका कारण है कि शायद महावीर ने इन्कार किया होगा। बुद्ध ने इन्कार किया होगा कि यह सामने न हो। तुम लिखना मत। तो वह तीन-तीन सौ, चार-चार सौ, पांच-पांच सौ वर्ष बाद हुआ, यानी जो भी लिखा गया है सुनकर नहीं लिखा गया है। किसी ने सुना है. फिर किसी ने किसी से कहा है। ऐसे दो चार पीढ़ी बीत गई हैं और कहते-कहते वह लिखा गया है। महावीर असमर्थ हैं कहने में। फिर उनको सुननेवाले ने किसी से कहा है, फिर उसने किसी से कहा है, फिर, दो, चार पांच पीढ़ियों के बाद वह लिखा गया है। फिर उस पर टीकाएं चलती रही हैं, विवाद चलते रहे हैं। वे हमारे पास शास्त्र हैं।

अगर किसी को महावीर से चूकना हो तो उन शास्त्रों से सुगम उपाय नहीं। इन शास्त्रों में चला जाए तो वह महावीर तक कभी नहीं पहुंच सकेगा। तो मैं कोई शास्त्रों से महावीर तक पहुंचने की न तो सलाह देता हूँ और न मैं उस रास्ते से उन तक गया हूँ और न मानता हूँ कि कोई कभी जा सकता है। मैं बिल्कुल ही अशास्त्रीय व्यक्ति हूँ। अशास्त्रीय से कहना चाहिए एकदम शास्त्र-विरोधी।

फिर, महावीर तक पहुंचने का क्या रास्ता है ? शास्त्रीय रास्ता दिखाई पड़ता है तो इसलिए साधु-संन्यासी शास्त्र खोले हुए हैं, खोज रहे हैं महावीर को और क्या रास्ता है और क्या मार्ग है ? अगर सारे शास्त्र खो जाएं तो साधु, संयासियों और पंडितों के हिसाब से महावीर खो जाएंगे। क्या बचाव है इस में ? अगर सारे शास्त्र खो जाएं तो महावीर का क्या बचाव है ? महावीर खो जायेंगे। लेकिन क्या सत्य का अनुभव खो सकता है ? क्या यह सम्भव है कि महावीर जैसी अनुभूति घटे और अस्तित्व के किसी कोने में

सुरक्षित न रह जाए ? क्या यह संभव है कि कृष्ण जैसा आदमी पैदा हो और सिर्फ आदमी की लिखी किताबों में उसकी सुरक्षा हो और अगर किताबें खो जाएं तो कृष्ण खो जाएगा। अगर ऐसा है तो न कृष्ण का कोई मूल्य है, न महावीर का कोई मूल्य है। आदमी के रिकार्ड, क्लर्कों के रिकार्ड, गणधरों के रिकार्ड ही अगर सब कुछ हैं, तो ठीक है किताबें खो जाएंगी और ये आदमी खो जाएंगे। मगर इतना सस्ता नहीं है यह मामला कि इतनी बड़ी घटनाएं घटें जिन्दगी में और वह खरबों वर्षों में और वहां, खरबों लोगों के बीच कभी कोई आदमी परम सत्य को उपलब्ध होता हो, उसके परम सत्य के उपलब्ध होने की घटना सिर्फ कमजोर आदमियों की कमजोर भाषा में सुरक्षित रहे और अस्तित्व में इसकी सुरक्षा का कोई उपाय न हो, ऐसा नहीं है। ऐसा हो भी नहीं सकता। इसलिए एक और उपाय है।

मेरा कहना है कि जगत् में जो भी महत्त्वपूर्ण घटता है, महत्त्वपूर्ण तो बहुत दूर की बात है, साधारण, और अमहत्त्वपूर्ण घटता है, वह भी किसी तरह पर सुरक्षित होता है, महत्त्वपूर्ण तो सुरक्षित होता ही है, वह तो कभी नष्ट नहीं होता। इसलिए जो भी महत्त्वपूर्ण घटा है जगत् में कभी भी वह मनुष्य पर नहीं छोड़ दिया गया है कि आप उसे सुरक्षित करें। वह तो ऐसे ही होगा कि अन्धों के एक समाज में एक आदमी को आंख मिल जाए और उसे प्रकाश दिखाई पड़े, और अन्धों के ऊपर निर्भर हो कि तुम उसके अनुभव को सुरक्षित रखो, अन्धों को छूट हो इस बात की कि तुम्हारे बीच जो आंख वाला एक आदमी पैदा हुआ और उसे जो अनुभव हुआ, तुम उसे सुरक्षित रखना; तुम वेद बनाना, तुम आगम रचना, तुम गीता रचना, तुम बाइबिल बनाना, इन्हें सुरक्षित रखना। और फिर अनुभव के अनुभव की टीकाएं होती चली जाएं। और हजार दो हजार साल बाद आंख वाले आदमी की देखी गई बात अन्धों द्वारा सुरक्षित की गई हो, अन्धों द्वारा व्याख्यायें की गई हों और फिर उनके द्वारा हम आंख वाले आदमी की बात को खोजने निकलें तो हमसे ज्यादा मूढ़ कोई दूसरा नहीं होगा।

तो मैं यह कहना चाहता हूं कि अस्तित्व में कुछ भी खोता नहीं। सच तो यह है कि अभी भी मैं जो बोल रहा हूं वह कभी खोएगा नहीं। आप भी जो बोल रहे हैं, वह भी नहीं खोएगा। जो शब्द एक बार पैदा हो गया है, वह नहीं खोएगा कभी। आज हम जानते हैं, लंदन में कोई बोल रहा है, रेडियो से हम यहां श्रीनगर में उसे सुनते हैं। आज से दो सौ वर्ष पहले नहीं

सुन सकते थे और आज से दो सौ वर्ष पहले कोई मान भी नहीं सकता था कि यह भी कभी सम्भव होगा कि लंदन में कोई बोलेगा और श्रीनगर में कोई सुनेगा। कोई नहीं मान सकता था। लेकिन क्या आप समझते हैं कि उस दिन लंदन में जो बोला जा रहा था, वह श्रीनगर में नहीं सुना जा रहा था? यानी मेरा मतलब यह है कि उस दिन जो भी ध्वनि तरंगें लंदन में बोलने से पैदा हो रही थीं वे श्रीनगर की इस डल झील के पास से नहीं गुजर रही थीं? अगर नहीं तो आज आप रेडियो में कैसे पकड़ लेते? अभी भी यहां से गुजर रही हैं सब तरंगें। सारे जगत् में अभी जो बोला जा रहा है, वह भी आपके पास से गुजर रहा है। सिर्फ एक यांत्रिक तरकीब की जरूरत है जिससे वह पकड़ा जा सके। बस। यानी मेरा कहना है कि कृष्ण ने अगर कभी भी बोला है तो आज भी उसकी ध्वनि तरंगे, किन्हीं तारों के निकट से गुजर रहीं हैं। यह भी ध्यान रहे कि लंदन में जो बोला गया है ठीक आप उसी वक्त नहीं सुन लेते हैं उसे, क्योंकि ध्वनि तरगों को आने में समय लगता है। तो जब लन्दन में बोला जा रहा है तब आप ठीक उसी वक्त नहीं सुनते हैं, थोड़ी देर बाद सुनते हैं। मतलब यह हुआ कि उतनी देर ध्वनि तरंगें आप तक यात्रा करती हैं।

जो कभी भी बोला गया है उसकी ध्वनि तरंगें आज भी यात्रा करती हैं, किन्हीं तारों के पास से गुजर रही हैं। और अगर उन तारों के लोगों के पास व्यवस्था होगी यन्त्रों की तो वे उन्हें पकड़ लेते होंगे। यानी किसी तारे पर आज भी महावीर के वचन सुने जा रहे होंगे। इसका क्या मतलब हुआ? इसका मतलब यह हुआ कि इस अनन्त आकाश में, अनन्त है इसलिए कुछ नहीं खोता, जो भी पैदा होता है वह यात्रा करता रहता है।

यह मैं ध्वनि की बात कर रहा हूँ। लेकिन और भी सूक्ष्म तरंगें हैं जहां अनुभूति की तरंगें शेष रहती हैं। जब हम बोलते हैं तब ध्वनि की तरंगें पैदा होती हैं। लेकिन जब हम अनुभव करते हैं तब भी एक घटना घटती है और तरंगें पैदा होती हैं जोकि और भी सूक्ष्म आकाश में यात्रा करती हैं। अगर रेडियो हो सके तो हम आकाश, स्थूल आकाश में घूमती हुई ध्वनि तरंगों को पकड़ लेते हैं। अगर कोई यांत्रिक व्यवस्था हो सके तो और सूक्ष्म आकाश में हुए अनुभवों की तरंगों को पुनः पकड़ा जा सकता है। इसका मतलब यह हुआ कि जगत् में, जो भी सृष्टि में जितने गहरे अनुभव हुए हैं उतने गहरे आकाश के तल के रिकार्ड सदा सुरक्षित हैं। वे कभी नष्ट नहीं होते और यह आदमी पर नहीं छोड़ा गया है कि वह लिखकर उनको सुरक्षित करे।

इसका मतलब यह हुआ कि अगर हम इन गहराइयों में अपने भीतर उतरें, यदि हम विशिष्ट ध्यान रखकर उतरें, तो उन विशिष्ट व्यक्तियों की अनुभूति से हम तत्काल प्रत्यक्ष सम्बन्ध जोड़ सकते हैं। लेकिन अगर हम कोई विशिष्ट व्यक्ति का ध्यान न रखकर उतरें तो हम अपनी अन्तर अनुभूति में उतर जाते हैं। अपने भीतर गहरे में उतरने वाला व्यक्ति ऐसी व्यवस्था कर सकता है कि वह महावीर, बुद्ध, जीसस या कृष्ण से संयुक्त हो जाए। संयुक्त होने का मतलब यह नहीं कि कृष्ण कहीं बैठे हैं जिनसे संयोग हो जाएगा। वह दिया तो टूट गया और वह ज्योति भी खो गई। लेकिन उस ज्योति ने जो अनुभव किया था उस अनुभव की सूक्ष्म तरंगे अस्तित्व की गहराइयों में आज भी सुरक्षित हैं। और उतनी गहराइयों का विशिष्ट ध्यान लेकर, महावीर का पूर्ण ध्यान लेकर अगर आप उन गहराइयों पर उतरें तो आपके लिए वे द्वार खुल जाते हैं जहाँ महावीर के अन्तरंग की सूक्ष्म तरंगे आपको उपलब्ध हो जाएँ और जब भी दुनिया में कभी इस तरह के अनुभवों से जुड़ा जाता है तो और कोई जोड़ने का रास्ता नहीं। उसमें सब आदमियों की किताबें खो जाएँ, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता।

एक द्वीप था—महाद्वीप अतलांतिस। लंबा समय हुआ वह डूब गया सागर में। अब वह पृथ्वी पर नहीं है, कभी था; और उसका कोई रिकार्ड नहीं रह गया क्योंकि रिकार्ड भी डूब गए उस द्वीप के साथ। जैसे कि एशिया डूब जाए, पूरा का पूरा एशिया। परिवर्त्तन हो, सागर हावी हो जाए और एशिया पूरा डूब जाए और एशिया के सारे रिकार्ड भी उसके साथ डूब जाएँ और आज तो यह है कि एशिया के कुछ रिकार्ड इंगलैंड में भी हैं, न्यूयार्क में भी हैं जो बच जाएँ—उस दिन तो यह भी सम्भव नहीं था, उस दिन तो हमें पता ही नहीं था दूसरे कुछ का। अतलांतिस महाद्वीप पूरा का पूरा डूब गया। कई करोड़ वर्ष पहले। लेकिन कुछ लोग जो गहराइयों में उतरते रहे वे निरन्तर इसकी खबर देते रहे कि एक महाद्वीप पूरा का पूरा डूब गया है और वे इसका रिकार्ड करते चले गये। इसके कोई रेकार्ड नहीं बचे। लेकिन इजिप्ट के कुछ फकीरों ने, तिब्बत के कुछ साधकों ने इस बात के रिकार्ड किये कि पूरा का पूरा महाद्वीप डूब गया है, और इसकी कुछ आन्तरिक खोज करने वाले लोग इसकी खोज में निरन्तर लगे रहे कि वह कैसा द्वीप था, कैसी उनकी व्यवस्था थी और आप जानकर हैरान होंगे कि कुछ लोगों ने निरन्तर मेहनत करके सिर्फ आन्तरिक अनुभव से उस महाद्वीप के सारे के सारे नक्शे निर्मित किए। उस जाति के लोगों के चेहरे, उस जाति का धर्म, उस जाति की मान्यताएँ, विचार, अनुभूतियां—

इनका सारा इन्तजाम किया। अगर एक व्यक्ति करे तो बड़ा मुश्किल है क्योंकि उसका पक्का कैसा माना जाए कि आदमी कल्पना नहीं कर रहा है। कल्पना कर सकता है। लेकिन अलग-अलग लोगों ने इसके प्रयोग किए और निकटतम सहमतियों पर पहुँच गए कि वह नक्शा ऐसा होगा। वैज्ञानिक तो पहले बिल्कुल इन्कार किए कि ये कभी हो ही नहीं सकता, इसका कोई रिकार्ड ही नहीं, ऐसा कोई द्वीप कभी रहा नहीं महाद्वीप पर, इसका कोई हिसाब ही नहीं कहीं। लेकिन ये लोग अपना काम करते चले गये और इन लोगों के दबाव से अन्ततः वैज्ञानिकों को भी चिन्तना करनी पड़ी कि कुछ हो सकता है। इसकी खोज-बीन वैज्ञानिक ढंगों से की गई और पता चला कि ऐसा एक महाद्वीप निश्चित ही डूबा था और वह आज समुद्र के तल में पड़ा हुआ है। और जहाँ इन साधकों (मिस्टिक्स) ने कहा था कि वह है, वह करीब-करीब वहाँ है। उस पर बड़ी गहराई की पानी की परते हैं। और इनने जो कहा था कि उसमें इस तरह के पहाड़ होने चाहिए, इन-इन रेखाओं पर, वहाँ पहाड़ भी हैं। इसका भी वैज्ञानिक अनुसन्धान चला और अतलांतिस पर बड़ी खोज चल रही है कि क्या वहाँ से कुछ उपलब्ध हो सकेगा ? लेकिन उसकी पहली खबर देने वाले वे लोग थे जिनको कोई मतलब न था। उसकी बात ही बिल्कुल झूठ समझी गई कि अतलांतिक महासागर के नीचे अतलांतिक डूबा हुआ है।

यह मैं इसलिए कह रहा हूं कि मेरा रास्ता शास्त्र के मार्ग से बिल्कुल नहीं है। और मेरी यह भी समझ है कि उस मार्ग जैसा कोई मार्ग भी नहीं है। इसलिए जो भी उस मार्ग पर पड़ गए है सिर्फ भटकने वाले सिद्ध हुए हैं। वह कहीं ले जाने वाले सिद्ध नहीं हुए हैं। सरल वही है। किताब पढ़ने से ज्यादा सरल और क्या हो सकता है हालांकि कुछ लोगों के लिए वह भी कठिन है। किताब पढ़ने से ज्यादा सरल बात और क्या हो सकती है ? लेकिन आकाशिक रिकार्ड, जिनकी मैं बात कर रहा हूं कि अस्तित्व की गहराइयों में अनुभूतियाँ सुरक्षित रह जाती हैं, वहाँ से उन्हें वापिस पकड़ा जा सकता है और वहां से उनसे पुनः जीवन सम्बन्ध स्थापित किए जा सकते हैं।

तो मैं भी जो चर्चा करूंगा इधर, उसकी शास्त्रानुसार ताल-मेल खोजने की कोशिश में मत पड़ना। उससे कोई सम्बन्ध ही नहीं। किसी और द्वार से ही मैं चेष्टा करता हूं और उस चेष्टा में जो कुछ मुझे दिखाई पड़ता है, वह मैं आपसे कहता चलूंगा। किन्तु जब तक कोई और लोग मेरे साथ उस प्रयोग को करने के लिए राजी न हों तब तक मेरी बात प्रामाणिक है या नहीं कुछ

निर्णय नहीं हो सकता। उसका कोई निर्णय का उपाय ही नहीं है दूसरा जब तक कि कुछ लोग मेरे साथ प्रयोग करने को राजी न हो जाएं। और तब मैं लिखकर दूं कि तुम्हें यह अनुभव होगा और उन्हें हो जाए तो फिर कुछ बात बने। उसी आशा में यह सारी बात मैं करूंगा, कि कुछ लोग निकल आएं शायद। विवाद का इसमें उपाय ही नहीं है कुछ। लेकिन विवाद किससे करना है। हो सकता है कुछ लोग इस प्रेरणा से भर जाएं और हिम्मत जुटाएं तो आविष्कार हो सकता है। और तभी कोई तोल हो सकती है कि जो मैं कह रहा हूं वह कहां तक, कितनी दूर तक, क्या अर्थ रखता है। अब इसमें उल्टे मामले आजाएंगे और आपके पास कोई उपाय नहीं होगा कि क्या करें।

पश्चिम में एक फकीर था गुरजिएफ। सारी ईसाइयत का इतिहास यह कहता है कि जूडास ने मरवाया जीसस को। जूडास ने जीसस को तीस रुपये पर बेचा और जूडास जीसस का दुश्मन था। सीधी बात है जो आदमी मरवा दे वह दुश्मन है। उसका शिष्य नहीं था? शिष्य तो था लेकिन दगाबाज! धोखा किया, और जीसस को बिकवा दिया। जीसस को सूली इसी वजह से लगी। उसने पकड़वाया रात को आकर। जीसस रात में ठहरे कहीं और जूडास लाया दुश्मन के सिपाहियों को और जीसस को पकड़वा दिया। जूडास के नाम से गंदा नाम ईसाइयत के इतिहास में दूसरा नहीं। यानी किसी आदमी को गाली देनी हो तो जूडास कह दो। इससे बड़ी कोई गाली नहीं है। जीसस को फांसी लगवाने से और बुरा क्या हो सकता है? लेकिन गुरजिएफ पहला आदमी है जिसने कहा कि यह बात सरासर झूठी है। जूडास दुश्मन नहीं है, जीसस का दोस्त है और पकड़वाने में जीसस का षडयंत्र है, जूडास का नहीं। जीसस चाहते हैं वे पकड़े जाएं और सूली पर लटकाए जाएं। जूडास उनका सेवक है इतना बड़ा सेवक कि जब जीसस उससे कहते हैं कि तुम मुझे पकड़वाते क्यों नहीं तो बाकी शिष्यों में किसी की हिम्मत नहीं है इस काम को करवाने की। लेकिन जूडास तो सेवक है। वह कहता है, "आपकी आज्ञा"। जूडास पकड़वा देता है।

तो गुरजिएफ ने सबसे पहले यह कहा कि मैं उन गहराइयों में इस बात की खोज कर आपको खबर देता हूं कि जूडास दुश्मन नहीं। और जूडास जैसा मित्र पाना मुश्किल है कि जो मरवाने तक की आज्ञा को चुपचाप शिरोधार्य कर ले और चला जाए। इसीलिए सारी ईसाइयत कहती है कि जूडास के पैर पड़े ईसा पकड़े जाने के पहले। ईसाइयत कहती है कि कितना अद्भुत था

जीसस कि जो पकड़ा रहा था उसके पैर छुए, पैर धोए। गुरजिएफ कहता है कि पैर पड़ने योग्य था वह जूडास। ऐसा आदमी खोजना मुश्किल है कि जिसने इतने पर भी इन्कार न किया जब जीसस ने कहा कि तुम मुझे पकड़वा दो, मेरी फांसी लगवानी जरूरी है। अगर फांसी नहीं लगती, जो मैं कह रहा हूं वह खो जाएगा। मेरी फांसी लगती है तो सील मोहर हो जाएगी। मेरी फांसी हो अब मेरा काम कर सकती है और कोई उपाय नहीं है। तो तुम मुझे फांसी लगवा दो। फांसी से बचाने वाला मित्र खोजना आसान है। फांसी लगवाने वाला मित्र खोजना बड़ा मुश्किल है।

इसलिए गुरजिएफ ने जब पहली दफा यह बात कही तो एक बड़ी मुश्किल का मामला हो गया। सारी ईसाइयत ने बड़ा विरोध किया कि यह बकवास है। यह कहता क्या है? यह तो हमारा सारा हिसाब ही पलट गया। यह तो बात ही ठीक नहीं। लेकिन एक आदमी हिम्मत जुटाकर नहीं आया कि आकर कोशिश करता कि यह आदमी कहता कहां से है। लेकिन मैंने प्रयोग किया और मैं हैरान हुआ कि वह ठीक कहता है। जूडास दुश्मन नहीं है। जूडास दोस्त है। वह फ़क़ीर ठीक कहता है। वह गलत कहता ही नहीं बिल्कुल। मगर बड़ी मुश्किल से खोज पाया होगा। तो मेरा कहना है कि शास्त्र खोज का रास्ता है ही नहीं बल्कि सबसे बड़ी रुकावट है क्योंकि मन को ऐसी बातों से भर देता है जोकि हो सकता है नहीं भी हो। और तब उनसे नीचे उतरना, उनसे विपरीत जाना बिना जाने मुश्किल हो जाता है, एकदम मुश्किल हो जाता है। और महावीर के सम्बन्ध में 'तो बहुत ज्यादा हुई है यह बात, हद की है बहुत ही हद की है। गुरजिएफ ने जो यह कहा तो उसको उसने नाम दिया—क्राइस्ट ड्रामा। उसने कहा कि यह सूली-बूली सब खेल है। यह सूली बिल्कुल खेल है और नाटक है पूरा रचा हुआ। जीसस ने इस ख्याल पर अपने मित्र को राजी कर लिया है और अपने आसपास की हवा को कि जो मैं कह रहा हूं अगर तुम्हें बहुत दूर तक पहुंचाना हो उसकी खबर, तो मेरी फांसी लगवा देना जरूरी है। नहीं तो यह बात खो जाएगी। मेरी फांसी ही मूल्यवान् बनेगी? इसलिए 'क्रास' मूल्यवान् बन गया। जीसस से ज्यादा मूल्यवान् 'क्रास' हो गया।

यह जो इस तरह की बहुत सी बातें हुई बहुत ही मुश्किल में डालती हैं। लेकिन, उनके सम्बन्ध में विवाद करने का कोई उपाय नहीं है। उनके सम्बन्ध में प्रयोग करने का ही उपाय है। इधर, इन दिनों में बहुत ऐसी बात होगी

जो शायद आपको पहली दफा हो ख्याल में आये, पहली दफा ही सुनें आप। लेकिन इस कारण न तो मैं कहता हूं कि मान लेना कि मैंने कही, और न कहता हूं कि इसलिए इन्कार कर देना कि पहली दफा किसी ने कही। अगर सच में ही प्रेम हो तो खोज पर निकलना'।[1]

---

१. इस खोज पर निकलने की प्रक्रिया अत्यन्त सुन्दर शब्दों में आचार्य जी ने दी है। यह प्रक्रिया उन्हीं के शब्दों में इसी ग्रन्थ के अन्त में परिशिष्ट रूप में दी है। प्रवचन के सभी श्रोता इस प्रयोग से लाभान्वित हुए थे। पाठक भी परिशिष्ट से उस प्रयोग की विधि को जानकर लाभ उठायें।

—सम्पादक

२
प्रश्नोत्तर

प्रश्न : आपने कहा कि आप महावीर के सम्बन्ध में अन्तर्दृष्टि से कुछ बतलाएंगे और यदि यह जानना हो कि जो आपने कहा है वह ठीक है या गलत है, दूसरा कोई आदमी भी उसी प्रकार का प्रयोग करके देख ले। मुझे लगता है कि दूसरा भी साधन है जिससे आपके कथन की प्रामाणिकता जांची जा सकती है। वह साधन यह है कि हममें से किसी के जीवन की कोई घटना जो अब तक साक्षात् जानना सम्भव नहीं है, आप यदि बतला दें तो यह प्रमाणित हो सकता है कि जिस प्रकार आप हमारे जीवन की कोई ऐसी घटना जान गए जो आपने कभी देखी-सुनी नहीं उसी प्रकार आप महावीर के पिछले जीवन को अन्तर्दृष्टि से जान सके होंगे। क्या आप इस प्रकार करना पसंद करेंगे ?

उत्तर : दो तीन बातें समझनी चाहिए। पहली बात यह है कि महावीर के बाह्य जीवन की घटना जानना एक बात है और महावीर के अन्तर्जीवन में क्या घटा, यह जानना दूसरी बात है। महावीर के बाह्य जीवन से मुझे प्रयोजन ही नहीं है; न जानने की उत्सुकता है। लेकिन अन्तर्जीवन में क्या घटा उससे प्रयोजन है, उत्सुकता भी है, उस तरह दृष्टि भी है। तुम्हारे अन्दर भी देखा जा सकता है। तुम्हारे बहिर्जीवन से मुझे कोई प्रयोजन नहीं है। सच बात तो यह है कि जिसे हम बाहर का जीवन कहते हैं वह एक स्वप्न से ज्यादा मूल्य नहीं रखता। हमें वह बहुत महत्त्वपूर्ण मालूम पड़ता है क्योंकि हम उस स्वप्न में ही जीते हैं जैसे रात कोई स्वप्न देखे, तो स्वप्न में उसे पता ही नहीं चलता कि यह सपना है। लगता है वह बिल्कुल सत्य है। जब तक जाग न जाए तब तक सपना सत्य ही मालूम पड़ता है। जागते ही सपना एकदम व्यर्थ हो जाता है।

तो मेरे लिये बाहर के जीवन का कोई अर्थ ही नहीं कि महावीर कब पैदा हुए, कब मरे; शादी की या नहीं की; बेटी पैदा हुई कि नहीं हुई। इन सबसे मुझे प्रयोजन ही नहीं, कोई अर्थ ही नहीं। हो तो ठीक, न हुआ हो तो ठीक। मैं तो यहां तक कहना चाहता हूं कि महावीर भी हुए हों तो ठीक, न हुए हों तो ठीक। यह महत्त्वपूर्ण ही नहीं है। जो महत्त्वपूर्ण है वह तो अन्तर में जो गति हुई, चेतना में जो विकास हुआ, जो रूपान्तरण हुआ वह महत्त्वपूर्ण है। वैसे तो किसी के अन्तर्जीवन में उतरा जा सकता है लेकिन तब भी तुम जांच नहीं कर पाओगे क्योंकि तुम खुद ही अपने अन्तर्जीवन से परिचित न हो। अगर फिर भी मेरी बात की जांच करनी हो तो तुम्हें अपने अन्तर्जीवन में उतरना पड़ेगा।

दूसरी बात यह है कि तुम्हारे बहिर्जीवन के बारे में यदि कोई कुछ घटनाएं बताये तो इससे यह पक्का नहीं होता कि वह महावीर के बारे में जो बताएगा वह ठीक होगा। क्योंकि तुम मौजूद हो और तुम्हारे बहिर्जीवन की घटनाओं में उतरना बड़ी साधारण-सी कला की बात है जो एक साधारण-सा टेलिपैथिस्ट भी बता सकेगा, एक साधारण सा ज्योतिषी भी बता सकेगा। वह चार आने लेकर भी बता सकेगा। तो बहिर्जीवन का कोई मूल्य नहीं, अगर कोई बता भी दे तुम्हारे बहिर्जीवन को तो उससे कुछ प्रामाणिकता नहीं होती कि वह महावीर के अन्तर्जीवन के बारे में जो कहेगा वह कोई अर्थ रखता है। असल में बहिर्जीवन का कोई ऐसा सम्बन्ध ही नहीं है अन्तर्जीवन से, और इसीलिए यह समझने जैसा है कि क्राइस्ट का बाहरी जीवन एक है, महावीर का बाहरी जीवन दूसरा है, बुद्ध का तीसरा है; फिर भी अन्तर्जीवन एक है और बहिर्जीवन को देखने वाले लोग इसलिए मुश्किल में पड़ जाते हैं।

जिसने महावीर के बहिर्जीवन को पकड़ लिया है; बुद्ध का जीवन समझने में वह असमर्थ हो जाएगा। क्योंकि जो महावीर के बहिर्जीवन में है, वह सोचता है कि अन्तर्जीवन से अनिवार्य रूप से बंधा हुआ है। जैसे वह देखता है कि महावीर नग्न खड़े हैं तो वह सोचता है कि जो परम ज्ञान को उपलब्ध होगा वह नग्न खड़ा होगा। और यदि बुद्ध वस्त्र पहने हुए हैं तो वह कैसे परम ज्ञान को उपलब्ध होंगे। बहिर्जीवन की पकड़ के कारण ही अन्तर्जीवन के सम्बन्ध में इतनी खाइयां खड़ी हो गई हैं। मुझे तो उससे प्रयोजन ही नहीं है।

तीसरी बात यह कि मैं ठीक कह रहा हूं महावीर के सम्बन्ध में या नहीं, इस बात की जांच का भी कोई अर्थ नहीं है। अर्थ केवल एक है कि वैसे अन्त-

जीवन में उतरा जा सकता है या नहीं। मेरी इस जांच-पड़ताल का भी कोई अर्थ नहीं है क्योंकि मैं इसलिए कह ही नहीं रहा हूं कि मैं सही हूं या गलत हूं, या कुछ सिद्ध किया जाए। कह इसलिए रहा हूं कि तुम जहां हो वहां से सरक सको, और किसी दूसरी दिशा में गति कर सको। इसलिए यदि सारी बातचीत तुम्हें अन्तर्दशा में गति देने वाली बन जाती है तो मैं मान लूंगा कि काफी प्रमाण हो गया है। और अगर नहीं बनती है और सब तरह से प्रमाणित हो जाता है कि जो मैंने कहा वह ठीक था तो मैं मानूंगा कि बात अप्रामाणिक हो गई। यानी, मेरे लिए अर्थवत्ता इसमें है कि महावीर के जीवन के सम्बन्ध में मैं जो कहूं वह किसी रूप में तुम्हारे जीवन को रूपान्तरित करने वाला बनता हो। न बनता हो तो वह कितना भी सही हो गलत हो गया और बनता हो तो सारी दुनिया सिद्ध कर दे कि वह गलत है, तो मेरे लिए वह गलत न रहा। इसका मतलब यह है; और इसका समझना बहुत उपयोगी होगा, और यही वजह है कि जो लोग जानते रहे हैं उन्होंने इतिहास लिखने पर जोर नहीं दिया। इतिहास की जगह उन्होंने पुराण (मिथ) पर जोर दिया। एक दुनिया है, लोग हैं, जो इतिहास पर जोर दे रहे हैं, एक दूसरी दुनिया है, दूसरा जगत् है, कुछ थोड़े से लोगों का, जो इतिहास पर जोर नहीं देते, जो पुराण पर जोर देते हैं। और दोनों का अन्तर समझना उपयोगी होगा।

इतिहास का आग्रह है कि बाहर घटी घटनाएं तथ्य (फैक्ट्स) की तरह संगृहीत की जाएं। पुराण इस बात पर जोर देता है कि बाहर की घटनायें तथ्य की तरह इकट्ठी हों या न हों, निष्प्रयोजन हैं। वे इस भांति इकट्ठी हों कि जब कोई उनसे गुजरे तो उनके भीतर कुछ घटित हो जाएं। इन दोनों बातों में दृष्टि अलग हैं। तथ्य और इतिहास को सोचने वाला महावीर पर जोर देगा, क्राइस्ट पर जोर देगा—कैसा जीवन! पुराणकथा (मिथ) की दृष्टि वाला व्यक्ति 'तुम' पर जोर देगा कि महावीर का कैसा जीवन कि 'तुम' बदल जाओ। इसमें बुनियादी फर्क पड़े हैं।

यह हो सकता है कि पुराण (मिथ) किसी दृष्टि से अप्रामाणिक मालूम पड़े। जैसे जीसस का सूली पर चढ़ना और फिर तीन दिन बाद जीवित हो जाना। ऐतिहासिक तथ्य की तरह शायद इसे प्रमाणित नहीं किया जा सकता कि ऐसा हुआ हो—जैसे जीसस का कुंआरी मां से पैदा होना। ऐतिहासिक तथ्य

की तरह प्रमाणित नहीं किया जा सकता कि कुंआरी लड़की से कोई पैदा हो सकता है, जिससे पुरुष का सम्पर्क न हुआ हो। बाहर की दुनिया की यह घटना ही नहीं है। बाहर की दुनिया में किसी कुंआरी लड़की से कोई लड़का कैसे पैदा होगा। लेकिन जिन्होंने इस पर जोर दिया है, उनकी दृष्टि बड़ी गहरी है। वे भीतर की घटना को ही कह रहे हैं कि जीसस जैसा बेटा अत्यन्त कुंआरी आत्मा से ही जन्म ले सकता है, अत्यन्त 'इनोसेण्ट', भोली। कुंआरा शरीर नहीं, कुंआरी आत्मा—कुंआरे चित्त से। और यह भी हो सकता है कि शरीर कुंआरा हो और चित्त बिल्कुल कुंआरा न हो। इससे उल्टा भी हो सकता है कि शरीर कुंआरा न हो और चित्त बिल्कुल कुंआरा हो। जीसस जैसे व्यक्ति का जन्म वर्जिन गर्ल से ही हो सकता है, कुंआरी लड़की से ही हो सकता है। यह इतिहास में नहीं है। लेकिन इतिहास अगर सिद्ध भी कर दे तो नुकसान ही पहुंचाएगा। यानी मैं मानूंगा कि यह बात अप्रमाणित ही रहनी चाहिए कि जीसस जैसे व्यक्ति का जन्म एक कुंआरे मन से होता है। और यदि किसी मां को जीसस जैसे बेटे को जन्म देना हो तो उसके चित्त का अत्यन्त कुंआरा होना जरूरी है और कुंआरेपन का कोई सम्बन्ध शरीर से है ही नहीं। शरीर तो यन्त्र है। कुंआरापन तो आन्तरिक मनोदशा है।

अब जैसे, महावीर के पैर को सर्प काट लेता है और दूध बहता है। इसे किसी भी ऐतिहासिक की तरह से, वैज्ञानिक की तरह से सिद्ध नहीं किया जा सकता। करने वाले करते हों, पर गलत करते हैं। वे महावीर को व्यर्थ करवा देंगे। और जो बात है, जो मिथ है, जो गाथा है, वह खो जाएगी। बात बहुत और है। इस बात में किसी चित्त भाव पर ही ख्याल है। सर्प भी काटे, जहर भी महावीर को कोई दे, मारने को भी कोई आ जाए तो भी महावीर का मन मां से भिन्न नहीं हो पाता है। दूध निकलने का कुल मतलब इतना है कि महावीर का मन मातृत्व से भरपूर है, मां से अन्यथा वह नहीं हो सकते। उनका होना ही मातृत्वमय है। उनके भीतर से कुछ और नहीं निकल सकता है सिवाय दूध के। लेकिन, न तो शारीरिक अर्थों में, न तथ्य और इतिहास के अर्थों में, इस बात का कोई मूल्य है। अब, जैसे हम, जो भी हिसाब करने जायेंगे—और हम दोनों तरफ एक जैसे लोग होते हैं—कोई कहेगा यह बिल्कुल सच है; कोई कहेगा यह बिल्कुल गलत है। महावीर के पैर से दूध कैसे निकल सकता है ? बात ही झूठी है। और दूसरे व्यक्ति यह सिद्ध करने की कोशिश करेंगे किसी तरकीब से कि पैर से दूध निकल सकता है।

एक मुनि को मैं सुनने गया। वह मुझसे पहले बोले कि मैंने यह वैज्ञानिक रूप से सिद्ध कर दिया है कि महावीर के पैर से दूध निकला। कैसे सिद्ध कर दिया है ? तो उन्होंने कहा : ऐसे सिद्ध कर दिया है कि जब मां के स्तन से दूध निकल सकता है, यानी शरीर के किसी अंग से दूध निकल सकता है तो पैर से क्यों नहीं निकल सकता है ? तो मैंने उनसे पूछा कि इसके दो अर्थ हुए। एक अर्थ यह हुआ कि महावीर को पुरुष न माना जाए क्योंकि पुरुष के स्तन से भी दूध निकलना मुश्किल है, पैर का तो मामला बहुत दूर है। और अब तक किसी स्त्री के पैर से भी दूध नहीं निकला। दूसरी बात यह मानी जाए कि स्तन का जो यन्त्र है वह महावीर के पैरों में लगा हुआ है जो स्त्री के स्तन में होता है। महावीर के पैर में वैसी यांत्रिक व्यवस्था है जिससे खून दूध में रूपान्तरित होता है। लेकिन मैंने उनसे कहा कि ये बातें अगर प्रमाणित भी हो जाएं कि ऐसा था कि महावीर के पैर स्तन का काम कर रहे थे तो भी जो मतलब था वह खो गया, महावीर का जो मूल्य था वह गया। अगर किसी के भी पैर स्तन का काम कर रहे हों तो उनसे दूध निकल आयेगा। इसमें फिर महावीर का कुछ होना न रहा। और यदि मां के स्तन से दूध निकलता है तो यह कोई बड़ी खूबी की बात नहीं है। यह आन्तरिक बात है। अगर सिद्ध भी कर दोगे तो महावीर को पोंछ डालोगे। उनकी जो बात थी वह खो जाएगी। वह बात कुल इतनी है कि महावीर का प्रत्युत्तर मां का उत्तर होने वाला है। चाहे तुम कुछ भी करो, चाहे तुम जहर डालो, शत्रुता करो, चोट पहुँचाओ वहां से प्रेम और करुणा ही बह सकती है।

अब दूध का मतलब क्या होता है। दूध का मतलब है जो तुम्हें पोषण दे सके; और कुछ मतलब नहीं होता। महावीर को चाहे तुम गाली दो, महावीर जो भी करेंगे वह तुम्हारा पोषक ही सिद्ध होगा, वह तुम्हें पोषण ही देगा। हमें कोई गाली दे, हम जो करेंगे वह घातक सिद्ध होगा उसके लिए। और हम जो करेंगे दो ही बातें कर सकते हैं या तो वह घातक सिद्ध हो या पोषक सिद्ध हो। महावीर से जो प्रत्युत्तर निकलेगा, जो रिऐक्शन होगा महावीर का, वह पोषक सिद्ध होने वाला है। इतनी भर बात है उसमें। लेकिन तथ्य में जाने पर यह भी जरूरी नहीं कि किसी दिन सर्प ने काटा ही हो। यह भी जरूरी नहीं कि पैर से दूध निकला हो। जरूरी केवल इतना है कि महावीर के पूरे जीवन को जिसने भी अनुभव किया है उसे ऐसा लगा है कि इसे अगर हम कविता में कहें तो ऐसे कह सकते हैं कि सर्प भी काटे महावीर को, तो दूध ही

निकल सकता है। लेकिन इसलिए मुझे कोई प्रयोजन नहीं है। यह मैं सिद्ध करने जाऊंगा ही नहीं। सिद्ध कर भी सकता हूं तो भी सिद्ध करने नहीं जाऊंगा; क्योंकि मेरी दृष्टि ही यह है कि महावीर को प्रसंग बना कर 'तुम' कैसे गति कर सकते हो। और यह तर्क हो सकता है कि बहुत कुछ जो कहा जाता है वह छोड़ देना पड़े; बहुत कुछ जो नहीं कहा जाता है, उसे खोज लेना पड़े। और, हम अब एक दृष्टि लेकर प्रवेश करते हैं और अन्तस् की खोज में चलते हैं? कि कठिनाई क्या है?

समझो कि मैं एक बहुत बहादुर आदमी के सम्बन्ध में कहूं कि यह बहुत डरपोक है तो शायद वह भी मुझसे पहली बार राजी न हो कि आप यह मेरे सम्बन्ध में क्या कह रहे हैं? मेरे पास प्रमाण पत्र हैं बहादुरी के, सर्टिफिकेट हैं। मैं सिद्ध कर सकता हूं कि मुझसे बड़ा कोई बहादुर नहीं है। महावीर-चक्र है मेरे पास। युद्ध के मैदान पर कभी पीछे नहीं लौटा हूं। लेकिन ये प्रमाण-पत्र कुछ गलत नहीं करते हैं। फिर भी यह हो सकता है कि वह भीतर से एक भयभीत आदमी हो। और ऐसा हुआ है कि जो व्यक्ति अन्तस् चेतन में भयभीत होता है, वह बाहर के कृत्यों में निर्भय सिद्ध करने की कोशिश में लगा रहता है, यानी वह बाहर के कृत्यों में अपने को निर्भय सिद्ध करने के जो उपाय कर रहा है, वह उपाय कर ही इसलिए रहा है कि भीतर जो उसका भय है उसे भूल जाए और मिट जाए।

अब एक व्यक्ति मेरे पास आया जिसको कोई भी नहीं कह सकता कि वह भयभीत होगा। शरीर से बलिष्ठ है; हर तरह के संघर्षों से गुजरा है, जेलें काटी हैं, दबंग है; और उसके सामने खड़ा हो जाए तो आदमी हिल जाए। उस आदमी ने मुझसे कहा कि मैं इतना डरता हूँ कि जब मैं बोलने खड़ा होता हूँ तो मेरे पैर काँपने लगते हैं और मुझे लगता है कि आज मेरे मुख से शब्द निकलेगा, या नहीं। निकल जाता है, यह दूसरी बात है परन्तु सदा भय बना रहता है। अब इस आदमी को खुद ही ख्याल आ जाए तो ठीक है। नहीं तो इससे कहा जाए कि ऐसा है तो बहुत मुश्किल हो जाए। अब अन्तर्जीवन के तथ्य हमें ही ज्ञात नहीं। और यदि मैं कहूँ आपके सम्बन्ध में यह अन्तर्जीवन की बात है तो हो सकता है कि आप सबसे पहले इन्कार करने वाले व्यक्ति हों। और यह बात ध्यान रहे कि आप जितने जोर से इन्कार करेंगे उतने ही जोर से मेरे लिए सही होगा कि यह तथ्य आप के अन्दर है क्योंकि जोर से इन्कार इसीलिए आता है। अगर वह तथ्य न हो तो शायद आप

कहें : 'मैं सोचूंगा, मैं खोजूंगा', लेकिन यदि वह तथ्य है, जैसे भयभीत आदमी बाहर से बहादुर बनने की कोशिश में लगा है तो उससे यह कहने पर भी कि तुम्हारे अन्दर भीरुता है, वह इतने जोर से इन्कार करेगा कि उसका कोई हिसाब नहीं।

परन्तु मुझे बाहर के तथ्यों से कोई प्रयोजन ही नहीं। इसलिए उस तरह की प्रामाणिकता में जाने की मैं कोई तैयारी नहीं दिखाऊंगा। मैं तो एक ही प्रामाणिकता मानता हूं कि जो मैं कह रहा हूं वह जिन प्रयोगों से मुझे दिखाई पड़ता है कि ऐसा है उन प्रयोगों में से कोई भी गुजरने को तैयार हो। अब जैसे समझ लें एक आदमी है जिसने पहली दफा दूरबीन बनाई जिससे दूर के तारे देखे जा सकते हैं। दूरबीन बनी। पहले आदमी ने जिसने दूरबीन बनाई मित्रों को आमंत्रित किया कि तुम आओ कि मैं तुम्हें ऐसे तारे दिखला देता हूं जो तुमने कभी नहीं देखे। उन्होंने दूरबीन से देखने से इन्कार कर दिया कि हो सकता है कि तुम्हारी दूरवीन में कुछ बात हो जिससे कुछ तारे दिखाई पड़ते हैं, जो नहीं हैं। तुम खुली आंख से कुछ ऐसी बातें बताओ जो दूर की हैं फिर हम मानें कि तुम्हारी दूरबीन की कोई बात हो सकती है। पहले खुली आंख से कुछ बताओ जो कि दूर का है, जो कि हमको नहीं दिखाई पड़ता परन्तु तुमको दिखाई पड़ रहा हो फिर हम दूरबीन से झांकें। उन्होंने दूरबीन से झांका तो उन्होंने कहा कि इसमें कुछ पक्का नहीं होता है। हो सकता है यह दूरबीन की ही करतूत हो। मेरी बात आप समझे न? लेकिन वह आदमी क्या कर सकता है, इसके सिवा और क्या उपाय है। वह तो यही कह सकता है कि तुम भी दूरबीन बना लो जिसमें कि तुम्हें यह पक्का हो जाए। तुम अपनी दूरवीन बना लो और तुम अपनी दूरवीन से झांको। और मामला इतना जटिल है कि जरूरी नहीं कि मैं अन्तस् प्रयोगों के लिए कहूं तो तुम्हें ठीक वही दिखाई पड़े जो मुझे दिखाई पड़ता है। लेकिन एक बात पक्की है कि तुम्हें जो भी दिखाई पड़े तुम इतना अनुभव कर सकोगे कि जो कुछ मैं कह रहा हूं वह दिखाई पड़ रहा होगा। दूसरे तुम यह भी अनुभव कर सकोगे कि जो कुछ मैं कह रहा हूं उसके पीछे जो दृष्टि है, वह तुम्हें कुछ भी दिखाई पड़े तो फौरन तुम्हारी समझ में आ जाएगा कि वह दृष्टि क्या है और यह भी तुम्हें दिखाई पड़ेगा कि महावीर मेरे लिए गौण हैं। न क्राइस्ट का कोई मूल्य है, न बुद्ध का कोई मूल्य है। मूल्य है हमारा जो भटक रहे हैं, और इनको किसी तरफ से, किसी कोण से एक चीज दिखाई पड़ जाए जो इनकी भटकन को मिटा दे, और एक दिन ये वहां पहुंच जाएं जहां कि कोई भी महावीर कभी पहुंचता रहा है।

इसलिए मेरा प्रयोजन ही भिन्न है। और एक ही उपाय है उस प्रयोजन का—क्योंकि मेरा प्रयोजन तभी सिद्ध होता है, नहीं तो सिद्ध ही नहीं होता—अगर मैं यह बता भी दूं कि तुम कब पैदा हुए, तुम्हारी कब शादी हुई, कब लड़का पैदा हुआ तो भी मेरा प्रयोजन सिद्ध नहीं होता, असिद्ध होता है क्योंकि फिर मैं तुम्हारे बहिर्जीवन पर ही जोर देता हूं और तुम्हारी दृष्टि को मैं फिर भी अन्तर्मुखी नहीं कर पाता। और तुम बहिर्मुखी जीवन दृष्टि को ही पुनः पुनः सिद्ध कर लोगे और फिर भीतर उतरने से रह जाओगे। मेरा कहना यह है कि अगर मेरी बातचीत से तुममें बेचैनी पैदा हो जाए और ऐसा लगने लगे कि पता नहीं यह बात सच है या झूठ, तो तुम मुझसे प्रमाण मत पूछो। फिर तुम प्रमाण की तलाश में निकल जाओ खुद। अगर बात झूठ भी हुई तो भी तुम वहां पहुंच जाओगे जहां पहुंचना चाहिए। और बात सही भी हुई तो भी तुम वहां पहुंच जाओगे। और जिस दिन तुम वहां पहुंच जाओगे तो जरूरी नहीं कि तुम लौटकर मुझसे कहने आओगे। जैसे समझ लो कि इस कमरे में आग नहीं लगी है और मैं तुमसे चिल्लाकर कहता हूं कि इस कमरे में आग लगी हुई है और मर जाएंगे अगर हम भीतर रहते हैं, चलो बाहर! चलो! और तुम कहो कि कहीं कोई ताप नहीं लगता, कोई लपट नहीं दिखाई पड़ती। और मैं तुमसे कहता हूं कि तुम बस बाहर चले चलो तो तुमको पता चल जाएगा कि मकान में आग लगी थी। जब तक तुम भीतर हो कुछ दिखाई नहीं पड़ेगा, और तुम बाहर पहुँच जाओ और सच में ही कहो कि मकान में आग नहीं लगी थी। लेकिन बाहर जाकर तुम देखोगे कि सूरज निकला है, जो तुमने कभी नहीं देखा, और ऐसे फूल खिले हैं जो तुमने कभी नहीं देखे और ऐसा आनन्द है जो तुमने कभी नहीं अनुभव किया तो तुम मुझे धन्यवाद दोगे, तुम मुझे कहोगे कि कृपा की, कह दिया कि मकान में आग लगी है। क्योंकि हम मकान की भाषा ही समझ सकते थे; सूरज और फूल की भाषा हम समझ ही नहीं सकते थे क्योंकि सूरज और फूल हमने देखा ही नहीं था। अगर तुमने कहा भी होता कि बाहर सूरज है और फूल हैं, आनन्द की वर्षा हो रही है तो हम कहते कि हम कुछ समझे ही नहीं। कैसा बाहर! कैसा सूरज! कैसा फूल! हम तो एक ही भाषा समझ सकते थे मकान की। और हम यही समझ सकते थे कि अगर मकान में आग लगी हो तो ही बाहर जाया जा सकता है। नहीं तो जाने की कोई जरूरत नहीं। अगर मकान सुरक्षित है तो बाहर जाने की क्या जरूरत है? हो सकता है कि बाहर जाकर तुम देखोगे कि मकान में आग नहीं लगी है लेकिन फिर भी तुम मुझे धन्यवाद दोगे कि ठीक कहा कि मकान में आग लगी है, नहीं तो हम

बाहर कभी न आ पाते। और अब उस मकान के भीतर कभी न जाएंगे। यद्यपि उस मकान में आग नहीं लगी है लेकिन मकान में होना ही आग में होना है। मेरा मतलब समझे न तुम ? यानी यह जरूरी नहीं है तुम बाहर से मुझसे यही कहो कि मकान में आग नहीं लगी है लेकिन मकान में होना ही आग में होना है, क्योंकि हम चूके जा रहे थे, वह सब जला जा रहा था जीवन, चूका जा रहा था सब कुछ जो मिल सकता था। इसलिए बहुत सी बातें हैं और जिसको आम तौर पर हम प्रमाण करते हैं उस पर मेरी कोई श्रद्धा नहीं, किसी तरह के प्रमाण पर। प्रमाण एक ही है कि तुम पहुंच जाओ। और तुम पहुंच जाओगे तो इन्कार नहीं कर सकते; इतना मैं वादा करता हूं। यानी तुम पहुंच जाओ तो मैं जो कहता हूं उससे इन्कार नहीं कर सकते, इतना मैं वादा करता हूं।

प्रश्न : आपने रात को शास्त्रों के बारे में कुछ बात कही थी। मुझे ऐसा लगता है कि आप जो भी कुछ कहते हैं वह शास्त्रों में भी उपलब्ध हो सकता है। और आप जो कुछ कह रहे हैं वह भी स्वयं में एक शास्त्र ही बनते चले जा रहे हैं। और जो बात आप शास्त्रों के सम्बन्ध में कह रहे हैं वह आपकी कही हुई बातों पर भी ज्यों की त्यों लागू हो जाएगी। जो देखने वाला है उसे इसमें भी दीखेगा, जो नहीं देखने वाला है उसे इसमें भी नहीं दीखेगा। जो देखने वाला है उसे प्राचीन शास्त्रों में भी दीख ही जाता है और न देखने वाले को उनमें भी नहीं दीखता। फिर उनकी निन्दा का क्या प्रयोजन ?

उत्तर : उनकी निंदा मैं करता ही नहीं हूं। शास्त्र की निंदा मैं नहीं करता हूं क्योंकि शास्त्रों को मैं निन्दा योग्य भी नहीं मानता। प्रशंसा के योग्य मानना तो दूर, निन्दा योग्य भी नहीं मानता। क्योंकि निन्दा भी हम उसकी करते हैं जिससे कुछ मिल सकता होता और नहीं मिला। शास्त्र से मिल ही नहीं सकता। उसकी निन्दा का कोई अर्थ नहीं है क्योंकि शास्त्र से न मिलना शास्त्र का स्वभाव है यानी यह शास्त्र का स्वभाव है कि उससे सत्य नहीं मिल सकता। मिल जाए तो आश्चर्य हो जाएगा; असम्भव घटना हो जाएगी। मैं शास्त्र की निन्दा नहीं करता हूं कि शास्त्र से नहीं मिलना है। जैसे समझिए कि एक आदमी एक रास्ते से जा रहा है और किसी जगह पहुंचना चाहता है और हम उससे कहते हैं कि यह रास्ता वहां नहीं जाता है। इसका मतलब यह नहीं कि हम उस रास्ते की निन्दा करते हैं। इसका कुल मतलब इतना है कि हम यह कहते हैं कि वह जहां जाना चाहता है वहां वह रास्ता नहीं जाता। हम यह भी नहीं

कहते कि यह रास्ता कहीं नहीं जाता है। यह रास्ता भी कहीं जाता है। लेकिन जहां वह जाना चाहता है वहां नहीं जाता बल्कि उससे उल्टा जाता है। प्रज्ञा की खोज में निकले हुए व्यक्ति को शास्त्र व्यर्थ है क्योंकि शास्त्र का रास्ता प्रज्ञा को नहीं जाता, पांडित्य को जाता है। और पांडित्य प्रज्ञा से बिल्कुल उल्टी चीज है। पांडित्य है उधार और प्रज्ञा है स्वयं की। और ऐसा असम्भव है कि उधार सम्पदा को कोई कितना ही इकट्ठा कर ले तो वह स्वयं की सम्पदा बन जाए। जब मैं यह कहता हूं कि शास्त्र से नहीं जाया जा सकता तो भूल कर भी मत सोचना कि मैं शास्त्र की निन्दा करता हूं।

मैं तो केवल शास्त्र का स्वभाव बता रहा हूं और यदि शास्त्र का स्वभाव ऐसा है तो मेरे शब्दों को मानकर जो शास्त्र निर्मित हो जाएंगे उनका स्वभाव भी ऐसा ही होगा, यानी उनसे कभी कोई प्रज्ञा को नहीं जान सकेगा। अगर मैं ऐसा कहूं कि दूसरों के शास्त्र से कोई प्रज्ञा को नहीं जानता और मेरे शब्दों पर जो शास्त्र बन गया है उससे कोई प्रज्ञा को जानेगा तब तो गलत बात हो गई। तब तो मैं किसी भी शास्त्र की निन्दा कर रहा हूं और किसी के शास्त्र की प्रशंसा कर रहा हूं। नहीं, मैं तो शास्त्र मात्र का स्वभाव बता रहा हूं। वह चाहे महावीर का हो, चाहे बुद्ध का हो, चाहे कृष्ण का हो, चाहे मेरा हो, चाहे तुम्हारा हो। इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। किसी का भी शास्त्र सत्य ले जाने वाला नहीं है। हां, लेकिन दूसरी बात सच है कि अगर दिखाई पड़ जाए किसी को तो शास्त्र में दिखाई पड़ सकता है। लेकिन दिखाई पहले पड़ जाए। उसका मतलब यह हुआ कि शास्त्र किसी को दिखला नहीं सकता है लेकिन जिसको दिखाई पड़ता है उसे शास्त्र में भी दीख सकता है। लेकिन दिखाई पहले पड़ जाए तो फिर शास्त्र की क्या बात है, उसे पत्थर, कंकड़, दीवार, पहाड़ सबमें दिखाई पड़ता है। यानी यह सवाल फिर शास्त्र का नहीं रह जाता। जिसे दिखाई पड़ गया उसे सबमें दिखाई पड़ना है। तो उसे शास्त्र में क्यों दिखाई पड़ेगा ? अब शास्त्र में उसे नहीं दिखाई पड़ेगा जो उसे दिखाई पड़ रहा है। और कल तक चूंकि उसे नहीं दिखाई पड़ रहा था, इसलिए शास्त्र अन्धे थे क्योंकि उसके अन्धकार को भी तो अन्धकार ही दिखाई पड़ रहा था।

मेरा मतलब यह है कि शास्त्र में भी हमें वही दिखाई पड़ सकता है, जो हमें दिखाई पड़ रहा है। शास्त्र उससे ज्यादा नहीं दिखला सकता। इसलिए शास्त्र में हम वह नहीं पढ़ते जो कहने वाले या लिखनेवाले का इरादा रहा होगा। शास्त्र में हम वह पढ़ते हैं जो हम पढ़ सकते हैं। शास्त्र किसी भी अर्थ में हमारे

ज्ञान की वृद्धि नहीं करता। शास्त्र उतना ही बता देता है जैसे समझ लें आइना है। आइना में भी हमें वही दिखाई पड़ जाता है, जो हम हैं। आइना इसमें कोई वृद्धि नहीं देता। और कोई यह सोचता हो कि कुरूप आदमी आइने के सामने खड़ा होकर सुन्दर हो जाएगा तो वह गलती में है, वह एकदम ग़लती में है। कोई यदि यह सोचता है कि कोई अज्ञानी आदमी शास्त्र के सामने खड़ा होकर ज्ञानी हो जाएगा तो वह गलती में है। हां, ज्ञानी को शास्त्र में ज्ञान मिल जाएगा, अज्ञानी को अज्ञान ही दिखता रहेगा। और मजा यह है कि ज्ञानी शास्त्र में देखने नहीं जाता क्योंकि जब खुद ही दिख गया है तो उसे और किसी दूसरे से क्या देखना है। और अज्ञानी शास्त्र में देखने जाता है। अक्सर ऐसा होता है कि सुन्दर आदमी दर्पण से मुक्त हो जाता है और कुरूप आदमी दर्पण से आस-पास घूमता रहता है। वह जो कुरूपता का बोध है वह किसी भांति दर्पण से पक्का कर लेना चाहता है कि मिट जाए, नहीं है अब। सुन्दर दर्पण से मुक्त हो जाता है। असल में हम जितनी बार दर्पण को देखते हैं उतनी ही बार हमें कुरूपता का बोध होता है और किसी भांति पक्का करना चाहते हैं कि, दर्पण यह कह दे कि अब हम कुरूप नहीं हैं। विश्वास में आ जाए कि हम अब कुरूप नहीं हैं। लेकिन घड़ी भर बाद फिर दर्पण देखना पड़ता है। क्योंकि कुरूपता का बोध है वही दर्पण में दिखाई पड़ता है बार-बार। शास्त्र में वही दिखाई पड़ता है, जो हम हैं।

लेकिन यह बात ठीक है कि आज नहीं, कल मेरे शब्द इकट्ठे हो जाएंगे, और शास्त्र बन जाएंगे और जिस दिन मेरे शब्द शास्त्र बन जाएं उसी दिन उनकी हत्या हो गई। फिर भी, ध्यान रहे कि मैं किताब का विरोधी नहीं हूं, शास्त्र का विरोधी हूं। इन दोनों में फर्क करता हूं। किताब का दावा नहीं सत्य देने का। किताब का दावा है सिर्फ संग्राहक होने का। किसी ने कुछ कहा था उसे संग्रह किया गया। शास्त्र का दावा सिर्फ संग्राहक होने का नहीं; शास्त्र का दावा सत्य देने का है। शास्त्र का दावा यह है कि मैं सत्य हूं। जो किताब यह दावा करती है कि मैं सत्य हूं, वह शास्त्र बन जाती है। किताब सिर्फ केवल विनम्र संग्रह है, दावा नहीं करती। जैसा कि मैंने कल कहा था कि लाओत्से ने किताब लिखने से पहले लिखा कि जो कहा जाएगा वह सत्य नहीं होगा, इसे समझकर किताब को पढ़ना। शास्त्र नहीं बन रही है यह किताब; यह विनम्र किताब है, यह सिर्फ संग्रह है और इस किताब को यदि कोई शास्त्र बनाता है तो खुद ही जिम्मेदार है। यह किताब उस पर बोझ बनने की तैयारी में नहीं

थी; यह किताब उसको मुक्त करने की तैयारी में थी। पूरा इसका भाव यही था।

तो मेरी सारी बातें ऐसी हैं कि अगर उनको काट पीट न किया जाए तो शास्त्र बनाना मुश्किल है—ज्यादा से ज्यादा किताब बन सकती है। लेकिन शास्त्र बनाए जा सकते हैं। शास्त्र बनाना कठिन नहीं है। क्योंकि शास्त्र कोई बोलता है कुछ, इससे नहीं बनते। कोई पकड़ता है, इससे बनते हैं। यानी शास्त्र महावीर के बोलने से नहीं बनता गया। गणधरों के पकड़ने से बना है। और पकड़ने वाले हैं तो पकड़ने वाला पकड़ ही न पाए, इसका सारा उपाय हमारी वाणी में होना चाहिए। यानी वह वाणी ऐसी कांटों वाली हो, ऐसी अंगारों से भरी हो कि पकड़ना मुश्किल हो जाए। लेकिन अंगारे भी बुझ जाते हैं, एक न एक दिन राख हो जाते हैं और पकड़ने वाले भी उन्हें मुट्ठी में पकड़ लेते हैं। इसका मतलब सिर्फ यह हुआ कि बार-बार ज्ञानी को पुराने ज्ञानियों की दुश्मनी में खड़ा होना पड़ता है। यह बड़ा उल्टा काम है। निरन्तर ज्ञानियों को पुराने ज्ञानियों की दुश्मनी में खड़ा होना पड़ता है। और यह दुश्मनी नहीं है; इससे बड़ी कोई मित्रता नहीं हो सकती क्योंकि इस भांति जो राख पकड़ ली गई है, उसको छुड़ाने का कोई रास्ता नहीं होता। तो अगर जो महावीर को प्रेम करता है उसे जैनियों के खिलाफ खड़ा होना ही पड़ेगा। अगर महावीर भी लौट आएं तो उन्हें भी खड़ा होना पड़ेगा क्योंकि जो उन्होंने दिया था वह जीवित अंगारा था; वह पकड़ा नहीं जा सकता, सिर्फ किया जा सकता, समझा जा सकता था। फिर अब राख रह गई है। उसको लोगों ने पकड़ लिया है और उसको पकड़ कर वे बैठ गए हैं।

दुनिया में यह जो एक करिश्में की बात दिखाई पड़ती है, आश्चर्यजनक मालूम पड़ती है कि क्यों कभी ऐसा होता है कि कृष्ण के खिलाफ महावीर खड़े हैं कि महावीर के खिलाफ बुद्ध खड़े हैं कि बुद्ध के खिलाफ कोई और खड़ा है। यह कैसा अजीब है। होना तो यह चाहिए कि महावीर बुद्ध का समर्थन करते हों, क्राइस्ट बुद्ध का समर्थन करते हों, मोहम्मद महावीर का समर्थन करते हों, महावीर कृष्ण-राम का समर्थन करते हों। होना तो यह चाहिए लेकिन हुआ इसका उल्टा। होने का कारण है। इससे पहले कि किसी के जीवन में नए ज्ञान की किरण आए, जैसे ही यह किरण आती है उसे दिखाई पड़ता है कि लोगों के हाथ में राख है। कभी वह भी किरण थी लेकिन अब वह राख है। तो छुटकारा होने वाला नहीं। फिर भी, न बुद्ध महावीर के खिलाफ हैं, न महावीर कृष्ण के खिलाफ हैं। खिलाफ हैं शास्त्र बन जाने के। और जो भी

शास्त्र बन जाता है वहां सत्य मर जाता है। यदि यह स्मरण रखें तो शास्त्र बनने की उम्मीद मिटती है, आशा मिटती है, लेकिन फिर भी बन सकता है। इसलिए लड़ाई जारी रहेगी। इसलिए किसी ज्ञानी पर लड़ाई खत्म नहीं हो जायेगी। ज्ञानी होंगे और आने वाले ज्ञानियों को उनका खण्डन करना होगा। यह बड़ा कठोर कृत्य है लेकिन प्रेम इतना कठोर भी होता है। यह बड़ा कठोर कृत्य है।

एक ज़ेन फकीर हुए हैं। अब ज़ेन फकीर बुद्ध के अनुयायी हैं। लेकिन ज़ेन फकीर अपने अनुयायियों से कहते हैं कि अगर बुद्ध बीच में आएं तो एक चांटा मारकर अलग कर दें; और आयेगा बुद्ध बीच में तुम्हारे। परम ज्ञान के उपलब्ध होने के पूर्व बुद्ध तुम्हारे बीच में मार्ग रोकेगा तो एक चांटा मार कर अलग कर देना। एक ज़ेन फकीर का तो यहां तक कहना है कि यदि बुद्ध का मुंह में नाम आए तो पहले कुल्ला करके मुख साफ कर लेना फिर दूसरा काम करना। तो उससे पूछो कि तुम यह क्या कहते हो? और बुद्ध की मूर्ति रखते ही मन्दिर में। वह कहता है—यह दोनों ही सही हैं। बुद्ध से हमारा प्रेम है लेकिन यदि बुद्ध किसी के आड़े आ जाए तो उससे हमारी लड़ाई है। और इसके लिए बुद्ध का आशीर्वाद हमको मिला हुआ है। यानी बुद्ध से हमने यह पूछ लिया है कि हम लोगों से यह कह दें तो कुछ बुरा तो नहीं कि तुम्हारा नाम मुख में आ जाए तो कुल्ला करके साफ कर लेना। अब यह आदमी समझने में मुश्किल हो जाएगा। लेकिन यह आदमी है और यह ठीक कह रहा है। एक तरफ यह मूर्ति रखे हुए है, रोज सुबह उसके सामने फूल भी रख आता है और दूसरी तरफ लोगों को समझाता है कि बुद्ध से बचना। इससे खतरनाक आदमी ही नहीं हुआ है, और इसका नाम भी मुख में आए तो कुल्ला करके साफ कर लेना, इतना अपवित्र है यह नाम। और कहता है कि बुद्ध से पूछ लिया है, आशीर्वाद ले लिया है कि हां यह करो। अब इसका मतलब क्या है? इसका मतलब यह है कि हर चीज बाधा बन जाती है। असल में जो भी सीढ़ी है वह मार्ग का पत्थर भी बन सकती है और जो भी पत्थर है वह मार्ग की सीढ़ी भी बन सकता है। सब कुछ बनाने वाले पर निर्भर है। और जब पुरानी सीढ़ी पत्थर बन जाती है तो उसे हटाने की बात करनी पड़ती है, मिटाने की बात करनी पड़ती है। यह लड़ाई निरन्तर जारी रहेगी। इस लड़ाई को रोकना मुश्किल है। यानी मैं जो कहकर जाऊंगा कल किसी को हिम्मत जुटा कर उसे गलत कहना ही पड़ेगा। मैं जो कहकर जाऊंगा, मुझे प्रेम करने वाले किसी व्यक्ति को मेरे खिलाफ लड़ना ही पड़ेगा। इसके सिवाय कोई उपाय ही नहीं क्योंकि वे सुनने वाले

उसको पकड़ेंगे, और शास्त्र बनाएंगे और उससे छुटकारा दिलाना होगा। यानी जो व्यक्ति भी हमारे लिए मुक्तिदायी सिद्ध हो सकते हैं उन्हें हम बंधन बना लेते हैं और जब उन्हें बंधन बना लेते हैं तो उनसे भी मुक्ति दिलानी पड़ती है। और जो हमें फिर मुक्ति दिलाते हैं, हम उसे फिर बंधन बना लेते हैं।

लम्बी कथा है यह कि मुक्तिदायी विचार भी कैसे बंधन बन जाते हैं, कि मुक्तिदायी व्यक्ति भी कैसे बंधन बन जाते हैं; फिर कैसे उनसे छुड़ाना पड़ता है और इसलिए कोई भी विचार सदा रहने वाला नहीं हो सकता। और इसलिए किसी भी विचार की एक सीमा है प्रभाव की। जीवन्त उस प्रभाव-क्षेत्र में जितने लोग आ जाते हैं और जीवन्त प्रयोग में लग जाते हैं, वे तो निकल जाते हैं। पीछे फिर केवल राख रह जाती है। इसलिए सब तीर्थंकरों, सब अवतारों, उन सब निष्ठावान लोगों के आस-पास राख का संग्रह हो जाता है। और वह जो राख का संग्रह है वह सम्प्रदाय बन जाता है। और फिर वे राख के संग्रह एक दूसरे से लड़ते हैं, झगड़ते हैं, उपद्रव करते हैं। और तब जरूरत होती है कि कोई फिर खड़ा हो और सारी राख को मिटा दे। लेकिन इसका यह मतलब नहीं होता कि वह राख नहीं बन जाएगा। वह बनेगा। जो भी अंगारा जलेगा, वह बुझेगा। जो विचार एक दिन जीवन्त होगा एक दिन मृत हो जाएगा।

जब महावीर ही मिट जाते हैं, बुद्ध ही मिट जाते हैं तो जो कहा हुआ है, वह भी मिट जाएगा। इस जगत् में जिसमें हम जी रहे हैं कुछ भी शाश्वत नहीं है। न कोई वाणी, न कोई विचार, न कोई व्यक्ति, कुछ भी शाश्वत नहीं है। यहां सभी मिट जाएगा। मिट जाने के बाद भी पकड़ने वाला आग्रह उसको पकड़े रखेगा और तब किसी को चेतना पड़ेगा कि लहर चली गई है, हाथ तुम्हारा खाली है। तुम कुछ भी नहीं पकड़े हो। अब दूसरी लहर आ गई है, तुम पुरानी के चक्कर में पड़े हो। इसे पकड़े रहे तो नई लहर से भी चूक जाओगे। पुरानी लहर जा चुकी। यह जो हमें ख्याल में आ जाए, तो मैं शास्त्र की निन्दा नहीं कर रहा हूं। वह जो वस्तुस्थिति है, वह कह रहा हूं।

और वह जो तुम कहते हो ठीक है। मेरी बहुत सी बातें शास्त्र में मिल जायेंगी। इसलिए नहीं कि वह शास्त्र में हैं, इसलिए कि तुम मेरी बातों को समझ लोगे। अगर मेरी बातें तुम्हें समझ में पड़ गईं तो तुम्हें शास्त्र में मिल जाएंगी क्योंकि शास्त्र में तुम्हें वही मिल जाएगा जो तुम्हारी समझ है क्योंकि हम शास्त्र में अपनी समझ डालते हैं। आम तौर पर हम यह समझते हैं कि शास्त्र से समझ निकलती है। निकलती नहीं। हम शास्त्र में अपनी समझ डालते हैं।

इसीलिए तो गीता की हजार टीकाएं हो सकती हैं। अगर गीता से समझ निकलती हो तो उसकी हजार टीकाएं कैसे हो सकती हैं? कृष्ण के अगर हजार मतलब रहे होंगे तो कृष्ण का दिमाग खराब रहा होगा। कृष्ण का तो एक ही मतलब रहा होगा। हजार टीकाएं हो सकती हैं, लाख टीकाएं हो सकती हैं, क्योंकि हर व्यक्ति अपनी खोज, अपनी समझ उसमें खोज लेगा। और शब्द इतना बेजान है कि तुम उसे मार ठीक कर जहां लाना चाहो, आ जाता है। वह कुछ कर ही नहीं सकता। तुमने उसकी गर्दन में डाली फांस और खींचा तो तुम जहां लाना चाहते हो ले आते हो। उसी गीता से शंकर निकाल लेंगे "कि जगत् सब माया है, कर्ममुक्त हो जाना ही संदेश है।" उसी गीता से तिलक निकाल लेंगे कि "कर्म ही जीवन है और जीवन सत्य है।" उसी गीता से दोनों निकाल रहे हैं। उसी गीता से अर्जुन निकालता है कि युद्ध में जीत जाओ। अर्जुन सुनने वाला है। श्रोता है पहला वह। पहली टीका उसी की है समझो। पहला कमेन्टेटर वही है। सुना है उसने। सुन ही तो नहीं लिया, जो सुना है उसको समझा है, गुना है, अपना मतलब निकाला है। अर्जुन मतलब निकाल लेता है युद्ध में जीत जाओ और महाभारत का युद्ध हो जाता है। और उसी गीता को गांधी अपनी माता समझते हैं और अहिंसा का संदेश निकालते हैं। अब यह बहुत मजेदार मामला है—अर्जुन हिंसा में उतर जाता है और गांधी उसको जिन्दगी भर हाथ में रखकर अहिंसा में चले जाते हैं। तो गीता बेचारी कुछ है या कि गीता में हम कुछ डालते हैं। शास्त्र अपनी बुद्धि को बाहर निकाल कर पढ़ने का उपाय है। भीतर पढ़ना जरा मुश्किल है। इसलिए प्रोजेक्ट कर लेते हैं पर्दे पर। शास्त्र पर्दा बन जाता है, उसमें अपने भीतर को बाहर लिख लेते हैं। फिर हमें दोहरी तृप्ति मिल जाती है। एक तो हमें अपने पर विश्वास नहीं है। जब हम गीता में पढ़ लेते हैं अपने को तो हम मजबूत हो जाते हैं कि ठीक है; क्योंकि कृष्ण भी यही कहते हैं। यानी हमें कोई भटक जाने का डर नहीं। महावीर भी यही कहते हैं, बुद्ध भी यही कहते हैं। इस भूल में पड़ना भी मत कि अनुयायी ने कभी भी बुद्ध का या महावीर का साथ दिया है। अनुयायी ने बुद्ध और महावीर का साथ लिया है। दिखता है न कि महावीर के पीछे चल रहा है, महावीर का अनुयायी है। सचाई उल्टी है महावीर का अनुयायी महावीर को अपने पीछे चला रहा है और चलाकर आश्वस्त है कि हम कोई गलती में तो हो नहीं सकते क्योंकि महावीर साथ हैं। तो वह हर चीज को निकाल लेता है, हर चीज के उपाय निकाल लेता है।

जब अंग्रेज हिन्दुस्तान में आए तो पहला सम्पर्क उनका बंगालियों से हुआ। बंगालियों की मछली की बदबू और उनके शरीर का गंदापन उनको बास देता था। बास की वजह से वह उन्हें कहते थे 'बाबू'। 'बाबू' मतलब—बू सहित, जिसमें बदबू आ रही हो। और, अब बाबूजी से ज्यादा कीमती शब्द नहीं है इस वक्त, कि 'आइए बाबूजी!' बदबू की वजह से, सिर्फ गन्दगी की वजह से, कि बंगाली से बास आती है मछली की, खाने पीने और रहने का ढंग गन्दा है तो उसको 'बाबू' कहते हैं। इसलिए, बंगाली बाबू अब भी सबसे बड़ा बाबू है। अभी भी दूसरा इतना बाबू नहीं हो पाया है। बंगाली बाबू अब भी बाबू है। लेकिन, अब आदर का शब्द हो गया है। आदर का इसलिए हो गया कि अंग्रेज सत्तावान थे जिसको उन्होंने बाबू कहा आदरित हो गया। और, जब अंग्रेज ने 'बाबू' कह दिया, गवर्नर ने किसी को बाबू कहा तो बाहर अकड़ कर निकला कि हम कोई साधारण थोड़े ही हैं; हम 'बाबू' हैं। और, दूसरे लोग भी उसको बाबू कहने लगे। अब बाबू बड़ा कीमती शब्द है।

शब्दों की यात्रा है। हम उनमें क्या डालते हैं, यह हम पर निर्भर है। वैसे शब्द कुछ भी नहीं। हम उसमें डालते हैं। अर्थ हमारा है। शब्द कोरा खाली है। शब्द कन्टेनर है, डिब्बा है खाली, 'कन्टेन्ट' विषयवस्तु हम उसमें डालते हैं। और, 'कन्टेन्ट' हमारे हाथ में है। इसलिए हर पीढ़ी, हर युग, हर आदमी अपना 'कन्टेन्ट' डाल देता है। जो बहुत कुशल हैं डालने में, वे किसी भी चीज से कोई अर्थ निकाल सकते हैं। उन पर कोई शब्द का बंधन ही नहीं। इसलिए मैं कहता हूं कि मेरी बात समझ में आ जाए तो शास्त्र में मिल जाएगी। शास्त्र की बात तुम्हारी पकड़ में हो तो मेरी बात में मिल जाएगी। लेकिन इसमें पड़ना ही मत क्योंकि यह पड़ना ही गलत दिशा में ले जाता है। जब मैं तुम्हारे सामने मौजूद हूं तो सीधा ही मुझे लेना। शास्त्र को बीच में लाना ही नहीं। सीधा ही मुझे समझने की कोशिश करना। तुलना ही मत करना। न ही यह कहना कि यह कहां है, कहां नहीं। होगा तो ठीक; नहीं होगा तो ठीक। सीधे ही समझने की कोशिश उपयोगी है, क्योंकि तभी हम ज्यादा से ज्यादा समझने की कोशिश करते हैं; और जो हमारी समझ में आ जाए, वह हमें सब जगह दिखाई पड़ने लगेगा।

प्रश्न : पढ़ने और सुनने से ज्ञान नहीं होता तो फिर पढ़ने और सुनने की जरूरत क्या है? और उसके बाद हमने इतने समय तक जो पढ़ा और जो सुनते आए हैं, उसमें विरोध क्या है?

उत्तर : हां, जिन्दगी बहुत विरोधी चीजों से बनी है। और, यह बात सच है कि पढ़ने और सुनने से ज्ञान नहीं आ जाता है। अगर यह बोध बना रहे कि पढ़ने और सुनने से ही ज्ञान नहीं आ जाता है तो पढ़ना सुनना भी तुम्हारे भीतर ज्ञान को लाने के लिये निमित्त बन सकता है। और अगर यह ख्याल हो जाए कि पढ़ना-सुनना ही ज्ञान दे देता है तो तुम्हारे भीतर कभी ज्ञान नहीं आएगा। यह निमित्त नहीं बनेगा, यह बाधा बन जायेगी। अब ये बातें उल्टी दिखती हैं ऊपर से। अगर तुम्हें पक्का स्पष्ट है कि क्या पढ़ने से मिलेगा तो तुम्हें पढ़ने से भी कुछ मिल सकता है; क्योंकि तब तुम पढ़ने को नहीं पकड़ लोगे क्योंकि तुम्हें यह स्पष्ट है कि पढ़ने से कुछ नहीं मिलता। तब तुम सुनने को नहीं पकड़ लोगे। तब, तुम सोचोगे, समझोगे, खोजोगे; वह तुम्हारी खोज जारी रहेगी। और तब पढ़ना भी एक निमित्त बन सकता है तुम्हारी खोज का। तो शास्त्रों से भी वे लोग फायदा उठा सकते हैं, जो शास्त्रों से नहीं बंधे हैं, जो बिल्कुल मुक्त हैं शास्त्रों से, जिन्हें ख्याल ही नहीं कि शास्त्रों से ज्ञान मिलता है वे शास्त्रों से भी फायदा उठा सकते हैं। और जो यह कहते हैं कि शास्त्रों में सब लिखा है, सब मिल जाएगा वे शास्त्रों को छाती पर रख कर सिर्फ डूब जाते हैं, और कुछ भी नहीं कर पाते।

मेरी बहुत बातें तुम्हें उल्टी दिखलाई पड़ सकती हैं क्योंकि जिन्दगी ही उल्टी है। और, यहां बड़े अजीब मामले हैं। यहां ऐसा मामला है कि अगर एक आदमी ऐसा पक्का समझ ले कि शास्त्र पढ़ लिया है तो सब मिल गया तो वह पढ़ता रहे शास्त्र, इकट्ठा करता रहे, बहुत इकट्ठा कर ले। और उसे कभी कुछ न मिलेगा क्योंकि उसने मिलने की सारी बात शास्त्र पर छोड़ दी है और उसकी अन्तर खोज सब खत्म हो गई है। जब शास्त्र से मिल जाता है तो अन्तर खोज की जरूरत क्या है? इकट्ठा कर लेगा वह शास्त्र और उसकी अन्तर खोज क्षीण होती जाएगी, मर जाएगी। जितना शास्त्र ज्यादा हो जाएगा उतना अन्तर खोज मर जाएगी। लेकिन एक आदमी जो सचेत है पूरा कि शास्त्र से क्या मिलने वाला है, शब्द ही है वहां, अन्तर खोज जारी रखी है उसने। अन्तर खोज जारी है तो जितनी अन्तर खोज होती चली जाती है उतना ही अधिक उसे शास्त्र में मिलने लगता है, उतना ही अधिक उसे दिखाई पड़ने लगता है क्योंकि शास्त्र आखिर जिन्होंने कहा है, उन्होंने जानकर ही कहा है। कहा नहीं जा सकता, मुश्किल है कहना तो भी जाना है उन्होंने तो ही कहा है। कोड है वह तो। इसमें कुछ जानने वालों ने कुछ प्रतीक छोड़े हैं।

अब जैसे समझ लें, एक मन्दिर है; वहां एक मूर्ति रखी है। यह भी एक 'कोड' है, यह भी एक शास्त्र है। उधर अक्षरों में लिखा है, यहां हमने पत्थरों में खोदा है। सब मन्दिर 'कोड' लैंग्वेज (भाषा) में हैं। अब नए मन्दिर नहीं हैं क्योंकि नए मन्दिर का उससे कोई सम्बन्ध नहीं रह गया है। जितने नए मन्दिर बन गए हैं उनका कोई सम्बन्ध नहीं है। अब, क्योंकि हमें पता ही नहीं है, कोई और ही हिसाब से बना रहे हैं। नया आर्किटेक्ट आ रहा है उसमें, नई बिल्डिंग की डिजाइन आ रही है। वह सब आ रहा है, लेकिन जितना पुराना मन्दिर है उतनी ही 'कोड' लैंग्वेज (सांकेतिक भाषा) में है। मन्दिर की एक भाषा है। क्योंकि असल में आदमी की कितनी करुण दशा भी है, कितनी कठिनाई भी है। जिनको एक बार कुछ पता चल गया है, वे चाहते हैं कि वह किसी तरह सुरक्षित रह जाए। 'शब्द' में भी लिखते हैं, पत्थर में भी खोदते हैं क्योंकि किताब गल जाएगी, जल जाएगी तो पत्थर में खुदा रहेगा। मन्दिर के पत्थर में 'कोड' खोदा हुआ है। और सारी व्यवस्था ऐसी की गई है कि जो अन्तस् खोज में जाएगा उसके लिए मन्दिर एकदम सार्थक हो जाएगा क्योंकि तब उसे अर्थ ही दूसरे दिखाई पड़ने शुरू हो जाएंगे।

तुम अगर मन्दिर की बनावट देखो तो चौकोन मन्दिर होगा। लेकिन उसके ऊपर का गुम्बद गोल होगा। यानी दो हिस्सों में मन्दिर बटा हुआ है, नीचे का चौकोन हिस्सा है, ऊपर का गोल हिस्सा है। भीतर तुम जाओगे तो जहां मूर्ति स्थापित की गई है इसे कहते हैं गर्भगृह। अब उसे क्यों गर्भगृह कहते हैं। वहां मूर्ति रखी है। उस मूर्ति की तुम्हें प्ररिक्रमा करनी होती है। यह कितनी करनी है वह भी सब निर्धारित है। मन्दिर चौकोन है, परिक्रमा गोल है। उस गोल परिक्रमा के बीच में एक ठीक केन्द्र पर मूर्ति है। ऊपर भी मन्दिर गोल है। अब एक 'कोड' लैंग्वेज है। इन्द्रिय हमारे कोने हैं; और एक इन्द्रिय में हम चले जाएं तो हम एक दिशा में चले जाएंगे। सब इन्द्रियों के ऊपर, कहीं न जाने वाली एक गोल स्थिति है जिससे कोई दिशा नहीं जाती, जिसमें अन्दर घूमना पड़ता है। कोना तो एक दिशा की तरफ इंगित करता है। पूरब—तो पूरब की तरफ बढ़ते चले गए तो तुम पूरब चले जाओगे अन्तहीन। लेकिन गोल घेरे में किसी तरह इंगित नहीं है। वहां तो तुम्हें अन्दर गोल घूमना पड़ता है। एक तो हमारा शरीर है, जिसमें दिशाएं हैं, जिसमें से तुमने कोई दिशा पकड़ ली तो अन्तहीन जा सकते हो। और शरीर के अन्दर हमारा एक गोल परिभ्रमण है चित्त का जहां कि तुम कहीं जा नहीं सकते, केवल गोल घूम सकते हो।

अगर कभी तुमने विचार पर ख्याल किया होगा तो तुम हैरान होगे कि विचार सदा गोल घूमता रहता है। उसकी कभी कोई दिशा नहीं होती। तुम एक विचार सोचोगे, दूसरा सोचोगे फिर तुम पहले पर आ जाओगे। तुमने कल जो कुछ सोचा था फिर आज सोचने लगोगे फिर कल सोचने लगोगे। विचार का जो घेरा है वह वर्तुल है; वह गोल घेरे में घूम रहा है। तुम विचार में भी सीधे नहीं जा सकते। उसका वर्तुल निश्चित है। अगर कोई भी व्यक्ति अपने भीतर चित्त का थोड़ा विश्लेषण करेगा तो हैरान रह जाएगा क्योंकि वह हमेशा गोल-गोल घूमता रहा है सारी जिन्दगी। वह परिक्रमा है। विचार परिक्रमा है। और अगर तुम विचार की परिक्रमा में ही घूमते रहे, तुम भगवान् तक कभी नहीं पहुँचोगे क्योंकि वह उस परिक्रमा के ठीक भीतर है। इस परिक्रमा से उतरो तो तुम पहुँच पाओगे। इसके तुम लगाते रहो चक्कर हजार।

अब दो बातें ध्यान में हों। एक तो चौकोन दिशाओं वाला पथ है जहाँ से डायमेंशन्स जाते हैं शरीर के। कोई आदमी भोजन के रस में चला गया है, कोई आदमी काम-वासना के रस में चला गया है, कोई आदमी संगीत के रस में चला गया है, कोई आदमी सौन्दर्य के रस में चला गया है। ये दिशाएँ अन्तहीन हैं। ये चली जाएंगी। और जितना तुम इनमें जाओगे, उतना ही तुम स्वयं से दूर निकलते जाओगे। इसीलिए बाहर के मन्दिर के परकोटे को गोल नहीं बनाया है। परकोटा हमारा गोल नहीं है। शरीर में कोने हैं जिनसे यात्रा हो सकती है। और एक कोने से यात्रा करोगे तो दूसरे कोनों से विरोध हो जायेगा एकदम। और एक ही कोना बढ़ता चला जाएगा और अपने से निरन्तर दूर होते चले जाओगे। फिर, हमारे भीतर शरीर का परकोटा है। उसके भीतर चित्त की गोल परिक्रमा है। अगर तुम इसमें घूमते रहे तो अनेक जन्मों तक घूमते रहोगे इस परिक्रमा में, तो भी परमात्मा तक नहीं पहुँचोगे। सत्य तक नहीं पहुँचोगे। कभी न कभी इस परिक्रमण से उतर जाना पड़ेगा, अन्दर चले जाना पड़ेगा। और मूर्ति जो है बिल्कुल स्थिर है। इसलिए, सारी मूर्तियाँ स्थिरता की सूचक हैं।

लेकिन कई दफा हैरानी होती है। जैसे अभी जो बात चल रही थी उस पर ख्याल तुम्हें आ जाएगा। जैनों की चौबीस तीर्थंकरों की मूर्तियाँ हैं। तुम कोई फर्क नहीं बता सकते हो उनमें, सिवाय चिन्हों के। अगर चिन्ह अलग कर दिए जाएँ तो मूर्तियाँ एक जैसी हैं। उनमें कोई भी फर्क नहीं हैं। महावीर की

मूर्ति पारस की हो सकती है, पारस की नेमि की हो सकती है। सिर्फ नीचे का एक चिन्ह भर है। उसको तुम अलग कर दो तो किसी भी मूर्ति में कोई फर्क नहीं है। क्या ये चौबीस आदमी एक जैसे रहे होंगे? क्या यह ऐतिहासिक हो सकता है मामला कि इन चौबीस आदमियों की एक जैसी आँख, एक जैसी नाक, एक जैसे चेहरे, एक जैसे बाल रहे हों? यह तो असम्भव है। दो आदमियों का एक जैसा खोजना मुश्किल है। और ये चौबीस बिल्कुल एक जैसे रहे हों, इनमें भेद ही नहीं कोई? नहीं, यह ऐतिहासिक तथ्य नहीं है। यह तथ्य ज्यादा आन्तरिक है। क्योंकि जैसे ही व्यक्ति ज्ञान को उपलब्ध होता है, सब भेद विलीन हो जाते हैं, और अभेद शुरू हो जाता है। वहाँ सब एक सा चेहरा है, एक सी नाक है और एक सी आँख है। मतलब केवल इतना है कि हमारे भीतर एक ऐसी जगह है जहाँ नाक-चेहरे आदि मिल जाते हैं, बिल्कुल एक सा ही रह जाता है। जो लोग एक जैसे हो गए हैं उनको हम कैसे बताएँ? तो हमने मूर्तियाँ एक जैसी बना दी हैं—बिल्कुल एक जैसी। उनमें कोई फर्क ही नहीं दिया है। मूर्तियाँ कभी एक जैसी नहीं रहीं, हो नहीं सकतीं। इसलिए मूर्तियों की चिन्ता ही नहीं करनी पड़ी। महावीर का चेहरा कैसा रहा हो, यह सवाल ही नहीं रहा है। उस चेहरे की हमने बात ही छोड़ दी। अगर फोटोग्राफ लिया होता तो महावीर की मूर्ति से यह कभी मेल ही नहीं खा सकती थी। क्योंकि फोटोग्राफ सिर्फ बाहर को पकड़ता है। मूर्ति में हमने भीतर को पकड़ने की कोशिश की है। भीतर आदमी एक से हो गए हैं। इसलिए अब इनकी बाहर की मूर्तियों को अलग-अलग रखना गलत सूचना हो जाएगी। अब यह बड़े मजे की बात है कि भीतर को हमने बाहर पर जिता दिया है। फोटोग्राफ में बाहर भीतर पर जीत जाता है। फोटोग्राफ अलग-अलग होता है। परन्तु ये चौबीस तीर्थंकरों की मूर्तियाँ अलग नहीं। ये बिल्कुल एक हैं। उनका लेवल एक हो गया। जैसी ही चेतना एक तल पर पहुँच गई है, सब एक हो गया है। यानी उसके चेहरे एक हो गए, चेहरों में फर्क नहीं रहा। आँखें अलग-अलग रही होंगी लेकिन जो उनसे झाँकने लगा, देखने वाला था, वह एक हो गया। होंठ अलग-अलग रहे होंगे लेकिन जो वाणी निकलने लगी, वह एक हो गई। भीतर सब एक हो गए।

तो एक गोल परिक्रमा है जिसका हम चक्कर अनन्त जीवन तक लगाते रहें तो भी इस गर्भगृह में प्रवेश नहीं कर पाएँगे। परिक्रमा से उतरना पड़ेगा। तो हम वहाँ जाएँगे, जहाँ भगवान् को प्रतिष्ठित किया है। भगवान् को अगर

हम गौर से देखेंगे तो सब स्थिर है, सब शान्त है। उस मूर्ति में सब शान्त है, सब स्थिर है जैसे वहाँ कोई गति ही नहीं, कोई कम्पन नहीं। इसलिए, पत्थर की मूर्तियाँ चुनी गईं क्योंकि पत्थर हमारे पास सबसे ज्यादा ठहरा हुआ तत्व है जिससे हम खबर दे सकें—सबसे ज्यादा ठहरा हुआ और उस ठहराव में भी जो हमने रूपरेखा चुनी है, वह बिल्कुल ठहरी हुई है। मूवमेन्ट की बात ही नहीं। इसलिए हाथ जुड़े हुए हैं, पैर जुड़े हुए हैं। पैर क्रॉस्ड हैं पद्मासन में, आँखें आधी बन्द हैं। ध्यान रहे आँखें अगर पूरी बन्द हों तो खोलनी पड़ेंगी। आँखें अगर पूरी खुली हों तो बन्द करनी पड़ेंगी क्योंकि अति से लौटना पड़ता है। अति पर कोई ठहर नहीं सकता। अगर आप श्रम करें तो आपको विश्राम करना पड़ेगा। अगर विश्राम करें बहुत, तो फिर आपको श्रम करना पड़ेगा। 'अति' पर कोई कभी ठहर नहीं सकता। इसलिए आँख को आधा खुला, आधा बन्द रख दिया है, मध्य में जहाँ से न यहाँ जाना है न वहाँ जाना है, ठहरने का प्रतीक है सिर्फ, सब ठहर गया है। अब कहीं कुछ जाना-आना नहीं। अब कहीं कोई गति नहीं। न पीछे लौटना है, न आगे जाना है। अब कहीं कुछ जाना नहीं। यह सब ठहरा हुआ वह बिल्कुल केन्द्र में है।

तो मन्दिर प्रत्येक व्यक्ति का प्रतीक है कि तुम अपने साथ क्या कर सकते हो। या तो तुम बाहर के कोनों से जा सकते हो, यात्रा पर। यह इन्द्रियों की यात्रा होगी। या तो भीतर मस्तिष्क के विचार में चक्कर लगा सकते हो; वह परिभ्रमण होगा। और या तुम सबके बीच में जाकर स्थिर हो सकते हो; वह उपलब्धि होगी। हजार तरह की कोशिश की है। नृत्य में, संगीत में, चित्र में, मूर्ति में, शब्द में, हजार तरह की कोशिश की है। पिरामिड हैं, इजिप्त के। उनमें जो बड़े अद्भुत रहस्य हैं, वे सब खोद डाले हैं उन्होंने कि कभी भी कोई जानने वाले लोग आएँगे तो पत्थर न मिटेंगे। बड़ी मेहनत की है। सब खोद डाला है कि अन्तरात्मा तक पहुँचने का क्या रास्ता है? पिरामिड के पूरे पत्थरों में सब इशारे खुदे हुए हैं, पूरे इशारे खुदे हुए हैं।

जिन लोगों ने जाना है, उन्होंने बहुत तरह की कोशिश की है कि जो जाना है वह किसी तरह रह जाए और बाद में जब भी कोई जानने वाला आये तो वह फौरन खोल ले कि वहाँ क्या है। वे हैं कुंजियाँ जिनसे ताले खुलते हैं। लेकिन न आपको ताले का पता है, न आपको कुंजी का पता है। आप कुंजी भी लिए बैठे हैं; ताला भी लटका है, कुछ नहीं खुलता। और पहली बात यह है कि अगर

जोर से अंधे की तरह कुछ पकड़ लिया तो तुम कभी भी कुछ नहीं खोल पाओगे ! इसलिए पकड़ना मत ।

जो मैं निरन्तर कह रहा हूँ उसका कुल मतलब इतना है कि शास्त्र को पकड़ना मत । पढ़ना, पकड़ना मत; सुनना किसी को लेकिन बहरे मत हो जाना; पढ़ो, अंधे मत हो जाना ! सुनना और पूरी तरह जानते हुए सुनना कि सुनने से क्या हो सकता है । और, मैं कहता हूँ कि अगर इस तरह सुना तो सुनने से भी हो सकता है । पढ़ने से क्या हो सकता है ? अगर ऐसा जानते हुए पढ़ा तो पढ़ने से भी हो सकता है । हो सकने का मतलब यह कि वह भी निमित्त बन सकता है तुम्हारी भीतर की यात्रा का । कोई भी चीज निमित्त बन सकती है । लेकिन अंधे होकर पकड़ लेने से सब बाधा हो जाती है । पढ़ो; सुनो ! लेकिन प्रत्येक क्षण यह जानते रहो कि खोज मेरी है और मुझे करनी होगी । इसमें बासा और उधार सत्य नहीं ले सकता है । यह अगर स्मरण रहे तो मैं जो कह रहा हूँ वह तुम्हारे लिए बाधा नहीं बनेगा । नहीं तो वह भी बाधा बन जाएगा ।

अब तुमने देखा खजुराहो का मन्दिर । जिनकी समझ में बात आई उन्होंने कितनी मेहनत से खोदने की कोशिश की है । मन्दिर के बाहर की दीवार पर सारी सेक्स, सारी काम और योनि सब खोद डाला है । बड़ी अद्भुत बात खोदी है पत्थर पर । लेकिन भीतर मन्दिर में नहीं है सेक्स का कोई चित्र । सब बाहर की परिधि पर खोदा गया है । और मतलब यह है सिर्फ कि जीवन की बाहर की परिधि 'सेक्स' से बनी है, काम से बनी है । और अगर मन्दिर के भीतर जाना है तो इस परिधि को छोड़ना पड़ेगा । मन्दिर के बाहर ही रहना हो तो ठीक है, यही चलेगा । 'काम' जीवन की बाहर की दीवार है और 'राम' भीतर मन्दिर में प्रतिष्ठित है । जब तक काम में उलझे हो तब तक भीतर नहीं जा सकोगे । लेकिन अगर सारे मैथुन चित्रों को कोई घूमता हुआ देखता रहे तो कितनी देर देखता है । फिर थक जाता है, फिर ऊब जाता है, फिर कहता है कि अब मन्दिर में अन्दर चलो । और अन्दर जाकर बड़ा विश्राम पाता है क्योंकि वहाँ पर एक दूसरी दुनिया शुरू होती है । जब जीवन की अनन्त यात्राओं में थक जाएँगे हम, सैक्स के जीवन से बाहर घूम-घूमकर, तब एक दिन मन कहेगा कि अब बहुत हुआ ; अब बहुत देखा; अब बहुत समझा; अब भीतर चलो । इस तथ्य को पत्थर में खोद कर छोड़ दिया किन्हीं ने, जिन्होंने जाना उन्होंने छोड़ दिया । अनुभव से यह बात उनको दिखाई पड़ी कि दो ही तरह का

जीवन है—या 'काम' का या 'राम' का। और 'काम', 'राम' के मन्दिर की दीवार है। ऐसा नहीं कि काम राम का दुश्मन है, सिर्फ बाहर की दीवार है। 'राम' को वही सुरक्षित किए हुए है चारों तरफ से। राम के रहने का घर उसी से बना है। राम को निवास न मिलेगा अगर 'काम' न रह जाए। तो 'काम' दुश्मन भी नहीं है। फिर भी 'काम' रोकने वाला है। अगर बाहर ही घूमते रहे, तो भूल ही जाओगे कि मन्दिर में एक जगह है जहाँ 'काम' नहीं है, जहाँ कुछ और शुरू होता है, एक दूसरी ही यात्रा शुरू होती है। लेकिन जब ऊब जाओ तभी तो भीतर जाओगे।

अभी मैं भी देखता हूँ कि जब खुजराहो जाकर बैठ जाता हूँ तो जो देखने वाले आते हैं, वे पहले तो बाहर ही घूमते हैं। मन्दिर को कोई सीधा नहीं जाता। कभी कोई गया हो नहीं भीतर मन्दिर में। कोई भी जा कैसे सकता है? उधर बैठ कर देखता हूँ तो जो भी यात्री आता है वह पहले बाहर घूमता है। और इतने अद्भुत चित्र हैं कि कहाँ भीतर जाना? कैसा भीतर! वे इतने उलझाने वाले हैं और इतने अद्भुत हैं कि इतनी मैथुन प्रतिमाएँ इस अद्भुत ढंग से दुनिया में कहीं भी नहीं खोदीं। असल में दुनिया में इस गहरे अनुभव को बहुत कम लोग उपलब्ध हुए। अतः इसे खोदने का कोई उपाय न था। खोद ही नहीं पाए। अब पश्चिम करीब पहुँच रहा है, जहाँ हमने हजार दो हजार साल पहले खोदे वहाँ अब पहुँच रहा है। अब वहाँ 'सेक्स' की परिधि पूरी तरह प्रकट हो रही है। हो सकता है कि सौ दो सौ वर्षों में वह भीतर के मन्दिर को भी निर्मित करे। जोर से परिभ्रमण हो रहा है सेक्स का, अब भीतर का मन्दिर निर्मित होगा। मैं देखता हूँ कि वहाँ तो बाहर यात्री घूम रहा है। धूप तेज होती जाती है और यात्री एक-एक मैथुन चित्र को देखता जाता है। थक गया है, पसीना-पसीना हो गया है। सब देख डाला बाहर; फिर कहता है—चलो अब भीतर भी देखें। बाहर से थक जाएगा तो कोई भीतर जाएगा। अब इसको पत्थर में भी खोदा है; कितनी मेहनत की है। इसे किताबों में भी लिखा है। लेकिन किताब में इतना ही लिखना पड़ेगा कि जब बाहर में थक जाओगे, 'काम' से जब थक जाओगे तब 'राम' की उपलब्धि होगी। लेकिन हो सकता है कि इतना सा वाक्य किसी के ख्याल में ही न आए; हो सकता है कि इसको पढ़कर तुम कुछ भी न समझो। तो इसका एक मन्दिर भी बनाया है। और इसको हजार रूप में खोजा है—संगीत से भी, नृत्य से भी, सब तरफ से सब माध्यम से।

जिसको भी ज्ञात हो गया है वह कोशिश करेगा तुम्हें खबर देने की। लेकिन फिर भी जरूरी नहीं। अगर तुमने खबर को भी पकड़ लिया, जैसे किसी ने कहा कि यही सत्य है कि खजराहो के मन्दिर में बाहर 'काम' है, अन्दर 'राम' है, तो हम इसी मन्दिर में ठहर जाते हैं, झंझट छोड़ें, जब यही सत्य है और सब सत्य इसमें खोदा हुआ है तो हम इसी मन्दिर के पुजारी हो जाते हैं। तो हो जाओ तुम पुजारी! चूक गए तुम बात। अगर तुम समझ जाते तो इस मन्दिर से कुछ लेना देना ही नहीं था। बात खत्म हो गई थी। अगर इशारा समझ में आ गया होता तो इस मन्दिर में न भीतर था, न बाहर था कुछ। बात खत्म हो गई थी और तुम कहते कि ठीक है। और तुम लोगों से कहते कि देखना मन्दिर में मत उलझ जाना; मन्दिर से कुछ न मिलेगा और अगर ध्यान रहा कि मन्दिर से कुछ न मिला तो शायद खोज हो और मन्दिर से भी कुछ मिल जाए। मेरी कोई शत्रुता नहीं मन्दिर से, शत्रुता होने का कोई सवाल ही नहीं, न कोई निन्दा है। क्योंकि निन्दा करने का क्या अर्थ हो सकता है? जो मैं कह रहा हूँ, वह फिर लिखा जाएगा, तो लिखे हुए का क्या अर्थ हो सकता है लेकिन इतनी चेतावनी जरूरी है कि न निन्दा करना, न प्रशंसा करना। समझना; समझा तो वह मुक्ति की तरफ ले जाता है।

प्रश्न : तो सिर्फ तीर्थंकरों की ही क्यों, बुद्ध और महावीर में भी वही रूप की समानता है। क्राइस्ट, राम और कृष्ण—सबमें वही समानता है। लेकिन वे अलग-अलग समय में हुए इसलिए इनकी बात छोड़ें हम। केवल बुद्ध और महावीर की बात करें। दोनों समकालीन हैं। दोनों में से महावीर ने क्यों नहीं कहा कि जो मैं हूं, वही बुद्ध हैं; जो मेरा रूप है वही बुद्ध का रूप है। और बुद्ध ने क्यों नहीं कहा कि जो मैं हूं वही महावीर का रूप है?

उत्तर : विचारणीय बात है। चौबीस तीर्थंकरों की मूर्तियां एक जैसी हैं। तो क्यों क्राइस्ट की, क्यों बुद्ध की भी ऐसी नहीं है? और ठीक कहते हैं आप, कम से कम बुद्ध तो महावीर के साथ ही थे, एक ही समय में थे। इन दोनों की मूर्तियां एक जैसी हो सकती थीं। लेकिन नहीं! और नहीं हो सकती थीं। कारण कि ये जो चौबीस तीर्थंकरों की एक धारा है इस धारा ने एक सोचने का ढंग निर्मित किया है, अभिव्यक्ति की एक 'कोड' लैंग्वेज निर्मित की है इस धारा ने। और यह धारा कोई तीर्थंकर नहीं बनाती। यह धारा तीर्थंकरों के आस-पास निर्मित होती है। यह सहज निर्मित होती है। एक भाषा, एक ढंग, एक प्रतीक की व्यवस्था निर्मित हुई है, शब्दों की परिभाषा और ढंग निर्मित

हुआ है, और यह ढंग कोई तीर्थंकर निर्मित नहीं करता, उनके होने से निर्मित होता है। उनकी मौजूदगी से निर्मित होता है। जैसे सूरज निकला है। सूरज अब कोई आपकी बगिया का फूल निर्मित नहीं करता। लेकिन सूरज की मौजूदगी से फूल खिलते हैं, फूल निर्मित होते हैं। सूरज न निकले तो आपकी बगिया में फूल नहीं खिलेंगे। फिर भी सूरज सीधा जिम्मेदार नहीं है आपकी बगिया के फूल खिलाने को। फिर आपने अपनी बगिया में एक तरह के फूल लगा रखे हैं और मैंने अपनी बगिया में दूसरी तरह के। मेरी बगिया में दूसरी तरह के फूल खिलते हैं और आपकी बगिया में दूसरी तरह के। दोनों सूरज से खिलते हैं। फिर भी, दोनों में भेद होगा और आपने अपनी बगिया में इस तरह के फूल लगा रखे हैं तो उनमें भी भेद होगा। प्रत्येक धारा जैसे कि चौबीस तीर्थंकरों की एक धारा है, एक प्रतीक व्यवस्था में खड़ी हुई है। उसका अपना प्रतीक है, अपने शब्द हैं, अपनी 'कोड' लैंग्वेज है। और वह, उसके आस-पास जो वर्तुल खड़ा हो गया है उन शब्दों, उन प्रतीकों के आस-पास, वह न दूसरे प्रतीक समझ सकता है, न पहचान सकता है। बुद्ध की एक बिल्कुल नई परम्परा शुरू हो रही है जिससे सब प्रतीक नए हैं और मैं मानता हूँ कि उसका भी एक कारण है। असल में पुराने प्रतीक एक सीमा पर जाकर जड़ हो जाते हैं और हमेशा नए प्रतीकों की जरूरत पड़ती है। अगर बुद्ध यह कह दें कि जो मैं कह रहा हूँ वही महावीर कहते हैं तो जो फायदा बुद्ध पहुँचा सकते हैं, वह कभी नहीं पहुँचा सकेंगे। महावीर पर एक धारा खत्म हो रही है और जड़प्राय होकर नष्ट हो रही है। महावीर अन्तिम हैं एक भाषा के और वह भाषा जड़ हो गई होगी, उखड़ गई होगी और अब उसकी गति चली गई होगी, टूटने के करीब हो गई होगी।

बुद्ध एक बिल्कुल नई धारा के सिर्फ प्रारम्भ हैं। इस नई धारा को पूरी चेष्टा करनी पड़ेगी कि वह कहे कि यह महावीरवाली धारा तो है ही नहीं। मजा तो यह है कि यह पूरी तरह जानते हुए कि जो महावीर हैं वही बुद्ध हैं, बुद्ध को पूरे समय जोर देना पड़ेगा, और ज्यादा जोर देना पड़ेगा कि कहीं भूल-चूक से भी वह उस धारा से न जुड़ जाएँ क्योंकि वह जो मरती हुए धारा हो गई है, जिसका वक्त पूरा हो गया है विदा हो रही है, अगर उससे यह भी जुड़ गई तो यह जन्म ही नहीं ले पाएगी। आप मतलब समझ रहे हैं न? मेरा मतलब यह है कि बुद्ध को बहुत सचेत होना पड़ेगा। इसलिए ख्याल में आपको आ जाए कि महावीर ने बुद्ध के खिलाफ एक शब्द भी नहीं कहा, बुद्ध का कोई

खण्डन नहीं किया। लेकिन बुद्ध ने बहुत बार महावीर का खण्डन किया और बहुत कठोर शब्द कहे। इसलिए मैं कहता हूँ कि महावीर वृद्ध थे, बुद्ध जवान थे महावीर विदा हो रहे थे और बुद्ध आ रहे थे। बुद्ध को एकदम जरूरी था यह डिस्टिंक्शन बनाना, यह भेद बनाना, बिल्कुल साफ। उस व्यवस्था से हमें कुछ लेना देना नहीं। वह बिल्कुल गलत है, क्योंकि लोक मानस में वह विदा होती हुई व्यवस्था हुई जा रही है और अगर उससे कोई भी सम्बन्ध जोड़ा तो नई व्यवस्था के जन्मने में बाधा बनने वाली है, और कुछ नहीं होने वाला है।

फिर और भी बात है। चाहे कोई व्यवस्था विचार की, चिन्तन की, दर्शन की कितनी ही गहरी क्यों न हो वह केवल एक विशेष तरह के व्यक्तियों को ही प्रभावित करती है। कोई ऐसी व्यवस्था नहीं है जो सब तरह के व्यक्तियों के काम आ सके। अब तक नहीं है और न हो सकती है। अब तो यह पक्का माना जा सकता है कि वह नहीं हो सकती। महावीर के व्यक्तित्व को जो प्रभावित करती है बात, वह पारस वाली, नेमि वाली, आदिनाथ वाली बात उन्हें प्रभावित करती है। वह उस टाइप के व्यक्ति हैं, और इस टाइप के बनने में भी अनन्त जन्म लगते हैं। एक खास टाइप के बनने में उनको वह खास तरह की धारा ही प्रभावित कर सकती है। बुद्ध बिल्कुल भिन्न तरह के व्यक्ति हैं। उनके व्यक्तित्व की अपनी यात्रा है। उन्हें उसमें कुछ रस नहीं मालूम होता। लेकिन मैं मानता हूँ कि बुद्ध की चिंतना ने बहुत से लोगों को, जो महावीर से कभी कोई लाभ नहीं ले सकते थे, लाभ दिया। और वे बुद्ध से लाभ ले सके। लेकिन बुद्ध और महावीर की एक धारा है, मीरा की अपनी चिन्तना, अपनी धारा है। महावीर और मीरा का व्यक्तित्व बिल्कुल उल्टा है। अगर महावीर की अकेली चिन्तना दुनिया में हो तो बहुत थोड़े से लोग ही सत्य के अन्तिम मार्ग तक पहुँच पायेंगे क्योंकि मीरा के टाइप के लोग वंचित रह जायेंगे, उनसे उसका मेल ही नहीं हो पाता। अनन्त धाराएं चलती हैं इसलिए कि अनन्त प्रकार के व्यक्ति हैं और चेष्टा यही है कि ऐसा एक व्यक्ति भी न रह जाए जिसके योग्य और जिसके अनुकूल पड़ने वाली धारा न मिल सके। इसलिए अनन्त धाराएं हैं और रहेंगी। दुनिया जितनी विकसित होती जाएगी उतनी धाराएँ ज्यादा होती जाएंगी। धाराएं ज्यादा होनी चाहिए।

महावीर की जो जीवनधारा है वह एकदम पुरुष की है, उसमें स्त्री का उपाय ही नहीं है। पुरुष और स्त्री के मानस में बुनियादी भेद है। जैसे स्त्री के पास जो मन है, वह निष्क्रिय (पैसिव) मन है। पुरुष के पास जो मन है वह

आक्रामक (एग्रेसिव) मन है। इसलिए स्त्री अगर किसी को प्रेम भी करे तो आक्रमण नहीं करेगी। प्रेम भी करे, उसका मन किसी के पास जाने को हो, तब भी बैठकर उसकी प्रतीक्षा करेगी कि वह आए। यानी वह किसी को प्रेम भी करती है तो जा नहीं सकती उठकर उसके पास। वह प्रतीक्षा करेगी कि वह आए। उसका पूरा का पूरा मन निष्क्रिय (पैसिव) है। आप आएँगे तो खुश होगी, आप नहीं आएँगे तो दुखी होगी। लेकिन इनेशियेटिव नहीं ले सकती, पहल नहीं कर सकती कि वह खुद आप पर जाएँ। अगर एक स्त्री किसी को प्रेम करती है तो वह कभी प्रस्ताव नहीं करेगी कि मुझसे विवाह करना है। वह प्रतीक्षा करेगी कि कब तुम प्रस्ताव करो। किसी स्त्री ने कभी प्रस्ताव नहीं किया विवाह का। हाँ वह प्रस्ताव के लिए सारी योजना करेगी। प्रस्ताव लेकिन तुम्हीं करो। प्रस्ताव कभी वह नहीं करने वाली। और प्रस्ताव किए जाने पर भी कभी कोई स्त्री सीधा 'हाँ' नहीं भर सकती क्योंकि 'हाँ' आक्रामक है। और एकदम से 'हाँ' भरने से पता चलता है कि उसकी तैयारी थी। तो कभी एकदम 'हाँ' नहीं करेगी। वह 'ना' करेगी। 'ना' को धीरे-धीरे, धीमा करेगी। 'ना' को धीरे-धीरे 'हाँ' के करीब ला पाएगी। 'निगेटिव' है उसका माइन्ड। शारीरिक रचना भी उसकी निगेटिव है, पाजेटिव नहीं। इसलिए स्त्री कभी किसी पुरुष पर बलात्कार नहीं कर सकती क्योंकि पुरुष यदि राजी नहीं है तो स्त्री किसी तरह का काम सम्बन्ध उससे स्थापित नहीं कर सकती। लेकिन स्त्री अगर राजी भी नहीं होती तो भी पुरुष उसके साथ सम्भोग कर सकता है, व्यभिचार कर सकता है। क्योंकि वह है निगेटिव; पुरुष है पाजिटिव।

महावीर की जो जीवन चिन्तना है वह पुरुष की जीवन चिन्तना है। इसलिए महावीर के मार्ग में स्त्री को मोक्ष पाने का उपाय भी नहीं है। अकारण नहीं है वह बात। इसका मतलब यह नहीं कि स्त्री को मोक्ष नहीं हो सकता। इसका मतलब केवल इतना है कि महावीर के मार्ग से नहीं हो सकता। महावीर के मार्ग में स्त्री को एक बार और पुरुष योनि लेनी पड़े तब वह मोक्ष की तरफ जा सकती है। क्योंकि महावीर की जो व्यवस्था है, वह संकल्प की है; इच्छा की, आक्रमण की, बहुत गहरे आक्रमण की व्यवस्था है। उस व्यवस्था में कहीं हारना, टूटना, पराजित होना उसका उपाय नहीं। महावीर कहते हैं कि जीतना है तो जीतो, समग्र शक्ति लगाकर जीतो। एक इंच शक्ति पीछे न रह जाए। और लाओत्से कहता है अपने एक शिष्य को जो उससे पूछता है कि आप कभी हारे। लाओत्से कहता है 'मैं कभी नहीं हारा'। शिष्य कहता है 'कभी तो

हारे होंगे, जिन्दगी में, किसी मौके पर।' लाओत्से कहता है, 'बिल्कुल नहीं! कभी मैं हारा ही नहीं! तो उसका रहस्य क्या था; राज क्या था? लाओत्से कहता है, 'राज यह था कि मैं सदा हारा हुआ ही था। मैं पहले से ही हारा हुआ था। कोई मेरी छाती पर चढ़ने आता तो मैं जल्दी से लेट जाता और उसको बिठा लेता। वह समझता कि मैं जीत गया; मैं समझता कि खेल हुआ क्योंकि मैं पहले से हारा हुआ था। जीते क्या तुम? तो मुझे कोई हरा ही नहीं सकता क्योंकि मैं सदा हारा हुआ हूँ।''

अब यह जो लाओत्से है, यह स्त्री के मार्ग का अग्रणी व्यक्ति है। यह हराई नहीं जाएगी। यह पूरी तरह हार जाएगी और आपको मुश्किल में डाल देगी। स्त्री किसी को हराने नहीं जाएगी और हारने के लिए जाकर मुश्किल में पड़ जाएगी। वह पूरी तरह हार जाएगी; पूर्ण आत्म-समर्पण कर देगी। वह कहेगी : मैं तुम्हारी दासी हूँ, तुम्हारे चरणों की धूल हूँ। और तुम हैरान हो जाओगे कि अब वह तुम्हारे सिर पर बैठ गई, तुम्हें पता नहीं चलेगा। उसके जीतने का रास्ता हार जाना है, पूरी तरह हार जाना, सम्पूर्ण समर्पण। और जो स्त्री सम्पूर्ण समर्पण नहीं कर पाती, वह कभी नहीं जीत पाती, वह जीत ही नहीं सकती। इसलिए इस युग में स्त्रियाँ दुखी होती चली जाती हैं क्योंकि उनका समर्पण खत्म हुआ जा रहा है और वे भूल कर रही हैं। वे सोच रही हैं कि पुरुष जैसा हम भी करें। वे उसमें हार जाने वाली हैं। पुरुष का करना और ढंग का है। पुरुष के जीतने का मतलब है जीतना। स्त्री के जीतने का मतलब है हारना। उसका पूरा का पूरा मानस ही भिन्न है। इसलिए जो स्त्री जीतने की कोशिश करेगी वह कभी नहीं जीत पायेगी। उसका जीवन नष्ट हो जायेगा क्योंकि वह पुरुष की कोशिश में लगी है जो कि उसके व्यक्तित्व की सम्भावना ही नहीं। और इसीलिए, पश्चिम में स्त्रियाँ बुरी तरह हार रही हैं क्योंकि वे पुरुष को जीतने की कोशिश में लगी हैं। वह बात ही उन्होंने छोड़ दी है कि 'हम समर्पण करेंगे, हम जीतेंगे। पुरुष को जीतने का एक ही उपाय था कि हार जाओ। इस तरह मिट जाओ कि पता ही न लगे कि तुम हो; और तुम जीत गए। पुरुष बच ही नहीं सकता; तुमसे जीत ही नहीं सकता।

लाओत्से कहता है कि हम पहले से ही हारे हुए थे, इससे हमें कभी कोई हरा नहीं सकता। लाओत्से और महावीर का मार्ग बिल्कुल उल्टा है। एक दम ही उल्टा है, इसमें कोई समानता ही नहीं है। लाओत्से का मार्ग उन लोगों के लिए उपयोगी है जो हारने में समर्थ हैं, महावीर का मार्ग उनके लिए

उपयोगी है जो जीतने में समर्थ हैं, जो सिर्फ जीत ही सकते हैं। इसलिए 'महावीर' शब्द उनको मिल गया। महावीर शब्द मिलने का और कोई कारण नहीं है। लड़ने की, आक्रमण की जो चरम क्षमता है उससे वह महावीर कहलाए। और कोई कारण नहीं है। यानी वहां गुंजाइश नहीं छोड़ी कोई उन्होंने किसी तरह के भय की, किसी तरह के समर्पण की। इसीलिए महावीर परमात्मा को इन्कार करते हैं। उसकी वजह है कि अगर भगवान् है तो समर्पण करना पड़ेगा। हम से ऊपर कोई है यह महावीर मान ही नहीं सकते। पुरुष यह मान ही नहीं सकता कि वह जो पुरुष का चित्त है, उसके ऊपर है कोई। यह असम्भव है। महावीर भगवान् से इन्कार करते हैं। यह दार्शनिक (फिलासफिकल) नहीं है मामला। यह कोई दर्शन का मामला नहीं है कि कोई परमात्मा नहीं है। तुम ही परमात्मा हो। मैं ही परमात्मा हूं। आत्मा शुद्ध होकर परमात्मा हो जाती है। यानी आत्मा ही जब पूर्ण रूप से जीत ली जाती है तो परमात्मा हो जाती है। ऐसा कोई परमात्मा नहीं है जिसके पैरों में तुम सिर झुकाओ, जिसकी तुम प्रार्थना करो। परमात्मा से इन्कार कर देते हैं बिल्कुल क्योंकि परमात्मा है तो समर्पण करना पड़ेगा, भक्ति करनी पड़ेगी। इसलिए परमात्मा से बिल्कुल इन्कार है।

लाओत्से अपने को इन्कार करता है। लाओत्से कहता है : 'मैं हूं ही नहीं। वही है; क्योंकि मैं अगर थोड़ा सा भी बचा तो हमला जारी रहेगा, लड़ाई जारी रहेगी। अगर जरा इंच भर 'मैं' हूं तो वह 'मैं' लड़ेगा।' इसलिए लाओत्से कहता है कि 'मैं हूं ही नहीं। मैं एक सूखा पत्ता हूं। जब हवाएं मुझे पूरब ले जाती हैं, मैं पूरब चला जाता हूं; पश्चिम ले जाती हैं, पश्चिम चला जाता हूं। मैं एक सूखा पत्ता हूं। जब हवाएं नीचे गिरा देती हैं, नीचे गिर जाता हूं; ऊपर उठा लेती हैं, ऊपर उठ जाता हूं। क्योंकि 'मैं हूं ही नहीं।' हवाओं की जो मर्जी है वह मेरी मर्जी है। सूखे पत्ते की तरह 'मैं नहीं हूं।' तो उसके लिए परमात्मा ही रह जाता है।

ये दोनों रास्ते एक ही जगह पहुंचा देते हैं। इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। या तो मैं पूरी तरह मिट जाऊं। तो एक ही बच गया परमात्मा। या परमात्मा को पूरी तरह मिटा दूं तो एक ही बच गया 'मैं'। बस एक ही बच जाना चाहिए आखिर में। दो रहेगा तो उपद्रव है, आसक्ति है। एक ही बचाने के दो उपाय हैं। पुरुष एक को बचा लेता है, एकदम स्त्री को मिटाकर अपने में विलीन कर लेता है। स्त्री भी एक को बचा लेती है, वह अपने को मिटा देती

है और पूरी तरह मिट जाती है। इसमें जो सवाल है किसी के ऊपर-नीचे होने का नहीं है। सवाल टाइप ऑफ माइन्ड का है। वह जो हमारे मस्तिष्क का टाइप है उसका।

तो महावीर का एक है मार्ग, एक है ढंग; बुद्ध का ढ़ंग दूसरा है। बुद्ध की एक नई भाषा खड़ी हो रही है अब, नए प्रतीक खड़े हो रहे हैं। बुद्ध को समझना होगा तो उन्हीं प्रतीकों से समझना होगा। बुद्ध की एक नई मूर्ति निर्मित हो रही है। क्राइस्ट का बिल्कुल और है मार्ग—तीसरा है। क्राइस्ट जैसा तो कोई आदमी नहीं है इनमें से। क्राइस्ट तो बिना सूली पर चढ़े हुए सार्थक ही नहीं। और महावीर अगर सूली पर चढ़े तो हमारे लिए व्यर्थ हो जाएँगे। जो महावीर को एक धारा में सोचते हैं उनके लिए बिल्कुल व्यर्थ हो जाएंगे। लेकिन क्राइस्ट का बिना सूली पर चढ़े अर्थ ही नहीं है। क्राइस्ट का और तरह का व्यक्तित्व है। कृष्ण का और ही तरह का, उसका कोई हिसाब ही नहीं। हम कल्पना ही नहीं कर सकते कि कृष्ण और महावीर में कैसे मेल बिठाएँ, कोई मेल ही नहीं।

और यह सब सार्थक है, सब सार्थक इन अर्थों में कि पता नहीं कौन सा व्यक्तित्व ज्योति की अनुभूति कराए; किस व्यक्तित्व में आपको ज्योति दिखे। आपको उसमें ही ज्योति दिखेगी, जिस व्यक्तित्व का आपका टाइप होगा। नहीं तो आपको नहीं दिखेगी। मैं मानता हूँ कि यह बड़ा विचित्र है कि यह सब भिन्न-भिन्न टाइप हैं, यह भिन्न-भिन्न तरह के लोग हैं, इन-इन भिन्न-भिन्न ज्योतियों से भिन्न-भिन्न तरह के लोगों को दर्शन हो सकते हैं। और हो सकता है, अभी भी बहुत सम्भावना शेष है। और हो सकता है उन्हीं सम्भावनाओं के शेष होने की वजह से बहुत बड़ी मानव जाति अब तक धार्मिक नहीं हो पाई। उसका कारण है कि उस टाइप का आदमी अब तक ज्योति को उपलब्ध नहीं हुआ। मेरा मतलब आपने समझा न? यानी जिसको वह समझ सकता था उस आदमी की पहुँच ही नहीं उस जगह जहाँ से उसको ज्योति दिखाई पड़ जाए।

मेरी अपनी दृष्टि है, मेरा अपना प्रयोग रहा और मैं नहीं समझता कि किसी ने वैसा प्रयोग अब तक किया है। मेरा प्रयोग यह रहा कि मैं अपने व्यक्तित्व का टाइप मिटा दूं। मेरा प्रयोग यह रहा कि मैं सिर्फ व्यक्ति रह जाऊँ अत्यन्त व्यक्तित्वहीन, जिसका कोई टाइप नहीं। जैसे मकान में दो खिड़कियाँ हैं। एक तरफ से हम देखेंगे तो एक दृश्य दिखाई पड़ेगा। दूसरी

तरफ से देखेंगे तो दूसरा दृश्य दिखाई पड़ेगा। और दोनों दृश्य एक ही बड़े दृश्य के हिस्से हैं। जिसको मैं इस खिड़की की बात कहूँ, वह दूसरी खिड़की पर खड़ा हो तो कहेगा सब झूठ है, सरासर झूठ है। कैसी ? कहाँ की झील ? कुछ नहीं है; सब झूठ बात है। मैं भी खिड़की पर खड़ा हूँ। मैं भी बाहर देख रहा हूँ; झील नहीं है, पहाड़ है। और, मैं कहूँ कि कैसा पहाड़ ? झील के अतिरिक्त तो यहाँ कुछ भी नहीं दिखाई पड़ रहा है। और हम लड़ते हैं क्योंकि दूसरे की खिड़की पर जाना बहुत मुश्किल है। क्योंकि दूसरे की खिड़की पर जाने का मतलब दूसरा हो जाना है। और कोई उपाय नहीं। सारा का सारा व्यक्तित्व दूसरे जैसा हो जाए तो उसकी खिड़की पर आप खड़े हो जाएँ। वह हो नहीं सकता; वह बहुत मुश्किल मामला है।

हजार खिड़कियाँ हैं जीवन के भवन में। जिसको जो खिड़की करीब पड़ गई वह उस खिड़की पर जाकर दर्शन कर सकता है। लेकिन एक रास्ता और भी है कि हम मकान के बाहर ही क्यों न आ जाएँ ? दूसरे की खिड़की पर जाना तो बहुत मुश्किल है। लेकिन मकान के बाहर आ जाना मुश्किल नहीं है। और मेरा मानना है कि मकान के बाहर आ जाना सब तरह की खिड़की पर खड़े लोगों के लिए एक जैसा ही आसान है। अगर एक खिड़की को हम पकड़ते हैं तो दूसरे की खिड़की के दुश्मन हो जाते हैं, हो ही जाएँगे। और अगर हम मकान के बाहर आ जाते हैं तो हमें पता लगता है कि उस मकान के भीतर जितनी खिड़कियाँ हैं, वे सब एक ही दृश्य को दिखला रही हैं।

दृश्य बहुत बड़ा है, खिड़कियाँ बहुत छोटी हैं। खिड़कियों से जो दिखाई पड़ता है वह पूरा नहीं। अब अगर कभी भी कोई व्यक्ति बाहर आ जाए, सारी दृष्टियों को, सारे 'मैं' को छोड़कर, तो उसे दिखाई पड़ता है कि 'कृष्ण' एक खिड़की है, 'राम' एक खिड़की है, 'बुद्ध' एक खिड़की है, 'महावीर' एक खिड़की है। महावीर उस खिड़की से छलांग लगा चुके हैं बाहर। लेकिन खिड़की रह गई और उनके पीछे आने वाले खिड़की पर खड़े रह गए। महावीर पहुँच गए बाहर, लेकिन खिड़की से गए बाहर। महावीर तो निकल गए। खिड़की के पीछे जो उनके साथ आये थे, वे खिड़की पर खड़े रह गए। और वे कहते हैं कि जिस खिड़की से महावीर गए वही सत्य है। एक बुद्ध वाली खिड़की है, वहाँ भी लोग सत्य हैं। और, अब दुनिया में सम्भावना इस बात की पैदा हो गई है कि हम मनुष्य को द्वार से बाहर ले जा सकते हैं खिड़की के बाहर ले जा सकते हैं। और वहाँ जो दिखाई पड़ेगा उसमें हमें सब एक से मालूम पड़ेंगे क्योंकि हम

खिड़की के बाहर खड़े होकर देखेंगे। तो मुझे बुद्ध और महावीर में कोई फर्क नहीं दिखाई पड़ता, लेकिन मकान के बाहर खड़े हों तो ही, नहीं तो फर्क है क्योंकि फर्क खिड़की से निर्मित होता है जिससे वह कूदे। वह खिड़की हमारी नजर में रह गई, वह बिल्कुल अलग है। महावीर का ढंग है—अत्यन्त संकल्प का। यानी महावीर कहते हैं कि अगर किसी भी चीज में पूर्ण संकल्प हो गया है तो उपलब्धि हो जाएगी। बुद्ध की बिल्कुल और ही बात है। बुद्ध कहते हैं : संकल्प तो संघर्ष है। संघर्ष से कैसे सत्य मिलेगा ? संकल्प छोड़ो, शान्त हो जाओ। संकल्प ही मत करो तो उस शान्ति में ही सत्य मिलेगा। यह भी ठीक है। यह भी एक खिड़की है। ऐसे भी मिल सकता है। और महावीर भी कहते हैं, वह भी ठीक है। वैसे भी मिल सकता है।

हम इस तरह विचार करें कि अलग-अलग मूर्तियाँ जो बनीं, अलग-अलग मन्दिर बने, मस्जिदें खड़ी हुईं, उनके अलग-अलग प्रतीक हुए, अलग भाषा बनी, अलग कोड बना तो वह बिल्कुल स्वाभाविक था। और फिर भी कोई अलग नहीं है। यानी कभी न कभी एक मन्दिर दुनिया में बन सकता है जिसमें हम क्राइस्ट की, बुद्ध की, महावीर की एक सी मूर्तियाँ ढालें। इसमें कोई कठिनाई नहीं। लेकिन बड़ी कठिनाई यहीं मैं कह रहा हूँ आपसे कि यदि आप महावीर से प्रेम करते हैं तो आप क्राइस्ट की मूर्ति महावीर जैसी ढालेंगे और अगर आप क्राइस्ट से प्रेम करते हैं तो आप महावीर की मूर्ति क्राइस्ट जैसी ढालेंगे। तब फिर बात गड़बड़ हो गई। अगर क्राइस्ट को प्रेम करने वाला आदमी महावीर की मूर्ति ढालेगा तो सूली पर लटका देगा। क्योंकि अभी वह 'कोड' और लैंग्वेज (भाषा) पैदा नहीं हो सकी जो सारी मूर्तियों में काम आ सके। लेकिन वह भी हो सकता है।

बहुत दिनों तक, बुद्ध के मरने के बाद बुद्ध की मूर्ति नहीं बनी क्योंकि बुद्ध ने इन्कार किया है कि मूर्ति बनाना मत। और मूर्ति की जगह केवल प्रतीक चला—बोधिवृक्ष। सात-आठ सौ वर्ष बाद धीरे-धीरे अकेला वृक्ष-प्रतीक रखना मुश्किल हो गया। और बुद्ध की मूर्ति वापस आ गई। अगर हम झाँकना चाहें सबके भीतर, समान के लिए, तो हमें मूर्ति मिटा देनी पड़ेगी। फिर हमें एक नया कोड विकसित करना होगा।

जैसे मुहम्मद की कोई मूर्ति नहीं है। और उस कोड के विकास करने में एक प्रयोग है यह, और वह हिम्मत का है। बुद्ध की मूर्ति नहीं थी परन्तु पाँच-छः सौ साल में हिम्मत टूट गई और मूर्ति आ गई। मुसलमानों ने बड़ी

हिम्मत जाहिर की है। चौदह सौ साल हो गए। मूर्ति को प्रवेश नहीं करने दिया है। खाली जगह छोड़ी। बहुत मुश्किल है, बहुत आसान नहीं है। मन मूर्ति के लिए लालायित हो उठता है। मन कहता है कि कोई रूप? कैसे थे? मन की इच्छा होती है कोई रूप बने। बहुत रूप बनाकर लोगों ने देख लिए। कुछ लोग हैं, जिनके लिए सब रूपों में भूल दिखाई पड़ी है। उन्होंने रूप हटाकर भी देख लिया; रूप नहीं रखा। मुहम्मद को विदा ही कर दिया। मस्जिद खाली रह गई। कुछ लोगों के व्यक्तित्व की दशा बड़ी हो सकती है। बहुत मन्दिर, बहुत मस्जिद बन गए। कुछ लोगों ने मन्दिर और मस्जिद को भी विदा करके देख लिया, तीर्थों को भी विदा करके देख लिया। सब तरह के लोग हैं इस पृथ्वी पर, अनन्त तरह के लोग; अनन्त तरह की उनकी इच्छाएँ; अनन्त तरह की उनकी व्यवस्थाएँ। और सबके लिए समुचित मार्ग मिल सके, इसलिए उचित ही है कि यह भेद रहे। लेकिन वक्त आएगा जैसे जैसे मनुष्यता विकसित होगी वैसे-वैसे हम खिड़की का आग्रह छोड़ देंगे, व्यक्ति का आग्रह छोड़ देंगे। यह पहले भी मुश्किल पड़ा होगा, इतना आसान नहीं है यह। इसलिए, हमने प्रतीक थोड़े से बचा लिए।

चौबीस तीर्थंकर हैं जैनों के। अच्छा तो यह होता कि उनके अलग-अलग प्रतीक भी न रहते लेकिन मन ने थोड़ा सा इन्तजाम किया होगा कि एकदम कैसे कर दें, कि थोड़ा सा चिन्ह रखो कि ये कौन हैं, थोड़ा सा चिन्ह बना लो। उतने में भी भेद हो गया। तो पारस का मन्दिर अलग बनता है, महावीर का मन्दिर अलग बनता है। उनके चिन्ह में भी भेद ला दिया। वह चिन्ह भी विदा कर देने की जरूरत है। लेकिन मनुष्य का मन बदले तभी, उसके पहले नहीं हो सकता है।

आप ठीक पूछते हैं, जो अनुभव हुआ है वह तो एक ही है। लेकिन उस अनुभव को कहा गया अलग-अलग शब्दों में। महावीर कहते हैं; आत्मा को पाना परम ज्ञान है। इससे ऊँचा कोई ज्ञान नहीं। और बुद्ध वहीं, उसी समय में, उसी क्षेत्र में मौजूद रहते हैं और कहते हैं कि आत्मा को मानने से बड़ा अज्ञान नहीं है और दोनों ठीक कहते हैं। और मैं जानता हूँ कि न महावीर इसके लिए राजी हो सकते हैं बुद्ध से; और न बुद्ध इसके लिए महावीर से राजी हो सकते हैं। और दोनों जानते हैं भली भाँति कि कोई भेद नहीं है। और दोनों राजी नहीं हो सकते हम पर करुणा के कारण। राजी हुए तो हमारे लिए व्यर्थ हैं। महावीर इसीलिए बहुत बड़े व्यापक वर्ग को प्रभावित नहीं कर सके

ज़ितना बुद्ध ने इतने बड़े व्यापक वर्ग को प्रभावित किया। उसका कारण है कि महावीर के पास जो प्रतीक थे, वे अतीत के थे और बुद्ध के पास जो प्रतीक थे वे भविष्य के थे। महावीर के पास जो प्रतीक थे उनके पीछे तेईस तीर्थंकरों की धारा थी। प्रतीक पिट चुके थे, प्रतीक प्रचलित हो चुके थे, प्रतीक परिचित हो गए थे। इसीलिए महावीर का बहुत क्रान्तिकारी व्यक्तित्व भी क्रान्तिकारी नहीं मालूम पड़ता था क्योंकि प्रतीक, जो उन्होंने प्रयोग किए, पीछे से आये थे। और बुद्ध का उतना क्रान्तिकारी व्यक्तित्व नहीं था जितना महावीर का। किन्तु वह ज्यादा क्रान्तिकारी मालूम हो सका।

बुद्ध के प्रतीक भविष्य के हैं। यानी बहुत फर्क पड़ता है। भाषा जो बुद्ध ने चुनी वह भविष्य की थी। सच तो यह है कि अभी बुद्ध का प्रभाव और बढ़ेगा। आने वाले सौ वर्षों में बुद्ध के प्रभाव के निरन्तर बढ़ जाने की भविष्यवाणी की जा सकती है क्योंकि बुद्ध ने जो प्रतीक चुने वे आने वाले सौ वर्षों में मनुष्य के और निकट आ जाने वाले हैं, एक दम निकट आ जाने वाले हैं। यानी मनुष्य अभी भी इन प्रतीकों से पूरी तरह चुक नहीं गये हैं, बल्कि करीब आ रहे हैं। इसलिए, पश्चिम में इस समय बुद्ध का प्रभाव एकदम बढ़ता जा रहा है। बुद्ध ने सारे प्रतीक नए चुने हैं, सारी भाषा नई चुनी है। जैसे कि महावीर ने आत्मा की बात की है; बुद्ध ने आत्मा को इन्कार कर दिया है। बुद्ध ने कहा कि आत्मा वगैरह कोई भी नहीं है। महावीर ने इन्कार किया परमात्मा को, परमात्मा नहीं है, मैं ही हूँ। बुद्ध ने परमात्मा की बात ही नहीं की, इन्कार करने योग्य भी नहीं माना। बात ही फिजूल है, चर्चा के योग्य नहीं। और 'मैं हूँ' इसको भी इन्कार कर दिया और कहा कि जो अपने 'मैं' के पूर्ण इन्कार को उपलब्ध हो जाता है, उसका निर्माण हो जाता है।

यह जो आने वाली सदी है, धीरे-धीरे उस जगह पहुँच रही है जहाँ व्यक्ति अनुभव कर रहा है कि व्यक्ति होना भी एक बोझ है। इसको भी इसलिए बिदा हो जाना चाहिए, इसकी भी कोई आवश्यकता नहीं। अहंकार 'इगो' भी एक बोझ है इसे भी विदा हो जाना चाहिए। फिर भी महावीर ने जो व्यवस्था की उसमें मोक्ष पाने का ख्याल है, मोक्ष मिल जाए। उसमें एक उद्देश्य, एक लक्ष्य है, ऐसा मालूम पड़ता है। जो प्रतीक उन्होंने चुने हैं उनकी वजह से ऐसा मालूम पड़ता है कि मोक्ष एक लक्ष्य है। उसके लिए साधन करो, तपस्या करो तो मोक्ष मिलेगा। बुद्ध ने कहा कि कोई लक्ष्य नहीं क्योंकि जब तक लक्ष्य की भाषा है तब तक इच्छा है, वासना है, तृष्णा है। लक्ष्य की बातें

मत करो। उसका मतलब हुआ कि अभी जिओ, इसी क्षण में जिओ, कल की बात मत करो। तो दुनिया, पुरानी दुनिया गरीब दुनिया थी और गरीब दुनिया कभी भी इसी क्षण में नहीं जी सकती। गरीब दुनिया को हमेशा भविष्य में जीना पड़ता है। अगर किसी गरीब आदमी से कहो कि आज ही जिओ तो क्या आप कहते हैं, कल का क्या होगा। लेकिन दुनिया बदल गई है, समृद्ध दुनिया पैदा हो गई है।

अमेरिका में पहली दफा धन इस बुरी तरह बरस पड़ा है कि अब कल का कोई सवाल नहीं। बुद्ध की यह बात कि 'आज इसी क्षण जियो' पहली बार सार्थक हो जाएगी। पहली दफा, कल की चिन्ता करने की जरूरत नहीं। कल का कोई मतलब ही नहीं। आयेगा, आयेगा; नहीं आएगा, नहीं आएगा। गरीब दुनिया जो है वह स्वर्ग बनाती है आगे। वहाँ तृप्तियाँ हैं। यहाँ तो सुख मिलता नहीं, तो आदमी सोचता है मरने के बाद। समृद्ध दुनिया जो है, वह स्वर्ग आगे क्यों बनाए। वह आज ही बना लेती है, इसी वक्त बना लेती है। हिन्दुस्तान का स्वर्ग भविष्य में होता है; अमेरिका का स्वर्ग अभी और यहीं। इसी से हमें इर्ष्या होती है। भौतिकवादी से ईर्ष्या का अधिकार है हमको। इसलिए हम गाली देते हैं, निन्दा करते हैं, उसका भी कारण है। उसका स्वर्ग अभी बना जा रहा है, हमारा मरने के बाद, पक्का भरोसा नहीं कि होगा कि नहीं होगा।

बुद्ध ने जो संदेश दिया वह तात्कालिक जीने का है, उस क्षण जीने का है। महावीर का जो संदेश है, मन के संकल्प का है। संकल्प तनाव (टेन्शन) से चलता है। संकल्प की जो प्रक्रिया है, वह तनाव की प्रक्रिया है, परम तनाव की। और मजे की बात यह है कि सब चीजें अगर उनकी पूर्णता तक ले जाई जाएँ तो अपने से विपरीत में बदल जाती हैं। यह नियम है। अगर आप तनाव को उसके अति (एक्स्ट्रीम) पर ले जाएँ तो विश्राम शुरू हो जाता है। जैसे कि हम इस मुट्ठी को बाँधे और पूरी ताकत लगा दें बांधने में। फिर मेरे पास ताकत ही न बचे तो मुट्ठी खुल जाएगी। क्योंकि जब मेरे पास ताकत नहीं बचेगी और सारी ताकत बाँधने में लग जाएगी और आगे ताकत नहीं मिलेगी बाँधने को तो क्या होगा? मुट्ठी खुल जाएगी। और मैं मुट्ठी को खुलते देखूंगा, बाँध भी नहीं सकूँगा, सारी ताकत तो मैं लगा चुका हूँ, हाँ धीरे से मुट्ठी को बाँधें तो खुल नहीं सकती अपने आप, क्योंकि ताकत मेरे पास सदा शेष है जिससे मैं उसको बाँधे रहूँगा। इसलिए महावीर कहते हैं कि संकल्प पूर्ण कर दो। इतना तनाव पैदा होगा कि तनाव की आखिरी गति आ जाएगी और फिर तनाव समाप्त हो

जाएगा, शिथिल हो जाएगा। ले जाते हैं वे भी विश्राम की ओर लेकिन उनका मार्ग है पूर्ण तनाव से भरा। और बुद्ध कहते हैं कि तनाव कष्टपूर्ण होगा। जितना तनाव है वह भी छोड़ दो।

अब ऐसा हुआ कि बीच में हम खड़े हैं आधे तनाव में। महावीर कहते हैं 'पूर्ण तनाव' ताकि तनाव से बाहर निकल आओ। बुद्ध कहते हैं जितना तनाव है उससे भी पीछे लौट आओ। तनाव ही छोड़ दो। तभी विज्ञान आता है। महावीर की भाषा को अब इस सदी में समझना मुश्किल पड़ जाएगा। क्योंकि कोई तनाव पसंद नहीं करता। तनाव वैसे ही बहुत ज्यादा है। आदमी इतना तना हुआ है इसीलिए मैं कहता हूँ कि भविष्य की जो भाषा है वह बुद्ध के पास है। पश्चिम में महावीर की बात कोई नहीं मानेगा कि और संकल्प करो और तपश्चर्या करो। हम मरे जा रहे हैं वैसे ही। अब हम पर कृपा करो। हमको कुछ विश्राम भी चाहिए। बुद्ध कहते हैं विश्राम का यह रहा रास्ता कि जितना तनाव है वह भी छोड़ दो, पूर्ण विश्रान्त हो जाओ। यह जँचेगा। तनावों से भरा हुआ आदमी जचेगा नहीं।

महावीर के पहले के तेईस तीर्थंकरों के लम्बे काल में प्रकृति के परम विश्राम में आदमी जी रहा था। कोई तनाव न था। विश्राम ही था जीवन में। उस विश्राम में महावीर की भाषा सार्थक बन गई क्योंकि विश्राम की बात सार्थक होती ही नहीं उस दुनिया में। उस दुनिया में आदमी से विश्राम की बात करना बिल्कुल फिजूल था। जैसे बम्बई के आदमी से कहो : चलो डल झील पर वहाँ बड़ी शान्ति है, तो उसको समझ में आता है। डल झील के पास एक गरीब आदमी अपनी बकरियाँ चरा रहा है। उसको कहो तुम कितनी परम शान्ति में हो। वह कहता है कभी बम्बई के दर्शन करने को मन होता है। उसके मन में बम्बई बसी है। कभी बम्बई वह जाए स्वाभाविक है। जो जहाँ है वहाँ से भिन्न जाना चाहता है।

जब सारा जगत् प्रकृति की गोद में बसा हुआ था, न कोई तनाव था, न कोई चिन्ता थी उस स्थिति में संकल्प को बढ़ाकर तनाव को पूर्ण करने की बात ही अपील कर सकती थी। वह भाषा ही काम कर सकती थी। तो वह चली। फिर एक संक्रमण आया। उस संक्रमण में महावीर बहुत प्रभावी नहीं हो सके और जो लोग उनके पीछे भी गए वे भी उनको मान नहीं सके। वह नाम मात्र की यात्रा रही। और नए लोगों को वह उस दिशा में नहीं ला सके क्योंकि नया आदमी उसके लिए राजी नहीं हुआ। रोज-रोज संगठन क्षीण होता गया।

जैसे दिगम्बर जैन मुनि हैं। श्वेताम्बर जैन मुनि महावीर से बहुत दूर हैं क्योंकि उसने बहुत समझौते कर लिए हैं। इसलिए उसकी संख्या ज्यादा है। वह अभी भी हैं समझौते करके। दिगम्बर जैन मुनि ने समझौता नहीं किया, महावीर की जैसी बात थी ठीक वैसा ही प्रयोग किया। तो मुश्किल से बीस-बाईस मुनि हैं पूरे मुल्क में। और हर साल अगर एक मरता है तो फिर पूरा नहीं होता। अगर इक्कीस रह जाते हैं तो बाईस करना मुश्किल होता है। तीस-पैंतीस वर्षों में वे बीस-बाईस जैन-मुनि मर जाएंगे। पचास साल बाद दिगम्बर जैन मुनि का होना असम्भव है। भाषा चली गई। कोई राजी नहीं है। एक मरता है तो वे उसका पूरा नहीं कर पाते, दूसरे को नहीं ला पाते और जिनको वे आज रखे भी हैं उनमें से कोई शिक्षित नहीं है। यानी एक अर्थ में वे पुरानी सदी के लोग हैं, इसलिए राजी भी हैं। एक शिक्षित आदमी को, ठीक आधुनिक शिक्षा पाए हुए आदमी को, दिगम्बर जैन मुनि नहीं बनाया जा सका अब तक, वह बन नहीं सकता। उसकी भाषा सब बदल गई है। तो अशिक्षित, बिल्कुल कम समझ के लोग, गांव के लोग, दक्षिण के लोग हैं, उत्तर का एक जैन मुनि नहीं है दिगम्बरों के पास। और वह भी आज क्यों नहीं बनता? यानी वे भी सब पचपन वर्ष से ऊपर उम्र के लोग हैं जो बीस-पच्चीस वर्षों में विदा हो जाएंगे। एक मरता है तो दूसरा उसकी जगह नहीं ला पाते। वह भाषा मर गई। श्वेताम्बर मुनि की संख्या बची है, बढ़ती है, क्योंकि वह वक्त के साथ भाषा को बदलता रहा है, समझौते करता रहा है। समझौते की तरकीबें निकालता रहा है। समझौते करके ही वह बचा हुआ है। और वह रोज समझौते करता जा रहा है। माइक से बोलना है तो वह माइक से बोलने लगेगा। यह करना है, वह करना है, वह सब समझौते कर रहा है। कल वह गाड़ी में बैठने लगेगा, परसों वह हवाई जहाज में उड़ेगा। वह सब समझौते कर लेगा। वह समझौते करके ही बच रहा है। लेकिन समझौते करने में उसका महावीर से कोई सम्बन्ध नहीं रह गया।

मैं यह कह रहा हूँ कि भविष्य के लिए, महावीर की जो साधना है वह सार्थक हो सकती है और एक ही उपाय है कि उसे भविष्य की भाषा में सिर्फ पूरा का पूरा रख दिया जाए। मैं कहता हूँ कि समझौता जीवन में मत करो। जीवन में समझौता बेईमानी है। समझौता ही बेईमानी है असल में। प्रत्येक युग में जब नई भाषा बनती है तो भाषा बदलती है। नए शब्द चुनेंगे, नई दृष्टि चुनेंगे, नया दर्शन चुनेंगे। और मूल साधना का सूत्र ख्याल में न रह

जाएगा। जैसे मैं कहता हूँ कि आज अगर महावीर की नहीं है कोई अपील सारे जगत् में तो उसका कारण है कि उनकी भाषा बिल्कुल ही पिटी-पिटाई हो गई। लेकिन अब भी हो सकती है अपील। भाषा इस युग के अनुकूल आज हो तो आज अपील हो जाए। अपील आप क्या कहते हैं इसकी नहीं है, अपील इस बात की है कि आप उसको कैसे कहते हैं; वह युग के मन के अनुकूल है या नहीं। नहीं तो वह खो गई अपील। एक तो वह इसलिए पिछड़ गए क्योंकि उन्होंने अतीत की भाषा का उपयोग किया। महावीर एक अर्थ में अतीत के प्रति अनुगत हैं। बुद्ध अतीत के प्रति बिल्कुल नहीं, भविष्य के प्रति अनुगत हैं। अतीत इन्कार ही कर दिया है। इसलिए अपने से पहले किसी परम्परा को उन्होंने नहीं जोड़ा। नई परम्परा को सूत्रबद्ध किया। और भी बहुत से कारण हैं जिनकी वजह से परिणाम नहीं हो सका जितना हो सकता था।

परम्परा पुनरुज्जीवित की जा सकती है। भाषा में कोई कठिनाई नहीं है। लेकिन अनुयायी कभी उसकी हिम्मत नहीं जुटा पाता क्योंकि उसे लगता है कि सब खो जाएगा। भाषा ही उसकी सम्पत्ति है। अगर उसको बदला तो सब खो गया। जबकि भाषा सम्पत्ति नहीं है, भाषा सिर्फ कन्टेनर है, डिब्बा है, विषयवस्तु (कन्टेन्ट) की बात है असल में। इसमें पता नहीं कितना फर्क पड़ता है। अभी मैंने पढ़ा कि एक अमेरिकी लेखक ने एक लाख किताबें छपवाईं लेकिन नहीं बिक सकीं। तीन वर्ष परेशान रहा। तो उसने जानकर विज्ञापन-सलाहकारों से सलाह की। उन्होंने कहा तुमने जो किताबों का नाम रखा है वह पिटा-पिटाया है। किताबों का जो कह्वर (मुखपृष्ठ) है वह गलत है। वह आधुनिक मन के अनुकूल नहीं। इसलिए वह किताबों में रखा रहेगा, कभी उस पर नजर ही नहीं पड़ने वाली किसी खरीदने वाले की। किताब पीछे देखी जाती है, किताब का कह्वर पहले देखा जाता है। तो उसने कह्वर बदल दिये। नए रंग, नई डिजाइन। आधुनिक कला से सम्बन्धित कर दिया, नाम बदल दिये। वे किताबें दस महीनों में ही बिक गईं। और भारी प्रशंसा हुई उन किताबों की। हमेशा ऐसा होता है। महावीर के ऊपर बहुत पुराना कह्वर है। अब नया कह्वर होना चाहिए, और यह जरूरी है। क्योंकि महावीर की धारा का इतना अद्भुत अर्थ है कि वह खो जाए तो नुकसान होगा, सारी मानव जाति का नुकसान होगा। जैनियों को तो नुकसान हुआ कह्वर बदलने से। मानव जाति का नुकसान होगा महावीर की धारा का अर्थ खो जाने से। इसलिए हमें जैनियों के नुकसान की चिन्ता नहीं करनी चाहिए।

मनुष्यजाति की समृद्धि में महावीर आगे भी सार्थक रहें, यह मेरा चाहना है। उस पर जैसे हम उनकी साधना प्रकृति को पूरा समझेंगे तो ख्याल में आ जाएगा लेकिन उसमें क्या है ? जैसे मैं यह कह रहा हूँ उदाहरण के लिए, महावीर की साधना पूर्ण संकल्प की साधना है। और जैन परम्परा कहती है दमन की साधना। दमन शब्द सार्थक नहीं, खतरनाक है। फ्रायड के बाद दमन की जो भी साधना बात करेगी उसके लिए जगत् में कोई स्थान नहीं, हो ही नहीं सकता। अब फ्रायड के बाद दमन का जिस साधना पद्धति में प्रयोग किया, वह पद्धति उस शब्द के साथ ही दफना दी जाएगी। वह नहीं रह सकती है अब। और ऐसा नहीं है कि महावीर की साधना दमन की साधना है। असल में दमन का अर्थ ही और था तब। फ्रायड ने पहली बार दमन को नया अर्थ दिया है जो कभी था ही नहीं।

तब कायाक्लेश शब्द का हम उपयोग करते थे। अब नहीं करते हैं। अब किसी ने कहा 'कायाक्लेश' वह गया। उसी शब्द के साथ डूब जाएगा पूरा का पूरा उसका विचार। क्योंकि काया-क्लेश आने वाले भविष्य के लिए सार्थक नहीं, निरर्थक है। और काया-क्लेश का जो मतलब है वह अब भी सार्थक है। महावीर की पद्धति में जिसको काया-दमन कहा है, वह अब भी सार्थक है। लेकिन यह शब्द बाधा पड़ गया है, एकदम खतरनाक हो गया है। फ्रायड के बाद जो काया-क्लेश दे रहा है वह आदमी खुद को सताने में मजा ले रहा है। वह आदमी रुग्ण है, मानसिक बीमार है जो अपने को सताने में मजा ले रहा है। दो तरह के लोग हैं: जो दूसरों को सताने में मजा लेते हैं सैडिस्ट और जो अपने को सताने में मजा लेते हैं वे हैं मैसोचिस्ट। इसलिए जैनियों की नासमझी में वह महावीर फंस जाने वाले हैं और उनके बचाव का कोई उपाय नहीं है।

और अगर महावीर के शरीर को देखो तो तुम्हें पता चल जाएगा कि तुम्हारी काया-क्लेश की बात नितान्त नासमझी की है। हां, तुम्हारे मुनि को देखो तो पता चलता है कि काया-क्लेश सच है। महावीर की काया को देखकर लगता है कि ऐसी काया को संवारने वाला आदमी ही नहीं हुआ। महावीर को देखकर तो ऐसा ही लगता है। ऐसी सुन्दर काया न बुद्ध के पास थी, न क्राइस्ट के पास थी जैसी महावीर के पास। जितना सुन्दर शरीर महावीर के पास था ऐसा किसी के पास नहीं था। और मेरा अपना मन मानता है कि इतना सुन्दर होने की वजह से वह नग्न खड़े हो सके। असल में नग्नता को छिपाना कुरूपता

को छिपाना है। हम सिर्फ उन्हीं अंगों को छिपाते हैं जो कुरूप हैं। इतने परम सुन्दर हैं वह कि छिपाने को कुछ भी नहीं, नग्न खड़े हो सके हैं। नग्न होने में भी परम सुन्दर हैं। और उनको परम्परा को न पकड़ने वाला, शब्द पकड़ने वाला जो आदमी काया-क्लेश करता है वह शरीर को सता रहा है, वह बिल्कुल पागल है। सताया हुआ शरीर ऐसा नहीं होता जैसा महावीर का है। हाँ, दिगम्बर मुनि को देखने से पता चलता है कि वह शरीर को सता रहा है। कोई भी दिगम्बर मुनि अब तक महावीर जैसा शरीर खड़ा करके नहीं बता सका है। कहीं भूल हो गई है।

महावीर कायाक्लेश किसी और ही बात को कहते हैं। एक आदमी जो सुबह घण्टे भर व्यायाम करता है वह भी काया-क्लेश कर रहा है। वह पसीने-पसीने हो जाता है, शरीर को थका डालता है। और एक वह भी काया-क्लेश कर रहा है जो एक कोने में बिना खाए, पिए, नहाए, धोए पड़ा है। लेकिन पहला आदमी काया के लिए ही काया-क्लेश कर रहा है। दूसरा आदमी काया की दुश्मनी में क्लेश कर रहा है। दोनों का दस वर्ष ऐसा ही क्रम चला तो दोनों को जब खड़ा करेंगे तो नम्बर एक का एक अद्‌भुत सुन्दर शरीर वाला व्यक्ति निकल आएगा और दूसरा एक दीन-हीन, मरा हुआ व्यक्ति हो जाएगा। काया-क्लेश किसलिए? महावीर कहते हैं काया का क्लेश काया के लिए ही है। काया कभी भी वैसी नहीं बन सकती। जैसी बन सकती है उसके लिए श्रम उठाना पड़ेगा। तो क्लेश जो शब्द है वह अब घातक और दुश्मनीपूर्ण मालूम पड़ता है। वह महावीर के लिए नहीं है घातक और दुश्मनीपूर्ण। उस शब्द को पकड़ कर हम महावीर की पूरी वृत्ति को नष्ट कर देंगे। उस शब्द को बदलना पड़ेगा।

अब महावीर के अनुसार उपवास का मतलब होता है अपने पास रहना, आत्मा के पास रहना। जैसे उपनिषद्—गुरु के पास बैठना, ऐसे उपवास—अपने पास होना। लेकिन उपवास का अनशन 'न खाना' अर्थ हो गया है। अब उपवास—का यह अर्थ, नहीं चल सकता—न खाने वाला। न खाने पर जोर दिया तो वह दमन और काया-क्लेश वाली बात है। चार-चार महीने तक कोई आदमी बिना खाए नहीं रह सकता है लेकिन उपवास में रह सकता है। उपवास का मतलब ही और है। उपवास का मतलब है कि एक व्यक्ति अपनी आत्मा में इतना लीन हो गया है कि शरीर का उसे पता ही नहीं तो भोजन भी नहीं करता है। क्योंकि शरीर का पता हो तो भोजन करे, अपने भीतर ऐसा लीन हो गया है

कि शरीर का पता नहीं चलता। दिन बीत जाते हैं, रातें बीत जाती हैं, और शरीर का पता नहीं।

एक संन्यासी मेरे पास आया। वह मेरे सामने ही रुका था, आया, मुझसे मिलने। मैंने कहा आप खाना खाकर जाएँ। उन्होंने कहा कि आज तो मेरा उपवास है। मैंने कहा कैसा उपवास? उन्होंने कहा आप नहीं जानते कैसा उपवास? खाना नहीं लेते दिन भर। मैंने कहा आप इसको उपवास समझते हैं? तो फिर अनशन क्या है? फिर कहते हैं वही चीज है, नाम से क्या फर्क पड़ता है। मैंने कहा तो आप फिर अनशन करते हैं, उपवास का आपको पता नहीं। अगर आप अनशन करेंगे तो ध्यान रहे कि पूरा वास शरीर के पास होगा, आप आत्मा के पास आने वाले नहीं हैं। अनशन का मतलब ही है नहीं खाया, खाने का ख्याल है नहीं खाया, छोड़ा है तो दिन भर शरीर के पास ही मन घूमेगा। भूख लगी है, प्यास लगी है, कल का ख्याल कि कल क्या खाएँगे परसों क्या खाएँगे? मैंने कहा कि उपवास से अनशन बिल्कुल उल्टा है। दोनों में भोजन नहीं खाया जाता लेकिन दोनों उल्टी ही बातें हैं क्योंकि अनशन में आदमी शरीर के पास ही रहता है चौबीस घण्टे जितना कि खाने खाने वाला भी नहीं रहता। दो दफा खा लिया और बात खत्म हो गई। और अनशन वाला दिन भर खाता रहता है, मन ही मन में खाना चलता रहता है।

उपवास का मतलब है कि किसी दिन ऐसे मौज में आ गए हो तुम अपने भीतर कि शरीर की कोई याद न रहे। और महावीर की जो शरीर की तैयारी है वह इसीलिए है कि जब शरीर की याद न रहे तो शरीर इतना समर्थ रहे कि दस-पाँच दिन, महीने झेल जाए। तो झेलेगा कैसे? यह मुनि का शरीर तो झेल ही नहीं सकता। अगर मुनि भीतर चला जाए तो उसका शरीर मर ही जाए क्योंकि शरीर में जो अतिरिक्त ताकत होनी चाहिए झेलने के लिए वह है ही नहीं। अगर बहुत बलिष्ठ शरीर हो तो तीन महीनों तक बिल्कुल आसानी से बिना खाए बच सकता है; नष्ट नहीं होगा। तो महावीर ने अगर चार-चार महीने के उपवास किए हैं तो इस बात का सबूत है कि उनके पास भारी बलिष्ठ शरीर था, साधारण नहीं, असाधारण रूप से कि चार-चार महीने उन्होंने नहीं खाया तो शरीर बचा रहा, शरीर मिट नहीं गया। यह काया-क्लेश करने वाला तो कभी ख्याल भी नहीं कर सकता। वह चार दिन में मर जाएगा अगर उपवास उसका हो जाए। उपवास का मतलब यह है कि आत्मा और चेतना एकदम

भीतर चली जाए कि बाहर का उसको ख्याल ही न रहे। इसका शरीर तो स्वांस छोड़ देगा फौरन। लेकिन शब्दों में ध्यान ही नहीं है।

मैंने उस संन्यासी को कहा कि तुम भी जिस दिन ध्यान करो, ध्यान में इतना डूब जाओ कि उठने का मन न करे तो उठना ही मत तुम। जब उठने का मन हो उठना, न हो तो मत उठना। तो उन्होंने तीन महीने ध्यान किया था। उनके साथ एक युवक रहता था। उसने एक दिन सुबह आकर खबर दी कि आज चार बजे से वह ध्यान में गए हैं तो नौ बज गया है। अभी तक उठे नहीं हैं और उन्होंने कह दिया है कि यदि न उठें तो उठाना मत लेकिन मुझे बहुत डर लग रहा है। वह पड़े हैं। मैंने कहा उन्हें पड़े रहने दो। दो बजे वह फिर दोपहर में आया फिर जरा घबराहट होने लगी क्योंकि वह पड़े ही हैं, न करवट लेते हैं, न हाथ चलाते हैं, कहीं कुछ नुकसान न हो जाए। मैंने कहा तुम मत डरो। आज उपवास हो गया तो हो जाने दो। रात नौ बजे वह फिर आया और कहा अब तो मेरी हिम्मत से बाहर हो गया है और आप चलिए। मैंने कहा कोई जाने की जरूरत नहीं है। ग्यारह बजे रात वह आदमी उठा और भागा हुआ मेरे पास आया। उसने कहा कि आज समझा कि उपवास और अनशन का क्या अर्थ है, कितना भेद है। कभी कल्पना भी नहीं की थी कि ऐसा भी उपवास का अर्थ हो सकता है।

जब आप भीतर चले जाते हैं तो बाहर का स्मरण ही छूट जाता है। उस स्मरण के छूटने में पानी भी छूट जाता है। और शरीर इतना अद्‌भुत यन्त्र है कि जब आप भीतर रहते हैं तो शरीर सावधान हो जाता है, अपनी व्यवस्था पूरी कर लेता है। आपको कोई चिन्ता की जरूरत नहीं। और शरीर को साधना का मतलब है कि शरीर ऐसा हो कि जब आप भीतर चले जाएं तो उसे आपकी कोई जरूरत न हो, वह अपनी व्यवस्था कर ले। वह स्वचालित यन्त्र की तरह अपना काम करता है, आपकी प्रतीक्षा करता रहे कि जब आप बाहर आयेंगे तो वह आपको खबर देगा कि मुझे भूख लगी है, कि मुझे प्यास लगी है, नहीं तो वह चुपचाप झेलेगा, आपको खबर भी नहीं देगा। काया-क्लेश का मतलब है काया की ऐसी साधना कि बाधा न रह जाए, साधन हो जाए, सीढ़ी बन जाए। लेकिन शब्द बड़े खतरनाक हैं इसलिए इसको काया-क्लेश मत कहो, इसको काया-साधना कहो। इसको क्लेश कहा तो क्लेश शब्द ऐसा बेहूदा है कि उससे ऐसा लगता है कि सता रहे हो। उपवास को 'न खाना' मत कहो, अनशन मत कहो, उपवास को कहो आत्मा के निकट होना। आत्मा के निकट

होकर शरीर भूल जाता है। वह दूसरी बात है, वह गौण बात है। अनशन हो जाएगा लेकिन वह दूसरी बात है। अनशन करने से उपवास नहीं होता, उपवास करने से अनशन हो जाता है।

यह सब ख्याल में आ जाए तो महावीर की धारा के खो जाने का कोई कारण नहीं। और अगर जैन मुनि और साधु-संन्यासियों के हाथ में रही तो वह खो जाने वाली है। इसका कोई उपाय ही नहीं, और यह भी ध्यान रहे कि महावीर जैसा आदमी दुबारा पैदा होना मुश्किल है, एकदम मुश्किल है क्योंकि वैसे आदमी को पैदा होने के लिए जो पूरी हवा और वातावरण चाहिए, वह दुबारा असम्भव है। जैसा काल, जैसा चित्त चाहिए, वह दुबारा सम्भव नहीं है। मेरा मतलब है कि कोई आदमी कभी भी नहीं खोना चाहिए। जिसने कोई भी मूल्यवान् बचाया है, वह बचा रहना चाहिए ताकि उसके अनुकूल लोगों के लिए वह ज्योति बन सके। जरथुस्त्र नहीं खोना चाहिए, कनफ्युशियस नहीं खोना चाहिए, मिलरेपा नहीं खोना चाहिए। इन लोगों ने अलग-अलग कोणों से पहुँच कर ऐसी चीज पाई है जो बचनी ही चाहिए। मनुष्य जाति की असली सम्पत्ति वह है। लेकिन वे जो उसको खो रहे हैं, वही उसको बचाने वाले मालूम पड़ते हैं। वे जो उसके रक्षक हैं, वही उसको खोए दे रहे हैं।

२

प्रवचन

महावीर के जन्म से लेकर उनकी साधना के काल के शुरू होने तक कोई स्पष्ट घटनाओं का उल्लेख उपलब्ध नहीं है। यह बड़ी महत्वपूर्ण बात है। जीसस के जीवन में भी पहले तीस वर्षों के जीवन का कोई उल्लेख नहीं है। इसके पीछे बड़ा महत्त्वपूर्ण कारण है। महावीर जैसी आत्माएं अपनी यात्रा पूरी कर चुकी होती हैं पिछले जन्म में ही, घटनाओं का जो जगत् है, वह समाप्त हो चुका होता है। इस जन्म में उनके आने की जो प्रेरणा है उनकी स्वयं की कोई वासना उसमें कारण नहीं है। सिर्फ करुणा कारण है। जो उन्होंने जाना है, जो उन्होंने पाया है उसे बांटने के अतिरिक्त इस जन्म में उनका अब कोई काम नहीं। ठीक से समझें तो तीर्थंकर होने का अर्थ है ऐसी आत्मा जो अब सिर्फ मार्ग दिखाने को पैदा हुई हो। और जो अभी स्वयं ही मार्ग खोज रहा हो वह मार्ग नहीं दिखा सकता। जो खुद ही अभी मार्ग खोज रहा है उसके अभी मार्ग बनाने का कोई अर्थ नहीं। क्योंकि मार्ग क्या है, यह मार्ग पर चलने से नहीं, मंजिल पर पहुंच जाने से पता चलता है। चलते समय तो सभी मार्ग ठीक मालूम होते हैं जिन पर हम चलते हैं, वही मार्ग ठीक मालूम पड़ते हैं। और चलते समय कसौटी भी कहां है कि जिस मार्ग पर हम चल रहे हैं, वह ठीक होगा। क्योंकि मार्ग का ठीक होना निर्भर करेगा मंजिल जाने पर। मार्ग के ठीक होने का एक ही अर्थ है कि जो मंजिल मिला दे। लेकिन यह पता कैसा चलेगा मंजिल मिलाने के पहले कि इस मार्ग से मंजिल मिलेगी। यह तो उसे ही पता चल सकता है जो मंजिल पर पहुंच गया है। लेकिन जो मंजिल पर पहुंच गया है, उसका मार्ग समाप्त हो गया है। और मंजिल पर पहुंच जाना इतना कठिन नहीं है जितना मंजिल पर पहुंच कर मार्ग पर लौटना। साधारणतः कोई भी कारण नहीं मालूम देता कि जो मंजिल पर

पहुँच गया हो वह मंजिल पर विश्राम न करे। दुनिया में मुक्त आत्माएं तो बहुत होती हैं क्योंकि मुक्ति के मंजिल पर पहुँचते ही वह खो जाती हैं निराकार में। लेकिन थोड़ी सी आत्माएं फिर अंधेरे पथों पर वापस लौट आती हैं। ऐसी आत्माएँ जो मंजिल पर पहुँच कर वापस लौटती हैं तीर्थंकर कहलाती हैं। कोई परम्परा उन्हें तीर्थंकर कहती है, कोई परम्परा अवतार कहती है, कोई परम्परा उन्हें ईश्वरपुत्र कहती हैं, कोई परम्परा पैगम्बर कहती हैं। लेकिन पैगम्बर, तीर्थंकर, अवतार का जो अर्थ है, वह इतना है सिर्फ, ऐसी चेतना जिसका काम पूरा हो चुका और लौटने का कोई कारण नहीं रह गया है।

मंजिल खोजना कठिन है; मंजिल पर पहुँच कर जब परम विश्राम का क्षण आ गया तब लौटना उन रास्तों में बहुत मुश्किल है, अत्यन्त कठिन है। इसलिए उन थोड़ी सी आत्माओं को परम सम्मान उपलब्ध हुआ है जो मंजिल पाकर वापस रास्ते पर लौट आती हैं। और यही आत्माएं मार्गदर्शक हो सकती हैं। तीर्थंकर का मतलब है जिस घाट से पार हुआ जा सके। तीर्थ कहते हैं उस घाट को जहाँ से पार हुआ जा सके। और तीर्थंकर कहते हैं उस घाट के मल्लाह को जो पार करने का रास्ता बता दे।

महावीर का इस जन्म में और कोई प्रयोजन नहीं है अब। इसलिए बचपन का सारा जीवन घटनाओं से शून्य है। घटनाएं घटने का कोई अर्थ नहीं हैं। वह बिल्कुल शून्य है घटनाओं से। इसलिए कोई घटनाएं उल्लिखित नहीं हैं, उल्लिखित होने का कोई कारण नहीं है। जीसस का प्रारम्भिक जीवन बिल्कुल शून्य है घटनाओं से। अब यह बड़ी हैरानी की बात है कि आम तौर से जिन्हें हम विशिष्ट पुरुष कहते हैं, उनके बचपन में विशिष्ट घटनाएं नहीं घटती हैं। जिन्हें हम विशिष्ट पुरुष कहते हैं उनका प्राथमिक जीवन बिल्कुल घटनाशून्य होता है। इस अर्थ में घटनाशून्य होता है कि वह लगा है किसी और काम में, अपना अब कोई काम नहीं रहा। बस वह चुपचाप बढ़ता चला जाता है। चारों तरफ चुप्पी होती है, वह चुपचाप बड़ा हो जाता है उस क्षण की प्रतीक्षा में जब वह जो देने आया है कुछ देना शुरू कर दे। मेरी दृष्टि में तो महावीर को वर्धमान का नाम इसीलिए मिला। इसलिए नहीं कि जैसा कहानियों की किताबों में लिखा हुआ है कि उनके घर में पैदा होने से घर में सब चीजों की बढ़ती होने लगी, धन बढ़ने लगा, यश बढ़ने लगा। मेरी दृष्टि में तो नाम ही यह अर्थ रखता है कि जो चुपचाप बढ़ने लगा, जिसके आसपास कोई घटना न घटी यानी जिसका बढ़ना इतना चुपचाप था जैसे पौधे चुपचाप बड़े होते हैं,

कलियाँ फूल बनती हैं और कभी पता नहीं चलता, कहीं कोई शोर गुल नहीं होता, कहीं कोई आवाज नहीं होती। ऐसे चुपचाप बड़ा होने लगा। मैं तो उसमें यही अर्थ देख पाता हूँ कि चुपचाप बढ़ने लगा। और यह चुपचाप बढ़ना दिखाई पड़ने लगा होगा क्योंकि घटनाएँ न घटना बहुत बड़ी घटना है। छोटे से छोटे भी आदमी के जीवन में घटनाएँ घटती हैं, चाहे वे छोटी हों। बड़े आदमी के जीवन में बड़ी घटनाएँ घटती हैं, चाहे कैसी भी हों। लेकिन ऐसा कोई व्यक्ति है जिसके जीवन में कोई घटना न घटी हो, जो इतना चुपचाप बढ़ने लगा हो कि चारों तरफ कोई वर्तुल पैदा न होता हो समय में, क्षेत्र में। तो वह अनूठा दिखाई पड़ा होगा कि वह कुछ विशिष्ट ही है। इसलिए शिक्षक उसे पढ़ाने आए होंगे, उसने इन्कार कर दिया होगा क्योंकि वह पढ़ेगा नहीं। वह पढ़ा हुआ ही है। शिक्षक पढ़ाने आए हैं तो वर्धमान ने मना कर दिया है। क्योंकि शिक्षकों ने पढ़ा है जो उसे पढ़ा सकते हैं, वह पहले से ही जानता है। इसलिए कोई शिक्षा नहीं हुई। शिक्षा का कोई कारण भी न था, कोई अर्थ भी न था। कोई घटना न घटी। वह चुपचाप बड़े हो गये। और हो सकता है कि यह बात भी अनुभव में आई होगी लोगों को। इतने चुपचाप कोई भी बड़ा नहीं हो सकता। ऐसा ही जीसस का भी जीवन है। वे चुपचाप बड़े हो गए हैं।

दूसरी बात ध्यान में रख लेनी जरूरी है महावीर के जन्म के सम्बन्ध में, जो अर्थपूर्ण है। जो गाथा (मिथ) है, जो कहानी है वह यह है कि वह ब्राह्मणी के गर्भ में आए और देवताओं ने गर्भ बदल दिया। और क्षत्रियों के गर्भ में पहुँचा दिया। यह बात तथ्य नहीं है। यह कोई तथ्य नहीं है कि किसी एक स्त्री का गर्भ निकाला और दूसरी स्त्री में रख दिया। लेकिन यह बड़ी गहरी बात है और गहरी बात कई चीजों की सूचना है वह हमें समझनी चाहिए। पहली सूचना तो यह है कि महावीर का जो पथ है वह पुरुष का, आक्रमण का, क्षत्रिय का है। महावीर का जो व्यक्तित्व है और उनकी खोज का पथ है वह क्षत्रिय का है। क्षत्रिय का इन अर्थों में कि वह जीतने वाले का है। और इसीलिए महावीर जिन कहलाए। जिन का मतलब है जीतने वाला, जिसका और कोई पथ नहीं सिवाय जीतने के। जीतेगा तो ही उसका मार्ग है। और इसलिए पूरी परम्परा जैन हो गई। तो यह बड़ी मीठी कहानी चुनी है। ब्राह्मणी के गर्भ में था किन्तु देवताओं को उसे उठाकर क्षत्रिया के गर्भ में कर देना पड़ा। क्योंकि वह बच्चा ब्राह्मण होने को न था।

अब ब्राह्मण भी समझने जैसी बात है। ब्राह्मण का अपना मार्ग है। जैसे मैंने कहा पुरुष का एक मार्ग है आक्रमण का, स्त्री का एक मार्ग है समर्पण का। ब्राह्मण का एक मार्ग है भिक्षा माँग लेने का। यानी ब्राह्मण यह कह रहा है कि परमात्मा से लड़ोगे? अशोभन है। समर्पण करोगे किसके प्रति? उसका अभी कोई पता नहीं है। लेकिन अज्ञात घेरे हुए है चारों तरफ और हम अत्यन्त क्षुद्र और दीन-हीन हैं। हम जीत नहीं सकते और हम समर्पण भी क्या करेंगे? हमारे पास समर्पण को भी क्या है? दीनता, हीनता इतनी है, असहाय हम इतने हैं तो देंगे क्या हम? देने को क्या है? और छीनेंगे कैसे? एक ही मार्ग है कि हाथ फैला दें विनम्रता से। और भिक्षा में हम ले लें। तो ब्राह्मण का जो मार्ग है, ब्राह्मण की जो वृत्ति है वह भिक्षुक की है।

कहानी कहती है कि महावीर जैसा व्यक्ति अगर ब्राह्मण के गर्भ में आ जाएगा तो देवताओं को उसे हटा कर क्षत्रिया के गर्भ में रख देना पड़ेगा। वह व्यक्तित्व ब्राह्मणी का नहीं है। और व्यक्तित्व गर्भ से आते हैं। वह व्यक्तित्व ही जन्मना क्षत्रिय का है। जो जीतेगा, माँग नहीं सकता है। महावीर ऐसे हाथ नहीं फैला सकते, परमात्मा के सामने भी नहीं, किसी के भी सामने नहीं; वह जीतेंगे। जीत कर ही अर्थ है उनकी जिन्दगी का। और इस देश में जो परम्परा थी, उन क्षणों में जो परम्परा थी, सर्वाधिक प्रभावी, वह ब्राह्मणों की थी। वह असहाय, माँगने वाले की थी। अद्‌भुत है यह बात। इतनी आसान नहीं जितना कोई सोचता हो। क्योंकि असहाय होना बड़ी अद्‌भुत क्रान्ति है, बिलकुल असहाय हो जाना। वह भी एक मार्ग है; लेकिन वह मार्ग बुरी तरह पिट गया था, असहाय ब्राह्मण मरा दम ही हो गया था। जो अद्‌भुत घटना घट गई थी वह यह थी। क्योंकि मार्ग तो था असहाय होने का लेकिन परम्परा इतनी गाढ़ी हो गई थी, इतनी मजबूत हो गई थी कि असहाय ब्राह्मण सबसे ज्यादा अकड़ कर सड़क पर खड़ा था। ब्राह्मण की जो मौलिक धारणा थी वह खंडित हो चुकी थी। ब्राह्मण गुरु हो गया था, ब्राह्मण ज्ञानी हो गया था, ब्राह्मण सबसे ऊपर बैठ गया था। वह जो असहाय होने की धारणा थी वह खो गई थी। उस बात को तोड़ देना जरूरी था। इसको बड़े प्रतीक रूप में कथा कहती है कि ब्राह्मणी के गर्भ में भी आकर देवताओं को हटा देना पड़ा। यानी ब्राह्मणी का गर्भ अब महावीर जैसे व्यक्ति को पैदा करने में असमर्थ हो गया था। उसका यह मतलब है कि ब्राह्मण की दिशा से महावीर जैसे व्यक्ति के होने की सम्भावना न थी। सूख गई थी धारा, अकड़ गई थी, ऐंठ गई थी, गलत हो

गई थी। अब क्षत्रिय की धारा है। इसलिए जो संघर्ष था उस दिन वह बहुत गहरे में ब्राह्मण और क्षत्रिय के मार्ग का संघर्ष था। और यह थोड़ी सोचने की बात है कि जैनों के चौबीसों तीर्थंकर ही क्षत्रिय हैं। असल में वह मार्ग ही क्षत्रिय का है। कोई पूछता है कभी कि क्या क्षत्रिय के अलावा और कोई तीर्थंकर नहीं हो सकता ? नहीं हो सकता। चाहे वह बेटा ब्राह्मणी के ही गर्भ से क्यों न पैदा हो वह होगा क्षत्रिय ही, तो ही उस मार्ग पर जा सकता है। वह मार्ग आक्रमण का है, वह मार्ग विजय का है। वहाँ भाषा विजय की और जीत की है।

दूसरी बात लोग निरन्तर पूछते हैं कि क्या गरीब का बेटा तीर्थंकर नहीं हो सकता ? वह सब राजपुत्र थे—क्षत्रिय और राजकुल के। यह भी बहुत अर्थपूर्ण है कि जो अभी इस संसार को ही नहीं जीत पाया है, वह उस संसार को कैसे जीतेगा ? आक्रमण का मार्ग है न ? तो अभी जब इस संसार में ही नहीं जीत पाए तो वहाँ कैसे जीत लोगे ? यह इतनी छोटी सी जीत नहीं तय कर पाए तो उस बड़ी जीत पर कैसे जाओगे ? इसलिए चौबीसों बेटे राजपुत्र हुए हैं। राजपुत्र इस अर्थ के सूचक हैं कि जीतने वाला जो है वह कुछ भी जीतेगा। और जब वह इसको जीत लेगा तब उसकी तरफ उसकी नजर उठेगी। जब वह इस लोक को जीत लेगा तब उस लोक को जीतेगा। जीत के मार्ग पर पहले यही लोक पड़ने वाला है। ब्राह्मण इस लोक में भी भिक्षा माँगेगा, उस लोक में भी। वह मानता ही यह है कि प्रसाद से ही मिलेगा जो मिलना है। आक्रमण की बात ही नहीं है कोई। ग्रेस से, प्रभु की कृपा से मिलेगा। जो इतिहास के क्षेत्र में शोध करने वालों ने ब्राह्मणजाति के विरुद्ध क्षत्रिय जाति के संघर्ष की चर्चा की है वह निराधार है।

ब्राह्मण और क्षत्रिय ऐसी दो जातियों का कोई संघर्ष नहीं, संघर्ष है ऐसी दो परम्पराओं का, ऐसे दो मार्गों का जो सत्य की खोज में निकले हों। और तब एक मार्ग कुण्ठित हो जाता है,—और सब मार्ग कुण्ठित हो जाते हैं सीमा पर जाकर क्योंकि सब मार्ग अहंमन्य हो जाते हैं। ब्राह्मण का मार्ग प्राचीनतम मार्ग है। वह कुण्ठित हो गया है। उसके विरोध में बगावत जरूरी थी। वह बगावत क्षत्रिय से आनी स्वाभाविक थी क्योंकि हमेशा बगावत ठीक विपरीत से आती है, विद्रोह जो है ठीक विपरीत से आता है। ब्राह्मण है माँगने वाला; क्षत्रिय है जीतने वाला। एक दान और दया में लेगा; दूसरा दुश्मन को समाप्त करके लेगा। ठीक बगावत विपरीत वर्ग से आने वाली थी, इसलिए वह क्षत्रिय थे। इसलिए वह जन्म की कथा बड़ी मीठी है। यानी वह यह बताती है कि

ब्राह्मण की जो कोख थी, वह बाँझ हो गई है। अब उसमें महावीर जैसा व्यक्ति पैदा नहीं हो सकता। वह परम्परा क्षीण हो गई थी, सूख गई थी। ब्राह्मण उस युग में महावीर या बुद्ध की हैसियत का एक भी आदमी पैदा नहीं कर पाया। वह मार्ग सूख गया था। उसने पैदा किया आगे लेकिन वक्त लग गया डेढ़ हजार वर्ष का। फिर आया संघर्ष। डेढ़ हजार वर्ष में महावीर और बुद्ध ने जो परम्परा छोड़ी थी वह सूख गई और जड़ हो गई। तब ठीक विपरीत विद्रोह फिर काम कर गया। ये जो प्रतीक इस तरह चुने हैं बड़े अर्थपूर्ण हैं। और इन प्रतीकों को जो जड़ता से तथ्यों की भाँति पकड़ लेता है वह बिल्कुल भटक ही जाता है। उसे पता ही नहीं चलता कि क्या अर्थ हो सकता है। महावीर के जीवन में मैं कहता हूँ कोई घटना नहीं घटी।

लेकिन कुछ बातें सोचने जैसी हैं। जैसे दिगम्बर कहते हैं कि महावीर अविवाहित रहे। मजेदार घटना है। और श्वेताम्बर कहते हैं कि वे न केवल विवाहित हैं बल्कि उनकी बेटी भी हुई। कितनी ही चीजें विकृत हो जाएँ, लेकिन यह असम्भव है कि एक अविवाहित व्यक्ति के साथ एक पत्नी और लड़की भी जुड़ जाएँ। यह करीब-करीब असम्भव है। लेकिन यह भी असम्भव है कि एक विवाहित व्यक्ति और उसकी एक लड़की और दामाद के होते हुए एक परम्परा उसे अविवाहित घोषित करे। यह दोनों बातें असम्भव हैं। ये बातें कैसे सम्भव हो सकती हैं? अगर विवाह हुआ हो, लड़की हुई हो, दामाद हो और ये सब बातें तथ्य हों तो कोई कैसे इन्कार करेगा इस बात को कि यह हुआ ही नहीं। यहाँ सिर्फ यह बात समझ लेनी है कि तथ्य जरूरी नहीं सदा सत्य हो। बहुत बार तथ्यों में बुनियादी हेर-फेर हो जाती है। और जो सत्य को नहीं देख पाते वे सिर्फ मृत तथ्यों को संगृहीत कर लेते हैं। मेरा मानना है कि महावीर का विवाह जरूर हुआ होगा लेकिन वे बिल्कुल अविवाहित की भाँति रहे होंगे। जिन्होंने यह तथ्य देखा उन्होंने कहा कि विवाह जरूर हुआ। और जिन्होंने सत्य देखा उन्होंने कहा कि वह आदमी अविवाहित था। अविवाहित होना एक सत्य है और विवाहित होना एक तथ्य है।

कोई व्यक्ति बिना विवाहित हुए विवाहित हो सकता है, मन से, चित्त से, वासना से। और विवाहित होने की वासना क्या है, इसे हम समझ लें। विवाहित होने की वासना है कि मैं अकेला काफी नहीं, पर्याप्त नहीं। दूसरा भी चाहिए जो आए और मुझे पूरा करे। विवाहित होने का मतलब क्या है? विवाहित होने का गहरा मतलब है कि मैं अपने में पर्याप्त नहीं हूँ। जब तक कि

कोई मुझे मिले, जोड़े और पूरा न करे, पुरुष अपर्याप्त है अपने में, आधा है, स्त्री जोड़े यह विवाहित होने की कामना है। यह विवाहित होने का चित्त है। स्त्री अधूरी है अपने में। पुरुष के बिना खाली है। पुरुष आए और उसे भरे और पूरा करे। यह विवाहित होने की कामना है। तो दिगम्बरों को मैं कहता हूँ उन्होंने ठीक ही कहा कि महावीर अविवाहित थे। क्योंकि उस व्यक्ति में किसी से पूरे होने की काई कामना न बची थी। वह पूरा था। कहीं कोई अधूरापन न था जो किसी और से उसे पूरा करना है। इसलिए यह मैं मानता हूँ कि श्वेताम्बरों से दिगम्बरों की आँख गहरी पड़ी, बहुत गहरी पड़ी। बहुत गहरा देखा उन्होंने कि यह आदमी अविवाहित है। इस साधारण तथ्य के लिए कि स्त्री से उसका विवाह हुआ है, उसको विवाहित कहना एकदम अन्याय हो जाएगा। आप मेरा मतलब समझ रहे हैं? एकदम अन्याय हो जाएगा इस आदमी को विवाहित कहना क्योंकि यह आदमी बिल्कुल अविवाहित है। और इसलिए सम्भव हो सका कि जिन्होंने गहरे देखा उन्हें वह अविवाहित दिखाई पड़े और जिन्होंने तथ्य देखा उनके लिए वह विवाहित होने का तथ्य ठीक था। विवाह तो हुआ था। और यह आदमी अपने में इतना पूरा था कि दूसरा इसके पास हो सकता है, दूसरा इसके निकट हो सकता है, दूसरा चाहे तो इससे अपने को भर सकता है लेकिन इस आदमी को दूसरे की अपेक्षा नहीं। इसलिए यह हो सकता है कि पत्नी ने पति पाया हो लेकिन महावीर ने पत्नी नहीं पाई। इसलिए उन दिगम्बरों की आँख गहरी गई। वे कहते हैं कि पत्नी नहीं थी इस आदमी के पास। यह हो सकता है कि पत्नी ने पति पाया हो। यह भी हो सकता है कि पत्नी ने इससे सन्तान पाई हो। लेकिन महावीर पिता नहीं थे और न पति थे। यह घटना घटी भी हो तो अत्यन्त बाह्य तल पर घटी। लेकिन भीतर यह आदमी पूरा था। इस पर जोर देने के लिए दिगम्बरों ने कहा कि इस आदमी ने कभी शादी नहीं की। मगर उनसे भी जैसे-जैसे बात आगे बढ़ी, भूल होती चली गई। वह तथ्य से इन्कार करने लगे। उनको भी ख्याल न रहा इस बात का कि तथ्य यह था कि शादी की थी। और मैं मानता हूँ कि यह बात भी अर्थपूर्ण है कि महावीर ने इन्कार नहीं किया शादी के लिए। असल में जो शादी के लिए आतुर हो वह, और जो शादी के लिए इन्कार करता है वह, दोनों स्त्रियों को अर्थ देते हैं। इन्कार करने वाला भी अर्थ देता है, इन्कार करने वाला भी भय प्रकट करता है, इन्कार करने वाला भी पलायन करता है। इन्कार करने वाला भी मानता है कि स्त्री कुछ है जो पास होगी, तो मैं कुछ और हो जाऊँगा। महावीर ने ना भी न की होगी इसलिए शादी हो गई होगी। ना कर

देते तो शादी रुक सकती थी। लेकिन ना तक भी न की होगी। आदमी इतना पूरा था कि ना करने तक का उपाय न था। ठीक है, स्त्री आती है तो आए, न आती है तो न आए। ये दोनों बातें अर्थहीन हैं। अन्य घटनाओं से भी लगता है कि यह बात सच रही होगी।

महावीर ने आज्ञा चाही है पिता से कि मैं संन्यासी हो जाऊँ। पिता ने कहा—मेरे रहते नहीं। मैं जब तक जीवित हूँ तब तक तुम बात ही मत करना दुबारा। और महावीर चुप हो गए। अद्भुत आदमी रहा होगा। जिसको संन्यास लेना हो वह ऐसा काम करे कि आज्ञा माँगे! पहली बात यह कि जिसको संन्यास लेना हो वह आज्ञा क्यों माँगे? संन्यास का मतलब ही यह है कि मोह-बंधन तोड़ रहा है। संन्यास की भी आज्ञा माँगनी पड़ती है? जैसे कोई आत्महत्या करने की आज्ञा माँगे कि मैं आत्महत्या करना चाहता हूँ, आप आज्ञा देते हों? तो कौन आज्ञा देगा? संन्यास की कभी आज्ञाएँ दी गई हैं, संन्यास लिया जाता है। और महावीर ने आज्ञा माँगी संन्यास की, कि मैं संन्यास ले लूँ। कौन पिता राजी होगा और महावीर जैसे बेटे का? ऐसे बेटे हैं उनके, और पिता संन्यास के लिए राजी हो जाए? महावीर जैसे बेटे का कोई पिता राजी होगा संन्यास के लिए? इन्कार किया होगा और कहा होगा कि मैं मर जाऊँ तब यह बात करना, यह बात ही मत करना मुझसे। और मजा यह है, घटना यह है कि यह लड़का तो बहुत अद्भुत है, यह चुप हो गया और फिर इसने बात ही न की। **निश्चित ही संन्यास लेने या न लेने से कोई बुनियादी फर्क न पड़ता होगा इसको।** इसलिए जोर भी नहीं है कोई कि ठीक है, नहीं भी हुआ तो भी चलेगा। पिता मर गए तो मरघट से लौटते वक्त अपने बड़े भाई से कहा कि मुझे आज्ञा दे दें। अब तो पिता चल बसे, मैं संन्यासी हो जाऊँ। बड़े भाई ने कहा तुम पागल हो गए हो। एक तो पिता के मरने का दुख और तुम अभी मुझे छोड़कर चले जाओगे। और घर भी नहीं पहुँचे, वह भी अभी रास्ते पर। मुझसे यह बात कभी मत करना। तो बड़ी मजेदार घटना है कि महावीर ने फिर यह बात ही नहीं की। फिर वह घर में ही रहने लगे। लेकिन थोड़े ही दिनों में घर के लोगों को पता चला कि महावीर जैसे नहीं हैं। हैं घर में, और नहीं हैं। उनका होना न होने के बराबर है। न वे किसी मार्ग में आड़े आते हैं, न वे किसी की तरफ देखते हैं; न, कोई उन्हें देखे, इसकी आतुरता रहती है। वे ऐसे हैं जैसे उस बड़े भवन में अकेले हैं, जैसे कोई है ही नहीं। कोई उनसे पूछे, 'हाँ और ना' में जवाब माँगे तो भी नहीं देते। किसी पक्ष

और विपक्ष में नहीं पड़ते। किसी वाद-विवाद में रस नहीं लेते। घर में क्या हो रहा है, नहीं हो रहा है, उन्हें कुछ प्रयोजन नहीं। अतिथि हो गए हैं। तो घर के लोगों को लगने लगा कि वह तो गए ही। सिर्फ शरीर रह गया है। तब घर के लोगों ने कहा कि शरीर को रोकना उचित नहीं। जो जा ही चुका है—हम इसे भी रोकने के भागीदार क्यों बनें? तब घर के लोगों ने प्रार्थना की कि अब आपकी मर्जी हो तो आप संन्यास ले लें क्योंकि हमारी तरफ से तो लगता है संन्यास पूरा हो ही गया। आप घर में हैं या नहीं, बराबर हो गया। हम क्यों इस पाप के भागीदार हों कि आपको रोक लें? और महावीर चल पड़े। ऐसा जो व्यक्ति है उसने शादी के वक्त यह भी नहीं कहा होगा कि नहीं करनी है। क्योंकि नहीं करने में भी तो स्त्री को हम मूल्य देते हैं, दूसरे को मूल्य देते हैं, डरते हैं कि नहीं करनी है। शादी के बाद भी ऐसे रहा होगा जैसे कि शादी के पहले रहता था। कुछ फर्क ही न पड़ा होगा। इसलिए जिन्होंने गहरे देखा उन्होंने माना कि वह अविवाहित हैं। जैसा कि मैंने कहा कि जीसस की माँ कुँवारी है और बेटे को जन्म दिया क्योंकि उसके कुँवारेपन में ही पैदा हो सकता है जीसस जैसा बेटा। महावीर जैसा व्यक्ति पति हो, कैसे हो सकता है? यानी पति होने की जो धारणा है, उसे हम थोड़ा सोचें और समझें कि महावीर जैसा व्यक्ति पति कैसे हो सकता है?

पति में पहले तो स्वामित्व है और जो व्यक्ति जड़ वस्तु पर भी स्वामित्व नहीं रखना चाहता वह किसी जीवित व्यक्ति पर स्वामित्व रखेगा, यह असम्भव है। यह कल्पना ही असम्भव है। यानी जो धन को भी नहीं कह सकता कि मैं इसका मालिक हूँ, वस्तु के साथ भी ऐसा दुर्व्यवहार नहीं कर सकता मालिक होने का, वह किसी जीवित स्त्री के साथ मालिक होने का दुर्व्यवहार कैसे करेगा? पति होना एक तरह का दुर्व्यवहार है, एक प्रभुत्व है, एक स्वामित्व है। महावीर पति नहीं हो सकते और महावीर पिता भी कैसे हो सकते हैं? हां, लड़की जन्मी हो, यह हो सकता है। पिता की कामना क्या है, यह भी हम ठीक से समझ लें।

पिता की कामना है, स्वयं को, स्वयं की देह को, स्वयं के अस्तित्व को दूसरे के माध्यम से आगे जारी रखना। पिता की कामना का अर्थ क्या है? आखिर कोई पिता होना क्यों चाहता है? कामना यह है कि मैं तो नहीं रहूँगा, कोई फिक्र नहीं। लेकिन मेरा अंश रहेगा, रहेगा और रहेगा। इसलिए बांझ पिता दुखी है, बांझ माँ दुखी है। दुख क्या है? दुख है खत्म हो गई एक रेखा—जहाँ हम समाप्त हो रहे हैं, जहाँ से हम में से कुछ भी नहीं बचेगा जीवित। जैसे एक

शाखा जिसमें आगे पत्ते आना बन्द हो गए। पिता की आकांक्षा क्या है ? पिता की आकांक्षा है कि चाहे यह शरीर मर जाए लेकिन इस शरीर का एक अंश फिर शरीर निर्मित कर लेगा और रहेगा। मैं जीऊँगा दूसरों में। इसलिए बाप बेटे को बनाने के लिए इतना आतुर है। बेटे में बाप की महत्वाकांक्षा और अहंकार जीना चाहते हैं। बेटे के रूप में वे बने रहना चाहते हैं।

महावीर जैसे व्यक्ति को बने रहने की आकांक्षा का सवाल ही नहीं। न अहंकार है, न होने की तृष्णा। न होने का अनुभव करके लौटा हुआ आदमी है। जहाँ सब खो जाता है, वहाँ से लौटा हुआ आदमी है। तो इसको ख्याल हो सकता है कि पिता बनो ? हाँ यह हो सकता है लड़की पैदा हुई हो। इस बात को ठीक से समझे बिना गड़बड़ हो जाती है, कठिनाई हो जाती है। जब लड़की पैदा हुई तो महावीर पिता हैं। ऐसा तथ्य पकड़ने वाले को दिखेगा। मगर जो सत्य को पकड़ने जाता है उसके लिए लड़की का होना न होना अप्रासंगिक है। हो सकता है महावीर की पत्नी, जो अपने को पत्नी मानती रही हो माँ भी बनना चाही हो, और माँ बन गई हो। लेकिन महावीर पिता नहीं बन पाएं। और इसलिए एक धारा में जिन्होंने देखा, उन्होंने बिल्कुल इन्कार कर दिया और कहा कि आदमी ऐसा था ही नहीं, यह बात ही झूठ है। लेकिन उन्होंने तथ्य को इन्कार किया और दूसरों ने तथ्य को पकड़ लिया। और सत्य को देखना बहुत मुश्किल होता है। तथ्य आवरण बन जाता है।

एक छोटी कहानी मुझे याद आती है। एक गाँव के बाहर एक नग्न मुनि ठहरा हुआ है। सम्राट् की पत्नियाँ उसे भोजन कराने गाँव के बाहर जा रही हैं। नदी दूर पर है, कोई पुल नहीं, कोई नाव नहीं। वे अपने पति से, सम्राट् से पूछती हैं कि हम क्या करें ? कैसे पार जाएँ ? तो वे कहते हैं कि तुम नदी से जाकर कहना कि यदि मुनि जीवन भर के उपासे हों तो मार्ग मिल जाय। नदी मार्ग दे देगी अगर उस पार ठहरा हुआ वह मुनि जीवन भर का उपवास किया हुआ है। तो उन्होंने जाकर कहा है। और कहानी है कि नदी ने मार्ग दे दिया। वे बहुत बहुमूल्य भोजन बनाकर, स्वादिष्ट मिष्ठान्न बनाकर ले गई—मुनि के सामने रखती हैं। मुनि उनकी सारी थालियाँ साफ कर गए हैं, कुछ भी नहीं बचा है। अब वे लौटने को हुई तब बड़ी चिन्तित हुई कि अभी तो नदी को कहकर हम लौट आई थीं कि मुनि अगर जीवन भर के उपासे हों तो—अब क्या करेंगी ? मुनि से पूछती हैं कि अब हम क्या करें ? अभी तो हम कह कर आ गई थीं कि आप जीवन भर के उपासे हैं; लेकिन

अब तो यह नहीं कह सकती हैं। सामने ही भोजन कर लिया है। तो मुनि ने कहा कि इससे क्या फर्क पड़ता है। तुम जाओ और नदी से यही कहो कि अगर मुनि जीवन भर के उपासे हैं तो नदी राह दे दे। उन स्त्रियों को बड़ी मुश्किल हो गई क्योंकि भोजन थोड़ा भी नहीं, बहुत ज्यादा, पूरा ही मुनि कर गए हैं, कुछ छोड़ा भी नहीं है पीछे और फिर भी कहते हैं उपासे हैं। बड़ी शंका में, बड़े सन्देह में उन्होंने नदी से जाकर कहा। खुद पर हँसी आती है कि यह कैसे सम्भव है। लेकिन नदी ने फिर मार्ग दे दिया। तो वे लौटकर अपने पति से पूछती हैं। जाते वक्त जो घटा वह बहुत छोटा चमत्कार था। लौटते वक्त जो घटा है, उस चमत्कार का मुकाबला ही नहीं। जाते वक्त भी चमत्कार हुआ था कि नदी ने मार्ग दिया। लेकिन वह बहुत छोटा हो गया अब। वह मुनि जो कि सब खा गए और फिर उपवासे हैं ! उनके पति ने कहा जो उपवास स्थायी ही है उसी के करने वाले को हम मुनि कहते हैं। भोजन से उपवास का कोई सम्बन्ध नहीं है। असल में भोजन करने की तृष्णा एक बात है और भोजन करने की जरूरत बिल्कुल दूसरी बात है। भोजन की तृष्णा भोजन न करो तो भी हो सकती है। भोजन करना और उसकी जरूरत बिल्कुल दूसरी बात है। भोजन करो तो भी हो सकता है तृष्णा न हो। जब तृष्णा छूट जाती है और सिर्फ जरूरत रह जाती है शरीर की तो आदमी उपवासी है। जैसा मैंने सुबह कहा वह भीतर वास किए चला जाता है। शरीर की जरूरत है—सुन लेता है, कर देता है। इससे ज्यादा कोई प्रयोजन नहीं है। खुद कभी भी उसने भोजन नहीं किया है। तो अगर यह हो सकता है तो फिर महावीर पिता नहीं होंगे, लड़की हो तो भी; पति नहीं होंगे अगर पत्नी हो तो भी। तथ्य अक्सर सत्य को ढांक लेते हैं और हम सब तथ्यों को ही देख पाते हैं और हमारा ख्याल होता है कि तथ्य बड़े कीमती हैं। और तथ्य के बहुत पहलू हो सकते हैं।

मैंने सुना है एक अदालत में एक मुकदमा चला। एक आदमी ने एक हत्या कर दी है। आँखों देखे गवाह ने कहा कि खुले आकाश के नीचे यह हत्या की गई है। जब हत्या की गई, मैं मौजूद था। और आकाश में तारे थे। दूसरे आदमी ने कहा कि यह हत्या मकान के भीतर की गई है, मैं मौजूद था। चारों तरफ दीवार से बन्द परकोटा था। द्वार पर मैं खड़ा था। चारों तरफ दीवार थी, मकान था जिसके भीतर हत्या की गई है। उस न्यायाधीश ने कहा कि मुझे बहुत मुश्किल में डाल दिया है तुमने क्योंकि एक कहता है

खुले आकाश के नीचे और दूसरा कहता है मकान के भीतर। एक तीसरे आँख वाले गवाह ने जिसने खुद देखा था कहा कि दोनों ही ठीक कहते हैं। मकान अधूरा बना था। अभी सिर्फ दीवार ही उठी थी ऊपर आकाश में तारे थे—छप्पर नहीं था मकान पर। और ये दोनों ही ठीक कहते हैं। आकाश में तारे थे और खुले आकाश के नीचे ही हत्या हुई। चारों तरफ दीवार थी और मकान था, वह भी सच है। जीवन बहुत जटिल है और एक ही तथ्य को हम बहुत तरह से देख सकते हैं और फिर दूसरी गहराई यह कि तथ्य जरूरी नहीं कि सत्य हो। सत्य कुछ और भी हो सकता है, तथ्य से विपरीत भी हो सकता है। लेकिन चूंकि हम तथ्यों को ही जाते हैं और सत्यों से हमारा कोई सम्बन्ध नहीं, इसलिए अक्सर हम तथ्यों को पकड़ लेते हैं और तब मुश्किल में पड़ जाते हैं और बहुत कठिनाई पैदा हो जाती है।

जैनियों के एक तीर्थंकर हैं। श्वेताम्बर मानते हैं कि वह स्त्री है, दिगम्बर मानते हैं कि वह पुरुष है। ऐसा झगड़ा हो सकता है एक व्यक्ति के सम्बन्ध में। यह झगड़ा भी हो सकता है दो परम्पराओं में कि वह स्त्री है या पुरुष। अब यह तो बड़ी सीधी तथ्य की बातें हैं। इनमें भी झगड़ा हो सकता है। लेकिन तथ्य बड़ा झूठा बोल सकते हैं, और जब कभी सत्य के विपरीत होता है तो कठिनाई पैदा हो जाती है। हो सकता है कि जिस तीर्थंकर के बारे में यह ख्याल है, वह स्त्री हो शरीर से। लेकिन तीर्थंकर हो ही नहीं सकता कोई व्यक्ति जब तक आक्रामक न हो, जब तक कि पुरुष-वृत्ति न हो, जब तक कि संघर्ष और संकल्प न हो। यह भी हो सकता है कि संघर्ष, संकल्प और आक्रमण ने पूरे व्यक्तित्व को बदल दिया हो। यह भी हो सकता है जब वह संन्यास लिया हो, स्त्री रहा हो, तो पुरुष हो गया हो। यानी मेरा मतलब समझ लेना कि यह पूरा परिवर्तन भी सम्भव है।

ऐसा अभी रामकृष्ण के वक्त हुआ है। रामकृष्ण ने सारी साधनाएँ कीं, सब मार्गों से जाना चाहा कि वह मार्ग ले जा सकता है कि नहीं। तो उन्होंने ईसाइयों की, सूफियों की, वैष्णवों की, भक्ति-मार्गियों की, योगियों की, हठयोगियों की, सब तरह की साधनाएँ कीं, उससे उन्होंने एक सखी सम्प्रदाय की भी साधना की जिसमें व्यक्ति अपने को कृष्ण की स्त्री मान लेता है, परिपूर्ण भाव से सखी हो जाता है, गोपी बन जाता है, पुरुष भी हो तो भी। वह रात को कृष्ण की मूर्ति साथ लेकर सोता है पति की तरह, पत्नी होकर। रामकृष्ण ने समग्रभाव से स्वीकार कर लिया और कुछ महीनों तक उन्होंने स्त्रीभाव की कामना की।

बड़ी अद्भुत घटना घटी उनके साधना-काल में; उनकी आवाज बदल गई, स्त्री की सी आवाज हो गई । चाल बदल गई । वह स्त्रियों जैसे चलने लगे । उनके स्तन उभर आए और तब घबराहट हुई कि कहीं उनका पूरा शरीर तो रूपान्तरित नहीं हो जाएगा । कहीं उनका पूरा का पूरा लैंगिक रूपान्तरण न हो जाए । और उन्हें रोका उनके मित्रों ने, भक्तों ने । लेकिन वह उधर जा चुके थे । वह कहते थे कैसा पुरुष ? कौन पुरुष ? कौन रामकृष्ण ? वह तो अब नहीं रहा । साधना पूरी हो जाने पर भी छः महीने तक उन पर स्त्री के चिह्न रहे । छः महीने तक उनको देखकर लोग हैरान हो जाते थे कि इनको क्या हो गया ? अगर यह सम्भव है तो फिर अगर किसी ने उन्हें उन दिनों में देखा होगा तो वह लिख सकता है कि वह स्त्री थे ।

अब मेरे अपने ज्ञान में ऐसा है कि वह व्यक्ति स्त्री ही रही होगी जब वह साधना के जगत् में प्रविष्ट हुई लेकिन जो साधना चुनी वह पुरुष की साधना है । और उस साधना ने पूरा का पूरा रूपान्तरण किया होगा, न केवल व्यक्तित्व का बल्कि देह का भी । अब तो हम जानते हैं वैज्ञानिक ढंग से कि तीव्र मनोभावों से पूरी देह बदल सकती है । जिन्होंने तथ्य पकड़ा होगा उन्होंने देखा होगा कि वह स्त्री थी, तो स्त्री रही उनकी किताब में और जिन्होंने रूपान्तरण देखा होगा उनके लिए पुरुष हो गए । तथ्य को एकदम अन्धे की तरह पकड़ लेना खतरनाक है । सत्य पर नजर होनी चाहिए । तथ्य रोज बदल जाते हैं । यह तथ्य है कि आप पुरुष या स्त्री हैं किन्तु यह सत्य नहीं है । बिलकुल सत्य नहीं है । सत्य वह है जो नहीं बदलता । पुरुष-स्त्री हो सकते हैं और स्त्री पुरुष हो सकती हैं । बहुत गहरे में कोई आदमी अलग-अलग नहीं होता । स्त्री भी होती है, भीतर पुरुष भी होता है, मात्रा में फर्क होता है । जिसको हम पुरुष कहते हैं, उसमें ६० प्रतिशत पुरुष और ४० प्रतिशत स्त्री होती है । इसको हम स्त्री कहते हैं वह ६० प्रतिशत स्त्री और ४० प्रतिशत पुरुष होता है । यह मात्रा बहुत कम भी हो सकती है । यह बहुत सीमान्त पर भी हो सकती है । यह ५१ प्रतिशत जैसी स्थिति में भी हो सकती है । और अब जरा फर्क भिन्न का, और रूपान्तरण हो जाएगा । दो प्रतिशत की बदलाहट और पूरा व्यक्ति बदल जाएगा । लेकिन मनुष्य जाति को हमेशा बाधा पड़ी है इस बात से कि उसने तथ्यों को एकदम बिलकुल अंधों की तरह जकड़ कर पकड़ लिया है । और तथ्य बड़ा झूठ बोल सकते हैं ।

महावीर के सम्बन्ध में भी बातें कहीं जाती हैं। अब जैसे एक वर्ग मानता है कि वह वस्त्र पहने हुए थे, चाहे वह देवताओं का दिया हुआ वस्त्र हो, चाहे वह आँखों से न दिखाई पड़ने वाला वस्त्र हो। लेकिन वह वस्त्र पहने हुए हैं, नग्न नहीं हैं। और एक वर्ग मानता है कि वह बिल्कुल नग्न हैं, वस्त्र उन्होंने छोड़ दिए हैं। किसी प्रकार का वस्त्र उनके शरीर पर नहीं है। और ये दोनों बातें एक साथ सच हैं। वह बिल्कुल सच है कि महावीर ने वस्त्र छोड़ दिये थे। वह बिल्कुल नग्न हो गए लेकिन उनकी नग्नता भी ऐसी थी कि उसे ढाँकने के लिए वस्त्रों की जरूरत नहीं थी। अब हमें थोड़ा समझना जरूरी होगा। एक आदमी इस भाँति वस्त्र पहन सकता है कि वह नंगा हो। एक आदमी इस भाँति वस्त्र पहन सकता है कि वह नग्नता को प्रकट करे। सच तो यह कि नंगा नहीं होता जितना वस्त्र उसे नंगा कर सकते हैं। जानवरों को देखकर हमें शायद ही ख्याल आता हो कि वे नंगे हैं। लेकिन आदमी और स्त्रियाँ इस तरह के वस्त्र पहन सकते हैं कि उनके वस्त्र पहनने से तत्काल ख्याल आए उनके नंगेपन का। और आदमी ने ऐसे वस्त्र विकसित कर लिए हैं कि वह उसके शरीर को उघाड़ते हैं, ढाँकते नहीं। जो वस्त्र ढाँकता है उसे कौन पसन्द करता है? जो व्यक्ति वस्त्र उघाड़ता है, इतना उघाड़ता है कि और उघाड़ने की इच्छा जगे, इतना नहीं उघाड़ता कि उघाड़ने की इच्छा मिट जाए, उघाड़ता है और उघाड़ने की इच्छा जगाती है ऐसा व्यक्ति वस्त्र पहने हुए भी नंगा है। ठीक इससे उल्टा भी हो सकता है कि व्यक्ति नंगा खड़ा हो गया है और इतना उघाड़ा हुआ है कि उघाड़ने को कुछ नहीं बचा है; उघाड़ने की कोई इच्छा भी नहीं है उसको, उघाड़ने की कोई कामना भी नहीं है, कोई उघाड़ कर देखे यह आमन्त्रण भी नहीं है तो उसकी नग्नता भी वस्त्र बन जाती है। जब कोई वस्त्रों में नंगा हो सकता है तो कोई नग्नता में वस्त्रों में क्यों नहीं हो सकता? महावीर बिल्कुल नग्न थे लेकिन उनकी नग्नता किसी को भी नग्नता जैसी नहीं लगी। इसलिए यह स्वाभाविक था कहानी का बन जाना कि जरूर वे कोई ऐसे वस्त्र भी पहने हुए हैं जो दिखाई नहीं पड़ते, जो देवताओं के दिए हैं, देवदूत के दिए हैं। देवताओं ने ऐसे वस्त्र दे दिए हैं उनको जो दिखाई भी नहीं पड़ते और फिर भी उनकी नग्नता दिखाई नहीं पड़ती। तो कहीं कोई अदृश्य वस्त्र उनको छिपाए हुए है। यह धारणा पैदा हो जाना बिल्कुल स्वाभाविक है। पर महावीर निपट नग्न हैं। असल में निपट नग्न आदमी ही नग्नता से मुक्त हो सकता है। वस्त्रों में ढके हुए आदमी की नग्नता से मुक्त होना बड़ा मुश्किल है क्योंकि वस्त्रों में जिसे वह

ढांकता है वहाँ उसके ढांकने की चेतना स्पष्ट है। और जिसे हम ढांकते हैं सचेतन, वह उघड़ जाता है। जिसे हम चेतन रूप से ढांकते हैं, हमारी चेतना उस अंग को उघड़ा हुआ अंग बना देती है। क्योंकि जब हम चेतन होकर ढांकते हैं तो चेतन होकर दूसरा उसे उघड़ा हुआ देखना चाहता है।

सिर्फ नग्न आदमी ही नंगेपन से मुक्त हो सकता है। यह बड़ी उल्टी बात मालूम पड़ेगी। वस्त्र से ढंका हुआ आदमी कैसे नंगेपन से मुक्त होगा? यह कठिन भी है किन्तु हो भी सकता है। क्योंकि बुद्ध और क्राइस्ट कपड़े पहने हुए हैं। सम्भव तो है पर बहुत कठिन है, एकदम कठिन है। सम्भव इसलिए है कि जब मैं वस्त्र पहनता हूँ तो मैं दो कारणों से पहन सकता हूँ। कारण मेरे आन्तरिक हो सकते हैं कि कुछ है जो मैं छिपाना चाहता हूँ, कुछ है जो मैं नहीं दिखाना चाहता, या कुछ है जो मैं भयभीत हूँ कि दिख न जाए। मेरे वस्त्र पहनने के कारण आन्तरिक भी हो सकते हैं, एकदम बाह्य भी हो सकते हैं। तब एक अर्थ में मैं वस्त्र नहीं पहने हुए हूँ। तुम्हें मैंने वस्त्र पहना दिए हैं। बुद्ध या क्राइस्ट जैसे लोग जो वस्त्र पहने हुए हैं वे भी नग्न होने की उतनी ही हैसियत रखते हैं जितनी महावीर। इनके भीतर भी कुछ छिपाने को नहीं है। लेकिन हो सकता है, दूसरा नग्नता न देखना चाहे। तो दूसरे पर आक्रमण क्यों करना! दूसरे की आँख पर हमने वस्त्र डाला हुआ है, अपने शरीर पर नहीं। और दूसरे की आँख पर भी वस्त्र डालने का सबसे सरल उपाय यही है कि अपने शरीर पर डाल दो।

मैंने सुना है कि जब सबसे पहले जमीन पर काँटों ने तकलीफ दी तो एक सम्राट् ने बुद्धिमान् लोगों को बुला कर पूछा कि क्या करें? कैसे बचें? बुद्धिमानों ने कहा एक काम करें, सारी पृथ्वी को चमड़े से ढंक दें जिससे कि हम चमड़े पर चलें, कांटे न गड़ें। सम्राट् ने कहा इतना चमड़ा कहाँ से लाओगे? पृथ्वी बहुत बड़ी है। बड़ी मुश्किल में पड़ गए बुद्धिमान् लोग। बहुत सोचा। बुद्धिमानों को बड़ी चीजें जल्दी सूझ जाती हैं, छोटी चीजें उनसे चूक जाती हैं, तब राजा से एक नौकर ने कहा कि आप भी कैसी पागलपन की बातों में पड़े हैं। और इतने बड़े-बड़े बुद्धिमानों को बैठ कर सोचना है। मैं तो बोलता नहीं इस डर से कि मैं गंवार हूँ, कैसे बोलूँ। लेकिन यह पागलपन की बात है। अपने पैरों को क्यों नहीं चमड़े से ढंका जा रहा है। अपने पैरों को चमड़े से ढ़ंक लें, सारी पृथ्वी पर आप जहाँ जाओगे वहाँ चमड़ा होगा। पंचायत में क्यों पड़ते हैं कि सारी पृथ्वी को ढंको। आपकी आँख पर वस्त्र डालने की सबसे अच्छी तरकीब यही है कि अपने शरीर पर वस्त्र डाल लो। और सरल उपाय क्या हो सकता है? सबकी आँख

पर डालने जाओ तो बहुत बड़ी पृथ्वी है और बड़ी मुश्किल पड़ जाए। तो कुछ इसलिए वस्त्र पहन सकते हैं कि वे आपकी आँख पर वस्त्र डाल देना चाहते हैं क्योंकि अभी आपकी आँख नग्न को देखने की हिम्मत नहीं जुटा सकती। लेकिन यह कठिन है। महावीर की नग्नता पर इसीलिए दो मत खड़े हो गए। महावीर निश्चित ही नग्न थे, इसमें कोई दूसरा विकल्प नहीं है। लेकिन बहुत लोगों को महावीर अत्यन्त वस्त्र वाले मालूम पड़े होंगे।

मेरे एक मित्र हैं। वह विन्ध्यप्रदेश के शिक्षामन्त्री थे। एक अमेरिकन मूर्तिकार खुजराहो देखने आया। भारतीय सरकार ने उन मेरे मित्र को लिखा कि आप विशिष्ट रूप से ले जाएँ मूर्तिकार को। उन्हें ठीक रूप से खुजराहो दिखाएँ। मेरे मित्र बड़े परेशान हुए। वह खुजराहो के पास के ही रहने वाले हैं, निकट ही दस-बीस मील दूर रहते हैं। खुजराहो को बचपन से ही जानते हैं। वह बहुत भयभीत हुए कि वह अमेरिकन मूर्तिकार क्या विचार लेकर वापस जाएगा ? और वह सिर्फ खुजराहो देख कर सीधा वापस लौट जाने को है; सीधा दिल्ली से खुजराहो और वापस। वह भारतीय संस्कृति के सम्बन्ध में क्या सोचेगा कि ऐसे मन्दिर ! ऐसी नग्न मूर्तियाँ ! एसे अश्लील दृश्य ! वह बहुत डरे हुए हैं, बड़े भयभीत हैं, और बड़ी तैयारी करके गए हैं कि यह जबाब दूँगा; यह जबाब दूँगा पूछेगा तो इस तरह से समझाएँगे। बता देंगे कि यह कोई भारतीय धारा की मूल शाखा नहीं है। यह किनारे से कुछ विक्षिप्त लोगों की, कुछ पागलों की, कुछ भोगियों की, कुछ तांत्रिकों की; कुछ वाममार्गियों की चेष्टायें हैं। यह कोई ऐसा मन्दिर नहीं है कि भारत का मन्दिर है। भारत का मन्दिर ही नहीं है एक अर्थ में यह। पुरुषोत्तमदास टंडन कहते थे मिट्टी से ढांक दो खजुराहो को, उसको उघाडो ही मत। गांधी जी तक राजी थे कि उसको ढंकवा दो। रवीन्द्रनाथ बीच में न कूद पड़ते तो अवश्य ही ढंक जाता यह मन्दिर। मूलधारा तो गांधी और पुरुषोत्तमदास टंडन की है—वही ठीक कह रहे हैं। तो यह मन्त्री सब समझ-बूझ कर गए हैं; बड़ी तैयारी करके गए हैं लेकिन वह आदमी कुछ पूछता ही नहीं। एक-एक मूर्ति को देखता जाता है, एकदम नग्न मूर्तियाँ, एकदम नग्न चित्र ! और वह तैयारी में जुटे हैं कि वह कुछ पूछे। लेकिन वह कुछ पूछता ही नहीं। वह मन्त्रमुग्ध देखता है और आगे बढ़ जाता है। वह पूरे मन्दिर में घूम कर निकल आया। वह सीढ़ियाँ उतर आया, वह गाड़ी में बैठ गया; उसने कुछ कहा ही नहीं कि अश्लील हैं, भद्दी हैं। वह तो ऐसा भाव विभोर हो गया है कि कहीं खो गया है। लेकिन मित्र ने सोचा कि फिर भी वह ख्याल तो ले ही

जाएगा। शायद, शिष्टाचार के कारण न कहता होगा। तो उन्होंने कहा कि सुनिए आप, यह मत सोचिए कि अश्लील मूर्तियाँ कोई भारत की प्रतीक हैं। मूर्तिकार ने कहा, अश्लील; तो मुझे फिर से देखना पड़ेगा क्योंकि इतनी सुन्दर मूर्तियाँ मैंने कभी देखी ही नहीं। इनके सौन्दर्य से मैं ऐसा अभिभूत हो गया था कि मैं नहीं देख पाया कि वह अश्लील भी थीं। फिर मुझे वापस ले चलो। अब मैं गौर से देखूंगा कि अश्लील वे कहाँ हैं क्योंकि मैं तो अभिभूत था, इतना अभिभूत था उनके सौन्दर्य से, उनकी बद्धता से और उनके चेहरों पर प्रकट ज्योति से कि मैं नहीं देख पाया कि वे नंगी हैं। मेरे मित्र बहुत घबराए कि मूर्तियाँ नंगी आप नहीं देख पाए।

हो सकता है कि महावीर के पास बहुत से लोग आए होंगे और महावीर के चेहरे में और महावीर की आँखों में ऐसे डूबे होंगे। हो सकता है कि लौट गए हों, पता न चला हो कि महावीर नंगे थे। क्योंकि मनुष्य में हमें वही दिखाई पड़ता है जो उसमें सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है। अगर किसी व्यक्ति में तुम्हें उसका सेक्स दिखाई पड़ता है तो वह उसमें सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है। अगर उससे बड़ी घटनाएँ उसके जीवन में घट गई हों और उससे वही रोशनी उसमें निकलने लगी हो तो हो सकता है कि सैकड़ों लोग महावीर को देख कर गए हों और उन्होंने गाँव में जाकर खबर दी हो कि कौन कहता है कि महावीर नंगे हैं, फिर से देखना पड़ेगा ? जरूर कोई अदृश्य वस्त्र उन्हें घेरे हैं। ख्याल तो आता है कि कुछ नंगे थे, देह पर कुछ था नहीं। फिर भी नंगे थे ऐसा दिखाई नहीं पड़ा। कोई अदृश्य वस्त्र उन्हें घेरे होंगे। कोई देवताओं के वस्त्र उन्हें घेरे हैं कि वे नग्न हैं फिर भी नग्न नहीं मालूम पड़ते। नग्नता छिपी है और तब कहानियाँ बनती हैं और सत्य देखना मुश्किल हो जाता है।

ये सब बातें इसलिए कह रहा हूँ कि हमारे मस्तिष्क में एक बात बहुत साफ हो जाए कि तथ्यों पर जोर सिर्फ नासमझ देते हैं। समझदार का जोर सदा सत्य पर होता है। और सत्य कुछ ऐसी चीज है कि तथ्य के भीतर से आप देख सकते हैं लेकिन तथ्य को पकड़ने से कभी नहीं देख सकते; फिर आप वहीं रुक जाते हैं। दरवाजा इस कमरे के भीतर लाता है लेकिन छोड़ दें उसे तब। और पकड़ लें तो आप द्वार पर रह जाते हैं, आप कमरे के भीतर नहीं जाते। तथ्य के सब द्वार सत्य में जाते हैं लेकिन जो तथ्य को पकड़ लेता है वहीं अटक कर रह जाता है और द्वार मकान नहीं है, सिर्फ मकान में जाने की खाली जगह है। तथ्य सत्य नहीं, सिर्फ सत्य की सम्भावना है जहाँ से आप जा

सकते हैं लेकिन अगर वहीं रुक गए तो सदा के लिए वहीं अटक सकते हैं। और हमारी आँखें तथ्यों को ही देखती हैं। असल में मैं पदार्थवादी उसको कहता हूँ जो तथ्यों को ही देखता है।

मेरी दृष्टि में भौतिकवाद का कोई मतलब नहीं है—जो तथ्यों को ही देखता है, जो कहता है इतना रहा तथ्य, बाकी सब झूठ है। यह तथ्य को गिना लेता है और कहता है कि इसके आगे कुछ भी नहीं है। लेकिन मजे की बात यह है कि **तथ्य सत्य की सबसे बाहरी परिधि है,** सबसे बाहरी परकोटा है। जो भी है उसके भीतर और जितने हम गहरे भीतर जाएँगे उतना तथ्य छूटता चला जाएगा और सत्य निकट आता जाएगा। इसीलिए सत्य को कहने की भाषा तथ्य की नहीं हो पाएगी। सत्य को कहने के लिए नई भाषा खोजनी पड़ेगी जो प्रतीकात्मक है। **सत्य को तथ्य की भाषा में नहीं कहा जा सकता,** कहें तो इतिहास बन जाता है। अब जैसे कि यह बात है कि महावीर कभी बूढ़े नहीं हुए, न कोई दूसरा तीर्थंकर कभी बूढ़ा हुआ। न बुद्ध कभी बूढ़े हुए। न राम, न कृष्ण। इनकी कोई बुढ़ापे की मूर्ति आपने कभी देखी कि ये बूढे हो गए हैं? तो क्या मामला है? क्या ये लोग जवान ही रह गए? जवानी के आगे नहीं गए? गए तो जरूर होंगे। यह तो असम्भव है कि न गए हों। तथ्य यही होगा कि महावीर को बूढ़ा होना पड़ेगा, बूढ़े हुए होंगे। जब मरना पड़ता है तो बूढ़ा होना पड़ेगा। लेकिन सत्य यह कहता है कि वह आदमी कभी बूढ़ा नहीं हुआ होगा। जो उसने पा लिया है, वह इतना युवा है, वह इतना सदा यौवन है कि वहाँ कैसा बुढ़ापा? जिन लोगों ने तथ्य पर जोर दिया होगा वे महावीर की बूढ़ी मूर्ति अंकन भी करते। लेकिन सत्य पर जिन्होंने आँख रखी तो फिर गाथा (मिथ) बनानी पड़ी कि महावीर कभी बूढ़े नहीं होते।

अब कभी आपने ध्यान दिया कि ये कोई भी तीर्थंकर कभी बूढ़े नहीं हुए। यह युवा होने की सम्भावना कहाँ है? तथ्य में तो नहीं है, इतिहास में तो नहीं है लेकिन गाथा (मिथ) में है। इसीलिए मैं कहता हूँ कि इतिहास से ज्यादा गहरी घुस जाती है माइथोलॉजी (गाथाशास्त्र)। उसकी पकड़ ज्यादा गहरी है। लेकिन उसको कहने के लिए तथ्य छोड़ देने पड़ते हैं और कहानी गढ़नी पड़ती है कि नहीं, नहीं, कृष्ण कभी बूढ़े नहीं होते। बच्चे होते, जवान होते हैं, बस फिर ठहर जाते हैं, फिर बूढ़े नहीं होते। असल में जो चित्त सदा नया है और जो चित्त सत्य को जान गया है, वह कैसे वृद्ध होगा? वह कैसे क्षीण होगा? वह क्षीण होता ही नहीं। वह सदा के लिए उस हरियाली को पा गया है जो अब

कहीं नहीं मिलती। इसलिए युवा होने तक तो यात्रा है उसकी। जब तक कि वह सत्य पाकर युवा नहीं हो गया तब तक वह बच्चा होता है, बड़ा होता है। जैसे वह पहुँच गया उस बिन्दु पर जहां सत्य पा लिया जाता है, जो सदा जवान है, जो कभी बूढ़ा नहीं होता वैसे ही फिर उसकी यात्रा रुक जाती है। शरीर की तो नहीं रुक सकती, शरीर तो बूढ़ा होगा और मरेगा। लेकिन हम उस तथ्य को इन्कार कर देते हैं और कह देते हैं कि वह तथ्य झूठ है, उसका कोई मतलब नहीं। वह आदमी भीतर जवान है, वह जवान ही रह गया है। वह अब कभी बूढ़ा नहीं होगा।

इसलिए बहुत से इन अद्भुत लोगों की मृत्यु का कोई उल्लेख नहीं है कि वे मरे कब। वह उल्लेख इसलिए नहीं है कि जन्म तक तो बात ठीक है; मरना उसका होता नहीं। तथ्य में तो वे मरे। इसलिए जैसे-जैसे दुनिया ज्यादा तथ्य होती गई वैसे-वैसे हमारे पास रिकार्ड उपलब्ध होने लगा। जैसे महावीर का रिकार्ड है हमारे पास कि वह कब मरे। लेकिन ऋषभ का नहीं है रिकार्ड उपलब्ध। दुनिया और भी मिथ के ज्यादा करीब थी। अभी लोग तथ्य पर जोर ही नहीं दे रहे थे। राम का कोई रिकार्ड नहीं है कि वह कब मरे। इसका कारण यह नहीं कि वह नहीं मरे होंगे। जिन्होंने सारी जिन्दगी की कहानी लिखी, वे एक बात पर चूक गए जो कि बड़ी भारी घटना रही होगी मरने की। यानी जन्म का सब ब्यौरा लिखते हैं, बचपन का ब्यौरा लिखते हैं, विवाह है, लड़ाई है, झगड़ा है, सब आता है, सब जाता है। सिर्फ एक बात चूक जाती है कि आदमी गए कब ? नहीं, मिथ उसको इन्कार कर देते हैं। वह कहते हैं ऐसा आदमी मरता नहीं। ऐसा आदमी परम जीवन को उपलब्ध हो जाता है। इसलिए मृत्यु की बात ही मत लिखो। इसलिए इस मुल्क में हम जन्मदिन मनाते हैं। पश्चिम में मृत्युदिन। पश्चिम में जो मरने का दिन है वह बड़ी कीमत रखता है। और उसका कारण है क्योंकि हम जन्म को स्वीकार करते हैं। हम मृत्यु को इन्कार ही कर देते हैं। पश्चिम में जन्म जितना स्वीकृत है, मृत्यु उससे ज्यादा स्वीकृत है क्योंकि जन्म तो पहले हो चुका है, मृत्यु तो बाद में हुई है। जो बाद में हुआ है ज्यादा ताजा है, ज्यादा कीमती है। जन्मदिन की ही बात किए चले जाते हैं और उसका कारण है कि हम जन्म को तो मानते हैं मृत्यु को नहीं। जीवन है; मृत्यु नहीं।

ये सारे तथ्य अगर तथ्य की तरह पकड़े जाएँ तो कठिनाई हो जाती है। लेकिन अगर हम इनकी गहराई में उतर जाएँ और इनके मिथ की जो गुप्त

भाषा है उसे खोल दें तो बड़े रहस्य के पर्दे उठने लगते हैं। जैसे अब गांधी की हमने मरणतिथि मनानी शुरू की है। वह पश्चिम की नक़ल है। अगर महावीर जैसे व्यक्ति का हम मृत्युदिन मनाते भी हैं तो उसे मृत्यु दिवस हम नहीं कहते हैं। उसे निर्वाण दिवस कहते हैं। मरता नहीं, वह सिर्फ निर्वाण को उपलब्ध हो जाता है। उसको भी मृत्युदिवस नहीं कहते हैं। उसको भी कहेंगे निर्वाणदिवस।

तथ्यों ने ऐसी व्यर्थ की बातों में उलझा दिया है कि जिसका हिसाब लगाना मुश्किल है और उनके समक्ष वे लोग जो निरंतर सत्य पर जोर देते रहे हैं आज इस तरह हारे हुए खड़े हैं और वे हारे इसलिए खड़े हैं कि वे खुद ही तथ्य से हार गए हैं और उनको भी लग रहा है कि कोई बड़ी भूल-चूक हो गई है। मेरी दृष्टि में तथ्यों का भी मूल्य है अगर वे सत्यों को बता पाएँ, अन्यथा उनका कोई मूल्य नहीं है। शाश्वत की तरफ इनसे इशारा हो जाए तो ठीक है अन्यथा कोई भी मूल्य नहीं है। मील के पत्थर हैं जो हमें कहते हैं आगे चलो लेकिन कुछ नासमझ लोग मील के पत्थरों को पकड़कर रुक जाते हैं। मील के पत्थरों का क्या मूल्य है सिवाय कि वे कहें कि और आगे और आगे। तथ्य भी मील के पत्थर हैं सत्य की यात्रा में और इसलिए अगर महावीर के जीवन की प्रारंभिक सारी घटनाओं को उनकी गहराई में—उनकी खाल को छोड़कर उनके सार को पकड़ लिया जाए तो ही महावीर का उद्घाटन होगा और तो ही बाद में महावीर क्या हो पाते हैं यह समझ पायेंगे, और उसको समझने को दृष्टि मिल सकती है।

४

प्रश्नोत्तर-प्रवचन

प्रश्न : यदि तीर्थङ्कर पहले जन्म में ही कृतकृत्य हो चुके हैं और केवल करुणावश संसार में आते हैं तो फिर वे केवल एक ही बार क्यों आते हैं? बारम्बार क्यों नहीं आते? इस प्रकार तो उन्हें अब भी संसार में ही होना चाहिए था। और जो वे करुणावश आते हैं सो क्या अपनी इच्छा से आते हैं या उनका यह आना स्वाभाविक होता है?

उत्तर : यह बात बहुत महत्त्वपूर्ण है मेरी दृष्टि में। जिसके जीवन का कार्य पूरा हो चुका है वह ज्यादा से ज्यादा एक ही बार वापिस लौट सकता है। वापिस लौटने का कारण है जैसे कोई आदमी साइकिल चलाता हो, पैडल चलाना बन्द करदे तो पिछले वेग से साइकिल थोड़ी देर बिना पैडल चलाए आगे जा सकती है। लेकिन बहुत देर तक नहीं। इसी तरह जब एक व्यक्ति का जीवन-कार्य पूरा हो चुका है तो उसके अनेक जीवन की वासनाओं ने जो वेग दिया है, गति दी है वह ज्यादा से ज्यादा उसे एक बार और लौटने का अवसर दे सकती है। इससे ज्यादा नहीं। जैसे पैडल बन्द कर दिए हैं तो भी साइकिल थोड़ी दूर तक चलती जा सकती है लेकिन बहुत दूर तक नहीं। और यह भिन्न-भिन्न समय की अवधि होगी क्योंकि पिछले जीवन की कितनी गति और कितनी शक्ति चलाने की शेष रह गई है, प्रत्येक का अलग-अलग होगा। इसलिए बहुत बार ऐसा हो सकता है कि कोई करुणा से लौटना चाहे और न लौट सके।

दूसरा प्रश्न भी विचारणीय है। क्या, तीर्थंकर अपनी मर्जी से लौटते हैं? हाँ, लौटते तो वे अपनी मर्जी से हैं लेकिन ऐसा जरूरी नहीं है कि सिर्फ मर्जी से ही लौटें। अगर थोड़ी शक्ति शेष रह गई है तो मर्जी सार्थक हो जाएगी। अगर शक्ति शेष नहीं रह गई है तो मर्जी निरर्थक हो जाएगी। उस स्थिति में करुणा

दूसरा रूप ले सकती है लेकिन लौट नहीं सकती है। और यह भी समझ लेना उचित है जैसा कि मैंने कहा कि साइकिल चलाते वक्त पैडल बन्द हो जाए; जिस दिन वासना क्षीण हो गई उस दिन पैडल चलना बन्द हो गए। लेकिन, चाक थोड़ी दूर और चल जाएँगे, अपनी ही मर्जी से। अगर वह व्यक्ति साइकिल से नीचे उतर जाना चाहे तो उसे कोई रोकने वाला नहीं है। वह अपनी ही मर्जी से अब भी बैठा हुआ है। पैडल चलाना बंद कर दिया है; वासना क्षीण हो गई है। लेकिन अब भी देह के वाहन का वह उपयोग करता है थोड़ी दूर तक। लकिन ऐसा भी हो सकता है कि अब देह के वाहन को चलाने की कोई शक्ति शेष ही न बची हो। अक्सर इसलिए ऐसा हो जाता है कि इस तरह की आत्माओं का दूसरे जन्मों का जीवन अति क्षीण होता है। शंकराचार्य जैसे व्यक्ति जो तीस-पैंतीस साल ही जी पाते हैं, इसका कोई और कारण नहीं है। वेग बहुत कम है। अक्सर इस तरह की आत्माओं का जीवन अत्यल्प होता है। जैसे जीसस क्राइस्ट हैं—अत्यल्प जीवन मालूम होता है। यह जो अत्यल्प जीवन है वह इसी कारण है। और कोई कारण नहीं। वेग ही इतना है। अपनी ही मर्जी से लौट सकते हैं, न लौटना चाहे तो कोई लौटाने वाला नहीं है। लेकिन लौटना चाहें तो अगर शक्ति शेष है तो ही लौट सकते हैं। फिर मैंने कहा कि करुणा से कोई नहीं रोक सकता है। शरीर नहीं उपलब्ध होगा। तब दोहरी बातें हो सकती हैं। या तो वैसा व्यक्ति किसी दूसरे के शरीर का उपयोग करे जैसा कि मखली गोसाल ने किया।

यह बात भी महावीर के सन्दर्भ में है, इसलिए समझ लेना उचित है। कहानियाँ कहती हैं—मखली गोसाल बहुत वर्षों तक महावीर के साथ रहा। फिर उसने साथ छोड़ दिया। फिर वह महावीर के विरोध में स्वतन्त्र विचारक की हैसियत से खड़ा हुआ। लेकिन जब महावीर ने शिष्यों को कहा कि मखली गोसाल तो मेरा शिष्य रह चुका है, मेरे साथ रहा है तो उसने स्पष्ट इन्कार किया। उसने कहा वह मखली गोसाल जो आपके साथ था मर चुका है। यह तो मैं एक बिल्कुल ही दूसरी आत्मा हूँ, उसके शरीर का उपयोग कर रहा हूँ। मैं वह व्यक्ति नहीं हूँ। साधारणतया महावीर के अनुयायी समझते रहे हैं कि यह झूठा है। पर यह झूठा नहीं है। यह बात बिल्कुल ही सच है। मखली गोसाल नाम का जो व्यक्ति महावीर के साथ रहा था, वह अतिसाधारण व्यक्ति था। किन्हीं कारणों से असमय में उसकी मृत्यु हुई और उसकी देह का उपयोग दूसरी स्वतन्त्र चेतना ने किया जो तीर्थंकर की ही हैसीयत की थी। लेकिन अपना

शरीर उपलब्ध करने में असमर्थ थी तो उसने मखली गोसाल के शरीर का उपयोग किया। और इसीलिए इस व्यक्ति का, जो अभी नया व्यक्ति बना, पुराने शरीर में मखली गोसाल के, महावीर से कोई मेल नहीं हो सका। यह एक बिल्कुल स्वतन्त्र चेतना थी जिसका अलग अपना काम था और अपना काम किया उसने। इसलिए मखली गोसाल भी तीर्थंकर होने का एक दावेदार था।

उस युग में अकेले महावीर या बुद्ध ही नहीं थे, मखली गोसाल था, अजित-केश कम्बल था, संजय वेलट्ठिपुत्त था, प्रबुद्ध कात्यायन था, पूर्ण काश्यप था—ये सबके सब तीर्थंकर की हैसियत के लोग थे। लेकिन सब अलग-अलग परम्पराओं के तीर्थंकर थे। उनमें से सिर्फ दो की परम्पराएँ पीछे शेष रह गईं, एक महावीर की, एक बुद्ध की। बाकी सब परम्पराएँ खो गईं। एक रास्ता तो यह है कि वैसा व्यक्ति प्रतीक्षा करे असमय में किसी के शरीर छूट जाने की और उसमें प्रवेश कर जाए। एक यह उपाय है जिसका कई बार प्रयोग किया गया है। दूसरा उपाय यह है कि वह व्यक्ति अशरीर ही रहकर थोड़े से सम्बन्ध स्थापित करे और अपनी करुणा का उपयोग करे। उसका भी उपयोग किया गया है। कुछ चेतनाओं ने अशरीर हालत से संदेश भेजे हैं, सम्बन्ध स्थापित किए हैं।

और जो कल बात छूट गई थी वह यह कि मूर्तियों का सबसे पहला प्रयोग पूजा के लिए नहीं किया गया है। उसका तो पूरा विज्ञान है। मूर्ति का सबसे पहला प्रयोग अशरीरी आत्माओं से सम्पर्क स्थापित करने के लिए किया गया है। जैसे महावीर की मूर्ति है। इस मूर्ति पर अगर कोई बहुत देर तक चित्त एकाग्र करे और फिर आंख बंद कर ले तो मूर्ति का निगेटिव आँख में रह जाएगा। जैसे कि हम दरवाजे पर बहुत देर तक देखते रहें और आँख बंद कर लें तो दरवाजे का एक निगेटिव, जैसा कि कैमरे को फिल्म पर जाता है, आंख पर रह जाएगा। उस निगेटिव पर भी अगर ध्यान केन्द्रित किया जाय तो उसके बहुत गहरे परिणाम हैं। महावीर की मूर्ति, बुद्ध की मूर्ति का जो पहला प्रयोग है, वह उन लोगों ने किया है जो अशरीर आत्माओं से सम्बन्ध स्थापित करना चाहते हैं। महावीर की मूर्ति पर अगर ध्यान एकाग्र किया और फिर आँख बंद कर ली और निरन्तर अभ्यास से निगेटिव स्पष्ट बनने लगा तो वह जो निगेटिव है, महावीर की अशरीरी आत्मा से सम्बन्धित होने का मार्ग बन जाता है और उस द्वार से अशरीरी आत्माएँ भी सम्बन्ध स्थापित कर सकती हैं। यह अनन्त काल तक हो सकता है, इसमें कोई बाधा नहीं है। तो मूर्ति, पूजा के लिए नहीं है, एक डिवाइस है, बड़ी गहरी डिवाइस जिसके माध्यम से, जिनके शरीर खो गए हैं

और जो शरीर ग्रहण नहीं कर सकते हैं, उनमें एक खिड़की खोली जा सकती है, उनसे एक सम्बन्ध स्थापित किया जा सकता है। फिर रास्ता यह है कि अशरीरी आत्माओं से कोई सम्बन्ध खोजा जा सके। अशरीरी आत्माएँ भी सम्बन्ध खोजने की कोशिश करती हैं। करुणा फिर यह मार्ग ले सकती है और आज भी जगत् में ऐसी चेतनाएँ हैं जो इन मार्गों का उपयोग कर रही हैं। थियोसॉफी का सारा का सारा जो विकास हुआ है वह अशरीरी आत्माओं के द्वारा भेजे गए संदेशों पर निर्भर है। थियोसॉफी का पूरा केन्द्र इस जगत् में पहली बार बहुत व्यवस्थित रूप से ब्लावेट्स्की अल्काट, ऐनीबीसेन्ट, लीडबीटर इन चार लोगों को पहली दफा अशरीरी आत्माओं से संदेश उपलब्ध करने की अद्भुत चेष्टा पर आधारित है। और जो संदेश उपलब्ध हुए हैं, वे बहुत हैरानी के हैं। संदेश कभी भी उपलब्ध हो सकते हैं। क्योंकि अशरीरी चेतना कभी भी नहीं खोती। लेकिन शरीरी आत्मा तब तक आसानी से उस अशरीरी चेतना से सम्बन्ध स्थापित कर लेगी जब तक करुणावश वह भी सम्बन्ध स्थापित करने को उत्सुक है। धीरे-धीरे करुणा भी क्षीण हो जाती है। करुणा अन्तिम वासना है। जब सब वासनाएँ क्षीण हो जाती हैं, करुणा ही सिर्फ रह जाती है। लेकिन अन्त में करुणा भी क्षीण हो जाती है। इसलिए पुराने शिक्षक धीरे-धीरे खो जाते हैं। करुणा भी जब क्षीण हो जाती है तब उनसे सम्बन्ध स्थापित करना अति कठिन हो जाता है। उनकी करुणा शेष रहे तब तक सम्बन्ध स्थापित करना सरल है। क्योंकि वे भी आतुर थे। जब उनकी करुणा क्षीण हो गई, अन्तिम वासना गिर गई तब फिर सम्बन्ध स्थापित करना निरन्तर कठिन होता चला जाता है। जैसे कुछ शिक्षकों से अब सम्बन्ध स्थापित करना करीब-करीब कठिन हो गया है। महावीर से सम्बन्ध स्थापित करना अब भी सम्भव है। लेकिन उसके पहले के तेईस तीर्थंकरों में से किसी से भी सम्बन्ध स्थापित नहीं किया जा सकता और इसलिए महावीर कीमती हो गए और तेईस एकदम से गैर कीमती हो गए। इसका बुनियादी कारण यह है कि अब उन तेईस तीर्थंकरों से कोई सम्बन्ध स्थापित नहीं किया जा सकता है, किसी तरह का भी।

प्रश्न : इसका अर्थ यह हुआ कि ये जो मोक्ष के बारे में कहा जाता है, आत्मा चली गई है और सारे जगत् में लीन हो गई है, फिर उस आत्मा से कैसे सम्बन्ध स्थापित हो ?

उत्तर : इसको थोड़ा समझना पड़ेगा—इसे थोड़ा समझना पड़ेगा। मैं पूरी बात कह लूँ फिर आप समझ जाएँगे। तेईस तीर्थंकर एकदम गैर ऐतिहासिक हो

गए मालूम पड़ते हैं। उनके गैर ऐतिहासिक हो जाने का और कोई कारण नहीं है। वे बिल्कुल ऐतिहासिक व्यक्ति थे; लेकिन आध्यात्मिक लोक में उनके अन्तिम सम्बन्ध का सूत्र भी क्षीण हो जाने के कारण अब उनसे कोई सम्बन्ध स्थापित नहीं किया जा सकता। महावीर से अभी भी सम्बन्ध स्थापित हो सकता है और इसीलिए महावीर अन्तिम होते हुए सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण हो गए उस धारा में। बुद्ध से अभी भी सम्बन्ध स्थापित किया जा सकता है। जीसस से अभी भी सम्बन्ध स्थापित किया जा सकता है। कृष्ण से अभी भी सम्बन्ध स्थापित किया जा सकता है। हमें अढ़ाई हजार वर्ष बहुत लम्बे मालूम पड़ते हैं क्योंकि हमारा कालमान बहुत छोटा है। शरीर से छूट जाने पर अढ़ाई हजार वर्ष ऐसे हैं जैसे क्षण गुजरा हो। मुहम्मद से अभी भी सम्बन्ध स्थापित हो सकता है।

इसलिए जिन परम्पराओं के शिक्षकों से अभी सम्बन्ध स्थापित हो सकता है, वे फैलती-फूलती हैं। जिन परम्पराओं के शिक्षकों से अब कोई सम्बन्ध स्थापित नहीं हो सकता वह एकदम सूखकर नष्ट हो जाती हैं। किन्तु उनका मूल स्रोत से सम्बन्ध नहीं टूट जाता। और इसलिए नए शिक्षक जीतते हुए मालूम पड़ते हैं, पुराने शिक्षक हारते हुए मालूम पड़ते हैं। अब यह बड़ी हैरानी की बात है कि महावीर से पहले तेईसवें तीर्थंकर को ज्यादा वक्त नहीं हुआ, अढ़ाई सौ वर्ष का ही फासला है लेकिन उस तीर्थंकर से भी सम्बन्ध स्थापित करना मुश्किल हो गया है। इसलिए उस तीर्थंकर के निकट जाने वालों को महावीर के पास आ जाना पड़ा। लेकिन एक बुनियादी विरोध भीतर छूट गया जिसने पीछे परम्पराओं को दो खंडों में तोड़ने में हाथ बटाया। क्योंकि मूलतः जो शिक्षक पार्श्व से सम्बन्धित थे उनका प्रेम, उनका समर्पण और उनका द्वार पार्श्व के प्रति खुला था। लेकिन, चूँकि पार्श्व खो गए बहुत जल्दी और उनसे कोई सम्बन्ध स्थापित करना सम्भव न हुआ इसलिए महावीर के पास वे आए। लेकिन उनका मन, उनका धन, उनका व्यक्तित्व पार्श्व के अनुकूल था। इसलिए दो धाराएँ फौरन टूटनी शुरू हो गईं। वह आ गए पास लेकिन भेद रहे।

किसी ने पूछा है कि एक ही समय में दो तीर्थंकर क्यों नहीं होते। एक परम्परा में, एक ही समय में दो तीर्थंकर नहीं होते। इसका कारण यह है कि अगर एक तीर्थंकर काम कर रहा है उस परम्परा का तो दूसरा तत्काल विलीन हो जाता है। उसकी कोई जरूरत नहीं होती। जैसे एक ही कक्षा में, एक ही समय में दो शिक्षकों की कोई जरूरत नहीं होती। उससे सिर्फ बाधा ही पैदा होगी और कुछ भी न होगा। एक उपद्रव ही होगा कि एक ही कक्षा में दो चार शिक्षक एक ही पीरियड में उपस्थित हो जाएँ। उसकी वजह से सिर्फ संघर्ष

फैलेगा। एक शिक्षक पर्याप्त होता है। एक शिक्षक यदि काम कर रहा है तो दूसरा शिक्षक अगर होने की स्थिति में भी है तो भी नहीं होता। उसकी कोई जरूरत नहीं होती। करुणा पीछे भी काम कर सकती है। और पीछे भी सम्बन्ध स्थापित किए जा सकते हैं।

चीन के हाथ में तिब्बत के चले जाने से जो बड़े से बड़ा नुकसान हुआ वह भौतिक अर्थों में नहीं नापा जा सकता। सबसे बड़ा नुकसान यह हुआ है कि बुद्ध से तिब्बत के लामाओं का प्रति वर्ष एक दिन निकट सम्पर्क स्थापित होता रहा था। उस परम्परा को घात पहुँच गया। प्रतिवर्ष बुद्धपूर्णिमा के दिन पाँच सौ विशिष्ट भिक्षु और लामा एक विशेष पर्वत पर मानसरोवर के निकट उपस्थित होते थे। यह अत्यन्त गुप्त व्यवस्था थी। ठीक पूर्णिमा की रात, ठीक समय पर बुद्ध का साक्षात्कार पाँच सौ व्यक्तियों को निरन्तर हजारों वर्षों से होता रहा। और इसलिए तिब्बत का बौद्ध भिक्षु जितना जीवन्त, जितना गहरा था उतना दुनिया का कोई बौद्ध भिक्षु नहीं था क्योंकि और किसी के जीवित सम्पर्क नहीं थे बुद्ध से। एक वर्ष की शर्त पूरी होती रही थी निरन्तर बुद्ध पूर्णिमा के दिन और इन दिनों को मनाने का कारण भी यह है कि इन दिनों का सम्पर्क आसानी से स्थापित हो सकता है। वे दिन उस चेतना की स्मृति में भी महत्त्वपूर्ण दिन हैं। और उन महत्त्वपूर्ण दिनों में ज्यादा करुणा विगलित हो सकती है और वह भी आतुर हो सकती है कि किसी धारा से सम्बन्धित हो जाए। ऐसा नहीं कि ठीक पाँच सौ भिक्षुओं के समक्ष बुद्ध अपने पूरे रूप में ही प्रकट होते रहे। किन्तु यह भी सम्भव है। क्योंकि हमारा यह शरीर गिर जाता है इससे ही ऐसा मत मान लेना कि हमारे सब शरीर होने की सम्भावना मिट जाती है। सूक्ष्म शरीर कभी भी रूपाकार ले सकता है। और अगर बहुत से लोग आकांक्षा करें तो सूक्ष्म शरीर के रूपाकार लेने में कोई कठिनाई नहीं। ऐसा होगा सूक्ष्म शरीर कि अगर तलवार उसमें से निकालो तो तलवार निकल जाएगी कुछ कटेगा नहीं। अत्यन्त सूक्ष्म अणुओं का बना हुआ शरीर होगा। मनो-अणुओं का ही कहना चाहिए। अब तक विज्ञान पहुँच सका है जिन अणुओं तक वे भौतिक अणु हैं। लेकिन जिन्होंने सूक्ष्म आन्तरिक जीवन में खोज की है उन्होंने उन अणुओं की भी खबर दी है जिन्हें मनो-अणु कहना चाहिए—'मनो अणुओं' की भी एक देह है। यह मनोकाया जैसी चीज भी है। अगर बहुत लोग आकांक्षा से और एकाग्रचित्त होकर प्रार्थना करें और करुणा शेष रह गई हो किसी चेतना में जो शरीर नहीं पकड़ सकती है तो वह 'मनोदेह' में प्रकट हो सकती है।

सब मूर्तियाँ बहुत गहरे में उस 'मनोदेह' को प्रकट करने की एक उपाय मात्र हैं। सब प्रार्थनाएँ, सब आकांक्षाएँ उस चेतना को विगलित करने के उपाय मात्र हैं कि उससे किसी तरह का सम्बन्ध स्थापित हो सके। और यह बहुत रहस्यवादी प्रयोग की बात है। इसलिए मन्दिर, मस्जिद में जो अब हो रहा है वह तो सब कचरा लेकिन जो व्यवस्था है पीछे वह बड़ी अर्थपूर्ण है। उस अर्थपूर्ण व्यवस्था का उपयोग जो जानते हैं वे करते ही रहे हैं और आज भी करते हैं। क्षीण होती जाती है निरन्तर वह सम्भावना, यानी ख्याल ही मिटते जाते हैं कि हम क्या करें? ऐसा ही है जैसे कि समझें कि तीसरा महायुद्ध हो जाए, दुनिया खत्म हो जाए, कुछ लोग बच जाएँ और हमारा यह बिजली का पंखा उनको मिल जाए। तो वे अतीत संस्मरण की तरह उसे रखे रहेंगे कि पता नहीं यह किस काम का था। लेकिन यह कुछ भी समझ में न आ सके कि यह हवा करता रहा होगा। क्योंकि न उसके पास बिजली का ज्ञान रह जाए, न उसके पास प्लग का ज्ञान रह जाए, न इस पंखे की आन्तरिक व्यवस्था को समझने की उनकी अक्ल रह जाए; तो हो सकता है, वह अपने म्यूजियम में इस पंखें को रख लें, तार को रख लें, रेल के इंजन को संभाल कर रख लें; हो सकता है कि पूजा भी करने लगें, अतीत के स्मृतिशेष चिन्हों के स्मरण की तरह। लेकिन यह कोई पता न होगा कि रेल का इंजन हजारों लोगों को खींच कर भी ले जाता रहा होगा क्योंकि न पटरियाँ बचें, न इंजिनियरिंग शास्त्र बचें, न कोई खबर देने वाला बचे कि कैसे चलता होगा? कैसे क्या होता होगा? क्योंकि कोई भी व्यवस्था हजारों विशेषज्ञों पर निर्भर करती है। हो भी सकता है कि एक आदमी ऐसा बच जाए जो कहे कि मैं रेल में बैठा था और यह इंजन रेल के डिब्बे खींचने का काम करता था। लेकिन, लोग उससे कहें कि तुम चलाकर बता दो तो वह कहे मैं सिर्फ बैठा था, मैं चलाकर नहीं बता सकता। बाकी मुझे इतना पक्का स्मरण है कि मैं इस गाड़ी में बैठा था, इसमें हजारों लोग बैठते थे और यह गाड़ी एक गाँव से दूसरे गाँव जाती थी। मगर मैं चलाकर नहीं बता सकता; लेकिन मैं बैठा था इतना पक्का है। और यह बैठने वाला चिल्लाता रहे और किताबें भी लिखे कि यह रेल का इंजन है, इसमें लोग बैठते थे, चलाते थे लेकिन कोई उसकी सुनेगा नहीं क्योंकि यह चलाकर नहीं बता सकेगा। तो हर दिशा में, बाह्य या आन्तरिक हजारों उपाय खोजे जाते हैं। लेकिन कभी-कभी आमूल सभ्यताएँ नष्ट हो जाती हैं, खो जाती हैं अन्धकार में अगर उनके विशेषज्ञ खो जाएँ। हजार कारण होते हैं खो जाने के। आज

मन्दिर और मस्जिद बने हुए हैं। तन्त्र, मन्त्र, यन्त्र सब बचे हुए हैं बहुत, बहुत रूपों में लेकिन कुछ उनका मतलब नहीं है। क्योंकि उनसे क्या हो सकता था इसका कुछ पता नहीं। वह कैसे हो सकता था इसका भी कुछ पता नहीं। और तब-जैसे रेल के इंजन की पूजा करे कोई आगे भविष्य में जाकर, ऐसा हम मूर्तियों की पूजा कर रहे हैं। हाँ, कुछ लोगों की स्मृति रह गई थी कि कुछ होता था, उनके पीछेवालों को भी वह कह गए हैं कि कुछ होता था, वह आज भी मन्दिर के घेरे में उनकी सुरक्षा के लिए खड़े हुए हैं। क्योंकि उनके पास कुछ भी बताने को नहीं है कि क्या होता था, क्या हो सकता था— वह करके कुछ भी नहीं बता सकते।

चेतनाएँ जैसे ही मुक्त होती हैं, मुक्ति के पहले सारी वासनाएँ समाप्त हो जाती हैं। इसको थोड़ा ठीक से समझ लेना चाहिए। मुक्ति होती ही उस चेतना की है जिसकी सारी वासनाएँ समाप्त हो गई हैं। लेकिन अगर सारी वासनाएँ समाप्त हो जाएँ तो अमुक्त स्थिति और मुक्त स्थिति के बीच सेतु क्या होगा? दोनों को जोड़ता कौन होगा? वह आत्मा तो अपने को पहचान ही नहीं सकेगी क्योंकि उसने अपने को वासना में ही जाना था। और अगर सारी वासनाएँ एक क्षण में समाप्त हो जाएँ और दूसरे क्षण कोई वासना न रह जाए तब वह आत्मा अपने को पहचान ही नहीं सकेगी कि मैं वही हूँ। इसलिए जब सारी वासनाएँ समाप्त हो जाती हैं तब सिर्फ सेतु की तरह एक वासना शेष रह जाती है जिसको मैं करुणा कह रहा हूँ, वही शेष रह जाती है। यही उसका पुराने जगत् से एक मात्र सेतु होता है। अमुक्त आत्मा और मुक्त आत्मा के बीच जो एक सेतु है, वह करुणा का है। लेकिन अन्ततः सेतु के पार हो जाता है सब और करुणा भी चली जाती है। तो तीर्थंकर का होना करुणा की वासना से होता है। और एक जन्म से ज्यादा असम्भव है इस मोमन्टम में जाना, इस गति में जाना। इसलिए एक जन्म से ज्यादा नहीं हो सकता, और जैसा कि मैंने कहा है कि सभी ज्ञानियों को ऐसा हो जाता है ऐसा भी नहीं है। इसलिए महावीर की स्थिति में अनेकों पहुँचते हैं लेकिन सभी तीर्थंकर नहीं हो जाते क्योंकि मुक्ति का आकर्षण इतना तीव्र है, मुक्ति का आनन्द इतना तीव्र है कि बहुत बलशाली लोग ही वापस लौट सकते हैं, एक जन्म के लिए ही। और यह बलशाली लोग एक जन्म में लौटकर इतना इन्तजाम कर जाते हैं, पूर्ण इन्तजाम कर जाते हैं, यानी उनके लौटने का प्रयोजन ही यह होता है असल में कि यह पूरा इंतजाम कर जाते हैं कि जब वह शरीर नहीं ग्रहण कर सकेंगे तब उनसे कैसे सम्बन्ध स्थापित किया जा सकेगा। अब इसकी बहुत गहरी व्यवस्था है।

समझ लें कि एक पिता है, उसके छोटे-छोटे बच्चे हैं और वह लम्बी यात्रा पर जा रहा है, जहाँ से वह कभी नहीं लौटेगा। वह अपने बच्चों के लिए इन्तजाम कर जाता है सब तरह का। उन्हें कह जाता है कि इस पते पर चिट्ठी लिखना तो मुझे मिल जाएगी। वह घर में अपना चित्र भी छोड़ जाता है कि जब तुम बड़े हो जाओ तो तुम पहचानना कि मैं ऐसा था। वह उन बच्चों के लिए स्मृति भी छोड़ जाता है कि तुम जब बड़े हो जाओ तो मैं तुमसे कहना चाहता था, वह इसमें लिखा है, वह तुम समझ लेना। और जब भी मुझसे सम्बन्ध स्थापित करना चाहो तो यह मेरा फोन नम्बर होगा। इस विशेष फोन नम्बर पर तुम मुझसे सम्पर्क स्थापित कर सकोगे। मैं नहीं लौट सकूँगा अब। अब लौटना असम्भव है। तो प्रत्येक करुणापूर्ण शिक्षक एक बार लौटकर सारा इन्तजाम कर जाता है कि पीछे उससे कैसे सम्बन्ध स्थापित किए जा सकेंगे। जब शरीर खो जाएगा तो उसका कोड नम्बर क्या होगा, जिस विशेष मनःस्थिति में, जिस विशेष कोड नम्बर पर उससे सम्पर्क स्थापित हो जाएगा। सारे धर्मों के विशेष मंत्र कोड नम्बर हैं। जिन मन्त्रों में निरन्तर उच्चारण से ध्यानपूर्वक चित्त एक विशिष्ट ट्यूनिंग को उपलब्ध होता है और उस ट्यूनिंग में विशिष्ट शिक्षकों से सम्बन्ध स्थापित हो सकते हैं। वह बिल्कुल टेलिफोनिक नम्बर है कि चित्त अगर उसी ध्वनि में अपने को गतिमान करे तो एक विशिष्ट ट्यूनिंग को उपलब्ध हो जाता है। और वह कोड नम्बर किसी एक शिक्षक का ही है, वह दूसरे के लिए काम में नहीं आ सकता। दूसरे के लिए वह उपयोगी नहीं है। इसलिए इन कोड नम्बरों को अत्यन्त गुप्त रखने की व्यवस्था की गई है। इसलिए चुपचाप अत्यन्त गुप्तता में ही वे किए जाते हैं।

सम्बन्ध स्थापित हो सके इसलिए बहुत उपाय छोड़ जाते हैं; चिन्ह छोड़ जाते हैं; मूर्तियाँ छोड़ जाते हैं; शब्द छोड़ जाते हैं; मंत्र छोड़ जाते हैं; विशेष आकृतियाँ जिनको तंत्र कहें वह छोड़ जाते हैं, यंत्र छोड़ जाते हैं। जिन आकृतियों पर चित्त एकाग्र करने से विशिष्ट दशा उपलब्ध होगी उस दशा में उनसे संबंध स्थापित हो सकेगा। लेकिन वह सब खो जाता है। और, धीरे-धीरे उनसे सम्पर्क स्थापित होना बन्द होता चला जाता है। जब उनसे पूरा सम्पर्क टूट जाता है तब उनके पास कोई उपाय नहीं रह जाता। तब वैसे शिक्षक धीरे-धीरे खो जाते हैं, विलीन हो जाते हैं। ऐसे अनन्त शिक्षक मनुष्य जाति में पैदा हुए हैं। सभी शिक्षकों का अपना काम था वह उन्होंने पूरा किया और पूरी मेहनत भी की है।

कुछ जीवन्त परम्पराएँ हैं जिनमें कि वह चलता है। जैसे कि तिब्बत का लामा है, दलाई लामा है। बड़ी अद्‌भुत बात है लेकिन बड़ी कीमत की है। जब एक दलाई लामा मरता है, तो वह सब चिन्ह छोड़ जाता है कि मेरा अगला जन्म जो होगा उसमें तुम मुझे कैसे पहचान सकोगे? वह सारे चिन्ह छोड़ जाता है। मेरा अगला जन्म होगा तो ये मेरे चिन्ह होंगे। और ये सवाल तुम मुझसे पूछना तो ये जबाब मैं तुम्हें दूंगा। तब तुम पक्का मान लेना कि मैं वही आदमी हूं। नहीं तो तुम पहचानोगे कैसे, मानोगे कैसे कि मैं वही हूं जो पिछला दलाई लामा मरा था। जो अभी दलाई लामा है इसका पहला गुरु जब मरा यह वही आत्मा है। वह चिन्ह छोड़कर गया था कि पूरे तिब्बत में खोज बीन करना इतने वर्षों बाद। और जो लड़का इन चीजों का यह जवाब दे दे, समझना कि वह मैं हूं। बातें अत्यन्त गुप्त थीं। वे सील बन्द मोहर उत्तर हैं उनके। वह कोई खबर किसी को नहीं मिल सकती। सारे तिब्बत में खोज शुरू हुई। और सारे तिब्बत में सैकड़ों, हजारों बच्चों से पूछे गए वही सवाल। लेकिन कोई बच्चा कैसे जवाब देता? इस बच्चे ने सारे जवाब दे दिए तो स्वीकृत कर लिया गया कि पुरानी आत्मा उसमें उतर आई है। तब उसको फिर गद्दी पर बिठा दिया गया। सिर्फ शरीर नया हो गया, आत्मा वही है। शिक्षक यह भी करते रहे ताकि वे अनन्त जन्मों तक निरंतर उपयोगी हो सकें। जब खो जाएँ वे जन्मों से तब भी वे उपयोगी हो सकें।

एक जन्म से ज्यादा तो नहीं हो सकता यह। लेकिन जन्म बन्द हो जाने के बाद बहुत समय तक सम्बन्ध स्थापित रह सकते हैं। सम्बन्ध स्थापित रहने के दो सूत्र रहेंगे। उस शिक्षक की करुणा की वासना शेष रह गई हो जितनी दूर तक, और जितने दूर तक उससे सम्बन्ध होने के सूत्र साफ और स्मरण में रह गए हों। इसीलिए जैसा मैंने कल कहा कि कई वर्षों तक तो जरूरत नहीं पड़ती है लिखने की कि क्या कहा था क्योंकि बारंबार सम्बन्ध स्थापित करके जाँच की जा सकती है कि यही कहा था। लेकिन जब वे सूत्र क्षीण होने लगते हैं और सम्बन्ध स्थापित करना मुश्किल होने लगता है तब लिखने की बारी आती है। इसलिए पुराना कोई भी महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ सैकड़ों वर्षों तक नहीं लिखा गया क्योंकि तब तक वे सूत्र थे जिससे कि सम्बन्ध जोड़ कर हम पूछ सकते थे, जान सकते थे कि यही कहा है। लिखने की कोई जरूरत न थी। लेकिन जब सम्बन्ध क्षीण होने लगे और अन्तिम शिक्षक मरने लगे जिनका सम्बन्ध हो सकता था तो फिर उनसे कहा कि अब लिख दिया जाए। अब पूरी बात लिख

दी जाए। जैसा कि सिक्खों के मामले में हुआ। दसवें गुरु के बाद कोई व्यक्ति नजर नहीं आया जो कि ग्यारहवाँ गुरु हो सकेगा। जरूरी हुआ कि ग्रन्थ लिख दिया जाए क्योंकि अब सम्भावना नहीं है कि सम्पर्क हो सकेगा। बाकी दस गुरुओं की जो परम्परा है उसमें निरन्तर सम्पर्क स्थापित है। वह नानक से टूटती नहीं है। उसमें कोई कठिनाई नहीं पड़ती है। नानक निरन्तर उपलब्ध हैं; सम्बन्ध जोड़ा जा सकता है। गद्दी पर बिठाने की जो बात थी वह धीरे-धीरे पीछे तो बड़ी स्वार्थ की बात हो गई। मगर वही अर्थ की थी। बहुत अर्थ की थी। लेकिन हम सभी अर्थ की बातों को व्यर्थ कर सकते हैं।

अब जैसे कि शंकराचार्य की गद्दी पर जो शंकराचार्य बैठे हैं उन्हें कुछ भी पता नहीं; कुछ भी मतलब नहीं। अब उनका गद्दी पर बैठना बिल्कुल राजनीतिक चुनाव जैसा मामला है। लेकिन प्राथमिक रूप से शंकराचार्य अपनी जगह उस आदमी को बिठाल गया है, जिससे वह सम्बन्ध स्थापित रख सकेगा। और कोई मतलब नहीं है उसका। अपनी जगह उस आदमी को बिठाल दिया जा रहा है जिससे कि अब वह सम्बन्ध स्थापित रख सके। मर कर भी वह मरेगा नहीं इस जगत् में। उसका एक सम्बन्ध सूत्र कायम रहेगा। एक व्यक्ति मौजूद रहेगा जिससे वह काम जारी रखेगा। और उस व्यक्ति को वह कह कर जाएगा, समझा कर जाएगा कि वह कैसे व्यक्ति को चुन कर बिठा जाएगा ताकि इस व्यक्ति के खो जाने पर भी सम्बन्ध सूत्र जारी रहे। और, वह सम्बन्ध सूत्र खत्म हो गए। अब शंकराचार्य से किसी शंकराचार्य को कोई सम्बन्ध सूत्र नहीं है। सम्पर्क टूट गया है। इसलिए अब सब फिजूल बात हो गई। अब उसमें कोई मूल्य नहीं रह गया। अब वह मामला सिर्फ धन-सम्पत्ति, पद-प्रतिष्ठा का है कि कौन आदमी बैठे। तो झगड़े हैं, अदालत में मुकदमें भी चलते हैं, और सब निर्णय अदालत करती है कि कौन आदमी हकदार है। यह निर्णय करने की बात ही नहीं है। यह प्रश्न ही नहीं है निर्णय करने का क्योंकि निर्णय कौन करेगा? यह निर्णय पुराना शिक्षक कर सकता था, पिछला शिक्षक कर सकता था और तब कई बार ऐसा हुआ है कि बिल्कुल ऐसे लोगों के हाथ में गद्दी सौंप दी गई है जिनके बाबत किसी को कोई ख्याल ही नहीं था।

एक शिक्षक मर रहा था चीन में। पाँच सौ उसके भिक्षु थे। उसने खबर भेजी की जो भिक्षु चार पंक्तियों में मेरे दरवाजे पर आकर लिख जाए धर्म का सार उसको मैं अपनी गद्दी पर बिठा जाऊँगा क्योंकि मेरा वक्त विदा का आ गया है; अब मैं जाता हूँ। तो पाँच सौ थे भिक्षु। बड़े ज्ञानी, पण्डित थे उनमें।

और सबको पता था कि कौन जीतेगा क्योंकि जो सबसे बड़ा पण्डित था, वही जीतेगा। उस पण्डित ने जाकर द्वार पर लिख दिया शिक्षक के धर्म को चार सूत्रों में। लिख दिया कि मनुष्य की आत्मा एक दर्पण की भाँति है; उस पर विकार की, विचार की धूल मच जाती है। उस धूल को पोंछ डालने का जो साधन है, वह धर्म है। सारे लोग पढ़ गए और कहा कि अद्भुत है; बात तो पूरी हो गई। और तो कुछ होता ही नहीं आत्मा में। सिर्फ धूल जम जाती है, उसको झाड़ देने का जो साधन है वह धर्म है। लेकिन गुरु सुबह उठा है, बूढ़ा गुरु अस्सी वर्ष का। उसने देखा। उसने कहा कि यह किस नासमझ ने दीवार खराब की है। उसको पकड़ कर लाया जाए इसी वक्त। तो वह पंडित एकदम भाग गया क्योंकि उसने कहा कि वह गुरु पकड़ लेगा फौरन क्योंकि यह सब किताबों से पढ़ कर उसने लिखा है। सारे आश्रम में चर्चा हुई। वह दस्तखत भी नहीं कर गया था उसके नीचे। इसी डर से अगर गुरु पसन्द करेगा तो जा कर कह दूँगा मैंने लिखा है और अगर नापसन्द कर देगा तो झंझट के बाहर हो जाएँगे। सारे आश्रम में चर्चा चल पड़ी कि क्या हो गया।

एक आदमी आज से कोई बारह साल पहले आया था और बारह साल पहले इस बुड्ढे के पैर को पकड़ कर कहा था कि संन्यासी होना है मुझे। इस बुड्ढे आदमी ने पूछा था : तुझे संन्यासी दीखना है या कि होना है। उसने कहा था कि दीख कर क्या करेंगे? और दीखना होता तो आपसे पूछने की क्या जरूरत थी। हम दीख जाते। तो उसने कहा होना बहुत मुश्किल है। होना है तो फिर एक काम कर। आश्रम में पाँच सौ भिक्षु हैं। उनका जो चौका है, जहाँ चावल बनता है, खाना बनता है वहाँ तू चावल कूटने का काम कर और दुबारा मेरे पास मत आना, आना ही मत। जरूरत होगी तो मैं तेरे पास आऊँगा। न किसी से बात करना, न कपड़े बदलना, चुपचाप जैसा तू है, उस आश्रम के चौके के पीछे चावल कूटने का काम कर और दुबारा आना मत, भूल कर भी मेरे पास। जरूरत होगी तो मैं आ जाऊँगा। नहीं होगी तो बात खत्म हो गई। वह युवक बारह साल पहले से आश्रम के पीछे जाकर चावल कूटता रहा। लोग धीरे-धीरे उसको भूल भी गए क्योंकि वह और कोई काम ही नहीं करता था। वह आश्रम के पीछे चावल कूटता रहता था। न किसी से बोलता था। सुबह उठता था; चावल कूटता था। शाम को थक जाता था, सो जाता था। बारह साल हो गए। न कभी गुरु उसके पास गया। न कभी वह दुबारा पूछने आया।

आज, सारे आश्रम में एक ही चर्चा थी, भोजनालय में भी भिक्षु चर्चा कर रहे थे। वह चावल कूट रहा था। उसके पास से दो तीन भिक्षु चर्चा करते निकले कि बड़ी हद कर दी गुरु ने। इतने सुन्दर वचनों को, इतने श्रेष्ठ वचनों को कह दिया कचड़ा है। वह चावल कूटने वाला जो बारह साल से चुपचाप चावल कूटता रहा था, लोग उसको भूल ही गए थे। उसके पास से निकलते थे, तो कौन ध्यान देता था, फिर वे सब बड़े भिक्षु थे, ज्ञानी थे। वह साधारण चावल कूटने वाला चावल कूटते-कूटते हँसने लगा। उन भिक्षुओं ने रुक कर उसको देखा कि तुम भी हँसते हो, किस बात से हँसते हो ? उसने कहा कि ठीक ही गुरु ने कहा है कि क्या कचरा लिखा है। उन्होंने कहा : अरे ! तू एक चावल कूटने वाला। बारह साल से सिवाय चावल के तूने कुछ और कूटा नहीं और तू भी वक्तव्य दे रहा है इस पर। तुझको पता है कि धर्म क्या है। उसने कहा मुझको पता तो है पर लिखना भूल गया। पता तो मुझे हो गया लेकिन लिखना भूल गया, लिखें कैसे ! और धर्म क्या लिखा जा सकता है ? इसलिए मैं अपना चावल ही कूटता रहता हूँ। खबर तो मुझे भी मिल गई थी कि वह दरवाजे पर लिखने के लिए कहा था। लेकिन एक तो यह कि कौन गद्दी की झंझट में पड़े। दूसरा यह कि लिखें कैसे। उन भिक्षुओं ने सिर्फ मजाक में कहा—अच्छा, चलो हम लिख देंगे, तू बोल दे। तो उसने कहा—'यह हो सकता है।' धर्म के साथ अक्सर यह हुआ है। बोला किसी ने, लिखा किसी ने। यह हो सकता है क्योंकि हम जिम्मेदार न रहे। इससे कोई न कह सकेगा कि तुमने लिखा। हम सिर्फ बोलें। चल कर उसने कहा, मैं बोल देता हूँ। उसने बोल दिया और उन भिक्षुओं ने दीवाल पर लिख दिया। वे जो चार लिखी पंक्तियाँ काट दी थीं गुरु ने, उनकी बगल में उसने दूसरी चार पंक्तियाँ लिखीं। उसने कहा : 'कौन कहता है कि आत्मा दर्पण की भाँति है। जो दर्पण की भाँति है उस पर तो धूल जम ही जाएगी। आत्मा का कोई दर्पण ही नहीं है, धूल जमेगी कहाँ ?' जो इस सत्य को जान लेता है, वह धर्म को उपलब्ध हो जाता है।

गुरु भागा हुआ आया और उसको पकड़ लिया और कहा कि 'तू भाग मत जाना क्योंकि ऐसे लोग निकल कर भाग जाते हैं। तूने ठीक बात लिख दी है।' उसने कहा कि लेकिन मुझसे गलती हो गई है। मैं अपना चावल ही कूटना चाहता हूँ। मैं किसी का गुरु वगैरह नहीं होना चाहता। लेकिन उससे गुरु ने कहा कि तेरे बिना कोई चारा नहीं। तुझसे मेरा सम्बन्ध हो सकेगा पीछे भी। उसको अपनी गद्दी पर बिठाया और उसने कहा : मैं जानता था अगर कोई लिख

सकेगा तो वह चावल कूटने वाला, जो बारह साल से लौटा नहीं, चावल ही कूट रहा है। और, जिसने शिकायत भी नहीं की एक बार की गुरु अब तक नहीं आया; अब मर जाएँगे तब आएगा। मैं जानता था कि उसको मिल ही गया है, इसलिए नहीं लौटा। उसने कहा कि सब मिल गया था इसलिए आपके आने की जरूरत भी न थी क्योंकि चावल कूटता रहा, कूटता रहा। कुछ दिन तक विचार चले पुराने क्योंकि नए विचारों का कोई उपाय ही न था। न किसी से बात करता, न कुछ पढ़ता। चावल ही कूटता। और चावल कूटने से विचार कहीं पैदा होते हैं? धीरे-धीरे सब विचार मर गए। चावल कूटना ही रह गया। जब सब विचार मर गए और सिर्फ चावल कूटना रह गया तो मैं इतनी तेजी से जागा जिसका कोई हिसाब नहीं। सारी चेतना मुक्त हो गई।

यह जो खो गया शिक्षक है, वह करुणावश कुछ रास्ते ऐसे छोड़ जाता है पीछे। लेकिन सभी चीजें क्षीण हो जाती हैं। सभी सम्पर्क सूत्र शिथिल पड़ जाते हैं और खो जाते हैं।

प्रश्न : आपने जो बातें कहीं, उनमें से कुछ विचित्र भी लगीं। आपने उपवास की जो तुलना की—भोजन कर लिया पर भोजन न करने के समान; विवाह कर लिया पर विवाह न करने के समान—इतने तक समझ में आया। पर सन्तान उत्पन्न कर दी और सन्तान उत्पत्ति न करने के समान; मैथुन किया पर न करने के समान—यह प्रक्रिया तो ऐसी नजर आती है कि बिना वासना और तृष्णा के हो ही न पाए।

उत्तर : अगर भोजन की बात समझ में आती है तो मैथुन की क्यों नहीं? यदि भोजन द्रष्टा ज्ञाता के रूप में किया जा सकता है तो मैथुन क्यों नहीं? अगर किसी भी क्रिया को करते समय पीछे साक्षी खड़ा है और देख रहा है तो कोई भी क्रिया बंधनकारी नहीं होती। भोजन करते समय अगर साक्षी पीछे देख रहा है कि भोजन किया जा रहा है और मैं अलग खड़ा हूँ तो भोजन सिर्फ शरीर में जा रहा है। पीछे अछूता कोई खड़ा है जिसको कुछ भी नहीं छू सकता, जो सिर्फ देख रहा है, जो सिर्फ द्रष्टा है भोजन किए जाने का। अब ध्यान रखिए भोजन शरीर में जा रहा है और मैथुन में शरीर से कुछ बाहर जा रहा है। उसका भी साक्षी हुआ जा सकता है। साक्षी तो किसी भी क्रिया का हुआ जा सकता है, चाहे वह अन्तर्गामी हो चाहे बहिर्गामी। असल में जो भोजन शरीर में जा रहा है, वही मैथुन में शरीर से बाहर जा रहा है। भोजन में क्या जा रहा है भीतर? उसी का सारभूत फिर मैथुन से बाहर जा रहा है। लेकिन यह

जा रहा है शरीर में, वह आ रहा है शरीर से। अगर चेतना साक्षी हो सके तो बात समाप्त हो गई है। तब नदी से गुजर सकते हो ऐसे कि पाँव न भीगें। नदी से गुजरोगे तो पाँव भीग ही जाएँगे। लेकिन बिल्कुल ऐसे जैसे पाँव न भीगें : अगर पीछे कोई साक्षी रह गया है तो बात खत्म हो गई है। गहरे में प्रश्न साक्षिभाव का है। सिर्फ और कुछ नहीं। फिर कौन सी क्रिया है, इससे कोई सम्बन्ध नहीं। जैसे ही क्रिया के साक्षी हुए कर्ता मिट गया। कर्ता मिटा कि कर्म मिट गया। क्रिया रह गई सिर्फ। अब यह क्रिया हजारों कारणों से उद्भूत हो सकती है।

वह जो तुम कहते हो सन्तति है उसके पैदा करने में कोई वासना न हो। सच तो यह है कि जब ऐसी सन्तति पैदा हो जिसमें कोई वासना न हो तब केवल शरीर एक उपकरण बना है एक क्रिया का। इससे ज्यादा कुछ भी नहीं हुआ है। चेतना उपकरण नहीं बन सकती। लेकिन साधारणतः आदमी मैथुन में बिल्कुल खो जाता है। होश रह ही नहीं पाता। बेहोश हो जाता है। तब केवल शरीर ही उपकरण नहीं बनता, भीतर आत्मा सो गई होती है, मूर्च्छित हो गई होती है। और मैथुन का जो विरोध है वह केवल इसीलिए है कि आत्मा की मूर्च्छा सर्वाधिक मैथुन में होती है। अगर वहाँ आत्मा अमूर्च्छित रह जाए तो बात खत्म हो गई। कोई बात न रही। और प्रश्न भोजन का नहीं। वह भी एक क्रिया है। किसी भी क्रिया में, जैसे अभी तुम मुझे सुन रहे हो, सुनना भी एक क्रिया है, अगर तुम साक्षी हो जाओ तो तुम पाओगे कि सुना भी जा रहा है और तुम दूर खड़े होकर सुनने को देख भी रहे हो।

जैसे मैं बोल रहा हूँ और मैं साक्षी हूँ। मैं बोल भी रहा हूँ और पूरे वक्त मैं जानता हूँ कि मेरे भीतर अबोला भी कोई खड़ा हुआ है। और असल में जो अबोला खड़ा है वही मैं हूँ। जो बोला जा रहा है, वह उपकरण है वह साधन है। वह मैं नहीं हूँ। चल रहे हो रास्ते पर और अगर जाग जाओ तो तुम पाओगे कि चल भी रहे हो, कुछ भीतर अचल भी खड़ा है जो नहीं चल रहा है, जो कभी चला ही नहीं, जो चल ही नहीं सकता है। और अगर चलने की क्रिया में तुम पूरे जाग गए हो तो तुम पाते हो कि चलने की क्रिया हो रही है और भीतर कोई अचल भी खड़ा है। और इस अचल का बोध हो जाए तो तुम किसी दिन कह सकते हो कि मैं कभी चला ही नहीं। और हजारों लोगों ने तुम्हें चलते देखा होगा और रिकार्ड होंगे तुम्हारे चलने के और फोटोग्राफ होंगे तुम्हारे चलने के कि तुम चले थे, यह रहा फोटोग्राफ, और अदालत निर्णय देगी

कि हाँ तुम चले थे। लेकिन, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। तुम कहोगे कि वह सिर्फ दिखाई पड़ा था तुम्हें कि हम चले थे। लेकिन भीतर में अचल था। कोई नहीं चला था।

कौन सी क्रिया है यह सवाल नहीं है महत्त्वपूर्ण। यदि क्रिया के भीतर तुम जागे हुए हो तो तुम क्रिया से भिन्न हो गए। और तब क्रिया जगत् के इस जाल का एक हिस्सा हो गई। जैसे स्वाँस चल रही है और अगर तुम देख रहे हो तो स्वाँस का चलना या न चलना जगत् की विराट् व्यवस्था का हिस्सा हो गया और तुम बिलकुल बाहर होकर देखने लगे कि स्वाँस चल रही है। जैसे तुमने सूरज को उगते डूबते देखा। सूरज दूर है। फर्क इतना ही है स्वाँस जरा पास चलती है। एक पक्षी मैथुन कर रहा है। वह देह तुमसे थोड़ी दूर है। लेकिन उसको मैथुन करते देखकर यह तो नहीं कहते कि मैं मैथुन कर रहा हूँ। तुम कहते हो : मैं देख रहा हूँ। पक्षी मैथुन करता है। तुम बाहर हो गए। एक तल पर जिस दिन चेतना सम्पूर्ण रूप से साक्षी हो जाती है, यह शरीर दूर खड़े पक्षी से ज्यादा अर्थ का नहीं रह जाता। उतना ही फासला हो जाता है। और तुम कह सकते हो—शरीर से हो रहा है। समझना कठिन मालूम पड़ता है हमें। कठिन इसलिए कि हम मैथुन में निरन्तर मूर्च्छित हुए हैं, भोजन में मूर्च्छित हुए हैं, सब चीजों में मूर्च्छित हुए हैं।

गुरजीएफ एक फकीर था। उसका काम था कि लोग उसके पास आएँ। बहुत अद्भुत था वह व्यक्ति। इसी सदी में थोड़े से जानने वाले दो चार लोग जो हैं, उनमें से एक आदमी था वह। लोगों को ऐसी चीजें सिखाता कि तुम सोच ही नहीं सकते। लोगों से कहता तुम क्रोध करो। वह ऐसा अवसर पैदा कर देता कि उसको क्रोध आ जाए। जैसे कि आप आए हो तो वह ऐसे उपद्रव खड़े करवा देगा आपके चारों तरफ कि आप क्रोधित हो जाओ और आप चिल्लाने लगो, आग-बबूला हो जाओ, सारा इन्तजाम होगा कि आप को आग-बबूला किया जाए। और फिर वह एकदम से कहेगा—देखो, क्या हो रहा है और तुम चौंक गए हो। आँखें लाल हैं, हाथ काँप रहे हैं। और तुम हँसने लगे हो। तुम्हारा हाथ अब भी कांप रहा है और आँखें लाल हैं। तुम्हारे होंठ फड़क रहे हैं, तुम्हारा मन किसी की गर्दन दबा देने को है। और उसने कहा कि देखो। और तुम्हें याद आ गया कि उसने क्रोध का इन्तजाम करवाया था पूरा का पूरा। अब तुमने देखा और तुम एक क्षण में अलग हो गए, क्रोध अलग हो गया और तुम एक क्षण में अलग खड़े हो गए। तब सब शान्त हो गया है भीतर। मगर

शरीर अब भी कांप रहा है। जैसे कभी तुमने रात सपना देखा हो, डर गए हो, नींद खुल गई, और सपना टूट गया और अब तुम जानते हो, अब तुम हँसते हो कि वह सपना था। फिर भी हाथ कांप रहे हैं, फिर भी स्वांस धड़क रही है और अभी डर मौजूद है। और तुम जानते हो कि अब तुम जग गए हो और वह सपना था सिर्फ। लेकिन सपने का प्रभाव इतनी जल्दी थोड़े ही चला जाएगा। शरीर को वक्त लगेगा शांत होने में। वह सब तरह के उपाय करता और लोगों को उन उपायों के बीच में कहता कि जागो! और अगर उस वक्त सुनाई पड़ जाए बात तो अभी आदमी जाग जाए।

तन्त्र ने इसके उपाय किए बहुत। नग्न स्त्री को सामने बिठाया हुआ है। साधक उसको देख रहा है और खोता चला जा रहा है। आँखों में उसके सम्मोहन आता चला जा रहा है, वह भूला चला जाता है, कभी कोई चिल्लाता है कि जागो और वह एक क्षण में जाग कर देखता है और अब शिथिल हो गया। नग्न स्त्री सामने रहती है चित्रवत्। उसका कांपता हुआ मन और शरीर रह गया है। दूर और भीतर कोई जाग गया है और देख रहा है। वह हँसता है कि क्या पागलपन था? वह सारी व्यवस्था किसी भी क्षण जागने में उपयोगी हो सकती है। ऐसी कोई क्रिया नहीं है जिसमें न जागा जा सके। हाँ मैथुन सर्वाधिक कठिन है। उसका कारण है कि मैथुन ऐसी क्रिया है जो मनुष्य के ऊपर प्रकृति ने नहीं छोड़ी। अगर छोड़ दी जाए तो शायद कोई पुरुष कोई स्त्री कभी मैथुन करने को राजी न हो। अगर मनुष्य पर छोड़ दी जाए तो कोई कभी भी राजी न हो क्योंकि ऐसी एब्सर्ड, ऐसी व्यर्थ, ऐसी बेमानी क्रिया है। तो प्रकृति ने उसके लिए बहुत गहरी हिप्नोसिस डाली है भीतर। इतना गहरा सम्मोहन और इतनी गहरी मूर्च्छा डाली है कि उसी प्रभाव में ही कोई कर सकता है; नहीं तो कर नहीं सकता। मुश्किल पड़ जाय। वह मूर्च्छा बहुत गहरी है।

मैं इस पर बहुत प्रयोग करता रहा और बड़े हैरानी के अनुभव हुए। एक युवक मेरे पास था जिससे मैंने वर्षों सम्मोहन के प्रयोग किए। उसको मैंने संमोहित करके बेहोश किया है। पास में एक तकिया पड़ा है। और उससे मैं बेहोशी में कहता हूँ कि उठने के पन्द्रह मिनट बाद तू इस तकिए को चूमना चाहेगा। कोई उपाय नहीं कि तू इसको चूमने से रुक जाए। तुझे इसे चूमना ही पड़ेगा। अब उसे होश वापस लौटा दिया है। वह होश में आ गया है। अब

वह बैठा है। और सब लोगों को पता है। पन्द्रह लोग वहाँ बैठे हैं, सबको पता है। अब वह लड़का बार-बार चोरी से उस तकिए को देखता है जैसे कोई किसी स्त्री को देखता है। अब वे पन्द्रह लोग जाकर उसको देख रहे हैं कि क्या मामला है ? वह कभी मौका मिल जाए तो चुपचाप उसे छू लेता है। उसके मन में इतनी गहरी हिप्नोसिस, सम्मोहन है कि तकिए ने एक कामुकता का अर्थ ले लिया है। वह खुद भी संकोच कर रहा है कि यह क्या पागलपन है कि वह तकिए को देखे। लेकिन अब उसका भीतर पूरा मन तकिए की तरफ डोला चला जा रहा है। अब तकिया यहाँ रखा है और वह वहाँ बैठा है। वह किसी भी बहाने यहाँ पास आकर बैठ गया है। बहाना बिल्कुल दूसरा है। क्योंकि तकिए के पास आकर बैठने के लिए वह कैसे कह सकता है ? वह कहता है कि मुझे वहाँ से सुनाई नहीं पड़ता है तो मैं ठीक से आप के पास आकर बैठ जाता हूँ। मैंने तकिया उठा कर इस तरफ रख लिया है वह इधर तकिए के पास आकर बैठ गया है। अब वह बड़ा बेचैन है। वह कहता है कि अब वहाँ जरा दीवार से टिक कर बैठना मुझे ठीक होगा। वह आकर दीवार से टिक कर बैठ गया है। वह तकिए की तलाश में है। मैंने तकिया उठा कर आलमारी में बंद कर दिया है। पन्द्रह मिनट अब पूरे हुए जाते हैं और वह बेचैन है, बिल्कुल तड़फ रहा है। और कहता है चाबी दीजिए उस आलमारी में मेरा फाउन्टेनपेन रखा हुआ है। तकिए के लिए अब वह कैसे कहे ? वह खुद भी नहीं सोच पा रहा है कि तकिए के लिए मैं कैसे कहूँ। हम सब बैठे हैं। उसको चाबी दे दी गई है। उसने जाकर ताला खोला है। वह सब तरफ देख रहा है। फाउन्टेनपेन उठाता है और झुक कर तकिए को चूम लेता है। और एकदम मुक्त हो जाता है। अब उससे पूछते हैं तुम यह क्या करते हो। वह एकदम रोने लगता है और कहता है कि मेरी समझ के बाहर है कि मैं क्या कर रहा हूँ लेकिन वह परेशान है। उस तकिए से मेरा क्या हो गया है। लेकिन मैं उसको चूम कर बड़ा हल्का हो गया हूँ। तकिए के प्रति एक यह हालत पैदा की जा सकती है। किसी भी चीज के प्रति हिप्नोसिस की जा सकती है।

प्रकृति ने मैथुन के साथ एक हिप्नोसिस डाली हुई है, एक सम्मोहन डाला हुआ है उसी सम्मोहन के प्रभाव में सारा खेल चलता है। इसलिए आदमी बिल्कुल अपने को विवश पाता है। जब एक सुन्दर चेहरा उसे खींचता है तो वह अपनी सामर्थ्य में, होश में नहीं है, बिल्कुल बेहोश है। इस सम्मोहन (हिप्नोसिस) को तोड़ा जाए और इसको तोड़ने की विधियाँ हैं। और सबसे बड़ी

विधि साक्षी होना है तो सम्मोहन एकदम टूट जाता है, कट जाता है। अगर सम्मोहन कट जाता है तो महावीर जैसे व्यक्ति को स्त्री में कोई आकर्षण नहीं है, कोई अर्थ नहीं है लेकिन स्त्री को हो सकता है अर्थ और आकर्षण। महावीर को पिता बनने में कोई अर्थ और आकर्षण नहीं लेकिन स्त्री को हो सकता है अर्थ और आकर्षण। और महावीर बिल्कुल—निरपेक्ष द्रष्टा (पैसिव आनलुकर) की तरह हैं। मैथुन से भी गुजर सकते हैं। इसमें कोई कठिनाई नहीं। एक दफा सम्मोहन (हिप्नोसिस) टूट जाए बस तब किसी भी क्रिया से आदमी देखता हुआ गुजर सकता है। और जिस दिन मैथुन से कोई देखता हुआ गुजर जाता है, उसी दिन मैथुन से मुक्त हो जाता है। फिर मैथुन में कोई मतलब न रहा क्योंकि हिप्नोसिस पूरी तरह टूट गई है। लेकिन ऐसा व्यक्ति इन्कार करने का भी कोई कारण नहीं मानता। क्योंकि ऐसे व्यक्ति को इन्कार करने में भी कोई अर्थ नहीं है। जैसे कि उस युवक से कहो कि तुम तकिए को चूमना चाहते हो तो वह कहेगा—नहीं! "मैं नहीं चूमना चाहता।" क्योंकि अब शर्म मालूम पड़ती है कि तकिए को चूमूँ। वह इन्कार करेगा। हो सकता है वह कसम खा ले भगवान् की कि मैं तकिए को कभी नहीं चूमूँगा। लेकिन, तकिए के प्रति उसका पागलपन जारी है। इस कसम में भी वह छिपा है। इसलिए ब्रह्मचर्य काम से छूट जाना नहीं है, काम से जाग जाना है। तब हम कृष्ण जैसे व्यक्ति को भी ब्रह्मचारी कहते हैं—'ब्रह्मचर्य को उपलब्ध है वह और अद्‌भुत है वह।'

प्रकृति ने, सन्तति जारी रहे इसलिए, बहुत गहरी मूर्च्छा डाली है। लगता हमें कठिन है लेकिन कुछ भी कठिन नहीं है; साक्षी के लिए कुछ भी कठिन नहीं है। इसलिए मैंने ऐसा कहा कि महावीर की पत्नी है लेकिन वे अविवाहित हैं। महावीर को पुत्री हुई है लेकिन वे निःसन्तान हैं। हमें ये दोनों बातें बड़ी सरलता से समझ में आ जाती हैं। स्त्री से भागता हुआ आदमी भी समझ में आ जाता है; स्त्री की तरफ भागता हुआ आदमी भी समझ में आ जाता है। स्त्री की तरफ मुँह किये समझ में आ जाता है? स्त्री की तरफ पीठ किये समझ में आ जाता है।

कृष्ण और गोपियों को देखें। कृष्ण की उपलब्धि बहुत अद्‌भुत है। कितनी हजार स्त्रियाँ उसे घेरे हुए हैं। उसे कोई फर्क नहीं पड़ता। वह एक लीला है, एक खेल है और कृष्ण पूरे वक्त जागा हुआ है। उससे कोई मतलब नहीं है। जीवन में जीना है तो दो रास्ते हैं। सोकर जियो; तो भोजन भी सोकर करोगे तुम नींद में। कपड़े भी सोए हुए पहनोगे, प्रेम भी सोए हुए करोगे, सेक्स में भी सोए हुए गुजरोगे। दूसरा एक रास्ता है—जागे हुए। प्रत्येक क्रिया जागे हुए

करो। सेक्स सर्वाधिक गहरी है क्योंकि बाइलोजी (जीवविज्ञान) और पूरी प्रकृति उसमें उत्सुक है। लेकिन ऐसा व्यक्ति जिसके लिए स्त्री ही मिट गई है, चुपचाप खड़ा आदमी, हमें समझ में बहुत मुश्किल से आता है। न, भागता है, न उत्सुक है, न स्त्री के प्रति उन्मुख है, न स्त्री से विमुख है। न राग में है, न विराग में है इसलिए महावीर के लिए जो शब्द इस्तेमाल हुआ है वीतराग, बड़ा अद्भुत है। वीतराग का मतलब है—राग से मुक्त। न विराग है न राग।

राग और विराग एक ही सिक्के के दो पहलू हैं कि एक व्यक्ति राग की दुश्मनी में विरागी हो जाए; विराग की दुश्मनी में रागी हो जाए। लेकिन वीतरागी का मतलब है जिसका राग-विराग गया, जो सहज खड़ा रह गया; न भागता है, न आता है, न बुलाता है, न भयभीत है। वीतराग का मतलब ही यह है कि जहाँ न राग है, न विराग है; और महावीर के पीछे चलने वाला जो साधक है वह राग से विराग को पकड़ता है। राग को बदलता है विराग में। विरागी सिर्फ उल्टा रागी है—शीर्षासन करता हुआ रागी। सिर्फ सिर के बल पर खड़ा हो गया है। रागी कहता है—स्पर्श करूँगा, प्रेम करूँगा, जिऊँगा। विरागी कहता है—स्पर्श नहीं करूँगा, प्रेम नहीं करूँगा, जिऊँगा भी नहीं। भय है, खतरा है बंध जाने का। एक बंधने को आतुर है, एक बंधने से भयभीत है। लेकिन, बंधन दोनों के केन्द्र में हैं। दोनों की नजरों में बंधन है। इसलिए रागी विरागी की पूजा करने निकल जाएँगे।

वीतरागी को पहचानना बहुत मुश्किल है। क्योंकि, वीतरागी, जो हमारी कैटेगरीज हैं—नाप जोख हैं—उनके बाहर पड़ जाता है एकदम। तराजू के इस पल्लू पर रखो तब भी तोल हो जाती है, तराजू के उस पल्ले पर रखो तब भी तोल हो जाती है। तराजू से उतर जाओ तो तोल कहाँ ? राग एक पलड़ा है, विराग दूसरा पलड़ा है। दोनों पर तोल हो सकती है। लेकिन वीतराग की तोल क्या होगी ? वीतराग को कैसे तोलोगे ? महावीर को सताए जाने का जो लम्बा उपक्रम है उसमें वीतरागता कारण है ? विरागी को इस मुल्क ने कभी नहीं सताया, यह ध्यान में रहे। महावीर के जमाने में कोई विरागियों की कमी नहीं रही। विरागी का सदा आदर रहा है। विरागी को कभी नहीं सताया किसी ने क्योंकि रागी विरागी को कभी सता ही नहीं सकते—रागी सदा विरागी को पूजते हैं क्योंकि रागी को लगता है कि मैं कैसी गंदगी में उलझा हूँ लेकिन विरागी कैसा मुक्त हो गया है सारी गंदगी से। लेकिन वीतरागी को दोनों सताते हैं—रागी भी और विरागी भी; क्योंकि रागी को लगता है कि यह आदमी

कैसा है ? विरागी को लगता है कि यह सब तोड़े जा रहा है, सब नष्ट किए जा रहा है ।

महावीर को दो तरह के दुश्मन सता रहे हैं । एक जो रागी हैं, सता रहे हैं, पत्थर मार रहे हैं । वे कह रहे हैं यह आदमी विरागी ही नहीं है । एक विरागी भी सता रहा है । वह कह रहा है यह आदमी कैसा विरागी है । वीतरागी को पहचानना ही मुश्किल है । द्वन्द्व को हम पहचान सकते हैं, निर्द्वन्द्व को नहीं । द्वैत को हम पहचान सकते हैं, अद्वैत को नहीं । और महावीर की पूरी वृत्ति वीतराग की है, पूरा भाव वीतराग का है । और प्रत्येक स्थिति में, क्योंकि वीतरागी के लिए स्थिति का सवाल नहीं है । स्थिति को रागी कहता है—ऐसी स्थिति चाहिए और विरागी कहता है—ऐसी स्थिति चाहिए । रागी कहता है—स्त्री हो, धन हो, पैसा हो, यह सब होना चाहिए । इसके बिना मैं जी नहीं सकता । विरागी कहता है—स्त्री न हो, धन न हो, पैसा न हो, इसके साथ मैं जी नहीं सकता । यानी जीने की दोनों की कन्डीशन है, शर्त है । एक की शर्त ऐसी है, एक की शर्त वैसी है । लेकिन दोनों का जीना कन्डीशन है, बाशर्त है । वीतरागी कहता है—जो हो सो हो ! उसे कुछ लेना-देना नहीं है । वह अछूता खड़ा है ।

जो आदमी अछूता होगा वह बेशर्त होगा और बेशर्त आदमी को पहचानना बहुत मुश्किल हो जाएगा । इसलिए महावीर का जमाना महावीर को बिल्कुल नहीं पहचान पाया । बहुत मुश्किल था पहचानना । निरन्तर यातना दी जा रही है; निरन्तर सताया जा रहा है । उस आदमी को हम सतायेंगे ही जो हमारे सब मापदण्डों से अलग खड़ा हो जाए; जिससे हम तोल न कर सकें, लेबिल न लगा सकें कि यह है कौन ! लेबिल लगा देने से हमें सुविधा हो जाती है । एक लेबिल लगा दिया है कि यह आदमी फलाँ है । फिर हम लेबिल के साथ व्यवहार करते हैं, आदमी के साथ नहीं । पक्का पता लगा लिया कि यह आदमी संन्यासी है, लिख दिया संन्यासी है । फिर संन्यासी के साथ जो करना है, वह हम इसके हाथ करते हैं । लिख दिया रागी है तो जो रागी के साथ करना है, वह हम इसके साथ करते हैं । लेकिन एक आदमी ऐसा है जिस पर लेबिल लगाना मुश्किल है कि यह कौन है ।

महावीर वर्षों तक इस हालत में घूमें हैं कि लोग पूछ रहे हैं कि यह है कौन, यह आदमी कैसा है और महावीर कोई उत्तर नहीं दे रहे हैं । महावीर

मौन हैं। क्योंकि हैं कौन, इसका क्या उत्तर देना ? कोई लेबिल होता तो उत्तर दे देते। महावीर निरन्तर मौन हैं। लोग जो कहते हैं वह चुपचाप खड़े हैं, सब सह लेते हैं। गाँव के पास खड़े हैं। गाय चराने वाला अपनी गाय और बैल को उनके पास छोड़ जाता है और कहता है—जरा देखना, मैं अभी लौटकर आता हूँ। मेरी कोई गाय खो गई है। वह यह भी नहीं कहते कि मैं नहीं देखूँगा। इतना कह दें तो मामला खत्म हो जाए। वह यह भी नहीं कहते कि मैं देखूँगा। इतना कह दें तो बात खत्म हो जाए। वह आदमी एक लेबिल लगा ले; झंझट के बाहर हो जाए। महावीर खड़े रहते हैं जैसे कि सुना अनसुना किया, जैसे प्रश्न पूछा नहीं गया। ऐसे खड़े रहते हैं। वह आदमी चला गया है खोजने। वह शाम होते-होते खोजकर लौट आता है। गाय और बैल जो पीछे महावीर के पास छोड़ गया था, उठकर जंगल में चले गए हैं। उस आदमी ने पूछा कि गाय-बैल कहाँ हैं ? तब भी वह वैसे ही खड़े हैं क्योंकि आने-जाने का हिसाब ही नहीं रखते वह कुछ। वह वैसे ही खड़े हैं। वह कहता है कि तुमने उसी वक्त क्यों नहीं कह दिया था तब भी वह वैसे ही खड़े हैं। तब वह आदमी समझता है कि इसने चुरा लिये हैं, इसने कहीं छुपा दिए हैं। यह आदमी बेईमान है :—वह मारपीट करता है। वह मारपीट को भी सह रहे हैं फिर भी वैसे खड़े हैं। लेकिन थोड़ी देर में वह गाय बैल लौट आए हैं जंगल के बाहर। साँझ होने लगी है; धूप दब गई तो वापस लौट पड़े। वह आदमी बहुत दुखी होता है। वह क्षमा माँगता है। तब भी वह वैसे ही खड़े हैं। यह आदमी कोई शर्त में नहीं, कोई लेबिल में नहीं; जो हो रहा है, उसमें वैसा ही खड़ा है, अजेय है। अद्भुत घटना है। जो भी हो रहा है, कुछ भी हो रहा है जैसे इसे मतलब ही नहीं कि क्या हो रहा है। यह हर हालत में वैसा ही खड़ा है और सब चीजों को देख रहा है। इस व्यक्ति को समझने में बड़ी कठिनाई है।

पीछे, जिन्होंने शास्त्र लिखे, उन्होंने कहा : महावीर बड़े क्षमावान् हैं; उन्होंने क्षमा कर दिया है। कोई मारता है तो उसे क्षमा कर देते हैं। मगर समझ ही नहीं पाए लोग। क्षमा वही करता है जो क्रोधित होता है। क्षमा, क्रोध के बाद का हिस्सा है। जो महावीर को क्षमावान् कहता है, वह महावीर को समझता ही नहीं। महावीर को क्रोध ही नहीं उठता, क्षमा कौन करेगा, किसको करेगा ? महावीर देख रहे हैं। वे ऐसा ही देख रहे हैं कि इस आदमी ने ऐसा-ऐसा किया है। पहले मारा; फिर क्षमा मांगी। देख रहे हैं, ऐसा-ऐसा हुआ। और खड़े हैं चुपचाप और सब देख रहे हैं। उसमें कोई चुनाव भी नहीं

कर रहे हैं कि ऐसा होना था और ऐसा नहीं होना था। ऐसे निरन्तर कि वह राग और विराग के बाहर हो गए हैं, चुनाव के बाहर हो गए हैं, अच्छे-बुरे के बाहर हो गए हैं, कौन क्या कहता है, इसके बाहर हो गए हैं। यह वीतरागता परम उपलब्धि है जो जीवन में सम्भव है। जीवन की यात्रा में जो परम बिन्दु है वह वीतरागता है। वह जीवन का अन्तिम बिन्दु है क्योंकि उसके बाद फिर मुक्ति की यात्रा शुरू हो जाती है। वीतराग हुए बिना कोई मुक्त नहीं होता। रागी मुक्त नहीं हो सकता। विरागी मुक्त नहीं हो सकता। दोनों बंधे हैं। लेकिन हम जो समझते नहीं है, वीतराग का मतलब विरागी कहते हैं जो कि राग से छूट गया है। नहीं, विराग राग ही है, सिर्फ उल्टा राग है जो राग से छूट गया है।

राग शब्द बड़ा अच्छा है। राग का मतलब होता है रंग। विराग का मतलब होता है उससे उल्टा। हमारी आँखें हमेशा रंगी हैं, कुछ रंग है आँख पर। उस रंग से ही हम देखते हैं। चीजें हमें वैसी दिखाई पड़ती हैं, जो हमारा रंग होता है आँख का। चीजें वैसी नहीं दिखाई पड़ती जैसी वे हैं। रंगी आँख कभी सत्य को नहीं देख सकती हैं। अब एक रागी है। उसे राह से एक स्त्री जाती दिखाई पड़ती है तो लगता है स्वर्ग है। स्त्री सिर्फ स्त्री है। रागी को लगता है स्वर्ग है। विरागी बैठा है वहीं पर। उसको लगता है नरक जा रहा है; आँख बन्द करो। स्त्री सिर्फ स्त्री है। विरागी को दिखता है नरक जा रहा है। आँख बन्द करो। इसलिए लिखता है अपनी किताबों में—स्त्री नरक का द्वार है, और रागी लिखता है कि स्त्री स्वर्ग है; वही मुक्ति है, वही आनन्द है। स्त्रियाँ सोचेंगी कि यह ऐसे ही लिख रहे हैं। रागी स्त्री को स्वर्ग बना लेता है, एक रंग है उसकी आँख पर। विरागी स्त्री को नरक बना लेता है, एक रंग है उसकी आँख पर। वीतरागी खड़ा रह जाता है। स्त्री—स्त्री है। वह अपने रास्ते जाती है, मैं अपनी जगह खड़ा हूँ। न वह स्वर्ग है, न वह नरक है। वह उसके बाबत कोई निष्कर्ष नहीं लेता क्योंकि उसकी आँखों में कोई रंग नहीं है, रंगमुक्त है वह। इसलिए जो-जो जैसा-जैसा है, वैसा-वैसा उसे दिखाई पड़ता है। बात खत्म हो जाती है। वह कुछ भी अपनी तरफ से नहीं डालता। न वह कहता है सुन्दर किसी को; न वह कहता है असुन्दर। क्योंकि सुन्दर और असुन्दर हमारे रंग हैं, जो हम थोपते हैं। चीजें सिर्फ चीजें हैं। न तो कुछ सुन्दर है, न कुछ असुन्दर है। हमारा भाव है जो हम उसमें डाल देते हैं।

अब जैसे देखिए कि आज सुशिक्षित और सुरुचिपूर्ण घर में कैक्टस लगा हुआ है। हाँ, काँटे वाले पौधे हैं, मरुस्थल में उगने वाले। गाँव के बाहर लगते थे धतूरा, नागफनी। वे आज के घर के बैठक खाने में लगे हुए हैं। आज से सौ साल पहले अगर उन्हें कोई बैठकखाने में ले आता तो उस आदमी को हम पागलखाने ले गए होते कि तुम्हारा दिमाग खराब हो गया है। क्या नागफनी घर में लगाने की चीज है ? लेकिन गुलाब एकदम बहिष्कृत हो गया है। नागफनी आ गई है उसकी जगह। सुशिक्षित आदमी के घर में नागफनी लगी हुई है, क्या हो गया ? नागफनी एकदम सुन्दर हो गई। जो कभी सुन्दर न थी, जो कुरूपता का साकार रूप थी सदा; वह आजकल एकदम सौन्दर्य की अनुभूति बन गई। क्या हो गया ? रंग बदल गए; एकदम रंग बदल गए। और हर बार हम रंग से ऊब जाते हैं, तो बदल देते हैं क्योंकि एक ही रंग को देखते-देखते ऊब हो जाती है। गुलाब को हजार साल तक सुन्दर-सुन्दर कहते हुए ऊब हो गई। तो छोड़ो। इसको बाहर करो। इसको घर से बाहर करो। ब्राह्मण को आदर देते बहुत ऊब हो गई तो अब शूद्र को बिठाओ। नागफनी शूद्र थी बहुत दिनों तक, अब एकदम ब्राह्मण हो गई। नागफनी गाँव के बाहर रहती थी जैसे शूद्र रहता था अब वह एकदम से अभिजात्य हो गई, घर के भीतर आ गई।

ऊब सदा अति पर ले जाती है। जब हम एक चीज से ऊबते हैं तो ठीक उससे उल्टी चीज पर चले जाते हैं। जो आदमी नाच-गाने से ऊब जाएगा, खाने से ऊब जाएगा, उपवास करने लगेगा। कपड़ों से ऊब जाएगा, त्याग करने लगेगा। धन से ऊब जाएगा, धर्म की तरफ चला जाएगा। मधुशाला से ऊबेगा, मन्दिर जाएगा। मन्दिर से ऊबा आदमी मधुशाला की खोज में निकलता है। जहाँ से हम ऊबते हैं, उल्टे हो जाते हैं। राग से ऊबते हैं तो विराग पकड़ लेता है। विराग से ऊब जाते हैं तो राग पकड़ने लगता है। और अगर हम रागियों और विरागियों के मस्तिष्क को खोलकर देखें तो हमें बड़ी हैरानी होगी कि उसके भीतर हमें उल्टे आदमी मिलेंगे। रागी के भीतर निरन्तर विरागी होने का भाव मिलेगा, बुरी से बुरी स्थिति में भी। इसलिए रागी विरागी की पूजा करते हैं। वह उनका गहरा भाव है। वह भी होना चाहते हैं यही। और विरागी के भीतर अगर हम झांकें तो रागी के प्रति ईर्ष्या मिलेगी। जैसे रागी के मन में विरागी के प्रति आदर मिलेगा। इसलिए विरागी निरन्तर रागियों को गाली दे रहा है। वह गाली ईर्ष्याजन्य है। उसके भी मन में यही कामना है। जो-जो उसकी कामना है, उस-उसके लिए वह रागी को गाली दे रहा है कि तुम यह-यह पाप

कर रहे हो। नरक में सड़ोगे। वह डर रहा है, घबड़ा रहा है। लेकिन भीतर उसके कामना वही है।

मुझे बड़े-से-बड़े साधु मिलते हैं जो सामने आत्मा-परमात्मा की बात करते हैं। एकान्त में सिवाय सेक्स के दूसरी बात ही उनके चित्त में नहीं होती। और बड़े घबड़ाते हैं कैसे इससे छुटकारा हो और कहते हैं कि बस यही घेरे हुए है। चौबीस घंटे परमात्मा की और मोक्ष की चर्चा चल रही है। लेकिन भीतर वासना का दौर चल रहा है पूरे वक्त। और यह हो सकता है कि मधुशाला, वेश्या के घर में बैठा हुआ एक आदमी कई बार संन्यासी हो जाता है मन में कि छोड़ो सब बेकार है। उल्टा खींचता रहता है। रागी विरागी हो जाता है और विरागी रागी हो जाता है। जो इस जन्म में रागी है, अगले जन्म में विरागी हो जाए; जो इस जन्म में विरागी है वह अगले जन्म में रागी हो जाए। यह जानकर मैं बहुत हैरान हुआ हूँ। इधर कुछ बहुत से गहरे प्रयोगों ने कुछ अजीब से नतीजे दिए हैं जो चौंकाने वाले हैं। जैसे कि एक आदमी है जो बिल्कुल ही राग-रंग में पड़ा हुआ है, उसके पिछले जन्म में उतरने की कोशिश करो तो तुम दंग रह जाओगे कि वह संन्यासी रह चुका है। और संन्यासी रहते वक्त उसने इतना विरोध पाल लिया है संन्यासी होने से कि यह जन्म उसका रागी का हो गया है।

एक स्त्री मेरे पास आती थी और उसे बड़ी आतुरता थी कि किसी तरह पिछले जन्म में वह उतर जाए। मैंने उससे बहुत कहा कि यह आतुरता छोड़ दो क्योंकि इसमें कठिनाइयाँ पड़ सकती हैं। उसको बड़ा सती-साध्वी होने का ख्याल था। और उसे उसका इतना भाव पकड़ा कि मुझे शक ही था कि पिछले जन्म में वह वेश्या रह चुकी होनी चाहिए। नहीं तो इतने जोर से सती-साध्वी होने का भाव नहीं पकड़ता है। वह जिससे ऊब गई है, वह नए जन्म की शुरूआत बन जाती है। फिर भी वह नहीं मानी। मैंने कहा कि ठीक है, तू प्रयोग कर। वह छः महीने तक पिछले जीवन में उतरने का, जातिस्मरण का प्रयोग करती रही। एक दिन आकर एकदम चिल्लाने-रोने लगी कि मुझे किसी तरह भुलाओ क्योंकि मैं दक्खिन के किसी मन्दिर में देवदासी थी, वेश्या थी। और मैं इसको भूलना चाहती हूँ। मैं इसे याद ही नहीं करना चाहती कि ऐसा कभी हुआ। मैंने कहा जो याद आ गया उसको भूलना मुश्किल है। इसलिए प्रकृति ने सारी व्यवस्था की है कि पिछला जन्म आपको याद न आए क्योंकि पिछले जन्म में आप निरन्तर रूप से उल्टे रहे होंगे। आम तौर से लोग सोचते हैं इस जन्म

में जो संन्यासी है, उसने पिछले जन्म में संन्यासी होने का अर्जन किया होगा। ऐसा मामला नहीं है। इस जन्म में जो विरागी है, वह पिछले जन्म में राग के चक्कर में घूमता रहा है। यह फ़िक्र न करें कि हमें क्या होना है, रागी कि विरागी। फ़िक्र इसकी करें कि हम जो भी हों, उसमें हम जागें। हम कुछ होने की चिन्ता छोड़ दें। वह जो जागना है, वीतरागता में ले जाएगा। और वह वीतरागता बिल्कुल ही भिन्न बात है।

इसी सन्दर्भ में यह भी, जैसा कि मैंने जातिस्मरण की बात की, पिछले जन्म के स्मरण की—महावीर की बड़ी देनों में एक देन है। ये उस तरह की ध्यान-पद्धतियाँ हैं जिनसे व्यक्ति अपने पिछले जन्मों में उतर जाए। और अगर एक व्यक्ति अपने पिछले जन्मों में उतर जाए और दो चार जन्म भी जान ले तो बहुत हैरान हो जाए। फिर वही वह आदमी नहीं हो सकता जो अभी था क्योंकि वह पाएगा कि यह सब तो मैं बहुत बार कर चुका; इससे उल्टा भी कर चुका मगर कुछ भी नहीं पाया। हर बार जैसे चाक के स्पोक घूम कर फिर अपनी जगह पर आ जाते हैं, ऐसे ही मैं घूमा और अपनी जगह पर आ गया। कई बार लगा चाक को कि ऊपर पहुँच गया हूँ लेकिन जब उसे लग रहा था कि ऊपर पहुँच रहा हूँ तभी नीचे आना शुरू हो गया था। कई बार चाक को लगा बिल्कुल गिर गया हूँ नरक में तभी ऊपर चढ़ना शुरू हो गया। बहुत बार स्वर्ग छुआ, बहुत बार नरक छुआ; बहुत बार सुख छुआ, बहुत बार दुख छुआ; बहुत बार राग छुआ, बहुत बार विराग छुआ। सब द्वन्द्वों में चक्र घूम चुका है। अगर दस-पांच जीवन स्मरण आ जाएँ तो यह सब इतनी बार हो चुका है कि अब इसमें चुनाव का कोई मतलब नहीं है।

जातिस्मरण का मतलब यही है कि यह द्वन्द्व हम बहुत बार भोग चुके हैं, इन दोनों से हम जाग सके हैं। इन दोनों में चुनाव का कोई उपाय नहीं है। लेकिन, मन का नियम यह है कि जो वह करता है उससे उल्टे को चुनता है। इसलिए संन्यासियों के पास रागियों की भीड़ होती है। जो वह चुनता है, अभी कर रहा है, उसके अनकॉन्शस में, अचेतन में उल्टे का इकट्ठा होना शुरू हो जाता है। जब वह सेक्स में होता है, तब उसको ब्रह्मचर्य की बातें ख्याल में आती हैं। और जब वह ब्रह्मचर्य साधता है तो सेक्स की बातें ध्यान में आती हैं; जब वह भोजन कर रहा होता है तब वह सोचता है भोजन-त्याग कैसे करूं और जब वह भोजन त्याग करता है, तब भोजन का स्मरण आने लगता है। इतनी अद्‌भुत है हमारे द्वन्द्व में घूमने की व्यवस्था। और हम एक बार एक ही

जगह होते हैं इसलिए दूसरा हमें आकर्षित करता रहता है उल्टा। अगर दो चार जन्मों का यह स्मरण आ जाए कि हम दोनों तरफ घूम चुके हैं तो फिर तीसरा उपाय है। और वह जो तीसरा उपाय है वही महावीर का उपाय है—वीतरागता का।

इन दोनों में कोई अर्थ नहीं तो अब क्या करूं ? अगर भोग नहीं, अगर योग नहीं, तो तीसरा क्या रास्ता है ? तीसरा रास्ता सिर्फ यह है कि दोनों के प्रति जाग जाऊं। तो त्रिकोण बन जाता है। उस त्रिकोण की, त्रिभुज की नीचे की एक रेखा है जिस पर दो द्वन्द्व हैं। इधर राग है, उधर विराग है ? जो इधर होता है वह उधर आ जाता है, जो उधर होता है, वह इधर आना चाहता है। और इन्हीं दोनों के बीच हम घूमते रहते हैं। जो इन दोनों से जागता है, वह जो त्रिभुज का ऊपर का छोर है वहां पहुंच जाता है। वह वीतराग है। वह दोनों से पार हो गया है। वह न राग में है, न विराग में है। लेकिन जो राग में खड़ा है, जो विराग में खड़ा है, उन दोनों के लिए बेबूझ हो जाता है कि यह आदमी कहां है ? क्योंकि हमारे होने की परिभाषा में दो ही बिन्दु हैं राग और विराग। यह आदमी कहां है ? तो इस आदमी को समझना मुश्किल हो जाता है। लेकिन समझने का प्रश्न नहीं है। यह आदमी हम दोनों को समझ पाता है और हम दोनों इस आदमी को बिल्कुल नहीं समझ पाते।

जाति-स्मरण का प्रयोग महावीर की बड़ी से बड़ी देन है। और मैं समझता हूँ उस पर कोई काम नहीं हो सका। असली बात वही है। उस साधना से गुजर करके किसी व्यक्ति को वीतरागता में लाया जा सकता है, किसी भी व्यक्ति को। और जब तक उस साधन से नहीं गुजरता तब तक वह यही होगा कि रागी है तो विरागी हो जाएगा और विरागी है तो रागी हो जाएगा। और यह दोनों एक-से मूढतापूर्ण हैं। इन दोनों को कोई चुनाव का सवाल नहीं है। और हमें रोज दिखाई पड़ता है कि हम विरोधी को अनजाने चुनने लगते हैं। महलों में जो आदमी बैठा हुआ है वह निरन्तर यही कहता है कि झोपड़ी का मजा यहां कहां है। और ईर्ष्या करता है झोपड़ी के आदमी से, और उसकी नींद और उसकी मौज से। झोपड़ी में जो बैठा है वह पूरे वक्त महल के लिए ईर्ष्यालु है कि जो महल में हो रहा है, वह यहां कहां; झोपड़ी में मरे जा रहे हैं। झोपड़ी वाला महल की तरफ जा रहा है, महल वाला झोपड़ी की तरफ आ रहा है। बड़े शहर वाला छोटे गांव की तरफ भाग रहा है, छोटे गांव वाला बड़े शहर की तरफ भाग रहा है। पूरे समय जहां हम हैं, उससे विपरीत की तरफ हम

जा रहे हैं क्योंकि जहाँ हम हैं वहाँ हम ऊब जाते हैं, वहाँ हम बोरडम से भर जाते हैं। और जिससे हम ऊब गए हैं उससे उल्टे की तरफ हम जाते हैं। जैसे पूरब भौतिक की तरफ जाएगा क्योंकि वह अध्यात्म से ऊब गया है और पश्चिम अध्यात्म की तरफ आएगा क्योंकि वह भौतिकवाद से ऊब गया है। पश्चिम में इस समय जो चिन्तना है कि क्या है अध्यात्म में, कैसे हम आध्यात्मिक हो जाएँ और पूरब की जो कामना है पूरी की पूरी कि कैसे हम वैज्ञानिक हो जाएँ, कैसे धन आए, कैसे समृद्धि आए, कैसे अच्छे मकान, कैसे अच्छी मशीन। पूरब का व्यक्तित्व भौतिकवाद की तरफ जा रहा है। पश्चिम का व्यक्तित्व अध्यात्म की तरफ आ रहा है। व्यक्ति में भी वही होता है, समाज में भी वही होता है, राष्ट्र में भी वही होता है। 'अति'—दूसरी 'अति' हमें पकड़ लेती है।

महावीर कहते हैं कि दोनों 'अतियों' में हम बहुत घूम चुके हैं; दोनों विरोधों में हम बहुत बार घूम चुके हैं। क्या कभी हम जागेंगे और उस जगह खड़े हो जाएँगे, जहाँ कोई 'अति' नहीं है, कोई विरोध नहीं है, कोई द्वन्द्व नहीं है। इस स्थिति का नाम वीतरागता है। और यह सभी में है। ध्यान रखिए यह सभी में है। जैसे एक आदमी क्रोध कर रहा है। क्रोध करके आपने कभी ख्याल किया है कि क्रोध करने के बाद आप क्या करते हैं? आप पछतावा करते हैं। ऐसा आदमी खोजना कठिन है, जो क्रोध के बाद पछतावा न करता हो। और अगर मिल जाए तो अद्भुत है। क्रोध करके आदमी पछताता है। पछतावा दूसरी 'अति' है। क्रोध किया कि पछतावा आया। पछतावे के वक्त आदमी सोचता है कि हम बड़े भले आदमी हैं देखो! हमने क्रोध कर लिया और हम पछतावा भी कर रहे हैं। क्रोध किया कि क्षमा पीछे आई। विपरीत आता रहेगा सारे जीवन के सब तलों पर। यह कभी आपने ख्याल किया कि जिसको आप प्रेम करेंगे उसके प्रति उसकी घृणा इकट्ठी होने लगती है। फ्रायड ने पहली दफा इस तथ्य की तरफ सूचना दी कि जिसको आप प्रेम करते हैं, उसके प्रति आपकी घृणा इकट्ठी होने लगती है। क्योंकि प्रेम तो आप कर लेते हैं। जब प्रेम से ऊबने लगते हैं तब करेंगे क्या? और जिस व्यक्ति से आप घृणा करते हैं पूरी, बहुत सम्भावना है कि उसके प्रति आपका प्रेम इकट्ठा होने लगे।

एक यहूदी फकीर था। उसने एक किताब लिखी और किताब बड़ी क्रांतिकारी थी। यहूदियों का जो सबसे बड़ा धर्मगुरु था, जो रब्बी था उसके पास उसने वह किताब अपने एक मित्र के हाथ भेंट भेजी कि जाकर रब्बी को मेरी किताब भेंट कर आओ। और उस यहूदी फकीर ने—वह बगावती फकीर था—

कहा कि सिर्फ इतना ही ख्याल रखना कि जब तुम रब्बी को किताब दो तो रब्बी क्या कहते हैं, क्या करते हैं, उसे जरा ध्यान से देख लेना। तुम्हें कुछ करने की जरूरत नहीं। तुम सिर्फ नोट कर लाना कि उन्होंने क्या कहा, क्या किया, गुस्से में आए, नाराज हुए, किताब फेंकी, कैसा चेहरा था, सब खबर ले आना। वह आदमी गया, उसने किताब दी। उसने कहा कि यह फलाँ-फलाँ फकीर ने किताब दी है। रब्बी ने किताब को तो देखा भी नहीं। हाथ में उठाकर दरवाजे के बाहर फेंक दिया और कहा कि भागो यहाँ से। इस तरह की किताबों को छूना भी अधर्म और पाप है। रब्बी की औरत पास में बैठी थी। उसने कहा ऐसा क्यों करते हैं। फेंकना ही हो तो वह आदमी चला जाए तो पीछे फेंक सकते हैं। और फिर इतनी हजारों किताबें घर में हैं, एक कोने में उसको भी रख दें। न पढ़ना हो, न पढ़ें। लेकिन ऐसा क्यों करते हैं? पर रब्बी आग-बबूला हो गया, लाल हो गया। उस आदमी ने नमस्कार किया, वापस आया। उस फकीर ने पूछा—क्या हुआ? कहा कि ऐसा-ऐसा हुआ। रब्बी बड़ा खतरनाक है। उसकी पत्नी बहुत भली है। रब्बी ने किताब बाहर फेंक दी और कहा कि हटो यहाँ से, भाग जाओ यहाँ से—वह आग हो गया एकदम। उस फकीर ने पूछा उसकी पत्नी ने जिसको तुम बहुत भली कहते हो क्या किया? उसने कहा कि किताब को उठा लाओ। उसने नौकर से किताब मँगवा ली और कहा घर में इतनी किताबें हैं, यह भी रखी रहेगी, ऐसा भी क्या? और फेंकना हो तो पीछे फेंक देना। लेकिन सामने ऐसा क्यों करते हो? तो उस फकीर ने कहा कि रब्बी से अपना कभी मेल हो सकता है। लेकिन उसकी पत्नी से कभी नहीं। 'रब्बी' से अपना मेल हो ही जाएगा। रब्बी को किताब पढ़नी ही पड़ेगी। वह किताब पढ़ेगा ही। मगर उसकी पत्नी कभी नहीं पढ़ेगी। तब उस आदमी ने पूछा—आप तो उल्टी बात कर रहे हैं। रब्बी बड़ा नाराज था, एकदम आगबबूला हो गया था। फकीर ने कहा वह नाराज हुआ था तो थोड़ी देर में नाराजगी शिथिल होगी; नाराज कोई कितनी देर रहेगा और जब कोई आग में चढ़ जाता है ऊपर तो वापस उसे शांति में लौटना पड़ता है; जब कोई श्रम करता है तब उसे विश्राम करना पड़ता है; जब कोई जागता है उसे सोना पड़ता है। उल्टा जाना ही पड़ता है। रब्बी कितनी देर क्रोध में रहेगा? आखिर डिग्री नीचे आएगी। शांत होगा; किताब उठाकर लाकर पढ़ेगा। लेकिन उसकी पत्नी? उससे कोई आशा नहीं। क्योंकि उसकी कोई डिग्री नहीं। क्रोध में नहीं गई तो क्षमा में भी नहीं लौटेगी। उसने चीजों को जिस तटस्थता से

लिया है उससे अपना कोई सम्बन्ध नहीं बन सकता। जब हम क्रोध कर रहे हैं तभी क्षमा इकट्ठी होनी शुरू हो जाती है; जब हम क्षमा कर रहे हैं तभी क्रोध इकट्ठा होना शुरू हो जाता है; जब हम प्रेम कर रहे हैं तभी घृणा इकट्ठी होने लगती है; जब हम घृणा कर रहे हैं, तभी प्रेम इकट्ठा होने लगता है।

यही द्वन्द्व है आदमी का कि जिसको प्रेम करता है, उसको घृणा करता है; जिसको घृणा करता है उसको प्रेम करता है। मित्र सिर्फ मित्र ही नहीं होते, शत्रु भी होते हैं। शत्रु सिर्फ शत्रु ही नहीं होते, मित्र भी होते हैं। इसलिए निरन्तर यह होता रहता है। जब मैं निरन्तर अनुभव करता हूँ कि अगर मुझे कोई आदमी बहुत जोर से प्रेम करने लगे तो मैं जानता हूँ कि यह आदमी जल्दी जाएगा क्योंकि उसकी घृणा इकट्ठी होने लगी है। और मैं इसलिए चिन्तित हो जाता हूँ कि यह आदमी जाएगा और अब इसके बिना जाए लौटने का कोई उपाय नहीं होगा। और अगर कोई आदमी जोर से मुझे घृणा करने लगे, क्रोध करने लगे तो मैं जानता हूँ कि वह आएगा। क्योंकि इतनी घृणा में वह कैसे जियेगा, उसे लौटना पड़ेगा।

महावीर कहते हैं कि सब द्वन्द्व बांधता है दूसरे से, उल्टे से बांध देता है। इसलिए द्वन्द्व के प्रति जागने से वीतरागता उपलब्ध होती है। न काम, न ब्रह्मचर्य—तब सच में ब्रह्मचर्य उपलब्ध होता है। न क्रोध, न क्षमा—तब सच में ही क्षमा उपलब्ध होती है क्योंकि उससे विपरीत फिर होता ही नहीं। न हिंसा न अहिंसा—तब सच्ची अहिंसा उपलब्ध होती है क्योंकि तब उसके विपरीत कुछ होता ही नहीं। इसलिए बहुत भूल हो जाती है। महावीर की अहिंसा को समझना मुश्किल हो जाता है क्योंकि महावीर की अहिंसा वह अहिंसा नहीं है जो हिंसा के विपरीत है। हिंसा के विपरीत जो अहिंसा है, वह आज नहीं तो कल हिंसक हो ही जाएगी। महावीर की अहिंसा को समझना मुश्किल है क्योंकि वह हिंसा के विपरीत नहीं है। जहाँ न हिंसा रह गई, न अहिंसा रह गई, वहाँ जो रह गया उसको महावीर अहिंसा कह रहे हैं।

ऐसा लगता है कि हम राग और विराग के बीच अनेक जन्मों में घूम चुके हैं। ऐसा नहीं है कि राग हो राग में ही घूमते रहे हैं। बहुत बार राग हुआ है, बहुत बार विराग हुआ है। वीतराग कभी नहीं हो सका और वह होगा भी नहीं क्योंकि एक 'अति' पर जाकर ठीक पेन्डुलम दूसरे अति पर जाना शुरू हो जाता है। इसलिए मैं कहता हूँ इसकी चिन्ता मत करें कि हमें क्या होना है—राग या विराग।

प्रश्न : जीवन के रहस्य को जानने के लिए, जीवन और मृत्यु से अभय प्राप्त करने के लिए बुद्ध ने इतनी साधना की थी। लेकिन वही बुद्ध, दलाई लामा के रूप में केवल अपने जीवन को बचाने के लिए ही चीनियों के चंगुल से भागकर यहाँ आता है। वही बुद्ध जिसने 'अभयो भव', 'उभयवीतो भव' कहा, वही बुद्ध दलाई लामा के रूप में, एक कायर के रूप में हमारे सामने आ जाता है। यह ऐसी चीजें हैं जिससे लगता है कि या वह बुद्ध झूठ थे या यह दलाई लामा जो चिन्ह रूप में आए हैं झूठ हैं।

उत्तर : असल में, चीजें जैसी हमें दिखाई पड़ती हैं वैसी ही नहीं होतीं। दलाई लामा को समझना बहुत मुश्किल है क्योंकि जिस भाषा में हम सोचने के आदी हैं उस भाषा में निश्चय ही वह भागा अपने को बचाने के लिए। कायर मालूम पड़ता है। लड़ना था, जूझना था। भागना क्या था? ऐसा ही हमें दिखाई पड़ता है, बिल्कुल सीधा और साफ। लेकिन मैं आपसे कहता हूँ कि दलाई लामा के भागने में बहुत और अर्थ है। ऊपर से यही दिखाई पड़ता है कि दलाई भागा; बचाया अपने को—बड़ा कायर है। सचाई इतनी नहीं है। सचाई ऊपर से ही इतनी दिखाई पड़ रही है। दलाई लामा का भागना अत्यन्त करुणापूर्ण, महत्त्वपूर्ण है। दलाई अगर वहाँ लड़ता तो हमारी नजरों में वह बहुत बहादुर हो जाता। लेकिन दलाई लामा को कुछ और बचाकर लाना था जो हमें दिखाई ही नहीं पड़ रहा है, जो कि लड़ने में नष्ट हो सकता था। समझ लें एक मन्दिर है और एक पुजारी है। और यह पुजारी किन्हीं गहरी सम्पत्तियों का अधिकारी भी है जो उसके मरते ही एकदम खो जा सकती है इन अर्थों में कि उनसे सम्बन्ध का फिर कोई सूत्र नहीं रह जाएगा और जरूरी है कि इसके पहले कि वह मरे, वह सारे सूत्र और वह सारी सम्पत्तियों की खबर किन्हीं को दे दे। दलाई लामा के पास बहुत रहस्यमय सूत्र हैं जिन्हें इस समय जमीन पर मुश्किल से चार-पाँच लोग समझ सके हैं। दलाई लामा का भाग आना अत्यन्त जरूरी था।

तिब्बत का उतना मूल्य नहीं जितना मूल्य दलाई लामा को जान का है और जो वह किसी को दे सकता है उसका है। और, तिब्बत की हार निश्चित थी। तिब्बत का चीन में डूबना निश्चित था। यह भी दलाई लामा को दिखाई पड़ सकता है जो दूसरे को दिखाई नहीं पड़ सकता। और अगर ऐसा साफ दिखाई पड़ता हो तो लड़ना उचित नहीं है; चुपचाप हट जाना उचित है। उस सबको लेकर बचाना ज्यादा कीमती है। तिब्बत तो बचेगा नहीं और वह सब बच सकता

है भागने से। और आज, दलाई बैठकर वह सारे प्रयोग कर रहा है दस-पच्चीस लोगों को साथ लेकर, जिनके साथ वह भागकर आया है। कीमती लोगों को वह सारी सम्पदा दे रहा है। उसके मरने का कोई सवाल ही नहीं। वह तिब्बत में भी मर सकता था और यहाँ भी मरेगा। मरने से बचने का प्रश्न ही नहीं है।

बहुत बार ऐसा हुआ है। यह पहली बार नहीं हुआ हिन्दुस्तान में। बौद्ध भिक्षुओं को भागना पड़ा हिन्दुस्तान से। एक वक्त आया जब हिन्दुस्तान से बौद्ध भिक्षुओं को भागना पड़ा। भागना इसलिए जरूरी हो गया कि यहाँ भूमि बिल्कुल बंजर हो गई उनके लिए। उनको ग्रहण करने के लिए, जो उनके पास था, कोई नहीं बचा। अपनी जान का सवाल न था; लेकिन सवाल था उसका जो वे जानते थे, जो बीज उनके पास थे, जो किसी भूमि में अंकुरित हो सकते थे। उनको भागकर सारी एशिया में खोज करनी पड़ी कि कहीं और हो सकता है कुछ। उन्होंने बड़ी कृपा की कि चीन चले गए, तिब्बत चले गए, बर्मा चले गए, थाई चले गए और जाकर उन्होंने बीज आरोपित कर दिए। फिर उनके बीजों से आज फिर बीज लौटने की संभावना बन सकती है। लेकिन यह हो सकता था कि उस समय वे भी भिक्षु, जो भागे इस मुल्क से, कायर मालूम पड़े होंगे। लड़ना था यहाँ, जाना कहाँ था? लेकिन जिनके पास कुछ है, वह लड़ने से ज्यादा उसको बचाने की फिक्र करेंगे। बुद्ध जिस वृक्ष के नीचे बैठे और 'बोधि' को प्राप्त हुए, वह मूल वृक्ष नष्ट हो गया। लेकिन उसकी एक शाखा अशोक ने लंका भेज दी थी। वह लंका में सुरक्षित है। अब उस वृक्ष की एक शाखा वापस आ गई है। मूल वृक्ष नष्ट हो गया। नष्ट किया ही गया होगा क्योंकि जब बौद्धों के पैर उखड़ गए तो सब नष्ट कर दिया गया। आप हैरान होंगे जान कर कि बुद्ध का जो मन्दिर है उसका पुजारी ब्राह्मण है। वह बौद्ध नहीं है। वह सम्पत्ति भी एक ब्राह्मण पुजारी की है—मन्दिर और उसकी व्यवस्था भी। वह सब नष्ट हो गया। लेकिन अशोक के द्वारा भेजी गई उस वृक्ष की एक शाखा लंका में पल्लवित हो गई। और उस शाखा की एक शाखा लाकर फिर हम लगा सके। उस वृक्ष का एक बच्चा मौजूद है। यह वृक्ष की चर्चा मैंने इसलिए की कि प्रतीक की तरह ख्याल में आ जाए।

तिब्बत में फिर वह हालत आ गई—तिब्बत चीन के हाथ में जाएगा और कम्युनिज्म जितनी जोर से दुनिया से रहस्य विज्ञान को खत्म कर सकता है उतना कोई चीज खत्म नहीं कर सकती। जो भी आन्तरिक सत्य है और उनके जो

भी सूत्र हैं, कम्युनिज्म उनको जड़-मूल से काटने में उत्सुक है। और जहाँ भी जाएगा वहाँ सबसे पहले जो उस मुल्क की आन्तरिक सम्पदा है उसको वह बिल्कुल तोड़ डालेगा। तिब्बत के कम्युनिस्टों के हाथ में जाने के बाद वहाँ जो सबसे पहली चोट होने वाली थी, वह चोट थी उसकी आन्तरिक सम्पदा पर। तिब्बत बहुत अद्‌भुत था इन अर्थों में कि दुनिया में तिब्बत के पास सर्वाधिक बहुमूल्य सम्पत्ति थी आन्तरिक सत्यों की। क्योंकि वह दुनिया से कटा हुआ जिआ, दुनिया को उसे कोई खबर न थी, दुनिया का कोई सम्बन्ध न था उससे। दुनिया का कोई ताल-मेल न था उससे। वह दूर अकेले में, एकान्त में चुपचाप पड़ा था। अतीत की जो भी सम्पदा थी जानने की वह सब उसने संरक्षित कर ली थी। दलाई का भागना बहुत जरूरी था। लेकिन मुश्किल है कि कोई आदमी इसकी तारीफ कर सके। लेकिन मैं कहता हूँ कि दलाई वहाँ लड़ता तो दो कौड़ी की बात थी वहाँ लड़ना। कायर नहीं है वह आदमी। मगर जो बचा कर ले आया है उसे आरोपित कर देना जरूरी है। लेकिन इस मुल्क में लोगों को ख्याल भी नहीं है कि दलाई के साथ एक बहुत बड़ी मूल शाखा वापस लौटी है जिससे यह मुल्क फायदा उठा सकता है। लेकिन मुल्क को कोई मतलब ही नहीं है, कोई सम्बन्ध ही नहीं लगा इससे। वह आपके मुल्क में है, यह घटना बहुत महत्त्वपूर्ण है। यह आसान न था; उसको ले आना आसान न था। यह बिल्कुल अवसर है, वक्त है, समय है कि उसको यहाँ आ जाना पड़ा है। और उसका हम फायदा ले सकते हैं। बहुत से एसोटेरिक, बहुत से गुह्य सत्य है जो उससे पता चल सकते हैं। लेकिन हमें कोई मतलब नहीं है, हमें कोई प्रयोजन नहीं है। और हम को दिखता ऊपर से यही है, लेकिन मैं ऐसा नहीं मानता।

अगर सोच लीजिए कि यहाँ मैं हूँ और मुझे लगे कि इस देश में उस बात से कोई मतलब नहीं हल होने वाला, नहीं हैं वे लोग जो उस बात को समझ सकें। अब मैं आप को कहूँगा कि जिन लोगों से मेरे इस जीवन में सम्बन्ध बन रहे हैं, उनमें से मैं बहुतों को पहचानता हूँ जिनसे मेरे पिछले जीवन में सम्बन्ध थे। चालीस-पचास करोड़ के मुल्क से मुझे कोई मतलब नहीं है। मतलब दो चार सौ लोगों से है चालीस-पचास करोड़ लोगों में से। मैं मेहनत कर रहा हूं इन दो चार सौ लोगों को अपने पास ले आऊँ इसके लिए। और कल मुझे ऐसा लगे कि मुल्क कम्युनिस्टों के हाथ में जाता है या ऐसे लोगों के हाथ में जाता है जो जड़ काट देंगे, तो मैं दो चार सौ लोगो को लेकर कहीं

भी भाग जाना पसंद करूँगा। आप मेरा मतलब समझ रहे हैं न? मैं उन दो चार सौ लोगों को लेकर भाग जाना पसंद करूँगा। पचास करोड़ से मुझे कोई प्रयोजन ही नहीं। मैं उन दो चार सौ लोगों को लेकर भाग जाऊँगा कहीं भी जंगल में। दुनिया को यही लगेगा कि यह आदमी भाग गया, कुछ लड़ा नहीं, वक्त पर काम नहीं आया। लेकिन मैं जानता हूँ कि मुझे क्या करना चाहिए।

वह दलाई लामा थोड़े से लोगों को लेकर भाग आया है और उन लोगों में से थोड़े से कीमती लोगों को बचा लाया है, जो आगे शाखाएँ सिद्ध हो सकें। और हो सकता है, दो सौ वर्ष बाद, एक सौ वर्ष बाद, पचास वर्ष बाद, तिब्बत की हवाएँ ठीक हो जाएँ और दलाई लामा जो बचा ले वह वापस तिब्बत में आरोपित हो सके। इसकी आशा में लगा हुआ है। सारी आशा और आकांक्षा है, जिसके पीछे इतना कष्ट झेलता है कोई। वह आशा और आकांक्षा यह है कि बीज बच जाए और अगर पचास साल बाद, या सौ साल बाद, क्योंकि जिन्दगी एक सी थोड़ी चलती रहती है, पचास सौ साल में सारी चीजें बदल जाएँगी तो तिब्बत में वापस लौट आया जा सकता है। वे चीजें फिर वापस तिब्बत में पहुँच सकती हैं। लेकिन वे सत्य हमें दिखाई नहीं पड़ते हैं। वह सम्पदा हमारी आँखों की सम्पदा नहीं है। वे सारे बहुमूल्य ग्रन्थ अपने साथ ले आया है जो सिर्फ तिब्बत में ही सुरक्षित रहे हैं। संस्कृत में नष्ट हो गए हैं। अब दलाई की सम्पदा है। और उनको किसी भी हालत में बचाना जरूरी है। बौद्धों के सारे सूत्र ग्रन्थ हिन्दुस्तान में नष्ट किए गए। जो लोग यहाँ से भाग गए ग्रन्थों को लेकर वे ग्रन्थ आज चीनी में, तिब्बती में, बर्मी में सुरक्षित हैं। और वे फिर वापस लौटाए जा सकते हैं। अब ऐसे-ऐसे अद्भुत ग्रन्थ हमने खो दिए जिनका कोई हिसाब नहीं। हमने ही इनको जला डाला। उस दिन तो ऐसा ही लगा होगा कि बोधिधर्म चीन क्यों जा रहा है? भागता है जिन्दगी से। लेकिन बोधिधर्म ने ध्यान की जो मूल शाखा थी बुद्ध की उसको नष्ट नहीं होने दिया। उस एक आदमी पर निर्भर था वह मामला सब। वह एक आदमी मर जाए रास्ते में तो इतनी बड़ी सम्पदा नष्ट होती थी कि जिसका कोई हिसाब लगाना मुश्किल था।

बुद्ध के जीवन में एक बहुत अद्भुत घटना हो चुकी है। एक दिन सुबह बुद्ध एक फूल लेकर आए। ऐसा कभी नहीं होता है। किसी ने रास्ते में एक फूल दे दिया है, वह उसको लेकर मंच पर बैठ गए हैं। वह चुप बैठे हैं; बड़ी देर हो गई है। फिर भिक्षु राह देखते-देखते थक गए हैं कि वह बोलें। फिर बेचैनी

शुरू हो गई है कि वह चुप क्यों हैं, बोलते क्यों नहीं हैं। फिर वह हँसने लगे हैं। उनकी हँसी सुन कर एक महाकाश्यप नाम का भिक्षु जोर से हँसा है। यह आदमी कभी बोला नहीं था इसके पहले। यह चुप ही रहता था। यह कभी बोलता ही नहीं था। यह जोर से हंसा है। बुद्ध ने उसे बुलाया और उसके हाथ में वह फूल दे दिया। और भिक्षुओं से कहा 'जो मैं बोल कर दे सकता था वह मैंने तुम्हें दिया; जो मैं बोल कर नहीं दे सकता, वह मैं महाकाश्यप को देता हूँ। कोई चीज ट्रांसफर की गई जो दिखाई नहीं पड़ती। बुद्ध ने कहा जो मैं नहीं दे सकता था शब्द से, वह मैं महाकाश्यप को दिए देता हूँ।

हजारों साल से यह पूछा जाता रहा है कि महाकाश्यप को दिया क्या? कौन सी चीज ट्रांसफर (हस्तांतरित) की गई थी? लेकिन अगर शब्द में बुद्ध कह सकते तो खुद ही कह दिए होते। अब कौन कहे क्या हुआ? महाकाश्यप बुद्ध की आन्तरिक सम्पदा का, एसोटेरिक सम्पदा का अधिकारी बना। और महाकाश्यप का कोई नाम नहीं होगा क्योंकि उसने कोई किताब नहीं लिखी, महाकाश्यप का बौद्ध ग्रन्थों में नाम खोजना मुश्किल हो जाएगा। क्योंकि उसके नाम का कोई कार्य नहीं हैं। लेकिन वह अद्‌भुत घटना है और महाकाश्यप के पास जो था, वह खोज-खोजकर किन्हीं व्यक्तियों को देता रहा। वह मामला देने का था, समझने का नहीं था। महाकाश्यप की परम्परा में एक भिक्षु था बोधिधर्म। वह हिन्दुस्तान से भागा क्योंकि हिन्दुस्तान में कोई आदमी उसे नहीं मिला जिसको ट्रांसफर कर दे जो उसके पास था। वह भागा और चीन में एक आदमी को ट्रांसफर किया। तो चीन में वह परम्परा कुछ पीढ़ियों तक चली अन्ततः उसको जापान ट्रांसफर करना पड़ा क्योंकि कोई आदमी चीन में उपलब्ध नहीं हुआ। अब वह जापान में जिन्दा है। वे जो झेन हैं महाकाश्यप पहला गुरु है उनका। अब वह जापान में है। सुजूकी उसका आखिरी गुरु है अभी। लेकिन अब ऐसा डर हो गया है कि उसे कोई जापान में भी ले सकता है या नहीं। तो सुजूकी पूरी जिन्दगी से यूरोप और अमेरिका में मेहनत कर रहा है, किसी को ट्रांसफर करने के लिए। ग्राहक मन (रिसेप्टिव माइन्ड) चाहिए न! जापान में आशा नहीं बंधती है क्योंकि अब जापान एकदम भौतिकवादी हो गया है। सारी चेतना जड़ता से भर गई है। एक तरफ विकास होता है, दूसरी तरफ पतन होता है कई बार। अब जापान एकदम आधुनिक है, अत्याधुनिक, तो किसको वह दिया जाए? अब वह बूढ़ा आदमी, हद से बूढ़ा आदमी सुजूकी पूरी जिन्दगी से यूरोप में भटक रहा है। लेकिन दो-तीन आदमी

उसको मिल गए हैं। एक फ्रांस में ह्यूबर्ट बेनॉएट। एक अमेरिका में एलन वॉट। उसने उनको दे दिया है। अब उसका छुटकारा हो गया है। अब वे जानेंगे, समझेंगे। महाकाश्यप के पास जो था वह ह्यूबर्ट बेनॉएट के पास है, एलन वॉट के पास है।

कुछ चीजें इतनी गहरी हैं कि उनको ग्रहण करने के लिए आदमी चाहिए न! पर वह सब हमें दिखाई पड़ता नहीं। वह सब कैसे चलता है, कैसे जाता है, हमें दिखाई नहीं पड़ता है। और जिसके पास है वह जानता है उसकी तकलीफ को कि क्या करे। उसको कैसे पहुंचा दे कि वह बच जाए; मैं तो मर जाऊं लेकिन कुछ मेरे पास है, वह बच जाए। वह मुझसे ज्यादा कीमती है। वह बचना चाहिए। वहीं कहीं किसी के काम आता रहेगा पीढ़ियों तक। इसलिए उसे ऐसा मत लें। ऐसा नहीं है मामला।

प्रश्न : मैथुन एक अनुभूति है। जब मूर्च्छा होती है अनुभूति पैदा होती है। जब साक्षी होती है तब मूर्च्छा हो ही नहीं सकती। जब अनुभूति हो ही नहीं सकती तब मैथुन कैसे हो सकता है?

उत्तर : साधारणतः ठीक कह रहे हो। लेकिन कोई भी क्रिया दो तरह से हो सकती है या तो उस क्रिया में डूबो या उस क्रिया से बाहर खड़े रह जाओ। जब डूबोगे तुम उस क्रिया में तब तुम मूर्च्छित हो जाओगे। जब तुम क्रिया के बाहर खड़े रहोगे तब तुम साक्षी रहोगे। पहली हालत में मैथुन तुम्हारी जरूरत होगी; दूसरी हालत में और तरह की जरूरत हो सकती है और बहुत तरह की जरूरत है। जैसे मैंने अभी कहा कि ज्ञान के ट्रांसफर करने की बात है। अब यह तुम हैरान होगे कि कुछ लोग इस स्थिति में पहुँच जाएँ जहाँ मैथुन बिल्कुल अनावश्यक हो गया है; फिर भी जिस शरीर की सम्भावना उनके पास हो, उसको वे ट्रांसफर करना चाहेंगे। वे उस शाखा को भी तोड़ना नहीं चाहेंगे। वह शाखा भी कीमत की है। जैसे—बुद्ध जैसा व्यक्ति, या महावीर जैसा व्यक्ति—एक आत्मा की यात्रा है लेकिन एक शरीर भी चाहिए जो उतनी कीमती आत्मा को पकड़ता हो। वैसे व्यक्ति यह भी न चाहें कि वैसा शरीर न रहे क्योंकि महावीर तक आते-आते जो वीर्य अणु विकसित हुआ है, वह साधारण नहीं है। आत्मा असाधारण है सो तो है ही। लेकिन जो वीर्य अणु महावीर तक आते-आते विकसित हुआ है वह भी साधारण नहीं है। वे उसको भी ट्रांसफर करना चाहेंगे।

मैथुन उसका रस नहीं है। मैथुन एक भोजन, स्नान, सोना, उठना या बैठना जैसी एक बाह्य जरूरत की चीज है जो उपयोगी हो सकती है बल्कि हो सकता है कि हजार दो हजार वर्ष बाद जबकि हमारा ज्ञान प्रजननविज्ञान (जेनेटिक्स) की ओर बढ़ जाएगा तो शायद हम नाराज हों जीसस पर कि वह वीर्य अणु की लम्बी यात्रा जो जीसस पर आकर इस भाँति फलीभूत हुई, वह जारी क्यों नहीं रखी। हम नाराज हो सकते हैं क्योंकि वह दुबारा सम्भव नहीं है। वह लाखों करोड़ों वर्षों की यात्रा के बाद उस तरह का वीर्य अणु, वह विशिष्ट वीर्य अणु, जीसस के शरीर में है। और जीसस के शरीर के साथ खो जाती है वह शाखा। मेरा मतलब समझे न तुम? यानी यह हो सकता है—अभी तो सम्भव नहीं था पहले; लेकिन आज से हजार साल बाद, बल्कि पाँच सौ साल बाद, बल्कि शायद पचास साल बाद यह सम्भव हो जाएगा कि बहुत महत्त्वपूर्ण व्यक्तियों के वीर्य अणु को हम सुरक्षित रख सकेंगे। आइंस्टीन जैसे वैज्ञानिक के वीर्य अणु को सुरक्षित रखने की जरूरत है क्योंकि यह सम्भावना मुश्किल से फलीभूत होती है। अगर आइंस्टीन जैसी स्त्री उपलब्ध हो जाए, आइंस्टीन के मरने के दो सौ साल बाद तो वीर्य अणु सुरक्षित रह सकता है। तो उस स्त्री के अणु से, इस वीर्य अणु के संयोग से जो व्यक्ति पैदा किया जा सके वह ऐसा अनूठा होगा जैसा आइंस्टीन भी नहीं था।

जैसे-जैसे हमारी समझ बढ़ेगी वैसे-वैसे हम श्रेष्ठ व्यक्तियों के वीर्य अणुओं को नष्ट नहीं होने देंगे। उनको हम बचा कर रखेंगे। उस वक्त तो कोई उपाय नहीं था। अब तो उपाय है। अब तो मैथुन अनिवार्य नहीं है। वीर्य अणु सुरक्षित किया जा सकता है, बिना मैथुन के वीर्य अणु सक्रिय हो सकता है और उससे सन्तति हो सकती है लेकिन उस वक्त यह उपाय नहीं था। तो मेरा मानना है कि यह भी ध्यान में हो सकता है। बुद्ध ने भी एक बेटे को जन्म दिया था। महावीर की भी एक बेटी थी। समझे आप? मैं यह कह रहा हूँ कि मैथुन में जब रस है तब आप डूबते हैं; जब रस नहीं है तब कोई बात नहीं है। तब वह बिल्कुल एक यांत्रिक क्रिया है।

प्रश्न : वह बायोलोजिकल मामला कैसे हो सकता है? मूच्छित होने से पीछे अनुभूति होती है। बिना अनुभूति के मामला बायोलोजिकल कैसे हो सकता है?

उत्तर : अनुभूति वगैरह कुछ नहीं होती आपको। जो होना है कुल इतना होता है कि आपके चित्त का तनाव शरीर से बाहर निकल जाने से मुक्त हो

जाता है। और कुछ नहीं होता आपको। उस तनावमुक्ति को आप बड़ी अनुभूति समझ लेते हैं। अनुभूति वगैरह कुछ नहीं होती। जो तनाव इकट्ठा हो जाता है वह जब वीर्य सख्ती से बाहर निकल जाता है, मुक्त हो जाता है। अनुभूति क्या खाक होती है आपको? अनुभूति हुई क्या है कभी? अनुभूति हो सकती है लेकिन उसके उपाय दूसरे हैं। वह मामला फिर सेक्स का नहीं है। बायोलोजिकली वह सिर्फ आपका तनाव सिर्फ दूर कर देता है। इसलिए बहुत अधिक तनावमुक्त लोगों के लिए उसकी जरूरत भी नहीं रह जाती। लेकिन बहुत तनावयुक्त लोगों के लिए उसकी जरूरत बढ़ जाती है। जितना तनाव बढ़ता है उतना सेक्स बढ़ता है।

पश्चिम में जो इतनी कामुकता है उसका कोई और कारण नहीं। चित्त तनावग्रस्त हो गया है और तनाव को शिथिल करने का एक ही उपाय है। वह यह कि शरीर से शक्ति बाहर हो जाए। और कुछ नहीं इससे ज्यादा। हम जिसको कहते हैं 'घनीभूत शक्ति' वह एकदम से बाहर हो जाती है, सारे शरीर के स्नायु शिथिल हो जाते हैं। उतनी शक्ति के निकलने पर शिथिल होना ही पड़ेगा। और यह जो शिथिलता आपको मालूम पड़ती है, आप समझते हैं कि यह आपको अनुभव हो रहा है सेक्स का। यह सिर्फ तनाव दूर होने का अनुभव है। दो दिन बाद आप फिर तनाव में हो जाते हैं। दस दिन बाद फिर आप तनाव में हो जाते हैं। फिर मुक्त होने की जरूरत पड़ जाती है जैसे कि आपके हीटर में, कुकर में वाल्व लगा हुआ है। ज्यादा गर्मी होगी तो उस वाल्व से निकल जाती है। वैसे वाल्व है सिर्फ, और प्राणि-विज्ञान उसका उपयोग करता है। अनुभूति कुछ भी नहीं होती। लेकिन जब तनाव घट जाता है तो फिर जरूरत नहीं रहती। जो लोग शिथिल शान्ति से जीते हैं उनके लिए उतनी ही अनावश्यक हो जाती है वह बात। उस स्थिति में भी उन्हें दूसरे कारण प्रभावित कर सकते हैं और वे मैथुन को भी एक क्रिया की तरह उपयोग कर सकते हैं। वह जो मैं कह रहा हूँ उसके लिए कोई अनुभव वगैरह की बात नहीं है।

प्रश्न : एक जो बात आपने आज कही वह शायद ज्यादा महत्त्वपूर्ण है। और बहुत दिनों से, जो भी जैन धर्म पर सोचते हैं, उनके मन में चक्कर काटती है। आपने कहा महावीर वीतराग हैं न रागी हैं न वैरागी। लोग इसे दूसरी तरह कहते हैं : वह राग-द्वेष दोनों से मुक्त हैं। पर प्रश्न यह है कि मान लीजिए स्त्री का आकर्षण—यह भी व्यर्थ है; स्त्री का विकर्षण—यह भी व्यर्थ है। समाज की व्यवस्था के लिए, आपकी वीतरागता का उपदेश

सामान्य स्तर पर बरता जा सके, इसकी बहुत कम आशा है। यानी चालीस करोड़ के चालीस करोड़ लोग वीतराग हो जाएँगे, इसकी आशा बहुत कम है। पर जो समाज का नियंत्रण है उसके लिए संयम, चाहे वह ऊपरी भी क्यों न हो, आवश्यक सा प्रतीत होता है। महावीर ने या आपने स्वयं उसके लिए क्या सोचा है? समाज की व्यवस्था के लिए वह नियंत्रण जो ऊपरी है, और आध्यात्म की दृष्टि से व्यर्थ सा भी है, समाज की दृष्टि से बहुत उपयोगी है। उस नियंत्रण के बारे में क्या महावीर कहना चाहते थे और क्या आप कहना चाहेंगे ?

उत्तर : पहली बात यह कि वीतरागता करोड़ों लोगों के लिए कठिन तो है, पर असम्भव नहीं। और कठिन होने का बड़े से बड़ा कारण यह है कि कठिन मान ली गई है। यदि हमारी धारणा ही किन्हीं चीजों को कठिन और किन्हीं को सरल बनाती है। जब मैं कहता हूँ कि कठिन है, असम्भव नहीं, तो मेरा मतलब यह है कि कठिन भी इसलिए नहीं है कि उसकी प्रक्रिया कठिन है बल्कि इसलिए कि हमारे राग और विराग की पकड़ कठिन है, तो इसे छोड़ना मुश्किल हो जाता है। यानी जैसे एक आदमी पहाड़ पर चढ़ रहा है और बड़ा बोझ लिए हुए है गट्ठर बांधे हुए है, पत्थर बांधे हुए है। कहता है : पहाड़ पर चढ़ना बहुत कठिन है। तो हम उससे कहें : पहाड़ पर चढ़ना उतना कठिन नहीं जितना कठिन तुम्हारा बोझ है। तुम इसे छोड़ सको तो पहाड़ पर बड़ी सरलता से चढ़ सकते हो। असली सवाल पहाड़ पर चढ़ने की कठिनाई का नहीं है जितना कि तुम बोझ बांधे हुए हो और जिसके साथ तुम नहीं चढ़ सकते। और, उसे तुम छोड़ना नहीं चाहते, इसलिए कठिन हुआ जा रहा है। मेरा मतलब समझे न।

एक-एक आदमी जिस-जिस तरह के मानसिक बोझ को पकड़े हुए हैं उसकी वजह से वीतरागता कठिन हो गई है। अगर वह यह मान भी लें कि कठिन है तो भी बोझ को तो छोड़ता ही नहीं है। बल्कि बोझ को और पकड़ लेता है ताकि सिद्ध हो जाए कि बिल्कुल कठिन है वह, सरल है हो नहीं मामला। सच्चाई में तो यह है हालत कि राग और विराग बहुत ही कठिन हैं; असम्भव है। न तुम राग से कुछ उपलब्ध कर पाते हो कभी भी; न विराग से उपलब्ध कर पाते हो। सिर्फ राग से तुम विराग की प्रवृत्ति उपलब्ध कर पाते हो और विराग से राग की प्रवृत्ति उपलब्ध कर पाते हो। यानी राग की उपलब्धि ही क्या है? सिर्फ विराग को पकड़ा देना और विराग की उपलब्धि है राग

को पकड़ा देना। और यह एक अनन्त वृत्त है। इसकी उपलब्धि कुछ है नहीं। तुम स्वयं को तो कभी उपलब्ध कर ही नहीं सकते दोनों हालतों में। तुम व्यक्ति ही नहीं बन पाते अगर राग और विराग में पड़े हुए हो तुम।

और वह जो कहते हैं कि राग और द्वेष से छूट जाना वीतरागता है, वह बड़ी गलत व्याख्या कर रहे हैं। वे विराग को बचा जाते हैं। राग और द्वेष से मुक्त हो जाना अगर वीतरागता का अर्थ उन्होंने किया तो वे विराग को बचा जाते हैं, और वह तरकीब है बहुत शरारतपूर्ण। राग का ठीक विरोधी विराग है, द्वेष नहीं। द्वेष तो राग का ही हिस्सा है, विरोध नहीं। विरोधी तो विराग है। द्वन्द्व विराग का है राग से, द्वेष से नहीं। तो वे तरकीब से बनाए गए हैं। उन्होंने विरागी को बचा लिया है, विरागी और वीतरागी को सीढ़ी बना दिया है। वे कहते हैं कि वैराग्य से वीतराग की सीढ़ी जाती है। मैं कह रहा हूँ चाहे राग से जाओ, चाहे विराग से, वीतराग होने का फासला दोनों से बराबर है। इसे हम समझें।

दूसरी बात यह कि यह कठिन नहीं है, क्योंकि जो स्वभाव है वह अन्ततः कठिन नहीं हो सकता, विभाग ही कठिन हो सकता है। और, जो स्वभाव इतना आनन्दपूर्ण है कि उसकी एक झलक मिलनी शुरू हो जाए तो हम कितने ही पहाड़ उसके लिए चढ़ जाते हैं। बस झलक जब तक नहीं मिलती तब तक कठिनाई है। और झलक राग और विराग मिलने नहीं देते। यह जरा सा भी हटे तो उसकी झलक मिलनी शुरू हो जाती है। जैसे आकाश में बादल घिरे हुए हैं और सूरज की किरण भी दिखाई नहीं पड़ती। जरा सा बादल सरके और किरण झाँकने, पड़ने लगती हैं। राग और विराग के द्वन्द्व की जरा सी टूट जाए खिड़की तो वीतरागता का आनन्द बहने लगता है। और वह बहने लगे तो कितनी ही यात्रा पर जाना सम्भव है, कठिन नहीं। लेकिन हम क्या करते हैं : हम राग से विराग में जाते हैं, विराग से राग में आते हैं। ये दोनों ही एक से घेरने वाले बादल हैं। इसलिए कभी सन्धि भी नहीं मिलती उसको जाने की। राग और विराग में डोलते हुए मनुष्यों का जो समाज है, वह नियम बनायेगा ही। क्योंकि राग विराग में डोलता हुआ आदमी बहुत खतरनाक है। इसलिए नियम बनाने पड़ेंगे। और नियम कौन बनायेगा? वही राग विराग में डोलते हुए आदमी नियम बनायेंगे। राग विराग में डोलते हुए लोग खतरनाक हैं। राग विराग में डोलते हुए नियम बनाने वाले लोग और भी खतरनाक हैं।

यानी मामला ऐसा है जैसे पागलखाना है एक। पागलों के लिए कुछ नियम बनाने पड़ेंगे। और नियम बनाने वाले भी पागल हैं। तो नियम और भी खतरनाक हैं क्योंकि पागल नियम बनायेंगे, और पागलों के लिए। एक तो पागल ही खतरनाक है, फिर पागल नियम बनायें तो और बहुत खतरा शुरू हो जाता है। तो समाज ऐसे ही खतरे में जी रहा है और जब हम कहते हैं कि वीतरागता की तरफ जाना है तो हम यह नहीं कहते कि नियम तोड़ देना है। हम यह नहीं कह रहे। मैं तो यह कह रहा हूँ कि जो व्यक्ति थोड़ी सी भी वीतरागता में गया उसके लिए नियम आवश्यक हैं। यानी वह जीता ऐसे है कि उससे किसी को दुख, पीड़ा यह सब सवाल ही नहीं है। हाँ कोई उससे दुख लेना चाहे तो बात ही अलग है, उसकी मुक्ति है उससे। महावीर ऐसे जीते हैं कि उनके लिए दुख सुख का सवाल ही नहीं मगर कोई दुख सुख लेना चाहता है तो लेता है। लेकिन पूरा जिम्मा लेने वाले पर ही है। महावीर का देने का कोई हाथ नहीं उसमें, जरा भी कोई दुख लेगा, कोई सुख देगा। वह उस लेने वाले पर निर्भर है। महावीर तो जैसे जीते हैं, जीते हैं। जितना वीतराग चित्त होगा उतना विवेक पूरा होगा। पूर्ण वीतरागता, पूर्ण विवेक। और वीतरागता के लिए किसी संयम की जरूरत नहीं, किसी नियम की जरूरत नहीं क्योंकि विवेक स्वयं ही संयम है। अविवेक के लिए संयम की जरूरत होती है। इसलिए सब संयमी अविवेकी होते हैं। जितनी बुद्धिहीनता होती है, उतना संयम बांधना पड़ता है। यानी बुद्धि की कमी को वे संयम से पूरा करने की कोशिश करते हैं लेकिन बुद्धि की कमी संयम से पूरी नहीं होती।

अब तक जो हमने समाज बनाया है वह बुद्धि की कमी को संयम से पूरा करने की कोशिश कर रहा है। इसलिए हजारों साल हो गए कोई फर्क नहीं पड़ा। तुम पूछ सकते हो कि अगर हम नियम तोड़ दें तो समाज ही टूट जाएगा मगर यह मैं नहीं कह रहा हूँ। यह वैसी ही बात है जैसे पागलखाने के लोग कहें कि अगर हम ठीक हो जाएँगे तो पागल खाने का क्या होगा? फिर पागल खाना टूट जाएगा। अगर लोग विवेकपूर्वक हो जाएँ तो समाज नहीं होगा जैसा हम समाज समझते रहे हैं। बिल्कुल बुनियादी फर्क हो जाएँगे। लेकिन पहली दफा ठीक अर्थों में समाज होगा। अभी क्या है—समाज है, व्यक्ति नहीं। और समाज सब व्यक्तियों को अपने घेरे में कसे हुए है। और समाज केवल व्यवस्था

का नाम है। व्यवस्था वजनी और व्यक्ति कमजोर है। व्यवस्था छाती पर बैठी है और व्यक्ति नीचे दबा है।

जिस व्यक्ति की मैं बात कर रहा हूँ और वह बन जाए अगर विवेकपूर्ण व्यक्ति, वीतराग चित्त से भरा हुआ, जीवन के आनन्द से भरा हुआ, तो भी व्यवस्था होगी। लेकिन व्यक्ति की छाती पर नहीं, व्यक्ति के लिए ही व्यवस्था होगी। अभी व्यवस्था के लिए व्यक्ति हो गया है। और तब भी समाज होगा। लेकिन तब समाज दो व्यक्तियों, दस व्यक्तियों, हजार व्यक्तियों के बीच के अन्तःसम्बन्ध का नाम होगा। व्यक्ति केन्द्र होगा, समाज गौण होगा और समाज केवल हमारे अन्तर्व्यवहार की व्यवस्था होगी। और विवेकशील व्यक्ति का अन्तर्व्यवहार किसी बाहरी समय और नियम से नहीं चलेगा, एक आन्तरिक अनुशासन से चलेगा। जब तक ऐसा नहीं हो जाता तब तक समाज जैसे चलता है चलेगा। यह ऐसा ही है जैसे हम कहें कि सब लोग स्वस्थ हो जाएं तो इन डाक्टरों का, अस्पतालों का क्या होगा ? वह स्वस्थ रह जाते हैं तो उनकी कोई जरूरत नहीं रह जाती क्योंकि वह अच्छा काम नहीं है जो डाक्टर और अस्पताल को करना पड़ता है। अच्छा लग रहा है क्योंकि हम बीमार होने का काम किए चले जाते हैं। यह अच्छा नहीं है क्योंकि हम जो गलत करते हैं उसको पोंछने का काम करना पड़ता है सिर्फ। और तो कुछ करना नहीं पड़ता। तो जैसे-जैसे विवेक विकसित हो, वीतरागता विकसित हो, समाज होगा, अन्तःसम्बन्ध होंगे। लेकिन वह बड़े गौण हो जाएंगे, व्यक्ति प्रमुख हो जाएगा और उसका अन्तर अनुशासन असली बात होगी। इसलिए मेरा कहना यह है कि समाज की व्यवस्था में व्यक्ति को संयम देने की चेष्टा कम होनी चाहिए; विवेक देने की व्यवस्था ज्यादा होनी चाहिए। विवेक से संयम आएगा और संयम से विवेक कभी नहीं आता है।

प्रश्न : पर जब तक विवेक नहीं संयम की आवश्यकता मान लीजिए ?

उत्तर : बनी ही रहेगी।

प्रश्न : महावीर भी ऐसा ही समझते थे ?

उत्तर : समझेंगे ही। इसके सिवाय कोई उपाय ही नहीं। यानी जब तक विवेक नहीं है तब तक किसी न किसी तरह के नियमन की व्यवस्था बनी ही रहेगी। लेकिन यह ध्यान रहे कि किसी भी नियम की व्यवस्था से विवेक आने वाला नहीं, इसलिए विवेक को जगाने की सतत कोशिश जारी रखनी पड़ेगी। संयम और नियम की व्यवस्था को सिर्फ आवश्यक बुराई समझना होगा। वह गौरव की बात नहीं। चौरास्ते पर एक पुलिस वाला खड़ा है, इसलिए लोग

बाएं-दाएं चल रहे हैं, यह कोई सौभाग्यपूर्ण बात नहीं। लोगों को बाएं-दाएं चलना चाहिए और पुलिस वाले को विदा होना चाहिए। व्यर्थ ही एक आदमी को हम परेशान कर रहे हैं कि वह लोगों को बाएं-दाएं चलता रहे। और लोग कैसे बुद्धिहीन हैं कि अगर चौरास्ते पर एक पुलिसवाला नहीं है तो वे बाएं-दाएं भी नहीं चलेंगे। इसका मतलब है कि समाज ने बुद्धि पैदा करने की कोशिश ही नहीं की है अब तक, और पुलिस वालों से काम ले रही है विवेक का। करोड़ों निकल रहे हैं एक सड़क से और एक पुलिस वाला स्थानापन्न हो गया है, करोड़ों लोगों के विवेक का। वह पुलिस वाला भी विवेकहीन आदमी है। वह किसी तरह चला लेता है बाएं दाएं। लेकिन फर्क क्या पड़ता है? बस बाएं दाएं चलना हो जाता है और एक्सीडेंट कुछ कम होते हैं सड़क पर। लेकिन अगर हमने समझा है कि विवेक की कमी इसने पूरी कर दी तो हम गलती में हैं। यह सिर्फ सूचक है कि विवेक नहीं है और हमें कोशिश करनी चाहिए कि विवेक आ जाए ताकि हम इसको विदा कर दें। नीति, संयम, नियम धीरे-धीरे विदा हो सकें ऐसा विवेक हमें जगाना चाहिए। जिस समय में कोई नियम नहीं होगा, कोई संयम नहीं होगा, लोग विवेक से जीते होंगे, वह पहली बार सही समाज होगा। नहीं तो समाज का सिर्फ धोखा चल रहा है।

प्रश्न : मेरी इसमें सहमति है जो आप कह रहे हैं। जहां मतभेद मुझे लगा यानी विचारकों में मतभेद, वह यह कि जिसको आप कह रहे हैं नियम, यद्यपि वह अन्ततोगत्वा छोड़ने के लिए है और व्यर्थ है, उसे वह व्यवहार दृष्टि नाम देते हैं। तो उस व्यवहार दृष्टि की कोई आंशिक उपयोगिता है या नहीं है, इस पर मतभेद चलता है। यह विचारणीय है।

उत्तर : वह चलेगा उनमें क्योंकि विचार द्रष्टा नहीं हैं। और वह जो चल रहा है जैसा कि उन्होंने मान रखा है कि एक व्यवहार दृष्टि और एक निश्चय दृष्टि, ऐसी कोई चीज नहीं होती। दृष्टि तो एक ही है—निश्चय दृष्टि। व्यवहार की दृष्टि कहना ऐसा ही है जैसे कि यह कहना कि कुछ लोगों की आंख की दृष्टि होती है, कुछ लोगों की अन्धी दृष्टि होती है। हम कहें कि अन्धे की भी आंख तो होती है, सिर्फ देखती नहीं। और आंख वाले की भी आंख होती है, सिर्फ देखती है, इतना फर्क होता है, इतना ही फर्क होता है, बाकी आंख तो दोनों में ही होती है। तो एक अंधी आंख होती है, एक देखने वाली आंख होती है। व्यवहार-दृष्टि अन्धे की आंख है। वह दृष्टि है ही नहीं। दृष्टि तो एक ही है जहां से दर्शन होता है। वह निश्चय दृष्टि है।

व्यवहार की जो सारी बातचीत है, और ऐसा दो हिस्से करना, कि यह भी एक दृष्टि है और इसकी भी जरूरत है—यह सिर्फ अन्धे अपने को तृप्ति देने की कोशिश कर रहे हैं। यानी अंधा यह मानने को भी राजी नहीं कि मैं अन्धा हूँ। वह कहता है कि मेरा अन्धा होना भी बहुत जरूरी है। आँख की तरफ जाने के लिए मेरा अन्धा होने की बड़ी आवश्यकता है। वह यह कह रहा है। कोई दृष्टि नहीं हैं दो। दृष्टि तो एक ही है। व्यवहार-दृष्टि सिर्फ समझौता है और अन्धों के विचार हैं अपने। अन्धों के भी विचार होते हैं। आंख मिल गई वहां से दर्शन शुरू होता है, विचार खत्म होता है। वहाँ कोई सोचता नहीं, वहां देखता है।

और ये जो दो टुकड़े हुए इन दो टुकड़ों ने बड़ा नुकसान किया है। क्योंकि वह व्यवहार दृष्टि वाला कहता है कि यह भी जरूरी है। पहले तो इसको पूरा करना पड़ेगा। फिर, इसके बाद दूसरी बात उठेगी—साधते-साधते निश्चय दृष्टि उपलब्ध होगी, इससे ज्यादा गलत बात नहीं हो सकती। वास्तव में बात यह है कि व्यवहार दृष्टि छोड़ते-छोड़ते निश्चय दृष्टि उपलब्ध होगी। साधने का सवाल ही नहीं, छोड़ने का सवाल है। यानी अन्धे को साधते-साधते आँख मिलेगी, ऐसा नहीं है। अंधेपन को छोड़ते-छोड़ते आँख मिलेगी। व्यवहार दृष्टि छोड़नी है क्योंकि वह दृष्टि नहीं, दृष्टि का धोखा है। उपलब्ध तो निश्चय दृष्टि करनी है। इसलिए मैं ये दो शब्द भी लगाना पसन्द नहीं करता क्योंकि वह 'निश्चय' लगाना बेईमानी है वह तो व्यवहार के खिलाफ लगाना पड़ता है। इसलिए मैं कहता हूँ अंधापन छोड़ना है, दृष्टि उपलब्ध करनी है; निश्चय का क्या सवाल है? ऐसी भी कोई दृष्टि होती है, जो अनिश्चित हो। फिर उसको दृष्टि कहना फिजूल है। और व्यवहार की कोई दृष्टि नहीं होती। जैसे कि एक अन्धा आदमी है। वह अपनी लकड़ी टेक-टेक कर रास्ता बना लेता है, दरवाजा खोज लेता है और कहता है कि मुझे लकड़ी की बड़ी जरूरत है। ठीक ही कहता है क्योंकि वह अन्धा है। लेकिन उसे ध्यान रखना चाहिए। अगर वह कहे कि आंख मिल जाए तो भी लकड़ी की जरूरत है तब हम उससे कहेंगे कि तुम फिर पागल हो। तुम्हें पता ही नहीं कि आँख मिलने से क्या होता है। व्यवहार दृष्टि हमारी स्थिति है अन्धेपन की। निश्चय दृष्टि हमारी सम्भावना है आँख की। हमें व्यवहार दृष्टि को तोड़ना है ताकि निश्चय दृष्टि यानी सम्यक् दृष्टि हमें उपलब्ध हो सके।

५

प्रवचन

महावीर के बचपन के सम्बन्ध में थोड़ी सी बातें कल सोचीं। जैसा मैंने कहा, तीर्थंकर की चेतना का व्यक्ति पूर्णता को छूकर लौटा होता है। इसका अर्थ यह हुआ कि महावीर के लिए इस जीवन में करने को कुछ भी बाकी नहीं रहा, सिर्फ देने को बाकी रहा है; पाने को कुछ भी बाकी नहीं रहा। यह बात अगर समझ में आए तो इस बात की गहरी निष्पत्तियाँ होंगी। पहली निष्पत्ति यह होगी कि साधारणतः महावीर के सम्बन्ध में जो यह समझा जाता है कि उन्होंने त्याग किया, वह बिल्कुल व्यर्थ हो जाएगा। आज इस बात को समझ लेना जरूरी है, महावीर ने कभी भी भूलकर कोई त्याग नहीं किया। त्याग दिखाई पड़ा है महावीर ने कभी भी नहीं किया है। और जो दिखाई पड़ता है, वह सत्य नहीं है। क्योंकि जो दिखाई पड़ता है वह देखने वालों पर ज्यादा निर्भर होता है, बजाय इसके कि जो उन्होंने देखा। भोग से भरे हुए लोगों को किसी भी चीज का छूटना त्याग मालूम पड़ता है। और इसलिए महावीर के जीवन पर जिन्होंने लिखा उन्होंने रत्ती-रत्ती भर एक-एक चीज का हिसाब बताया है कि उन्होंने क्या-क्या छोड़ा। कितने बड़े महल थे, कितना बड़ा राज्य था, कितने हाथी और कितने घोड़े थे, कितने मणि-माणिक्य। इन सबका एक-एक हिसाब किया है। ये हिसाब देने वाले भोगी चित्त के लोग थे, इतना तो निश्चित है क्योंकि इन्हें मणि-माणिक्य, घोड़े-हाथी और महल ही बहुत मूल्यवान् मालूम होते थे। इनको महावीर ने छोड़ा, यह घटना इनको बड़ी चमत्कारपूर्ण मालूम पड़ी होगी क्योंकि भोगी चित्त कुछ भी छोड़ने में समर्थ नहीं है। वह सिर्फ पकड़ सकता है, छोड़ नहीं सकता। हाँ उसे छुड़ाया जा सकता है, लेकिन वह छोड़ नहीं सकता। और जब वह देखता है कि कोई व्यक्ति सहज ही छोड़ कर जा रहा है तो इससे ज्यादा महत्त्वपूर्ण और चमत्कारपूर्ण घटना उसे मालूम नहीं

हो सकती। लेकिन महावीर जैसी चेतना कुछ भी छोड़ती नहीं है क्योंकि उस तल पर कुछ भी पकड़ने का भाव नहीं रह जाता है। जो पकड़ते हैं, वे छोड़ भी सकते हैं। जो पकड़ते ही नहीं, जिनकी कोई पकड़ नहीं है, उनके छोड़ने का कोई सवाल ही नहीं।

महावीर ने कुछ भी नहीं त्यागा है, जो व्यर्थ है उसके बीच से वह आगे बढ़ गए हैं। लेकिन हम सबको दिखाई पड़ेगा कि बहुत बड़ा त्याग हुआ है। और, ऐसा दिखाई पड़ने में हम पकड़ने वाले चित्त के परिग्रही लोग हैं, यही सिद्ध होगा; और कुछ सिद्ध न होगा। महावीर त्यागी थे, ऐसा तो नहीं है। लेकिन महावीर को जिन लोगों ने देखा वह भोगी थे—इतना सुनिश्चित है। भोगी के मन में त्याग का बड़ा मूल्य है। उल्टी चीजों का ही मूल्य होता है। बीमार आदमी के मन में स्वास्थ्य का बड़ा मूल्य है। स्वस्थ आदमी को पता भी नहीं चलता। बुद्धिहीन के मन में बुद्धिमत्ता मूल्यवान् है; लेकिन बुद्धिमान् को कभी पता भी नहीं चलता। जो हमारे पास नहीं है उसका ही हमें बोध होता है। और जो हम पकड़ना चाहते हैं, उसे कोई दूसरा छोड़ता हो तो भी हम आश्चर्य से चकित रह जाते हैं। लेकिन यहाँ मैं महावीर के भीतर से चीजों को कहना चाहता हूँ। महावीर कुछ भी नहीं छोड़ गए हैं। और, जो व्यक्ति कुछ छोड़ता है, छोड़ने के बाद उसके पीछे छोड़ने की पकड़ शेष रह जाती है। जैसे एक आदमी लाख रुपये छोड़ दे। लाख रुपये छोड़ देगा; लेकिन लाख रुपये मैंने छोड़े, यह पकड़ पीछे शेष रह जाएगी। यानी भोगी चित्त त्याग को भी भोग का ही उपकरण बनाता है। भोगी चित्त धन को ही नहीं पकड़ता, त्याग को भी पकड़ लेता है। असल सवाल तो पकड़ने वाले चित्त का है। वह अगर सब कुछ त्याग कर दे तो वह इस सबका हिसाब-किताब रख लेगा अपने मन में कि क्या-क्या मैंने त्यागा है; कितना मैंने त्यागा है। ऐसे त्याग का कोई मूल्य नहीं। यह भोग का ही दूसरा रूप है, परिग्रह का ही दूसरा रूप है। लेकिन एक और तरह का त्याग है जहाँ चीजें छूट जाती हैं क्योंकि चीजों को पकड़ने से हमारे भीतर की कोई तृप्ति नहीं होती; बल्कि चीजों को पकड़ने से हमारे भीतर का विकास अवरुद्ध होता है।

हम चीजें पकड़ते क्यों हैं ? चीजों को पकड़ने का कारण क्या है ? हम चीजों को पकड़ते हैं क्योंकि चीजों के बिना एक असुरक्षा मालूम पड़ती है। अगर मेरा कोई भी मकान नहीं है तो मैं असुरक्षित हूँ; किसी दिन सड़क पर

पड़ा हो सकता हूँ। हो सकता है मर रहा होऊँ और मुझे कोई छप्पर न मिले। तो मैं असुरक्षित हूँ। इसलिए मकान को जोर से पकड़ता हूँ; धन को जोर से पकड़ता हूँ क्योंकि कल का क्या भरोसा है। कल के लिए कुछ इन्तजाम चाहिए। जिस व्यक्ति के मन में जितनी असुरक्षा का भाव है, वह उतना चीजों को जोर से पकड़ेगा। लेकिन जिस चेतना को यह पता हो गया कि उसके तल पर कोई असुरक्षा नहीं, वहाँ न कोई भय है; न कोई पीड़ा है, न कोई दुःख है; न कोई मृत्यु है—ऐसा जिसे पता चल गया है वह कुछ भी नहीं पकड़ता। पकड़ता था असुरक्षा के कारण असुरक्षा न रही तो पकड़ भी न रही। और जो अपने भीतर प्रविष्ट हुआ है वह तो प्रतिक्षण, प्रतिपल अपने आनन्द से भर गया है कि कल का सवाल कहाँ है कि कल क्या होगा, आज काफी है।

जीसस निकलते थे एक बगीचे के पास से और बगीचे में फूल खिले हैं। और जीसस ने अपने शिष्यों से कहा है: देखते हो इन फूलों को? खुद सोलोमन भी अपनी पूरी समृद्धि में इतना शानदार न था। सम्राट् सोलोमन, जिसने सारी पृथ्वी के धन को इकट्ठा कर लिया था, अपनी पूरी समृद्धि में और साम्राज्य में, इन साधारण से फूलों के मुकाबले में न था। देखते हो इनकी शानदार चमक, इनकी मुस्कराहट, इनका नाच। और साधारण से गरीब लिली के फूल! तो किसी ने पूछा है: कारण क्या है? रहस्य क्या है इसका कि सोलोमन साधारण लिली के फूल से भी शानदार न था। तो जीसस ने कहा: फूल अभी जीते हैं; सोलोमन कल के लिए जीता था। फूल अभी हैं; उन्हें कल की कोई चिन्ता नहीं, आज काफी है। और तुम भी फूलों की तरह ही रहो कि आज काफी हो जाए। तो जिसके लिए आज का, अभी का यह क्षण काफी है, आनन्द से भरा है, वह कल के क्षण की चिन्ता नहीं करता। इसलिए कल के क्षण के लिए इकट्ठा करने का पागलपन भी उसके भीतर नहीं है। वह जीता है आज के लिए। तो ऐसा व्यक्ति कुछ पकड़ता नहीं; छोड़ने का सवाल ही नहीं। छोड़ना आता है पीछे; त्याग आता है पीछे। जब पकड़ आ जाए तो सवाल उठता है, छोड़ो! ऐसा व्यक्ति पकड़ता ही नहीं।

और ध्यान रहे कि जिसको पकड़ आ गई है अगर वह छोड़ेगा तो पकड़ बाकी रहेगी, छोड़ने को पकड़ लेगा। वह पकड़ उसकी आदत का हिस्सा हो गई है। उसने धन पकड़ा था, अब वह त्याग पकड़ेगा। उसने मित्र पकड़े थे, अब वह परमात्मा को पकड़ेगा; परिवार पकड़ा था, अब वह पुण्य, पाप, धर्म पकड़ लेगा। कल खाते-बही पकड़े थे, अब वह शास्त्र पकड़ लेगा। शास्त्र भी

खाते-बही हैं और धर्म भी सिक्का है जो कहीं और चलता है। और पुण्य भी मोहरें हैं जो कहीं काम पड़ती हैं। और वह उनको पकड़ेगा। इसलिए ध्यान देने की यह बात है कि जो व्यक्ति पकड़ने के चित्त से भरा है, वह अगर त्याग करेगा तो वह भी नहीं होने वाला है। इसलिए सवाल त्याग करने का नहीं, सवाल पकड़ने वाले चित्त की वस्तुस्थिति को समझ लेने का है। अगर हमारी समझ में आ गया कि यह है चित्त पकड़ने वाला और पकड़ना व्यर्थ हो गया तो पकड़ विलीन हो जाएगी, त्याग नहीं होगा। पकड़ विलीन हो जाएगी और चीजें ऐसी दूर हो जाएँगी, जैसे वह दूर हैं ही।

कौन सा मकान किसका है? एक पागलपन तो यह है कि पहले मैं यह मानूँ कि यह मकान मेरा है। और फिर दूसरा पागलपन यह है कि मैं इसका त्याग करूँ। लेकिन यह ध्यान रहे कि अगर यह मकान मेरा नहीं है तो मैं त्याग करने वाला कौन हूँ? त्याग में भी मेरा स्वामित्व शेष है। मैं कहता हूँ यह मकान मैं त्याग करता हूँ। मैं ही त्याग करता हूँ न? और क्या त्याग मैं कर सकता हूँ उसका जो मेरा ही नहीं? तो त्याग करने वाला यह मानकर ही चलता है कि मकान मेरा है। और वस्तुतः जो त्याग की घटना घटती है वह इस सत्य से घटती है कि किसी को पता चलता है कि यह मकान मेरा है ही नहीं। तो त्याग कैसा? मेरा नहीं है, यह बोध पर्याप्त है, कुछ छोड़ना नहीं पड़ता। जो मेरा नहीं है, वह छूट गया। और चीजें थोड़े ही हमें बाँधे हुई हैं। चीजें और हमारे बीच में 'मेरे' का एक भाव है, जो बाँधे हुए है।

एक मकान है जिसमें आग लग गई है। तब घर का मालिक रो रहा है; चिल्ला रहा है : और इसी भीड़ में से एक कहता है आप क्यों परेशान हो रहे हैं? आपको पता है कि आपके बेटे ने मकान बेच दिया है और पैसे मिल गए हैं। बेटे ने खबर नहीं दी आपको। और वह आदमी एकदम हँसने लगा और उसने कहा : ऐसा है क्या? अब भी वह मकान जल रहा है, अब भी आदमी वही है, सब भीड़ भी वही है। लेकिन अब वह उसका मकान नहीं रह गया है। मकान बेचा जा चुका है। अब वह मेरा नहीं। वह हंस रहा है और वह सब ऐसी हल्की बातें कर रहा है जैसी कि और सारे लोग कर रहे हैं कि बहुत बुरा हो गया कि मकान जल गया है। लेकिन तभी उसका बेटा भागा हुआ आता है। वह कहता है, वह आदमी बदल गया है। रुपए अभी मिले नहीं हैं। सिर्फ बेचा था। असल में वह आदमी बदल गया है और वह आदमी फिर चिल्लाने लगा है कि मैं मर गया, मैं लुट गया। अब क्या होगा? एक क्षण में 'मेरा' फिर जुड़ गया

है। मकान मेरा ही है और जल रहा है तो मकान के जलने की पीड़ा है या 'मेरे' के जलने की। और अगर 'मेरे' के जलने की पीड़ा है, तो जो आदमी कहता है 'मेरा मकान', उसकी भी पकड़ है; जो आदमी कहता है 'मेरा मकान' मैं त्याग करता हूँ, उसकी भी पकड़ है। लेकिन जो आदमी कहता है 'कौन सा मकान? मेरा है कोई मकान? मुझे पता नहीं चलता मेरा कौन सा मकान है? मेरा कोई मकान ही नहीं है, मैं बिल्कुल बिना मकान के हूँ' अगृही है वह। अगृही का मतलब यही है। अगृही का मतलब यह नहीं कि जिसने घर छोड़ दिया है। अगृही का मतलब यह है जिसने पाया कि कोई घर है ही नहीं। इसे ठीक से समझ लेना।

संन्यासी को हम कहते हैं अगृही, गृहस्थ नहीं। लेकिन कौन है अगृही? जिसने घर छोड़ दिया। मगर उसका घर बाकी है; वह चाहे पहाड़ों में, चाहे हिमालय में चला जाए, जिस घर को छोड़ा, वह अभी उसका घर है। अगृही का मतलब है जिसने पाया कि घर तो कहीं है ही नहीं, कोई घर ऐसा नहीं है। संन्यासी का मतलब यह नहीं जिसने पत्नी का त्याग किया। संन्यासी का मतलब है कि जिसने पाया कि पत्नी कहाँ है? संन्यासी का मतलब यह नहीं कि जिसने साथी छोड़ दिये हैं। संन्यासी का मतलब है जिसने पाया कि साथी कहाँ हैं? खोजा और पाया कि साथी तो कहीं भी नहीं है कोई, बिल्कुल अकेला हूँ। इन दोनों बातों में बुनियादी भेद है। पहले में हम कुछ पकड़ कर छोड़ने की कोशिश कर रहे हैं। दूसरे में हम पाते हैं कि पकड़ का उपाय ही नहीं है, किसको पकड़ें, कहाँ पकड़ने जाएँ।

तो महावीर कुछ त्याग नहीं रहे हैं। जो उनका नहीं है, वह दिखाई पड़ गया है। इसलिए कोई पकड़ नहीं है। इसलिए यह कहना बिल्कुल व्यर्थ की बात है कि वह सब छोड़ कर जा रहे हैं। वह जानकर जा रहे हैं कि कुछ भी उनका नहीं है। और अगर हम इस बात को समझ लेंगे तो महावीर के बाबत समस्त त्याग के बाबत हमारी दृष्टि ही दूसरी हो जाएगी। तब हम लोगों को यह न समझाएँगे कि तुम छोड़ो, तुम त्याग करो। हम लोगों को समझाएँगे कि तुम देखो, तुम्हारा क्या है? तुम्हारा है कुछ?

एक सम्राट् था इब्राहीम। उसके द्वार पर एक संन्यासी सुबह से ही शोर गुल मचा रहा है। और पहरेदार से कहता है: मुझे भीतर जाने दो, मैं इस

सराय में ठहरना चाहता हूँ। और पहरेदार कहता है : तुम पागल हो गए हो, संन्यासी हो कि पागल हो। यह सराय नहीं, सम्राट् का महल है, उनका निवास-स्थान है। तो वह कहता है कि फिर मुझे उसी सम्राट् से बात करनी है। क्योंकि हम तो सराय समझ कर यहाँ आए हैं और ठहरना चाहते हैं। वह धक्का देकर भी चला जाता है। सम्राट् भी आवाज सुन रहा है, सब बातें सुन रहा है और उससे कहता है : तुम कैसे आदमी हो, यह मेरा निजी महल है। मेरा निवास-स्थान है। यह सराय नहीं, सराय दूसरी जगह है। वह संन्यासी कहता है : मैं समझा कि पहरेदार ही नासमझ है; आप भी नासमझ हैं। पहरेदार क्षमा के योग्य है। आखिर वह पहरेदार ही है। आपको भी यही ख्याल है कि यह आपका निवास-स्थान है, यह आपका घर है। सम्राट् ने कहा : ख्याल ? यह मेरा है। ख्याल नहीं है यह मेरा। यह मेरा है ही। संन्यासी ने कहा : बड़ी मुश्किल में पड़ गया मैं। कुछ दो बार दस साल पहले मैं आया था। तब भी झंझट हो गई थी। और मैंने कहा था कि इस सराय में ठहर जाऊँ। तब तुम्हारी जगह एक दूसरा आदमी बैठा हुआ था और वह कहता था : यह मेरा ही महल है। यह मकान मेरा है। तो उस इब्राहिम ने कहा : वह मेरे पिता थे। उनका अब देहावसान हो गया। उस फकीर ने कहा मैं उनके पहले भी आया था, तब एक और बूढ़े को पाया था। वह भी इसी जिद् में था कि यह मेरा महल है। जब यहाँ कई बार मकान के मालिक बदल जाते हैं तो इसको सराय कहना चाहिए या निवास ? और मैं फिर आऊँगा कभी। पक्का है कि तुम मिलोगे ? वायदा करते हो ? तुम न मिले तो फिर बड़ी दिक्कत हो जाएगी। फिर कोई मिलेगा कहेगा मेरा है। तो फिर मुझे ठहर ही जाने दो। यह सराय ही है, किसी का नहीं है। जैसे तुम ठहरे हो वैसे मैं भी ठहर सकता हूँ। इब्राहीम उठा सिंहासन से, उस फकीर के पैर छुए और कहा, तुम ठहरो लेकिन अब मैं जाता हूँ। उसने कहा कहाँ जाते हो ? सम्राट् ने कहा कि मैं तो इस भ्रम में ठहरा हुआ था कि यह मेरा मकान है। अगर सराय हो गया तो बात खत्म हो गई। जो मैं ठहरा था इस वजह से कि यह मेरा है महल। अगर तुम कहते हो कि यह सराय है तो ठीक है, तुम ठहरो। मैं जाता हूँ। और वह सम्राट् छोड़कर चला गया। उस सम्राट् ने त्याग किया क्या ? नहीं। मकान नहीं था, सराय थी, यह दिखाई पड़ गया। बात खत्म हो गई। सराय का कोई त्याग करता है ? नहीं, सराय में ठहरता है और विदा हो जाता है।

ऐसा बोध महावीर जन्म के साथ लेकर पैदा हुए थे। ऐसा बोध हम चाहें तो हमें भी हो सकता है। और ऐसे बोध के लिए जो जरूरी है, वह सम्पत्ति का त्याग नहीं, सम्पत्ति के सत्य का अनुभव है। सम्पत्ति का त्याग, हो सकता है, उतना ही अज्ञानपूर्ण हो जितना सम्पत्ति का संग्रह था। इसलिए प्रश्न संग्रह और त्याग का नहीं, प्रश्न सत्य के अनुभव का है।

सम्पत्ति क्या है? है कुछ मेरा, यह बोध त्याग बनता है, ऐसा त्याग किया नहीं जाता। इसलिए ऐसे त्याग के पीछे कर्त्ता का भाव इकट्ठा नहीं होता और जिस कर्म के पीछे कर्त्ता का भाव इकट्ठा नहीं होता उस कर्म से कोई बन्धन पैदा नहीं होता। और जिस कर्म से कर्त्ता का भाव पैदा होता है वह कर्म बन्धन का कारण हो जाता है। यानी कर्म कभी नहीं बांधता। कर्म के साथ कर्त्ता का भाव जुड़ा हो तो वह बांधता है। और कर्ता का जो भाव है वही हमारा कारागृह, अहंकार है। महावीर से अगर कोई कहे कि यह तुमने त्याग किया तो वह हंसेंगे, कहेंगे किसका त्याग? जो मेरा नहीं था, वह नहीं था। यह मैंने जान लिया। त्याग कैसे करूं? त्याग दोहरी भूल है—भोग की दोहरी भूल। भोग पीछा नहीं छोड़ रहा है।

तो पहली बात यह समझ लें कि महावीर जैसे व्यक्ति को त्यागी समझने की भूल कभी नहीं करनी चाहिए। सिर्फ अज्ञानी त्यागी हो सकते हैं; ज्ञानी कभी त्यागी नहीं होते। ज्ञानी इसलिए त्यागी नहीं होते कि ज्ञान ही त्याग है। उसे त्यागी होना ही नहीं पड़ता। उसके लिए कोई प्रयास, कोई श्रम नहीं उठाना पड़ता। अज्ञानी को त्याग करना पड़ता है, श्रम लेना पड़ता है, संकल्प बांधना पड़ता है, साधना करनी पड़ती है। अज्ञानी के लिए त्याग एक कर्म है। और इसलिए अज्ञानी का जब त्याग होता है तो अज्ञानी 'त्याग किया' ऐसे कर्त्ता का निर्माण कर लेता है। यह कर्त्ता उसका पीछा करता है। और यही कर्त्ता गहरे में हमारा परिग्रह है। सम्पत्ति हमारा परिग्रह नहीं है। जो कहता है 'मैंने किया' वही हमारा परिग्रह है।

कभी आपने सोचा? रात आप सपना देखते हैं कि नींद में आप एक आदमी की हत्या करते हैं। सुबह आप उठे और आपको याद आया कि आपने सपने में एक आदमी की हत्या कर दी है। फिर क्या आप ऐसा कहते हैं कि यह हत्या मैंने की? चूंकि, ऐसा नहीं कहते, इसलिए कोई पश्चात्ताप भी नहीं। आप सुबह बिल्कुल हल्के फुल्के हैं। एक आदमी की हत्या की है रात और सुबह आप मस्त हैं।

क्योंकि स्वप्न में आप दृष्टा रहे हैं, कर्त्ता नहीं हो पाए। सुबह आप जानते हैं सपना देखा था। इसलिए रात हत्या कर दी है, तब से सुबह से हाथ पैर नहीं धो रहे हैं, पछता नहीं रहे हैं और घबरा भी नहीं रहे हैं कि पाप हो गया। आप जानते हैं कि देखा था सपना ही। हो सकता है सपने में आप संन्यासी हो गए हों, सब त्याग कर दिया हो लेकिन सुबह आप हँसते हैं क्योंकि आप द्रष्टा हो गए हैं। हो सकता है सपने में जब सो रहे हों तो हत्या करके भागे हो, छाती धड़क गई हो, पसीना छूट गया हो, छिप गए हों कि अब फँसे, अब फँसे। और हो सकता है कि सपने में जब त्याग किया हो तो अकड़ कर चले हों, फूल-मालाएँ पहनी हों रास्ते पर जुलूस निकले हों, स्वागत-सत्कार हुआ हो और अकड़ कर समझा हो कि हाँ, मैंने सब कुछ त्याग कर दिया लेकिन सुबह जाग कर आप कहते हैं कि सपना था, मतलब कि मैं द्रष्टा था।

अब इस बात को ठीक से समझ लेना कि जिस चीज के हम द्रष्टा हो जाते हैं, वह सपना हो जाती है। और जिस चीज के हम कर्ता हो जाते हैं वह सत्य हो जाती है चाहे वह सपना ही हो। जब हम कर्त्ता हो जाते हैं सपने में तो वह सत्य हो जाता है सपना। और चाहे जीवन सत्य ही क्यों न हो जब हम द्रष्टा हो जाते हैं तो वह सपना हो जाता है। यानी सपने को अगर सत्य बनाना हो तो प्रक्रिया यह है कि आप द्रष्टा भर मत हों, आप कर्त्ता हों तब सपना बिल्कुल सत्य हो जाएगा। और ठीक इससे उल्टी प्रक्रिया यह है कि आप जिसको सत्य कहते हैं, उसके द्रष्टा होना, कर्ता भर मत बनना, तब सत्य एकदम सपना हो जाएगा।

तो महावीर छोड़ कर इसलिए नहीं जा रहे हैं कि सपना था और छोड़ना है और छोड़ रहे हैं। नहीं, एक सपना टूट गया है, और द्रष्टा हो गए हैं और बाहर हो गए हैं। अब कोई लौट कर उनसे कहे कि कितनी सम्पदा थी जो छोड़ी थी तो वह कहेंगे कि सपने की भी कोई सम्पदा होती है, सपने में कोई त्याग होता है। भोग भी सपना है, त्याग भी सपना है क्योंकि दोनों हालत में कर्त्ता मौजूद है। इसलिए ज्ञानी न त्यागी है, न भोगी है, सिर्फ द्रष्टा रह गया है। और इसलिए जो भी द्रष्टा रह जाए उसके जीवन से भोग और त्याग दोनों एक साथ बिदा हो जाते हैं। ऐसा नहीं कि त्याग बच रहा है और भोग बिदा हो जाता है। भोग और त्याग एक ही सिक्के के दो पहलू थे, वह दीख जाता है। दूसरी दृष्टि से देखें तो इसी का अर्थ ही वीतरागता हुआ। अगर मैं कर्ता नहीं हूँ तो वीतरागता फलित हो जाएगी। और अगर मैं कर्ता हूँ तो राग फलित

होगा या विराग फलित होगा; भोग होगा या त्याग होगा; दुःख होगा, या सुख होगा। द्वंद्व में सब कुछ होगा लेकिन निर्द्वन्द्व कुछ भी नहीं हो पाएगा।

महावीर त्याग करते हैं, ऐसी धारणा है। जो उनको मानते हैं, उनके अनुयायी हैं, उनके पीछे चलते हैं उन सबकी ऐसी धारणा है कि वह त्याग करते हैं, महात्यागी हैं, और मुझे लगता है इसमें वे केवल अपनी भोगवृत्ति की खबर दे रहे हैं। महावीर का उन्हें कुछ भी पता नहीं। और यह सवाल महावीर का नहीं। दुनिया में जब भी किसी व्यक्ति से त्याग हुआ है तो वैसे ही हुआ है।

मैंने सुना है एक फकीर थे। रात एक सपना देखा उन्होंने और सुबह जब उठे तब उनका एक शिष्य उनके पास से गुजरा। तब उन्होंने कहा—सुनो जरा! मैंने एक सपना देखा है। क्या तुम उसकी व्याख्या कर सकोगे? उसने कहा: ठहरिए मैं अभी व्याख्या किए देता हूँ। वह शिष्य गया और पानी का भरा हुआ घड़ा उठा लाया और कहा: जरा अपना मुँह धो डालिए। तो गुरु खूब हँसने लगे। तब एक दूसरा शिष्य गुजरा। उसने कहा: सुनो एक मैंने बहुत अद्‌भुत सपना देखा है। और इस नासमझ को कहा कि तुम व्याख्या करो तो यह पानी का घड़ा ले आया है और कहता है कि मुँह धो डालिए। तुम व्याख्या करोगे? उसने कहा: एक दो क्षण रुकिए। मैं अभी आया। वह एक कप में चाय ले आया और कहा: अगर मुँह धो लिया हो तो थोड़ी चाय पी लीजिए। तो गुरु खूब हँसे और वह कहता है कि अगर आज यह घड़ा न लाया होता तो मैंने इसको कान पकड़ कर बाहर कर दिया होता। और अगर यह चाय लेकर न आ गया होता तो इस आश्रम में ठहरने का उपाय न था। सपने की कहीं व्याख्या करनी होती है? सपना-सपना दिख गया, बात खत्म हो गई। सपने की कहीं व्याख्या करनी होती है? तो ठीक ही किया। पानी ले आया। उससे हाथ, मुँह धो लिया। बात खत्म हो गई। अब क्या मामला है? अब हाथ मुँह धो डालना ही काफी है। अब और कोई व्याख्या की जरूरत नहीं है। सपने की कोई व्याख्या नहीं करनी होती। व्याख्या सदा सत्य की होती है, सपने की नहीं। सपने की क्या व्याख्या? सपने का बोध त्याग है। सपने का बोध—जो जीवन हम जी रहे हैं वह एक सपने की भाँति है— इस बात का बोध। फिर कहाँ, कुछ पकड़ना है?

मैंने सुना है एक सम्राट् का बेटा मर रहा है। वह उसकी खाट के पास बैठा है। चार दिन, पाँच दिन, दस दिन बीत गए हैं। और बेटा रोज डूबता जा रहा है। और एक ही लड़का है और बचने की कोई उम्मीद नहीं। वही

आशा थी बुढ़ापे की, वही भविष्य था। वह सम्राट् न सो पाता है, न जग पाता है, बेचैन है, परेशान है। और चिकित्सकों ने कह दिया है कि आज रात बेटे के बचने की कोई उम्मीद नहीं। सम्राट् उसी के पास कुर्सी रखे बैठा है। कब स्वांस छूट जाए कुछ पता नहीं। जितनी देर स्वांस रह जाए उतना ही अच्छा है। कई दिन का जगा है। उस रात दो बजे सम्राट् की नींद लग गई है। और उसने सपना देखा है कि उसके बारह बेटे हैं। इतने सुन्दर, इतने स्वस्थ जैसे कभी देखे नहीं थे, जैसे कभी किसी के हुए नहीं। बड़ा चक्रवर्ती सम्राट् है; सारी पृथ्वी का राजा है। अद्‌भुत स्फटिक के महल हैं, स्वर्ण पथ हैं, सुन्दर नारियाँ हैं, सुन्दर पत्नियाँ हैं। सब सुख है। कोई कमी नहीं। और तभी वह बेटा जो बीमार पड़ा है, मर गया है। राजा की पत्नी चिल्ला कर रोई है, राजा चुपचाप बैठा रह गया है। थोड़ी देर चुप रहा है; फिर हँसने लगा है, फिर रोने लगा है, फिर हँसने लगा है। उसकी पत्नी ने कहा : आपको क्या हो गया है। आप पागल तो नहीं हो गए। उसने कहा पागल ? कह नहीं सकता। पहले पागल था कि अब पागल हो गया हूँ। मैं बड़ी मुश्किल में पड़ गया हूँ। रानी ने कहा—मुश्किल की क्या बात है। बेटा मर गया है, यह बड़ी मुश्किल है। राजा ने कहा—अब यह सवाल नहीं रहा। अब मैं बड़ी दिक्कत में हूँ कि मेरे बारह बेटे मर गए, उनके लिए रोऊँ कि मेरा एक बेटा मर गया, उसके लिए रोऊँ ? मैं रोऊँ किसके लिए ? या तेरह के लिए इकठ्ठा रोऊँ ? तेरह के लिए इकट्ठा रोना बड़ा मुश्किल है क्योंकि तेरह होते नहीं। वे बारह एक सपने के थे और जब मैं उस सपने में था तब वह था ही नहीं लड़का। कहाँ गया था मुझे पता नहीं। खो गया था। और जब जग गया हूँ तो यह एक ही बचा है और वे बारह खो गए हैं। और जैसे उन बारह के साथ यह एक भूल गया था, वैसे इस एक के साथ वे बारह भूल गए हैं। क्या यह सच है, क्या झूठ है, मैं इस मुश्किल में पड़ गया हूँ। रोऊँ तो किसके लिए ? उन बारह के लिए रोऊँ, या इस एक के लिए या तेरह के लिए ? और तेरह का जोड़ नहीं बनता। या फिर किसी के लिए न रोऊँ क्योंकि एक सपना बनता है, एक छूट जाता है; दूसरा बनता है। दूसरा छूट जाता है, तीसरा बनता है, तीसरा छूट जाता है। रोऊँ किसके लिए ? अब पागल नहीं हूँ।

तो इस राजा को हम यह न कहेंगे कि उसने बेटे का मोह त्याग दिया। नहीं, यह बात ही व्यर्थ हो गई अब। अब हम यह न कहेंगे कि वह अनासक्त हो गया, निर्मोही हो गया। नहीं, हम यह कुछ भी न कहेंगे। अब हम सिर्फ इतना

ही कहेंगे कि बेटा सत्य न रहा। निर्मोही या मोही होने के लिए भी बेटे का सत्य होना जरूरी है। अब हम इतना ही कहेंगे कि बेटा एक सपना हो गया। बात खत्म हो गई। अब यह राजा को बेटे का मोह छूट गया—ऐसा नहीं। बेटा सत्य ही न रहा। और, अगर बेटा सत्य न रहे तो क्या बाप सत्य रह जाएगा। इससे हम और थोड़ा भीतर जाएँगे तो पता चल जाएगा कि जब बेटा असत्य हो गया तो बाप की क्या सत्यता रह जाएगी। उन बारह बेटों के साथ वह बाप भी तो मर गया जो सपने में था। वह अब कहाँ है? इस बेटे के साथ इसका बाप भी मर गया वह अब कहाँ है?

अगर जीवन का एक कोना भी सपना हो जाए तो आप फिर पूरे जीवन को सपना होने से न बचा सकेंगे क्योंकि सब परस्पर सम्बन्धित है। अगर बेटा असत्य है तो बाप भी असत्य हो गया है। फिर सत्य क्या बचेगा? सब सम्बन्ध असत्य हो गए। अगर जीवन का एक कोना भी दिखने लगे कि सपना है तो वह सपना पूरे जीवन पर फैल जाएगा। और सपने का एक कोना दिखने लगे कि यह सत्य है तो वह सारे जीवन पर फैल जाएगा। यहाँ जिन्दगी के जो अनुभव हैं समय हैं, खण्ड-खण्ड नहीं हैं। ऐसा नहीं कह सकता कोई आदमी कि एक चीज भर मेरे लिए जीवन में सपना होगी, बाकी सब सत्य है। अगर ऐसा कोई आदमी कहता है तो वह गल्ती में पड़ा हुआ है। उसे कुछ सपना भी नहीं हुआ है। सपना होगा कुछ तो पूरा सपना हो जाता है। और सत्य होगा कुछ तो पूरा सत्य रहता है। सपने और सत्य के बीच कोई समझौता नहीं हो सकता। बारह बेटे और एक बेटे को जोड़ा नहीं जा सकता, तेरह नहीं हो सकते।

महावीर को ऐसा जो बोध है, वह बोध उनका त्याग बन गया है। हमें ऐसा दिखा है क्योंकि हम भोगी हैं और सिर्फ त्याग की भाषा समझ सकते हैं। इसलिए हैरानी होगी कि त्यागियों के पास भोगी इकट्ठे हो जाते हैं क्योंकि सिर्फ भोगी ही त्याग को पकड़ पाते हैं। और वह अद्भुत बात है कि महावीर जैसे अपरिग्रही के लिए, अगृही के लिए, महावीर जैसे सब कुछ त्याग में खड़े व्यक्ति के पीछे जो वर्ग इकट्ठा हुआ है वह अत्यन्त भोगी, अत्यन्त परिग्रही है। महावीर के पीछे जो जैनों की परम्परा खड़ी हुई उन जैनों से ज्यादा धनी, परिग्रही, सब इकट्ठा करने वाले लोग इस मुल्क में दूसरे नहीं। यह थोड़ा विचारणीय है। इसके पीछे अर्थ है कि त्याग की भाषा भोगी को बहुत पकड़ती है। और भोगी आस-पास इकट्ठा खड़ा हो जाता है, और एक उल्टा जाल बन जाता है और, यह सदा हुआ है। अब जीसस जैसे आदमी के पीछे, जो कहता है कि जो तुम्हारे

एक गाल पर चांटा मारे, दूसरा कर देना, जो कहता है कोई तुम्हारा कोट छीने तो कमीज भी दे देना, उस आदमी के पीछे जो लोग इकट्ठे हुए, उन्होंने जितनी तलवार चलाई इस जमीन पर, और जितना खून किया उसका हिसाब लगाना मुश्किल है।

असल में जो बहुत घृणा से भरे हैं, उन्हें प्रेम की भाषा एकदम पकड़ लेती है। वह उनकी कमी है। वह उसे पूरा कर लेना चाहते हैं। भोगी त्याग से अपने को पूरा कर लेता है। खुद नहीं त्याग कर सकता, कोई बात नहीं; त्यागी को पकड़ लेता है। प्रेम की जिनके मन में कमी है वे कुछ नहीं कह सकते खुद, वे एक प्रेम का संदेश देने वाले को पकड़ लेते हैं। सारी दुनिया में सदा ऐसा हुआ है। अनुयायी अक्सर गुरु से उल्टे होते हैं क्योंकि उल्टी चीजें लोगों को आकर्षित करती हैं, पास बुला लेती हैं। और वे जो उल्टे लोग हैं ये जो भी रेकार्ड स्थापित करते हैं, वह एकदम गलत होता है क्योंकि वह इनका सूचक होता है।

मन का जो द्वन्द्व है, और उल्टा होना है, उसमें एक दो बातें और समझ लेनी जरूरी हैं। हम सब के मन दो खण्डों में बँटे हुए हैं। चेतन और अचेतन में बँटे हुए हैं—एक मन जिसे हम जानते हैं, एक मन जिसे हम खुद भी नहीं जानते। और, मन के रहस्यों में सबसे कोमतो रहस्य यह है कि जो हमारे चेतन मन में होता है उससे ठीक उल्टा हमारे अचेतन मन में होता है। अगर चेतन मन में कोई आदमी बहुत विनम्र है तो अचेतन मन में बहुत अहंकारी होगा। यानी चेतन मन से ठीक उल्टा उसका अचेतन होगा। अचेतन उल्टा ही होता है, और हमें कोई पता नहीं होता कि हमारा ही मन का बड़ा हिस्सा पीछे छिपा हुआ हमसे उल्टा है। और वह अचेतन ही इसलिए हो जाता है कि हम उल्टे हिस्से को दबाते हैं और वह पीछे अँधेरे में छिपता चला जाता है। जो हमें प्रीतिकर है उसे हम चेतन में बचा लेते हैं, जो अप्रीतिकर है उसे पीछे हटा देते हैं। यह जो पीछे हमारे मन बैठा हुआ है, यह ठीक उल्टा होता है जैसे हम ऊपर से दिखाई पड़ते हैं उससे। ऊपर से जो आदमी त्याग की प्रशंसा कर रहा हो, उसके अचेतन में भोग की आकांक्षा होगी। अगर किसी आदमी ने जानकर त्याग किया, चेष्टा करके त्याग किया तो त्याग करने से ही वह भोग की आकांक्षा में लीन हो जाएगा क्योंकि वह पीछे छिपा हुआ मन अपनी माँग शुरू कर देगा। और इसलिए आप कोई भी काम करके देखें, हमेशा मन उल्टी बातें करता रहेगा। अगर कोई आपको गाली दे आप झगड़ा करके लड़ लें तो फिर लौट कर पाएँगे कि

पश्चाताप हो रहा है 'ठीक नहीं किया, यह बुरा किया कि गाली का जवाब गाली से दिया, और क्रोध किया।' लेकिन आप ऐसा मत सोचना कि आपने इससे उल्टा किया होता तो कोई फर्क पड़ने वाला था। अगर किसी ने गाली दी होती आप बिना गाली दिए चुपचाप घर लौट आए होते तो भी मन कहता कि बहुत बुरा किया; ऐसे चुपचाप लौट आना ठीक नहीं किया; जब उसने गाली दी है तो अन्याय को सहना उचित है क्या? आप जो करके आएँगे, मन उल्टे का सुझाव पीछे से देना शुरू करेगा। आप जो निर्णय लेंगे उससे उल्टा निर्णय भी आपके मन में संगृहीत होगा।

गुरजिएफ एक फकीर था। जब भी कोई साधक उसके पास आता वह आठ दिन उसको खिलाता-पिलाता। वह इतनी शराब पिलाता जिसका कोई हिसाब नहीं। उसकी बड़ी बदनामी हो गई इसलिए कि कोई उसके पास जाए तो वह पहले उसे शराब पिलाएगा। उसका यह नियम था कि जो शराब पीने से इन्कार करे उसे वह सीमा के भीतर न घुसने देता, न अपने पास आने देता। आठ दस दिन रात दो-दो बज जाते, तीन-तीन बज जाते। वह शराब पर शराब पिलाता अपने हाथ से। आठ-दस दिन में जब वह आदमी बार-बार बेहोश हो जाता तब गुरजिएफ उसका अध्ययन करता कि वह आदमी है कैसा? क्योंकि वह जो ऊपर से दिख रहा है, उससे ठीक उल्टा भीतर बैठा हुआ है। वह कहता है कि मैं तुम्हारे झूठे चेहरे के साथ मेहनत नहीं करूँगा। तुम्हारे भीतर क्या है उसे मुझे जान लेना जरूरी है। अब जो आदमी ऊपर से बड़ी अच्छी-अच्छी बातें करता था, शराब पीकर एकदम गालियाँ बक रहा है। यह गालियाँ बकने वाला आदमी भीतर बैठा है। कभी आपने सोचा कि शराब गालियाँ बना सकती है। शराब के पास कोई ताकत नहीं कि गालियों को निर्मित कर ले। गालियाँ भीतर दबा लीं और सद्‌वचन ऊपर इकट्ठे कर लिए हैं। जब शराब पीते हैं तब चेतन मन बेहोश हो जाता है। अब वह जो भीतर है निकलना शुरू हो जाता है।

यह बड़े आश्चर्य की बात है। अगर साधु-सन्तों को शराब पिलाई जाए तो उसके भीतर से हत्यारे, व्यभिचारी निकलेंगे और अगर व्यभिचारियों को शराब पिलाई जाए तो उसके भीतर से साधु-सन्तों की झलक भी मिल सकती है। जो आदमी पाप कर रहा है, वह निरन्तर आकांक्षा कर रहा है कब छुटकारा होगा? कैसे इससे बाहर निकलूँगा। यह सब क्या हो रहा है? इस सबसे मैं कैसे बाहर जाऊँ?

यह जो बात है कि हम अपने से उल्टा अपने भीतर इकट्ठा कर लेते हैं, अगर यह हमारे ख्याल में हो तो हम महावीर को भूल कर भी त्यागी नहीं कहेंगे क्योंकि महावीर जैसा व्यक्तित्व अविभाज्य होता है। उसके भीतर दो खण्ड नहीं होते। एक ही खण्ड होता है। अगर त्याग करेगा तो पूरा। उसमें दो हिस्से नहीं होते। वह जो भी करेगा, उसमें पूरा मौजूद होगा। जैसे हम समुद्र को कहीं से भी चखें वह खारा होगा। ऐसे महावीर जैसे व्यक्ति को हम कहीं से भी पकड़े वह होगा जैसा है। हम ऐसे नहीं हैं। हमें अलग-अलग कोणों से पकड़ा जाए तो हममें से अलग-अलग आदमी निकलेंगे। मन्दिर में हममें से एक आदमी निकलता है; शराबखाने से हममें से दूसरा आदमी निकलता है; मित्र के साथ तीसरा निकलता है; दुश्मन के साथ चौथा निकलता है; दुकान पर पाँचवाँ निकलता है; ताश खेलने के वक्त छठवाँ निकलता है। आदमी के भीतर का हिसाब नहीं। हमारे कितने चेहरे हैं जो हम वक्त-वक्त पर निकाल देते हैं?

ठीक अर्थों में त्याग उसी व्यक्ति से फलित हो सकता है जिसका व्यक्तित्व पूरा अखण्ड हो गया हो। ऐसे व्यक्ति का भोग भी त्याग ही है क्योंकि ऐसे व्यक्ति में दो हिस्से नहीं हैं; उल्टे हिस्से नहीं हैं इस व्यक्ति के भीतर। इसलिए उसमें दूसरे व्यक्तित्व के उदय होने की कभी कोई सम्भावना नहीं है। लेकिन हमने तो द्वन्द्व की भाषा में सब सोचा है। दो में तोड़े बिना हम सोच नहीं सकते। तब हम कहेंगे कि महावीर त्यागी हैं, भोगी नहीं; हम कहेंगे क्षमावान् हैं, क्रोधी नहीं; हम कहेंगे अहिंसक हैं, हिंसक नहीं; हम कहेंगे दयालु हैं, क्रूर नहीं। हम दो हिस्सों में तोड़-तोड़ कर चलेंगे। और तब हम महावीर जैसे व्यक्ति को कभी भी नहीं समझ पाएँगे।

अखण्ड व्यक्ति में द्वन्द्व विलीन हो जाता है, न वहाँ त्याग है, न वहाँ भोग। वहाँ एक नई घटना घटी है जिसके लिए शब्द खोजना कठिन है। यह तो हम उसे त्यागपूर्ण भोग कहें या भोगपूर्ण त्याग कहें। एक ऐसी घटना घटी है जिसे एक शब्द से चुनकर नहीं पकड़ा जा सकता। या तो हम उसे क्रोधपूर्ण क्षमा कहें या क्षमापूर्ण क्रोध कहें। दो टुकड़ों को अलग करके नहीं कहा जा सकता। और क्रोधपूर्ण क्षमा का क्या मतलब है? क्षमापूर्ण क्रोध का क्या मतलब है? कोई मतलब नहीं होता, वह अर्थहीन है। जिसे हम कहें मित्रता पूर्ण शत्रु अथवा शत्रुतापूर्ण मित्र—इसका क्या मतलब होता है? इसका कोई मतलब नहीं होगा। या शत्रु का मतलब होता है या मित्र का मतलब होता है इन दोनों को मिला देने से कोई मतलब नहीं होता। इसलिए ठीक रास्ता

यही है कि हम दोनों का निषेध कर दें। वहाँ दोनों नहीं हैं। न वहाँ त्याग है, न भोग। लेकिन हमारा मन जानना चाहता है कि वहाँ है क्या? वहाँ कुछ तो होना चाहिए। वहाँ है क्या? न वहाँ घृणा है, न प्रेम; न वहाँ हिंसा है, न अहिंसा। फिर वहाँ है क्या? चूँकि हम समझाने में मुश्किल हो जाएँगे कि वहाँ क्या है इसलिए हमने यह ठीक समझा है कि जो बुरा है, उसे इन्कार कर दो, जो भला है उसे स्थापित कर दो। कह दो महावीर भोगी नहीं हैं, त्यागी हैं; हिंसक नहीं, अहिंसक हैं; क्रोधी नहीं, क्षमावान् हैं। लेकिन द्वन्द्व को बचा लो। मगर हमने कभी सोचा ही नहीं कि जो आदमी क्रोधी नहीं है वह क्षमा कैसे करेगा? जिसे कभी क्रोध नहीं हुआ वह क्षमा कैसे करेगा? किस को क्षमा करेगा? क्षमा के पहले क्रोध अनिवार्य है। और जो आदमी भोगी नहीं है, वह त्यागी कैसे हो सकता है? भोगी ही त्यागी हो सकता है क्योंकि वे दोनों जुड़े हैं साथ-साथ इकट्ठे। लेकिन चूंकि हमारी कल्पना में यह नहीं आता, इसलिए हम एक खण्ड को हटाकर दूसरे को बचा लेना चाहते हैं। असल में वह हमारी आकांक्षा का सबूत है, महावीर के सत्य का नहीं। हम चाहते हैं कि हमारे भीतर क्रोध न हो, क्षमा हो; हिंसा न हो, अहिंसा हो; परिग्रह न हो, अपरिग्रह हो; बन्धन न हो, मोक्ष हो। यह हमारी चाहना है और हमारी चाहना बताती है कि क्या है? घृणा है—चाहते हैं हम प्रेम हो; हिंसा है—चाहते हैं अहिंसा हो। बन्धन है, चाहते हैं मुक्ति हो। हमारी चाह दो बातें बताती हैं। हमारी चाह का मतलब ही यही है। जो नहीं है, उसकी ही चाह होती है। हम हैं कुछ और चाहते ठीक उल्टे को ही हैं। इसी को हम थोप लेते हैं। जिन्हें हम आदर्श पुरुष बना लेते हैं, उन्हीं पर थोप देते हैं। और उस व्यक्ति को समझना मुश्किल हो जाता है। क्या यह सम्भव है कि एक व्यक्ति में दोनों न हों। इसमें कठिनाई क्या है कि एक व्यक्ति में न प्रेम हो, न घृणा हो; न भोग हो न त्याग हो। यह जरूरी क्यों कि इनमें दो में से कोई एक हो ही। लेकिन हमारी धारणा में आना मुश्किल हो जाएगा कि ऐसा आदमी कैसा होगा जिसमें दोनों नहीं हैं। और जिसमें दोनों नहीं हैं वही अखंड हो सकता है, नहीं तो खंड-खंड होगा। और जिसमें दोनों नहीं हैं वही मुक्त हो सकता है क्योंकि द्वन्द्व में कोई मुक्ति कभी सम्भव नहीं। इसलिए महावीर जैसा व्यक्ति बेबूझ हो जाता है; हमारी पकड़ के बाहर हो जाता है।

चीन में दस चित्र हैं जो किसी अद्भुत चित्रकार ने बनाये हैं। पहले चित्र में घोड़े पर सवार एक आदमी जंगल की ओर जा रहा है। लेकिन कुछ बात

ऐसी है कि आदमी कहीं और जाना चाहता है, घोड़ा कहीं और जाना चाहता है। इसलिए बड़ा तनाव है। पर घोड़ा वहाँ कैसे जाना चाहे जहाँ आदमी जाना चाहे। घोड़ा, घोड़ा है, आदमी आदमी है। और आदमी को घोड़ा कैसे समझे और घोड़े को आदमी कैसे समझे ? घोड़ा किसी और रास्ते पर जाना चाहता है और आदमी किसी और रास्ते पर जाना चाहता है। तो बड़ी तनाव में दोनों उस चित्र में हैं। दूसरे चित्र में घोड़ा आनमी को पटक कर भाग गया है। असल में आदमी ने घोड़े पर चढ़ने की कोशिश की तो घोड़ा आदमी को पटकेगा। यानी जिस पर हम चढ़ेंगे वह हमको पटकेगा। आदमी को पटककर घोड़ा भाग गया है। आदमी पड़ा है परेशान और घोड़ा भाग गया है। तीसरे चित्र में आदमी घोड़े को खोजने निकला है। घोड़े का कहीं पता नहीं चल रहा। जंगल ही जंगल है। चौथे चित्र में घोड़े की पूँछ एक वृक्ष के पास दिखाई पड़ती है, सिर्फ पूँछ। पांचवें चित्र में आदमी पास पहुँच गया है, पूरा का पूरा घोड़ा दिखाई पड़ता है। घोड़े की पूँछ पकड़ ली है। और सातवें चित्र में आदमी फिर घोड़े पर सवार हो गया है और आठवें चित्र में वह घोड़े पर सवार होकर घर की ओर वापस लौट रहा है। नौवें चित्र में घोड़े को बांध दिया है। आदमी उसके पास बैठा है। घोड़ा बिल्कुल शान्त है, आदमी बिल्कुल शान्त है। दसवें चित्र में दोनों खो गए हैं, सिर्फ जंगल रह गया है, न घोड़ा है न आदमी। ये दस पूरी साधना के चित्र हैं। लेकिन आखिरी चित्र में दोनों खो गए हैं। लड़ाई भी खो गई है, द्वन्द्व खो गया है। नौ चित्रों में बहुत तरह से लड़ाई चलती रही है। जब तक दोनों हैं लड़ाई चलती रही है, कुछ न कुछ उपद्रव होता रहा है। लेकिन, आखिरी चित्र में दोनों ही खो गए हैं। अब न घोड़ा है, न घोड़े का मालिक, कोई भी नहीं है। खाली चित्र रह गया है।

इसी प्रकार जिन्दगी में द्वन्द्व की लड़ाई है। क्रोध से हम लड़ रहे हैं, घृणा से हम लड़ रहे हैं, हिन्सा से हम लड़ रहे हैं, भोग से हम लड़ रहे हैं। जिससे हम लड़ रहे हैं, उस पर सवार होने की कोशिश कर रहे हैं। और जिस पर हम सवार होने की कोशिश कर रहे हैं, वह हमें पटके दे रहा है, बार-बार पटक रहा है। भोगी त्यागी होने की कोशिश करता है, रोज-रोज पटकें खा जाता है, फिर गिर जाता है, फिर परेशान होता है।

एक घर में मैं मेहमान था कलकत्ता में। उस घर के बूढ़े आदमी ने कहा कि मैंने ब्रह्मचर्य की जीवन में तीन बार प्रतिज्ञा की। बहुत व्यंग्यपूर्ण बात थी क्योंकि ब्रह्मचर्य की तीन बार प्रतिज्ञा लेनी पड़े तो ब्रह्मचर्य है कैसा

क्योंकि एक बार लेनी चाहिए प्रतिज्ञा ब्रह्मचर्य की। मैं खूब हँसने लगा लेकिन मेरे बगल का आदमी नहीं समझ सका जो वहाँ पास बैठा था। उसने कहा : आपने बड़ी साधना की। वह बूढ़ा भी हँसने लगा। उस आदमी ने पूछा : फिर तीन बार ही ली, चौथी बार नहीं ली। उस बूढ़े आदमी ने कहा कि तुम यह मत सोचना कि मैं तीसरी बार सफल हो गया। नहीं, तीन बार असफल होकर फिर मैंने हिम्मत ही छोड़ दी। जब मैंने बिल्कुल ही छोड़ दिया ख्याल कि लड़ना ही नहीं है क्योंकि तीन दफा हार चुका, बहुत हो चुका तो मैं एकदम हैरान हुआ कि मुझ पर सेक्स की इतनी कम पकड़ कभी भी नहीं थी जिस दिन मैंने यह तय किया कि अब लड़ना नहीं; जो है सो ठीक है। और मेरी पकड़ एकदम ढीली हो गई। और, मेरी पकड़ बड़ी जोर से थी क्योंकि मैं संकल्प कर रहा था, व्रत कर रहा था।

असल में व्रत, संयम, त्याग, संघर्ष—किससे कर रहे हैं हम? जिससे हम कर रहे हैं, उसको हमने मान लिया। जिससे हम लड़ने लगे, उसको हमने स्वीकृति दे दी। और, हम उस पर कभी बेमौके चढ़ भी जायेंगे तो कितनी देर चढ़े रहेंगे? अगर आप एक दुश्मन की छाती पर बैठ भी जाएँ, जिन्दगी भर तो नहीं बैठे रहेंगे। कभी तो उसकी छाती छोड़ेंगे? और दुश्मन, अगर कोई दूसरा होता तो अपने घर चला जाता। यह दुश्मन ऐसा नहीं कि दूसरा है, अपना ही हिस्सा है। जिस दिन आप छोड़ेंगे, वह वापस लौट कर खड़ा हो जाएगा। और एक अजीब बात है। किसको आप दबाते हैं? आपके ही दो हिस्से—आप ही दबाने वाले, आप ही दबने वाले। जिसे आप दबाते हैं वह तो विश्राम कर लेता है हिस्सा। और जो दबाता है वह थक जाता है। थोड़ी देर में उल्टा सिलसिला शुरू हो जाता है। इसलिए जिस चीज को आप दबायेंगे थोड़े दिन में आप पायेंगे कि आप उससे दबे हुए हैं। क्योंकि जो हिस्सा दब गया है वह विश्राम कर रहा है। और जो दबा रहा है उसको श्रम करना पड़ रहा है। श्रम करने वाला थकेगा, विश्राम करने वाला सबल हो जाएगा। इसलिए रोज उल्टा परिवर्तन होता है। लड़ेंगे तो हारेंगे; दबाएँगे तो गिरेंगे। लेकिन खोज बिल्कुल दूसरी बात है।

पहले चित्र में वह आदमी जबरदस्ती घोड़े पर सवार हो रहा है। दूसरे चित्र में वह खोज पर निकला है। खोज लड़ाई नहीं है। एक आदमी क्रोध से लड़ रहा है एक बात, और एक आदमी क्रोध की खोज में निकला है कि क्रोध

क्या है यह बिल्कुल दूसरी बात है। और जब वह खोज पर निकला है तब उसे पूँछ दिखाई पड़ गई है। थोड़ा सा दिखा है। फिर पूँछ के करीब और चला गया है। पूरा घोड़ा दिखाई पड़ गया है। फिर उसने घोड़े को पकड़ लिया है क्योंकि जिसे हम समझ लेते हैं फिर उससे लड़ना नहीं पड़ता है। उसे हम ऐसे ही सहज पकड़ लेते हैं क्योंकि वह आपका ही हिस्सा है। उससे लड़ना क्या है? वह अपना ही हाथ है। बाएँ को दाएँ हाथ से लड़ाएँ तो क्या फायदा होगा? वह घोड़े को लेकर घर की तरफ चल पड़ा है। उसने घोड़े को लाकर घोड़े को जगह बाँध दिया है। उसके पास चुपचाप बैठ गया है। वह लड़ नहीं रहा है, न सवार हो रहा है। अब कोई संघर्ष ही नहीं है। घोड़ा अपनी जगह है। चुपचाप दोनों अपनी जगह पर हैं। दसवें चित्र में दोनों विलीन हो गए हैं। क्रोध भी विलीन हो गया है, क्रोध से लड़ने वाला भी विलीन हो गया है। तब क्या रह गया है? एक खाली चित्र रह गया है। दसवाँ चित्र बहुत अद्‌भुत है। वह कोरा चित्र जब किसी को भेंट किए किसी ने तो उसने कहा : नौ तो ठीक हैं। दसवें चित्र की क्या जरूरत है? क्योंकि वह बिल्कुल खाली कैनवास का टुकड़ा है। तब उससे कहा गया कि दसवाँ ही सार्थक है। बाकी नौ तो सिर्फ तैयारी है। उसमें कुछ नहीं है। जो है इस दसवें में है। तब आदमी पूछता है लेकिन इसमें तो कुछ भी नहीं है। उस चेतना में कुछ भी नहीं है, सब खो गया। रिक्तता रह गई है; खाली आकाश रह गया है, शून्य रह गया है। कोई द्वन्द्व नहीं है, सब अखण्ड हो गया है। ऐसा अखण्ड व्यक्ति ही देने में समर्थ है। खण्डित व्यक्ति देने में समर्थ नहीं है। ऐसा अखंड व्यक्ति ही तीर्थंकर जैसी स्थिति में हो सकता है।

मेरा कहना है कि यह महावीर लेकर ही पैदा हुए थे और जो हमें दिखाई पड़ रहा है वह हमारी भ्रान्तियों का गट्ठर है। हम कभी चीजों के बहुत पास जाकर नहीं देखते, सदा दूर से देखते हैं, बहुत फासले से देखते हैं। हम चीजों को पास से देख भी नहीं सकते क्योंकि पास से देखना हो तो खुद ही गुजरना पड़े उनसे। इसके पहले देख भी नहीं सकते। यानी महावीर घर से कैसे गए, इसे हम कैसे देख सकते हैं? क्योंकि हम कभी अपने घर से गए ही नहीं। यह हमारे लिए देखना मुश्किल है। मुश्किल इसलिए है सिर्फ क्योंकि हम कभी पास से गुजरे ही नहीं किसी चीज के कि हम भी देख लेते। बहुत फासला है। कोई गुजरता है और हम देखते हैं, भूल हो जाती है। क्योंकि जब कोई गुजरता है तो केवल उसकी बाह्य व्यवस्था भर दिखाई पड़ती है। उसका भीतरी अनुभव

दिखाई नहीं पड़ता। और सब कथाएँ, जो भी लिखा गया है, वे एकदम बाहर से खींचे गए चित्र हैं। और बाहर से यही दिखाई पड़ता है कि महल था, महल छोड़ दिया; धन था, धन छोड़ दिया; पत्नी छोड़ दी; प्रियजन थे, निकट के रिश्तेदार थे, सब छोड़ दिये। यही दीखता है। यही दिख सकता है। तब त्याग की एक व्यवस्था हम खड़ी करेंगे और उस त्याग की व्यवस्था में बहुत से लोग छोड़ने की कोशिश करेंगे, मर जाएँगे और दिक्कत में पड़ जाएँगे। बहुत लोग यही कोशिश करेंगे कि छोड़ दें मकान को लेकिन मकान पीछा करेगा।

एक जैन मुनि थे। वे बीस वर्ष पहले अपनी पत्नी को छोड़कर गए थे। उनकी जीवन-कथा किसी ने लिखी तो वह उसे मेरे पास लाया। मैंने उल्टा पुल्टा कर उसे देखा तो उसमें मुझे एक बात पढ़ने को मिली—'बीस साल हो गए हैं, पत्नी को छोड़े, काशी में रहते हैं। पत्नी मरी है, तार आया है। उन्होंने तार पढ़कर कहा—'चलो झंझट छूटी।' उस जीवनकथा लिखने वाले ने लिखा है—'कैसा परमत्यागी व्यक्ति : कि पत्नी मरी तो केवल एक वाक्य मुख से निकला कि 'चलो झंझट छूटी' और कुछ भी न निकला।' वह लेखक खुद किताब लेकर आए थे, मैंने उनसे कहा, 'किताब बन्द करो; किसी को पता न दो।' उन्होंने कहा, 'क्यों ?' मैंने कहा : तुमको पता नहीं—क्या लिखा है इसमें ? अगर ऐसा ही हुआ है तो बीस साल पहले जिस पत्नी को छोड़कर तुम्हारा मुनि चला गया था उसको झंझट बाकी थी। अब उसके मरने से कहता है कि 'झंझट छूटी'—तो झंझट बाकी थी। किसी न किसी चित्त के तल पर झंझट रही होगी। यह पत्नी के मरने की प्रतिक्रिया नहीं है। यह प्रतिक्रिया चित्त के भीतर झंझट चलने की है। झंझट खत्म हुई पत्नी के मरने से। पत्नी को छोड़ने से भी पूरी न हुई वह झंझट; क्योंकि वह पत्नी है यह भी न मिटा; क्योंकि उस पत्नी को छोड़ा है यह भी न मिटा; क्योंकि उस पत्नी को क्या-क्या होता होगा यह भी न मिटा। यह कुछ भी न मिटा। और अब वह मर गई तो झंझट छूट गयी।" और मैंने कहा कि यह भी हो सकता है कि तुम्हारे इस मुनि ने कई दफा चाहा हो कि पत्नी मर जाए क्योंकि इसका यह कहना इसकी भीतरी आकांक्षा का सबूत भी हो सकता है। इसने कई बार चाहा हो कि वह मर जाए। शायद छोड़ने के पहले चाहा हो कि यह मर जाए। वह नहीं मरी। उसने शायद बाद में भी कभी सोचा हो कि यह मर जाए। क्योंकि यह शब्द बड़ा अद्भुत है और उसके पूरे अचेतन की खबर लाता है।

एक दूसरी घटना सुनाता हूँ। एक फकीर गुजर गया है। उसका एक शिष्य है जिसकी बड़ी ख्याति है; इतनी ख्याति है कि गुरु से भी ज्यादा। और लोग कहते हैं कि वह परम ज्ञान को उपलब्ध हो गया है। लाखों लोग इकट्ठे हुए हैं—गुरु मर गया है। शिष्य मन्दिर के द्वार पर बैठा छाती पीट-पीट कर रो रहा है। लोग बड़े चौंके हैं क्योंकि ज्ञानी और रोए! दो चार जो निकट हैं, उन्होंने कहा : यह आप क्या कर रहे हैं? सब जिन्दगी की इज्जत पर पानी फिर जाएगा। आप—और रोते हैं? ज्ञानी और रोए। तो उस आदमी ने आँखें ऊपर उठाई और कहा—मैं ऐसे ज्ञानी से छुटकारा चाहता हूँ जो रो भी न सके। नमस्कार! इतनी भी आजादी न बचे तो ऐसा ज्ञानी मुझे नहीं होना। क्योंकि ज्ञान की खोज हम आजादी के लिए किए हैं। ज्ञान एक नया बन्धन बन जाए और मुझे सोचना पड़े कि क्या कर सकता हूँ, क्या नहीं कर सकता हूँ तो मैं क्षमा चाहता हूँ। तुमसे कहा किसने कि मैं ज्ञानी हूँ? फिर भी उन लोगों ने पूछा : भई ठीक तो है लेकिन आप ही तो समझाते थे कि आत्मा अमर है अब काहे के लिए रो रहे हैं? उसने कहा : आत्मा के लिए कौन पागल रो रहा है? वह शरीर भी बहुत प्यारा था। और वैसा शरीर अब दुबारा नहीं हो सकेगा। अद्वितीय था वह। आत्मा के लिए रो कौन रहा है? शरीर कुछ कम था क्या? तुम मेरी चिन्ता मत करो क्योंकि मैंने अपनी चिंन्ता छोड़ दी है। अब जो होना है, सो होता है। हँसी आती है तो हँसता हूँ; रोना आता है तो रोता हूँ। अब मैं रोकता ही नहीं कुछ। क्योंकि अब रोकने वाला ही कोई नहीं है। कौन रोके? किसको रोके? क्या रोकना है? क्या बुरा है? क्या भला है? क्या पकड़ना है? क्या छोड़ना है—सब जा चुका है। जो होता है, होता है। जैसे हवा चलती है, वृक्ष हिलते हैं, वर्षा आती है, बादल आते हैं, सूरज निकलता है, फूल खिलते हैं। बस ऐसा ही है। न तुम फूल से जाकर कहते हो कि क्यों खिले हो तुम। न तुम बदलियों से जाकर कहते हो कि क्यों आई हो तुम। न तुम सूरज से पूछते हो कि क्यों निकले हो तुम। मुझसे क्यों पूछ रहे हो कि क्यों रो रहे हो। कोई मैं रो रहा हूँ? रोना आ रहा है। कोई रोने वाला नहीं है। यह तो बहुत मुश्किल में पड़ गए हैं। और किसी एक ने कहा कि "आप कहते हो सब माया है, सब सपना है।" वह कहता है अभी मैं कब कह रहा हूँ कि सब माया नहीं है, सब सपना नहीं है। मेरा कहना है कि अगर उतनी ठोस देह भी सत्य साबित न हुई, मेरे ये तरल आँसू कितने सत्य हो सकते हैं? इसे समझना हमें मुश्किल हो जाएगा। उस मुनि को समझना

बहुत आसान है जिसने कहा, "झंझट छूटो।" क्योंकि हमारा चित्त भी वैसा है। वह द्वन्द्व में ही जीता है।

इतना निर्द्वन्द्व होना बहुत मुश्किल है कि जहाँ रहना भी क्रिया न रह जाए, जहाँ उसके भी हम कर्त्ता न रह जाएँ, जहाँ उसके भी हम द्रष्टा हो जाएँ, जहाँ उस पर कभी भी हम रुकें न, कुछ बन्धन न डालें, कुछ व्यवस्था न डालें, जो होता हो, होता रहे। जैसे वृक्षों में पत्ते आते हैं; जैसे आकाश में तारे निकलते हैं, ऐसा ही सब हो जाए। ऐसा अखण्ड व्यक्ति हो सत्य को उपलब्ध होता है और ऐसे अखंड व्यक्ति से ही सत्य की अभिव्यक्ति हो सकती है। लेकिन इतना अखंड हो जाना ही सत्य की अभिव्यक्ति के लिए काफी नहीं है। अखंड व्यक्ति भी, हो सकता है, बिना सत्य को अभिव्यक्त किए ही मर जाए और बहुत से अखंड व्यक्ति बिना सत्य को प्रकट किए ही समाप्त हो जाते हैं। यह ऐसा ही है जैसे कि सौन्दर्य को जान लेना सौन्दर्य को निर्मित करना नहीं है। एक आदमी सुबह के उगते सूरज को देखता है और अभिभूत हो जाता है सौन्दर्य से। लेकिन यह अभिभूत हो जाना पर्याप्त नहीं है कि वह एक चित्र बना दे सुबह के उगते सूरज का, अभिव्यक्त कर दे उसको, जरूरी नहीं है। तुम सुबह बैठे हो वृक्ष के नीचे और पक्षी ने गीत गाया और तुम डूब गए संगीत में। तुमने अनुभव किया है संगीत लेकिन जरूरी नहीं कि वीणा उठाकर तुम गीत को पुनर्जन्म दे दो। यानी सत्य की अनुभूति एक बात है और उसकी अभिव्यक्ति बिल्कुल दूसरी बात। बहुत से अनुभूतिसम्पन्न लोग बिना अभिव्यक्ति दिए समाप्त हो जाते हैं। दुनिया में कितने कम लोग हैं जो सौन्दर्य को अनुभव नहीं करते, लेकिन कितने कम लोग हैं जो सौन्दर्य को चित्रित कर पाते हैं; कितने कम लोग हैं जिनके प्राणों को आन्दोलित नहीं कर देता संगीत लेकिन कितने कम लोग हैं जो संगीत को अभिव्यक्त कर पाते हैं; कितने कम लोग हैं जिन्होंने प्रेम नहीं किया है, लेकिन प्रेम की दो कड़ी लिख पाना बिल्कुल दूसरी बात है।

यहाँ दो-तीन बातें कहूँ ताकि आगे का सिलसिला ख्याल में रह सके। पहली बात—अखंड की अनुभूति हो जाना पर्याप्त नहीं है। अभिव्यक्ति के लिए कुछ और करना पड़ता है अनुभूति के अतिरिक्त। अगर वह और न किया जाए तो अनुभूति होगी मगर व्यक्ति खो जाएगा। तीर्थंकर वैसा अनुभवी है। वह जो कुछ करता है—अभिव्यक्ति के लिए। इसलिए महावीर की जो बारह वर्ष की साधना है वह मेरी दृष्टि में सत्य-उपलब्धि के लिए नहीं है। सत्य को उपलब्ध है। सिर्फ उसकी अभिव्यक्ति के सारे माध्यम खोजे जा रहे हैं उन बारह वर्षों

में। और, ध्यान रहे सत्य को जानना तो कठिन है ही, सत्य को प्रकट करना और भी कठिन है। महावीर की अपनी शक्ति है। अगर महावीर को सब मिल गया है तो यह तपश्चर्या, यह साधना, यह उपवास, यह बारह वर्षों का लम्बा काल—यह क्यों हो रहा है? यह क्या कर रहे हैं? अगर मैं कहता हूँ कि वह पाकर लौटे हैं तो यह क्या कर रहे हैं?

तो जितना गहरा देखने की मैंने कोशिश की उतना मैं इस नतीजे पर पहुँचा हूँ कि यह अभिव्यक्ति के सब उपकरण खोजे जा रहे हैं और बहुत तरहों पर अभिव्यक्त करने की कोशिश की जा रही है जिसकी कम शिक्षकों ने फिक्र की है, कभी भी। यानी जीवन के जितने तल हैं और जितने रूप हैं, उन सब रूपों तक सत्य की खबर पहुँचाने की अद्‌भुत तपश्चर्या की है उन्होंने। यानी सिर्फ मनुष्य से ही यह नहीं बोल देना है—क्योंकि मनुष्य तो सिर्फ जीवन की एक छोटी सी घटना है; मनुष्य जीवन-यात्रा की केवल एक सीढ़ी है—एक ही सीढ़ी पर सत्य नहीं पहुँचा देना है, मनुष्य से पीछे की सीढ़ियों पर भी उसे पहुँचा देना है, मनुष्य से भिन्न सीढ़ियों पर भी उसे पहुँचा देना है। यानी पत्थर से लेकर देवता तक सुन सकें, इसकी सारी व्यवस्था उन्होंने की है। जो चेष्टा है वह यह कि जीवन के सब रूपों से संवाद हो सके और सब रूपों पर सत्य को अभिव्यक्त किया जा सके। वह तपश्चर्या सत्य की उपलब्धि के लिए नहीं है, सत्य की अभिव्यक्ति खोजने के लिए है। और तुम हैरान होगे कि सुबह सूरज को देखकर सौन्दर्य को अनुभव कर लेना बहुत सरल है; लेकिन उगते हुए सूरज को चित्रित करने में हो सकता है कि जीवन लग जाए, तब आप समर्थ हो पाएँ।

विन्सेन्ट वानगॉग ने जो अन्तिम चित्र चित्रित किया है, वह है सूर्यास्त का। यह इधर मनुष्य जाति में हुए दो चार बड़े चित्रकारों में एक है वानगॉग। और अन्तिम चित्र उसने सूर्यास्त का चित्रित किया जिसे पूरा करते ही उसने आत्म-हत्या कर ली। और लिखा गया कि जिसे चित्रित करने के लिए जीवन भर से कोशिश कर रहा था वह काम पूरा हो गया। और अब सूर्यास्त ही चित्रित हो गया। अब और रहने का अर्थ क्या है और इतनी आनन्दपूर्ण घड़ी से मरने के लिए और अच्छी घड़ी न मिल सकेगी। सूर्यास्त चित्रित हो गया है, और वह मर गया है। आप हैरान हो जाएँगे कि इस चित्र को चित्रित करने के लिए उसने कैसी मुश्किलें उठाईं, उसने सूर्य को कितने रूपों में देखा। सुबह से भूखा खेतों में पड़ रहा; जंगलों में पड़ा रहा; पहाड़ों पर पड़ा रहा। सूरज की पूरी यात्राएँ, उसके भिन्न-भिन्न चेहरे, उसकी भिन्न-भिन्न स्थितियाँ, उसके भिन्न-भिन्न

रंग, उसका भिन्न-भिन्न रूप, वह जो प्रतिपल भिन्न होता चला जा रहा है, उगने से लेकर डूबने तक, उसकी सारी यात्रा 'और लीज' में जहाँ सूरज सबसे ज्यादा तपता है एक वर्ष तक, थोड़ा नहीं देखता रहा। पागल हो गया क्योंकि इतनी गर्मी सहना सम्भव नहीं था। एक वर्ष तक निरन्तर आँखें सूरज पर टिकी रहीं, आँखों ने जवाब दे दिया और सिर घूम गया। एक साल पागलखाने में रहा। जब पागलखाने से वापस हुआ तब कहा : अब चित्रित कर सकूँगा क्योंकि जब जिया ही न था, उसे देखा ही न था, उसके साथ ही न रहा था उसे कैसे चित्रित करता ?

एक सूर्यास्त को चित्रित करने के लिए एक आदमी एक वर्ष तक सूरज को देखे, पागल हो जाए, तब चित्रित कर पाए तो सत्य को, जिसका कोई प्रकट रूप दिखाई नहीं पड़ता, उसे कोई जाने, फिर शब्द में, और माध्यमों से उसे पहुँचाने की कोशिश करे तो उसके लिए लम्बी साधना की जरूरत पड़ेगी। महावीर की जो साधना है वह अभिव्यक्ति के उपकरण खोजने की साधना है। कठिन है; बहुत ही कठिन है। उसे समझने की हम कोशिश करेंगे कि वह साधना में कैसे अभिव्यक्ति के लिए एक-एक सीढ़ी खोज रहे हैं, एक-एक मार्ग खोज रहे हैं; कैसे वह सम्बन्ध बना रहे हैं अलग-अलग जीवन की स्थितियों से, योनियों से। वह हमारे ख्याल में आ जाएगा तो पूरी दृष्टि और हो जाएगी, सोचने की बात ही और हो जाएगी।

६

प्रश्नोत्तर-प्रवचन

प्रश्न : यदि जो कुछ महावीर ने पिछले जन्म में प्राप्त किया था, उससे विश्व के सभी तलों को लाभ हो, इसलिए अभिव्यक्ति के माध्यमों की खोज उन्होंने इस जन्म में की तो फिर उनके पिछले जन्मों की साधना क्या थी जिससे उनके बन्धन कट कर उन्हें सत्य की उपलब्धि हो सकी ?

उत्तर : इस सम्बन्ध में सबसे पहली बात यह समझ लेनी जरूरी है कि तप या संयम से बन्धनों की समाप्ति नहीं होती; बन्धन नहीं कटते। तप और संयम कुरूप बन्धनों की जगह सुन्दर बन्धनों का निर्माण भर कर सकते हैं। लोहे की जंजीर की जगह सोने की जंजीर आ सकती है। जंजीर मात्र नहीं कट सकती है क्योंकि तप और संयम करने वाला व्यक्ति वही है जो अतप असंयम कर रहा था। उस व्यक्ति में कोई फर्क नहीं पड़ा है। एक आदमी व्यभिचार कर रहा है। इसके पास जो चेतना है, इसी चेतना को लेकर अगर कल वह ब्रह्मचर्य की साधना करने लगे तो व्यभिचार बदल कर ब्रह्मचर्य हो जाएगा। इस व्यक्ति के भीतर की चेतना जो व्यभिचार करती है ब्रह्मचर्य साधेगी। व्यभिचार जैसे एक बन्धन था, ब्रह्मचर्य भी एक बन्धन ही सिद्ध होने वाला है। इसलिए सवाल तप और संयम का नहीं है। सवाल है चेतना के रूपान्तरण का, चेतना के बदल जाने का। और चेतना को बदलने के लिए बाहर के कर्मों का कोई भी अर्थ नहीं है; चेतना को बदलने के लिए भीतर की मूर्च्छा के टूटने का प्रश्न है। चेतना के दो ही रूप हैं; मूर्च्छित और अमूर्च्छित; जैसे कर्म के दो रूप हैं—संयम और असंयम। अगर कर्म में बदलाहट की गई तो संयम आ सकता है असंयम की जगह, मगर चेतना इससे अमूर्च्छित दशा में नहीं पहुँच जाएगी। मूर्च्छित के भीतर व्यक्ति सोया हुआ है, प्रमाद में है। वह अप्रमाद में कैसे पहुँचेगा ?

महावीर की पिछले जन्मों की साधना अप्रमाद की साधना है। हमारे भीतर जो जीवन चेतना है वह कैसे परिपूर्ण रूप से जागृत हो? इस विषय में महावीर कहते हैं : 'हम विवेक से उठें, विवेक से बैठें; विवेक से चलें, विवेक से भोजन करें, विवेक से सोएँ भी।' अर्थ यह है कि उठते-बैठते, सोते, खाते-पीते प्रत्येक स्थिति में चेतना जागृत हो, मूच्छित नहीं। थोड़े गहरे में समझना उपयोगी होगा। हम रास्ते पर चलते हों तो शायद ही हमने कभी ख्याल किया हो कि चलने की जो क्रिया हो रही है, उसके प्रति हम जागृत हैं। हम भोजन कर रहे हैं तो शायद ही हमें यह स्मरण रहा हो कि भोजन करते वक्त जो भी हो रहा है उसके प्रति हम सचेत हैं। चीजें यन्त्रवत् हो रही हैं। रास्ते के किनारे खड़े हो जाएँ और लोगों को रास्ते से देखें तो ऐसे लगेगा कि मशीनों की तरह वे चले जा रहे हैं। ऐसे भी लोग दिखाई पड़ेंगे जो हाथ हिलाकर किसी से बातें कर रहे हैं और साथ में कोई भी नहीं है। ऐसे लोग भी मिलेंगे जिनके होंठ हिल रहे हैं और बात चल रही है लेकिन साथ में कोई भी नहीं है। किसी स्वप्न में खोए हुए, निद्रा में डूबे हुए ये लोग मालूम पड़ेंगे। दूसरे के लिए ही नहीं है ऐसा। हम अपने में भी देखें, अपना भी ख्याल करें तो यही प्रतीत होगा। जीवन में हम ऐसे जीते हैं जैसे किसी गहरी मूर्च्छा में पड़े हों। हमने जिन्हें प्रेम किया है, वह मूर्च्छा में, हमें पता नहीं क्यों? हम नहीं बता सकते कोई कारण। हमने जिनसे घृणा की है, वह मूर्च्छा में; हम जब क्रोध किए हैं तब मूर्च्छा में; हम जैसे भी जिए हैं उस जीने को एक सजग व्यक्ति का जीना तो नहीं कहा जा सकता। वह एक सोए हुए व्यक्ति का जीना है। कुछ लोग हैं जो रात में भी नींद में उठ आते हैं। एक बीमारी है निद्रा में चलने की—नींद में उठते हैं, खाना खा लेते हैं, घूम लेते हैं, किताब पढ़ लेते हैं, फिर सो जाते हैं। सुबह उनसे पूछिए वे कहेंगे—कौन उठा? कोई भी नहीं उठा। अमेरिका में एक आदमी था जो रात निद्रा में उठकर अपनी छत से पड़ोसी की छत पर पहुँच जाता था। आठ-नौ मंजिल के मकानों की छत पर से कूदना और बीच में फासला दस-बारह फुट का। यह रोज चल रहा था। धीरे-धीरे पड़ोसियों को पता चला कि वह रोज रात यह करता है। एक दिन सौ-पचास लोग नीचे इकट्ठे हुए देखने के लिए। वह तो नींद में करता था। होश में तो वह छलांग भी नहीं लगा सकता था। जैसे ही छलांग लगाने को हुआ नीचे लोगों ने जोर से आवाज दी और उसकी नींद टूट गई। वह बीच खड्ड में गिर गया और प्राणान्त हो गया। यह वह वर्षों से कर रहा था लेकिन वह मानता नहीं था कि मैं यह करता हूँ।

निद्रा में हम बहुत से काम करते हैं। लेकिन जागे हुए भी किसी सूक्ष्म निद्रा में हम जीते हैं, इसे महावीर ने प्रमाद कहा है। जागे हुए भी, होश से भरे हुए भी हमारे भीतर एक धीमी सी तन्द्रा का जाल फैला हुआ है। जैसे एक आदमी ने आपको धक्का दिया है और आप क्रोध से भर गए हैं। कभी आपने सोचा कि यह क्रोध आपने जानकर किया है या कि हो गया है। जैसे बिजली का बटन दबाएँ तो पंखा चल पड़ता है। हम पंखा को नहीं कह सकते कि पंखा चल रहा है। पंखा सिर्फ चलाया गया है। और एक आदमी ने आपको धक्का दिया फिर आपके भीतर क्रोध चल पड़ा। हम यह नहीं कह सकते हैं कि आपने क्रोध किया है। हम इतना ही कह सकते हैं कि बटन किसी ने दबाया और क्रोध चल पड़ा। आप भी नहीं कह सकते कि मैं क्रोध कर रहा हूँ क्योंकि जो आदमी यह कह सकता है कि मैं क्रोध कर रहा हूँ उस आदमी को कभी क्रोध करना सम्भव नहीं है। क्योंकि अगर वह मालिक है तो करेगा ही नहीं। अगर मालिक नहीं है तो ही कर सकता है।

हमारी सारी जीवन क्रिया सोई-सोई है। हम सब नींद में चल रहे हैं। इसे महावीर ने कहा है प्रमाद। यह है मूर्च्छा। और साधना एक ही है कि कैसे हम क्रिया मात्र में जागे हुए हो जाएँ? क्योंकि जैसे ही हम जागेंगे वैसे ही चेतना का रूपान्तरण शुरू हो जाएगा। आपने कभी ख्याल किया कि रात जब आप सोते हैं तब आपकी चेतना बिल्कुल दूसरी हो जाती है। वही नहीं रहती जो जागने में थी। सुबह जब आप जागते हैं तो चेतना वही नहीं रहती जो जागने में थी। सुबह जब आप जागते हैं तो चेतना वही नहीं रहती जो सोने में थी। चेतना मूल रूप से दूसरे तलों पर पहुँच जाती है। जो आपने कभी सोचा नहीं था वह आप कर सकते हैं रात में। जो आप कल्पना नहीं कर सकते थे कि पिता को मार डालूं, वह आप रात में हत्या कर सकते हैं। और जरा भी दहशत नहीं होगी मन को। दिन में जो भी आप थे, जो आपके सम्बन्ध थे, वे सब खो गए निद्रा में। एक धनी वैसा ही साधारण हो गया है निद्रा में जैसा एक दरिद्र भिखमंगा सड़क पर सोया हो।

एक फकीर था। उसके गाँव का सम्राट् एक दिन उसके पास से निकल रहा था। सम्राट् ने उससे पूछा कि हममें तुममें क्या फर्क है? फर्क तो निश्चित है। तुम भिखारी हो एक गाँव के सड़क पर भीख माँगने वाले। मैं सम्राट् हूँ। उस आदमी ने कहा, फर्क जरूर है लेकिन जहाँ तक जागने का सम्बध है वहीं तक। सोने के बाद हममें-तुममें कोई फर्क नहीं। क्योंकि सोने के बाद न तुम्हें ख्याल

रह जाता है कि तुम सम्राट् हो, और न मुझे कि मैं भिखारी हूँ। खेल जगने का है। सोने में आपको यह भी पता नहीं रह जाता कि आप कौन हैं। जो आप जागने में थे उसका भी पता नहीं रह जाता। आपकी उम्र क्या है यह भी पता नहीं रह जाता। आपका चेहरा कैसा है यह भी पता नहीं रह जाता। आप बीमार हैं कि स्वस्थ यह भी पता नहीं रह जाता। निश्चित ही चेतना किसी और तल पर सक्रिय हो जाती है। इस तल से एकदम हट जाती है। नींद और जागने की साधारण स्थितियों से हम जान सकते हैं कि अगर हम जागने को भी समझें कि वह भी एक तन्द्रा है तो वह तन्द्रा जिसकी टूट जाती होगी, वह बिल्कुल ही नए लोक में प्रवेश कर जाता होगा। साधना का एक ही अर्थ है कि हम कैसे जागे हुए जीने में प्रवेश कर जाएँ और **महावीर की पूरी साधना ही इतनी है कि सोना नहीं है, जागना है।**

जागने की प्रक्रिया क्या होगी ? जागने की प्रक्रिया जागने का ही प्रयास होगी। जैसे किसी आदमी को हमें तैरना सिखाना है तो वह हमसे कहे कि तैरना सीखने का कोई रास्ता बतायें क्योंकि मैं तो तभी पानी में उतरूंगा जब तैरना सीख जाऊं; बात तो वह बिल्कुल ठीक दलील की कह रहा है कि बिना तैरना जाने पानी में उतरना खतरनाक है। लेकिन सिखाने वाला कहेगा कि अगर तुम बिना तैरे पानी में उतरने को राजी नहीं हो तो तैरना कैसे सिखाया जा सकता है ? क्योंकि तैरना सीखने की एक ही तरकीब है कि तैरो ! तैरना सीखने की और कोई तरकीब ही नहीं है। तैरना शुरू करना पड़ेगा। पहले हाथ-पैर तड़फड़ाओगे; उल्टा सीधा गिरोगे, डूबोगे, उतरोगे। लेकिन तैरना शुरू करना पड़ेगा। उसी शुरूआत से तैरना धीरे-धीरे व्यवस्थित हो जाएगा और तैर सकोगे। लोग भी पूछते हैं : जागने की तरकीब क्या है ? जागने की कोई तरकीब नहीं है। जागना ही पड़ेगा। पहले हाथ-पैर तड़फड़ाने पड़ेंगे; गलत-सही होगा; डूबना उतरना होगा। क्षण भर को जागेंगे फिर सो जाएँगे ऐसा होगा। लेकिन जागना ही पड़ेगा। निरन्तर जागने की धारणा से धीरे-धीरे जागना फलित हो जाता है।

जागने की तरकीब का मतलब इतना ही है कि हम जो भी करें यह हमारा प्रयास हो, यह हमारा संकल्प हो कि हम उसे जागे हुए करेंगे। और आप इसकी कोशिश करेंगे तो आप पाएंगे कि नींद बहुत गहरी है। एक क्षण भी नहीं जाग पाते हैं कि नींद पकड़ लेती है। एक छोटा सा काम है—रास्ते पर चलने का

और आप तय करके ही चलें कि आज मैं जागा हुआ ही चलूंगा तब आपको पता चलेगा कि निद्रा कितनी गहरी है और निद्रा का क्या मतलब है। आप एक सेकेंड एक दो कदम उठा पाएंगे कि फिसल जाएगा दिमाग; चलने की क्रिया से हट जाएगा, और कहीं चला जाएगा। फिर आपको ख्याल आएगा कि मैं फिर सो गया; जागना तो भूल गया था; चलना तो भूल गया था। क्षण भर को भी पूरी तरह जाग कर चलना मुश्किल है क्योंकि नींद बहुत गहरी है लेकिन हमें नींद का पता नहीं चलता क्योंकि हमें जागने का कोई पता ही नहीं है।

तो तुलना नहीं है हमारे पास कि हम किसको जागना और सोना कहते हैं। एक आदमी ऐसा पैदा हो जो रात न सो सके, उसे कभी पता नहीं चलेगा कि वह जिस हालत में है, वह जागी हुई हालत है। इस सोए और जागने में उसे फर्क तभी हो सकता है जब वह दूसरी स्थिति को भी समझ ले। जब महावीर जैसे लोग कह रहे हैं कि हम सोए हुए जी रहे हैं तो हमारी समझ में नहीं पड़ती बात। क्योंकि जागकर जीने का क्षण भर का अनुभव भी हमें नहीं है। तुलना कहां से हो, कैसे हो? कहां तोलें? इसका थोड़ा सा प्रयास करें। एक क्षण को भी अगर जागकर चल लेंगे दो कदम तो आप पाएंगे कि बिल्कुल ही अलग चित्त की दशा है। लेकिन क्षण भर में खो जाते हैं और नींद फिर पकड़ लेती है जैसे बादल जरा सी देर को हटते हैं और सूरज दिख भी नहीं पड़ता कि फिर घिर जाते हैं। और नींद का हमारा लम्बा अभ्यास है, और अकारण नहीं है नींद का अभ्यास। कारण है उसमें—कारण है उसमें। पहला कारण तो यह है कि सोए हुए जीना बड़ा सुविधापूर्ण है। इसलिए सुविधापूर्ण जीने में—क्या हो रहा है, क्या नहीं हो रहा है, क्या कर रहे हैं, क्या नहीं कर रहे हैं—इसकी कोई विभेदक रेखा नहीं खिचती। जगे हुए व्यक्ति को फ़ौरन विभेदक रेखा खड़ी हो जाती है कि यह करने जैसा है, यह न करने जैसा है। और फिर जो न करने जैसा है उसे करने में वह एकदम असमर्थ हो जाता है। और जिसे हम जिन्दगी कह रहे हैं, उसमें निन्यानवे प्रतिशत ऐसा है जो न करने जैसा है। जिसे हम सोए रहें तो ही कर सकते हैं, जागें तो नहीं कर सकते। और जो जागता जाता है, वह नहीं कर पाता है। भीतर कहीं भय भी है कि जैसे हम हैं उसमें कहीं से आमूल उपद्रव न हो जाए। इसलिए सोए हुए चलना ही ठीक मालूम पड़ता है। दूसरी बात है कि सोए हुए लोगों के साथ सोए हुए होने में ही सरलता पड़ती है। चारों तरफ लोग सोए हुए हों और एक आदमी जाग जाए तो आप नहीं समझ सकते कि उसकी कठिनाई कैसी होगी?

मेरे एक मित्र थे, वह पागल हो गए। पागल हो गए १९३६ के करीब। वे घर से भाग गए और एक अदालत में पकड़े गए। कुछ उन पर मुकदमें चले। मजिस्ट्रेट ने कहा—"वह पागल है, उन्हें छः माह की सजा दी जाय लेकिन सजा उनकी पागलखाने में कटे।" और लाहौर के पागलखाने में भेज दिए गए। वह मुझे कहते हैं कि दो महीने मेरे बड़े आनन्द से कटे क्योंकि मैं पागल था और सब वहाँ पागल थे। कोई तीन सौ पागलों का जमाव था। बड़ा आनन्द ही आनन्द था। बाहर मैं कष्ट में ही था। चूंकि मेरा ताल-मेल ही नहीं बैठता था किसी से; चूंकि सब ठीक थे मैं पागल था, मैं जो करता उनको न जँचता वह जो करते, मुझको न जँचता था। पागलखाने में पहुँच कर तो मैं जैसे स्वर्ग में पहुँच गया। जाकर जो मैंने पहला काम किया—वह परमात्मा को, उस मजिस्ट्रेट को धन्यवाद दिया जिसने मुझे पागलखाने में भेजा था। सब अपने-जैसे लोग थे। बहुत ही बढ़िया था सब। लेकिन दो महीने बाद बड़ी मुश्किल हो गई। छः महीने की सजा हुई थी और दो महीने बाद, पागलखाने में कहीं एक डिब्बा मिल गया रखा हुआ फिनायल का; और वह उसको उठा कर पी गए। पागल आदमी थे। वह फिनायल पी गए। इस फिनायल पीने से उनको पन्द्रह दिन तक इतने कै-दस्त हुए कि सारी सफाई हो गई और सब गर्मी निकल गई; वह बिल्कुल ठीक हो गए। यानी उस पागलखाने में वह गैर पागल हो गए। और वह डाक्टरों को कहने लगे कि अब मैं बिल्कुल ठीक हो गया हूँ। और अब मेरी बड़ी मुसीबत हो गई है। लेकिन वहाँ कौन मानता था क्योंकि डाक्टरों ने कहा यहाँ सभी पागल यही कहते हैं कि हम ठीक हैं। यह कोई बात है। कोई पागल कभी मानता है कि मैं पागल हूँ। उन्होंने जितनी समझाने की कोशिश की, कोई समझने को राजी न था। छः महीने की सजा पूरी करनी पड़ी। वह मुझसे कहते थे कि चार महीने मेरे इतने कष्ट में कटे कि ऐसा नरक में कोई किसी को न डाले। क्योंकि सब थे पागल और मैं हो गया था ठीक। कोई मेरी टाँग खींच रहा है; कोई मेरा कान घुमा रहा है; कोई धक्का ही मार देता है; कोई पानी ही डाल देता है ऊपर आकर; सो रहा हूँ तो कोई घसीट कर दो कदम आगे कर जाता है। यह मैं भी करता रहा होऊँगा दो महीने पहले। लेकिन तब हम सब साथी थे। तब कभी ख्याल न आया था कि यह गलत कर रहा हूँ। अब बड़ी मुश्किल हो गई। और अब मैं असमर्थ हो गया कि मैं भी यही करूँ। अब मैं न किसी की टाँग खींच सकता, और न किसी पर पानी डाल सकता। मैं बिल्कुल ठीक था और वे सब पागल थे। उनको जो

मर्जी आती वे करते। कोई चलते चपत मार जाता, कोई बाल खींच जाता, कोई आकर कंधे पर बैठ जाता, कोई गोदी में बैठ जाता। चार महीने निरन्तर यही भगवान् से प्रार्थना रही कि या तो जल्दी बाहर कर या फिर पागल कर दे। क्योंकि यह तो फिर बड़ा असुविधापूर्ण हो गया।

पागलखाने में किसी आदमी के ठीक हो जाने की जो तकलीफ है, वही सोए हुए जगत् के बीच जागने की तकलीफ है। क्योंकि वह आदमी फिर सोए हुए आदमी के ढंग से व्यवहार नहीं कर सकता और सोया हुआ आदमी तो अपना ढंग जारी रखता है। तो महावीर जैसे लोग जिस कष्ट में पड़ जाते हैं, उस कष्ट का हम हिसाब नहीं लगा सकते क्योंकि हमें पता ही नहीं है कि वह कष्ट कैसा है? क्योंकि हम सोए हुए लोगों के बीच में एक आदमी जाग गया, उसकी भाषा बदल गई, उसकी चेतना बदल गई, वह एकदम अजनबी हो गया।

अगर एक तिब्बती भारत में आ जाए या आप तिब्बत में चले जाएँ तो जो अजनबीपन है वह सिर्फ भाषा के शब्दों का है, बहुत ऊपर का अजनबीपन है, भीतर आदमी एक जैसे हैं। क्रोध उसको आता है, क्रोध आपको आता है। घृणा उसको आती है, घृणा आपको आती है। ईर्ष्या में वह जीता है, ईर्ष्या में आप जीते हैं। फर्क है तो इतना कि ईर्ष्या का शब्द आपका अलग है, उसका अलग। थोड़े दिनों में पहचान हो जाएगी और 'ईर्ष्या' के शब्द मेल खा जाएँगे तब अजनबीपन मिट जाएगा। यानी साधारणतः पृथ्वी के अलग-अलग कोनों पर रहने वाले को हम अजनबीपन कहते हैं। लेकिन वह अजनबीपन बड़ा छोटा है, सिर्फ भाषा का है। आदमी-आदमी एक जैसे हैं। लेकिन जब कोई आदमी सोई हुई पृथ्वी पर जागा हुआ हो जाता है तो जो अजनबीपन शुरू होता है, उसका हिसाब लगाना मुश्किल है, क्योंकि अब भाषा का भेद नहीं, अब तो सारी चेतना का भेद पड़ गया है। सब आमूल बदल गया है। अगर हमें कोई गाली देता है तो हमारे भीतर क्रोध उठता है। उसे कोई गाली देता है तो उसके भीतर करुणा उठती है। इतनी चेतना का फर्क हो गया है क्योंकि उसे दिखाई पड़ता है कि एक आदमी बेचारा गाली देने की स्थिति में आया है, कितनी तकलीफ में होगा। और उसके भीतर से करुणा बहनी शुरू हो जाती है और हमारे लिए समझना आसान है—अगर आप मुझे गाली दें, और मैं भी आपको गाली दूँ। तो, आपका मैं मित्र हूँ क्योंकि आपकी दुनिया का ही निवासी हूँ। आप मुझे गाली दें और मैं आपको प्रेम करूँ तो आप जितना क्रोध से भरेंगे मेरे प्रति उतना गाली देने वाले के प्रति शायद न भरें।

एक आदमी तुम्हारे गाल पर चाँटा मारे और तुम दूसरा गाल उसके सामने कर दोगे तो इससे ज्यादा अपमानजनक स्थिति दूसरे आदमी के लिए क्या हो सकती है ? तुमने तो उसको कीड़ा-मकोड़ा बना दिया। यानी तुमने उसकी आदमियत भी स्वीकार न की। तुमने इतना भी न कहा कि ठीक है, तुमने एक चाँटा मारा, एक चाँटा हम भी मारेंगे। तो तुम बराबर हो गए होते। तुम तो एकदम आसमान पर चले गए और वह एकदम जमीन पर रेंगता हुआ कीड़ा हो गया। यह अपमान बरदाश्त नहीं किया जा सकता। नीत्से ने लिखा है— यह अपमान बरदाश्त के बाहर है। तुमने तो उस आदमी को बिल्कुल मिटा दिया। आदमी भी स्वीकार न किया तुमने। और तुमने ऐसा दुर्व्यवहार किया उसके साथ कि जिसका कोई हिसाब नहीं। यह सद्व्यवहार न हुआ। नीत्से कहता है, यह तो बहुत दुर्व्यवहार हो गया। सद्व्यवहार यही था कि समानता के हेतु एक चाँटा तुमने भी मारा होता तो हम दोनों बराबर हो गए होते; हम एक ही तल पर होते। तुम पहाड़ पर खड़े हो गए, हम खाई में पड़ गए। वह ठीक कहता है। गाली देने वाला उत्तर में आई गाली से इतना नाराज न होगा क्योंकि यह उसकी अपनी भाषा है। गाली आनी चाहिए। गाली दी ही इसलिए गई है। लेकिन अगर उत्तर में करुणा लौटे तो उसके क्रोध का हिसाब नहीं रह जाएगा। उसके अपमान और उसकी पीड़ा को नहीं समझ सकते हम। वह फिर इसका बदला लेगा। तो सोए हुए आदमियों के भीतर एक अनजानी स्वीकृति है इस बात की कि अगर जीना है सबके साथ तो चुपचाप सोए रहो। पागलों के साथ रहना है तो पागल बने रहो। और भीतर भी हमें डर है क्योंकि सब बदल जाएगा। सब बदलने की हम हिम्मत नहीं जुटा पाते।

इसलिए साधक का पहला लक्षण है—अनजान, अपरिचित, अनहोनी के लिए हिम्मत जुटाना। उसके लिए हम हिम्मत नहीं जुटा पाते, साहस ही नहीं जुटा पाते। हम कहते भी हैं कि हमको शान्ति चाहिए, सत्य चाहिए लेकिन हम ये सब बातें इस तरह करते हैं कि जैसे हम हैं, वैसे में ही सब मिल जाए। हमें बदलना न पड़े। हमनें जो व्यवस्था कर रखी है, जो मकान बना रखा है, जो सम्बन्ध बना रखे हैं, उनमें कोई हेर-फेर न करना पड़े। सब जैसा है वैसा रहे, और कुछ मिल जाए। लेकिन हमें यह पता ही नहीं है कि अंधे आदमी को आँख मिलेगी तो उसके सब सम्बन्ध बदल जाएँगे। क्योंकि कल के सम्बन्ध अंधे आदमी के सम्बन्ध थे। कल वह जिस आदमी का हाथ पकड़ कर रास्ता चलता था, अब हाथ पकड़ने से इन्कार कर देगा। और हो सकता है जिसका हाथ

पकड़ कर वह चला था, उसे हमेशा यह ख्याल रहा हो कि मैं उसका सहारा हूँ। कल वह हाथ पकड़ने से इन्कार कर देगा कि क्षमा करो अब मेरे पास आँख है। मैं चल सकता हूँ। तो यह आदमी भी नाराज होगा जिसका उसने सदा हाथ पकड़ा था क्योंकि अब वह सहारा नहीं माँगता है। सहारा देने का भी सुख है, सहारा देने का भी अहंकार है। तो अंधे आदमी ने एक तरह सम्बन्ध बनाए थे; आँख वाला आदमी दूसरे तरह के सम्बन्ध बनाएगा। सोए हुए आदमी ने एक तरह की दुनिया बसाई है; जागा हुआ आदमी इस दुनिया को बिल्कुल ही अस्त-व्यस्त कर देगा। तो वह भी डर है हमारे भीतर। वह साहस भी नहीं है। लेकिन अगर थोड़ा सा साहस हम जुटा पाएँ तो जागना कठिन नहीं है। क्योंकि जो सो सकता है वह जाग सकता है, चाहे कितनी ही गहरी नींद में सोया है। जो सोया है उसमें जागने की क्षमता शेष है।

एक आदमी यहाँ कितनी ही गहरी नींद में सोया हुआ है। हम यहाँ उसके पास जागे हुए बैठे हैं। हम दोनों बिल्कुल भिन्न हालत में हैं। अगर दूसरे सोए हुए आदमी पर खतरा आएगा तो उसको पता नहीं चलेगा। अगर जागे हुए आदमी पर खतरा आएगा तो उसे पता चलेगा। मकान में आग लग गई तो सोए हुए आदमी को कोई पता नहीं चलेगा जब तक कि वह जाग न जाएँ। लेकिन जागे हुए आदमी को फौरन पता चल जाता है कि इस मकान में आग लग गई है। ये दोनों आदमी इस मकान में हैं। एक सोया है, एक जागा। सोया हुआ आदमी सोया हुआ है निश्चिंत। जागे हुए आदमी को चिन्ता पकड़ गई। लेकिन फिर भी इन दोनों आदमियों में बुनियादी भेद नहीं क्योंकि सोया हुआ आदमी एक क्षण में जाग सकता है और जागा हुआ आदमी एक क्षण में सो सकता है। यह तो साधारण तल पर जागना और सोना है ठीक ऐसे ही जो व्यक्ति जाग गया है वह जानता है कि जो सोए हैं, वह जाग सकते हैं। लेकिन वहाँ एक फर्क है। एक साधारण तल पर जागने और सोने में बुनियादी फर्क नहीं है क्योंकि जिसे हम जागना कह रहे हैं, वह थोड़ी कम डिग्री में सोना ही है और जिसको हम सोना कह रहे हैं, वह थोड़ी कम डिग्री में जागना ही है। उन दोनों में डिग्री का ही भेद है। लेकिन उस तल पर, परम जागरण के तल पर, निद्रा और जागने में डिग्री का भेद नहीं है, मौलिक रूपान्तरण का भेद है। इसलिए सोया हुआ आदमी जाग सकता है लेकिन जागा हुआ आदमी सो नहीं सकता। उस तल पर कोई जागा हुआ आदमी फिर कभी नहीं सो सकता।

ये रूपान्तरण ऐसे हैं जैसे कि हम दूध को चाहें तो दही बना सकते हैं। फिर दही से वापस दूध नहीं बना सकते। लेकिन पानी को हम बर्फ बना सकते हैं। बर्फ को हम फिर पानी बना सकते हैं क्योंकि बर्फ और पानी में गर्मी के क्रम का भेद है। रूपान्तरण नहीं हो गया है। जो बर्फ है, वह कल पानी था। वह कल फिर पानी हो सकता है। सिर्फ गर्मी का फर्क पड़ जाए जो अभी पानी है वह कल बर्फ हो सकता है, भाप हो सकती है। वे सब एक ही चीज की क्रमिक अवस्थाएँ हैं। लेकिन दूध अगर दही हो जाए तो फिर वापस दूध बनाने का कोई उपाय नहीं। क्योंकि दही सिर्फ दूध की एक अवस्था नहीं है, मौलिक रूपान्तरण है। वह चीज हो नई हो गई है। सब बदल गया है। लेकिन दूध दही हो सकता है। दही दूध नहीं हो सकती। निद्रा से जागरण आ सकता है लेकिन जागरण से फिर निद्रा का कोई उपाय नहीं।

जागरण की एकमात्र विधि है कि हम जागने की कोशिश करें। जो भी हम कर रहे हैं उसमें हम जागे हुए होने की कोशिश करें। जैसे अभी आप मुझे सुन रहे हैं। तो आप दो तरह से सुन सकते हैं। बिल्कुल सोए हुए सुन सकते हैं। सोए हुए सुनने में मैं बोल रहा हूँ, आपके कानों पर चोट पड़ रही है, आप मौजूद नहीं हैं। सोए हुए सुनने का मतलब है—मैं बोलूँगा, सुनेंगे भी आप और नहीं भी सुनेंगे। सुनेंगे इन अर्थों में कि आपके पास कान हैं तो कानों पर आवाज की चोट पड़ती रहेगी, भीतर ध्वनि गूँजती रहेगी। कान समझेंगे कि सुनाई पड़ रहा है। लेकिन आप अगर मौजूद नहीं हैं, भीतर से अनुपस्थित हैं, कहीं और हैं तो आप सो गए हैं। एक युवक हाकी खेल रहा है, पैर में चोट लग गई है, खेलने में मस्त है, पैर से खून बह रहा है, सारे दर्शकों को दिखाई पड़ रहा है कि पैर से खून टपक रहा है, जगह-जगह बिन्दुओं की कतार बन गई है लेकिन उसे कोई पता नहीं। उसका ही पैर है, उसे पता नहीं। बात क्या है ? वह पैर के पास अनुपस्थित है। वह खेल में उपस्थित है। जहाँ ध्यान है, जहाँ उपस्थिति है, वहाँ वह है। जहाँ ध्यान नहीं है, जहाँ उपस्थिति नहीं, वहाँ निद्रा है। खेल खत्म हुआ और एकदम से उसने पैर पकड़ लिया। ओफ ! मैं तो मर गया, कितनी चोट लग गई, कितना खून बह गया। इतनी देर मुझे पता क्यों नहीं चला ? पता हमें केवल उसका चलता है जहाँ हम उपस्थित होते हैं। अगर ठीक से समझें तो ध्यान की अनुपस्थिति ही निद्रा है। जो हम कर रहे हैं अगर ध्यान वहाँ अनुपस्थित है तो निद्रा है। और अगर ध्यान वहाँ उपस्थित है तो जागरण है। प्रत्येक क्रिया में ध्यान उपस्थित हो जाए तो जागरण शुरू हो

गया। महावीर जिसको विवेक कहते हैं, उसका यही अर्थ है। **क्रिया में ध्यान की उपस्थिति का नाम विवेक है और क्रिया में ध्यान की अनुपस्थिति का नाम प्रमाद है।**

महावीर का एक भक्त सम्राट् उनसे मिलने आया। रास्ते में ही उस सम्राट् के बचपन का एक साथी महावीर से दीक्षित होकर तपश्चर्या कर रहा है। सम्राट् ने सोचा कि अपने मित्र को भी देखते चलें। जब वह मित्र के पास गया तो उसने देखा कि वह जो कि कभी एक राजा था नग्न खड़ा है, आँखें बंद हैं, एकदम शान्त है। सम्राट् ने उसे नमस्कार किया और मन में कामना की कि कब ऐसी शान्ति मुझे भी उपलब्ध होगी। फिर वह महावीर से मिलने गया और पूछा : मैंने प्रसन्नचन्द्र को देखा खड़े हुए। वह अत्यन्त शान्त है, कितना अद्भुत हो गया है वह। ईर्ष्या होती है मन में। मैं पूँछता हूँ आप से कि इस शान्त अवस्था में अगर उसकी देह छूट जाए तो वह कहाँ जाएगा ?' महावीर ने कहा कि जिस वक्त तुम वहाँ से गुजर रहे थे, अगर उस वक्त प्रसन्नचन्द्र की देह छूट जाती तो वह सातवें नरक में गिरता। सम्राट् एकदम हैरान हो गया। उसने कहा : क्या कहते हैं आप ? सातवें नरक में ? तो हमारा क्या होगा ? सातवें नरक के नीचे और भी नरक हैं क्या ? अगर वह शान्त मुद्रा में खड़ा हुआ सातवें नरक में गिरेगा तो हमारा क्या होगा ? महावीर ने कहा : नहीं, तुम समझे नहीं मेरा मतलब। जब तुम आए, तब वह ऊपर से शान्त दिखाई पड़ रहा था। भीतर बड़ी कठिनाई में पड़ा था। तुमसे पहले ही तुम्हारे वजीर निकले थे; तुम्हारे सैनिक निकले थे। और उन्होंने भी खड़े होकर उसे देखा था और एक वजीर ने कहा था, देखो ! मूर्ख सब छोड़-छाड़ कर यहाँ खड़ा है। छोटे-छोटे बच्चे हैं इसके। दूसरों के हाथ में सब छोड़ आया है। वे सब हड़पे जा रहे हैं। जब तक बच्चे बड़े होंगे तब तक सब समाप्त हो जाएगा। इसने किया है विश्वास और उधर विश्वासघात हो रहा है। और यह मूर्ख बना यहाँ खड़ा है। ऐसा उसके सामने कहा था। ऐसा जैसे उसने सुना उसका हाथ तलवार पर चला गया जो अब नहीं था। लेकिन सदा थी तलवार उसके बगल में। हाथ तलवार पर चला गया। तलवार उसने बाहर निकाल ली। उसने कहा : वे क्या समझते हैं अपने को; अभी मैं जिन्दा हूँ, अभी मैं मर नहीं गया, एक-एक की गरदन उतार दूँगा। और जब तुम उसके पास आए तब वह गरदनें उतार रहा था उस वक्त। अगर वह मर जाता तो सातवें नरक में पड़ जाता। क्योंकि वह जहाँ था वहाँ नहीं था। वह गहरी निद्रा में चला गया था। वह

सपना देख रहा था। क्योंकि न तलवार थी हाथ में, न वजीर थे सामने लेकिन सपने में गर्दन काट रहा था। तुम जब निकले वहाँ से अगर वह उस समय मर जाता तब वह सातवें नरक में गिर जाता। लेकिन अब अगर पूछते हो इस वक्त तो वह श्रेष्ठतम स्वर्ग पाने का हकदार हो गया है। लेकिन सम्राट् ने कहा : अभी घड़ी भर भी नहीं हुआ हमें वहाँ से गुजरे। महावीर ने कहा कि जब उसने तलवार रख दी नीचे तो जैसी उसकी सदा आदत थी युद्धों के बाद अपने मुकुट को संभालने की, वह सिर पर हाथ ले गया। लेकिन सिर पर तो घुटी हुई खोपड़ी थी। वहाँ कोई मुकुट न था। तब एक सेकेन्ड में वह जाग गया—सारी निद्रा से वापस आ गया। सब स्वप्न खंड-खंड हो गए। और उसने कहा कि 'मैं यह क्या कर रहा हूँ ? और मैं वह प्रसन्नचन्द्र नहीं हूँ अब जो तलवार उठा सके। उसके उठाने का तो मैं ख्याल छोड़ कर आया हूँ।' और क्षण में वह लौट आया है। इस समय वह बिल्कुल वहीं खड़ा है। अभी वह स्वर्ग का हकदार है।

हम सोए हैं तो हम नरक में हो जाते हैं, हम जागे हैं तो स्वर्ग में हो जाते हैं। यह जागने की चेष्टा हमें सतत करनी पड़ेगी। जन्म-जन्म भी लग सकते हैं। एक क्षण में भी हो सकता है। कितनी तीव्र हमारी प्यास है, कितना तीव्र संकल्प है—इस पर निर्भर करेगा। तो महावीर ने अपने पिछले जन्मों में अगर कुछ भी साधा है तो साधा है विवेक, साधा है जागरण। और इस जागरण की जितनी गहराई बढ़ती चली जाती है उतने ही हम मुक्त होते चले जाते हैं क्योंकि बंधने का कोई कारण नहीं रह जाता। उतने ही हम पुण्य में जीने लगते हैं क्योंकि पाप का कोई कारण नहीं रह जाता। उतने ही हम अपने में जीने लगते हैं क्योंकि दूसरे में जीना भ्रामक हो जाता है। उतना ही व्यक्ति शान्त है, उतना ही अनन्दित है, जितना जागा हुआ है। जिस दिन पूर्ण जागरण की घटना घट जाती है; चेतना के कण-कण जागृत हो उठते हैं; कोने-कोने से निद्रा विलीन हो जाती है। उस दिन के बाद फिर लौटना नहीं। उस दिन के बाद फिर परिपूर्ण जागना। ऐसी परिपूर्ण जागी हुई चेतना ही मुक्त चेतना है। सोई हुई चेतना, बंधी हुई चेतना है। इसलिए ध्यान से समझ लें कि पाप नहीं बांधता है कि हम पुण्य से उसको मिटा सकें। मूर्च्छा बाँधती है। मूर्च्छित पाप भी बाँधता है, मूर्च्छित पुण्य भी बांधता है। मूर्च्छित असंयम भी बाँधता है, मूर्च्छित संयम भी बाँधता है। और इसलिए यह बहुत समझ लेने जैसा है कि अगर कोई असंयम से संयम बनाने में लग गया है तो कुछ भी न होगा; पाप को पुण्य बनाने

में लग गया है तो कुछ न होगा; क्रूरता को दया बनाने में लग गया है तो भी कुछ न होगा; क्योंकि वह व्यक्ति केवल क्रिया को बदल रहा है और उसके भीतर की चेतना वैसी की वैसी अमूच्छित बनी है और कई बार उल्टा भी हो जाता है। उल्टे का मतलब यह कि कई बार लोहे की जंजीर ही ठीक है क्योंकि उसे तोड़ने का मन भी करता है। और सोने की जंजीर गलत है क्योंकि उसे संभालने का मन करता है; क्योंकि सोने की जंजीर को जंजीर समझना मुश्किल है। सोने की जंजीर को आभूषण समझना आसान है। इसलिए पापी भी कई बार जागने के लिए आतुर हो जाता है। और जिसे हम साधु कहते हैं, वह जागने के लिए आतुर नहीं होता। फर्क ऐसा ही है जैसे कोई आदमी दुखद स्वप्न देख रहा है और एक आदमी सुखद स्वप्न देख रहा है लेकिन सुखद स्वप्न देखने वाला जागना नहीं चाहता। वह चाहता है कि थोड़ी देर और सो लूँ। सपना बहुत सुखद है, कोई तोड़ न दे। और थोड़ी देर सो लूँ। लेकिन दुखद स्वप्नवाला, (दुःस्वप्न) वाला, एकदम जाग जाता है हड़बड़ा कर। पापी दुखद स्वप्न देख रहा है। पुण्यात्मा सुखद स्वप्न देख रहा है। इसलिए बहुत बार डर है कि पापी जाग जाए, पुण्यात्मा रह जाए। मैं यह कहता हूँ कि इसकी फिक्र ही मत करना कि पाप को कैसा पुण्य बनाएँ, असंयम को कैसे संयम बनाएँ, हिंसा को कैसे अहिंसा बनाएँ, कठोरता को कैसे दया बनाएँ। इस चक्कर में ही मत पड़ना। सवाल यह है ही नहीं कि हम क्रिया को कैसे बदलें। सवाल यह है कि कर्त्ता कैसे बदले ? अगर कर्त्ता बदल जाता है तो क्रिया भी बदल जाती है। क्योंकि तब व्यक्ति किसी क्रिया के करने में असमर्थ और किसी क्रिया के करने में समर्थ हो जाता है। भीतर से कर्त्ता बदला, चेतना बदली।

तो मैं कहता हूँ कि पाप वह है जो सजग व्यक्ति नहीं कर सकता है और पुण्य वह है जो जागे हुए व्यक्ति को करना ही पड़ता है। इसलिए ऐसे भी पुण्य हैं जो किए हुए पाप हैं क्योंकि आदमी ही सोया हुआ है। दिखता पुण्य है, वह होगा पाप ही क्योंकि आदमी ही सोया हुआ है। सोया हुआ आदमी कैसे पुण्य कर सकता है ? इसलिए पुण्य दिखाई पड़ेगा, भीतर पाप छिपा होगा। और ऐसा भी सम्भव है कि जागा हुआ व्यक्ति कुछ ऐसे काम करे जो आपको पाप लगें मगर वे पाप न हों। क्योंकि जागा हुआ व्यक्ति पाप कर ही नहीं सकता। इसलिए दोनों तरह की भूलें सम्भव हैं।

कबीर को एक रात ऐसा हुआ। कबीर थोड़े से जागे हुए लोगों में से एक हैं। रोज लोग आते हैं कबीर के घर सुबह, भजन-कीर्तन चलता है, कबीर के

पास बैठते हैं, फिर जाने लगते हैं। कबीर कहता है खाना तो खा जाओ। कभी दो सो, कभी चार सौ गरीब आदमी। कबीर का बेटा और पत्नी परेशान हो गए। और उन्होंने कहा—हमारी बरदाश्त के बाहर है। हम कैसे सम्भाल पाएँ, कैसे इन्तजाम करें? आपने इतना कह दिया कि 'भोजन कर जाओ।' यह भोजन हम कहाँ से लाएँ? कबीर ने कहा कि भोजन लाने की व्यवस्था इतनी कठिन नहीं है जितनी घर आए आदमी को खाने के लिए न कहें, यह कठिन है। यह हो नहीं सकता कि कोई घर में आए और मैं उसको कहूँ कि खाना मत खाओ। तो आप कुछ इन्तजाम करो। आखिर कब तक इन्तजाम चलता। उधारी भी ले ली गई। उधारी भी चढ़ गई। फिर एक दिन साँझ लड़के ने कहा कि अब बरदश्त के बाहर हो गया है। कोई हम चोरी करने लगें? कबीर ने कहा : अरे यह तुम्हें ख्याल क्यों नहीं आया अब तक? लड़के ने क्रोध में कहा था लेकिन यह सुनकर लड़का हैरान हुआ कि कबीर कहते हैं कि तुम्हें चोरी करने का ख्याल क्यों नहीं आया? तब लड़के ने बात को जाँचने के लिए कहा : तो क्या मैं चोरी करने जाऊँ? कबीर ने कहा : हाँ! अगर मेरी जरूरत हो तो मैं भी चलूँ। लड़के ने और जाँचने के लिए कहा : अच्छा ठीक है, मैं चलता हूँ। उठो आप। पर उसकी समझ के बाहर हो गई यह बात कि कबीर और चोरी करें। समझ रहे हैं कबीर कि नहीं समझ रहे हैं कि मैं क्या कह रहा हूँ। फिर जाकर उस लड़के ने एक दीवाल खोद डाली, सेंध लगा दी। कबीर से कहता है : जाऊँ भीतर! कबीर कहते हैं : बिल्कुल चला जा। वह भीतर गया। वह वहाँ से एक बोरा गेहूँ खिसका कर लाया बाहर। बाहर बोरा निकल आया। कबीर उसे उठाने लगे और फिर उस लड़के से पूछा : घर के लोगों को कह आया है कि नहीं कि हम एक बोरा ले जाते हैं। तब लड़के ने कहा कि चोरी है यह। कोई दान में तो नहीं ले जा रहे, किसी ने भेंट तो नहीं की। तब कबीर ने कहा : यह नहीं हो सकता। तुम जा कर कह आ घर में कि हम चोरी करके एक बोरा ले जा रहे हैं। घर के मालिक को खबर तो कर देनी चाहिए।

बड़ी अद्भुत बात है। दूसरे दिन लोगों ने कबीर से पूछा तो कबीर ने कहा : बड़ी गलती हो गई। गलती इसलिए कि यह भाव ही चला गया कि क्या मेरा है, क्या उसका है। तब बाद में ख्याल आया कि चोरी तो उसी भाव का हिस्सा था कि वह उसकी चीज है, यह मेरी। जब मेरी कोई चीज न रही तो किसी की कोई चीज न रही। पर इतनी बात जरूर थी कि घर

से लाये थे; सुबह ढूंढेगा, परेशान होगा, इतनी खबर कर देनी चाहिए कि एक बोरा ले जाते हैं।

अब इस आदमी को समझना हमें बड़ा मुश्किल हो जाएगा। इसके चोरी करने में भी इतना अद्‌भुत पुण्य है क्योंकि उसे यह भाव ही खो गया है कि क्या दूसरे का है, क्या अपना? कबीर जैसा व्यक्ति अगर चोरी करने भी चला जाए तो भी पुण्य है। और हम जैसा व्यक्ति अगर दान भी करता हो तो भी चोरी है। क्योंकि दान में भी हमारी जो वृत्ति और मूर्च्छा होगी, वह चोरी की है। दान में भी हमें लगता है कि यह मेरा है और इसे मैं दे रहा हूँ। और कबीर को चोरी में भी नहीं लगता कि वह दूसरे का है और मैं ले रहा हूँ। यह जो फर्क हमें ख्याल में आ जाए तो वह दान हमारा पाप है क्योंकि उसमें 'मेरा' मौजूद है। और कबीर की चोरी को कोई परमात्मा कहीं बैठा हो तो पाप नहीं कह सकता क्योंकि वहाँ 'मेरा' नहीं है। हाँ इतनी बात थी कि घर के लोगों को खबर कर देनी थी, नहीं तो सुबह बेचारे ढूंढेंगे। वह जो खबर करवाने भेजी है, वह इसलिए नहीं कि चोरी बुरी चाज है, बल्कि इसलिए कि सुबह घर के लोग व्यर्थ में ही धूप में परेशान होंगे, खोजेंगे कि कहाँ चला गया बोरा। इतना जगाकर तू खबर कर आ, मैं घर चलता हूँ।

यह जो ऐसा बहुत बार हुआ है हमें समझना मुश्किल हो जाता है। अब जैसे कृष्ण ही हैं। अर्जुन समझ नहीं पाया कृष्ण को। अर्जुन समझ लेता तो बात ही और होती। अर्जुन भाग रहा है कि "ये मेरे प्रिय जन हैं, मर जाएँगे।" कृष्ण उसे कहते हैं: "पागल, कभी न कोई मरता है न कोई मारता है।" अब कृष्ण किस तल पर खड़े होकर कह रहे हैं, अर्जुन को कुछ खबर नहीं। अर्जुन जिस तल पर खड़ा है, वही समझेगा न? अर्जुन समझ रहा था—'मेरे हैं।' कृष्ण कहते हैं—'कौन किसका है', यह दो बिल्कुल अलग तलों पर बात हो रही है। और मैं समझता हूँ कि गीता को पढ़ने वाले निरन्तर इस भूल में पड़े हैं। क्योंकि बिल्कुल, भिन्न तलों पर यह बात हो रही है। अर्जुन कहता है—"ये मेरे प्रिय जन हैं, मेरे गुरु हैं। मेरे रिश्तेदार हैं।" कृष्ण कहते हैं: "कौन किसका है? कोई किसी का नहीं है। अपने ही तुम नहीं हो।" अर्जुन समझ लेता तो फिर ठीक था। मगर उसने गलत समझा। उसने समझा कि जब कोई अपना नहीं है तो मारा जा सकता है। पीड़ा तो अपने की होती है। अर्जुन कहता है कि मर जाएँगे तो पाप लगेगा। कृष्ण कहते हैं कि न कभी कोई मरा और न कभी किसी ने मारा। शरीर के मारने से कहीं वह मरता है,

जो भीतर है। यह बिल्कुल और तल से कही जा रही है बात। अर्जुन सोचता है कि जब कोई मरता ही नहीं तो मारने में हर्ज ही क्या है? मारो। और यह भूल निरन्तर चलती रही है। यानी मैं मानता हूँ कि अगर अर्जुन कृष्ण को ठीक समझ जाता तो महाभारत का युद्ध कभी नहीं हो सकता था। लेकिन अर्जुन समझा ही नहीं। और समझने की कठिनाई जो थी वह भी मैं मानता हूँ। कठिनाई यही है कि कृष्ण जिस चेतना में खड़े होकर कह रहे हैं, वह अर्जुन की चेतना नहीं है। सवाल अर्जुन की चेतना को बदलने का है। जो अर्जुन ने समझा, वह उसने किया। अब अगर कबीर का बेटा—कल कबीर मर जाए, और कल उसके घर में खाना न हो तो चोरी कर लाएगा क्योंकि वह कहेगा कि चोरी में पाप ही क्या है? क्योंकि खुद कबीर ने साथ दिया था चोरी में। लेकिन कबीर जिस चोरी को गया था, वह बात और थी। और कमाल उसका बेटा जिस चोरी को चला जाए वह बात और है। यह दो तल की बातें थीं जिनमें भूल हो जानी सम्भव है। और ऐसी ही भूल कृष्ण और अर्जुन के बीच हो गई है और वह भूल अब तक नहीं मिट सकी। और हजार-हजार टीकाएँ लिखी गई हैं गीता पर। लेकिन किसी को भूल ख्याल में नहीं। भूल बुनियादी हो गई है। दो अलग चेतनाओं के बीच में हुई बात में निरन्तर भूल हो गई है। क्योंकि जो कहा गया वह समझा नहीं गया। जो समझा गया वह कहा नहीं गया। इसलिए मेरा जोर निरन्तर यह है कि हम कर्म को बदलने के विचार में न पड़ें, हम चेतना को बदलने के विचार में पड़ें क्योंकि चेतना से कर्म आता है। चेतना बदल जाती है तो कर्म बदल जाते हैं।

महावीर की पूरी साधना विवेक की साधना है, संयम की साधना नहीं। क्योंकि विवेक से संयम छाया की तरह आता है। लेकिन निरन्तर यह समझा गया है कि महावीर संयम की साधना कर रहे हैं। और वह बुनियादी भूल है।

प्रश्न : मुक्त आत्माओं में करुणा शेष रह जाती है और करुणा भी वासना का ही एक सूक्ष्म रूप है—ऐसा आपने कहा। वासना में सदा द्वन्द्व रहता है। सदा दो रहते हैं—परस्पर विरोधी दो। ऐसी स्थिति में करुणा का विरोधी कौन सा तत्त्व है, जो मुक्त आत्माओं में शेष रह जाता है?

उत्तर : पहली बात यह है कि करुणा वासना का सूक्ष्म रूप है—ऐसा नहीं। करुणा वासना का अन्तिम रूप है। इन दोनों में भेद है। अन्तिम रूप से मेरा

मतलब है कि वासना और निर्वासना के बीच जो सेतु है—चाहे हम करुणा को वासना का अन्तिम रूप कहें, चाहे करुणा को निर्वासन का प्रथम रूप कहें, यह बीच की कड़ी है, जहाँ वासना समाप्त होती है और निर्वासना शुरू होती है,। करुणा सूक्ष्म रूप नहीं है वासना का। अगर सूक्ष्म रूप हो तो करुणा में भी द्वन्द्व रहता ही है। इसलिए वासना में दुःख है क्योंकि जहाँ द्वन्द्व है, वहाँ दुःख है। वासना चाहे कितनी ही सुखद हो, उसके पीछे उसका दुखद रूप खड़ा ही रहेगा। सब वासनाएँ एक सीमा पर अपने से विपरीत में बदल जाती हैं। प्रत्येक वासना का विरोधी तत्क्षण मौजूद ही रहता है। वह कभी अलग होता ही नहीं। जब हम प्रेम की बात करते हैं, तभी घृणा खड़ी हो जाती है। जब हम क्षमा की बात करते हैं, तभी क्रोध खड़ा हो जाता है। जब हम दया की बात करते हैं, तभी कठोरता आ जाती है। यानी अगर ठीक से समझें तो दया कठोरता का ही अत्यन्त कम कठोर रूप है। यानी जो फर्क वह वह इस तरह का जैसे ठंडे और गरम में। गरम ठंडे में फर्क क्या है? गरम-ठंडी दो चीजें नहीं है। ये एक ही तापमान के दो तल हैं। हम ऐसा समझें तो ठीक समझ में आ जाएगा। एक बर्तन में गरम पानी रखा है। दूसरे बर्तन में बिल्कुल ठंडा पानी रखा है। आप दोनों में अपने दोनों हाथ डाल दें। एक आइसकोल्ड ठंडे पानी में, एक उबलते हुए गरम पानी में। फिर दोनों हाथों को निकालकर एक ही बाल्टी में डाल दें, जिसमें साधारण पानी रखा है। और तब आप हैरान रह जाएँगे। आपका एक हाथ कहेगा कि पानी बहुत ठंडा है। और आपका दूसरा हाथ कहेगा कि पानी बहुत गरम है। और पानी बिल्कुल एक बाल्टी में है। आपके हाथ की ठंडक और गर्मी पर निर्भर करेगा कि आप इस पानी को क्या कहते हैं। और आप बड़ी मुश्किल में पड़ जाएँगे कि इस पानी को क्या कहें? क्योंकि एक हाथ खबर दे रहा है कि पानी ठंडा है, दूसरा हाथ खबर दे रहा है कि पानी गरम है।

कठोरता और दया इसी तरह की चीजें हैं। इनमें जो भेद है, वह भेद अनुपात का है। तब यह भी हो सकता है कि एक बहुत कठोर आदमी को जो चीज बहुत दयापूर्ण मालूम पड़े, एक बहुत दयापूर्ण आदमी को वह चीज बहुत कठोर मालूम पड़े। वह तो सापेक्ष होगा। तैमूरलंग जैसे आदमी को जो बात बहुत दयापूर्ण मालूम पड़े वह गाँधी जैसे आदमी को अत्यन्त कठोर मालूम पड़ सकती है। दोनों हाथ हैं लेकिन एक ठंडा, एक गरम। तो पानी की खबर वे वैसी देंगे। नैतिक पुरुष इसी द्वन्द्व में जीता है, इसके बाहर नहीं जाता। वह

कहता है—कठोरता छोड़ो, दया पकड़ो; शोषण छोड़ो, दान पकड़ो; हिंसा छोड़ो, अहिंसा पकड़ो। नैतिक व्यक्ति कहता है कि जो बुरा है, उसे छोड़ो; जो अच्छा है उसे पकड़ो। लेकिन, वह यह भूल जाता है कि जिसे वह अच्छा कह रहा है, वह उसी बुरे की अत्यन्त छोटी, कम विकसित अवस्था है। वह उससे भिन्न और विरोधी नहीं है। लेकिन जैसे ही व्यक्ति वासना से निर्वासना के जगत् में प्रवेश करता है तो बीच की एक बफर स्टेज, जिसको कहना चाहिए दो अवस्थाओं के बीच का रिक्त स्थान, उसमें भी करुणा सेतु है। करुणा कठोरता का उल्टा नहीं है। करुणा और दया समानार्थक नहीं हैं। दया कठोरता की प्रहरी है इस फर्क को ठीक से समझ लेना उपयोगी होगा। जब मैं किसी व्यक्ति पर दया करता हूँ तब ध्यान में दूसरा व्यक्ति होता है जिस पर मैं दया कर रहा हूँ। भूखा है, दयायोग्य है। दया दूसरे की दीनता पर, दुख पर, दरिद्रता पर निर्भर करती है। दूसरा केन्द्र में होता है। और जब मैं कठोर होता हूँ तब भी दूसरा केन्द्र में होता है। यह दूसरा दुश्मन है, बुरा है; उसे मिटाना जरूरी है। दया और अदया—दोनों में दृष्टि बिन्दु दूसरे पर होती है। करुणा का दूसरे से कोई सम्बन्ध नहीं। दूसरा कैसा है, करुणा का इससे प्रयोजन नहीं। मैं कैसा हूँ, यह प्रयोजन है। मैं करुणापूर्ण हूँ।

जैसे एक दिया जल रहा है और उससे रोशनी बरस रही है। पास से कोई निकलता है, इससे दिया रोशनी कम और ज्यादा नहीं करता। कौन पास से निकलता है—अच्छा या बुरा आदमी, दीन, दरिद्र, या धनवान्, हारा हुआ कि जीता हुआ, दिया जलता रहता है। कोई नहीं निकलता तब भी जलता रहता है। क्योंकि दिए का जलना दूसरे पर निर्भर नहीं करता। दिए का जलना उसकी अन्तर अवस्था है। एक भिखारी सड़क पर निकला तो आप दयापूर्ण हो गये। लेकिन अगर एक सम्राट् निकला तो फिर आप कैसे दयापूर्ण होंगे? भिखारी निकला तो आप दयापूर्ण होंगे और सम्राट् निकला तो आप दया की आकांक्षा करेंगे। क्योंकि दया दूसरे से बंधी थी, आप पर निर्भर नहीं थी। लेकिन महावीर जैसे व्यक्ति के पास से कोई निकले—दीन, भिखारी या सम्राट्—इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। करुणा बरसती रहेगी, सम्राट् पर भी उतनी ही, भिखारी पर भी उतनी ही क्योंकि करुणा दूसरे पर निर्भर नहीं करती है। महावीर का दिया है जो जल रहा है, जिससे रोशनी बरस रही है। इसलिए करुणा को कोश शब्द में जो दया का पर्यायवाची बताया जाता है वह बुनियादी भूल है। एकदम भूल है। दया बात ही और है। दया कोई अच्छी चीज नहीं। हाँ, बुरी चीजों में अच्छी है।

करुणा बात ही और है। करुणा से विपरीत कुछ भी नहीं है। करुणा में द्वन्द्व नहीं है। दया में द्वन्द्व है क्योंकि दया सकारणा है। वह आदमी दीन है, इसलिए दया करो; वह आदमी भूखा है, इसलिए रोटी दो, वह आदमी प्यासा है, इसलिए पानी दो। उसमें दूसरे आदमी की शर्त है। करुणा है बिना शर्त। दूसरा कैसा है इससे इसका कोई सम्बन्ध नहीं। मैं करुणा दे सकता हूँ। इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि वह कैसा है, कौन है, क्या है? अगर कोई भी नहीं तो भी करुणापूर्ण व्यक्ति अकेले में खड़ा है। अगर महावीर एक वृक्ष के नीचे अकेले खड़े हैं, कई दिन बीत जाते हैं और कोई नहीं निकलता वहाँ से तो भी करुणा झरती रहती है। जैसे एक फूल खिला है निर्जन में और उसकी सुगन्ध फैल रही है। रास्ते से कोई निकलता है तो उसे मिल जाती है, अगर कोई नहीं निकला तो भी झरती रहती है। सुगंध देना फूल का स्वभाव है। राहगीर को देखकर नहीं कि कौन निकल रहा है। इसको जरूरत है कि नहीं यह सवाल ही नहीं। यह फूल का आनन्द है। करुणा एक अन्तर अवस्था है, दया अन्तः सम्बन्ध है, अन्तर अवस्था नहीं। मैं किससे जुड़ा हूँ, दया इस पर निर्भर करती है। मैं इधर से भी ले सकता हूँ, उधर से भी ले सकता हूँ। मैं किससे जुड़ा हूँ इस पर निर्भर करेगी यह बात। मगर करुणा अन्तर अवस्था है और वासना का अन्तिम छोर है अन्तिम छोर इन अर्थों में कि उसके बाद फिर निर्वासना का जगत शुरू हो जाता है या निर्वासना का प्रथम छोर है क्योंकि उसके बाद निर्वासना शुरू हो जाती है।

वासना का जगत् द्वन्द्व का जगत् है। यह थोड़ा समझने जैसा होगा। वासना द्वैत का जगत् है—जहाँ दो के बिना काम नहीं चलता। सब चीजें विरोधी होंगी। अंधेरा प्रकाश, जन्म मृत्यु—ऐसा जहाँ विरोध होगा। वासना और निर्वासना के बीच में अद्वैत का सेतु है। वासना है द्वैत—जहाँ हम स्पष्ट कहेंगे : दो हैं। और बीच का सेतु है अद्वैत—जहाँ हम कहेंगे : दो नहीं हैं। अभी हम दो का उपयोग करेंगे। पहले कहते थे, दो हैं, अब हम कहेंगे—'दो नहीं हैं।' निर्वासना का जो जगत् है वहाँ तो हम यह भी नहीं कह सकते कि अद्वैत है। क्योंकि वहाँ 'दो' का शब्द भी उठाना गलत है। वासना में संख्या का सवाल है; निर्वासना में संख्या का सवाल ही नहीं। यानी यह भी कहना गलत है वहाँ कि 'दो नहीं हैं।' बीच का जो सेतु है, वहाँ हम कह सकते हैं कि 'दो नहीं हैं' क्योंकि वासना छूट गई है और निर्वासना अभी आ रही है। बीच के अन्तराल में करुणा है। करुणा अद्वैत है। अद्वैत के भी ऊपर एक लोक है,

जहाँ से यह भी कहना गलत है कि 'अद्वैत' अर्थात् जहाँ हम कहें 'दो नहीं'। पहले 'दो हैं' ऐसी एक सार्थकता थी; फिर दो नहीं ऐसी एक सार्थकता थी; अब कुछ भी कहना मुश्किल है। मौन हो जाना ही ठीक है। अब 'एक', 'दो' या 'तीन' का कोई सवाल ही नहीं उठता। वह है निर्वासना। लेकिन, इसके पहले कि हम संख्या से असंख्या में पहुँचे, सीमा से असीमा में पहुँचे, बीच में निषेध का एक क्षण, निषेध की एक यात्रा है। वह है करुणा जिसका कोई विरोधी ही नहीं है। दया का विरोधी है, करुणा का विरोधी नहीं है। बुद्ध ने करुणा कहा है महावीर उसे अहिंसा कहते हैं; जीसस उसे प्रेम कहते हैं। ये शब्दों की पसंदगियाँ हैं। ये सभी शब्द सेतु पर इंगित करते हैं करुणा से गुजरना पड़ेगा, बुद्ध कहते हैं। अहिंसा से गुजरना पड़ेगा, महावीर कहते हैं। प्रेम से गुजरना पड़ेगा, जीसस कहते हैं। यह सिर्फ शब्द भेद है; सेतु एक ही है जहाँ से हम द्वन्द्व से छूटते हैं और द्वन्द्व-मुक्त में जाते हैं। बीच में एक जगह है जिसे मैंने कहा है करुणा, अहिंसा, प्रेम। इसका विरोधी कोई भी नहीं। कुछ चीजों के विरोधी होते हैं, कुछ चीजों के विरोधी नहीं होते। जिनके विरोधी नहीं होते, वे सेतु बनते हैं। और फिर आगे तो न पक्ष है, न विपक्ष है; विरोधी का सवाल ही नहीं है क्योंकि वह ही नहीं है जिसका विरोधी हुआ जा सके।

प्रश्न : द्रष्टा-भाव में संसार स्वप्न है, ऐसा आपका कहना है। किन्तु यह व्यक्तिपरक दृष्टिकोण की बात हुई। वस्तुपरक दृष्टि से संसार क्या स्वप्न ही है? इस सम्बन्ध में महावीर की दृष्टि शंकराचार्य के मायावाद से कहाँ भिन्न है?

उत्तर : मैंने कल रात कहा था कि अगर स्वप्न में कर्त्ता भाव आ जाए तो स्वप्न सत्य हो जाता है। इससे ठीक उल्टे, अगर सत्य में, यथार्थ में कर्ता भाव आ जाए तो वह सत्य भी स्वप्न हो जाता है। इसमें अहंकार ही सूत्र है। चाहे तो स्वप्न को सत्य बना लो, और चाहो तो सत्य को स्वप्न कर दो। यह मैंने कल कहा था। उसी सम्बन्ध में यह प्रश्न है। इसका यह मतलब हुआ कि अगर हम समझ लें कि जगत् स्वप्न है तो क्या सचमुच ही जगत् नहीं है या कि यह स्वप्न होने का भाव शिर्फ मेरा आत्मपरक ही है। मुझे ऐसा लग रहा है कि यह मकान नहीं है, सपना है तो क्या इसका यह मतलब मान लिया जाए कि सच में ही मकान नहीं है, खाली जगह है यह। जैसा कि रात सपने का मकान खो जाता है ऐसे ही यह मकान भी क्या इतना ही असत्य है? तो फिर

शंकर के मायावाद में कि सब जगत् माया है, और महावीर के द्वैतवाद में—क्योंकि महावीर जगत् को माया नहीं कहते हैं—क्या फर्क है ?

इसमें बहुत बातें समझनी होंगी। पहली बात यह कि स्वप्न भी असत्य नहीं है। स्वप्न का भी अस्तित्व है। जब आप सपना देखते हैं तो आप सुबह जाग कर कहते हैं कि 'सब सपना था, कुछ भी न था।' लेकिन जो न हो तो सपने तक भी नहीं हो सकता है। स्वप्न के बाबत बड़ी भ्रान्ति है। स्वप्न असत्य नहीं है। स्वप्न की अपनी तरह की सत्ता है, अपने तरह का सत्य है उसमें। वह सूक्ष्म मानस परमाणुओं का लोक है; तरल परमाणुओं का लोक है। असत्य नहीं है। असत्य का मतलब होता है जो है ही नहीं। तो तीन चीजें हैं। असत्य, जो है ही नहीं। सत्य, जो है। और इन दोनों के बीच में एक स्वप्न है जो न तो इन अर्थों में नहीं है जिन अर्थों में खरगोश के सींग या बांझ माँ का बेटा। और न इन अर्थों में है जैसे पहाड़। जो दोनों के बीच है, जो हो भी किसी सूक्ष्म अर्थ में, और जो न भी हो किसी सूक्ष्म अर्थ में। शंकर का भी 'माया' से यही मतलब है। शंकर कहते हैं तीन यथार्थ हैं—सत्, असत् और माया। माया को मिथ्या कहिए तो भी कोई फर्क नहीं पड़ता। लेकिन मिथ्या से लोगों को ख्याल होता है कि जो नहीं है। एक तो ऐसी चीज है जो है ही नहीं और एक ऐसी चीज है, जो बिल्कुल है। और, एक ऐसी चीज है, जो दोनों के बीच में है, जिसमें दोनों के गुण मिलते हैं।

स्वप्न असत्य नहीं है। हाँ, जागरण-जैसा वह सत्य नहीं है। स्वप्न का अपना सत्य है। और अगर स्वप्न के सत्य की खोज में कोई जाए तो जितना सत्य उसे बाहर की दुनिया में मिल सकता है, उतना ही सत्य वहाँ भी मिल सकता है। लेकिन हम तो बाहर की दुनिया में ही नहीं जा पाते, स्वप्न की दुनिया में जाना तो बहुत मुश्किल है। क्योंकि बिल्कुल छायाओं का लोक है वह जहाँ अत्यन्त तरल चीजें हैं जिनको मुट्ठी में बाँधना मुश्किल है। स्वप्न में भी खोज की जा सकती है, और होती रही है। जो लोग स्वप्न-लोक की गहराइयों में गए हैं वे बहुत हैरान हो गए हैं कि जिसको हम स्वप्न कहते हैं वह बहुत गहरे अर्थों में हमारे सत्य लोक से जुड़ा है। बहुत से स्वप्न हमारे पिछले जन्मों की स्मृतियाँ हैं; बहुत से स्वप्न हमारे भविष्य की झलक हैं बहुत से स्वप्न हमारी अन्तर्यात्राएँ हैं मनोजगत् में, जिनका हमें पता नहीं चलता क्योंकि इस देह से वे यात्राएँ नहीं होतीं, सूक्ष्म देहों से होती हैं।

तो मैं स्वप्न को असत्य नहीं कहता हूँ। फर्क इतना ही कर रहा हूँ कि स्वप्न में जो सत्य दिखाई पड़ता है, वह स्वप्न के सत्य होने से नहीं आता। वह हमारे कर्त्ता होने से आता है। और हमारा कर्त्तापन मिट जाए तो हमारे लिए स्वप्न मिट जाएगा, स्वप्न का सत्य तो बना ही रहेगा। अगर हमारा कर्त्तापन का भाव मिट जाए, अगर मैं नींद में जाग जाऊँ और मुझे ख्याल आ जाए कि यह स्वप्न है और मैं तो सिर्फ स्वप्न देख रहा हूँ तो एकदम विलीन हो जाएगा। इसका यह मतलब नहीं कि स्वप्न के सत्य नष्ट हो गए। स्वप्न के सत्य अपने बल पर बने रहेंगे।

कर्त्ताभाव से स्वप्न में सत्य प्रकट हुआ था। अब वह अप्रकट हो गया। ठीक ऐसे ही जागने में जो चीजें हमें दिखाई पड़ रही हैं वे हैं। उनकी अपनी सत्ता है। महावीर को भी निकलना हो, शंकर को भी निकलना हो तो दरवाजे से निकलेंगे, दीवाल से नहीं निकलेंगे। माया या स्वप्नवत् कहने का मतलब बहुत दूसरा है। वह यह है कि दीवाल यानी वस्तु का अपना एक सत्य है। लेकिन वह सत्य एक बात है और हम कर्त्ता होकर, मोहग्रस्त, अहंग्रस्त होकर उस पर और सत्य प्रोजेक्ट कर रहे हैं जो कहीं भी नहीं है। जैसे एक मकान है, उसका अपना सत्य है। लेकिन यह मकान मेरा है यह बिल्कुल ही सत्य नहीं है। 'यह मेरा', बिल्कुल मेरे प्रक्षेप (प्रोजैक्शन) की बात है। मकान को पता भी नहीं होगा कि मैं किसका था और कई बार इसकी भ्रान्तियाँ गहरी हैं। जैसे कि हम कहते हैं कि यह देह मेरी है। आपको ख्याल होना चाहिए कि इस देह में करोड़ों कीटाणु जी रहे हैं और वे समझ रहे हैं कि यह देह उनकी है। और उनमें से किसी को पता नहीं कि आप भी इसमें हैं एक। आपका बिल्कुल पता नहीं। जब आपको कैंसर हो गया, घाव हो गया, नासूर हो गया और दस कीड़े उसमें पल रहे हैं तो आप सोच रहे हैं कि यह मेरी देह को खाए जा रहे हैं। कीड़ों को ख्याल भी नहीं हो सकता। कीड़ों की अपनी देह है, वह उसमें जी रहे हैं। जब आप उन्हें हटाते हैं, तो उनको स्वत्व से वंचित कर रहे हैं। आप समझ रहे हैं कि आपकी देह में कितने लोग देह बनाए हुए हैं। और वह अरबों, खरबों कीटाणु देह बनाए हुए हैं और सब यह मान रहे हैं कि उनकी देह है। जब हम यह कह रहे हैं कि वस्तु की अपनी सत्ता है, इस देह की अपनी सत्ता है तो 'मेरा है', यह धारणा बिल्कुल स्वप्नवत् हो जाती है। जिस दिन आप जागेंगे, देह रह जाएगी और अगर 'मेरा' न रह जाए तो 'देह' बहुत और अर्थों में प्रकट होगी, जिन अर्थों में वह कभी प्रकट नहीं हुई थी। 'मेरे' की

वजह से ही उसने दूसरा रूप ले लिया था। जब मैं कह रहा हूँ कि अगर हम जाग जाएँ, और कर्त्ता मिट जाए, साक्षी रह जाए तो भी वस्तुओं का सत्य रहेगा। लेकिन तब वह वस्तु सत्य रह जाएगी। और मैं उसमें कुछ प्रक्षेप (प्रोजेक्ट) नहीं करूँगा। और तब एक बहुत बड़ी दुनिया मिट जाएगी एकदम जिसको आप अपना बेटा कह रहे हैं, उसको आप अपना बेटा नहीं कहेंगे। अगर आप बिल्कुल 'साक्षी' हो गए तो आप सिर्फ पैसिव (निष्क्रिय) रह जाएँगे, एक द्वार रह जाएँगे जिससे वह व्यक्ति आया। लेकिन आप पिता नहीं रह जाएँगे। और बहुत गहरे में देखेंगे तो पता चलेगा कि आपने अपने शरीर का मैल छोड़ दिया है। इस मैल के आप पिता नहीं कहलाते और आप अपने वीर्य अणुओं के पिता कैसे हो सकते हैं। यह मैल भी शरीर में उसी तरह पैदा होता है जिस तरह वीर्य अणु पैदा होते हैं। यह नाखून आप काटकर फेंक देते हैं और यह बाल आप काटकर फेंक देते हैं, कभी नहीं कहते कि मैं इनका पिता हूँ। कभी लौट कर भी नहीं देखते इन्हें। जिस शरीर ने ये सब पैदा किए हैं उसी शरीर ने वीर्य अणु भी पैदा किए हैं। आप कौन हैं ? आप कहाँ हैं ? यानी मैं यह कह रहा हूँ कि अगर आप ठीक से साक्षी हो जाएँ तो कौन पिता है ? कौन बेटा है ? क्या मेरा है ? यह सब एकदम बिदा हो जाएगा। और ये अगर सारे अन्तः सम्बन्ध एकदम बिदा हो जाएँ तो जगत् बिल्कुल दूसरे अर्थों में प्रकट होगा। तब जगत् होगा, आप होंगे लेकिन बीच में कोई सम्बन्ध नहीं होगा। जो हम बाँधते हैं, वह सब बिदा हो जाएगा।

जब मैं यह कहता हूँ कि आप अगर जाग जाएँगे तो जगत् स्वप्नवत् हो जाएगा मेरा मतलब यह नहीं कि जगत् झूठा हो जाएगा। जगत् और अर्थों में रहेगा। जिन अर्थों में आज है, उन अर्थों में नहीं रह जाएगा। स्वप्न भी बचता है, वह कहीं खो नहीं जाता। उसकी भी सार्थकता है। और आप हैरान होंगे कि थोड़ी भी चेष्टा करें तो एक ही स्वप्न में हजार बार प्रवेश कर सकते हैं। हमको क्यों स्वप्न मिथ्या मालूम पड़ता है ? उसका कारण है कि आप स्वप्न में दुबारा प्रवेश नहीं कर पाते। और एक ही मकान में दुबारा जग जाते हैं तो मकान सच्चा मालूम होने लगता है क्योंकि बार-बार इसी मकान में आप जगते हैं रोज सुबह। यही मकान, यही दूकान, यही मित्र, यही पत्नी, यही बेटा— तो यह बार-बार घूमता है। अगर हर बार सुबह आप जागें और मकान दूसरा हो जाए तो आपको मकान का सत्य भी उतना ही झूठा लगेगा जितना स्वप्न का। क्या भरोसा कि कल सुबह क्या हो जाए ? सपने में आप एक ही बार जा पाते

हैं, दुबारा उस सपने को आप चालू नहीं कर पाते। क्योंकि आप जागने में ही अपने मालिक नहीं हैं, सोने की मालकियत तो बहुत दूर की बात है। आप सपने में कैसे जा सकते हैं? लेकिन इस तरह की पद्धतियाँ और व्यवस्थाएँ हैं कि एक ही स्वप्न में बार-बार जाया जा सकता है। तब आप हैरान रह जाएँगे कि स्वप्न इतना ही सत्य मालूम होगा जितना यह मकान। क्योंकि आज स्वप्न में एक स्त्री आपकी पत्नी थी तो कल वह नहीं रह जाएगी। कल आप खोजें कितना भी तो भी पता नहीं चलेगा कि वह कहाँ गई। लेकिन अगर ऐसा हो सके, और ऐसा हो सकता है कि रोज रात आप सोएँ और एक निश्चित स्त्री रोज रात सपने में आपकी पत्नी होने लगे, ऐसा दस वर्ष तक चले तो आप ग्यारहवें वर्ष पर यह कह सकेंगे कि रात झूठ है? आप कहेंगे जैसा दिन सच्चा है, वैसी रात भी सच्ची है। स्वप्न को स्थिर करने के भी उपाय हैं। उसी स्वप्न में रोज-रोज प्रवेश किया जा सकता है। तब वह सच्चा मालूम होने लगेगा। और अगर हम गौर से देखें तो रोज-रोज हम उसी मकान में सुबह जागते भी नहीं जिसमें हम कल सोए थे। क्योंकि मकान बुनियादी रूप से बदल जाता है। अगर हमारी दृष्टि उतनी भी गहरी हो जाए कि हम बदलाहट को देख सकें तो जिस पत्नी को आपने कल रात सोते वक्त छोड़ा था, सुबह आपको वही पत्नी उपलब्ध नहीं होती। उसका शरीर बदल गया, उसका मन बदल गया, उसकी चेतना बदल गई। उसका सब बदल गया। लेकिन उतनी सूक्ष्म दृष्टि भी नहीं है हमारी कि हम उतनी गहरी दृष्टि से जाँच कर सकें कि सब बदल गया है, यह तो दूसरा व्यक्ति है। इसलिए आप कल की अपेक्षा करके झंझट में पड़ जाते हैं। कल वह बड़ी शान्त थी। बड़ी प्रसन्न थी। आज सुबह से वह नाराज हो गई। आप कहते हैं कि ऐसा कैसे हो सकता है। क्योंकि आप अपेक्षा कल की लिए बैठे हैं। कल उसने बहुत प्रेम किया था और आज बिल्कुल पीठ किए हुए है। आपको लगता है कि यह कुछ गड़बड़ हो रहा है। लेकिन आपको ख्याल नहीं है कि सब चीजें बदल गई हैं। जिस दिन हम बहुत गहरे में इधर घुस जाएँ यानी अगर गहरे स्वप्न में चले जाएँ तो स्वप्न भी मालूम होगा वही है। और अगर गहरे सत्य में चले जाएँ तो पता चलेगा कि वही कहाँ है? रोज बदलता चला जा रहा है।

मेरा कहने का प्रयोजन यह है कि इन सारी स्थितियों में, चाहे स्वप्न, चाहे जागरण, अगर 'साक्षी' जग जाए तो बिल्कुल ही एक नई चेतना का जागरण होता है। लेकिन उससे कोई मिथ्या जगत् हो जाता है ऐसा नहीं। उससे सिर्फ

इतना हो जाता है कि जो कल तक जगत् हमने बनाया था वह विदा हो जाता है और एक बिल्कुल नया वस्तुपरक सत्य सामने आता है। जो हमने बनाया था, वह विदा हो जाता है।

महावीर उसके लिए 'माया' का प्रयोग नहीं करते क्योंकि 'माया' के प्रयोग से लगता है जैसे कि सब झूठ है। वे कहते हैं कि वह भी सत्य है। यह भी सत्य है। लेकिन दोनों सत्यों के बीच हमने बहुत से झूठ गढ़ रखे हैं, वे विदा हो जाने चाहिएँ। तब पदार्थ भी अपने में सत्य है और परमात्मा भी अपने में सत्य है। और बहुत गहरे में दोनों एक ही सत्य के दो छोर हैं। शंकर उसके लिए 'माया' का प्रयोग करते हैं, उसमें भी कोई हर्ज नहीं है क्योंकि जिसमें हम जी रहे हैं वह बिल्कुल माया जैसी बात है। एक आदमी रुपए गिन रहा है, ढेर लगाता जा रहा है, तिजोरी में बन्द करता जा रहा है। रोज गिनता है और रोज बन्द करता है। अगर हम उसके मनोजगत् में उतरें तो वह रुपयों की गिनती में जी रहा है। और बड़े मजे की बात है कि रुपयों में क्या है जिसकी गिनती में कोई जिए। कल सरकार बदल जाए और कहे कि पुराने सिक्के खत्म तो उस आदमी का पूरा का पूरा मनोलोक एकदम तिरोहित हो जाएगा। वह एकदम नंगा खड़ा हो गया। अब कोई गिनती नहीं है उसके पास। तो हम स्वप्न के जगत् में जी रहे हैं और ऐसे ही सिक्के हमने सब तरफ बना रखे हैं— परिवार के, प्रेम के, मित्रता के, जो कल सुबह एकदम बदल जाएँगे नियम बदल जाने से।

मुझे एक मित्र ने एक पत्र लिखा। बहुत बढ़िया पत्र था। कुछ लोग मेरे साथ थे, साथ नहीं रह गए। उन्होंने मुझे पत्र लिखा। और हम सबको यह भ्रान्ति होती है कि जो साथ है, वह सदा साथ है, यह बिल्कुल पागलपन है। जितनी देर साथ है, बहुत है। जिस दिन अलग हो गए, अलग हो गए। जैसे साथ होना एक सत्य था, वैसे अलग होना एक सत्य है। साथ ही बना रहे तो फिर हम एक माया के जगत् में जीना शुरू कर देते हैं। आप मेरे मित्र हैं, तो बात काफी है इतनी। आप कल भी मेरे मित्र हों, तो फिर मैंने एक कल्पना जगत् में जीना शुरू कर दिया। फिर मैं दुःख भी पाऊँगा, पीड़ा भी पाऊँगा। अपेक्षा मैंने बना ली। कल कौन कह सकता है क्या हो जाए? रास्ते कभी हमारे पास आ जाते हैं, कभी चले जाते हैं। कभी एक दूसरे का रास्ता कटता भी है। कभी बड़े फासले हो जाते हैं तो कुछ मित्र मुझे छोड़कर चले गए हैं। एक मित्र ने मुझे एक कहानी लिखी। उसने लिखा कि यूनान में एक बार ऐसा हुआ कि एक

साधु था एथेन्स नगर में। उस साधु पर मुकदमा चला। उसकी बातों को एथेन्स नगर के न्यायाधीशों ने कहा कि लोगों को बिगाड़ देने वाली हैं। इसलिए हम तुम्हें नगर निकाला देते हैं, नगर से बाहर किए देते हैं। साधु नगर से निकाल दिया गया। वह एथेन्स छोड़कर दूसरे नगर में चला गया। दूसरे नगर के लोगों ने उसका बड़ा स्वागत किया क्योंकि उस साधु की जो मान्यताएँ थीं उस नगर के लोगों से मेल खा गईं। उस नगर का एक नियम था कि जो भी नया आदमी उस नगर में मेहमान बने, सारा नगर मिलकर उसका मकान बना दे। तो राज ने ईंटे जोड़ दीं, ईंटें बनाने वाले ने ईंटें ला दीं। पत्थर वाला पत्थर लाया, बढ़ई लकड़ी लाया। खपरा लाने वाला खपरा लाया। सारे ग्राम के लोगों ने श्रम किया। जल्दी ही उसका एक मकान बन गया। प्रवेश होने क तैयारी हो रही है। साधु द्वार पर आया। तभी गाँव एकदम मकान पर टूट पड़ा। छप्पर वाला छप्पर ले गया, ईंट वाला ईंट ले गया, दरवाजे वाला दरवाजा निकालने लगा। सब चीजें एकदम अस्त-व्यस्त होने लगीं। सारा मकान एकदम टूटने लगा। तब साधु ने खड़े होकर पूछा कि यह क्या बात है? मुझसे कोई गलती हो गई क्या? तो जो लोग सामान ले जा रहे थे उन्होंने कहाँ नहीं, तुम्हारी गल्ती का सवाल नहीं। हमारा संविधान बदल गया। कल तक हमारे विधान में यह बात थी कि जो भी नया आदमी गाँव में आए और रहे उसका हम मकान बनाएँ। रात की धारासभा में वह हमने खत्म कर दिया। हमारा विधान बदल गया। इसलिए हम अपना-अपना सामान लिए जा रहे हैं। बात खत्म हो गई। अब तुम्हारा प्रवेश हो जाता तो मुश्किल हो जाता। इसलिए हमें जल्दी करनी पड़ रही है। तुम्हारे प्रवेश के बाद पुराना संविधान लागू हो जाता। अभी तुम्हारा प्रवेश नहीं हुआ, इसलिए हम इसे लिए जा रहे हैं। मित्र ने मुझे यह कहानी लिखी और यह पूछा: क्या साधु की कोई भूल थी। मैंने उत्तर दिया कि साधु की एक ही भूल थी। उसने आदमियों के बनाए हुए नियम को ज्यादा मूल्य दिया था। जो आदमी नियम बनाते हैं वे कभी भी तोड़ सकते हैं। साधु की भूल इतनी ही थी कि उसने यह भी क्यों पूछा कि क्या मुझसे कोई भूल हो गई है? यह भी नहीं पूछना था। उसे जानना चाहिए था कि जो मकान बनाते हैं, वे गिरा सकते हैं। नियम बदल गया था। साधु ने नियम को अपना सम्मान समझ लिया था यह भूल हो गई थी उससे। यह उसका सम्मान नहीं था, यह सिर्फ नियम का सम्मान था। नियम बदल गया, सारी बात खत्म हो गई।

हम एक जिन्दगी में जीते हैं, जो हमारे बनाए हुए नियमों, बनाई हुई मान्यताओं, बनाई हुई व्यवस्थाओं की है। उन्हें जैसे ही हम जानेंगे, एकदम झूठी मालूम पड़ेंगी। पत्नी एकदम झूठी मालूम पड़ेगी। स्त्री सत्य रह जाएगी। वह हमारी बनाई हुई व्यवस्था है। युवक रह जाएगा लेकिन उसका बेटा होना खो जाएगा। मकान रह जाएगा लेकिन 'मेरा होना' चला जाएगा। धन का ढ़ेर रह जाएगा लेकिग गिनती का रस खो जाएगा। जगत् होगा वस्तुपरक लेकिन उसकी आत्मपरकता कि वह यहाँ है, वहाँ है, तिरोहित हो जाएगी जैसे कोई जादू की दुनिया है एकदम जग गया हो और सब खो जाए। जैसे वृक्ष हो, वृक्ष में लगें फल और सब बिदा हो जाएँ और चीजें जैसी हैं वैसी रह जाएँ। वस्तु रह जाएगी लेकिन हमारी कल्पित वस्तु एकदम बिदा हो जाएगी। इस अर्थ में मैंने कहा कि स्वप्न भी सत्य बन जाता है, अगर हम उसमें लीन हो जाते हैं और जिसे हम सत्य कहते हैं, वह भी स्वप्नवत् हो जाएगा अगर हम अपनी लीनता को तोड़ लेते हैं।

प्रश्न : महावीर पूर्व जन्म में ही पूर्ण हो गए यह आपका कहना है। किन्तु वर्तमान जगत् में अभिव्यक्ति के साधन खोजने के लिए उन्हें तपश्चर्या करनी पड़ी। पूर्ण में यह अपूर्णता कैसी? क्या पूर्णता में अभिव्यक्ति के साधनों की उपलब्धि शामिल नहीं?

उत्तर : ठीक है। नहीं; **पूर्णता की उपलब्धि में अभिव्यक्ति के साधन सम्मिलित नहीं हैं।** अभिव्यक्ति की पूर्णता उपलब्धि की पूर्णता से बिल्कुल अलग है। असल में पूर्णता भी एक नहीं है, **अनन्त पूर्णताएँ हैं।** इससे हमें बड़ी कठिनाई होती है। एक दिशा में एक आदमी पूर्ण हो जाता है, इसका मतलब यह नहीं कि वह सब दिशाओं में पूर्ण हो जाता है। एक आदमी चित्र बनाता है। वह चित्र बनाने में पूर्ण हो गया है। इसका यह मतलब नहीं कि वह संगीत में भी पूर्ण हो जाएगा यानी कि वह वीणा बजा सकेगा। वीणा की अपनी पूर्णता है, अपनी दिशा है। अगर कोई आदमी वीणा बजाने में पूर्ण हो गया तो उसका यह मतलब नहीं है कि वह नाचने में भी पूर्ण हो जाए। नाचने की अपनी पूर्णता है। **बहुत आयाम हैं पूर्णता के।** क्या सर्वतोमुखी पूर्णता किसी को मिली है? नहीं, कोई व्यक्ति समस्त पूर्णताओं में पूर्ण नहीं हुआ। कई पूर्णताएँ ऐसी हैं कि एक में होंगे तो फिर दूसरे में हो ही नहीं सकते। वे विरोधी पूर्णताएँ हैं। एक व्यक्ति पुण्य में पूर्ण हो जाए तो फिर वह पाप की पूर्णता में पूर्ण नहीं हो सकता। पाप की भी अपनी पूर्णता है। और अगर वह पाप में पूर्ण हो

जाए तो वह पुण्य में पूर्ण नहीं होगा। न केवल पूर्णताएँ अनन्त हैं बल्कि विरोधी भी हैं। कोई यह सोच ही नहीं सकता कि कोई व्यक्ति समस्त दृष्टि से पूर्ण हो जाए। परमात्मा के बारे में जो हमारी धारणा है वह इस लिहाज से कीमती है। इस धारणा का मतलब है, कि सिर्फ परमात्मा ही सब दिशाओं में पूर्ण है क्योंकि वह कोई व्यक्ति नहीं है। वह सब व्यक्तियों में अनन्त दिशाओं में पूर्णता प्राप्त कर रहा है। परमात्मा अगर कोई व्यक्ति हो तो वह भी पूर्ण नहीं हो सकता सब दिशाओं में। लेकिन पापी से वह एक तरह की पूर्णता पा रहा है, पुण्यात्मा से वह दूसरी तरह की पूर्णता पा रहा है। परमात्मा के जो अनन्त हाथ हम चित्रों में देखते हैं, उसका कारण कुल इतना है कि अनन्त हाथों से वह पूर्ण हो रहा है। हम दो हाथों से कैसे पूर्ण होंगे? सब हाथ उसके ही हों, तब तो ठीक है। फिर कोई कठिनाई नहीं। फिर अगर महावीर एक दिशा में पूर्ण हो जाएँ तो परमात्मा को कोई कठिनाई नहीं पड़ती क्योंकि हिटलर के हाथ भी उसके हैं, महावीर के हाथ भी उसके हैं। परमात्मा को छोड़ कर कोई सब दिशाओं में पूर्ण नहीं हो सकता और परमात्मा व्यक्ति नहीं है। इसलिए वह शक्ति है; सबकी ही शक्ति का समग्रीभूत नाम है। उसको तो छोड़ दें। लेकिन कोई भी व्यक्ति कभी भी इस अर्थ में पूर्ण नहीं होता। उसकी अपनी दिशा होती है, उसमें वह पूर्ण हो जाता है।

अनुभूति की एक दिशा है, अभिव्यक्ति की बिल्कुल दूसरी। और अनुभूति के लिए जो करना पड़ता है, अभिव्यक्ति के लिए करीब-करीब उससे उल्टा करना पड़ता है। इसलिए दोनों साधी जा सकती हैं, लेकिन एक साथ नहीं। एक सध जाए तो फिर दूसरी साधी जा सकती है। इसलिए कभी भी अनुभूति की पूर्णता के साथ अभिव्यक्ति की पूर्णता नहीं होती। क्योंकि अनुभूति में जाना पड़ता है भीतर और अभिव्यक्ति में आना पड़ता है बाहर। और यह बिल्कुल ही उल्टा आयाम है। अनुभूति में छोड़ना पड़ता है सबको और हो जाना पड़ता है बिल्कुल 'स्व', सब छोड़कर बिल्कुल एक बिन्दु। अभिव्यक्ति में फैलना पड़ता है, सबको जोड़ना पड़ता है। अभिव्यक्ति में 'दूसरा' महत्त्वपूर्ण है; अनुभूति में 'स्वयं' ही महत्त्वपूर्ण है। उल्टी दिशाएँ हैं बिल्कुल। जानना मौन में है और बताना वाणी में है। तो जो जानेगा उसको मौन होना पड़ेगा और जब बताने जाएगा तो फिर शब्द की साधना करनी पड़ेगी। इसलिए जरूरी नहीं कि जो अभिव्यक्ति कर रहा हो वह जानता भी हो। हो सकता है कि वह सिर्फ अभिव्यक्ति किए चला जा रहा है। इसलिए बहुत बार ऐसा होता

है कि अकेली अभिव्यक्ति वाला आदमी भी बहुत ज्ञानी मालूम पड़ता है। उसके पास अनुभूति कोई भी नहीं है। सिर्फ उसने उधार अनुभूतियाँ बटोर ली हैं। ऐसे ही आदमी को मैं पंडित कहता हूँ जिसके पास अभिव्यक्ति है, अनुभूति नहीं। ऐसे भी लोग हैं जिनके पास अनुभूति है, अभिव्यक्ति नहीं।

बुद्ध से एक दिन जाकर किसी ने पूछा कि आप इतने वर्षों से समझाते आ रहे हैं कितने ऐसे लोग हैं जो उस सत्य को उपलब्ध हो गए हों। बुद्ध ने कहा—बहुत; यहीं बैठे हुए हैं। उस आदमी ने पूछा; लेकिन आप जैसा महिमाशाली तो इनमें से कोई भी नहीं दिखाई पड़ता। बुद्ध ने कहा कि थोड़ा सा ही फर्क है। मैंने अभिव्यक्ति भी साधी है। अनुभूति में तो वे मेरी जगह पहुँच गए हैं, लेकिन अभिव्यक्ति? जब तक अभिव्यक्ति न साधें, तुम्हें उनका पता भी न चलेगा। क्योंकि जब वे तुमसे कहेंगे तभी तो जानोगे। उन्हें अनुभूत हो गया है, इससे थोड़े ही जानोगे। केवल-ज्ञानी और तीर्थंकर में यही फर्क है। तीर्थंकर भी केवल-ज्ञानी से ज्यादा नहीं है। सिर्फ अभिव्यक्ति और है उसके पास केवल-ज्ञान तीर्थंकर से इंच भर कम नहीं हैं। अनुभूति में वहीं है जहाँ वह है। सिर्फ अभिव्यक्ति नहीं है उसके पास। अभिव्यक्ति साध ले तो वह भी शिक्षक हो जाता है। अभिव्यक्ति न साधे, अनुभूति तो होती है। सिद्ध होता है लेकिन बन्द हो जाता है। सब तरफ फैल नहीं पाता जो उसने जाना है।

तो अनुभूति की पूर्णता महावीर को पिछले जन्म में हुई है, अभिव्यक्ति की पूर्णता के लिए उन्हें साधना करनी पड़ी। और मैं कहता हूँ कि अनुभूति की पूर्णता उतनी कठिन नहीं है जितनी अभिव्यक्ति की पूर्णता कठिन है। क्योंकि अनुभूति में मैं अकेला हूँ। जो मुझे करना है, अपने से ही करना है। अभिव्यक्ति में दूसरा सम्मिलित हो जाएगा। इसलिए दूसरे को जानना, दूसरे को समझना दूसरे तक पहुँचाना दूसरे की भाषा है, दूसरे का अनुभव है, दूसरे का व्यक्तित्व है। करोड़-करोड़ तरह के व्यक्तित्व हैं। करोड़-करोड़ योनियों में बँटा हुआ प्राण है। उन सब पर प्रतिध्वनि हो सके, उन सब तक खबर पहुँच सके, पत्थर भी सुन ले और देवता भी सुन ले—उस सबकी फिर साधना बहुत बड़ी बात है। इसलिए केवल-ज्ञान तो बहुत लोगों को उपलब्ध होता है लेकिन तीर्थंकर बहुत कम लोग बन पाते हैं। क्योंकि केवल-ज्ञान अनन्त-अनन्त लोगों को उपलब्ध होता है। परिपूर्ण ज्ञान की अनुभूति करोड़ों लोगों को होती है परन्तु जिसको हम शिक्षक कह सकें जो बता भी सके कि ऐसे हुआ है, ऐसा मुश्किल से कभी होता है। इसलिए मैंने कल कहा: अभिव्यक्ति के लिए

महावीर का यह पहला जन्म है। पर हमारा क्या होता है? हम पूर्णता को बड़े व्यापक अर्थ में लेते हैं। कोई व्यक्ति अनुभूति में पूर्ण हो सकता है, और अभिव्यक्ति बिल्कुल न हो। अनेक लोग जाने हैं और मौन रह गए हैं। फिर कहा ही नहीं उन्होंने। खोज ही नहीं सके वे मार्ग कहने का।

जैसे कि आप अभी जाएँगे डल झील पर और सौन्दर्य को देखेंगे। हो सकता है कि आपको सौन्दर्य का पूर्ण अनुभव हो जाए। लेकिन इसका यह मतलब नहीं कि आप आकर डल झील को पेंट कर दें। यह भी हो सकता है कि आप से कम अनुभव किसी को हो और वह आकर पेंट कर दे। क्योंकि पेंटिंग की कुशलता अलग बात है अनुभूति की कुशलता से। अनुभूति आपको हो सकती है डल झील पर जाकर सौन्दर्य की। सारा प्राण भीग जाए। लेकिन आपसे कोई कहे कि रंग उठाकर और ब्रुश उठाकर जरा पेंट कर दें तो आप कहेंगे यह मुझसे नहीं हो सकता। और भी दिशाएँ हैं। जब आप डल झील पर गए थे तो आपने सोचा होगा कि आप सिर्फ देख रहे हैं। वह सौन्दर्य केवल देखने को नहीं था। अगर आप बहरे होते तो इतना सौन्दर्य आपको दिखाई न पड़ता। उसमें भेड़ों की आवाज भी छिपी थी। उसमें लहरों की छम-छम भी छिपी थी। उसमें सब था जुड़ा हुआ। आप बहरे होते, आप देख तो लेते लेकिन आपके देखने में कमी रह गई होती। उसमें आस-पास जो सुगंधि आ रही थी, वह भी सौन्दर्य का हिस्सा था।

जब कोई आदमी किसी स्त्री को प्रेम करता है तो वह कभी नहीं सोचता कि उसके शरीर की गंध भी उसमें तीस प्रतिशत हिस्सा लेती है। यानी वह कितनी ही सुन्दर हो अगर उसकी गंध उसको मेल नहीं खाती है तो बिल्कुल ही ताल-मेल नहीं बैठ सकता; उसके शरीर की एक गंध है, जो भीतर से उसे आकर्षित करती है और यह गंध विशेष विशेष लोगों को आकर्षित करती है। यानी वह कितनी ही सुन्दर हो, जरा सी गंध उसको विपरीत हो तो कभी तालमेल नहीं होगा। विरोध ही रहेगा; झंझट खड़ी रहेगी। और आप कभी सोच भी नहीं पाएँगे कि उसके शरीर की गंध बाधा दे रही है। तो जैसे कि सौन्दर्य बड़ी चीज है, उसमें गंध भी सम्मिलित है, उसमें ध्वनि भी सम्मिलित है, उसमें सब सम्मिलित है। वह एक पूर्ण, समग्र अनुभूति है। आप अगर पेंट भी कर लो और मैं आपसे कहूँ : इस झील पर जो संगीत का अनुभव हुआ था, वह बजाओ। आप कहोगे कि वह मैं नहीं कर सकता। आप पेंट करके सिर्फ आँख से जो देखा गया था वही पेंट कर पा रहे हो; जो कान से जाना गया था, वह

नहीं कर पा रहे हो; नाक से जो जाना गया था वह नहीं कर पा रहे हो। अभी पूर्णता सम्पूर्णता नहीं है।

तब मेरा कहना है कि अगर हम सम्पूर्णता के लिए रुकेंगे तो शायद ही कोई आदमी कभी पृथ्वी पर सम्पूर्ण रहा हो। असम्भव है और उसके कई कारण हैं जो हमें दिखाई नहीं पड़ते। जैसे जिस आदमी की आँख रंगों को देखने लगेगी बहुत गहराई में, उस आदमी के कान धीमे-धीमे शक्ति खो देंगे। इसलिए अन्धों के पास कान की जो शक्ति होती है, आँख वालों के पास कभी नहीं होती। इसलिए अन्धा जैसा संगीतज्ञ हो सकता है आँख वाला कभी नहीं हो सकता। उसका कारण है कि भीतर शक्ति की सीमा है। अगर वह पूरी आँख या कान से बहने लगती है तो दूसरी इन्द्रियों से खींच लेती है। अन्धे के पास कान की ताकत ज्यादा होती है क्योंकि आँख की जो शक्ति बच गई है वह कानों से बह जाती है। अगर कोई व्यक्ति संगीत में बहुत कुशल हो जाए, उसका कान तो शिक्षित हो जाएगा लेकिन आँखें मन्द हो जाएँगी, स्पर्श क्षीण हो जाएगा। वह व्यक्ति और दिशाओं में एकदम सिकुड़ जाएगा। शक्ति सीमित है; अनुभूति अनन्त है। इसलिए, सिर्फ परमात्मा को छोड़ कर जो कि सभी शक्तियों का जोड़ है, कोई शक्ति कभी सम्पूर्ण नहीं होगी। हाँ, एक-एक दिशा में पूर्णता पा लेने से वह परमात्मा में लीन हो जाता है। परमात्मा में लीन हो जाने से वह समग्र में पूर्ण हो जाता है। जैसे कोई भी नदी कभी पूर्ण नहीं होती, सागर में खोकर पूर्ण होती है। नदी रहते हुए पूर्ण नहीं होती क्योंकि उसके किनारे होंगे, तट होंगे। सागर में जाकर वह पूर्ण हो जाती है।

तो व्यक्ति एक दो या तीन दिशा में ही पूर्ण हो सकता है, समस्त पूर्णताओं को नहीं पकड़ सकता। लेकिन एक दिशा में भी कोई पूर्ण हो जाए तो वह उस द्वार पर खड़ा हो जाता है, जहाँ से परमात्मा में प्रवेश होना सम्भव है। यानी पूर्णता किसी भी दिशा से लाई गई हो, परमात्मा के द्वार पर खड़ा कर देती है। अगर वह वहाँ से अपने को जोड़ दे और खो जाए तो वह परमात्मा के साथ एक हो गया। उस अर्थ में वह अब सम्पूर्ण हो गया। लेकिन अब वह रहा ही नहीं। जैसे नदी रही ही नहीं, वह सागर हो गई।

अनन्त-अनन्त पूर्णताओं की दृष्टि अगर हमारे ख्याल में हो तब हम समझ सकेंगे कि सर्वज्ञ का क्या मतलब होगा। तब हम पागलपन में नहीं पड़ेंगे। तब हम इतना ही कहेंगे कि महावीर ने स्वयं को जानने में जो भी जाना जा सकता था, जान लिया। सर्वज्ञ का यह मतलब होगा। न कि साइकिल का टायर फट

जाए तो वह उसे जोड़ना भी जानते हैं, आदमी को टी० बी० हो जाए तो वह उसकी दवाई भी जानते हैं। सर्वज्ञ का यह मतलब नहीं होता। लेकिन महावीर को पकड़ने वालों ने सर्वज्ञ का कुछ ऐसा मतलब लिया है कि महावीर जो भी जाना जा सकता है, वह सब जानते हैं। यह बिल्कुल फिजूल बात है। सर्वज्ञ का इतना ही मतलब है कि जिस पूर्णता की एक दिशा को उन्होंने पकड़ा है, उसमें वे सर्वज्ञ हो गए हैं। आत्मज्ञान की दिशा में वह सर्वज्ञ हैं। उनके सर्वज्ञ होने का यह मतलब नहीं कि वह आपकी बीमारी को भी जानते हैं, भविष्य में क्या होगा, यह भी जानते हैं, कल क्या हुआ था, यह भी जानते हैं। इन सब बातों से उन्हें कोई मतलब नहीं है। इस तरह बहुत लोग सर्वज्ञ हो सकते हैं चूंकि अनन्तताएँ अनन्त हैं, पूर्णताएँ अनन्त हैं। 'केवल-ज्ञान' का मतलब यह है कि जहाँ ज्ञेय न रहा, ज्ञाता न रहा, बस ज्ञान रह गया। न कुछ जानने को शेष रहा, न कोई जानने वाला शेष रहा, बस ज्ञान ही शेष रहा। जानने की च्मता ही सिर्फ शेष रह गई।

प्रश्न : हर चीज को ?

उत्तर : नहीं ? बिल्कुल नहीं। वह 'हर चीज' से हम जोड़ करके ही दिक्कत में पड़ जाते हैं। जानने की शुद्ध क्षमता शेष रह गई है उनमें। यह क्षमता पूर्ण है, पूर्ण इस अर्थ में नहीं कि वह सब जानते हैं; पूर्ण इस अर्थ में कि जैसे समझ लें कि एक आदमी गीत गाने की पूर्ण क्षमता को उपलब्ध होता है इसका यह मतलब नहीं कि उसने सब गीत गाए। क्योंकि गीत अनन्त हैं। इसका यह मतलब नहीं कि वह इस वक्त गा रहा है। इसका मतलब यह है कि वह गीत गाने की पूर्णता को उपलब्ध हो गया है; जो भी गीत गाना चाहेगा गा सकता है। लेकिन जब वह एक गीत गाएगा तो दूसरा गीत न गा पाएगा। सिर्फ च्मता है उसमें सभी गीव गाने की। वह कुछ भी जान सकता है। जैसे कि एक आइना है। उसके पास च्मता है कि वह दर्पण हो सकता है। जरूरी नहीं कि इस वक्त उसमें छाया बन रही है, किसी आदमी का चेहरा बन रहा है। वह खाली पड़ा है इस वक्त। लेकिन कोई भी चेहरा सामने आए तो जाना जा सकता है। वह पूर्ण जाने जा सकने की क्षमता रखता है। वह उसका सामर्थ्य है। कोई भी खड़ा हो जाए तो वह जानेगा। लेकिन एक खड़ा हो जाए तो दूसरे को जानना मुश्किल हो जाएगा। दो खड़े हो जाएँ तो तीसरे को जानना मुश्किल हो जाएगा। और दस आदमी उसको घेर लें, पीछे करोड़ों को

भीड़ हो, तो उनको जानना मुश्किल हो जाएगा। लेकिन इनमें से कोई भी सामने खड़ा हो तो वह जान सकेगा।

केवल-ज्ञान का मतलब है कि ज्ञान की शुद्धता उपलब्ध हो गई है। हाँ, जानने की क्षमता उपलब्ध हो गई है। वह जिस दिशा में भी लगा देगा उसी दिशा में पूर्णता को जान लेगा। लेकिन एक दिशा में लगाएगा तो दूसरी दिशाओं से तत्काल वंचित हो जाएगा। और सत्य यह है कि शुद्ध ज्ञान की क्षमता में जीना इतना अनन्दपूर्ण है फिर उसे कोई दूसरी दिशा में लगाता नहीं। शुद्ध दर्पण होना इतना आनन्दपूर्ण है कि कौन प्रतिबिम्ब बनाए। इसलिए केवल ज्ञानी को जैसे ही शुद्धता उपलब्ध होती है वह जानना छोड़ देता है। क्योंकि अब सब जानना उसकी जानने की क्षमता पर छा जाएगा और उसकी जानने की क्षमता को अशुद्ध कर देगा आवरण बन कर। इसलिए केवल-ज्ञानी, जो कि जान सकता है किसी भी चीज को जानना छोड़ देता है; जानने की क्षमता में ही रम जाता है। वह इतना आनन्दपूर्ण है कि कौन सी बाधा ले वह। जानने की क्षमता ही इतनी आनन्दपूर्ण है कि वह क्यों जानने जाए किसी को। अज्ञान जानने जाता है; ज्ञान ठहर जाता है। क्योंकि अज्ञान में जिज्ञासा है कि जान लो। और जब ज्ञान की क्षमता उपलब्ध होती है तो ज्ञान ठहर जाता है। वह जानने जाता ही नहीं है क्योंकि जानने का कोई सवाल भी नहीं रह जाता। अज्ञान भटकाता है, यात्रा करवाता है। ज्ञान ठहरा देता है। इसलिए अज्ञानी जानते हुए मिल जाएँगे, लेकिन केवल-ज्ञानी नहीं। क्योंकि अज्ञानी चेष्टा कर रहा है निरन्तर—यह जानूँ।

केवल-ज्ञान की धारणा बहुत अद्भुत है। लेकिन उसको इस तरह विकृत किया हुआ है लोगों ने कि जिसका कोई हिसाब नहीं। जो सब जानता है, जो सब जान सकता है—इन दोनों में भिन्नता है। जो जान सकता है, वह जानेगा यह जरूरी नहीं। आमतौर से तो यही जरूरी है कि वह जानेगा ही नहीं, अब वह इस झंझट में नहीं पड़ेगा। इसलिए अगर मैं आपसे कहूँ कि केवल-ज्ञानी सब जान सकता है, और कुछ भी नहीं जानता है तो आप इसमें विरोध मत समझना। सब जान सकता है मगर कुछ भी नहीं जानता है। अब वह किसी दिशा में जाता ही नहीं। वह चुप खड़ा है। अगर वह किसी भी दिशा में गया तो परमात्मा में नहीं जा सकेगा। किसी भी दिशा में गया हुआ व्यक्ति परमात्मा में नहीं जा सकता क्योंकि परमात्मा सब दिशाओं का जोड़ है। और एक दिशा में गया हुआ व्यक्ति अन्य दिशाओं के विपरीत पड़ जाता है। यानी जिस व्यक्ति

को परिपूर्ण ज्ञान की क्षमता उपलब्ध होगी वह तत्काल सब दिशाएँ छोड़ देगा और परमात्मा में लीन हो जाएगा। जो इस पूर्ण स्थिति में पहुँचता है, जहाँ सिर्फ जानना ही शेष रह जाता है, वह एकदम डूब जाता है, सर्वव्यापक हो जाता है, हो ही गया, जैसे कि एक बूँद सागर में गिरी और सर्वव्यापी हो गई। क्योंकि वह सागर से एक ही हो गई। और जब तक वह दिशा पकड़े रहता है, तब तक वह सर्वव्यापी नहीं होता।

जीसस ने कहा कि जो अपने को बचाएँगे, वे नष्ट हो जाएँगे। जो अपने को खो देंगे, वे सब पा लेंगे। बचाओ मत, अपने को खो दो। लेकिन खो वही सकता है जिसका कोई विकास नहीं। किनारा खोने की हिम्मत होनी चाहिए। अगर किनारा पकड़े रहें तो सागर में कैसे जाएँगे। दिशाओं के किनारे होते हैं, आयाम होता है मगर परमात्मा अनन्त और आयामशून्य है। वहाँ कोई किनारा नहीं है। उसमें खोने की क्षमता का ही अर्थ केवल-ज्ञान है जहाँ आदमी डूब जाता है फिर जानने की कोशिश में नहीं पड़ता। यहाँ दो सम्भावनाएँ हैं : या तो वह डूब जाए परमात्मा में जो सामान्यतया होता है; या एक जीवन के लिए वह लौट आए और जहाँ पहुँचा है उस क्षमता की खबर दे। उसी को मैं करुणा कहता हूँ : और वह करुणा है तो उसे अभिव्यक्ति की पूर्णता पानी होगी। उपाय करना होगा दूसरे से कहने का। गूँगा भी जान सकता है सत्य को लेकिन वह कह नहीं सकता। गूँगा भी प्रेम कर सकता है लेकिन वह कह नहीं सकता। अगर गूँगे को कहना हो अपनी प्रेयसी से कि मैं तुझे प्रेम करता हूँ तो उसे वाणी सीखनी पड़ेगी। प्रेम करने के लिए वाणी सीखने की जरूरत नहीं है। प्रेम करना एक और बात है। वह गूँगा भी कर सकता है। गूँगा हजारों से कुछ बातें कर सकता है। लेकिन अगर उसे कहना हो, क्या जाना उसने प्रेम में, तो फिर उसे और दूसरी तरह की, यानी अभिव्यक्ति की, पूर्णता प्राप्त करनी होगी। महावीर इस जन्म में उस दूसरी तरह की पूर्णता की साधना में लगे हैं।

७

प्रवचन

सत्य की अनुभूति को अभिव्यक्ति कैसे मिले, यही बड़े से बड़ा सवाल महावीर के सामने इस जन्म में था। महावीर ही पहले शिक्षक नहीं थे जिनके सामने अभिव्यक्ति की बात उठी हो। जिन्होंने सत्य जाना है उन सभी के सामने यह सवाल है लेकिन महावीर के सामने सवाल कुछ बहुत गहरे रूप में उपस्थित हुआ था। महावीर के व्यक्तित्व की विशेषताओं में एक विशेषता यह थी कि उन्हें सत्य की जो अनुभूति हुई, उसकी अभिव्यक्ति को उन्होंने जीवन के समस्त तलों पर प्रकट करने की कोशिश की। मनुष्य तक कुछ बात कहनी है, कठिन तो है फिर भी बहुत कठिन नहीं। लेकिन महावीर की चेष्टा अनूठी है। उन्होंने चेष्टा की कि पौधे पशु-पक्षी, देवी-देवता सब तक, जीवन के जितने तल हैं—उन सब तक उन्हें जो मिला है, उसकी खबर पहुँचे। महावीर के बाद ऐसी कोशिश करने वाला दूसरा आदमी नहीं हुआ। यूरोप में फ्राँसिस ने थोड़ी सी कोशिश की है पक्षियों और पशुओं से बात करने की। अभी-अभी श्री अरविन्द ने कोशिश की है पदार्थ तत्त्व पर चेतना के स्पन्दन पहुँचाने की। लेकिन महावीर जैसा प्रयास न पहले कभी हुआ, न बाद में हुआ। वे जो बारह वर्ष आम तौर पर सत्य की साधना के लिए समझे जाते हैं, वे सत्य की जो उपलब्धि हुई है, उसकी अभिव्यक्ति के लिए साधन खोजने के हैं। और इसीलिए ठीक बारह वर्षों बाद महावीर सारी साधना का त्याग कर देते हैं। नहीं तो साधना का कभी त्याग नहीं किया जा सकता। सत्य की उपलब्धि की जो साधना है, उसका कभी त्याग किया ही नहीं जा सकता क्योंकि वह ऐसी नहीं है कि सत्य उपलब्ध हो जाने पर व्यर्थ हो जाए। जैसा कि मैंने सुबह कहा सत्य की उपलब्धि का मार्ग है—अमूर्च्छित चेतना, अप्रमाद, विवेक, जागरण। तो ऐसा नहीं है कि जिसको सत्य उपलब्ध हो जाए वह जागरण, विवेक, अप्रमाद

का त्याग कर दे। यह असम्भव है, क्योंकि जो सत्य उपलब्ध होगा, उसमें जागरण अनिवार्य होगा। यानी वह सत्य भी जागी हुई चेतना का एक रूप ही होगा। इसलिए फिर ऐसा नहीं है कि जागरण छोड़ दिया जाए। सिर्फ वही साधना छोड़ी जा सकती है जो परम उपलब्धि की तरफ न हो बल्कि साधना की तरह उपयोग की हुई हो। जैसे कि आप यहाँ एक बैलगाड़ी में बैठकर आए हैं। आप उतर कर बैलगाड़ी को छोड़ देंगे। क्योंकि बैलगाड़ी पहुँचाने का साधन थी; इसके बाद व्यर्थ हो जाती है। जो साधन कहीं जाकर व्यर्थ हो जाते हैं, वे साधन के हिस्से नहीं होते इसलिए व्यर्थ हो जाते हैं। लेकिन जो साधन अनिवार्यतः साधन में विकसित होते हैं, वे कभी व्यर्थ नहीं होते। विवेक कभी व्यर्थ नहीं होता। लेकिन महावीर, बारह वर्ष की साधना के बाद सब छोड़ देते हैं। और उनके पीछे चलने वाले चिन्तक कभी यह विचार नहीं कर पाए कि यह कैसी बात है। इसका कोई उत्तर भी नहीं दे पाए। न दे पाने का कारण है कि वे समझ ही न सके कि यह केवल अनुभूति को अभिव्यक्त करने के साधन खोजने का इन्तजाम था, आयोजन था। वे माध्यम मिल गए हैं और आयोजन व्यर्थ हो गया। यानी आयोजन शाश्वत नहीं था, सामयिक था, जरूरत का था। इससे ज्यादा उसका मूल्य नहीं है।

क्या किया जाए जीवन के समस्त तलों तक अपनी अनुभूति प्रतिध्वनि की तरंग पैदा करने के लिए? तीन बातें समझ लेनी जरूरी हैं। एक तो अस्तित्व का मूक अंग है। जैसे पत्थर है, पौधा है, पक्षी है, पशु है। ये अस्तित्व के मूक अंग हैं। फर्क है पत्थर और पशु में बहुत। लेकिन यह विभाग मूक है। अगर इस मूक अंग से सम्बन्धित होना हो किसी व्यक्ति को और अपने अनुभव को इस तक पहुँचाना हो तो उसे परम जड़ अवस्था, परम मूक अवस्था में उतरना पड़ेगा। तभी उसका ताल-मेल, सामंजस्य हो सकेगा। उदाहरण के लिए अगर कोई व्यक्ति वृक्ष के पास बैठकर पूर्णतया मूक हो जाए ऐसा जैसे कि जड़ हो गया, जैसे कि उसका शरीर कोई जीवित वस्तु नहीं है, और उसकी चेतना परिपूर्ण शान्त होती चली जाए और उस जगह पहुँच जाए, जहाँ एक शब्द नहीं है तो इस परिपूर्ण मूक अवस्था में वृक्ष से संवाद होना सम्भव है। रामकृष्ण निरन्तर ऐसी अवस्था में उतरते रहे, जिसे मैं रामकृष्ण की जड़-समाधि कहता हूँ।

महावीर ने इस दशा में मनुष्य जाति के इतिहास में सबसे गहरे प्रयोग किए हैं। आप जानकर हैरान होंगे कि महावीर की जो अहिंसा की बात है,

वह किसी तत्त्व विचार से नहीं निकली है। वह अहिंसा की बात नीचे के जगत् के तादात्म्य से निकली है। उस तादात्म्य में उन्होंने जो पीड़ा अनुभव की नीचे के जगत् की, उस पीड़ा की वजह से, अहिंसा उनके जीवन का परम तत्त्व बन गया है। इसमें दो बातें समझने जैसी हैं। आम तौर से यह समझा जाता है कि जो अहिंसक है, वह मोक्ष की साधना कर रहा है; अहिंसा से जिएगा तो मोक्ष में चला जाएगा। लेकिन ऐसे लोग भी मोक्ष में चले गए हैं, जो अहिंसा से नहीं जिए हैं। न तो क्राइस्ट अहिंसक है, न रामकृष्ण, न मुहम्मद। ऐसे लोग मोक्ष में चले गए हैं जो अहिंसा से नहीं जिए हैं।

इसलिए जिनको यह ख्याल है कि अहिंसा से जीने से मोक्ष में जाएँगे वे महावीर को नहीं समझ पाए। बात बिल्कुल ही दूसरी है। महावीर ने मनुष्य से नीचे का जो मूक जगत् है, उससे जो तादात्म्य स्थापित किया है और उसकी जो पीड़ा अनुभव की है, वह इतनी सघन है कि अब उसे और पीड़ा देने की कल्पना भी असम्भव है। इतनी असम्भव किसी के लिए भी नहीं रही कभी भी, जितनी महावीर के लिए असम्भव हो गई। और यह जिस अनुभव से आया है, वह उस जगत् को अपने प्राणों में विस्तीर्ण करने का प्रयोग था। इस प्रयोग करने में अहिंसा निर्मित होने में दो बातें हुईं। एक यह कि जो पीड़ा अनुभव की, उन्होंने नीचे के जगत् की, वह इतनी ज्यादा है कि उसमें जरा भी कोई बढ़ती करे किसी भी कारण से तो वह असह्य है। दूसरी बात उन्होंने यह अनुभव की कि अगर व्यक्ति पूर्ण अहिंसक न हो जाए तो नीचे के जगत् से तादात्म्य स्थापित करना बहुत मुश्किल है। यानी हम तादात्म्य उसी से स्थापित कर सकते हैं जिसके प्रति हमारा समस्त हिंसक भाव, आक्रामक भाव विलीन हो गया हो और प्रेममात्र उदय हो गया हो। तादात्म्य सिर्फ उसी से सम्भव है। अगर मूक जगत् से तादात्म्य स्थापित करना है तो अहिंसा शर्त भी है। नहीं तो वह तादात्म्य स्थापित नहीं हो सकता।

जैसे मैंने संत फ्रांसिस का नाम लिया। इस आदमी ने पशुओं के साथ सम्बन्ध स्थापित करने में बेजोड़ काम किया है। इस बात की आँखों देखी गवाहियाँ हैं कि जब संत फ्रांसिस नदी के किनारे खड़ा हो जाता तो सारी मछलियाँ तट पर इकट्ठी हो जातीं, सारी नदी खाली हो जाती। न केवल वे इकट्ठी हो जातीं बल्कि छलांग लगाती फ्रांसिस को देखने के लिए। जिस वृक्ष के नीचे वह बैठ जाता उस जगत् के सारे पक्षी उस वृक्ष पर आ जाते। न केवल

वृक्ष पर आ जाते बल्कि उसकी गोद में उतरने लगते, उसके सिर पर बैठ जाते, उसके कंधों को घेर लेते। संत फ्रांसिस से जब भी किसी ने पूछा कि यह कैसे सम्भव हुआ है तो वह कहते : और कोई कारण नहीं है। वे भली भाँति जानते हैं कि मेरे द्वारा उसके लिए कोई भी नुकसान कभी भी नहीं पहुँच सकता।

पक्षियों के पास अन्तःप्रज्ञा है जो हमने बहुत पहले खो दी है। जापान में एक ऐसी साधारण चिड़िया है जो गाँवों में आम तौर पर होती है और दिन भर गाँव में दिखाई पड़ती है, भूकम्प आने पर चौबीस घंटे पहले वह गाँव छोड़ देती है। अभी हमने भूकम्प की जाँच पड़ताल के कितने भी उपाय किए हैं, वे भी दो, ढाई घंटे से पहले खबर नहीं दे सकते और वह खबर भी विश्वसनीय नहीं होती। लेकिन वह चिड़िया चौबीस घंटे पहले एकदम गाँव छोड़ देती है। उस चिड़िया का गाँव में न दिखाई पड़ना पक्का है कि चौबीस घंटे के भीतर भूकम्प आ जाएगा। बड़ी कठिनाई की बात रही कि वह चिड़िया कैसे जान पाती है क्योंकि चिड़िया के पास जानने के कोई यन्त्र नहीं हैं, कोई शास्त्र नहीं है, कोई विधि नहीं है। ऊपर उत्तरी ध्रुव पर रहने वाले सैकड़ों पक्षी हैं, जो प्रति वर्ष सर्दी के दिनों में, जब बर्फ पड़ती है तो यूरोप के समुद्री तटों पर चले जाते हैं। बर्फ पड़नी शुरू हो जाए अगर तब वे यात्रा शुरू करें तो उनका आना बहुत मुश्किल है। इसलिए बर्फ गिरने के महीने भर पहले वे उड़ान शुरू कर देते हैं। और यह बड़े आश्चर्य की बात है कि वे जिस दिन उड़ान शुरू करते हैं उसके ठीक एक महीने बाद बर्फ गिरनी शुरू हो जाती है। फिर वे हजारों मील का फासला तय करके यूरोप के समुद्र तटों पर आ जाते हैं और बर्फ गिरना बन्द होने के महीने भर पहले वे वापस यात्रा शुरू कर देते हैं। वे कभी भटकते नहीं। हजारों मील के रास्ते पर कभी नहीं भटकते। ये जहाँ से आते हैं ठीक वहीं अपनी जगह वापस लौट जाते हैं। पक्षियों और पशुओं के जगत् में जिन लोगों ने प्रवेश किया है वे हैरान हुए हैं कि उनके पास एक प्रज्ञा है जो बिना बुद्धि के उन्हें चीजों को साफ कर देती है। यह जो हमारे हृदय में भाव की धारा उठती है—प्रेम की या घृणा की, उसके स्पन्दन काफी हैं। वे उन्हें स्पर्श कर लेते हैं और वे हमसे सचेत हो जाते हैं।

महावीर ने अहिंसा के तत्त्व पर जो इतना बल दिया है, उस बल का और कोई कारण नहीं है। एक कारण यह है कि नीचे के मूक जगत् से पूर्ण अहिंसक वृत्ति के बिना सम्बन्धित होना असम्भव है। और दूसरा कारण यह है कि जब सम्बन्धित हो जाएँ तो उस मूक जगत् की इतनी पीड़ाओं का बोध होता है—

उतनी अन्तहीन अनन्त पीड़ाएँ हैं उसकी, कि उसमें हम किसी भी भाँति थोड़ा भार हल्का कर सकें कि भार न बढ़े इसकी भावना पैदा हो जाना भी स्वाभाविक है। बुद्ध भी इस बात को नहीं समझे हैं। गौतम बुद्ध का भी सत्य के अनुभव को संवाहित करने का जो प्रयोग है, वह मनुष्यों से ज्यादा गहराई पर नहीं गया है। सच बात यह है कि न जीसस ने, न बुद्ध ने, न जरथुस्त्र ने, न मुहम्मद ने, न किसी दूसरे ने मनुष्य तल से नीचे जो एक मूक जगत् का फैलाव है जहाँ से हम आ रहे हैं, जहाँ हम कभी थे, जिससे हम पार हो गए हैं—वहाँ पहुँचने का कोई मार्ग बताया है। उस जगत् के प्रति भी हमारा एक अनिवार्य कर्त्तव्य है कि हम उसे पार होने का रास्ता बता दें और खबर कर दें कि वह कैसे पार हो सकता है।

मेरी समझ यह है कि महावीर ने जितने पशुओं और जितने पौधों की आत्माओं को विकसित किया है, उतना इस जगत् में किसी दूसरे आदमी ने नहीं किया। यानी आज पृथ्वी पर जो मनुष्य हैं, उनमें से बहुत से मनुष्य सिर्फ इसलिए मनुष्य हैं कि उनको पशुयोनि या उनको पौधे की योनि में या उनके पत्थर होने में महावीर ने संदेश भेजे थे और उन्हें बुलावा भेजा था। इस बात की भी खोज बीन की जा सकती है कि कितने लोगों को उस तरह की प्रेरणा उपलब्ध हुई और वे आगे आए। यह इतना अद्भुत कार्य है कि अकेले इस कार्य की वजह से महावीर मनुष्य मानस के बड़े से बड़े ज्ञाता बन जाते हैं। यानी अगर उन्होंने अकेले सिर्फ एक ही यह काम किया होता तो भी वे मनुष्य जाति के मुक्तिदाताओं में ही नहीं, बल्कि जीवन शक्ति के मुक्तिदाताओं में चिरस्मरणीय हो जाते। यह काम बहुत कठिन है क्योंकि नीचे के तल पर तादात्म्य स्थापित करना अत्यन्त दुरूह बात है। उसके कारण हैं। हमसे जो ऊपर है, उससे तादात्म्य स्थापित करना हमेशा सरल है क्योंकि हमारे अहंकार को तृप्ति मिलती है, उसके तादात्म्य से। यह कहना बहुत सरल है कि 'मैं परमात्मा हूँ' लेकिन यह कहना बहुत कठिन है कि 'मैं पशु हूँ।'

चूंकि नीचे अहंकार को चोट लगती है, ऊपर अहंकार को तृप्ति मिलती है, इसलिए हम सब ऊपर जाना चाहते हैं; हमारी गहरी आकांक्षा ऊपर जाने की है, हमारा चित्त ऊपर की तरफ उन्मुक्त होता है। जैसे नदी है, समुद्र की तरफ भाग रही है। समुद्र की तरफ भागना बहुत आसान है क्योंकि ढाल उस तरफ है, उन्मुक्तता उस तरफ है। लेकिन कोई गंगोत्री की तरफ जाने का विचार

करे तो बड़ी मुश्किल में पड जाए क्योंकि वहाँ चढ़ाव है, और वहाँ सागर भी नहीं है।

महावीर की यह चेष्टा है कि पीछे के लोगों को पीछे की स्थितियों की तरफ लौटाकर वहाँ जो जाग गया है उसको आगे बढ़ाया जाये। यह बहुत कठिन है। एक तो पीछे जाने का कभी ख्याल ही नहीं आता। हमें आगे जाने का ख्याल आता है। जो हम रह चुके होते हैं वह हम भूल चुके होते हैं। उससे कोई सम्बन्ध ही नहीं रह जाता। और भूलने का भी कारण है। क्योंकि जो अपमानजनक है, उसे हम स्मरण नहीं रखना चाहते। असल में अतीत जन्मों को भूल जाने का जो कारण है, गहरे से गहरा, वह यह है कि हम उन्हें याद रखना नहीं चाहते। जो कि हम नीचे से नीचे से आ रहे हैं उसको हम भूल जाना चाहते हैं। एक गरीब आदमी है, वह अमीर हो जाए तो सबसे पहला काम वह स्मृति के चिह्न मिटा देना चाहता है, जो उसकी गरीबी को कभी भी बता सके कि वह कभी गरीब था। यहाँ तक कि गरीबी के दिनों में जिनसे उसकी दोस्ती रही उनसे मिलने से वह कतराने लगता है क्योंकि उनकी दोस्ती, उनकी पहचान, सबको खबर देती है कि आदमी कभी गरीब था। वह अब नया सम्बन्ध बनाता है, नई दोस्तियाँ कायम करता है। वह नीचे को भूल जाता है। तो जब अमीर आदमी गरीब मित्रों तक को छोड़ सकता है तो पीछे को पशु योनियाँ, पक्षियों की योनियाँ, पौधों की योनियाँ, पत्थरों की योनियाँ जो रही हों उन्हें आकर भूल जाना चाहे, तो आश्चर्य नहीं। फिर उनसे तादात्म्य स्थापित करने की कौन फिक्र करे? महावीर ने पहली बार चेष्टा की है और इस चेष्टा को करने की जो विधि है उसको भी थोड़ा समझ लेना जरूरी है।

अगर किसी भी व्यक्ति को पीछे की अविकसित स्थितियों से तादात्म्य बनाना है तो उसे अपनी चेतना को, अपने व्यक्तित्व को उन्हीं तलों पर लाना पड़ता है जिन तलों पर वे चेतनाएँ हैं। यह जानकर आप हैरान होंगे कि महावीर का चिन्ह है सिंह और उसका कारण शायद आपको कभी भी ख्याल में न आया होगा और न आ सकता है। उसका कारण यह है कि पिछली चेतनाओं से तादात्म्य स्थापित करने में महावीर को सबसे ज्यादा सरलता 'सिंह' से तादात्म्य स्थापित करने में मिली। कोई और कारण नहीं है। उनका व्यक्तित्व भी 'सिंह' जैसा है। वह पिछले जन्मों में 'सिंह' रह चुके हैं और लौटकर उससे तादात्म्य बनाना उनके लिए एकदम सरल हो गया है। सच तो ऐसा है कि जब

उनका सिंह से तादात्म्य हुआ तो उन्होंने पूरी तरह जाना होगा कि 'मैं सिंह हूँ' और यह उनका प्रतीक बन गया, चिह्न बन गया। और उनके व्यक्तित्व में यह बातें भी हैं जो सिंह में हों। जैसे 'सिंह' झुण्ड में नहीं चलेगा, भीड़ में नहीं चलेगा। एकदम अकेला खड़ा रहेगा महावीर में वैसा गुण है। सिंह में जो आक्रमण है, जीत को विजय का जो अदम्य भाव है, वह महावीर में है; सिंह में जैसा अभय है वह महावीर की साधना का प्रथम सूत्र है। यह चिह्न आकस्मिक नहीं है। कोई चिह्न कभी आकस्मिक नहीं होता, उस चिह्न के पीछे बहुत वैज्ञानिक मामला है।

जुंग ने बहुत काम किया है। इस सम्बन्ध में कई परीक्षण किए उसने। और इस बात की खोज की कि प्रत्येक व्यक्ति के मानस में कुछ चिह्न हैं जो उसके व्यक्तित्व के चिन्ह हैं। अगर उन चिह्नों को समझा जा सके तो हम उसके व्यक्ति को उघाड़ने में सफल हो सकते हैं। यह जो महावीर के नीचे 'सिंह' बना हुआ है, यह उसके व्यक्तित्व की पहचान की कुंजी है। पीछे उतर कर तादात्म्य स्थापित करना इसके लिए चेतना को निरन्तर शिथिल करना होगा और चेतना को उस स्थिति में ले आना होगा जहाँ चेतना में कोई गति नहीं रहती, जहाँ चेतना बिल्कुल, शिथिल, शान्त और विराम को उपलब्ध हो जाती है और शरीर बिल्कुल जड़ अवस्था को उपलब्ध हो जाता है। शरीर जब जड़ हो और चेतना शिथिल और शून्य हो तब किसी भी वृक्ष, पशु, पौधे से तादात्म्य स्थापित किया जा सकता है। और एक मजे की बात है कि अगर वृक्षों से तादात्म्य स्थापित करना हो तो किसी खास वृक्ष से तादात्म्य स्थापित करने की जरूरत नहीं। वृक्षों की पूरी जाति के साथ एकदम तादात्म्य स्थापित हो सकता है क्योंकि वृक्षों के पास व्यक्तित्व अभी पैदा नहीं हुआ। अभी वे एक जाति की तरह जीते हैं। जैसे कि गुलाब के पौधे से तादात्म्य स्थापित करने का मतलब है समस्त गुलाबों से तादात्म्य स्थापित हो जाना क्योंकि किसी पौधे के पास अभी व्यक्ति का भाव नहीं है, अभी अहंकार और अस्मिता नहीं हैं। लेकिन मनुष्यों से अगर तादात्म्य स्थापित करना हो तो बहुत कठिन बात है। हाँ, आदिवासी जातियों से इकट्ठा तादात्म्य अभी भी स्थापित हो सकता है क्योंकि वे कबीले की तरह जीते हैं। उनका कोई व्यक्तित्व नहीं है लेकिन जितना समाज सभ्य होगा, जितना सुसंस्कृत होगा उतना मुश्किल हो जाएगा। जैसे अगर बर्टेंड रसल से तादात्म्य स्थापित करना हो तो सीधा व्यक्ति से तादात्म्य स्थापित करना होगा। अंग्रेज जाति से तादात्म्य स्थापित करने में और किसी

से भी तादात्म्य स्थापित हो जाए, बर्टेंड रसल छूट जाएगा बाहर। उसके पास अपना व्यक्तित्व है। जितने नीचे हम उतरते हैं, उतना वहाँ व्यक्तित्व नहीं है। इसलिए इस वर्ग में तादात्म्य पूरी जाति से होता है। इस तादात्म्य की स्थिति में जो भी भाव-संकल्प किया जाए वह प्रतिध्वनित होकर उन सारे जीवों तक व्याप्त हो जाता है। जैसे गुलाब के पौधे की जाति से तादात्म्य स्थापित किया गया हो तो उस क्षण में जो भी भाव-तरंग पैदा की जाए वह समस्त गुलाबों तक संक्रमित हो जाती है।

ऐसी अवस्था में महावीर ने बहुत समय गुजारा। और ऐसी अवस्था को उपलब्ध करने में उनको बहुत सी बातें करनी पड़ीं जो पीछे समझाने वाले को मुश्किल होती चली गईं। जैसे महावीर खड़े हैं, कोई उनके कानों में कीलें ठोक दे, महावीर को पता नहीं चलता। कारण कि पत्थर में कील ठोक दो तो पत्थर को क्या पता चलता है क्योंकि सब करीब-करीब अचेतन है। महावीर के कान में कीलें ठोके जा रहे हैं तो उनको पता नहीं चलता। कारण कि उस समय वे ऐसी चीजों से तादात्म्य कर रहे हैं जिनको पता नहीं चलता कीलें ठोंके जाने से। आप मेरा मतलब समझ रहे हैं न? जिस प्राणी जगत् से वह सम्बन्ध स्थापित किए खड़े हैं, उस प्राणी को कान में कीला ठोके जाने से पता नहीं चलेगा। इसलिए महावीर को भी कभी पता नहीं चल सकता है। अगर महावीर का कोई हाथ भी काट लेगा तो भी उन्हें पता नहीं चलेगा, जैसे कोई वृक्ष की एक शाखा काट ले। यह इस बात पर निर्भर करता है कि उनका तादात्म्य क्या है। हम सब जानते हैं कि लोग अंगारों पर कूद सकते हैं। तादात्म्य किससे है, इस पर सब बात निर्भर करती है। अगर उस व्यक्ति ने किसी देवता से तादात्म्य किया है तो वह अंगारों पर कूद जाएगा, जलेगा नहीं क्योंकि वह देवता नहीं जल सकता है। जो रहस्य है वह कुल इतना है। आदमी तो फौरन जल जाएगा लेकिन अगर उसने अपना तादात्म्य किसी देवता से किया हुआ है, उसके साथ अपने को एक मान लिया है, उसकी धुन में नाचता हुआ चला जा रहा है तो उसके नीचे अंगारों के ढेर लगा देने पर भी उसके पावों पर फफोला नहीं आएगा क्योंकि जिससे उसका तादात्म्य है, चेतना उस वक्त वैसा ही व्यवहार करना शुरू कर देती है। हमारे तादात्म्य पर निर्भर करता है कि हम कैसा व्यवहार करेंगे। यह जो हम मनुष्य हैं अभी यह भी गहरे में हमारा तादात्म्य ही है। इसलिए मनुष्य को कैसे व्यवहार करना चाहिए, वैसा हम

व्यवहार करते हैं। गहरे में यह भी हमारी मनोभूमी की पकड़ है कि "हम मनुष्य हैं", तो फिर हम मनुष्य जैसा व्यवहार कर रहे हैं।

इस सम्बन्ध में बहुत सी घटनाएँ मुझे ख्याल में आती हैं। महावीर के जीवन में बहुत जगह है जहाँ समझना मुश्किल हो जाता है। न समझने की वजह से हम कहते हैं कि आदमी क्षमावान् है, अक्रोधी है। यानी क्रोध नहीं करता है। यह सब ठीक है। क्रोध न करे, क्षमा करे लेकिन कान में कीलें ठुकें और पता न चले। यह अकेले अक्रोधी और क्षमावान् को नहीं होने वाला है। कितना ही अक्रोधी हो, अक्रोध और बात है लेकिन कान में कीले ठुके और पता न चले, यह बिल्कुल अलग बात है। यह तभी हो सकता है जब महावीर बिल्कुल चट्टान की तरह हों उस हालत में।

सुकरात एक रात खो गया। घर के लोग रात भर परेशान रहे। सुबह मित्र खोजने निकले तो एक वृक्ष के नीचे जहाँ बर्फ पड़ी है, सब बर्फ से ढ़का हुआ है, वह घुटने-घुटने तक बर्फ में डूबा हुआ है। वह वृक्ष से टिका हुआ खड़ा है। उसकी आँख बंद है और वह बिल्कुल ठंडा है। सिर्फ धीमी सी स्वांस चल रही है। उसे हिलाया है, बमुश्किल वह होश में आया है, उसके हाथ पैर पर मालिश की है, उसे गर्म किया है, कपड़े पहनाए हैं। फिर जब वह थोड़ा होश में आया है, उससे पूछा है कि तुम क्या कर रहे थे। तो कहा कि बड़ी मुश्किल हो गई। रात जब मैं खड़ा हुआ तो सामने कुछ तारे थे; मैं उनको देख रहा था। और कब मेरा तारों से तादात्म्य हो गया मुझे याद नहीं। और कब मैंने ऐसा जाना कि मैं तारा हूँ, मुझे पता नहीं, और तारे तो ठंडे होते हैं, इसलिए मैं ठंडा होता चला गया। और चूंकि मैं तारा समझ रहा था अपने को इसलिए कोई बात ही नहीं उठी, घर लौटने का ख्याल ही नहीं था। वह तो तुमने जब मुझे हिलाया तब मैं जैसे एक दूसरे लोक से वापस लौटा हूँ।

हम जहाँ तादात्म्य कर लेते हैं, वही हो जाते हैं। तादात्म्य की कला बहुत अद्भुत बात है। और जरा सी चूक हो जाए तादात्म्य में तो सब गड़बड़ हो जाएगा। महावीर जो अभिव्यक्ति का उपाय खोज रहे हैं, वह है भूत, जड़, मूक जगत् उस सब में तरंगें पहुँचाने का। और ये तरंगें अब तो वैज्ञानिक ढंग से भी अनुभव की जा सकती हैं।

तीर्थ और मन्दिर जिस दिन पहली बार खड़े हुए, उनके खड़े होने का कारण बहुत ही अद्‌भुत था। वह यही था। अगर महावीर जैसा व्यक्ति इस कमरे में रह जाए कुछ दिन तो इस कमरे से उसका तादात्म्य हो जाता है। और इस कमरे के रग-रग पर, कण-कण पर उसकी तरंगें अंकित हो जाती हैं। फिर इस कमरे में बैठना किसी दूसरे के लिए बड़ा सार्थक हो सकता है, बड़ा सहयोगी हो सकता है। इस कमरे में अगर एक आदमी ने किसी की हत्या कर दी हो, या आत्महत्या कर ली हो तो आत्महत्या के क्षण में इतनी तीव्र तरंगों का विस्फोट होता है—क्योंकि आदमी मरता है, टूटता है—कि सैकड़ों वर्षों तक इस कमरे की दीवारों पर उसकी प्रतिध्वनियां अंकित हो जाती हैं और यह हो सकता है कि एक रात आप इस कमरे में आकर सोएँ और रात आप एक सपना देखें आत्महत्या करने का। वह आपका सपना नहीं है। वह सपना केवल इस कमरे की प्रतिध्वनियों का आप के चित्त पर प्रभाव है। और यह भी हो सकता है, इस कमरे में रहते हुए आप किसी दिन आत्महत्या कर गुजरें—यह भी बहुत कठिन नहीं है। इससे उल्टा भी हो सकता है। लेकिन महावीर और मीरा जैसा कोई व्यक्ति इस करने में बैठकर एक तरंगों में जिया हो तो यह कमरा उसकी तरंगों से भर जाएगा। इसके कण-कण में—क्योंकि उधर जो हमें कण दिखाई पड़ रहा है मिट्टी का, और यह जो हम में कण हैं उनमें—कोई बुनियादी भेद नहीं है। वह सब एक से ही बहुत विद्युत् के कण हैं और सब विद्युत् के कण तरंगों को पकड़ सकते हैं, तरंगों को देख सकते हैं। कमजोर आदमी को तरंगें दे देते हैं और शक्तिशाली आदमियों से उनको तरंगें लेनी पड़ती हैं।

मैंने परसों बोधिवृक्ष की बात की थी। इस वृक्ष को इतना आदर देने का और तो कोई कारण नहीं है। वह वृक्ष ही है। बुद्ध उसके नीचे बैठकर अगर निर्वाण को भी उपलब्ध हुए तो क्या मतलब है? लेकिन मतलब निश्चित है। इस वृक्ष के नीचे निर्वाण की घटना घटी तो उस क्षण में इतनी तरंगें बुद्ध के चारों तरफ विस्फोट की तरह फैलीं कि यह वृक्ष उसका सबसे बड़ा गवाह है और इस वृक्ष के कण-कण से उसकी तरंगों का अंकन है। और आज भी जो रहस्य को जानता है वह उस वृक्ष के नीचे बैठकर उन तरंगों को वापस अपने में बुला सकता है। आकस्मिक नहीं था कि हजार-हजार, दो-दो हजार, तीन-तीन हजार मील तक बौद्ध भिक्षु चक्कर लगाएँ, दो क्षण उस वृक्ष के पैरों में पड़े रहने के लिए आते रहें। आकस्मिक नहीं है। इसके पीछे सारी की सारी विज्ञान की बात है।

सम्मेद शिखर है, गिरनार है, काबा है, काशी है, जेरुसलम है—इन सब के साथ कुछ संकेत और कुछ गहरी लिपियों में कुछ जुड़ा है। उनकी तरंगें धीरे-धीरे नष्ट हो गई हैं। करीब-करीब इस समय पृथ्वी पर कोई भी जीवित तीर्थ नहीं है, सब तीर्थ मर गए हैं। उनकी तरंगें नष्ट हो गई हैं। इतनी तरंगों का उनके उपर और आघात हो गया है इतने लोगों के आने जाने का कि वे करीब-करीब कट गई हैं और समाप्त हो गई हैं। लेकिन इस बात में तो अर्थ था ही, इस बात में तो अर्थ है ही। जड़ से जड़ वस्तु पर भी तरंगें क्रान्तिकारी परिवर्तन ला सकती हैं।

अभी एक नवीनतम प्रयोग बहुत हैरानी का है। वह प्रयोग यह है कि जैसे-जैसे हम अणु को तोड़ कर और परमाणुओं को तोड़कर इलैक्ट्रोन की दुनिया में पहुँचे हैं, वहाँ जाकर एक नया अनुभव आया है जो बहुत घबड़ाने वाला है और जिसने विज्ञान को सारी व्यवस्था उलट दी है। वह अनुभव यह है कि अगर इलैक्ट्रोन को बहुत खुर्दबीनों से निरीक्षण किया जाए तो जैसा वह अनिरीक्षित व्यवहार करता है, निरीक्षण करने पर उनका व्यवहार बदल जाता है। कोई उसे नहीं देख रहा है तो वह एक ढंग से गति करता है और खुर्दबीन से देखने पर वह डगमगा जाता है और गति बदल देता है। यह बड़ी हैरानी की बात है कि पदार्थ का अन्तिम अणु भी मनुष्य की आँख और निरीक्षण से प्रभावित होता है। ऐसे जैसे आप अकेले सड़क पर चले जा रहे हैं, कोई नहीं है सड़क पर, फिर अचानक किसी खिडकी में से कोई झांकता है और आप बदल गए। आप दूसरी तरह चलने लगे। अभी जिस शान से आप चल रहे थे वैसा नहीं चल रहे। अभी गुनगुना रहे थे, अब गुनगुनाना बंद हो गया। अपने बाथरूम में आप स्नान कर रहे हैं, गुनगुना रहे हैं, नाच रहे हैं, या आइने के सामने मुंह बना रहे हैं और अचानक आपको पता लगे कि बगल के छेद से कोई आदमी झांकता है, आप दूसरे आदमी हो गए। निरीक्षण आदमी में फर्क लाये, यह समझ में आता है। लेकिन अणु भी, परमाणु भी, निरीक्षण से डगमगा जाए तो बड़ी हैरानी की बात है। और यह सब इस बात की खबर देते हैं कि हम कुछ गलती में हैं। वहाँ भी प्राण, वहाँ भी आत्मा, वहाँ भी देखने से भयभीत होने वाला, देखने से सचेत होने वाला, देखने से बदलने वाला मौजूद है।

इन परमाणुओं तक भी महावीर ने खबर पहुँचाने की कोशिश की है। इस खबर पहुँचाने के लिए ही, जैसा मैंने कहा, पहले तो यह अनेक बार ऐसी

अवस्था में पाए गए, जहाँ वह जीवित हैं या मृत हैं कहना मुश्किल है। और यह अवस्थाएँ लाने के लिए उन्हें कुछ और प्रयोग करने पड़े वे भी हमें समझ लेने चाहिए।

महावीर का चार-चार महीने तक, पाँच-पाँच महीने तक भूखा रह जाना बड़ा असाधारण है। कुछ न खाना और शरीर को कोई क्षीणता न हो, शरीर को कोई नुकसान न पहुँचे, शरीर वैसा का वैसा ही बना रहे शायद ही आपने कभी सोचा हो। या जो जैन मुनि और साधु संन्यासी निरन्तर उपवास की बात करते हैं, उनमें से, अढ़ाई हजार वर्ष होते हुए महावीर के हुए, एक भी यह नहीं बता सकता है कि तुम चार-पाँच महीने का उपवास करो तो तुम्हारी क्या गति होगी। महावीर को क्यों नहीं हो रहा है ऐसा। यह आदमी चार-चार पाँच-पाँच महीनों तक नहीं खा रहा है। बारह वर्ष में मुश्किल से जोड़-तोड़ कर एक आध वर्ष भोजन किया है यानी बारह दिन के बाद एक दिन तो निश्चित ही, कभी दो दिन, कभी दो महीने बाद, कभी-कभी तीन महीने बाद, इस तरह चलता है लेकिन इसके शरीर को कोई क्षीणता उपलब्ध नहीं हुई है। इसका शरीर पूर्ण स्वस्थ है, असाधारण रूप से स्वस्थ है, असाधारण रूप से सुन्दर है—क्या कारण है ? अब मेरी अपनी जो दृष्टि है, जैसा मैं देख पाता हूँ, वह यह है कि जो व्यक्ति नीचे के तल पर, पदार्थ के परमाणुओं, पौधों के परमाणुओं, पक्षियों के परमाणुओं को इतना बड़ा दान दे रहा है अगर ये परमाणु उसे प्रत्युत्तर देते हों तो आश्चर्य नहीं। यह परमाणु जगत् का प्रत्युत्तर है। जो आदमी पास में पड़े हुए पत्थर की आत्मा को भी जगाने का उपाय कर रहा है, जो पास में लगे हुए वृक्ष की चेतना को जगाने के लिए भी कम्पन भेज रहा है अगर ऐसे व्यक्ति को सारे पदार्थ-जगत् में प्रत्युत्तर में बहुत सी शक्तियाँ मिलती हों तो आश्चर्य नहीं। और उसे वे शक्तियाँ मिल रही हैं। आखिर वृक्ष को हम भोजन बनाकर लेते हैं, काटते हैं, पीटते हैं, आग पर पकाते हैं, फिर वह जो वृक्ष है, वृक्ष का पत्ता है, या फल है, इस योग्य होता है कि हम उसे पचा सकें और वह हमारा खून और हड्डी बन जाए। बनता तो वृक्ष ही है। और वृक्ष क्या है, मिट्टी ही है; मिट्टी क्या है, सूरज की किरणें ही हैं। वह सब चीजें मिल कर एक फल में आती हैं। फल हम लेते हैं। हमारे शरीर में पचता है और पहुँच जाता है। आज नहीं कल, विज्ञान इस बात को खोज लेगा कि जो किरणों को पीसकर वृक्ष का फल 'D' विटामिन लेता है, क्या जरूरत है कि इतनी लम्बी यात्रा की जाए कि हम फल को लें और फिर 'डी' विटामिन हमें

मिले। सूरज की किरण से सीधा क्यों न मिले? यह सूरज की किरण को हम एक छोटे केपस्यूल में क्यों न बंद करें और वह आदमी को दें ताकि वह पचास फल खाने में जितना 'डी' विटामिन इकट्ठा कर पाए, एक कैपस्यूल उसको पहुँचा दे। आज नहीं कल, विज्ञान उस दिशा में गति करेगा ही। लेकिन विज्ञान की गति और तरह की है। वह छीन-झपट की गति है। महावीर की भी एक तरह की गति है और वह गति भी किसी दिन स्पष्ट हो सकेगी कि क्या यह सम्भव नहीं है। आखिर पानी ही तो हमें बचाता है, हवा बचाती है, सूरज बचाता है यही सब तो हमारा भोजन बनते हैं। क्या यह संभव नहीं है कि बहुत गहरे प्रतिदान में जो आदमी इन सबके लिए एकात्म्य साध रहा हो उसको इनसे भी प्रत्युत्तर में कुछ मिलता हो जो हमें कभी नहीं मिलता, या मिलता है तो बहुत श्रम से मिलता है।

इस तरह की दो घटनाएँ और घटी हैं। अभी यूरोप में एक औरत जिन्दा है जिसने तीस साल से भोजन नहीं किया और पूर्ण स्वस्थ है और वैसी ही सुन्दर है, वैसी ही स्वस्थ है जैसे महावीर रहे होंगे। और तीस साल से उसने कुछ भी नहीं लिया है। उसके शरीर में कुछ भी नहीं गया है। उसके सब एक्स-रे हो चुके हैं, जाँच-पड़ताल हो चुकी है। उसका पेट सदा से खाली है। तीस साल से उसने कुछ भी नहीं खाया है। लेकिन उसका एक छटाँक वजन भी नहीं गिरता है नीचे। वह पूर्ण स्वस्थ है। न केवल वजन नहीं गिरता है बल्कि एक और दुर्घटना है जो उसके साथ चलती है। ईसाइयों में, ईसाई फकीरों में एक तादात्म्य का प्रयोग है जो स्टिगमेटा कहलाता है। जैसे जीसस को जिस शुक्रवार को शूली लगी, उनके दोनों हाथों पर कीले ठोके गए तो जो ईसाई फकीर, ईसाई साधक जीसस से तादात्म्य कर लेते हैं, शुक्रवार को ऐसा हाथ फैला कर बैठ जाते हैं और हजारों लोगों के सामने उनके हाथों में अचानक छेद हो जाते हैं और खून बहने लगता है वह जीसस से तादात्म्य के आधार पर—यानी उस क्षण वह भूल गए हैं कि मैं हूँ, वह जीसस है। शुक्रवार का दिन आ गया और वह शूली पर लटका दिए गए हैं। उनके हाथ फैल जाते हैं। हजारों लोग देख रहे हैं। उनकी हथेली फटती है और खून बहना शुरू हो जाता है। इस औरत ने तीस साल से खाना तो लिया नहीं और तीस साल से प्रति शुक्रवार सेरों खून इसके हाथ से बह रहा है। दूसरे दिन हाथ ठीक हो जाते हैं और सब घाव मिट जाते हैं और उसके वजन में कमी नहीं आती। पश्चिम में घटना घटे, वहाँ तो वैज्ञानिक चिन्तन चलता है किसी भी

बात पर। लेकिन उनकी पकड़ में अब तक नहीं आ सका कि बात क्या हो सकती है।

बंगाल में एक औरत थी। उसे मरे अभी कुछ वर्ष हुए। पैंतालिस वर्ष तक उसने कोई भोजन नहीं किया। वह बहुत स्वस्थ नहीं थी किन्तु साधारण स्वस्थ थी। इतने वर्ष भोजन न करने से कोई असुविधा नहीं आई थी, चलती फिरती थी। बूढ़ी औरत थी। सब ठीक था। उसका पति जिस दिन मरा उस दिन से भोजन नहीं लिया। घर के लोगों ने समझाया-बुझाया कि भोजन ले लो। उसने कहा मैं पति के मरने के बाद भोजन कैसे ले सकती हूँ। घर के लोगों ने, मित्रों ने कहा कि ठीक है, रहने दो, ठीक ही कहती है, वह कैसे ले सकती है। दो दिन बीत गए तब फिर लोगों ने कहा तो उसने कहा कि अब तो पति के मरने के बाद ही सब दिन हैं। अब इससे क्या फर्क पड़ता है कि एक दिन, दो दिन, तीन दिन। अब तो बाद में ही सब कुछ है। और जब उस दिन तुम राजी हो गए तो अब तुम राजी ही रहो। अब मैं बाद में कैसे भोजन ले सकती हूँ। अब बात खत्म हो गई। वह पैंतालीस साल जिन्दा रही। उसने भोजन नहीं लिया। लेकिन वैज्ञानिक उसकी भी चिन्तना करते रहे, विचार करते रहे। उनको साफ नहीं हो सका कि बात क्या है। मेरी अपनी समझ यह है, और महावीर से ही वह समझ मेरे ख्याल में आती है कि हो सकता है किसी न किसी तरह से परमाणुओं का सूक्ष्म जगत् सीधा भोजन देता हो। इसके अतिरिक्त और कोई बात नहीं है। वह कैसे देता हो, किस ढंग से देता हो यह हमारी बातें हैं। लेकिन, सूक्ष्म जगत् से सीधा भोजन मिलता हो, और बीच में माध्यम न बनाना पड़ता हो।

महावीर को ऐसा भोजन मिला है। इसलिए महावीर के पीछे जो भूखों मर रहे हैं, वे बिल्कुल पागल हैं। वे निपट शरीर को गला रहे हैं और नासमझी कर रहे हैं। इसलिए महावीर के उपवास को मैं कहता हूँ 'उपवास' है और बाकी पीछे लोग अनशन कर रहे हैं वे सिर्फ मांसाहारी हैं—अपना ही मांस पचा जाते हैं। एक दिन के उपवास में एक पौंड मांस पच जाता है। तो चाहे हम दूसरे का मांस खाएँ या अपना खाएँ, इसमें कोई फर्क नहीं पड़ता है। वह मांसाहारी ही है क्योंकि शरीर को जरूरत है उतने की। जितनी गर्मी चाहिए, जितनी शक्ति चाहिए वह शरीर लेगा। अगर आप बाहर से नहीं देते हैं तो वह शरीर से पचा लेगा। तो इतनी चर्बी पचा जाएगा और उस पचाने में आप उपवास समझेंगे। वह उपवास नहीं है। शरीर में कोई फर्क न आए, शरीर जैसा

या वैसा रहे तब तो जानना चाहिए कि भोजन के सूक्ष्म मार्ग उपलब्ध हो गए हैं, सिर्फ भोजन बंद नहीं किया गया है।

महावीर जो तीन-चार महीने के बाद एक आध दिन भोजन कर लेते हैं, वह इसलिए नहीं लेते कि एक दिन के भोजन लेने से कोई फर्क पड़ जाएगा क्योंकि जब चार महीने भोजन के विना एक आदमी रह सकता है तो आठ महीने क्यों नहीं ? वह सिर्फ इस रहस्य को प्रकट न करने के लिए है कि अगर साल दो साल भूखा रह जाए आदमी तो लोग पूछेंगे कि यह हुआ कैसे ? और यह हर किसी को बताना खतरनाक भी हो सकता है। सभी बातें सभी को बताने के लिए नहीं भी हैं। जो वे एक दिन खाना ले लेते हैं वह सिर्फ इसलिए कि लोगों को सान्त्वना हो जाए कि वे खाना ले लेते हैं। एक दिन खाना ले लेते हैं तो दो चार-महीने बात खत्म हो जाती है। इसलिए, जो बातें अभी मैं कह रहा हूँ उसमें कुछ सूत्र छोड़े जा रहा हूँ। इसलिए अभी इनका प्रयोग नहीं किया जा सकता। आप इनका प्रयोग नहीं कर सकते।

महावीर पाखाना नहीं जाते, पेशाब नहीं जाते। बड़ी चिन्तना की बात है कि यह कैसे हो सकता है ? महावीर को पसीना नहीं बहता, यह कैसे हो सकता है ? अगर भोजन ले लें तो यह सब होगा क्योंकि यह भोजन से जुड़ा हुआ हिस्सा है। अगर आप भीतर डालेंगे तो बाहर निकालना पड़ेगा। लेकिन अगर सूक्ष्म तल से भोजन मिलने लगे तो इसका कोई मतलब ही नहीं रह जाता है। निकालने को कुछ है ही नहीं। इतना सूक्ष्म है भोजन कि निकालने लायक कुछ भी उसमें से बचता नहीं। वह सीधा शरीर में लीन हो जाता है।

महावीर की अहिंसा को भी इस तरह से समझने की कोशिश करना जरूरी है। और तरफ से भी हम समझने की कोशिश करेंगे। महावीर के लम्बे उपवास समझ लेने जरूरी हैं कि सूक्ष्म भोजन प्राप्त करने की प्रक्रिया उन्हें उपलब्ध है।

काशी में एक संन्यासी था विशुद्धानन्द और उसने एक अति प्राचीन विज्ञान को जो एकदम खो गया था फिर से उज्जीवित किया। वह है सूर्य किरण विज्ञान। उस आदमी ने इस तरह लेंस बनाए थे कि एक मरी हुई चिड़िया को ले जाकर आप रख दें तो वह लेंस से सूरज की किरणों को पकड़ेगा और उस चिड़िया पर डालेगा। थोड़ी देर कुछ करता रहेगा बैठा हुआ। और आपके सामने चिड़िया जिन्दा हो जाएगी। और यह प्रयोग पश्चिम के डाक्टरों के सामने भी किए गए और यूरोप से आने वाले न जाने कितने लोगों ने ये

प्रयोग अपनी आँखों से देखे। जिन्दा चिड़िया को बिठा दें। वह फिर लेंस को रखेगा। फिर कुछ और ढंग से किरणें डालेगा, कुछ करेगा और चिड़िया मर जाएगी। उसका कहना था कि सूर्य की किरण से सीधा जीवन और मृत्यु आ सकती है। बीच में कुछ और लेने की जरूरत नहीं। सीधा जीवन आ सकता है। सीधी मृत्यु आ सकती है और बात में गहरी सच्चाई है। सारा जीवन जो हमें पृथ्वी पर दिखाई पड़ रहा है, वह सूरज की किरण से बँधा हुआ है। सूरज अस्त हो जाए, सारा जीवन अस्त हो जाएगा। न पौधे होंगे, न फूल होंगे, न पक्षी होंगे, न आदमी होगा। कोई भी नहीं होगा। प्राणी हो सकते हैं, सूरज न हो तब भी, लेकिन देह नहीं होगी। देह और प्राण का सम्बन्ध सूरज की किरण से ही जुड़ा है। अदेही हो सकेंगे। लेकिन देह नहीं होगी।

अभी चाँद से लौटते वक्त जो एक घटना घटी है, वह विचारणीय है, बहुत ज्यादा विचारणीय है। चाँद से वे लौट आए हैं और चाँद पर कोई नहीं पाया गया है। कोई पाने को है भी नहीं ऐसे। लेकिन लौटते वक्त उनके नीचे के जो ट्रांसमिटर्स हैं, और जो रेडियो स्टेशन हैं, जहाँ वह पकड़ रहे हैं, वहाँ इतने जोर की चीखें-पुकार, इतना कोलाहल, इतना हँसना सुना गया है कि जैसे करोड़ों भूत-प्रेत एकदम से चिल्ला रहे हों। ये तीन आदमी अगर कोशिश भी करें चिल्लाने की, रोने की तो भी किसी स्थिति में ये करोड़ों भूत-प्रेतों की आवाजों का भ्रम पैदा नहीं कर सकते। और उनसे लौटने पर पूछा गया तो उन्होंने कहा : हमको तो कुछ भी पता नहीं; हम तो विश्राम करते चले आ रहे हैं। यह इस बात की गहरी सूचना है और खबर है कि चाँद पर कोई देहधारी तो नहीं है क्योंकि चाँद पर अभी वह स्थिति नहीं पैदा हुई जहाँ पर देह प्रकट हो सके। लेकिन चाँद पर अदेही आत्माओं की पूरी स्थिति है। इस पृथ्वी पर सूर्य की किरणों ने देह और प्राण को जोड़ने में बड़ा उपाय किया है। सूर्य की किरणों से सीधा भी कुछ हो सकता है। आँख से भी सूरज की किरणें पी जा सकती हैं, और जीवनदायी हो सकती हैं। त्राटक के बहुत से प्रयोग सीधे सूरज से जीवन खींचने के प्रयोग हैं। वह सिर्फ एकाग्रता के प्रयोग नहीं हैं। सीधा सूरज से जीवन खींचने के प्रयोग हैं। और एक दफा वह उतर जाए ख्याल में तो सूरज से कहीं से भी जीवन खींचा जा सकता है।

तिब्बत में एक विशेष प्रकार का योग होता है जिसको सूर्य योग ही कहते हैं। तिब्बत में तो भयंकर सर्दी है। सूरज कभी दिखता है, कभी नहीं दिखता है। बर्फ ही बर्फ जमी है। नंगा फकीर भी उस बर्फ पर बैठा रहेगा

और आप पाएँगे उसके शरीर से पसीना चू रहा है। नंगा बैठा हुआ है, सारे तरफ से पसीना झर रहा है। बर्फ पर ही नंगा बैठा हुआ है। रात, सूरज का कोई पता नहीं और पसीना टपक रहा है। उसकी प्रक्रिया है कि सूर्य कहीं भी हो हम उसका ताप पकड़ सकते हैं।

यह जो मैं कह रहा हूँ वह इस ख्याल से कह रहा हूँ ताकि आपके ख्याल में आ सके कि महावीर ने नीचे के जगत् से सम्बन्ध स्थापित किए तो नीचे जगत् ने भी उत्तर दिए हैं। फिर कहानियों में हमने इन उत्तरों को लिखा है जो कविताएँ बन जाती हैं। कहानी है, कविता है जो यह कहती है कि जब महावीर चलते हैं अगर कांटा सीधा पड़ा हो तो महावीर को देख कर तत्काल उल्टा हो जाता है। ये हमारी कहानियाँ हैं। और एक बहुत गहरी बात उसमें कहने की कोशिश की गई कि प्रकृति भी महावीर के प्रतिकूल होने की कोशिश नहीं करती, बल्कि अनुकूल होने की कोशिश करती है क्योंकि जिसने इतना प्रकृति से प्रेम किया हो, इतना तादात्म्य किया हो, वह प्रकृति कैसे उसके प्रतिकूल होने को कोशिश करेगी। मुहम्मद के सम्बन्ध में कहा जाता है कि जब वे चलते हैं तो एक बदली उनके ऊपर छाया की तरह चलती है। ऐसी कोई बदली चले, यह जरूरी नहीं है। चल भी सकती है। लेकिन बात यह है कि जरूर जो लोग जहाँ से सम्बन्ध बनाते हैं वहाँ से कुछ हो सकता है। उत्तर जरूर मिलेंगे। सड़क के किनारे पड़ा हुआ पत्थर भी आपके प्रेम का उत्तर देता ही है। उत्तर चारों तरफ से आते हैं और ध्यान रहे उत्तर वही होते हैं जो हम फेंकते हैं; वही गूँजते हैं, प्रतिध्वनित होते हैं, लौट आते हैं। तो महावीर को अहिंसा का उत्तर अगर अहिंसा की तरफ से लौटे तो आश्चर्य की बात नहीं है।

पहली बात यह है कि महावीर ने नीचे के तल से सम्बन्ध स्थापित किए, मूक जगत् से। नीचे मूक जगत् है, फिर बीच में मनुष्य का जगत् है जो शब्द का जगत् है। फिर मनुष्य के ऊपर देवताओं का जगत् है। ये तीन जगत् हैं। मूक का मतलब, जहाँ वाणी अभी प्रकट नहीं हुई। शब्द का जगत्, जहाँ प्रकट हो गई। मौन का जगत्, जहाँ वाणी वापस खो गई है। देवताओं के पास कोई वाणी नहीं है।

प्रश्न : शरीर है ?

उत्तर : शरीर भी नहीं है। पशुओं के पास भी कोई वाणी नहीं है लेकिन शरीर है; वाणी प्रकट नहीं हुई है। यन्त्र हैं पशुओं के पास, वाणी प्रकट हो सकती है।

प्रश्न : पशुओं की अपनी भाषा है ?

उत्तर : कहने मात्रा को। भाषा नहीं है सिर्फ संकेत हैं। संकेत काम चलाऊ हैं। और बड़े सीमित हैं। जैसे मधुमक्खियों के कोई चार संकेत हैं उनके पास। वे चार संकेत दे सकती हैं।

प्रश्न : पक्षियों की आवाजों के लिए ग्रन्थ हैं ?

उत्तर : हाँ, हाँ, पक्षियों से बात की जा सकती है लेकिन पक्षियों के पास अपनी वाणी नहीं है। आप सम्बन्ध जोड़ सकते हैं। पक्षी आपसे कुछ कह नहीं सकता है लेकिन पक्षी कुछ अनुभव कर सकता है। और अगर आप अनुभव के तल पर उससे सम्बन्ध जोड़ लें तो आप जान सकते हैं कि वह क्या अनुभव कर रहा है। वह आपसे कुछ कहता नहीं; सिर्फ आप उसके अनुभव को जान सकते हैं कि वह क्या कर रहा है। जैसे एक कुत्ता रो रहा है। वह आपसे कुछ कह नहीं रहा है। उसके भीतर कुछ हो रहा है जिससे वह रो रहा है। लेकिन अगर आप सम्बन्ध जोड़ सकें उसके भीतर से तो शायद आप पता लगा सकते हैं कि पड़ोस में कोई मरने वाला है इसलिए वह रो रहा है लेकिन कुत्ते को यह पता नहीं कि पड़ोस में कोई मरने वाला है इसलिए वह रो रहा है। उसके चित्त में इस तरह की तरंगे उठ रही हैं पास से आकर कि कहीं मृत्यु होने वाली है। यह उसका मूक अनुभव है। इस मूक अनुभव में वह रो रहा है, चिल्ला रहा है। आपसे कुछ कह सकता नहीं है वह। कहने का उपाय नहीं है उसके पास और आप भी उसके चिल्लाने से कुछ नहीं समझ सकते हैं। जब हम कहते हैं कि पशुओं-पक्षियों की भाषा सीखने के सम्बन्ध में बहुत से प्रयोग किए गए हैं और बहुत दूर तक सफलता भी पाई गई है लेकिन उनमें उनको कोई वाणी नहीं पकड़ता है। उनके पास कोई शब्द, वर्ण, अक्षर से निर्मित वाणी नहीं है। अनुभूति के तल जरूर हैं, अनुभूति की तरंगे हैं। उन्हें अगर पकड़ लें तो आप उस कोड को खोज सकते हैं। आप खोज सकते हैं कि उनको क्या एहसास हो रहा होगा।

तीन तल में मैं बाँट देता हूँ जीवन को : एक मूक जहाँ वाणी प्रकट हो सकती है, मगर प्रकट नहीं हुई; जहाँ सिर्फ अनुभव है, भाव है, शब्द नहीं है। दूसरा, मनुष्य का जगत्, जहाँ शब्द प्रकट हो गया है जहाँ हम शब्द के द्वारा काम करने लगे हैं, बात करने लगे हैं, विचार करने लगे हैं, संवाद करने लगे हैं। तीसरा, मनुष्य से ऊपर देवताओं का जगत्, जहाँ वाणी खो गई है, व्यर्थ

हो गई है, अब उसकी कोई जरूरत नहीं रही, अब बिना शब्द के ही बातचीत हो सकती है, मौन ही सम्भाषण बन सकता है। इनमें सर्वाधिक कठिन पशुओं का जगत् मालूम पड़ता है—पौधों का, पक्षियों का, पत्थरों का। लेकिन सर्वाधिक कठिन वह नहीं है। इनमें कठिन देवताओं का जगत् भी मालूम पड़ सकता है क्योंकि जहाँ शब्द नहीं हैं वहाँ अभिव्यक्ति कैसे होती होगी। मगर वह भी इतना कठिन नहीं है। सबसे ज्यादा कठिन सम्भाषण का जगत् है, मनुष्य का जगत् है जिसने संवाद के लिए शब्द ईजाद कर लिए हैं और इस तरह कि शब्दों के कारण ही संवाद होना ही मुश्किल हो गया है। सबसे सरल देवताओं का जगत् है, जहाँ मौन विचार हो सकता है। इसलिए यह जो कहा जाता है कि महावीर के समवसरण में पहली उपस्थिति देवताओं की है, उसका अर्थ सिर्फ इतना ही है। सबसे सरल सम्भाषण उनसे हो सकता है। शब्द बीच में बाधा नहीं है, शब्द बीच में माध्यम नहीं है। सीधा जो भाव उठे, वह सम्प्रेषित हो जाता है। बीच में किसी को कोई यात्रा करने की जरूरत नहीं रह जाती। जैसे हम देखते हैं, कि टेलीफोन है। उसमें एक तार की व्यवस्था है। फिर वायरलेस है, जिसमें बीच में कोई तार नहीं है, सीधा संबंध है। बीच में तार लाने की जरूरत नहीं है। सीधा, सम्प्रेषण हो जाता है। ऐसे ही एक सम्भाषण शब्द के द्वारा हो जाता है। जहाँ शब्द 'मुझे' और 'आपको' जोड़ता है और एक सम्भाषण ऐसा भी है जहाँ शब्द भी बीच में नहीं है। सिर्फ मौन है। और मौन में जो अनुभव होता है वह सम्प्रेषित हो जाता है। तो देवताओं के साथ सत्य की वार्ता सबसे ज्यादा सरल है। इसलिए पहली उपस्थिति उनकी रही हो तो यह आश्चर्य की बात नहीं है। यह स्वाभाविक है।

प्रश्न : ये देवी-देवता सब हुए हैं ?

उत्तर : हुए हैं नहीं। हैं ही। उसकी हम धीरे-धीरे बात कर सकेंगे कि वह क्या है। उस सम्बन्ध में भी थोड़ी बात जान लेनी उचित होगी। पशु, पक्षी भी महावीर के समवसरण में उपस्थित हैं, उन्हें सुनने को उपस्थित हैं। यह भी हैरानी की बात मालूम पड़ती है कि पशु पक्षी सुनने को उपस्थित हों! मनुष्य भी उपस्थित हैं। पशु-पक्षियों को जो कहा गया है शायद उन्होंने भी सुना है। देवताओं को जो कहा गया है शायद उन्होंने भी सुना है। मनुष्य को जो कहा गया है शायद उन्होंने नहीं सुना है। क्योंकि उनके पास शब्द हैं और समझदारी का ख्याल है जो बड़ा खतरनाक है। मनुष्य को यह ख्याल है कि 'मैं

सब समझ लेता हूं।' यह बड़ी भारी बाधा है। और मनुष्य शब्द सुनता है और शब्द को पकड़ने का, संग्रह करने का उपाय ईजाद कर लिया है उसने—भाषा को वह सब संग्रहीत कर लेता है। वह कहता है 'यह सब लिखा हुआ है।' वह शब्द पकड़ लेता है फिर शब्दों की व्याख्या करता है और भटक जाता है। इसलिए मनुष्य के साथ बड़ी कठिनाई है। क्योंकि मनुष्य पशु है लेकिन वह पशु नहीं रह गया है। मनुष्य देवता हो सकता है लेकिन अभी हो नहीं गया है। वह बीच की कड़ी है। अगर ठीक से हम समझें तो वह प्राणी नहीं है, सिर्फ कड़ी है। पशु से चला आया है वह आगे। लेकिन पशु बिल्कुल खो नहीं गया है। इसलिए जो जरूरी चीजें हैं, वह अब भी भाषा के बिना करता है। जैसे क्रोध आ जाए तो वह चांटा मारता है, प्रेम आ जाए तो वह गले लगाता है। जो जरूरी चीजें हैं, वह अभी भी भाषा के साथ नहीं करता है। भाषा अलग कर देता है फौरन। उसका पशु होना एकदम प्रकट हो जाता है। पशु के पास कोई भाषा नहीं है। प्रेम है तो वह गले लगा लेता है, क्रोध है तो चांटा मार देता है। वह नीचे उतर रहा है। वह भाषा छोड़ रहा है। वह जानता है कि भाषा समर्थ नहीं है। इसलिए जो बहुत जरूरी चीज है उसमें वह गैर भाषा के काम करता है। या फिर जो बहुत जरूरी चीजें हैं जिनमें भाषा बिल्कुल बेकार हो जाती है तो वह मौन से काम करता है। मनुष्य पशु नहीं रह गया है और देवता भी नहीं हो गया है। वह बीच में खड़ा है। एक तरफ का क्रास रोड है, एक तरह का चौरास्ता है जो सब तरफ से बीच में पड़ता है। कहीं भी जाना है तो मनुष्य से हुए बिना जाने का उपाय नहीं है।

इस मनुष्य को समझाने की चेष्टा ही सबसे ज्यादा कठिन चेष्टा है। देवता समझ लेते हैं जो कहा जाता है वैसा ही क्योंकि बीच में कोई शब्द नहीं होता। व्याख्या करने का कोई सवाल नहीं है वहां। पशु समझ लेते हैं क्योंकि उनसे कहा ही नहीं जाता। व्याख्या की कोई बात ही नहीं होती। सिर्फ तरंगें प्रेषित की जाती हैं। तरंगें पकड़ ली जाती हैं। जैसा कि अब यह टेप रिकार्डर मुझे सुन रहा है। आप भी मुझे सुन रहे हैं। इस कमरे में कोई देवता भी उपस्थित हो सकता है। यह टेप रिकार्डर कोई व्याख्या नहीं करता है। यह सिर्फ रिसीव कर लेता है, सिर्फ तरंगों को पकड़ लेता है। इसलिए कल इसको बजाएंगे तो जो इसने पकड़ा है, वह दुहरा देगा पदार्थ के तल पर, और पशु के तल पर जो ग्रहण शक्ति है वह इसी तरह की सीधी है। सिर्फ तरंगें सम्प्रेषित हो जाती हैं। देवता तल पर अर्थ सीधे प्रकट हो जाते हैं। मनुष्य के तल पर तरंगें पहुँचती

हैं, अर्थ वह खुद खोजता है। तब बड़ी मुश्किल हो जाती है। तब उसको सब व्याख्याएँ खड़ी हो जाती हैं। व्याख्याओं पर व्याख्याएँ खड़ी हो जाती हैं।

जैसा मैंने कहा कि महावीर शायद अकेले व्यक्ति हैं जिन्होंने न मालूम कितने पशुओं, न मालूम कितने पक्षियों, न मालूम कितने पौधों को आमन्त्रित किया है मनुष्य की तरफ। दूसरी बात भी समझ लेनी जरूरी है। वही शायद ऐसे अकेले व्यक्ति हैं और लोगों ने भी शायद चेष्टा की है, बहुत लोगों ने सफलता पाई है जिन्होंने देवताओं को भी मनुष्य की तरफ आकर्षित किया है। इस पर हम पीछे बात करेंगे। मनुष्यों से कैसे सम्प्रेषण हुआ है, देवताओं से कैसे सम्प्रेषण हो सकता है, वह हम फिर बात करेंगे। बारह वर्ष की पूरी साधना अभिव्यक्ति, संप्रेषण की साधना है। कैसे पहुँचाया जा सके जो पहुँचाना है? और जैसे ही उसकी साधना पूरी हो गई है, उन्होंने छोड़ दी है और वह पहुँचाने के काम में लग गए हैं। दो छोटे सूत्र ख्याल में रख लेने चाहिए। पशु के पास संप्रेषण करना है तो मूक होना पड़ेगा। मूक का मतलब यह कि वाणी खो देनी पड़ेगी; वह रह ही नहीं जाएगी भीतर। करीब-करीब मूर्च्छित और जड़ जैसा मालूम पड़ने लगेगा व्यक्ति। लेकिन शरीर जड़ होगा, मन जड़ होगा, मगर भीतर चेतना पूरी जागी होगी। अगर मनुष्य से संबन्ध जोड़ना है तो दो उपाय हैं: जो मनुष्य साधना से गुजरे उसके साथ बिना शब्द के संबंध जोड़ा जा सकता है क्योंकि साधना से गुजर कर उसे उस हालत में लाया जा सकता है जहाँ देवता होते हैं। तब वह मौन में समझ सकता है। जैसे मैंने कल कहा कि महाकाश्यप को बुद्ध ने कहा कि वह मैंने तुझे दे दिया है जो मैं शब्दों से दूसरे को नहीं दे सका हूँ। या फिर वाणी है जो सीधी उनसे कही जाय। वह उसे सुने, समझे। लेकिन, वह नहीं समझ पाता है। इसलिए महावीर की कथा यह है कि महावीर कहते हैं, गणधर सुनते हैं, गणधर लोगों को समझाते हैं। यह बड़ा खतरनाक मामला है महावीर किसी को कहते हैं, वह सुनता है। फिर वह जैसा समझता है, व्याख्या करके लोगों को समझाता है। बीच में एक मध्यस्थ खड़ा होता है और महावीर से सीधा संबंध नहीं हो पाता क्योंकि हम शब्दों को समझ सकते हैं; अनुभूतियों को नहीं और या फिर हम अनुभूतियों में प्रवेश करें, ध्यान में जाएँ, समाधि में उतरें और उस जगह खड़े हो जाएँ जहाँ शब्द के बिना तरंगें पकड़ी जा सकती हों। एक रास्ता यह है, नहीं तो फिर मध्यस्थ होंगे, व्याख्याएँ होंगी, शब्द होंगे—सब बदल जाएगा, सब खो जाएगा।

जो भी शास्त्र निर्मित हैं, वे आदमियों के बोले गए शब्दों द्वारा निर्मित हैं। वे शब्द भी सीधे महावीर के नहीं हैं। वे शब्द भी टीकाकारों के हैं। और फिर हमने अपनी समझ और बुद्धि के अनुसार उसको संगृहीत किया है, अपनी व्याख्या की है। और इसलिए सब लड़ाई झगड़ा है, सब उपद्रव है। महावीर ने मौन में क्या कहा है उसे पकड़ने की जरूरत है। या उन्होंने जिनसे मौन से बोला जा सकता था, उन देवताओं से क्या कहा है, उसे पकड़ने की जरूरत है या जिनके साथ शब्द का उपयोग असम्भव था, उन पक्षियों, पौधों, पत्थरों को क्या कहा, उसे पकड़ना जरूरी है। और जो मैंने पहले दिन कहा वह सब किसी गहनतम अस्तित्व की गहराइयों से सुरक्षित है। वह सब वापिस पकड़ा जा सकता है। सिर्फ मन की एक अवस्था में हमें उतरना पड़ेगा जहाँ हम फिर उसे पकड़ सकते हैं।

८

प्रश्नोत्तर-प्रवचन

प्रश्न : महावीर सब कुछ अपना मौलिक कहते हैं। वे किसी के अनुयायी नहीं थे। उनका अपना कुटुम्ब रहा होगा। उन्होंने अपना पंथ स्वतः निर्माण किया। फिर वह पार्श्वनाथ के पंथ से कैसे मेल खा गया? और जैन नाम का जो सम्प्रदाय महावीर के साथ जुड़ा वे कौन लोग थे और वे क्या कहलाते थे?

उत्तर : इसमें दो तीन बातें समझने की हैं। पहली बात यह कि महावीर के साथ ही पहली बार विचार की एक धारा सम्प्रदाय बनी। महावीर के पहले जो विचारधारा थी उसका आर्यपरम्परा से पृथक् अस्तित्व नहीं था। वह आर्य-परंपरा के भीतर पैदा हुई एक धारा थी। उसका नाम 'श्रमण' था। वह जैन नहीं कहला रही थी तब तक। और 'श्रमण' कहलाने का कारण यह था कि ब्राह्मणधारा इस बात पर श्रद्धा नहीं रखती है कि श्रम, साधना और तप के माध्यम से परमात्मा को पाया जा सकता है। ब्राह्मण धारा का विश्वास है कि परमात्मा को पाया जा सकता है विनम्र भाव में, प्रार्थना में, शास्त्रविधि में, दीन-भाव में, जहाँ हम बिल्कुल असहाय हैं, जहाँ हम कुछ भी नहीं कर सकते, जहाँ करने वाला वही है। इस पूर्ण दीनता को जीसस ने 'पावर्टी ऑफ स्पिरिट' कहा है, जहाँ मनुष्य कहता है कि मैं दीन और दरिद्र हूँ, मैं कर ही क्या सकता हूँ, मैं सिर्फ माँग सकता हूँ, मैं अपने को हाथ जोड़कर समर्पण कर सकता हूँ।' ऐसी एक धारा थी जो परमात्मा को या सत्य को दीन और विनम्र भाव से माँगती थी। उससे ठीक भिन्न और विपरीत एक धारा चलनी शुरू हुई जिसका आधार श्रम था, प्रार्थना नहीं; जिस का आधार यह नहीं था कि हम प्रार्थना करेंगे, पूजा करेंगे और मिल जाएगा किन्तु जिसका आधार यह था कि हम श्रम करेंगे, संकल्प करेंगे, श्रम और संकल्प से जीता जाएगा।

यह आर्य जीवन-दर्शन बड़ी बात है। इसमें श्रमण सम्मिलित है, ब्राह्मण सम्मिलित है। महावीर पर आकर इस धारा ने अपना पृथक् अस्तित्व घोषित किया। महावीर के पहले तक वह धारा पृथक् नहीं है। इसलिए आदिनाथ का नाम तो वेद में मिल जाएगा लेकिन महावीर का नाम किसी हिन्दू ग्रंथ में नहीं मिलेगा। पहले तीर्थंकर का नाम तो वेद में उपलब्ध होगा पूरे समादर के साथ। लेकिन महावीर का नाम उपलब्ध नहीं होगा। महावीर पर आकर विचार की धारा सम्प्रदाय बन गई और उसने आर्य जीवन पथ में अलग पगडंडी तोड़ ली। तब तक वह उसी पथ पर थी। अलग चलती थी, अलग धारा थी चिन्तना की लेकिन थी उसी पथ पर। उस पथ से भेद नहीं खड़ा हो गया था और एकदम से भेद खड़ा होता भी नहीं है। वक्त लग जाता है। जैसे जीसस पैदा हुए तो जीसस के वक्त में ही इसकी धारा अलग नहीं हो गई। जीसस के मर जाने पर भी दो तीन सौ वर्ष तक यहूदी के अन्तर्गत ही जीसस के विचारक चलते रहे। लेकिन जैसे-जैसे भेद साफ होते गए और दृष्टि में विरोध पड़ता गया—जीसस के तीन सौ, चार सौ, पाँच सौ साल बाद—क्रिश्चियन धारा अलग खड़ी हो गई। जीसस तो यहूदी ही पैदा हुए और यहूदी ही मरे। जीसस ईसाई कभी नहीं थे।

जैनों के पहले तेईस तीर्थंकर आर्य ही थे, आर्य ही पैदा हुए और आर्य ही मरे। वे जैन नहीं थे। लेकिन महावीर पर आकर धारा बिल्कुल पृथक् हो गई, बलशाली हो गई, उसकी अपनी दृष्टि हो गई और इसलिए फिर वह 'श्रमण' न कहलाकर जैन कहलाने लगी। 'जैन' कहलाने का और भी एक कारण था क्योंकि श्रमणों की एक बड़ी धारा थी। सभी श्रमण 'जैन' नहीं हो गये। श्रम और संकल्प पर आस्था रखने वाले आजीवक भी थे, बौद्ध भी थे और दूसरे विचारक भी थे। जब महावीर ने अलग पूरा दर्शन दे दिया तब फिर इस श्रमणधारा की भी एक धारा रह गई। बौद्ध धारा भी श्रमण धारा है। पर वह अलग हो गई। इसलिए फिर इसको एक नया नाम देना जरूरी हो गया। और यह महावीर के साथ जुड़ गया। क्योंकि जैसे बुद्ध को हम कहते हैं : गौतम बुद्ध, जाग्रत पुरुष वैसे महावीर को हम कहते हैं महावीर जिन : महावीर विजेता, जिसने जीता और पाया। असल में जिन बहुत पुराना शब्द है। वह बुद्ध के लिए भी उपयुक्त हुआ है। जिन का मतलब जीतना ही है। लेकिन फिर भेदक रेखा खींचने के लिए जरूरी हो गया कि जब गौतम बुद्ध के अनुयायी बौद्ध कहलाने लगे तो महावीर के अनुयायी जैन कहलाने लगे। 'जिन'

और 'जैन' शब्द महावीर के साथ प्रकट हुए और दो स्थितियाँ हुईं—एक तो आर्यमूलधारा से श्रमणधारा टूट गई और श्रमणधारा में भी नए पंथ हो गए जिनमें जैन एक पंथ बना। इसलिए महावीर के पहले तीर्थंकर हिन्दू संघ के भीतर हैं। महावीर पहले तीर्थंकर हैं जो हिन्दू संघ के बाहर खड़े होते हैं। समय लगता है किसी विचार को पूर्ण स्वतन्त्रता उपलब्ध करने में। वह समय लगा।

दूसरी बात यह कि महावीर निश्चित ही किसी के अनुयायी नहीं हैं। उनका कोई गुरु नहीं है। पर उन्होंने जो कहा, उनसे जो प्रकट हुआ, उन्होंने जो संपादित किया वह जो तेईस तीर्थंकरों के अनुयायी चले आते थे, उनसे बहुत दूर तक मेल खा गया। महावीर को चिन्ता भी नहीं है कि वह मेल खाए। वह मेल खा गया यह संयोग की बात है। नहीं मेल खाता तो कोई चिन्ता की बात न थी। वह मेल खा गया। और वे अनुयायी धीरे-धीरे महावीर के पास आ गए। और दूसरे लोग, जो पार्श्व की परंपरा के जीवित थे, महावीर के करीब आ गए। बहुत बार ऐसा होता है। ऐसा भी नहीं है कि महावीर सब वही कह रहे हैं जो पिछले तेईस तीर्थंकरों ने कहा हो। बहुत कुछ नया भी कह रहे हैं। जैसे किसी पिछले तीर्थंकर ने ब्रह्मचर्य की कोई बात नहीं की है। और पार्श्वनाथ का जो धर्म है वह चतुर्याम है; उसमें ब्रह्मचर्य की कोई बात नहीं है। महावीर पहली बार ब्रह्मचर्य की बात कर रहे हैं। और बहुत सी बातें हैं जो महावीर पहली बार कर रहे हैं। लेकिन वे बातें पिछले तेईस तीर्थंकरों के विरोध में नहीं हैं, चाहे वे उनको आगे बढ़ाती हों, कुछ जोड़ती हों, उनसे भिन्न हों, उनसे ज्यादा हों लेकिन उनके विरोध में नहीं हैं। इसलिए स्वभावतः उस धारा से संबद्ध लोग महावीर के निकट इकट्ठे हो गए हैं। और महावीर जैसा बलशाली व्यक्ति किसी धारा को मिल जाए तो वह धारा अनुगृहीत ही होगी। सच तो यह है कि महावीर के पहले तेईस तीर्थंकर बड़े साधक थे, सिद्ध थे लेकिन जो एक दर्शन निर्मित करता है ऐसा उनमें कोई भी न था। वह महावीर ही व्यक्ति है जो उसको उपलब्ध हुआ। इसलिए चौबीसवाँ होते हुए भी वह करीब-करीब प्रथम हो गए। सबसे अन्तिम होते हुए भी उनकी स्थिति प्रथम हो गई। अगर आज उस विचारधारा का कुछ भी जीवन्त अंश शेष है तो सारा श्रेय महावीर को उपलब्ध होता है। व्यवस्था और दर्शन बनाने वाला एक बिल्कुल अलग बात है। बहुत तरह के विचारक होते हैं। कुछ विचारक ऐसे होते हैं जो खण्ड-खण्ड में सोचते हैं, जो कभी सारे टुकड़ों को इकट्ठा जोड़कर समग्र दर्शन स्थापित नहीं

कर पाते । इस तेईस तीर्थंकरों की हजारों वर्षों की यात्रा में, जो सारे खण्ड थे, उन सारे खण्डों को महावीर ने एक सम्बद्ध रूप दिया । इसलिए जैन दर्शन पैदा हो सका ।

निश्चित ही, जैसा आप पूछते हैं, महावीर के परिवार के लोग किसी पंथ को, किसी विचार को मानते रहे होंगे । लेकिन कोई भी पंथ और कोई भी विचार आर्य जीवन-रथ के ही हिस्से थे । उनमें कोई भिन्नता नहीं थी । इसलिए सम्भव है कि कृष्ण का चचेरा भाई तीर्थंकर हो सके और कृष्ण हिन्दुओं के परम औतार हो सकें । इसमें कोई बाधा न थी । विचार पद्धतियाँ थीं किन्तु वे अभी सम्प्रदाय न बन पायी थीं । जैसे कि आज कोई कम्यूनिस्ट है, सोशलिस्ट है, फासिस्ट है । एक ही घर में एक आदमी सोशलिस्ट हो सकता है, एक आदमी फासिस्ट हो सकता है, एक आदमी कम्युनिस्ट हो सकता है । लेकिन कभी ऐसा हो सकता है कि जब ये सम्प्रदाय बन जाए तो कम्युनिस्ट का बेटा कम्युनिस्ट हो, सोशलिस्ट का बेटा सोशलिस्ट हो । तब विचार पद्धतियाँ न रहीं । तब जन्म से बंधे हुए संप्रदाय हो गए । महावीर के पहले भारत में विचारपद्धतियाँ थीं और आर्य जीवन-दृष्टि सबको घेरती थी । उनमें वेद के क्रियाकाण्डी लोग थे और ठीक उनके विरोध में उपनिषद् के विचारक थे । लेकिन इससे वह कोई अलग बात नहीं हो जाती थी ।

अब मजा है कि वेदान्त शब्द का मतलब है कि जहाँ वेद का अन्त हो जाता है, सत्य का प्रारम्भ होता है । यानी वेद तक तो सत्य ही नहीं । जहाँ वेद समाप्त हुआ, वहाँ से सत्य शुरू होता है । अब ये वेदान्त की दृष्टि वाले लोग भी आर्य जीवन-दृष्टि के हिस्से थे । उपनिषद् इतना ही विरोधी है वेद का जितना कि बौद्ध विचारक या जैन विचारक, महावीर या बुद्ध । उपनिषद् के ऋषि वेद के विरोध में हैं और इतनी सख्त बातें कही हैं कि हैरानी होती है । ऐसी सख्त बातें कही हैं वैदिक क्रियाकाण्डी ब्राह्मणों के लिए उपनिषद् तक ने कि आश्चर्य होता है । लेकिन तब तक कोई सम्प्रदाय नहीं है । तब तक सभी एक परिवार के, सभी तरह के विचारक हैं । वह सभी एक ही परिवार की शाखाएँ हैं । वह लड़ते भी हैं, झगड़ते भी हैं, विरोध भी करते हैं लेकिन अभी कोई जन्मतः ऐसा भेद नहीं पड़ गया है कि आदमी जन्म से किसी सम्प्रदाय का हिस्सा हो गया हो । महावीर के साथ पहली दफा आर्य जीवन-पद्धति में एक अलग रास्ता टूट गया । फिर श्रमण जीवन पद्धति में भी बुद्ध के साथ अलग रास्ता टूट गया । ऐसे ही जैसे एक वृक्ष होता है, नीचे पीड़ होती है, वह तो एक ही होती है ।

फिर पीड़ एक जगह से दो शाखाओं में टूट जाती है। अब हम जो शाखाओं पर बैठे हों, पूछ सकते हैं कि पीड़ के समय में हमारी शाखा कहाँ थी। शाखा थी ज्ञान की पर पीड़ में इकट्ठी एक ही जगह थी।

भारत में जो विचार का विकास हुआ है, वह वृक्ष की भांति है। उसमें पीड़ तो आर्य जीवन-पद्धति है। उसमें दो शाखाएँ टूटी हैं—एक हिन्दू, एक श्रमण। श्रमण में भी दो शाखाएँ टूटी हैं—बौद्ध और जैन। हिन्दुओं में भी कई शाखाएँ टूटी हैं—सांख्य, वैशेषिक, योग, मीमांसा, वेदान्त।

प्रश्न : पहले सम्प्रदाय जो आपने कहा वह तो महावीर के बाद का मालूम होता है।

उत्तर : हाँ, हाँ वही तो मैं कह रहा हूँ।

प्रश्न : महावीर के समय में नहीं ?

उत्तर : नहीं, नहीं, वह महावीर के साथ ही टूट गया। अनुभव बहुत बाद में होता है हमें। महावीर पहला सुसबम्बद्ध चिन्तक है जैन तीर्थंकरों की धारा में। महावीर के समय में भी भारी विवाद था कि चौबीसवाँ तीर्थंकर कौन है ? इसके लिए गोशालक भी दावेदार था कि चौबीसवाँ तीर्थंकर मैं हूँ। क्योंकि तेईस तीर्थंकर हो गए थे और चौबीसवें की तलाश थी कि चौबीसवाँ कौन ? और जो भी व्यक्ति चौबीसवाँ सिद्ध हो सकता था वह निर्णायक होने वाला था क्योंकि वह अन्तिम होने वाला था। दूसरा, उसके वचन सदा के लिए आप्त हो जाने वाले थे क्योंकि पच्चीसवें तीर्थंकर के होने की बात नहीं थी। भारी विवाद था महावीर के समय में। अजित केश कम्बल और मंखली गोशाल दावेदार थे चौबीसवें तीर्थंकर होने के। परम्परा अपना अन्तिम सुसंगति देने वाला व्यक्ति खोज रही थी। बुद्ध और महावीर के समय में कोई आठ व्यक्ति तीर्थंकर होने के दावेदार थे। इनमें महावीर विजेता हो गए क्योंकि परम्परा ने उनमें वह सब पा लिया जो उसे पाने जैसा लगता था और वह सील-मोहर बन गई।

सम्प्रदाय तो फिर धीरे-धीरे बना है। महावीर के मन में सम्प्रदाय का सवाल ही नहीं था लेकिन महावीर ने जितनी सुसम्बद्ध रूप रेखा दे दी श्रमण जीवन-दृष्टि को उतनी ही वह धारा बँध गई, सम्प्रदाय बन गया। सम्प्रदाय शब्द बहुत पीछे जाकर बदनाम हो गया है। गन्दगी की कोई बात न थी इसके साथ। सम्प्रदाय का मतलब इतना था कि जहाँ से जीवन-दृष्टि मिलती हो, जहाँ से

मार्ग मिलता हो, जहाँ से प्रकाश मिलता हो, वहाँ प्रत्येक को हक है उस प्रकाश की धारा में बहने का और चलने का। जो सत्य दिखाई पड़ता है, उसे मानने का हक है प्रत्येक को। फिर महावीर की बात तो बहुत अद्भुत है। महावीर से ज्यादा गैर-साम्प्रदायिक चित्त खोजना कठिन है। लेकिन संप्रदाय के जन्मदाता वही हैं। तो भी वे गैर-सांप्रदायिक हैं क्योंकि शायद सारी पृथ्वी पर ऐसा दूसरा आदमी ही नहीं हुआ जिसके पास इतना गैर-सांप्रदायिक चित्त हो। क्योंकि जो किसी की बात को सापेक्ष दृष्टि से सोचता हो उसकी दृष्टि में सांप्रदायिकता नहीं हो सकती। बहुत बाद में आइंस्टीन ने सापेक्षवाद की बात कही है। विज्ञान के जगत् में सापेक्ष की बात आइंस्टीन ने अब कही, धर्म के जगत् में महावीर ने अढ़ाई हजार साल पहले कही। बहुत कठिन था उस वक्त यह कहना क्योंकि उस वक्त आर्यधारा बहुत टुकड़ों में टूट रही थी और प्रत्येक टुकड़ा पूर्ण सत्य का दावा कर रहा था। असल में साम्प्रदायिक चित्त का मतलब यह है कि जो यह कहता हो कि मूल्य यहीं है और कहीं नहीं। साम्प्रदायिक चित्त का मतलब है कि सत्य का ठेका मेरे पास है और किसी के पास नहीं। और सब असत्य है, सत्य मैं हूँ। ऐसा जहाँ आग्रह हो, वहाँ साम्प्रदायिक चित्त है। लेकिन जहाँ इतना विनम्र निवेदन हो कि मैं जो कह रहा हूँ वह भी सत्य हो सकता है, उससे भी सत्य तक पहुँचा जा सकता है तो सम्प्रदाय निर्मित होगा पर साम्प्रदायिक चित्त नहीं होगा वहाँ। सम्प्रदाय निर्मित होगा इन अर्थों में कि कुछ लोग जाएँगे उस दिशा में, खोज करेंगे, पाएँगे, चलेंगे, अनुगृहीत होंगे उस पंथ की तरफ, उस विचार की तरफ।

महावीर एकदम ही गैर-साम्प्रदायिक चित्त हैं। बहुत ही अद्भुत है उनकी दृष्टि। वह जहाँ बिल्कुल ही कुछ न दिखाई पड़ता हो वहाँ भी कहते हैं कि कुछ न कुछ होगा। चाहे दिखाई न पड़ता हो तो भी कुछ न कुछ सत्य होगा क्योंकि पूर्ण सत्य भी नहीं होता, पूर्ण असत्य भी नहीं होता। असत्य में भी सत्य का अंश होता है, सत्य में भी असत्य का अंश होता है। वह कहते हैं कि इस पृथ्वी पर पूर्ण जैसी कोई चीज नहीं होती, सब चीजें अपूर्ण होती हैं। अगर कोई उनसे पूछे कि ऐसा है तो कहेंगे 'हाँ' है।' और साथ यह भी कहेंगे कि 'नहीं भी हो सकता है' महावीर की सापेक्षता भी एक कारण बनी महावीर के अनुयायियों की संख्या न बढ़ने में। क्योंकि संख्या बढ़ने में अन्धदृढ़ता का होना जरूरी है संख्या तब बढ़ती है जब दावा पक्का और मजबूत हो कि जो हम कह रहे हैं, वह सही है, और जो दूसरे लोग कह रहे हैं, सब ठीक नहीं। तब पागल इकट्ठे

होते हैं क्योंकि इस दावे में उनको रस मालूम होता है। लेकिन एक आदमी कहे, 'यह भी सही, वह भी सही, तुम जो कहते हो वह भी ठीक, हम जो कहते हैं वह भी ठीक। तीसरा जो कहता है वह भी ठीक—तो ऐसे आदमी के पास पागल इकट्ठे नहीं हो सकते। क्योंकि वे कहेंगे कि इस आदमी की बातों में क्या मतलब है यानी यह तो सभी को ठीक कहता है। यह कहता है नास्तिक भी ठीक है, आस्तिक भी ठीक है क्योंकि दोनों में ठीक का कोई अंश है। तो इसके पास पागल समूह इकट्ठा नहीं हो सकता।

अन्धविश्वासी इकट्ठे करने हों तो दावा इतना पक्का मजबूत होना चाहिए कि उसमें संशय की जरा भी रेखा न हो। क्योंकि महावीर की बातों में संशय की रेखा मालूम पड़ती है, वह संशय नहीं है, सम्भावना है लेकिन साधारण आदमी को समझना मुश्किल होता है कि सम्भावना और संशय में क्या फर्क है? महावीर से कोई कहे : 'ईश्वर है।' तो महावीर कहेंगे : 'हो भी सकता है, नहीं भी हो सकता। किसी अर्थ में हो सकता है, किसी अर्थ में नहीं हो सकता है।' यह महावीर सिर्फ सब सत्यों की सम्भावना की बात कर रहे हैं। वह यह नहीं कह रहे कि मुझे संशय है कि ईश्वर है, या नहीं। वह यह नहीं कह रहे कि मैं संशय करता हूँ कि ईश्वर है, या नहीं। वह यह कह रहे हैं कि सम्भावना है ईश्वर के होने की भी, न होने की भी। अगर कोई ऐसा मानता हो कि आत्मा परम शुद्ध होकर परमात्मा हो जाती है तो ठीक ही कहता है। अगर कोई ऐसा मानता है कि परमात्मा कहीं पर बैठा हुआ हम सबको खिलौनों की तरह नचा रहा है तो ऐसा नहीं है। जब वह कहते हैं कि ईश्वर है और ईश्वर नहीं है—दोनों एक साथ—तो वह ईश्वर के अर्थों में भेद करते हैं। लेकिन महावीर की इतनी सूक्ष्म दृष्टि अन्धविश्वास नहीं बनाई जा सकती क्योंकि दूसरे को गलत एकदम से नहीं कहा जा सकता। और जहाँ दूसरे को एकदम गलत न कहा जा सकता हो वहाँ अनुयायी इकट्ठे करना बहुत मुश्किल है, एकदम असम्भव है। क्योंकि अनुयायी पक्का मानकर आना चाहता है। अनुयायी पूरी सुरक्षा चाहता है। मगर जब वह देखता है कि यह आदमी खुद ही संदिग्ध दिखता है, सुबह कुछ कहता है, दोपहर कुछ कहता है, साँझ कुछ कहता है, कभी इसका खुद का ही ठिकाना नहीं हो पाया है तो हम इसके पीछे कैसे जाएँ? जब एक आदमी जोर से टेबिल पर घूँसा मार कर कहता है कि जो मैं कहता हूँ, परम सत्य है और सबके सब गलत हैं तो जितने कमजोर बुद्धि के लोग हैं वे सब उससे एकदम प्रभावित हो जाते हैं।

कमजोर बुद्धि के लिए दावा चाहिए मजबूत। वह बुद्धिमान् आदमी से चौंक जाता है। उधर अगर कोई दावे से कहे कि यही ठीक है तो बुद्धिमान् आदमी जरा चौंक जाएगा कि यह आदमी कुछ गलत होना चाहिए क्योंकि ठीक का इतना दावा बुद्धिमान् आदमी नहीं करता। बुद्धिमान् आदमी झिझक जाता है क्योंकि जिन्दगी बड़ी जटिल है। वह इतनी सरल नहीं कि हमने कह दिया कि 'सब ऐसा है।' जिन्दगी इतनी जटिल है कि उसमें विरोधी के सच होने की भी सम्भावना बनी रहती है। इसलिए जो आदमी जितना बुद्धिमान् होता चला जाता है, उतना ही उसके वक्तव्य 'स्यात्' होते चले जाते हैं। वह कहता है 'स्यात् ऐसा हो', फिर वह एकदम से नहीं कह देता : 'ऐसा है ही।' लेकिन बुद्धिमान् की जो यह बात है उसे समझने के लिए भी बुद्धिमान् ही चाहिए। जितने ज्यादा बुद्धिमान् दावे होंगे उतनी बुद्धिहीनों की संख्या ज्यादा होगी। एकदम दावा होना चाहिए आम आदमी के लिए जैसे कि एक ही अल्लाह है, और उसके सिवाय दूसरा कोई अल्लाह नहीं। तो फिर आदमी की समझ में आता है कि यह पक्का जानने वाला आदमी है जो साफ दावा कर रहा है और जिसके हाथ में तलवार भी है कि अगर तुमने गलत कहा तो हम सिद्ध कर देंगे तलवार से कि तुम गलत हो। कमजोर बुद्धि के लोगों को तलवार भी सिद्ध करती है। बुद्धिमान् आदमी जिसके हाथ में तलवार देखेगा, उसको गलत ही मानेगा। तलवार से कहीं सिद्ध होता है कि क्या सही है, क्या गलत ?

दुनिया में जितने दावेदार पैदा हुए हैं उतनी ज्यादा उन्होंने संख्या इकट्ठी कर ली है। महावीर संख्या इकट्ठी नहीं कर सके हैं। संख्या इकट्ठी करना बहुत मुश्किल था, एकदक असम्भव था। क्योंकि महावीर किसको प्रभावित करेंगे ? आदमी आता है गुरु के पास इसलिए कि उसे पक्का आश्वासन मिल जाए। जो गुरु उसे कहता है कि लिख कर चिट्ठी देते हैं कि स्वर्ग में तुम्हारी जगह निश्चित रहेगी, वह गुरु समझ में आता है। जो गुरु कहता है कि पक्का रहा मैं तुझे बचाने वाला रहूँगा, जब सब नरक में जा रहे होंगे तब तुझे जो मानता है वह बचा लिया जाएगा। तब वह मानता है कि यह आदमी ठीक है, इसके साथ चलने में कोई अर्थ है। महावीर का कोई भी दावा नहीं है। इतना गैर-दावेदार आदमी ही नहीं हुआ इस जगत् में। उसने सत्य को इतने कोनों से देखा है जितना किसी ने कभी नहीं देखा।

दुनिया में तीन सम्भावनाओं की स्वीकृति महावीर के पहले से चली आती थी। जैसे कोई कहे यह घड़ा है। तो इस का मतलब यह था कि (१) 'घड़ा

है, (२) घड़ा नहीं है, क्योंकि मिट्टी ही तो है, और (३) घड़ा है भी, नहीं भी है। घड़े का अर्थ में घड़ा है; मिट्टी के अर्थ में नहीं भी है'। एक आदमी कह सकता है : 'यह तो मिट्टी ही है, घड़ा कहाँ ?' तो इसको गलत कैसे कहोगे ? मिट्टी ही तो है। लेकिन एक आदमी कहे कि 'नहीं, मिट्टी है ही नहीं, यह तो घड़ा है। क्योंकि मिट्टी तो पड़ी है बाहर, उसमें और इसमें भेद है' तो उसे भी सही मानना पड़ेगा। सत्य के तीन कोण हो सकते हैं— (१) है, (२) नहीं है, (३) दोनों, नहीं भी और है भी। 'यह त्रिभंगी महावीर के पहले भी थी। लेकिन महावीर ने इसे सप्तभंगी किया है। और कहा कि तीन से काम नहीं चलेना। सत्य और भी जटिल है। इसमें चार 'स्यात्' और भी जोड़ने पड़ेंगे। तो बहुत ही अद्भुत बात कही लेकिन बात कठित होती चली गई, उलझ गई और साधारण आदमी की पकड़ के बाहर हो गई। ये तीन बातें ही पकड़ के बाहर हैं लेकिन फिर भी समझ में आती हैं। घड़ा सामने रखा है। कोई कहता है—घड़ा है। हम कहते हैं : हाँ, घड़ा है। लेकिन, हम एकदम ऐसा नहीं कहते कि 'हाँ, घड़ा है।' हम कहते हैं,— 'स्यात् घड़ा है।' क्योंकि दूसरी संभावना बाकी है कि कोई कहे कि मिट्टी ही है, घड़ा कहाँ, तो हम सिद्ध न कर पाएँगे कि घड़ा कहां है। तो हम कहते हैं : 'स्यात् घड़ा है।' 'स्यात् घड़ा नहीं है', 'स्यात् घड़ा है भी और नहीं भी है।' महावीर ने इसमें चौथी भंगी 'जोड़ी' और कहा : 'स्यात् अनिर्वचनीय है', शायद कुछ ऐसा भी है जो नहीं कहा जा सकता यानी इतने से काम नहीं चलता है। मिट्टी है, घड़ा है, यह भी ठीक है। लेकिन कुछ बात ऐसी भी है जो नहीं कही जा सकती। इसे कहना मुश्किल है। क्योंकि घड़ा अणु भी है, परमाणु भी है, इलेक्ट्रोन भी है, प्रोट्रोन भी है, विद्युत भी है—सब है और इस सबको इकट्ठा करना मुश्किल है। घड़ा जैसी छोटी सी चीज भी इतनी ज्यादा है कि इसको अनिर्वचनीय कहना पड़ेगा। और एक बात तो पक्की है कि घड़े में जो है-पन है, एग्जिस्टेंस है, जो होना है, वह तो अनिर्वचनीय है ही क्योंकि 'है' की क्या परिभाषा ? क्या अर्थ ? अस्तित्व का क्या अर्थ ? घड़े का भी अस्तित्व है और अस्तित्व अनिर्वचनीय है। अस्तित्व तो ब्रह्म है। महावीर ने चौथा जोड़ा। 'शायद घड़ा अनिर्वचनीय है।' पाँचवा, जोड़ा कि 'स्यात् है और अनिर्वचनीय है।' छठवां जोड़ा कि 'स्यात् नहीं है और अनिर्वचनीय है' और सातवां जोड़ा कि 'स्यात् है भी, और नहीं भी है और अनिर्वचनीय है।' अब यह जटिल होती चली गई इसलिए अनुयायी खोजना मुश्किल है।'

इस प्रकार सत्य को सात कोणों से देखा जा सकता है, यह महावीर का कहना है और बड़ी अद्भुत बात है। आठवें कोण से नहीं देखा जा सकता। सात सम्तिम कोण हैं इसलिए सप्त भंग की सात दृष्टियों से सत्य को देखा जा सकता है। ओर जो एक ही दृष्टि का दावा करता है, वह छः अर्थों में असत्य का दावा करता है क्योंकि छः दृष्टियाँ वह नहीं कह रहा है। और जो एक ही दृष्टि को कहता है कि यही पूर्ण सत्य है वह जरा अतिशय कर रहा है, सीमा के बाहर जा रहा है। वह इतना ही कहे कि यह एक दृष्टि से सत्य है तो महावीर को किसी से झगड़ा ही नहीं। अगर वह विचार इतना रहे कि 'इस दृष्टि से मैं यह कहता हूँ' तो महावीर कहेंगे कि 'इस दृष्टि से यह सत्य है।' लेकिन इससे उल्टा आदमी आ जाए और वह कहे कि 'इस दृष्टि से मैं यह कहता हूँ कि वह असत्य है' तो महावीर उससे कहेंगे तुम भी ठीक कहते हो—इस दृष्टि से यह असत्य है। लेकिन तीन की दृष्टि बहुत पुरानी थी। साफ था कि तीन तरह से सोचा जा सकता है। है, नहीं है, दोनो है—है, नहीं भी है। महावीर ने उसमें चार और दृष्टियां जोड़ी। चौथी दृष्टि ही कीमती है। फिर बाकी तो उसी के ही रूपान्तरण हैं। वह है अनिर्वचनीय की दृष्टि कि कुछ है जो नहीं कहा जा सकता; कुछ है जिसे समझाया नहीं जा सकता; कुछ है जो अव्याख्या है; कुछ है जिसकी कोई व्याख्या नहीं हो सकती है, छोटे से छोटे में और बड़े से बड़े में भी है, वह है कुछ भव्य अस्तित्व जो कि बिल्कुल ही व्याख्या के बाहर है। उसकी हम क्या व्याख्या करें।

अब यह मजे की बात है। उपनिषद् कहते हैं : ब्रह्म की व्याख्या नहीं हो सकती। बाइबिल कहती है : ईश्वर की व्याख्या नहीं हो सकती। लेकिन महावीर कहते हैं ईश्वर ब्रह्म तो बड़ी बातें हैं, घड़े की ही व्याख्या नहीं हो सकती। ईश्वर और ब्रह्म को तो छोड़ दो, घड़े में भी एक तत्त्व है ऐसा 'अस्तित्व' जो उतना ही अव्याख्येय है, जितना ब्रह्म। छोटी सी छोटी चीज में वह मौजूद है और अनिर्वचनीय है। इसलिए वह चौथी भंग जोड़ते है कि 'स्यात् अनिर्वचनीय है।' लेकिन उसमें भी वह 'स्यात्' लगाते हैं। जो खूबी है महावीर की वह बहुत अद्भुत है। वह ऐसा भी नहीं कहते कि 'अनिर्वचनीय है' क्योंकि वह कहते हैं कि यह भी दावा ज्यादा हो जायगा। इसलिए ऐसा कहो 'स्यात्'। वह जो भी कहते हैं, 'स्यात्' पहले लगा देते हैं। लेकिन 'स्यात्' का मतलब 'शायद' नहीं है। शायद में सन्देह है। महावीर जब कहते कि 'स्यात्' तो उसका मतलब है : 'ऐसा भी हो सकता हैं,' इससे अन्यथा भी हो सकता है। 'स्यात्' शब्द में

दो बातें जुड़ी हैं ऐसा है, इससे अन्यथा भी है, इसलिए कोई दावा नहीं है। तब है वह अनिर्वचनीय पर फिर वे तीन 'भंगियों' को वापस दोहरा देते हैं। वह कहते हैं : है, और अनिर्वचनीय है। कोई चीज है और अनिर्वचनीय है। लेकिन ऐसा भी हो सकता है : कोई चीज नहीं है और अनिर्वचनीय है। जैसे शून्य। शून्य है तो नहीं। शून्य का मतलब ही है, जो नहीं है। लेकिन, 'शून्य' अनिर्वचनीय है। 'न होते हुए भी' वह अव्याख्येय है। और सातवां वह जोड़ते हैं : ''है भी, नहीं भी है, और अनिर्वचनीय भी है।' यानी इन सात कोणों से सत्य को देखा जाने पर इन सातों ही कोणों से जो व्यक्ति बिना किसी दृष्टि से बंधे, देखने में समर्थ है, वह पूरे सत्य को जानने में समर्थ हो जाएगा लेकिन बोलने में समर्थ नहीं होगा।

पूरा सत्य जब भी बोला जाएगा तभी इन्हीं भंगियों में बोलना पड़ेगा। इसलिए महावीर से आप पूछते जाएँ : कि 'ईश्वर है।' वह सात उत्तर देते हैं। तब आप चुपचाप घर चले आते हैं कि इस आदमी से क्या लेना देना है। हम साफ उत्तर चाहते हैं, हम पूछने गए हैं कि 'ईश्वर है' तो हम चाहते हैं कि या कहे हैं, या कहे नहीं हैं, बात खत्म करे। आप महावीर से पूछने जाते हैं। वह कहते हैं : "(१) स्यात्—है भी; (२) स्यात्—नहीं भी है; (३) स्यात् है भी, नहीं भी; (४) स्यात् अनिर्वचनीय है; (५) स्यात् है और अनिर्वचनीय है; (६) स्यात् नहीं है और अनिर्वचनीय है; (७) स्यात् है भी, नहीं भी है और अनिर्वचनीय भी है।" आप घर लौट आते हैं कि इस आदमी से कुछ लेना देना नहीं है क्योंकि इस आदमी से हम उतने ही उलझे लौटे जितने हम गए थे। क्योंकि इस आदमी से हम उत्तर लेने गए थे और इस आदमी ने उत्तर दिया है लेकिन इतना पूरा उत्तर देने की कोशिश की है कि कम बुद्धि को वह उत्तर पकड़ में नहीं आ सकता। इसलिए महावीर का अनुगमन नहीं बढ़ सका। महावीर के अनुयायी बढ़े ही नहीं। महावीर के जीवन-काल में जो लोग महावीर के जीवन से प्रभावित हुए थे फिर उनकी सन्तति भले ही महावीर के पीछे चलती रही अन्धे की तरह, किन्तु नए लोग नहीं आ सके, क्योंकि महावीर जैसा व्यक्ति ही पैदा नहीं कर सकी वह परम्परा फिर, क्योंकि उसके लिए बड़ा अद्भुत व्यक्ति चाहिए जो इतने भिन्न कोणों से लोगों को आकर्षित कर सके। सीधी-सीधी बात से आकर्षित करना बहुत सरल है। इतनी जटिल' बात से आकर्षित करना बहुत कठिन है। इसलिए महावीर के सीधे सम्पर्क में जो लोग आए थे, फिर उनके बच्चे ही पीछे खड़े होते चले गए। मगर जन्म से कोई धर्म का सम्बन्ध नहीं है इस-

लिए 'जैन' जैसे कोई चीज नहीं है दुनिया में। वह महावीर के साथ ही खत्म हो गई। जन्म से कोई सम्बन्ध नहीं है। इसलिए इस समय पृथ्वी पर 'जैन' जैसी कोई जाति नहीं है। ये जो सब जन्म से जैन लोग हैं इनको कुछ पता ही नहीं है और बड़े मजे की बात यह है कि यह जो जन्म से जैन लोग हैं, ये ऐसे दावे करते हैं जो महावीर सुन लें तो बहुत हंसे। इनके दावे सब ऐसे हैं कि जो महावीर के उल्टे हैं क्योंकि यह कहेंगे कि महावीर तीर्थंकर हैं। खुद महावीर कहेगा : 'स्यात् हो भी सकता है, स्यात् नहीं भी हो सकता है।'

प्रश्न : स्यात् क्या हर धर्म में होगा ?

उत्तर : हां, हर धर्म में है। जैनों में बहुत ज्यादा। लेकिन बात इतनी जटिल है कि उसे सिर्फ जन्म से ही नहीं पकड़ा जा सकता किसी भी हालत में। जैसे मैं यह मानता हूँ कि एक आदमी जन्म से मुसलमान हो सकता है क्योंकि बात बहुत सरल है, बहुत गहरी नहीं है। जन्म से कोई सूफी नहीं हो सकता क्योंकि बात बहुत गहरी है। सूफी मुसलमान फकीरों का ही हिस्सा है लेकिन जन्म से कोई सूफी नहीं हो सकता। सूफी होने के लिए तो स्वयं होना ही पड़ेगा। कोई यह कहे कि 'मेरे बाप सूफी थे, इसलिए मैं सूफी हूँ' तो कोई नहीं मानेगा। मुसलमान हो सकता है। कोई दम नहीं है उसमें। जन्म से जैन होना बिल्कुल ही असम्भव है। कारण कि वह मामला हो सूफियों जैसा है। वह बिल्कुल साधन से उपलब्ध हो सकता है। जिन बन जाओ, तो ही जैन बन सकते हो। यानी वह जीत न ले जब तक, बनने का उपाय नहीं है कुछ, और बात इतनी जटिल है जिसका कोई हिसाब नहीं है क्योंकि जीवन ही जटिल है। महावीर कहते हैं कि जीवन ही इतना जटिल है कि हम उसको सरल करें तो झूठ हो जाता है। जैसे कि अरस्तू का तर्क है।

दुनिया में दो ही तर्क हैं। एक अरस्तू का तर्क है, एक महावीर का। दुनिया में तीसरा तर्क नहीं है। दुनिया अरस्तू के तर्क को मानती है। महावीर के तर्क को कोई मानता नहीं क्योंकि अरस्तू का तर्क सीधा है, यद्यपि झूठ है। और, अरस्तू का तर्क यह है कि अ अ है और 'अ' कभी 'ब' नहीं हो सकता। 'ब' 'ब' है। 'ब' कभी 'अ' नहीं हो सकता। यह अरस्तू कहता है। दुनिया अरस्तू के तर्क को मानती है। पुरुष पुरुष है, स्त्री स्त्री है। पुरुष स्त्री नहीं हो सकता, स्त्री पुरुष नहीं हो सकती। 'काला' 'काला' है, 'सफेद' 'सफेद' है। 'सफेद' काला नहीं, 'काला' 'सफेद' नहीं। अंधेरा अंधेरा है, 'उजाला' उजाला है। ऐसा साफ है तर्क अरस्तू का। वह चीजों को तोड़कर अलग-अलग कर

देता है। तर्क का मतलब है कि सचाई पैदा हो। महावीर कहते हैं : 'अ' 'अ' भी हो सकता है, 'अ' 'ब' भी हो सकता है। यह भी हो सकता है कि 'अ' भी न हो, 'ब' भी न हो। और 'अ' अनिर्वचनीय है। महावीर कहते हैं 'स्त्री' स्त्री भी है, 'पुरुष' भी है। 'पुरुष' 'पुरुष' भी है, 'स्त्री' भी है। पुरुष 'स्त्री भी हो सकती है। स्त्री पुरुष भी हो सकता है और अनिर्वचनीय भी है। हो भी सकते हैं, नहीं भी हो सकते हैं। इस तर्क को समझना बहुत मुश्किल मामला है। लेकिन सच महावीर ही हैं।

जिन्दगी इतनी सरल नहीं जैसा अरस्तू समझता है। जिन्दगी में न कोई चीज काली है, न सफेद। काले और सफेद का भेद काफी नहीं है। कोई स्थान ऐसा नहीं है जो बिल्कुल अंधेरा है। और कोई स्थान ऐसा नहीं है जो बिल्कुल प्रकाशित है। असल में गहरे प्रकाश में भी अंधकार की मौजूदगी है और अंधकार से अंधकार जगह में भी प्रकाश की मौजूदगी है। ठीक तोड़ा नहीं जा सकता। जिन्दगी बिल्कुल घुली-मिली है। कौन-सी चीज ऐसी है जो बिल्कुल ठंडी है और गरम नहीं है। और कौन सी चीज ऐसी है जो बिल्कुल गरम है और ठंडी नहीं है। बिल्कुल सापेक्ष बातें हैं। ऐसा कुछ भी नहीं है साफ टूटा हुआ। तो महावीर कहते हैं कि जिन्दगी बिल्कुल जुड़ी हुई है—एकदम जुड़ी हुई है। एक पैर जिन्दगी है और दूसरा पैर मौत है और दोनों साथ-साथ चल रहे हैं। ऐसा नहीं है कि एक आदमी जिन्दा है और एक आदमी मरा है। मरना और जीना बिल्कुल साथ-साथ चलता है। अंधेरा और प्रकाश बिल्कुल एक ही चीज के हिस्से हैं। अरस्तू के तर्क से गणित निकलता है क्योंकि गणित सफाई चाहता है कि दो-दो चार होने चाहिएँ। महावीर के गणित से दो-दो चार नहीं होते, कभी पाँच भी हो सकते हैं, कभी तीन भी हो सकते हैं। ऐसा पक्का नहीं कि दो-दो चार ही होंगे। जिन्दगी इतनी तरल है, इतनी ठोस नहीं है। ऐसी मुर्दा भी नहीं है तो वहाँ दो-दो कभी पाँच भी हो जाते हैं, कभी दो और दो तीन भी रह जाते हैं। तो महावीर के तर्क से निकलता है रहस्य। और अरस्तू के तर्क से निकलती है गणित। क्योंकि रहस्य का मतलब यह है कि जहाँ हम साफ-साफ न बांट सकें कि ऐसा है। महावीर की इस गहरी दृष्टि में उतरने के लिए केवल उसी के घर में जन्म लेना बिल्कुल ही व्यर्थ है। उससे कोई मतलब ही नहीं जुड़ता है। इतनी गहरी दृष्टि के लिए तो इतनी गहरी दृष्टि में उतरने की ही जरूरत है। कोई उतरे तो ही ख्याल में आ सके।

महावीर के पीछे जो वर्ग खड़ा हुआ है, महावीर के सीधे सम्पर्क में जो लोग आए थे, वे लोग महावीर से प्रभावित हुए होंगे। अब उनके बच्चों

और उनके बच्चों के बच्चों का कोई सम्बन्ध नहीं है इस बात से और इसलिए वे यह भी भूल जाते हैं कि वे क्या कह रहे हैं। जैसे कि अगर कोई जैन मुनि कहता है कि जैन दर्शन ही सत्य है तो वह भूल रहा है। उसे पता ही नहीं है कि यह तो महावीर कभी नहीं कहते। यानी अगर कोई जैन अनुयायी यह कहता है कि महावीर जो कहते हैं, वही ठीक है, तो उसे पता नहीं कि खुद महावीर इससे इन्कार कर देंगे। यानी इतना अद्भुत मामला है कि कोई अगर महावीर से यह भी पूछे कि जिस स्याद्वाद की आप बात कर रहे हैं, क्या वह पूर्ण सत्य है। तो वे कहेंगे : 'स्यात्'। इसमें भी वह 'स्यात्' का ही उपयोग करेंगे। वह यह नहीं कहेंगे कि जो स्याद्वाद (थ्यूरी आफ प्रोबेबिलेटी) मैंने कहा वही एकमात्र सत्य है। हर चीजों के सात कोण हैं और उन्हें सात तरह से देखा जा सकता है। कोई अगर पूछे कि यह परम सत्य है तो महावीर कहेंगे : "स्यात्!' हो भी सकता है, नहीं भी हो सकता है। अनिर्वचनीय है।" यह जो जटिलता है, इसकी वजह से अनुयायी का आना बहुत कठिन हो गया है।

फिर, महावीर की और भी बातें हैं जो अनुयायी के आने में एकदम बाधक हैं। जैसे महावीर नहीं कहते कि मैं तुम्हारा कल्याण कर सकूंगा। वह कहते हैं कि : तुम ही अपना कल्याण कर लो तो काफी है मैं कैसे कर सकूँगा ? कोई किसी का कल्याण नहीं कर सकता। अपना कल्याण आप ही करना होगा। अनुयायी आता है इसलिए कि कोई उसका कल्याण कर दे। तो जब कोई कहता है कि 'मेरी शरण में आ जाओ, मैं तुम्हें मोक्ष में पहुँचा दूँगा तो अनुयायी आता है। मगर महावीर कहते हैं कि "मेरी शरण में तुम मोक्ष में नहीं पहुँच सकोगे। कोई किसी की शरण से कभी मोक्ष में नहीं पहुँचा है।" हम पूछते हैं तो कौन इसके पास आए—प्रयोजन क्या है ? स्वार्थ क्या है ? लाभ क्या है ? हित कैसे सिद्ध होगा ? यह आदमी कैसा है कि अपने सिवाय और किसी का हित सिद्ध नहीं कर सकता है ?

महावीर ने गुरु नहीं बनाया, यह बड़ी मूल्यवान् बात है। महावीर खुद भी किसी के गुरु बनना नहीं चाहते। गुरु का कोई प्रयोजन नहीं है। महावीर की दृष्टि ज्यादा से ज्यादा कल्याण मित्र बनने की है। बस इससे ज्यादा कोई किसी का गुरु नहीं बन सकता क्योंकि गुरु चलता है आगे, शिष्य चलता है पीछे, मित्र चलता है साथ। यानी ज्यादा से ज्यादा मेरे साथ चल सकते

हो। मैं तुम्हारे आगे नहीं चल सकता, तुम मेरे पीछे नहीं चल सकते। और यह अपमान भी कोई किसी का कैसे करे कि किसी को पीछे चलाना।

मुल्ला नसरुद्दीन के जीवन में एक बहुत अद्‌भुत कहानी है। उन्हें गांव के कुछ लड़कों ने आकर कहा कि हमें स्कूल में आपका प्रवचन करवाना है, आप चलें। मुल्ला नसरुद्दीन ने कहा : हम बिल्कुल तैयार हैं। वे अपने गधे पर चढ़कर चलने को तैयार हुए तो लड़के बड़े हैरान हुए कि मुल्ला गधे पर उल्टा बैठ गया कि गधे का मुंह इस तरफ और मुल्ला का मुंह उस तरफ और पीछे लड़कों को कर लिया। रास्ते में सब दुकानों के लोग झांक-झांक कर देखने लगे कि मुल्ला का दिमाग खराब हो गया है क्योंकि वह गधे पर उल्टा बैठा हुआ है। लड़के भी बड़े पशोपेश में पड़ने लगे क्योंकि उसके साथ वे भी बुद्धू बन रहे हैं। तो एक लड़के ने कहा कि मुल्ला, अगर सीधे बैठ जाओगे तो बड़ा अच्छा होगा क्योंकि आगे बड़ा बाजार आता है। सब लोग देखेंगे और हम भी आपके साथ मुश्किल में पड़ गए हैं। मुल्ला ने कहा कि तुम समझते नहीं हो। कारण है इसका। अगर मैं तुम्हारे तरफ पीठ करके बैठूं तो तुम्हारा अपमान हो जाएगा। और अगर तुम मेरे आगे चलो तो तुम्हें संकोच लगेगा कि वृद्ध के आगे कैसे चलें। तो फिर मैंने सोचा यही तरकीब उचित है कि मैं गधे पर उल्टा बैठ जाऊँ। आमने-सामने होना अच्छा है। कोई किसी का अपमान नहीं करेगा। यह जो मुल्ला है, यह बहुत अद्‌भूत आदमी है। इसकी छोटी से छोटी मजाक में भी बड़े गहरे सत्य हैं। जैसे वह बहुत सीधा मजाक कर रहा है। लेकिन वह यह कह रहा है कि जो तुम्हारे आगे चलता है वह भी अपमान करता है। और अगर तुम आगे चलते हो तो तुम उसका अपमान करते हो।

महावीर को बिल्कुल पसंद नहीं है। न तो अपने आगे किसी को रखना पसंद है, इसलिए कोई गुरु नहीं बनाया; न अपने पीछे किसी को रखना पसंद है, इसलिए किसी को अनुयायी नहीं बनाया। वह कहते हैं, कोई किसी का कल्याण नहीं कर सकता; कोई किसी को स्वर्ग नहीं ले जा सकता; कोई किसी का मुक्तिदाता नहीं है। प्रत्येक को स्वयं होना पड़ेगा। इसलिए अनुयायी होने के सारे रास्ते तोड़े जा रहे हैं। वे साथ हो सकते हैं। अनुगमन नहीं हो सकता, सहगमन हो सकता है। इसलिए जो महावीर का अनुयायी है वह तो समझ ही नहीं पाएगा क्योंकि अनुयायी होकर ही उसने सब गलती कर दी है। और महावीर के साथ होना बड़ी हिम्मत की बात है। पीछे होना बड़ी सरल बात है। साथ होने का मतलब है उन सबसे गुजरना पड़ेगा जिनसे

महावीर गुजरते हैं। हम पीछे ही होना चाहते हैं। इसमें कुछ नहीं करना पड़ता। महावीर को चलना पड़ता है, हम पीछे होते हैं। और पीछे होने की वजह से हम पर कभी कोई इलजाम भी नहीं हो सकता क्योंकि हम सिर्फ अनुयायी हैं।

इसलिए महावीर के आस-पास बड़ी संख्या उपस्थित नहीं हो सकी। छोटी संख्या उपस्थित हुई और वह निरन्तर छोटी होती चली गई। और अब करीब-करीब शाखा सूख गई है। अब उसमें कोई प्राण नहीं रहा है। जैसे बहुत दिन तक, पत्ते गिर जाते हैं, शाखा सूख जाती है फिर भी वृक्ष खड़ा रहता है—ऐसा हो गया है। फिर से फूट सकता है यदि महावीर को ठीक से समझा जा सके। फिर इसमें नए अंकुर आ सकते हैं। और मैं मानता हूँ कि नए अंकुर आने चाहिए। मैं किसी का अनुयायी नहीं, फिर भी चाहता हूँ कि इस शाखा में नए अंकुर आने चाहिए। जैसे मैं चाहता हूँ कि लाओत्से की शाखा में नए अंकुर आएँ, जीसस की शाखा में आएँ क्योंकि यह सब वृक्ष बड़े अद्‌भुत थे और इन सब वृक्षों के पीछे, नीचे न जाने कितने लोगों को छाया मिल सकती है। ये सूख जाते हैं तो वह छाया मिलनी बन्द हो जाती है। लेकिन मजा यह है कि जो इन वृक्षों के नीचे ठहर गए हैं, वही इनको सुखाने के कारण बने हैं। क्योंकि वे पानी नहीं देते वृक्ष को, पूजा करते हैं। और पूजा से कहीं वृक्ष बढ़ते हैं कभी? पूजा से वृक्ष सूखते हैं। पानी देने से वृक्ष बढ़ते हैं। पानी वे देते नहीं। सब वृक्ष सूख गए हैं।

चूंकि इन प्रसंग में महावीर की बात चलती है इसलिए मैं कहता हूँ कि कोई 'जैन' नहीं है। एक सूखा हुआ वृक्ष है, एक स्मृति में। उसके नीचे खड़े हुए लोग हैं जो पूजा कर रहे हैं। और वे जो भी कर रहे हैं उसका महावीर से कोई ताल-मेल नहीं है क्योंकि महावीर जैसे व्यक्ति से ताल-मेल बिठाना बहुत मुश्किल बात है। और अगर महावीर की 'स्यात् की दृष्टि' को हम समझ लें और अगर इसको ठीक से प्रकट किया जा सके तो भविष्य में महावीर के वृक्ष के नीचे बहुत से लोगों को छाया मिल सकती है। क्योंकि 'स्यात्' की भाषा रोज-रोज महत्वपूर्ण होती चली जाएगी। विज्ञान ने उसे एकदम स्वीकार कर लिया है। आइंस्टीन की स्वीकृति बहुत अद्‌भुत है। और इतने अद्‌भुत मामलों में स्वीकार किया है कि हमारी कल्पना के बाहर है। जैसे अब तक समझा जाता था कि जो अणु है, जो अन्तिम अणु है, परमाणु है वह एक बिन्दु है जिसमें लम्बाई-चौड़ाई नहीं। लेकिन प्रयोगों से पता चला है कि कभी तो

वह अणु बिन्दु की तरह व्यवहार करता है और कभी वह लहर की तरह व्यवहार करता है। तो बड़ी मुश्किल हो गई। उसका क्या कहें हम ? स्यात् अणु है, स्यात् लहर है तो एक नया शब्द बनाना पड़ा 'क्वाण्टा'। अर्थात् जो दोनों है—बिन्दु भी और लहर भी। यह हो नहीं सकता। अगर हम कहें कि एक चीज 'बिन्दु' भी है और लकीर भी तो व्यामोह हो जाएगा। तुम क्या कह रहे हो ? 'बिन्दु' बिन्दु होता है, 'लकीर' लकीर होती है। 'बिन्दु' लकीर कैसे हो सकती है ? 'लकीर' बिन्दु कैसे हो सकती है ? लेकिन, 'क्वाण्टा' का मतलब है कि जो परम अणु है, वह बिन्दु भी है, लकीर भी है। वह कण भी है, लहर भी है। यह दोनों बातें कैसे हो सकती हैं ? कण कैसे लहर हो सकता है और लहर कैसे कण हो सकती है। लेकिन, आइंस्टीन ने कहा कि दोनों सम्भावनाएँ एक साथ हैं। इसलिए ऐसा मत कहो कि बिन्दु ही है, कण ही है। ऐसा कहो : "स्यात् बिन्दु है, स्यात् लहर है।"

आइंस्टीन ने रिलेटिविटी को इतना स्पष्ट सिद्ध कर दिया है कि सब चीजें डगमगा गई हैं। जो कल तक निरपेक्ष सत्य का दावा करती थीं, वह सब डगमगा गई हैं। विज्ञान अब सापेक्ष के भवन पर खड़ा हो गया है। और इसलिए मैं कहता हूँ कि महावीर की 'स्यात्' की भाषा को अगर प्रकट किया जा सके तो भविष्य में महावीर ने जो कहा है, वह परम सार्थकता ले लेगा जो उसने कभी नहीं ली थी। यानी आने वाले पाँच सौ, हजार वर्षों में महावीर की विचार दृष्टि बहुत ही प्रभावी हो सकती है लेकिन उसके 'स्यात्' को प्रकट करना पड़ेगा तब जैन ही खुद डरेगा क्योंकि अनुयायी हमेशा 'स्यात्' से डरता है क्योंकि 'स्यात्' शब्द डगमगा देता है। यानी उसका मतलब यह हुआ कि मधुशाला के लिए अगर कोई पूछे कि मधुशाला बुरी है और कहना पड़े कि 'स्यात् बुरी है, स्यात् अच्छी है।' जाने वाले पर निर्भर है कि वह क्या करता है। कोई पूछे, "मन्दिर अच्छा है।" तो कहना पड़े : 'स्यात् अच्छा है, स्यात् बुरा है।' जाने वाले पर निर्भर करता है कि वह मन्दिर में क्या करता है।

महावीर तो ऐसा बोलेंगे लेकिन अनुयायी ऐसा कैसे बोले। वह तो मधुशाला और मन्दिर में फर्क करेगा और उसे तो पक्का कहना पड़ेगा कि मधुशाला बुरी है और मन्दिर अच्छा है। लेकिन तब वह 'स्यात्' से मुक्त हो गया और निश्चय पर आ गया, और बात खत्म हो गई। महावीर के साथ

चलना मुश्किल है। और इसलिए अनुयायी खड़े हो जाते हैं। और अनुयायी कभी भी किसी अर्थ के नहीं होते।

प्रश्न : जो कुछ आपने आज तक कहा वह सब एक ही प्रश्न को विशेष रूप से जन्म देता है। वह प्रश्न है : क्या आप जो कुछ कह रहे हैं, वह जैन परिभाषा में सम्यक् दर्शन के नाम से कहा गया है और आप आन्तरिक विवेक और जागरूकता पर पूरा बल दे रहे हैं? पर एक सम्यक् चरित्र भी उसका अंग है और वह चरित्र बाह्य रूप में भी प्रकट होता है, चाहे वह आता दर्शन में से ही है, पर उसका स्वयं का स्वरूप कुछ बाह्य में भी होता है। जैसे आप अगर अपरिग्रह को लें तो एक असम्पत्ति का भाव उसका मूल है, मूर्च्छा का अभाव उसका मूल है। पर बाह्य में वह, बाह्य पदार्थों की सीमा बंधती चली जाए, इस रूप में प्रकट होना ही चाहिए। ऐसी जैन दर्शन की मुझे भावना लगती है। इसी आधार पर तो अणुव्रत और महाव्रत का भेद हुआ। आज मेरी मूर्च्छा टूट गई पर सब पदार्थ मुझसे आज ही छूट नहीं जाते अचानक, क्योंकि मेरी आवश्यकताएँ धीरे-धीरे ही छूटने वाली हैं। वही आज आचरण के रूप में अणुव्रत से प्रारम्भ होगा, कल महाव्रत में समाप्त होगा। आज अगर यह भेद ही न मानें, केवल मूर्च्छा टूटना ही अगर ग्रहण कर लें तो अणुव्रत महाव्रत का कोई भेद, कोई क्रम नहीं रहेगा। और चारित्र नहीं केवल दर्शन ही रह जाएगा?

उत्तर : इसमें भी दो तीन बातें समझनी चाहिए। एक तो अणुव्रत से कोई कभी महाव्रत तक नहीं जाता। महाव्रत की उपलब्धि से अनेक अणुव्रत पैदा होते हैं।

प्रश्न : (दोनों शब्दों का अर्थ) ?

उत्तर : हाँ, मैं बताता हूँ। महाव्रत का अर्थ है जैसे पूर्ण अहिंसा। पूरे अहिंसक ढंग से जीने का अर्थ है महाव्रत—पूर्ण अपरिग्रह, पूर्ण अनासक्ति। अणुव्रत का मतलब है जितनी सामर्थ्य हो। एक आदमी कहता है कि मैं पाँच रुपये का परिग्रह रखूँगा। वह अणुव्रत है। एक आदमी कहता है : मैं नग्न रहूँगा। यह महाव्रत है।' साधारणतः ऐसा समझा जाता है कि अणुव्रत से महाव्रत की यात्रा होती है कि पहले पाँच रुपए का रखो, फिर चार का, फिर तीन का, फिर दो का, फिर एक का। फिर बिल्कुल मत रखो। साधारणतः ऐसा समझा जाता है। हम छोटे से छोटे का अभ्यास करते-करते बड़े की तरफ जाएंगे

किन्तु यह बात ही गलत है। हो सकता है कि एक आदमी दस रुपए की जगह पाँच रुपए का रखने का अभ्यास करे। यह अभ्यास होगा। मूर्च्छा नहीं टूटेगी। क्योंकि अगर मूर्च्छा टूट गई होती तो महाव्रत उपलब्ध होता। मूर्च्छा के टूटते ही महाव्रत उपलब्ध होता है। महाव्रत का जीवन व्यवहार में अणुव्रत दिखाई पड़ सकता है। लेकिन मूर्च्छा टूटते ही अणुव्रत उपलब्ध नहीं होता, महाव्रत उपलब्ध होता है। और अगर एक आदमी के पास दस रुपए थे और उसने अभ्यास कर पाँच का अणुव्रत साध लिया, कल अभ्यास करके चार का साध लिया, परसों तीन का, फिर दो का, फिर एक का और आखिर में उसने अपरिग्रह भी साध लिया तो भी मूर्च्छा नहीं टूट सकती क्योंकि हमें साधना उसे पड़ता है जिसकी हमारी मूर्च्छा नहीं टूटती है। जिसकी मूर्च्छा टूट जाती है वह साधना नहीं पड़ता है। वह सहज आता है। मूर्च्छा टूटी या नहीं, इसका एक ही सबूत है कि जो आपसे हो रहा है साधना पड़ा है, या कि आया है। अगर आया है तो मूर्च्छा टूटी और अगर साधना पड़ा तो मूर्च्छा नहीं टूटी क्योंकि साधना उसके खिलाफ करनी पड़ती है, अपने ही मन के खिलाफ। मेरा मन कहता है कि मैं दस रुपए रखूँ। मेरा व्रत कहता है कि मैं पाँच रुपए रखूँ। तो मैं लड़ता किससे हूँ? अपने मन से लड़ता हूँ जो कहता है दस रखो। मन तो दस का है, और व्रत पाँच का है। तो मैं लड़ता अपने से हूँ। मूर्च्छा टूट जाए तो मन ही टूट जाता है। दस का नहीं, पाँच का नहीं, दो का नहीं, एक का नहीं। मन परिग्रह का ही टूट जाता है। उस हालत में भी वह पाँच रुपए रख सकता है। लेकिन तब वह सिर्फ जरूरत होगी उसकी मूर्च्छा नहीं क्योंकि जीवन-व्यवहार में, जीवन में जहाँ हम जी रहे हैं, मूर्च्छा टूट जाने पर भी एक आदमी मकान में सो सकता है। लेकिन मकान उसका परिग्रह नहीं है। मूर्च्छा टूटने का मतलब यह नहीं कि चीजें छूट जाएँगी। मूर्च्छा टूटने का मतलब यह है कि चीजों से जो हमारा लगाव है वह छूट जाएगा। एक आदमी मकान में सो रहा है। यह मकान 'मेरा' है। मूर्च्छा इस 'मेरे' में है। मूर्च्छा मकान में सोने में नहीं है। तुम्हारे खीसे में पाँच रुपए हैं, इसमें मूर्च्छा नहीं है।

मैंने सुना है एक नदी के किनारे दो फकीर हैं। उनमें विवाद हो रहा है। एक फकीर कहता है कुछ भी रखना ठीक नहीं है। वह एक पैसा भी पास नहीं रखता है। दूसरा फकीर कहता है: 'कुछ न कुछ पास होना जरूरी है।' नहीं तो बड़ी मुश्किल पड़ जाएगी। फिर वे दोनों नदी के तट पर आए। साँझ हो गई है। सूरज ढल रहा है। नाव वाला है। नाव वाला उनसे कहता है; एक

रुपया लेंगे हम पार कर देंगे। नहीं, अब मैं जाता नहीं। मेरा गाँव इसी तरफ है। मैं नाव बाँधकर अब घर जा रहा हूँ। अब रात हो गई। दिन भर काम से थक गया हूँ। उन फकीरों को उस तरफ जाना जरूरी है। उस तरफ लोग प्रतीक्षा करते होंगे, हैरान होंगे। इस तरफ घना जंगल है, कहाँ पड़े रहेंगे। वह फकीर एक रुपया निकालता है जो कहता है : कुछ रखना जरूरी है। एक देता है। नाव में दोनों सवार होकर उस तरफ पहुँच जाते हैं। वह फकीर कूदता है कि देखो मैंने कहा था कुछ जरूरी है। नहीं तो हम उसी पार रह गए होते। वह जो फकीर कहता था : कुछ भी रखना जरूरी नहीं, छोड़ना जरूरी है वह कहता है कि तुम रखने की वजह से इस पार नहीं पहुँचे। तुम एक रुपया छोड़ सके, इसलिए पार पहुँचे सिर्फ रखने से इस पार नहीं पहुँचे। फिर विवाद शुरू हो जाता है। बड़ी मुश्किल हो गई। जिसने एक रुपया दिया था उसने सोचा था, विवाद जीत गए। उस पार नदी के फिर विवाद चलने लगा है और इस बात का कोई अन्त नहीं हो सकता क्योंकि दूसरा फकीर यह कहता है कि हम इस पार आए ही इसलिए कि तुम एक रुपया छोड़ सके। छोड़ने से हम इस पार आए। वह फकीर कहता है हम आते ही नहीं अगर एक रुपया हमारे पास न होता। और मेरा मानना यह है कि कोई तीसरे फकीर की वहाँ जरूरत है जो कहे कि हाँ, हो तभी छोड़ा जा सकता है, न हो तो छोड़ा भी नहीं जा सकता। इसलिए मैं कहता हूँ कि चीजें हों और तुममें सतत छोड़ने की सामर्थ्य हो। बस इतनी ही बात है। चीजें न हों, यह सवाल नहीं है। सवाल यह है कि तुम में सतत छोड़ने की सामर्थ्य हो।

एक सम्राट् एक संन्यासी से बहुत प्रभावित था। संन्यासी नग्न पड़ा रहता था एक नीम वृक्ष के नीचे। उस सम्राट् पर असर बढ़ता गया और एक दिन उसने कहा : यहाँ नहीं, मेरे पास इतने बड़े महल हैं, आप वहाँ चलें। सोचा था उसने कि संन्यासी इन्कार करेगा कि महल में नहीं जा सकता, मैं अपरिग्रही हूँ। संन्यासी ने कहा : जैसी आपकी मर्जी। वह डंडा उठाकर खड़ा हो गया। सम्राट् के मन में बड़ी मुश्किल हुई। सोचा था कि अपरिग्रही है, इन्कार करेगा। सम्राट् को बड़ी शंका आने लगी मन में, सन्देह आने लगा कि कुछ भूल हो गई मुझसे। आदमी, दिखता है, कि महल की प्रतीक्षा ही कर रहा है। सिर्फ नीम के नीचे शायद इसीलिए पड़ा हो कि कोई महल में ले जाने वाला मिल जाए। इसलिए एक दफा इन्कार भी नहीं किया। यह कैसा अपरिग्रही है? अपरिग्रही को तो कहना चाहिए : कभी नहीं जा सकता महल में। महल? पाप है। वहाँ

मैं कैसे जा सकता हूं ? फिर भी, सम्राट् ने कहा, देखें, कोशिश करें, जांच-पड़ताल करें। तो जो उसका अपना कमरा था, जहां बहुमूल्य सामान था, श्रेष्ठ से श्रेष्ठ गद्दियां थीं, मखमलें थीं, कीमती कालीन थीं, उसने कहा कि आप तो यहां ठहर सकेंगे न ? उसने कहा बिल्कुल मजे से। वह जैसा नीम के नीचे सोया था, वैसे ही मखमली गद्दे पर सो गया। सम्राट् ने अपना सिर ठोका और कहा : कुछ गलती एकदम हो गई है। हम एकदम गलत आदमी को ले आए हैं क्योंकि परिग्रही को अपरिग्रहीं तब समझ में आता है जब वह परिग्रह की दुश्मनी में हो। परिग्रही को, जिसको चीजों से पकड़ है, सिर्फ वही समझ में आता है जो चीजों को पकड़ने से ऐसा डर कर हाथ फैला दे कि 'नहीं' मैं छू नहीं सकता। ये चीजें पाप हैं। जिसको रुपए से मोह है, वह रुपए लात मारने वाले को ही आदर देता है। परिग्रही सिर्फ उसको ही समझ सकता है जो ठीक उससे उल्टा करे।

सम्राट् बहुत मुश्किल में पड़ गया। वह फकीर ऐसे रहने लगा जैसे सम्राट् रहता है। छः महीने बीत गए तो एक सुबह अपने बगीचे में टहलते हुए सम्राट् ने उससे पूछा कि अब तो मुझ में और आप में कोई भेद नहीं मालूम पड़ता। बल्कि शायद आप ही ज्यादा सम्राट् हैं। मुझे चिन्ता, फिक्र और सब इन्तजाम भी करना पड़ता है। तब तो एक फर्क था जब आप नीम के नीचे पड़े थे, मैं सम्राट् था। क्या मैं पूछ सकता हूँ कि कोई फर्क बाकी है। संन्यासी ने कहा : 'फर्क पूछते तो। चलो, थोड़ा आगे चले चलें, थोड़ा आगे बताएँगे।' बगीचा पार हो गया। गांव निकल गया। सम्राट् ने कहा : बता दें। उसने कहा : थोड़ा और आगे चलें। गांव की नदी आ गई। वे नदी के पार हो गए। सम्राट् ने कहा, 'कब बताएँगे। धूप चढ़ी जाती है।' उसने कहा : 'चले चलो अभी, अपने आप पता चल जाएगा।' सम्राट् ने कहा : 'क्या मतलब।' फकीर ने कहा : अब मैं लौटूंगा नहीं। अब तुम चले ही चलो मेरे साथ। सम्राट् ने कहा : मैं कैसे चल सकता हूं ! मेरा मकान, मेरा राज्य !' उस फकीर ने कहा तो तुम लौट जाओ। लेकिन अब हम जाते हैं। अगर फर्क दिख जाए तो दिख जाए। मगर यह मत समझना कि हम कोई तुम्हारे महल से डर गए। तुम अगर कहो कि 'लौट चलो' तो हम लौट जाएं। लेकिन तुम्हारी शंका फिर पैदा हो जाएगी। इसलिए अब हम जाते हैं। अब तुम अपना महल संभालो। इसमें फर्क तुम्हें दिखता है कि हम जा सकते हैं किसी भी क्षण।

अपरिग्रह का मतलब यह नहीं है कि चीजें न हों। क्योंकि चीजें न होने पर जो जोर है, वह चीजें होने पर जो जोर था उसका ही प्रतिरूप है। चीजें

हों या न हों यह सवाल नहीं है अपरिग्रह का। अपरिग्रह क सवाल है कि व्यक्ति चीजों के सदा बाहर है। उसके भीतर कोई चीज नहीं है। उस फकीर ने कहा कि हम तुम्हारे महल में थे लेकिन तुम्हारा महल हम में नहीं है। बस इतना ही फर्क है। तुम महल में कम हो, महल तुममें ज्यादा है। हम छोड़ कर कहीं भी जा सकते हैं। हमारे भीतर नहीं है कोई मामला। हम उसके भीतर से निकल सकते हैं। कोई महल हमको पकड़ नहीं सकता और जैसे हम नीम के नीचे सोते थे वैसे तुम्हारे महल में भी सोए। वही आदमी है, वैसे ही सोया है।

तो महाव्रत के अणुव्रत फलित हो सकते हैं लेकिन अणुव्रतों के जोर से कभी महाव्रत नहीं निकलता है क्योंकि अणुव्रत की कोशिश मूर्च्छित चित्त की कोशिश है। और महाव्रत की तुम कोशिश ही नहीं कर सकते। वह तो अमूर्च्छा लाओ तभी उपलब्ध होगा। महाव्रत अभ्यास से नहीं आ सकता। तुम्हारी मूर्च्छा टूट जाए तभी फलित होता है, तुम्हारा चित्त महाव्रती हो जाता है। लेकिन जीवन में हजार तरह से अणुओं में प्रकट होगा वह महाव्रत—हजार-हजार अणुओं में। लेकिन जिसको हम साधक कहते हैं आम तौर पर वह अणुव्रत से चलता है महाव्रत तक पहुँचने की कोशिश में। मगर वह कभी नहीं पहुँच पाता। वह अणुओं के जोड़ पर पहुँच जाएगा, महाव्रत पर नहीं। महाव्रत अणुओं का जोड़ नहीं है। महाव्रत विस्फोट है और जब चेतना पूरी की पूरी विस्फोट होती है तब उपलब्ध होता है। महावीर महाव्रती हैं। जीवन तो अणुव्रती होगा क्योंकि कहीं जाकर भिक्षा मांग लेंगे। विश्राम के लिए किसी छाया के तले रुकेंगे, फिर चलेंगे, फिरेंगे, बात करेंगे। इस सब में अणु होंगे लेकिन भीतर जो विस्फोट हो गया, वहाँ महान् होगा।

फिर जो दूसरी बात पूछी गई वह इसी से सम्बन्धित है। तीन शब्द हैं महावीर के : सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान, सम्यक् चारित्र। लेकिन अनुयायियों ने बिलकुल उलटा किया हुआ है। वे कहते हैं सम्यक् चारित्र, सम्यक् ज्ञान, सम्यक् दर्शन। वे कहते हैं पहले चरित्र साधो, फिर ज्ञान स्थिर होगा। जब ज्ञान स्थिर होगा तब दर्शन होगा। पहले चारित्र को बनाओ, जब चरित्र शुद्ध होगा तो मन स्थिर होगा, स्थिर मन से ज्ञान होगा। जानोगे तुम, जानने से दर्शन उपलब्ध होगा तो मुक्त हो जाओगे। स्थिति बिलकुल उलटी है। सम्यक् दर्शन पहले है। जिसका हमें दर्शन होता है, उसका हमें ज्ञान होता है। दर्शन है शुद्ध दृष्टि। जैसा तुम एक फूल के पास से निकले, और तुम खड़े हो गए और

तुम्हें दर्शन हुआ फूल का, अभी ज्ञान नहीं हुआ। जब दर्शन को तुम समझने की कोशिश करोगे तुम कहोगे गुलाब का फूल है ! बड़ा सुन्दर है। यह ज्ञान हुआ। जब दर्शन को तुम बाँधते हो तब वह ज्ञान बन जाता है। और फिर तुमने फूल तोड़ा और उसकी सुगन्ध ली। यह चरित्र हुआ। दर्शन जब बँधता है तब ज्ञान बन जाता है। ज्ञान जब प्रकट होता है तब चारित्र हो जाता है। चरित्र अन्तिम है—प्रथम नहीं। दर्शन प्रथम है। जीवन का सत्य क्या है इसका दर्शन चाहिए। वह ध्यान से होगा, समाधि से होगा। इसलिए साधना ध्यान और समाधि की है। दर्शन उसका फल है। जब दर्शन हो जाएगा और तुम सचेत हो जाओगे दर्शन के प्रति तब ज्ञान निर्मित होगा। जब तुम उससे अन्यथा आचरण नहीं कर सकते हो तब तुम्हारा आचरण सम्यक् हो जाएगा।

प्रश्न : वह आचरण किस रूप में होगा ?

उत्तर : वह कई रूपों में हो सकता है क्योंकि आचरण बहुत सी चीजों पर निर्भर है। वह सिर्फ तुम पर निर्भर नहीं है। जीसस में एक तरह का होगा, कृष्ण में एक तरह का होगा, महावीर में एक तरह का होगा। दर्शन बिल्कुल एक होगा। ज्ञान में भेद पड़ जाएगा क्योंकि उस दर्शन को ज्ञान बनाने वाला प्रत्येक व्यक्ति अलग-अलग है। जगत् के जितने अनुभूति-उपलब्ध व्यक्ति हैं सबका दर्शन एक है। लेकिन ज्ञान सबका अलग होगा। मतलब यह कि उनकी भाषा, उनके सोचने का ढंग, उनकी शब्दावली, वह सबकी सब ज्ञान बनेगी। फिर ज्ञान आचरण बनेगा। आचरण भी भिन्न होगा। जैसे समझ लें कि अगर आज महावीर न्यूयार्क में पैदा हों तो वह नंगे नहीं खड़े होंगे क्योंकि न्यूयार्क में नंगे खड़ा होने का एक ही परिणाम होगा कि पागल खाने में बन्द करके उनका इलाज किया जाए। इस स्थिति में उनका आचरण नग्न होने का नहीं होगा। जिस स्थिति में वे भारत में थे, उस दिन नग्नता पागलपन का पर्याय नहीं थी, संन्यास का पर्याय थी।

प्रश्न : उत्तरी ध्रुव में वह मांस भी खा सकते हैं, अगर ऐसा हो ?

उत्तर : सम्भव है। लेकिन मैंने कल रात को बात कही अगर आपने सुनी है तो उत्तरी ध्रुव में मांस नहीं खाएँगे—अगर उन्हें मूक जगत् से सम्बन्ध स्थापित करना है तो वह मांस नहीं खा सकते। और अगर सम्बन्ध स्थापित न करना हो तो वे मांस खा सकते हैं और मोक्ष हो सकता है। मांस खाने से मोक्ष का कोई विरोध नहीं है। लेकिन तब वह मनुष्य से ही सम्बन्ध स्थापित

कर सकेंगे ज्यादा से ज्यादा। और वह सम्बन्ध भी बहुत शुद्ध सम्बन्ध नहीं होगा। उसमें थोड़ी बाधाएँ होंगी। अगर पूर्ण शुद्ध सम्बन्ध स्थापित करना है तो इस जगत् के प्रति किसी तरह की चोट जाने-अनजाने नहीं होनी चाहिए। तब सम्बन्ध पूर्ण स्थापित होगा। मुझे अगर तुमसे सम्बन्ध स्थापित करने हैं तो मुझे तुम्हारे प्रति पूर्ण अवैर साधना होगा। जितना मेरा वैर होगा, जितना मैं तुम्हें चोट पहुँचा सकता हूँ, जितना तुम्हारा शोषण कर सकता हूँ, जितनी तुम्हारी हिंसा कर सकता हूँ, उसी मात्रा में मैं तुम्हें जो पहुँचाना चाहूँगा, नहीं पहुँचा सकूँगा। प्रेम को पहुचाने के लिए सत्य के अतिरिक्त कोई और द्वार नहीं है। इसलिए महावीर अगर उत्तरी ध्रुव में पैदा हों और उनको अपने नीचे के मूक पशु जगत् और पदार्थ जगत् से सम्बन्ध स्थापित करना हो तो वह मांसाहार नहीं करेंगे लेकिन अगर करना हो तो यहाँ भी कर सकते हैं कोई कठिनाई नहीं है। इसलिए अहिंसा की जो मेरी दृष्टि है वह बात ही और है। अहिंसा को मैं अनिवार्य तत्त्व नहीं मानता हूँ मोक्ष प्राप्ति का। अहिंसा को मैं अनिवार्य तत्त्व मान रहा हूँ मनुष्य के नीचे की योनियों से सम्बन्ध स्थापित करने का।

तो ज्ञान-भेद होंगे, दर्शन एक होगा, ज्ञान-भेद हो जाएगा तो फिर चरित्र-भेद भी हो जाएगा। क्यों? क्योंकि दर्शन है शुद्ध स्थिति। न वहाँ मैं हूँ, न वहाँ कोई और है। दर्शन में कोई विकार नहीं है। फिर ज्ञान में भाषा आ गई, शब्द आ गए। जो भाषा मैं जानता हूँ, वही आएगी। जो तुम जानते हो, वही आएगी। अब जीसस को पालि, प्राकृत नहीं आ सकती। जब उन्हें ज्ञान बनेगा वह पालि, प्राकृत या संस्कृत में नहीं बन सकता। वह आरमेक में बनेगा। अब कनफ्यूसियस को दर्शन होगा क्योंकि वह पुरुष मुक्त है इसलिए वह दर्शन वही होगा जो बुद्ध को होगा, महावीर को होगा। लेकिन जब ज्ञान बनेगा तो चीनी में बनेगा जिस शब्दावली में वह जिया है और पला है। महावीर को जब मुक्ति अनुभव होगी तो वह उसे मोक्ष कहेंगे, उसे निर्वाण नहीं कहेंगे क्योंकि वह निर्वाण शब्द में पले ही नहीं हैं। शंकर को जब अनुभूति होगी तो वह कहेंगे 'ब्रह्म उपलब्धि।' वह 'ब्रह्म उपलब्धि' शब्द है मगर बात वही है। जो महावीर को मोक्ष में होती है, बुद्ध को निर्वाण में होती है, शंकर को ब्रह्म-उपलब्धि में होती है। शब्द अलग-अलग हैं। ज्ञान में शब्द आ जाएगा। विशुद्धि गई, अशुद्धि आनी शुरू हुई। जो परम अनुभव था वह अब शाखाओं में बँटना शुरू हुआ। फिर भी ज्ञान तो सिर्फ शब्दों की वजह से अशुद्ध है। चरित्र तो और भी नीचे उतरता है। चरित्र तो समाज, लोक व्यवहार, स्थिति, युग, नीति, व्यवस्था,

राज्य—इन सब पर निर्भर होगा क्योंकि जब मैं शुद्ध दर्शन में हूँ तब न 'मैं' हूँ, न कोई और है—सिर्फ दर्शन है।

जब मैं ज्ञान में आया तो 'दर्शन' और 'मैं' भी आया वापिस। और जब मैं चरित्र में आया तो समाज भी आया। चरित्र जो है वह समाज के साथ है। समाज की एक नीति है तो चरित्र में प्रकट होनी शुरू होगी। अगर दूसरी नीति है तो दूसरी तरह से प्रकट होनी शुरू होगी। उनमें कोई भी मिथ्या नहीं है क्योंकि लोक परिस्थिति सारी जगह अलग-अलग है। चरित्र मुझसे दूसरे का सम्बन्ध है। चरित्र में मैं अकेला नहीं हूँ, आप भी हैं। इसलिए चरित्र प्राथमिक नहीं है। वह सबसे आखिरी प्रतिध्वनि है दर्शन की। लेकिन, हाँ चरित्र में कुछ बातें प्रकट होंगी। उसको दर्शन होगा। वह कुछ बातें हमारे ख्याल में ले सकते हैं। लेकिन उनको बहुत बाँधकर मत लेना; बाँध लेने से मुश्किल हो जाती है। क्योंकि वह किसी न किसी परिस्थिति में ही प्रकट होंगी। जैसे समझ लें कि सूरज की किरणें आ रही हैं और यह जो खिड़की लगी है, नीले काँच की है। और यह जो खिड़की लगी है, पीले काँच की है। तो पीले काँच की खिड़की जो से किरणें भीतर भेजेगी, वे पीली दिखाई पड़ेंगी, नीले काँच की किरणें नीली दिखाई पड़ेंगी। अगर तुमने यह मान लिया कि सूरज नीले या पीले रंग का होता है तो तुम गलती में पड़ जाओगे। तुम इतना ही मानना जो ज्यादा आवश्यक है कि जब सूरज निकला है वह अनेक रूपों में प्रकट होता है लेकिन प्रकाश होता है। तुम पीले और नीले में भी ताल-मेल बिठा पाओगे। महावीर में वह एक तरह से निकलता है क्योंकि महावीर का व्यक्तित्व एक तरह का है। बुद्ध में दूसरी तरह से निकलता है, क्राइस्ट में तीसरी तरह से निकलता है, कृष्ण में चौथे तरह से निकलता है। हजार तरह से वह निकलता है। यह सब काँच है—व्यक्तित्व। प्रकाश तो एक है। फिर इनसे निकलता है। फिर तुम देखने वालों के बीच जिस समाज में वह आदमी जी रहा है, वे देखने वाले भी सम्बन्धित हो जाते हैं। और सम्बन्ध तो तुमसे करना है उसे। प्रत्येक युग में नीति बदल जाती है, व्यवस्था बदल जाती है, राज्य बदल जाता है।

प्रश्न : क्या बेसिक मोरेलिटी जैसी कोई चीज है?

उत्तर : बिल्कुल नहीं है, बिल्कुल नहीं है।

प्रश्न : सत्य भी बेसिक मोरेलिटी नहीं है?

उत्तर : सत्य मोरेलिटी का हिस्सा ही नहीं है। सत्य तो अनुभूति का, दर्शन का हिस्सा है, चरित्र का नहीं।

प्रश्न : ब्रह्मचर्य ?

उत्तर : नहीं, वह भी बेसिक नहीं है।

अरब को लें। वहाँ औरतें चार पाँच गुना ज्यादा हैं पुरुषों से। पुरुष एक है तो स्त्रियाँ छः हैं या पाँच हैं। फिर भी वह लड़ाकू कबीला है, दिन-रात लड़ता है। पुरुष कट जाते हैं, स्त्रियाँ बच जाती हैं। समाज अनैतिक हुआ जा रहा है। क्योंकि जहाँ स्त्रियाँ पाँच हो, पुरुष एक हो, वहाँ अगर मुहम्मद ब्रह्मचर्य का उपदेश दें तो वह मुल्क सड़ जाएगा बिल्कुल। मर ही जाएगा मुल्क क्योंकि ऐसी कठिनाई खड़ी हो गई कि चार स्त्रियों को पति ही नहीं मिल रहे हैं। और वे मजबूरी से व्यभिचार में उतर रही है। इन चार स्त्रियों के व्यभिचार में उतरने से पुरुष भी व्यभिचारी हो रहे हैं। इन चार स्त्रियों के लिए कोई व्यवस्था करनी जरूरी हैं; नहीं तो समाज बिल्कुल अनैतिक हो जाएगा। अगर महावीर भी वहाँ हों मुहम्मद की जगह, तो मैं मानता हूँ कि वह विवाह करेंगे। क्योंकि उस स्थिति में उसके सिवाय कोई नैतिक तथ्य नहीं हो सकता। मुहम्मद कहते हैं कि चार विवाह प्रत्येक के लिए धर्म है, नीति है। चार तो प्रत्येक करे ही ताकि कोई स्त्री बिना पति के न रह जाए और कोई स्त्री बिना पति के पीड़ा न उठाए ? और बिना पति की स्त्री व्यभिचार को मजबूर न हो जाए; वह समाज को कुत्सित रोगों में न फेर दे। मुहम्मद इसके लिए उदाहरण बनते हैं। वह नौ विवाह कर लेते हैं।

प्रश्न : चरित्र समाज से आएगा या सम्यक् दर्शन से ?

उत्तर : चरित्र आएगा सम्यक् दर्शन से लेकिन प्रकट होगा समाज में। सम्यक् दर्शन जिसको प्राप्त हुआ है, उसे दृष्टि प्राप्त हुई है करुणा की, प्रेम की, दया की। उस दृष्टि को प्रकट होने के लिए जैसा समाज है वैसे उपकरण खोजे गए। जैसे मुहम्मद के लिए यही करुणा है कि वह चार विवाह का इन्तजाम कर दे। और चार विवाह का इन्तजाम करता है, अगर वह नौ विवाह खुद करके न बता सके तो चार का इन्तजाम करेगा कैसे ? मुहम्मद के लिए जो करुणा पूर्ण है, वह यही है। महावीर के लिए यह सवाल नहीं है। जिस युग में वह हैं, जहाँ वह हैं, वहाँ की यह परिस्थिति नहीं है। यह कल्पना में भी आना मुश्किल है महावीर को। मुहम्मद के लिए ब्रह्मचर्य की कल्पना बहुत मुश्किल है क्योंकि मुहम्मद अगर ब्रह्मचर्य की बात करें तो आप यह समझ लीजिए कि अरब मुल्क सदा के लिए नष्ट हो जाए, बुरी तरह नष्ट हो जाए।

सम्यक् दर्शन से करुणा आ जाएगी ही। वह क्या-क्या रूप लेगी यह बिल्कुल अलग बात है। अब यह हो सकता है कि करुणा यह रूप ले कि एक आदमी की टाँग सड़ रही है तो उसको काट दे। और दूसरा आदमी कहे कि तुमने टाँग काट दी इस आदमी की, तुम्हारी कैसी करुणा ?

गांधी जी के आश्रम में एक बछड़ा बीमार है और वह तड़फ रहा है, परेशान है। डाक्टर कहते हैं कि बचेगा नहीं, दो-तीन दिन में वह मर जायेगा, उसको कैंसर हो गया है। गांधी जी कहते हैं, उसे जहर का इन्जेक्शन दे दें। इन्जेक्शन दे दिया गया है। सारे आश्रम के लोग संदिग्ध हो गए हैं। उन्होंने कहा कि यह आप क्या करते हैं ? बड़े-बड़े पंडित गांधी जी के पास इकट्ठे हुए। उन्होंने कहा कि यह तो हद हो गई। यह तो गो-हत्या हो गई। गांधी जी ने कहा कि उस गो-हत्या का पाप मैं झेल लूँगा। लेकिन इस बछड़े को कष्ट में नहीं देख सकता। अब गो-हत्या नहीं होनी चाहिए, ऐसा मानने वाला जो जड़-बुद्धि आदमी है वह कभी नहीं बर्दाश्त कर सकता क्योंकि उसके पास अपनी कोई दृष्टि नहीं, सिर्फ बना हुआ नियम है। लेकिन जिसके पास अपनी बनी हुई दृष्टि है, वह उसका उपयोग करेगा, चाहे वह नियम के प्रतिकूल जाती हो। लेकिन यह विशेष परिस्थिति पर ही निर्भर करता है। गांधी जी किसी अच्छे बछड़े को जहर नहीं पीला सकते। मेरा कहना है कि दृष्टि आपको होगी, परिस्थिति बाहर होगी। बछड़ा बीमार पड़ा है, कैंसर से पीडित है, आपको जहर पिलाना पड़ रहा है। करुणा आपसे आ रही है। करुणा क्या रूप लेगी यह कहना कठिन है। करुणा कभी तलवार उठा सकती है, कभी तलवार का निषेध कर सकती है। मुहम्मद की तलवार पर मुहम्मद ने लिखा हुआ है कि मैं शांति के लिए लड़ रहा हूँ। इस्लाम का मतलब है शांति। लेकिन मुहम्मद की परिस्थितियों में और जिन लोगों से वे घिरे हैं, तलवार के सिवाय कोई दूसरी भाषा ही नहीं है।

प्रश्न : क्राइस्ट ने कोड़े मारे, वह करुणा है ?

उत्तर : बिल्कुल ही करुणा है। क्राइस्ट जब पहली दफा यहूदियों के बड़े त्योहार पर गए तो वह जो बड़ा मन्दिर था यहूदियों का, वहाँ सारा देश इकट्ठा होता था, देश के बड़े ब्याजखोर इकट्ठे होते थे, ब्याज पर पैसा देते थे और लेते थे। वह बड़ा खर्चीला त्योहार था। गरीब आदमी भी उधार लेकर रुपए खर्च करता था और वह कई जन्मों तक भी न चुका पाता उन ब्याजों को। ब्याज की दूकानें मन्दिर के सामने लगी रहतीं। तख्तों पर लोग बैठे

रहते उधार देने वाले यात्रियों को। मन्दिर के सामने दिया गया उधार कोई साधारण उधार नहीं था। वह चुकाना ही पड़ेगा, नहीं तो नरक में जाओगे। जीसस वहाँ गए और उन्होंने यह सब देखा कि करोड़ों लोगों का शोषण चल रहा है; मन्दिर के पुजारी के एजेंट उन तख्तों पर बैठे हुए हैं जो ब्याज पर पैसा दे रहे हैं और वह पैसा सब मन्दिर में चढ़ाया जा रहा है और वह पैसा फिर ब्याज से दिया जा रहा है। यह जो चक्कर देखा तो उन्होंने उठाया कोड़ा, तख्ते उलट दिए और मारे कोड़े लोगों को। और कहा : भाग जाओ। इस मन्दिर को खाली करो। शत्रु को लगेगा कि यह आदमी कैसा है? जो कहता है कि एक गाल पर कोई चांटा मारो तो दूसरा गाल सामने कर दो। यह कोड़ा उठा सकता है? हाँ उठा सकता है, उठाने का हकदार है क्योंकि इसको निजी क्रोध का कोई कारण नहीं है। लेकिन महावीर को कोई ऐसा मौका नहीं, इसलिए कोड़ा नहीं उठाते।

मैं जो कह रहा हूँ वह यह कि दर्शन तो एक ही होगा, ज्ञान भिन्न होगा क्योंकि शब्द आ जाएगा, और चरित्र भिन्न होगा क्योंकि समाज आ जाएगा, परिस्थिति आ जाएगी। उसकी अभिव्यक्ति बदलती चली जाएगी, एकदम बदलती चली जाएगी। मगर उसमें भी काम तो दर्शन ही करेगा। असल में जिनके पास दर्शन नहीं है उनका चरित्र जड़ होता है, नियमबद्ध होता है। परिस्थिति भी बदल जाती तो भी वह नियमबद्ध चलता रहता है क्योंकि उसे कोई मतलब ही नहीं। उसकी कोई अपनी दृष्टि ही नहीं। वह तो नियमबद्ध है।

लेकिन चरित्र तीसरे वर्तुल पर आता है। इसलिए मैं चरित्र को केन्द्र नहीं मानता, परिधि मानता हूं। दर्शन को केन्द्र मानता हूँ। तो दर्शन ज्ञान ही चरित्र है। मगर आपका साधु क्या कर रहा है? वह चरित्र साध रहा है और सोच रहा है कि जब चरित्र पूरा हो जाएगा तब फिर ज्ञान होगा; जब ज्ञान पूरा हुआ तो दर्शन होगा। वह उल्टा चल पड़ा है। उससे कुछ नहीं होगा। वह सिर्फ उसकी आत्मवंचना है।

प्रश्न : महावीर के अनुयायी कहते हैं कि महावीर का दर्शन आज भी उपयोगी है। दर्शन बदलता नहीं है देश-काल के साथ, सम्यक् दर्शन बदलता नहीं। पर महावीर का चरित्र आज जिस रूप में प्रकट हो सकता है, क्या अभिव्यक्ति ले सकता है आज की परिस्थिति में?

उत्तर : असल में ऐसा सोचना नहीं चाहिए कि आज अगर महावीर होते तो उनका आचरण क्या होता? यह इसलिए नहीं सोचना चाहिए कि महावीर

से कोई किसी का बन्धन थोड़े ही है कि उनका जैसा आचरण होता है वैसा हमारा हो, जैसा महावीर का आचरण होता, वैसा हमारा हो ही सकता। जैसा हमारा हो सकता है, महावीर लाख उपाय करें तो वैसा उनका नहीं हो सकता। इसके कई कारण हैं क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति अनूठा है। यही अर्थ है प्रत्येक व्यक्ति के आत्मवान् होने का। किसी के आचरण का हिसाब ही मत रखो। वह सम्यक् दृष्टि नहीं है। आचरण से प्रयोजन मत रखो; दर्शन कैसे उपलब्ध हो इसकी फिक्र करो। आचरण तो पीछे से आएगा। जैसे तुम यहाँ आए तो तुम फिक्र नहीं करते कि तुम्हारे पीछे तुम्हारी लम्बी छाया आ रही है। दुपहर में आते तो कैसी छाया आती, सांझ में आते तो कैसी छाया आती, सुबह आते तो कैसी छाया आती, तुम यह फिक्र नहीं करते। तुम आते हो, छाया तुम्हारे पीछे आती है। वह लम्बी हो जाती है, छोटी हो जाती है, चौड़ी हो जाती है, जैसी होती रहे, तुम्हें फिक्र नहीं उसकी। सवाल तो गहरे दर्शन का है, चरित्र तो उसकी छाया है, जैसी धूप होगी वैसी होती रहेगी। उससे कोई सम्बन्ध नहीं है, कोई प्रयोजन नहीं है यानी उसको सोचना ही नहीं है।

मेरा कहना यह है कि चरित्र बिल्कुल ही अविचारणीय है। क्योंकि दर्शन का हमें ख्याल नहीं रह गया इसलिए हम चरित्र की फिक्र करते हैं। विचारणीय है दर्शन। और दर्शन, काल एवं परिस्थिति से आबद्ध नहीं है। दर्शन कालातीत, क्षेत्रातीत है। जब भी तुम्हें दर्शन होगा तो वही होगा जो किसी दूसरे को हुआ हो। महावीर से कुछ लेना-देना नहीं। किसी को भी हुआ हो, वह वही होगा। क्योंकि दर्शन तभी होगा, जब न तुम होगे, न कुछ और होगा, सब मिट गया होगा, और जब वह दर्शन होगा तो अपने आप अपने को रूपान्तरित करेगा ज्ञान में। ज्ञान अपने आप रूपान्तरित होगा चरित्र में। उसकी चिन्ता ही नहीं करनी है। नहीं तो फिर दूसरा बन्धन शुरू हो जाता है। जैसा कि अगर मैं तुम्हें कहूं कि महावीर ऐसा करते तो तुम शायद सोचो कि ऐसा हमें करना चाहिए। नहीं, तुम्हें करने का सवाल ही नहीं है क्योंकि तुम्हें वह दर्शन नहीं है। वही तो जैन साधु और जैन मुनि कह रहा है बेचारा। वह कहता है कि वे ऐसा करते थे, हम भी ऐसा करते हैं।

मैं एक गाँव में गया। वह गाँव था ब्यावर। वहाँ का कलेक्टर आया और मुझसे कहा कि मैं एकान्त में बात करना चाहता हूँ। उसने दरवाजा बन्द कर दिया बिल्कुल, सांकल लगा दी। अन्दर बैठकर मुझसे पूछा कि मुझे दो चार बातें पूछनी हैं। पहली तो यह कि आप जैसा चादर लपेटते हैं, ऐसा लपेटने

से मुझे कुछ लाभ होगा ? वह बिल्कुल ठीक पूछ रहा था। हम उस पर हंसते हैं। लेकिन हमारा साधु क्या कर रहा है। महावीर कैसे खड़े हैं, कैसे बैठे हैं, कैसी पिच्छी लिए, कैसा कमण्डल लिए, मुँह पर पट्टी बांधे, वह पक्का कर लेता है, फिर वैसा करना शुरू कर देता है। चूक गया वह बुनियादी बात। मैंने उससे कहा कि चादर से क्या सम्बन्ध है ? मेरी मौज आए तो मैं कोट-टाई पहन लूं, उसमें क्या दिक्कत है। उससे 'मैं' मैं ही रहूंगा, उससे क्या फर्क पड़ने वाला है। हाँ, तुम्हें फर्क पड़ सकता है मुझे देखकर। फिर तुम समझोगे कि इस आदमी के पास क्या होगा, यह तो कोट-टाई बांधे हुए है। लेकिन मुझे क्या फर्क पड़ने वाला है। मैं जैसे हूँ वैसा रहूँगा और तुम जैसे हो वैसे रहोगे। चाहे चादर लपेटो, चाहे नग्न हो जाओ। इससे कुछ फर्क नहीं पड़ता। वह बुनियादी भूल है जो हम सोचते हैं कि बाहर से भीतर की तरफ जाता है जीवन। वास्तव में जीवन सदा भीतर से बाहर की तरफ आता है। और अगर बाहर से किसी ने भीतर को बदलने की कोशिश की तो भीतर वही रह जाएगा, बाहर बदल जाएगा। और उस आदमी के भीतर द्वन्द्व पैदा होगा। जो आदमी आचरण से शुरू करेगा वह पाखण्डी हो जाएगा।

प्रश्न : क्या आज का ज्ञान भी पुराने ज्ञान से अलग होगा ?

उत्तर : दर्शन भर अलग नहीं होगा। वह अशुद्धतम है। ज्ञान अलग होगा क्योंकि आज की भाषा बदल गई है, सोचने के ढंग बदल गए हैं। इसलिए मुश्किल हो जाती है पहचानने में। पुराने को पकड़ लेने वाले के लिए नए को पहचानना मुश्किल हो जाता है। अगर मुझे दर्शन है तो भी मेरी भाषा वह नहीं हो सकती जो महावीर की होगी। महावीर को मानने वाला कहेगा कि इस आदमी से अपना कोई तालमेल नहीं। क्योंकि यह आदमी न मालूम क्या कह रहा है। हमारे महावीर कहते नहीं। वह कह नहीं सकते क्योंकि अढाई हजार साल का फासला हो गया है। अढाई हजार साल में सब चीजों ने स्थिति बदल ली है। वह कहीं और पहुँच गई है। सारी बात बदल गई है, सोचने के ढंग बदल गए हैं, भाषा बदल गई है। सबके बदल जाने पर ज्ञान भिन्न होगा। पर दर्शन कभी भिन्न नहीं होगा क्योंकि दर्शन होता ही तब है जब हम सब छोड़कर अन्दर जाते हैं। भाषा, समाज, धर्म, शास्त्र, शब्द, विचार सब छोड़ देते हैं। जहाँ सब छूट जाता है, वहाँ दर्शन होता है। इसलिए दर्शन तो हमेशा वही रहेगा क्योंकि कुछ भी छोड़े कोई, सब छोड़ना पड़ेगा। मुझे कुछ और छोड़ना पड़ेगा, महावीर को कुछ और छोड़ना पड़ेगा। महा-

वीर ने डारविन को नहीं पढ़ा था तो डारविन को नहीं छोड़ना पड़ा होगा। महावीर ने वेद छोड़े होंगे, उपनिषद् छोड़े होंगे। मैंने डारविन को पढ़ा तो मुझे डारविन को, मैंने मार्क्स को पढ़ा तो मुझे मार्क्स को छोड़ना पड़ेगा। यह फर्क पड़ेगा। लेकिन जो भी मेरे पास हो वह छोड़ना पड़ेगा। छोड़कर दर्शन उपलब्ध होता है कभी भी। इसलिए दर्शन हर काल में छोड़कर ही होगा क्योंकि उसका जोर उस पर है कि तुम जो भी जानते हो, तुमने जो भी सीखा है, जो भी पकड़ा है, उस सब को लीन कर दो। लेकिन, जब दर्शन हो जाएगा और जब आप ज्ञान बनाएँगे उससे, तब आपको सब विद्वत्ता आजाएगी। अरविंद जब बोलेंगे तो उसमें डारविन मौजूद रहेगा। इससे अरविंद की सारी भाषा बदल जाएगी। महावीर की वह भाषा नहीं हो सकती क्योंकि महावीर को डारविन का कोई पता नहीं है। महावीर डारविन की भाषा नहीं बोल सकते। अरविन्द बोलेगा तो डारविन की भाषा में बोलेगा। जैसे महावीर मार्क्स की भाषा में नहीं बोल सकते लेकिन अगर मैं बोलूँगा तो मार्क्स की भाषा बीच में आएगी। मैं कहूँगा शोषण पाप है, महावीर नहीं कह सकते यह। क्योंकि महावीर के युग में शोषण के पाप होने की धारणा ही नहीं थी। उस वक्त जिसके पास धन था वह पुण्य था। धन शोषण है और चोरी है यह धारणा तीन सौ वर्षों में पैदा हुई है। यह धारणा जब इतनी स्पष्ट हो गई तो आज अगर कोई कहेगा कि धन पुण्य है तो इस जगत् में उसका कोई अर्थ नहीं यानी वह अज्ञानी सिद्ध होने वाला है। इसलिए अक्सर यह दिक्कत हो जाती है।

न तो हमें पीछे की तरफ लौटकर सोचना चाहिए और ना ही नई शब्दावलियों को पुराने पर थोपना चाहिए। महावीर को हम इसलिए कमजोर नहीं कह सकते कि उन्हें विकास की भाषा का पता नहीं था। वह भाषा थी ही नहीं। वह भाषा नई विकसित हुई है। आज से हजार साल बाद जो लोग दर्शन को उपलब्ध होंगे, जो भाषा बोलेंगे उसकी हम कल्पना भी नहीं कर सकते क्योंकि एक हजार साल में वह सब कुछ बदल जाएगा। इसी बदली हुई भाषा में फिर ज्ञान प्रकट होगा। तब अभिव्यक्ति के माध्यम बदल जाएँगे। समझ लें कि आज से दो हजार, तीन हजार साल पहले भाषा नहीं थी, उसे सिवाय स्मृति में रखने के कोई अन्य उपाय नहीं था। सारा ज्ञान स्मृति में ही संचित होता था। ज्ञान को इस ढंग से बताना पड़ता था कि वह स्मृति में हो जाए। इसलिए जो पुराने ग्रन्थ हैं, वे सब काव्य में हैं क्योंकि काव्य को स्मरण रखा जा सकता है, गद्य को स्मरण रखना मुश्किल है। कविता स्मरण रखी जा सकती है, सुविधा से,

गद्य को नहीं रखा जा सकता। इसलिए जब कि स्मृति के सिवाय दूसरा उपकरण न था संरक्षित करने का तो सारे ज्ञान को पद्य में ही बोलना पड़ता था। उसको गद्य में बोलना बेकार था। क्योंकि गद्य में बोला तो उसको याद रखना ही बहुत मुश्किल था। उसको पद्य में बोलने से स्मरण रखने में सुविधा हो जाती थी। आप एक कविता स्मरण रख सकते हैं सरलता से बजाय एक निबन्ध के क्योंकि उसमें एक तुकबन्दी है जो कि आपको गाने की सुविधा देती है। वह स्मृति में जल्दी बैठ जाती है। इसलिए पुराने ग्रन्थ पद्य में हैं। गद्य बिल्कुल नई खोज है। जब लिखा जाने लगा तब पद्य की जरूरत न रही। तुकबन्दी जोड़ने में जो नहीं कहना वह भी मिलाना पड़ता था। सीधा गद्य में लिखा जा सकता है तो फिर नए शब्द आए। इसलिए नई भाषाएँ काव्यात्मक नहीं हैं। पुरानी भाषाएँ ही काव्यात्मक हैं जैसे संस्कृत। आजकल की भाषा वैज्ञानिक है। आप कविता भी बोलो तो गणित का सवाल मालूम पड़े। सारा फर्क पड़ता चला जाता है। जो उपकरण उपलब्ध होंगे उनमें ज्ञान प्रकट हो जाएगा। नई कविता बिल्कुल गद्य है क्योंकि उसे पद्य होने की जरूरत नहीं। पुराना गद्य भी पद्य है। नया पद्य भी गद्य है। और यह सब बदलते चले जाते हैं रोज-रोज।

जो ज्ञान बनेगा, वह दर्शन से उतरेगा नीचे। दूसरी सीढ़ी पर खड़ा होगा और जो उस युग की ज्ञान-व्यवस्था है, उसका अंग होगा तभी वह सार्थक होगा। फिर वह नीचे उतरेगा तभी चरित्र बनेगा। तो हमारे समाज का जो भीतरी सम्बन्ध है, वह उस पर निर्भर करेगा। आएगा दर्शन से, उतरेगा चरित्र तक। चरित्र सब से ज्यादा अशुद्ध रूप होगा क्योंकि उसमें दूसरे सब आ गए। ज्ञान और कम अशुद्ध होगा। दर्शन पूर्ण शुद्ध होगा। और दर्शन की उपलब्धि के रास्ते अलग होंगे। चरित्र उसकी उपलब्धि का रास्ता नहीं है।

प्रश्न : महावीर की नग्नता चरित्र का अंग था, या दर्शन का ?

उत्तर : बहुत सी बातें हैं। असल में महावीर को, जैसा मैंने कल रात को कहा, बहुत सी बातें करनी पड़ रही हैं जो हमारे ख्याल में नहीं हैं। वह ख्याल में आ जाएँ तो हमें पता चल जाएगा कि वह किस बात का अंग था। महावीर की नग्नता उनके ज्ञान का अंग है, चरित्र का नहीं। ज्ञान का अंग इसलिए है कि अगर किसी को विस्तीर्ण ब्रह्माण्ड से, मूक जगत् से सम्बन्धित होना है तो वस्त्र एक बाधा है। जितने वस्त्र पैदा होते जा रहे हैं, उतनी ज्यादा बाधाएँ हैं। नवीनतम वस्त्र चारों तरफ के वातावरण से आपके शरीर को तोड़ देते हैं। उनमें से बहुत कम भीतर जाता है, बहुत कम बाहर आता है। अलग-अलग

वस्त्र अलग-अलग तरह से काम करता है। सूती वस्त्र अलग तरह से तोड़ता है, रेशमी वस्त्र अलग तरह से तोड़ता है, ऊनी वस्त्र अलग तरह से तोड़ता है। जिनमें प्लास्टिक मिला हुआ है या काँच मिला हुआ है, वे वस्त्र और तरह से तोड़ते हैं। जिस व्यक्ति को ब्रह्माण्ड से संयुक्त होना है, उसके लिए किसी तरह के भी वस्त्र बाधा बन जाएँगे। महावीर की नग्नता उनके ज्ञान का हिस्सा है, चरित्र का हिस्सा नहीं है। उनको यह साफ समझ में पड़ रहा है कि उन्हें जो कुछ अभिव्यक्त करना है वह ब्रह्माण्ड से एक होकर ही किया जा सकता है।

जैसे हम जानते हैं कि कितनी छोटी-छोटी चीजों से फर्क पड़ता है। आप एक रेडियो लगाए हुए हैं। सब दरवाजे बन्द कर दें, हवा बिल्कुल न आए, एयर कण्डीशन कमरा हो तो आपका रेडियो बहुत मुश्किल से पकड़ने लगेगा क्योंकि जो लहरें आ रही हैं उन पर बाधा पड़ रही है। एयर कण्डीशन कमरे में उसको काम करना मुश्किल हो जाएगा क्योंकि हवा बाहर से नहीं आ रही है, सब बन्द है। सम्पर्क बाहर की तरंगों से टूट गया है। जितने खुले में आप रख रहे हैं उतना उसका सम्पर्क बन रहा है। या तो उसे खुले में रखें या एक एरियल बाहर खुले में लगाएँ ताकि एरियल पकड़े और भीतर तक खबर पहुँचा दे। समझ लो कि हमें कोई ज्ञान न हो रेडियो शास्त्र का तो हम कहेंगे कि यह क्या बात है? रेडियो को बाहर रखने की क्या जरूरत है, एरियल को बाहर लटकाने की क्या जरूरत है? अपने घर में रखो, अपने घर में अन्दर एरियल लगा लो, सब तरफ द्वार दरवाजे बन्द कर लो।

मनुष्य के शरीर से प्रतिक्षण कम्पन बाहर जा रहे हैं और प्रतिक्षण कम्पन भीतर आ रहे हैं। महावीर नग्न होकर एक तरह का तादात्म्य साध रहे हैं उस सारे जगत् से जहाँ वस्त्र भी बाधा बन सकता है। वस्त्र बाधा बनता है और प्रत्येक वस्त्र अलग तरह की बाधा और सुविधा देता है। जैसे रेशमी वस्त्र हैं। अब आपको यह जानकर हैरानी होगी कि यह जो रेशमी वस्त्र है, वह जल्दी आपके शरीर में कामवासना को पहुँचाता है बजाय सूती वस्त्र के। रेशमी वस्त्र पहने हुए स्त्री ज्यादा काम को उत्तेजित करेगी। उसी स्त्री को सूती या खादी पहना दो तो वह काम को कम उत्तेजित करेगी। रेशमी वस्त्र उसके शरीर से और शरीर के चारों तरफ से जो कामवासना की लहरें चल रही हैं, उनको जल्दी से जल्दी पकड़ रहा है। यह स्त्रियों को बहुत पहले समझ में आ गया है कि रेशमी वस्त्र किस तरह उपयोगी है।

ऊनी वस्त्र बहुत अद्भुत हैं। आप देखते हैं कि सूफी फकीर ऊन का वस्त्र ही पहनते हैं। सूफ का मतलब ऊन होता है। जो ऊन के कपड़े पहनते हैं उन्हें सूफी कहते हैं। गरमी में भी, सर्दी में भी लपेटे हैं कम्बल को क्योंकि ऊनी वस्त्र सब तरह की लहरों से संरक्षित करता है। वह ठंड में उपयोगी होता है। वह गरम नहीं है। वह सिर्फ आपके शरीर की गर्मी को बाहर नहीं जाने देता। ऊनी वस्त्र में गर्मी जैसी कोई चीज नहीं है। सिर्फ आपका शरीर जो गर्मी को प्रवाहित करता है प्रतिपल, वह उसको बाहर नहीं निकलने देता। गर्मी उसके बाहर नहीं हो पाती, वह भीतर ही रुक जाती है। बस वह भीतर रुकी हुई गर्मी ऊनी वस्त्र को गर्म बना देती है। ऊनी वस्त्र में गर्म होने जैसा कुछ भी नहीं है। सिर्फ आपके ही शरीर की गर्मी को बाहर नहीं होने देता और रोक देता है। सूफी सैकड़ों वर्षों से ऊनी वस्त्र का उपयोग कर रहे हैं। अनुभव यह है कि न केवल गर्मी को बल्कि और तरह के सूक्ष्म अनुभवों को भी ऊनी वस्त्र रोकने में सहयोगी होता है। जिन लोगों को किसी गुह्य (एसोटेरिक) विज्ञान में काम करना हो उनके लिए ऊनी वस्त्र बहुत उपयोगी है। वह कुछ चीजों को बिल्कुल भीतर रोक सकता है, जिनको वह प्रकट न करना चाहे।

महावीर की नग्नता उनके ज्ञान का हिस्सा है, चरित्र का नहीं। लेकिन जो लोग चरित्र का हिस्सा समझकर नग्न खड़े हो जाते हैं, वे बिल्कुल पागल हैं। वे तो कुछ लहरें हैं जिसे पहुँचाना चाहते हैं सारे लोक में। वह नग्न स्थिति में ही पहुँचाई जा सकती है। अगर शरीर में उनकी तरंगें पैदा होती हैं तो नग्न स्थिति में पूरी की पूरी हवाएँ उन लहरों को लेकर यात्रा कर जाती हैं। कपड़ों में वे लहरें भीतर रह जाती हैं। ऊनी वस्त्रों में बिल्कुल भीतर रह जाती हैं। सूफी यह सब जानकर कह रहे हैं; महावीर भी जानकर नग्न खड़े हुए हैं। लेकिन उस युग की चरित्र-व्यवस्था नग्न खड़े होने की सुविधा देती थी। हर युग में महावीर नग्न खड़े नहीं हो सकते क्योंकि जिस काम के लिए खड़े हो रहे हैं अगर उस काम में बाधा पड़ जाए नग्न खड़े होने से तो नग्न होना व्यर्थ हो जाएगा। जैसे आज अगर न्यूयार्क में पैदा हों तो वे नग्न खड़े नहीं हो सकते। बम्बई में भी नग्न खड़े होना मुश्किल है। नग्न आदमी को सड़क पर निकलने के लिए गवर्नर की अनुमति चाहिए। या फिर उसके भक्त उसको घेर कर चलें। वह बीच में रहे। चारों तरफ भक्त घेरे रहें ताकि जिनको नग्न नहीं देखना, वे न देख पाएं। न्यूयार्क में नग्न व्यक्ति बिल्कुल पकड़ लिया जाएगा, बंद कर दिया जाएगा। काम की बात अलग रही, काम में बाधा पड़ जाएगी।

तो कुछ और रास्ते खोजने पड़ेंगे। नई परिस्थिति में नए रास्ते खोजने पड़ेंगे। पुराने रास्ते काम नहीं देंगे।

उस वक्त हिन्दुस्तान में नग्नता बड़ी सरल बात थी। एक तो ऐसे ही आम आदमी अर्द्धनग्न था, एक लंगोटी लगाए हुए था। नग्नता में कुछ बहुत ज्यादा नहीं छोड़ना पड़ता था जैसा हम सोचते हैं अक्सर। वह तो राजपुत्र थे इसलिए सब कपड़े थे। बाकी आदमी के पास कपड़े कहाँ थे? एक लंगोटी बहुत थी। आम आदमी भी लंगोटी उतार कर स्नान कर लेता था। नग्नता बड़ी सरल, एकदम सहज बात थी। उसमें कुछ असहज जैसा नहीं था कि कोई बात नई हो रही है। हिस्सा तो ज्ञान का था, परिस्थिति मौका देती थी। और ज्ञानवान् आदमी वह है, जो ठीक परिस्थिति के मौके का पूरा से पूरा, ज्यादा से ज्यादा उपयोग कर सके। वही ज्ञानवान् है, नहीं तो नासमझ है। यानी सिर्फ नंगे की जिद्द कर ले और सब काम में रुकावट पड़ जाए, कोई मतलब नहीं है उसका। काम के लिए कोई और रास्ते खोजने पड़ेंगे।

प्रश्न : कल आपने कहा था कि महावीर पिछले जन्म में सिंह थे और उन्हें पिछले जन्म में अनुभूति हुई। तो क्या प्राणिमात्र को उस अवस्था की अनुभूति हो सकती है? या उनको अनुभूति उनके मनुष्य जन्म में हुई?

उत्तर : हाँ, मैंने 'पिछले जन्म' जो कहा, सीधे उसका यह मतलब नहीं कि उसके पहले जन्म में। अनुभूति होना बहुत मुश्किल है दूसरे प्राणिजगत् में। हो सकता है किन्तु बहुत कठिन है। कठिन तो मनुष्य योनि में भी है; सम्भव तो दूसरी योनि में भी है। लेकिन अत्यधिक कठिन है, असम्भव के करीब है। मनुष्य योनि में असम्भव के करीब है। कभी ही किसी को हो पाती है। पिछले जन्मों से मेरा मतलब अतीत जन्मों से है। महावीर को सत्य का जो अनुभव हुआ है वह तो मनुष्य जन्म में ही हुआ होगा। लेकिन सम्भावना का निषेध नहीं है। आज तक ऐसा ज्ञात भी नहीं है कि कोई पशु योनि में मुक्त हुआ हो। लेकिन निषेध फिर भी नहीं है। यानी यह कभी हो सकता है। और यह तब हो सकेगा जब मनुष्य योनि बहुत विकसित हो जाए—इतनी ज्यादा कि मनुष्य योनि में मुक्ति बिल्कुल सरल हो जाए। तब सम्भव है कि जो अभी स्थिति मनुष्य योनि की है, वह पिछली निम्न योनियों की हो जाए। मेरा मतलब है कि अभी मनुष्ययोनि में ही असम्भव की स्थिति है। कभी करोड़ दो करोड़, अरब दो अरब, आदमियों में एक आदमी उस स्थिति को उपलब्ध होता है। कभी ऐसा वक्त आ सकता है, और आना चाहिए विकास के दौर में जबकि मनुष्य

की योनि में बड़ी सरल हो जाए यह बात तो इससे नीचे की योनियों में भी एक-दो घटनाएँ होने लगें। मगर अब तक मनुष्ययोनि को छोड़कर किसी दूसरी योनि में नहीं घटी हैं।

प्रश्न : देवतायोनि में ?

उत्तर : देवतायोनि में कभी नहीं हो सकतीं। पशुयोनि में कभी हो सकती हैं। निषेध नहीं है लेकिन देवयोनि में बिल्कुल निषेध है। निषेध का कारण है कि देवयोनि में एक तो शरीर नहीं है वहाँ किसी तरह का। दूसरा, देवयोनि मनोयोनि है। इस वजह से जैसे पशुयोनि में चेतना का अभाव है वैसे देवयोनि में शरीर का अभाव है। और शरीर भी साधना में अनिवार्य कड़ी है। उसके बिना साधना करना बहुत मुश्किल है, असम्भव है। जैसे पशु में बुद्धि न होने से मुश्किल हो गई है, ऐसा देव में शरीर न होने से मुश्किल हो गई है। लेकिन पशु में कभी भी बुद्धि विकसित हो सकती है, मगर देव में कभी शरीर विकसित नहीं हो सकता। वह अशरीरयोनि है। देव को जब मुक्ति होती है तब उसको फिर मनुष्य योनि में वापस लौटना पड़ता है। यानी अब तक जो मुक्ति का द्वार रहा है वह मनुष्य योनि के अतिरिक्त कोई योनि नहीं है। पशुओं को मनुष्य तक आना पड़ता है और देवताओं को पुनः मनुष्य तक लौटना पड़ता है। इसलिए मैंने कल रात कहा था कि मनुष्य चौराहे पर खड़ा है। जैसे कि मैं आपके घर तक गया चौराहे से, फिर मुझे दूसरी तरफ जाना है तो मैं फिर चौराहे तक वापस आऊँगा। तो देवयोनि बड़ी सुखद है, पशुयोनि बड़ी दुखद है। सुखद जरूर है वह देवयोनि लेकिन सुख अपने तरह के बन्धन रखता है, दुःख अपने तरह के बंधन रखता है। और सुख से भी ऊब जाती है स्थिति जैसे वह दुख से ऊब जाती है।

बड़े मजे की बात है यह कि अगर बहुत सुख में कोई आदमी हो तो वह अपने हाथ से दुःख पैदा करना शुरू कर देता है। अब जैसे कि अमेरिका से आते हुए बीटल हैं, हिप्पी हैं। ये सब सुखी घरों के लड़के हैं, अत्यन्त सुखी घरों के लड़के हैं। अब उन्होंने दुःख अपनी तरफ से पैदा करना शुरू कर दिया है क्योंकि सुख उबाने वाला हो गया है। मुझे बनारस में एक हिप्पी मिला। वह सड़क पर भीख माँग रहा था। करोड़पती घर का लड़का है, वह दस पैसे माँग रहा है और प्रसन्न है। झाड़ के नीचे सो जाएगा दस पैसे माँग कर, कहीं होटल में खाना खा लेगा। प्रसन्न है। क्यों प्रसन्न है ? वह सुख भी उबाने वाला हो गया है जहाँ सब सुनिश्चित है। सब सुबह वक्त पर मिल जाता है, साँझ

वक्त पर मिल जाता है, और वह सो जाता है। सब सुनिश्चित है तो आदमी को कोई मौका नहीं रहा जिन्दगी अनुभव करने का वह सब तोड़कर बाहर आ जाएगा।

देवता बहुत सुख में हैं लेकिन सुख ऊबाने वाला है। और हैरानी की बात है कि सुख दुःख से ज्यादा ऊबाने वाला है। इसलिए दुखी आदमी को ऊब में आप कभी नहीं पाएँगे। गरीब आदमी आपको ऊबा हुआ नहीं मिलेगा। अमीर आदमी ऊबा हुआ मिलेगा। गरीब आदमी परेशान मिलेगा, ऊबा हुआ नहीं। लेकिन जिन्दगी में उसको रस होगा। अमीर आदमी को रस भी नहीं होगा जिन्दगी में।

देवताओं के जगत् में ऊब सबसे ज्यादा उपद्रव है, मनुष्यों के जगत् में चिन्ता सबसे ज्यादा उपद्रव है। और यह जानकर आप हैरान होंगे कि कोई पशु कभी ऊब में नहीं होगा। आप किसी कुत्ते को ऊबा हुआ नहीं देखेंगे, कोई पक्षी आपको ऊबा हुआ नहीं दिखेगा। न चिन्तित है, न ऊबा है क्योंकि चेतना ही नहीं है। जो बोध होना चाहिए इन चीजों का, वही नहीं है। गरीब आदमी चिन्तित मिलेगा; अमीर आदमी ऊबा हुआ मिलेगा। ऊब ही उसकी चिन्ता है। तो देवताओं के जगत् में ऊब सबसे बड़ी समस्या है। चूँकि शरीर नहीं है, मन की इच्छा करते ही पूरी हो जाती है। आपको कल्पना ही नहीं हो सकती कि आप मन में इच्छा करें और वह तत्काल पूरी हो जाए। तो आप दो दिन बाद इतने ऊब जाएँगे, जिनका कोई हिसाब नहीं। क्योंकि आपने जो औरत चाही वह हाजिर हो गई, आपने जो भोजन चाहा वह हाजिर हो गया, जो मकान चाहा वह बन गया। और कुछ भी न करना पड़ा। 'चाह' काफी थी। चाह की आपने और वह पूरी हो गई। आप दो दिन बाद इतने घबड़ा जाएँगे कि कहेंगे 'इतनी जल्दी नहीं, यह तो सब व्यर्थ हुआ जा रहा है।' क्योंकि पाने का जो रस था, वह चला गया। उपलब्ध करने का, जीतने का, प्रतीक्षा करने का जो रस था, वह सब चला गया। वहाँ कुछ भी नहीं है। न प्रतीक्षा है, न उपलब्धि के लिए श्रम है, न चेष्टा है, न कुछ और है। आप बैठे हैं। आपने जो चाहा वह हो गया। अमीर आदमी इसलिए ऊब जाता है कि वह बहुत सी चीजें चाहता है और वे तत्काल पूरी हो जाती हैं। गरीब आदमी नहीं ऊबता है क्योंकि वह चाहता है अभी, और पचास साल बाद पूरी हो पाती हैं तो पचास साल वह रस में रहता है अब पूरी होंगी, अब पूरी होंगी।

देवयोनि सुख की है लेकिन ऊब की है। मनुष्य अभी तक चौराहे पर खड़ा है जहाँ से किसी को लौटना पड़े। इसलिए मनुष्य को मैं योनि नहीं कहता। वह चौराहा है। पशु उधर आते हैं। देवता उधर आते हैं। सब उधर आते हैं। पौधे वहाँ आते हैं, पत्थर वहाँ आते हैं, सब वहाँ आते हैं। वह चौराहा है। कुछ लोग ऐसे हैं जो चौराहे पर ही रुके रहने का तय कर लेते हैं। तो वे चौराहे पर ही रुके रहते हैं। कुछ लोग ऐसे हैं जो कोई रास्ता चुन लेते हैं। वे देवता की तरफ भी जा सकते हैं, मुक्ति की तरफ भी जा सकते हैं।

प्रश्न : वापस नहीं लौट सकते हैं ?

उत्तर : वापस नहीं लौट सकते। उसका कारण है। क्योंकि जो भी हमने जान लिया, जी लिया उसमें पीछे लौटने का उपाय नहीं रह जाता। जो आपने जान लिया उसको आप अनजाना नहीं कर सकते। उसे अनजाना करने का मामला असम्भव है। और आपकी चेतना जितनी विकसित हो गई, उससे नीचे उसे नहीं गिरा सकते। जैसे कि एक बच्चा पहली कक्षा में पढ़ता है तो वह दूसरी कक्षा में जा सकता है। पहली कक्षा में रुक सकता है लेकिन नीचे नहीं उतर सकता। दूसरी कक्षा में पढ़ता है, फेल हो जाए तो वह दूसरी में रुक सकता है, पास हो जाए तो तीसरी में जा सकता है। लेकिन पहली में उतरने का कोई उपाय नहीं ? पहली पास हो चुका। पहली में वापिस जाने का कोई उपाय नहीं। हम तो कर भी सकते हैं उपाय क्योंकि स्कूल हमारी कृत्रिम व्यवस्था है। लेकिन जीवन की जो व्यवस्था है, उसमें यह असम्भव है। जहाँ से हम पार हो गए, उत्तीर्ण हो गए, वहाँ वापस लौटना नहीं।

प्रश्न : शास्त्रों में ऐसा कैसा लिखा है कि अन्य योनियों में रहना पड़ता है मनुष्य को ?

उत्तर : सिर्फ आपको भयभीत करने के लिए।

प्रश्न : तादात्म्य के सम्बन्ध में मैं अब तक ऐसा ही समझता रहा कि जिस व्यक्ति को ज्ञान होता है उसका तादात्म्य सम्पूर्ण जगत् से युगपत् हो जाता है, ऐसा नहीं कि स्थावर से कर लिया तो चेतना से नहीं, चेतना से कर लिया तो स्थावर से नहीं। पर आप के कहने से ऐसा लगा जैसे महावीर का तादात्म्य जब जड़ के साथ है, वृक्ष के साथ है तो मनुष्य के साथ नहीं है। अन्यथा जब उनके कान में जो व्यक्ति कीले ठोक रहा था, वह कीले न ठोकता। तो मैं यही मान रहा था अब तक कि तादात्म्य जब होता है तब युगपत् सबके साथ हो जाता है, एक-एक के साथ अलग-अलग नहीं होता है।

उत्तर : बिल्कुल ठीक। जब पूर्ण तादात्म्य होता है तो युगपत् हो जाता है। लेकिन वह मोक्ष में ही होता है। और जो मैंने कहा कि महावीर उन लोगों में से हैं जो परिपूर्ण मोक्ष पाने के पहले वापस लौट आए हैं। वह तादात्म्य तो होता है लेकिन तब महावीर मिल जाते हैं। पूर्ण तादात्म्य में फिर महावीर नहीं रह जाते हैं। और संदेह पहुँचाने का भी उपाय नहीं रह जाता। इसलिए जो मुक्त हो जाता है वह परमात्मा का हिस्सा हो जाता है। परमात्मा कोई संदेश नहीं पहुँचाता आपको। उसका तादात्म्य आप से है। सन्देश पहुँचाने के लिए महावीर लौट आए हैं वापिस। ज्ञान पूरा हो गया है लेकिन अभी डूब नहीं गए हैं सागर में। जैसे एक नदी पहुँच गई है सागर के किनारे और डूबने के पहले ही लौटकर एक आवाज देती है। जिब्रान ने इस प्रतीक का उपयोग किया है कि मैं उस नदी की जाति हूँ जो सागर में गिरने के करीब पहुँच गई है और इसके पहले कि सागर में गिर जाऊँ उन सबका स्मरण आता है जो मार्ग में पीछे छूट गए हैं। वे पथ, वे पहाड़, वे झीलें, वे तट, क्या एक बार लौट कर देखने की आज्ञा न मिलेगी ? इसके पहले कि सागर से गिर जाऊँ एक बार लौट कर देख लूँ उन सबको, जिनके साथ मैं रहा और अब कभी नहीं होऊँगा।

उस क्षण पर महावीर पहुँच गए हैं, जहाँ से आगे सागर है, जहाँ पूर्ण तादात्म्य हो जाएगा, जहाँ महावीर नहीं रह जाएँगे जैसे नदी सागर में खो जाएगी। खबर पहुँचानी है तो उसके पहले। फिर खबर पहुँचाने का कोई उपाय नहीं है। किसको खबर पहुँचानी है, कौन पहुँचाएगा ? इसलिए मैंने कहा कि तीर्थंकर का मतलब है ऐसा व्यक्ति जो मोक्षद्वार से एक बार वापस लौट आया है उसके लिए जो पीछे रह गए हैं और उनको खबर देने आया है। इस हालत में तादात्म्य सबसे नहीं होता है। वह जिससे तादात्म्य चाहेगा और व्यवस्था बनाए रहा तादात्म्य की तो तादात्म्य हो जाएगा। वह युगपत् नहीं होगा। वह एक विशिष्ट दिशा में एक साथ एक बार होगा। दूसरी दिशा में दूसरी बार होगा। तीसरी दिशा में तीसरी बार होगा। मोक्ष में तो युगपत् हो जाएगा।

प्रश्न : उनका कोई व्यक्तित्व इस समय है या नहीं ?

उत्तर : मोक्ष होते ही किसी व्यक्ति का कोई व्यक्तित्व नहीं रह जाता लेकिन हमारा व्यक्तित्व है जो हम अमुक्त हैं। असल में हमारी कठिनाई यह है कि हम एक ही तरह के व्यक्तित्व को जानते हैं। व्यक्तित्व शरीर का है, मन का है। एक व्यक्ति खो गया अनन्त में। है मौजूद। अनन्त होकर मौजूद

है। आप तो सीमित हैं। अगर आप सागर के तट पर भी आएँगे तो भी चुल्लू भर पानी भर सकते हैं। लेकिन जो नदी सागर में खो गई है उसका पता लगाना मुश्किल है कि वह कहाँ खो गई है। गंगा गिर गई है सागर में। लेकिन गंगा का कण-कण मौजूद है सागर में। वह खो गई है सागर में, मिट नहीं गई। जो था वह तो अब भी है। सीमा की जगह असीम हो गया है। ऐसी कुछ विधि है कि सागर के तट पर जब आप खड़े होकर गंगा को पुकारें तो वे अणु जो अनन्त सागर में खो गए हैं उस तट पर इकट्ठे हो जाएँगे। आप चुल्लू भर गंगा ले सकते हैं सागर से। मैं उदाहरण के लिए कह रहा हूँ। यह पुकार है आपकी अणुओं को क्योंकि अणु कहीं खो नहीं गया है। वह सब सागर में मौजूद है। क्या कठिनाई है कि पुकार पर वे अणु आपके पास चले न आएँ और गंगा का चुल्लू भर पानी आपको सागर से मिल जाए। कठिनाई नहीं है। इसी तरह चेतना के महासागर में महावीर जैसा व्यक्ति खो गया है। लेकिन खोने के पहले ऐसा प्रत्येक व्यक्ति कुछ ऐसे संकेत छोड़ जाता है जो कभी भी उस अनन्त के किनारे खड़े होकर पुकारे जाएँ तो उसके अणु आपको उत्तर देने के लिए समर्थ हो जाएँगे। इस सबकी पूरी-पूरी अपनी टेकनीक है।

जैसे आपने कभी रास्ते पर देखा होगा कि एक आदमी खेल दिखा रहा है। एक लड़के की छाती पर ताबीज रख दिया है, लड़का बेहोश हो गया है और वह पूछता है कि अब आपकी घड़ी में कितना बजा है? लड़का बताता है। वह आपके नोट का नम्बर बताता है, वह आपका नाम बताता है, और फिर वह मदारी ताबीज बेचना शुरू कर देता है कि यह छः-छः आने के ताबीज हैं। और ताबीज की यह शक्ति है जो आप देख रहे हैं अपनी आँखों के सामने। आपको भी लगता है कि ताबीज की बड़ी भारी शक्ति है। छः आने देकर आप ताबीज खरीद लेते हैं। घर आते हैं। आप कुछ भी करिए, ताबीज से कुछ भी नहीं होगा। क्योंकि ताबीज की शक्ति ही न थी। मामला बिल्कुल दूसरा था। उस लड़के को बेहोश करके बहुत गहरी बेहोशी में कहा गया है कि जब भी यह ताबीज तेरी छाती पर रखेंगे तू बेहोश हो जाएगा। इसको कहते हैं पोस्ट हिपनाटिक सजेशन। अभी बेहोश है वह। अभी उसको कह रहे हैं : यह ताबीज पहचान ले ठीक से। आँख खोल! वह बेहोश है। इतनी चौड़ाई का यह लाल रंग का ताबीज जब भी तेरी छाती पर हम रखेंगे तू तत्काल बेहोश हो जाएगा। ऐसा महीनों उसको बेहोश किया जाता है और वह ताबीज बता कर उसके मन में यह सुझाव बैठाया जाता है।

वह तावीज संकेत हो गया। जैसे ही उसकी छाती पर रखा कि वह बेहोश हो गया। अब उसको सबके सामने बेहोश नहीं करना पड़ता, नहीं तो बेहोश करने में वक्त लगता है। बेहोश करने की शिक्षा पहले दे दी है। और तावीज से एसोसिएशन जोड़ दिया है उसका। अब तावीज जब भी छाती पर रखेंगे, वह बेहोश हो जाएगा। बेहोश होने से ही वह फैल गया सब में। अब वह वहीं से पढ़ सकता है आपके खीसे के नोट के नम्बर। क्योंकि चेतना बहुत फैली हुई है नीचे। इधर छोटे से चेहरे से दिखाई पड़ रही है, उधर पीछे फैलती चली गई है। अगर यहाँ से बेहोश कर दी जाय तो वह वहाँ पूरे से सम्बन्ध जोड़ लेगी। जैसा इस बेहोश के साथ तावीज का सम्बन्ध जोड़ा गया है, ऐसा प्रत्येक शिक्षक जो पीछे भी उपयोगी होना चाहता है और जो उसके पीछे भी उसका सहयोग, मार्ग-दर्शन चाहेंगे वह उनके लिए व्यवस्थित सूत्र छोड़ जाता है कि इन सूत्रों का प्रयोग करने से मैं पुनः उपस्थित हो जाऊँगा।

दक्षिण में एक योगी था—ब्रह्मयोगी। अभी कुछ वर्ष पहले ब्रंटन उससे आकर मिला। तो उसने अपना एक फोटो दिया ब्रंटन को। उसने कहा : मैं आपको गुरु बना लेता हूँ लेकिन मैं तो लंदन चला जाऊँगा। उसने कहा इससे क्या फर्क पड़ता है। लंदन कोई बहुत दूर तो नहीं। तुम यह फोटो ले जाओ। तुम इस भाँति इस आसन में बैठकर, इस तरह इस फोटो को रखकर एक-दो मिनट एकाग्र होकर फोटो को देखना। और तुम्हें जो प्रश्न पूछना हो, पूछना। उत्तर तुम्हें आ जाएगा। ब्रंटन बहुत हैरान हुआ कि यह कैसे होगा लेकिन वह सारी व्यवस्था की जा सकती है। उसने कुछ प्रश्न पूछे। उत्तर एकदम आ गया उसी ध्वनि में, उसी शब्दावली में जिसमें ब्रह्मयोगी बोलता है। उसने वह सब लिख रखा जब भी उसने जो जो पूछा। पीछे आकर उसने ब्रह्मयोगी को पूछा कि मैंने एक दफा यह पूछा था, आपने क्या कहा था। तो जो उसने लिखा था उसने बताया कि 'मैंने' यह कह दिया था। अब यह ऐसा उपाय है जिससे काल और क्षेत्र मिट जाते हैं, और सम्बन्ध हो जाता है।

जो लोग बिल्कुल खो गए हैं अनन्त में, वे ही पीछे उपाय छोड़ जाते हैं। सभी नहीं छोड़ जाते। वह उनकी मर्जी पर निर्भर है कि वे छोड़ें या न छोड़ें। कोई शिक्षक कुछ भी नहीं छोड़ जाते, कोई शिक्षक कुछ छोड़ जाते हैं। महावीर निश्चित छोड़ गए हैं कि इस उपाय से सम्बन्ध स्थापित हो सकेगा। महावीर का कोई व्यक्तित्व नहीं बनता लेकिन उस अनन्त से उत्तर आ जाता है। इसलिए मैंने कहा कि महावीर से अभी भी सम्बन्ध स्थापित हो सकता है। कुछ शिक्षकों

से सम्बन्ध स्थापित होना असम्भव है जैसे जरथुस्त्र। उससे कोई सम्बन्ध स्थापित नहीं हो सकता क्योंकि उसने कोई उपाय नहीं छोड़ा है। उसकी अपनी समझ है। वह कहता है कि पुराने शिक्षक की क्यों फिक्र करनी। नए शिक्षक आते रहेंगे, तुम उनसे सम्बन्ध बनाना। जरथुस्त्र से क्या लेना-देना। उसकी अपनी समझ है। महावीर की अपनी समझ है, वह यह कि क्या फिक्र तुम्हें, मैं ही काम पड़ सकता हूँ, मेरा उपयोग किया जा सकता है।

यह अपनी समझ की बात है। सम्बन्ध बिल्कुल स्थापित किए जा सकते हैं लेकिन जो शिक्षक उपाय छोड़ गया हो उसी से।

प्रश्न : महावीर के बाद किसी को इस सांकेतिक भाषा (कोड वर्ड) का पता है ?

उत्तर : हाँ, पता है लेकिन यह पता नहीं कि यह काहे के लिए है और इसकी क्या विधि है। यानी जैसे मैं आपको लिखकर दे जाऊँ, कुछ दिन तक उसका उपयोग होता रहे, शास्त्र न लिखे जाएँ। मगर जब उपयोग छूट जाएगा या कुछ लोग खो जाएँगे जो जानते थे तब झगड़े चलेंगे। झगड़े तो पीछे चलते ही हैं क्योंकि फिर पूछना मुश्किल हो जाता है।

प्रश्न : आज महावीर से सम्पर्क बनाने वाला कोई नहीं है ?

उत्तर : नहीं, कोई नहीं है, मगर सम्पर्क आज भी हो सकता है। उनकी परम्परा में कोई नहीं है लेकिन और लोगों ने सम्पर्क स्थापित किए हैं महावीर से। कुछ लोग निरन्तर श्रम कर रहे हैं। ब्लावटस्की ने करीब-करीब सभी शिक्षकों से सम्बन्ध स्थापित करने की कोशिश की है। उनमें महावीर भी एक शिक्षक हैं।

ब्लावटस्की एक रूसी महिला है। थियोसॉफिकल सोसाइटी की जन्मदात्री है। और उसके साथ अल्काट ने भी सम्बन्ध स्थापित किए हैं, एनी बीसेंट ने भी। ये सब मर चुके हैं। थियोसॉफी में आज कोई ऐसा नहीं रहा है। वह स्रोत सूख गया है। लेकिन थियोसॉफिस्टों ने हजारों साल बड़ी मेहनत की और जो बड़े से बड़ा काम किया वह यह कि सारे पुराने शिक्षकों से सम्बन्ध स्थापित किया, ऐसे शिक्षकों से भी जिनकी कोई किताब भी नहीं बची थी।

प्रत्येक शिक्षकों से सम्बन्ध स्थापित करने की अलग-अलग विधियाँ हैं। कुछ से सम्बन्ध स्थापित नहीं हो सकता है। या तो विधि ठीक नहीं है या करने

वाला ठीक नहीं कर पा रहा है। मैं चाहता हूँ कि इधर कुछ लोग उत्सुक हों तो बराबर इस विधि पर काम करवाया जाए। इसमें कोई कठिनाई नहीं है।

प्रश्न : महावीर के सम्बन्ध में आप जो कुछ कह रहे हैं वह बहुत मुश्किल और रहस्यवादी बनता चला जा रहा है। ऐसा जो सामान्य व्यक्ति की समझ में आ जाए और करने लायक भी हो महावीर का वह सन्देश कहें। क्योंकि यह जो आप कह रहे हैं बहुत ही थोड़े लोगों के पल्ले पड़ने वाली बात है।

उत्तर : बात ही ऐसी है। असल में जिन्हें भी करना है, उन्हें असाधारण होने की तैयारी दिखानी पड़ती है। कोई सत्य साधारण होने को कभी तैयार नहीं है। व्यक्तियों को ही असाधारण होकर उसे झेलना पड़ता है और सत्य को साधारण किया तो असत्य से भी बदतर हो जाता है। यानी सत्य उतर कर तुम्हारे मकान के पास नहीं आएगा। तुम्हें ही जाकर सत्य की चोटी तक पहुँचना होगा और सत्य अगर आ गया तुम्हारे मकान तक तो बाजार में बिकने वाला हो जाएगा। उसका कोई मूल्य नहीं रहेगा।

६

प्रवचन

महावीर ने जो जाना उसे जीवन के भिन्न-भिन्न तलों तक पहुँचाने की अथक चेष्टा की है। कल हम सोचते थे कि मनुष्य के नीचे जो मूक जगत् है उस तक महावीर ने कैसे संवाद किया ? कैसे वह प्रतिध्वनित किया जो उन्हें अनुभव हुआ ? दो बातें छूट गई थीं वह विचार कर लेनी चाहिए। एक तो मनुष्य से ऊपर के लोक की है। उन लोगों तक महावीर ने कैसे बात पहुँचाई और मनुष्य तक पहुँचाने के उन्होंने क्या-क्या उपाय खोजे। देवलोक तक बात पहुँचानी सर्वाधिक सरल है। मगर देव जैसी कोई चीज की स्वीकृति हमें बहुत कठिन मालूम पड़ती है। जो हमें दिखाई पड़ता है हमारे लिए वही सत्य है। जो नहीं दिखाई पड़ता है, वह असत्य हो जाता है। और देव उस अस्तित्व का नाम हैं जो हमें साधारणतः दिखाई नहीं पड़ता लेकिन थोड़ा-सा भी श्रम किया जाए तो उस लोक के अस्तित्व को भी देखा जा सकता है। उससे सम्बद्ध भी हुआ जा सकता है। साधारणतः यह ख्याल है कि देव कहीं और, प्रेत कहीं और, हम कहीं और जगह पर रहते हैं। यह बात एकदम ही गलत है। जहाँ हम रह रहे हैं, ठीक वहीं देव भी हैं और प्रेत भी हैं।

प्रेत वे आत्माएँ हैं जो इतनी निकृष्ट हैं कि मनुष्य होने की सामर्थ्य उन्होंने खो दी है और नीचे उतरने का कोई उपाय नहीं रहा है। वे एक कठिनाई में हैं। ऐसी आत्माएँ प्रतीक्षा करेंगी जब तक उन्हें योग्य देह उपलब्ध न हो जाए या उनके जीवन में परिवर्त्तन हो जाए, रूपान्तरण हो जाए और वे जन्म ग्रहण कर सकें। देव वे आत्माएँ हैं जो मनुष्य से ऊपर उठ गई हैं लेकिन उनमें मोक्ष को उपलब्ध करने की सामर्थ्य नहीं है। यह प्रतीक्षामय जीवन है। यह कहीं दूर दूसरी जगह नहीं, किसी चाँद पर नहीं, ठीक हमारे साथ है। और हमें

कठिनाई होती है कि अगर हमारे साथ है तो हमें स्पर्श करना चाहिए, हमें दिखाई पड़ना चाहिए। कभी-कभी हमें स्पर्श भी करती हैं और कभी-कभी किन्हीं छाहों में दिखाई भी पड़ती हैं। साधारणतः नहीं। क्योंकि हमारे होने के ढंग और उनके होने के ढंग में बुनियादी भेद है। इसलिए दोनों एक ही जगह मौजूद होकर भी, एक दूसरे को काटने, एक-दूसरे की जगह घेरने का काम नहीं करतीं। जैसे इस कमरे में दिए जल रहे हैं। और दियों के प्रकाश से कमरा भरा हुआ है; मैं आऊँ और एक सुगन्धित इत्र यहाँ छिड़क दूँ तो कोई मुझसे कहे कि कमरा प्रकाश से बिल्कुल भरा हुआ है, इत्र के लिए जगह नहीं है। इत्र पूरे कमरे में फैल कर सुगन्ध भर दे अपनी। प्रकाश भी भरा था कमरे में, सुगन्ध भी भर गई कमरे में। न सुगन्ध प्रकाश को छूती है, न प्रकाश सुगन्ध को छूता है। न एक-दूसरे को बाधा पड़ती है इससे कि कमरा पहले से भरा है। उन दोनों का अलग अस्तित्व है। प्रकाश का अपना अस्तित्व है, सुगन्ध का अपना अस्तित्व है। दोनों एक दूसरे को न काटते, न छूते। दोनों समानान्तर चलते हैं। फिर कोई तीसरा व्यक्ति आए और वीणा बजाकर गीत गाने लगे और हम उससे कहें कि कमरा बिल्कुल भरा हुआ है, वीणा बज नहीं सकेगी। प्रकाश पूरा घेरे हुए है, सुगन्ध पूरा घेरे हुए है। अब तुम्हारी ध्वनि के लिए जगह कहाँ है? लेकिन वह वीणा बजाने लगे और ध्वनि भी इस कमरे को भर ले। ध्वनि को जरा भी बाधा नहीं पड़ेगी इससे कि प्रकाश है कमरे में, कि गन्ध है कमरे में। क्योंकि ध्वनि का अपना अस्तित्व है, ध्वनि अपनी स्पेस पैदा करती है अलग, ध्वनि का अपना आकाश है, गन्ध का अपना आकाश है, प्रकाश का अपना आकाश है। प्रत्येक वस्तु और प्रत्येक अस्तित्व का अपना आकाश है और वे दूसरे को काटते नहीं।

इसलिए जब हमें यह सवाल उठते हैं कि कहाँ रहते हैं देवता, कहाँ जीते हैं प्रेत तो हम सदा ऐसा सोचते हैं कि 'हमसे कहीं दूर।' ऐसी बात ही गलत है। वे ठीक समानान्तर हमारे जी रहे हैं, हमारे साथ। और यह बड़ा उचित ही है कि साधारणतः वे हमें दिखाई नहीं पड़ते और साधारणतः हम उनके स्पर्श में नहीं आते हैं, नहीं तो जीवन बड़ा कठिन हो जाए। लेकिन किन्हीं घड़ियों में, किन्हीं क्षणों में वे दिखाई भी पड़ सकते हैं; उनका स्पर्श भी हो सकता है; उनसे सम्बन्ध भी हो सकता है। और महावीर या उस तरह के व्यक्तियों के जीवन में निरन्तर उनका सम्बन्ध और सम्पर्क रहा है। जिसे परम्पराएँ समझने में एकदम असमर्थ हैं। वे बातचीत ऐसे ही हो रही है जैसे दो व्यक्तियों के

बीच हो रही है—महावीर की, इन्द्र की या और देवताओं की। उसमें कहीं भी ऐसा नहीं है कि कोई कल्पनालोक में बात हो रही हो। यह अत्यन्त आमने-सामने बात हो रही है। और यह किसी एक के साथ ऐसा नहीं हो रहा है। बुद्ध के साथ भी वैसा हो रहा है, जीसस के साथ भी, मुहम्मद के साथ भी।

ऐसा प्रतीत होता है कि हमारे भीतर कुछ उनसे सम्बन्धित होने का मार्ग है लेकिन प्रसुप्त है। मनुष्य के मस्तिष्क का शायद एक तिहाई भाग काम कर रहा है। दो तिहाई भाग बिल्कुल काम नहीं करता। इससे वैज्ञानिक भी चिन्तित हैं। अगर हम एक आदमी की खोपड़ी को काटें तो एक तिहाई हिस्सा केवल सक्रिय हैं। बाकी दो-तिहाई हिस्सा बिल्कुल निष्क्रिय है। शरीर में और सब चीजें सक्रिय हैं। वैज्ञानिकों को यह ख्याल आना शुरू हुआ है कि यह दो तिहाई हिस्सा जीवन के किन्हीं तलों को स्पर्श करता होगा, अगर सक्रिय हो जाए। अब जैसे आपकी आँख देखती हैं क्योंकि आँख से जुड़ा हुआ मस्तिष्क का हिस्सा सक्रिय है। अगर वह हिस्सा निष्क्रिय हो जाए, आपकी आँख देखना बन्द कर देगी। यह भी हो सकता है कि आँख बिल्कुल ठीक हो लेकिन मस्तिष्क का वह हिस्सा, जिससे आँख सक्रिय होती है निष्क्रिय पड़ा हो तो बिल्कुल ठीक आँख नहीं देख सकेगी।

एक लड़की मेरे पास आती थी। उस लड़की का किसी से प्रेम था और घर के लोगों ने उस विवाह को इन्कार कर दिया और लड़की को उस युवक को देखने की भी मनाही कर दी। सख्त पाबन्दी लगा दी। उसे घर के भीतर बिल्कुल कैद कर दिया। वह लड़की दूसरे दिन अंधी हो गई। तब चिकित्सकों को दिखाया गया। उन्होंने जांच-पड़ताल की और कहा, आंख तो बिल्कुल ठीक है। लेकिन यह भी पक्का है कि उसे दिखाई नहीं पड़ता। वह मित्र मुझसे कहे कि बड़ी मुश्किल में हम पड़ गए। पहले तो हमने समझा कि वह सिर्फ धोखा दे रही है क्योंकि हमने उस पर रुकावट लगाई थी। लेकिन अब तो डाक्टर भी कहते हैं कि आँख ठीक है लेकिन उसे दिखाई नहीं पड़ रहा। मानसिक अंधापन है उसे। इसका मतलब यह है कि मस्तिष्क का वह हिस्सा जो आँख से जुड़कर आँख को दिखाने का काम करता है बंद हो गया है। जैसे ही उस लड़की को कहा कि जिसे वह प्रेम करती है वह उसे अब नहीं देख सकेगी, हो सकता है उसके मस्तिष्क को यह ख्याल आया हो कि अब देखने का कोई अर्थ ही नहीं। जिसे हम प्रेम करते हैं उसे ही न देख सकें तो अब देखने की भी क्या जरूरत है। और मस्तिष्क का वह हिस्सा बंद हो गया और आँख ने देखना बन्द कर दिया।

बहुत से प्राणी हैं, बहुत सी योनियां हैं, जिनके पास मस्तिष्क का वह हिस्सा है जो देख सकता है लेकिन निष्क्रिय है। तो उन प्राणियों में आंखें पैदा नहीं हो पाई हैं। ऐसे भी प्राणी हैं जिनके पास कान नहीं हैं। हिस्सा है जो सुन सकता है लेकिन निष्क्रिय है। इसलिए कान पैदा नहीं हो पाए। मनुष्य की पांच इन्द्रियां हैं अभी क्योंकि मस्तिष्क के पांच हिस्से सक्रिय हैं। शेष बहुत बड़ा हिस्सा निष्क्रिय पड़ा हुआ है। अब वैज्ञानिकों को भी ख्याल में आया है कि वह जो शेष हिस्सा निष्क्रिय पड़ा है उसमें से अगर कुछ भी सक्रिय हो जाए तो नई इन्द्रियां शुरू होंगी। अब जिस आदमी ने कभी प्रकाश देखा ही नहीं है वह कल्पना ही नहीं कर सकता कि प्रकाश कैसा है और जिसने ध्वनि नहीं सुनी वह कल्पना भी नहीं कर सकता की ध्वनि कैसी है ? हम समझ लें कि एक गांव हो जिसमें सब बहरे हों तो उस गांव में ध्वनि की चर्चा भी नहीं होगी। और अगर उन बहरों को कोई किताब मिल जाए जिसमें लिखा हो कि ध्वनि होती थी, या कहीं ध्वनि होती है तो वे सब हँसेंगे कि यह कैसी बात है। ध्वनि, यानी क्या ? ध्वनि कहां है—किस जगह है ? हम कहां ध्वनि को पकड़ें, कहां ध्वनि हमें मिलेगी ? उनके सब प्रश्न संगत होते हुए भी व्यर्थ होंगे।

हमारे मस्तिष्क के बहुत से हिस्से हैं जो निष्क्रिय हैं। और अगर वे सक्रिय हो जाएँ तो जीवन और अस्तित्व की अनन्त सम्भावनाओं से हमारे सम्बन्ध जुड़ने शुरू हो जाएंगे। जैसे कि तीसरी आंख की बात निरन्तर हम सुनते हैं। वह अगर सक्रिय हो जाए, वह हिस्सा जो हमारी दोनों आंखों के बीच का निष्क्रिय पड़ा है सक्रिय हो जाए तो हम कुछ ऐसी बातें देखना शुरू कर देंगे जिनकी हमें कल्पना ही नहीं है। हवाई जहाज में अगर आप बैठकर इंजन के पास गए हों तो आपने राडार देखा होगा जो सौ मील या डेढ़ सौ मील आगे तक के चित्र देता रहता है। इसलिए चालक को हवाई जहाज के भीतर बैठकर बाहर देखने की कोई जरूरत नहीं क्योंकि हवाई जहाज इतनी गति से जा रहा है कि अगर चालक देख भी ले कि सामने हवाई जहाज है तो भी उसे बचाया नहीं जा सकता टकराने से। क्योंकि जब तक वह बचाएगा तब तक वह टकरा ही जाएगा। गति इतनी तीव्र है। अब तो उसे डेढ़ सौ–दो सौ मील दूर की ही चीजें दिखाई पड़नी चाहिएं। दो सौ मील पर उसे दिखाई पड़े कि बादल हैं तो तभी वह बचा सकता है। और बचाते-बचाते वह दो सौ मील पार कर जाएगा, तभी वह बचा पाएगा, और बादल के आगे, नीचे या ऊपर हो जाएगा। तो राडार है जो दो सौ मील दूर से देख रहा है कि उसके दो सौ मील आगे

वर्षा हो रही है कि बादल जा रहे हैं कि हवाई जहाज है, कि दुश्मन है, कि क्या है ? वह सब चित्र आ रहा है।

मनुष्य की जो तीसरी आँख है, वह राडार से भी अद्भुत है। उसमें कोई स्थान और काल का सवाल ही नहीं। वहाँ दो सौ मील का सवाल नहीं है। वह एक बार सक्रिय हो जाए तो कहीं भी क्या हो रहा है उसके प्रति ध्यानस्थ होकर उस होने को तत्काल पकड़ सकती है। आगे क्या होगा, उसकी बहुत सी सम्भावनाएँ भी पकड़ी जा सकती हैं। पीछे क्या हुआ है, ये सम्भावनाएँ भी पकड़ी जा सकती हैं। मस्तिष्क का एक और हिस्सा है जो अगर सक्रिय हो जाए तो हम दूसरे के मन में क्या विचार चल रहे हैं, उनकी झलक पा सकते हैं। और हमारे मन में जो विचार चल रहे हैं अगर हम उन्हें बिना वाणी के दूसरे में डालना चाहें तो वह भी हो सकता है। सवाल है कि मस्तिष्क के हमारे और हिस्से कैसे सक्रिय हो जाएँ ? मस्तिष्क का एक हिस्सा है जो सक्रिय होने से देवलोक से जोड़ देता है। उस जुड़ जाने के बाद हम खुद भी मुश्किल में पड़ जाएँगे क्योंकि हम दूसरे को बता नहीं सकते कि यह हो रहा है।

स्विडनबोर्ग एक अद्भुत व्यक्ति हुआ। आठ सौ मील दूर एक मकान में आग लग गई है बारह बजे और वह किसी मित्र के घर ठहरा हुआ है। वह एकदम चिल्लाया है : पानी लाओ, आग लगी है, भागा और बाल्टी पर पानी लेकर आ गया। मित्रों ने कहा, 'कहाँ आग लगी है।' उसने कहा, 'अरे' बड़ी भूल हो गई।' बाल्टी नीचे रख दी। आग तो बहुत दूर लगी है। लेकिन जब मुझे दिखी तो मुझे ऐसा लगा कि यहीं लगी है। वह तो आठ सौ मील दूर लगी है। वह तो वियना में लगी है। फलाँ-फलाँ घर बिल्कुल जला जा रहा है। मित्रों ने कहा कि आठ सौ मील दूर का फासला है यहाँ से कैसे तुम्हें दिख सकता है ? उसने कहा : मुझे दिखता है बिल्कुल जैसे कि यहाँ आग लगी हो। मुझे दिख रहा है। तीन दिन लग गए खबर लाने में। लेकिन ठीक जिस जगह उसने बताया था वहीं तक आग लगी थी, आगे नहीं लगी थी। उसने देवताओं के सम्बन्ध में बहुत अद्भुत बातें कही हैं। यूरोप में देवलोक के बारे में जानकारी रखने वाला वह पहला आदमी है। उसने एक किताब लिखी : स्वर्ग और नरक। और यह बड़ी अद्भुत किताब है। इसमें उसने आँखों देखे वर्णन दिए हैं। लेकिन उन पर तो भरोसा करने की बात नहीं उठती क्योंकि हमारे लिए वह सब निरर्थक है।

स्विडनबोर्ग की जिन्दगी में और ऐसी घटनाएँ थीं जिनकी वजह से लोगों को मजबूर होना पड़ा कि जो वह कहता है ठीक होगा। यूरोप के एक सम्राट् ने उसे अपने घर बुलाया और कहा : मेरी पत्नी मर गई है। तुम उससे संबंध स्थापित करके मुझे कहो कि वह क्या कहती है ? उसने दूसरे दिन आकर खबर दी कि तुम्हारी पत्नी कहती है कि फलां-फलां अलमारी में ताला पड़ा है। चाबी उसकी खो गई है। वह तुम्हारी पत्नी के वक्त में ही खो गई थी, उसका ताला तोड़ना पड़ेगा। उसमें उसने तुम्हारे नाम एक पत्र लिखकर रखा है और उस पत्र में उसने ये-ये लिखा है। पत्नी को मरे पन्द्रह साल हो गए हैं। वह अलमारी कभी खोली नहीं गई। बड़ा सम्राट् है, बड़ा महल है। चाबी खोजी गई, चाबी नहीं मिल सकी। वह पत्नी के पास ही हुआ करती थी। फिर ताला तोड़ा गया है। निश्चित उसमें एक बंद लिफाफे में रखा हुआ पत्र मिला जो पन्द्रह साल पहले उसकी पत्नी ने लिखा था। उसे खोला गया और वही इबारत जो स्वीडनबोर्ग ने बताई थी उसमें मिली।

ये जो सम्भावनाएँ हैं मस्तिष्क के और तलों के मुक्त हो जाने की, महावीर ने इन पर अथक श्रम किया है अभिव्यक्ति के लिए। अगर देवलोक के साथ अभिव्यक्ति करनी है तो हमारे मस्तिष्क का एक विशेष हिस्सा टूट जाना चाहिए, एक द्वार खुल जाना चाहिए। वह द्वार न खुल जाए तो उस लोक तक हम कोई खबर नहीं पहुँचा सकते। जैसे मनुष्य तक खबर पहुँचानी हो तो शब्द का द्वार होना चाहिए, नहीं तो पहुँचाना मुश्किल हो जाएगा। वैसे उस लोक से भी मस्तिष्क के कुछ द्वार खुलने चाहिए। और हमें कठिनाई यह होती है कि जो हमारी सीमा है इन्द्रियों की उससे अन्यथा को स्वीकार करना मुश्किल हो जाता है।

एक आदमी पिछले दूसरे महायुद्ध में ट्रेन से गिर पड़ा और ट्रेन से गिरने के बाद एक अद्भुत घटना घटी जो पहले कभी नहीं घटी थी जमीन पर। ऐसे बहुत लोगों ने कहा था लेकिन उसका वैज्ञानिक विश्लेषण नहीं हो सका था। गिर जाने से उसके मस्तिष्क का एक हिस्सा; जो निष्क्रिय भाग है, सक्रिय हो गया। और उसे दिन में आकाश में तारे दिखाई पड़ने लगे। तारे लुप्त होते नहीं, वे तो रहते हैं, लेकिन सूरज के प्रकाश में ढँक जाते हैं। हमारी आँख समर्थ नहीं है उनको देखने में। लेकिन उस आदमी को दिन में तारे दिखाई पड़ने लगे। पहले लोगों ने समझा कि वह पागल हो गया है। लेकिन जो जो उसने सूचनाएँ दीं वे बिल्कुल सही थीं। और जब प्रयोगशालाओं ने सिद्ध कर

दिया कि जहाँ जो बताता है, वहाँ वह है उस वक्त तब फिर बड़ा मुश्किल हो गया। लेकिन वह आदमी घबड़ा गया था और उस आदमी को बड़ी मुश्किल हो गई थी। उस आदमी के सिर का आपरेशन करना पड़ा ताकि उसे दिन में तारे दिखाई पड़ना बंद हो जाएँ।

एक आदमी दूसरे महायुद्ध में चोट खाया, अस्पताल में भर्ती किया गया और उसे ऐसा लगा कि आस-पास कोई रेडियो चला रहा है। उसने सब तरफ देखा कि अस्पताल में कोई रेडियो नहीं चल रहा है लेकिन उसे साफ सुनाई पड़ रहा है। चोट लगने से उसका कान इस भाँति हो गया कि वह जिस नगर में था, दस मील आस-पास के किसी भी स्टेशन को उसका कान पकड़ने लगा और बंद करने का कोई उपाय नहीं था। उस आदमी के पागल होने की नौबत आ गई। और जब पकड़ने लगा वह ध्वनियाँ, पहले तो शक हुआ किन्तु जब नर्सों और डाक्टरों ने कहा कि तुम पागल तो नहीं हो गए हो, यहाँ तो कोई रेडियो नहीं, यह शान्त भूमि है, यहाँ कोई रेडियो बज ही नहीं सकता, यहाँ कोई यदि आवाज हो तो हमको भी आनी चाहिए। तब उसने कहा कि फलाँ-फलाँ गीत की कड़ी आ रही है। वे लोग आगे गए, जाकर सामने के होटल में रेडियो खोला। कड़ियाँ आ रही थीं। फिर उन्होंने ताल-मेल बिठाया। जिस नगर में हुई थी यह घटना वह उस नगर के स्टेशन को पकड़ लेता था। उसके मस्तिष्क का एक हिस्सा सक्रिय हो गया था, जो हमारा सक्रिय नहीं है। तब उसका आपरेशन करना पड़ा। अगर उसका वह हिस्सा सक्रिय रहता तो उसकी जिन्दगी मुश्किल हो जाती। क्योंकि रेडियो को तो हम बंद कर सकते हैं, लेकिन विचार को बंद नहीं कर सकते। वह चलता चला जाएगा।

हमारे मस्तिष्क की सम्भावनाएँ अनन्त हैं। लेकिन स्वभावतः जितनी सम्भावनाएँ प्रकट हुई हैं उन सबके आगे अंधकार मालूम पड़ता है। वह मालूम पड़ेगा ही। यह जो अभी रूस में एक वैज्ञानिक है फयादेव उसने एक हजार मील दूर तक टेलीपैथिक संदेश भेजकर नए चमत्कार उपस्थित किए हैं। और, रूस में यह बात बहुत महत्त्वपूर्ण है क्योंकि रूस इस तरह की बातों पर अनायास विश्वास करने के लिए कतई तैयार नहीं है। फयादेव ने मास्को में बैठकर एक हजार मील के फासले पर तिफिलस नगर के एक व्यक्ति से अपना संबंध स्थापित किया है। उसके मित्र एक बगीचे की झाड़ी में छिपे हुए हैं और वायरलेस से सम्बन्ध है उनका। वह मित्र फयादेव से कहते हैं कि दस नम्बर की बेंच पर एक आदमी आकर बैठा है। तुम उसे मास्को से सुझाव देकर सुला दो। फयादेव

कहता है कि मैं पांच मिनट में उसे सुला दूंगा। वह पांच मिनट तक मास्को में बैठकर चित्त को एकाग्र करके एक हजार मील दूर तिफलिस के फलां बगीचे में दस नम्बर की बेंच पर जो आदमी बैठा हुआ है, उसकी तरफ तीव्र प्रवाह से विचार भेजता है। और वह आदमी पांच मिनट बाद सो जाता है, उसी बेंच पर। लेकिन उसके मित्र कहते हैं कि हो सकता है कि वह थका-मांदा हो और अनायास सो गया हो। तुम उसे तीन मिनट के भीतर उठा दो अब वापिस। वह उसे फिर सुझाव भेजता है उठने के। वह आदमी तीन मिनट के भीतर उठ जाता है। मित्र उस आदमी के पास जाते हैं और उससे पूछते हैं कि तुम्हें कुछ लगा तो नहीं। उसने कहा सच में बड़ी हैरानी की बात है। कुछ लगा जरूर। पहले मैंने ख्याल नहीं किया। जैसे मैं बेंच पर आकर बैठा, कोई मेरे भीतर जोर से कहने लगा : सो जाओ। और मैं बिल्कुल थका-मांदा नहीं था। मैं किसी की प्रतीक्षा करने इस बगीचे में आकर बैठा हूं। कोई आने वाला है, उसकी प्रतीक्षा कर रहा हूं। लेकिन इतने जोर से आया सो जाने का ख्याल मुझे कि मैं सो गया। और अभी-अभी किसी ने मुझे जोर से कहा : उठो! उठो! तीन मिनट के भीतर उठ जाना!' मेरी समझ में कुछ नहीं आया कि क्या बात हो गई है। फिर फयादेव ने बहुत प्रयोग करके बताए और सिद्ध किया कि विचार की तरंगे सम्प्रेषित होती हैं बिना वाणी के।

सोहन यहां बैठी हुई है। उसके घर में मैं पहली या दूसरी दफा मेहमान था। वह रात आकर मेरे बिस्तर के नीचे बिस्तर लगाकर सो गई। और उसने कहा कि मैं तो आपसे कभी कुछ पूछती नहीं। सिर्फ एक सवाल मुझे पूछना है : आपकी मां का नाम क्या है? उससे मैंने कहा कि यह भी कोई पूछने की बात है। तू आंख बंद कर ले। तुझे जो पहला नाम आ जाए, बोल दे। अगर वह कहती कि इससे कैसे होगा, कैसे पता चलेगा तो फिर मैं उसे बता देता। क्योंकि वैसा कहने वाला व्यक्ति फिर संवेदनशील नहीं हो सकता। मगर उसने बात मान ली। उसने कुछ नहीं पूछा; आंख बंद कर ली और कहा 'सरस्वती।' मैंने कहा कि वही मेरे मां का नाम है। पर उसे विश्वास न पड़ा। उसने कहा कि मैं यह कैसे मानूं? पता नहीं आप किसी भी नाम में 'हां' भर दें। मैंने कहा कि यह तो कोई कठिन बात नहीं है। तू मेरी मां से भी मिल लेना और पता लग जाएगा। यह झूठ कितनी देर चल सकता है?

अब यह कैसे हुआ? वह जब दो मिनट शान्त होकर लेट गई थी तब मैं मन में 'सरस्वती, सरस्वती' दोहराता रहा। चूंकि वह उत्सुक थी जानने को,

इसलिए उसके विचार शान्त हो गए थे और शब्द उसके मन में प्रतिध्वनित हो गए। उसने कहा 'सरस्वती।' मगर उसको पता नहीं कि यह कैसे आया। थोड़े से इसको प्रयोग करके देखिए।

आप रास्ते पर जा रहे हैं और सामने एक आदमी जा रहा है। आप दोनों आँखों की पलकें बन्द करके उसकी गर्दन पर देखते रहना थोड़ी देर, पीछे चलते रहना चुपचाप और देखते रहना। और फिर मन में जोर से कहना कि पीछे लौटकर देखो। सौ में निन्यानवे आदमी लौटकर पीछे देखेगा कि क्या बात है? और उसे पता भी नहीं चलेगा कि उसने पीछे लौटकर क्यों देखा? ठीक उसकी गर्दन पर अगर आपकी आँखें केन्द्रित हों तब कोई भी विचार एकदम से सम्प्रेषित हो जाता है उसके प्रति। लेकिन होना चाहिए आपके पास तीव्रता से सम्प्रेषण करने की क्षमता यानी अगर आप साथ में ऐसा कहें कि 'पता नहीं कि लौटकर देखेगा कि नहीं देखेगा' तो सब गड़बड़ हो जाएगा। क्योंकि साथ-साथ आपका सन्देह भी सम्प्रेषित हो जाएगा और वह भी आदमी को पहुँच जाएगा और फिर वे दोनों कट जाएँगे। वह आदमी सीधा चला जाएगा, लौटकर पीछे नहीं देखेगा।

• हमारे मस्तिष्क की सम्भावनाओं का हमें ठीक-ठीक बोध नहीं है। देवलोक से सम्बन्धित होने के लिए मस्तिष्क का एक विशेष हिस्सा है जो सक्रिय होना जरूरी है। सक्रिय होने से हम दूसरी दुनिया में प्रवेश कर गए। जैसे रात हम सपने में प्रवेश कर जाते हैं, सुबह जागकर फिर एक नई दुनिया शुरू हो जाती है, ठीक वैसे ही हम एक नई दुनिया में प्रवेश कर जाते हैं। यह प्रवेश उतना तथ्य ही है जैसे कि आपने रेडियो खोला जो ध्वनियाँ चल रही थीं वे पकड़ाई जानी शुरू हो गईं। कोई ऐसा नहीं है कि रेडियो खोलने के वक्त ध्वनियाँ आनी शुरू हो जाती हैं। ध्वनियाँ इस कमरे में पहले से ही दौड़ रही हैं, सिर्फ खोलने पर पकड़ी जाती हैं। देवता प्रतिक्षण उपस्थित हैं ही, केवल आपके मस्तिष्क की एक व्यवस्था खुल जाने पर वे पकड़े जाते हैं, देखे जाते हैं। यह निर्भर करता है कि मस्तिष्क का वह हिस्सा कैसे टूट जाए? उसके लिए दो-तीन बातें ख्याल में रखनी चाहिएं।

एक बात कि अगर कोई व्यक्ति समग्र चेतना से, सारे शरीर को छोड़कर सिर्फ दोनों आँखों के बीच में आज्ञाचक्र पर ध्यान को स्थिर करता रहे तो जहाँ हमारा ध्यान स्थिर होता है, वहीं सोए हुए केन्द्र तत्काल सक्रिय हो जाते हैं।

ध्यान सक्रियता का सूत्र है। शरीर में किन्हीं भी केन्द्रों पर ध्यान जाने से वे केन्द्र सक्रिय हो जाते हैं। जैसे एक ही ख्याल हमें है सैक्स के सेन्टर का, जिसका लोगों को अनुभव है। कभी आपने ख्याल किया कि जैसे ही आपका ध्यान सैक्स की तरफ जाएगा, सैक्स केन्द्र तत्काल सक्रिय हो जाएगा। जागते में ही नहीं, सोते में भी, स्वप्न में भी अगर सैक्स की तरफ ख्याल गया तो सैक्स केन्द्र फौरन सक्रिय हो जाएगा। सिर्फ ध्यान जाने से ही, सिर्फ जरा सी कल्पना उठने से ही सैक्स, वासना का केन्द्र सक्रिय हो जाएगा।

एक केन्द्र का हमें सामान्य ख्याल है, इसलिए मैं उदाहरण के लिए कहता हूँ। दूसरे केन्द्र का हमें सामान्यतः बोध नहीं है। फिर भी एक-दो केन्द्रों का थोड़ा-थोड़ा हमें बोध है। ऐसा कोई आदमी नहीं मिलेगा जो प्रेम की बात करते वक्त सिर पर हाथ रखे, मगर हृदय पर हाथ रखने वाला आदमी मिलेगा। स्त्रियाँ जब प्रेम की बात करेंगी तब उनका हाथ हृदय पर चला जाएगा। वह एक केन्द्र है जो प्रेम का ध्यान आते ही सक्रिय हो जाता है। लेकिन जैसे कोई चिन्तित है और विचार में सक्रिय है तब उसका हाथ सिर पर जा सकता है, माथे पर जा सकता है। क्योंकि चिन्तित व्यक्ति को जहाँ विचार सक्रिय होता है उसी केन्द्र के आस-पास बोध हो जाएगा। आज्ञाचक्र वह जगह है जिसे दूसरे लोग 'तीसरी आँख' (थर्ड आई) कहते हैं। अगर सारा ध्यान वहाँ केन्द्रित हो जाए तब करीब-करीब भीतर एक आँख के बराबर का एक टुकड़ा बिल्कुल खुल जाता है। कोई ऊपर से खोजने जाएगा तो उसे पता नहीं चलेगा लेकिन भीतर अगर ध्यान केन्द्रित हो तो ध्यान में व्यक्ति को निरन्तर पता चलेगा कि कोई चीज वहाँ टूट रही है, कोई छेद वहाँ हो रहा है। और जिस दिन उसे लगता है कि छेद हो गया उसी दिन उसे वे चीजें, जिन्हें हम देव कहें, प्रेत कहें, उनसे उसके सीधे सम्बन्ध स्थापित हो जाते हैं, जो हमारे सम्बन्ध नहीं हैं।

तो महावीर का बहुत समय जिसको हम साधनाकाल कह रहे हैं अभिव्यक्ति के माध्यम खोजने का, इस तरह के केन्द्रों को सक्रिय करने और तोड़ने के लिए व्यतीत हुआ। इस तरह के केन्द्रों को तोड़ने में जितना ज्यादा ध्यान बिना बाधा के दिया जा सके उतना उपयोगी है। क्योंकि मामला वहाँ ऐसा है कि अगर आप पाँच चोटें करके छोड़कर चले गए तो दुबारा जब आप आएँगे तब तक पाँच चोटें विलीन हो चुकी होंगी। यानी आपको फिर 'अ' 'ब' 'स' से शुरू करना होगा। यह वजह है कि महावीर को बहुत दिन तक के लिए

खाना, पीना, निद्रा आदि सारे काम त्याग करने पड़े। चोट सतत और सीधी होनी चाहिए। कोई भी बाधा बीच में नहीं होनी चाहिए। क्योंकि जब कोई दूसरी बात बीच में आएगी ध्यान वहाँ जाएगा। और ध्यान दूसरी जगह गया कि वहाँ से जो काम हुआ था वह अधूरा छूट जाएगा। वह अधूरा न छूट जाए इसलिए जीवन के सारे कामों से—जो बीच में बाधाएँ डाल सकते हैं—ध्यान हटाना पड़ेगा। तभी एक केन्द्र को पूरी तरह से सक्रिय किया जा सकता है।

तो महावीर निरन्तर एकान्त में खड़े हैं, और यह ध्यान रहे कि महावीर का भी साधना का अधिकतम हिस्सा खड़े-खड़े व्यतीत हुआ है। दूसरे साधकों ने बैठकर साधना की है। महावीर की अधिकतम साधना खड़े-खड़े हुई है। महावीर के ध्यान का प्रयोग भी खड़े-खड़े करने के लिए है। कुछ कारण है उसमें। बैठा हुआ आदमी, लेटा हुआ आदमी सो सकता है। और अगर एक क्षण को भी वहाँ से ध्यान हट जाए तो पहला काम एकदम विलीन हो जाएगा। उस चक्र पर तो सतत काम करना चाहिए। वह काम खड़े होकर ही किया जा सकता है क्योंकि खड़े हुए आदमी की सोने की सम्भावना एकदम न्यून हो जाती है, क्षीण हो जाती है। निद्रा से बचने के कई उपाय किए उन्होंने। और कोई कारण नहीं। सिर्फ कारण है कि निद्रा में उतनी देर के लिए ध्यान अलग हो जाएगा और तब हो सकता है कि उतना काम व्यर्थ हो जाए। निद्रा से बचने के लिए भोजन को छोड़ देना चाहिए क्योंकि नींद का पचहत्तर प्रतिशत भोजन से सम्बन्धित है। जैसे ही भोजन पेट में गया, मस्तिष्क की सारी शक्ति पेट की तरफ आनी शुरू हो जाती है, भोजन को पचाने के लिए। इसलिए भोजन करने के बाद नींद का हमला शुरू हो जाता है कारण कि मस्तिष्क में जो शक्ति काम कर रही है उसे पहले जरूरी है भोजन पचाना। क्योंकि ज्यादा देर वह बिना पचा रह जाए तो वह जहर हो जाएगा, ठंडा हो जाएगा। इसलिए पेट सारे शरीर से एकदम सारी शक्ति को वापस बुला लेता है और मस्तिष्क की शक्ति उतर जाती है नीचे। आँखें झपकने लगती हैं, नींद आने लगती है। अगर नींद को बिल्कुल ही तोड़ना हो तो पेट में कुछ नहीं होना चाहिए। इसलिए उपवास के दिन आपको नींद आना मुश्किल है। क्योंकि उस शक्ति को नीचे आने का कोई उपाय ही नहीं रह जाता।

और जो लोग आज्ञाचक्र पर काम कर रहे हैं, वहाँ ध्यान लगा है उनकी शक्ति नीचे नहीं आनी चाहिए। वह ऊपर ही लगी रहनी चाहिए तो ही वह चक्र खुल सकता है। सत्य की अनुभूति से वह चक्र नहीं खुल जाता। हाँ, उस

अनुभूति को उस चक्र के माध्यम से प्रकट करना हो तो उसे खोलने की जरूरत पड़ती है। तिब्बत ने इस दिशा में सर्वाधिक मेहनत की है, तीसरी आँख के सम्बन्ध में। तोड़ने के लिए अथक श्रम किया है। और तिब्बत में निरन्तर ऐसे लोग पैदा होते रहे जिन्होंने उसका पूरा उपयोग किया। आज्ञाचक्र के माध्यम से ही देवताओं से जुड़ा जा सकता है। वहाँ वाणी की कोई जरूरत नहीं रहती। भाव जो भीतर पैदा हो वह आज्ञाचक्र से प्रतिध्वनित हो जाता है और देव-चेतना तक प्रवेश कर जाता है।

यह मैंने दो बातें कहीं। जड़ सम्बन्धित होना हो तो चेतना इतनी शिथिल हो जानी चाहिए कि जड़ के साथ तादात्म्य स्थापित हो जाए और मनुष्य से ऊपर की योनियों से सम्बन्धित होना हो तो चेतना इतनी एकाग्र होनी चाहिए कि आज्ञाचक्र टूट जाए। सर्वाधिक कठिनाई मनुष्य के साथ है। मनुष्य से सम्बन्धित होने के लिए महावीर ने तीन प्रयोग किए हैं। पहला प्रयोग यह है कि किसी भी मनुष्य को सम्मोहन की हालत में कोई भी सन्देश दिया जा सकता है। और उस वक्त सन्देश उसके प्राणों के आखिरी कोर तक सुना जाता है। और इस वक्त चूँकि तर्क बिल्कुल काम नहीं करता, विचार काम नहीं करता, चेतना काम नहीं करती इसलिए न वह विरोध करता है, न विचार करता है। जो कहा जाता है उसे चुपचाप स्वीकार कर लेता है यहाँ तक कि अगर एक व्यक्ति को बेहोश करके कहा जाए कि तुम घोड़े हो गए हो तो वह बराबर चारों हाथ-पैर से खड़ा हो जाएगा, घोड़े की तरह आवाज करने लगेगा; वह यह मान लेगा। उसके बिल्कुल अचेतन तक अगर यह बात प्रविष्ट हो जाए तो हम जो उसे कहेंगे, वह वही हो जाएगा। उसे कहा जाए कि तुम्हें लकवा लग गया है तो उसके शरीर को एकदम लकवा लग जाएगा। फिर वह हाथ पैर हिला नहीं सकेगा। सौ में से तीस पुरुष, पचास स्त्रियाँ और पचहत्तर बच्चे सम्मोहित हो सकते हैं। जितना सरल चित्त हो उतनी शीघ्रता से सम्मोहन प्रवेश कर जाता है।

महावीर वर्षों तक काम कर रहे हैं कि सम्मोहन के द्वारा कैसे संदेश पहुँचाया जाए। लेकिन अन्ततः उन्होंने उस प्रक्रिया का प्रयोग नहीं किया है क्योंकि सम्मोहन के द्वारा सन्देश तो पहुँच जाता है लेकिन कुछ सूक्ष्म नुकसान दूसरे को पहुँच जाते हैं। जैसे उसकी तर्क शक्ति क्षीण हो जाती है, जैसे वह परवश हो जाता है और वह धीरे-धीरे दूसरे के हाथ में जीने लगता है। मैंने भी इधर सम्मोहन पर बहुत प्रयोग किये हैं इसी दृष्टि से। क्योंकि घंटों मेहनत करें तब

एक बात मुश्किल से समझाई जा सकती है। इधर दो मिनट बेहोश किया जाए तो वह बात उसमें प्रवेश कराई जा सकती है। लेकिन मैं भी इस नतीजे पर पहुँचा कि उस व्यक्ति में कुछ बुनियादी नुकसान पहुँच जाते हैं। सन्देश पहुँच जाएगा लेकिन वह व्यक्ति ऐसे जीने लगेगा जैसे उसकी कोई स्वतन्त्रता नहीं रही; वह परवश है, कोई और उसे चला रहा है, ऐसा चलने लगेगा।

रामकृष्ण ने विवेकानन्द को जो पहला संदेश दिया वह सम्मोहन की विधि से दिया गया था जिसमें उनके स्पर्शमात्र से विवेकानन्द को समाधि हो गई। वह सम्मोहन के द्वारा दिया गया संदेश है और इसीलिए विवेकानन्द सदा के लिए रामकृष्ण का अनुगत हो गया। और भी मजे की बात है कि रामकृष्ण ने जिस दिन स्पर्श द्वारा विवेकानन्द को संदेश दिया उसी दिन से विवेकानन्द के भीतर एक शक्ति प्रकट हुई जो उसकी अपनी नहीं थी, किसी दूसरे के दबाव में उसके भीतर आ गई थी। कमरे में बैठे हुए हैं विवेकानन्द। और उस कमरे में एक भक्त भी रहता था। गोपाल बाबू उसका नाम था। वह सब तरह की भगवान् की मूर्तियाँ रखे हुए था अपने कमरे में और दिन भर पूजा चलती थी क्योंकि इतने भगवान् थे कि उनकी उसे रोज दो तीन घंटे पूजा करनी पड़ती थी। वह कभी सांझ को भोजन कर पाता, कभी रात में। इतने भगवान् और एक भक्त ! बड़ी मुश्किल हो गई थी। विवेकानन्द ने कई बार उससे कहा तू क्या पत्थर इकट्ठे कर रहा है। जिस दिन विवेकानन्द को पहली बार रामकृष्ण से सम्मोहन का सन्देश मिला उस दिन वह कमरे में जाकर बैठे और उन्हें एकदम से ख्याल आया कि इस वक्त अगर मैं गोपाल बाबू को कहूँ कि 'जा' ! सारी मूर्तियों को बाँध कर गंगा में फेंक आ तो बराबर हो जाएगा।" इस वक्त उनके पास बड़ी तीव्र शक्ति है जिसको वह विस्तीर्ण कर सकते हैं। उन्होंने यह कहा सिर्फ मजाक में कि 'गोपाल बाबू ! सब भगवानों को बांधो और गंगा में फेंक आओ।' गोपाल बाबू ने सब भगवान् चद्दर में बांधे और गंगा में फेंकने चले। रामकृष्ण घाट पर मिले और कहा, 'खूब' ! गोपाल बाबू को कहा : 'वापस चलो' ! जाकर विवेकानन्द का दरवाजा खोला और कहा कि 'तेरी चाबी मैं अपने हाथ में रखे लेता हूँ क्योंकि तू तो कुछ भी उपद्रव कर सकता है। और जो तुझे आज अनुभव हुआ है अब वह तेरे मरने के तीन दिन पहले ही तुझे हो सकेगा, उसके पहले नहीं।' और विवेकानन्द को जो समाधि का अनुभव हुआ रामकृष्ण के स्पर्श से फिर जिन्दगी भर तड़प रही, वह कभी नहीं हो सका। लेकिन मरने के तीन दिन पहले वह फिर अनुभव हुआ। वह भी

विवेकानन्द का अपना नहीं है। वह भी सम्मोहन अवस्था में कहा गया है कि फलां दिन तुझे फिर होगा। लेकिन चाबी मेरे पास है तो फलां दिन वह फिर हो जाएगा।

मैं एक बच्चे पर सम्मोहन के बहुत से प्रयोग करता था। उससे मैंने कहा कि यह किताब सामने रखी है। इसके बारहवें पन्ने पर तुम पेंसिल उठा कर अपने दस्तखत कर देना। लेकिन आज नहीं, पन्द्रह दिन बाद ठीक ग्यारह बजे दोपहर! और कर ही देना; भूल मत जाना। बात खत्म हो गई। वह तो होश में आ गया। स्कूल जाना था, स्कूल चला गया। पन्द्रह दिन बीत गए। किताब वहीं टेबिल पर पड़ी रही। लेकिन उसने कभी उस पर दस्तखत नहीं किए। पन्द्रहवें दिन उसका दस बजे स्कूल लगता था। उसने कहा : आज मेरा सिर कुछ भारी है। मैं स्कूल नहीं जाना चाहता हूँ। मैंने कहा : सुबह तो तबियत ठीक थी। उसने कहा : बिल्कुल ठीक थी पर अभी मेरा सिर भारी है। मैंने कहा : तुम्हारी मर्जी। मैं उसी कमरे में बैठा हूँ और टेबिल पर किताब रखी है, वह लड़का भी वहीं लेटा हुआ है। ठीक ग्यारह बजे उठा है, पेन्सिल उठाई है जाकर। जो पन्ना मैंने कहा था उसने खोला है और अपने दस्तखत करने लगा है। मैंने उसको दस्तखत करते वक्त पकड़ा है कि तू यह क्या कर रहा है। उसने कहा "समझ में नहीं आ रहा है कि मैं क्या कर रहा हूँ। न तो मेरा सिर दुख रहा है और न कुछ और। लेकिन सुबह से ऐसा लग रहा है कि आज स्कूल मत जाना; कोई जरूरी काम करना है। बस भीतर से यही चल रहा है। और जब मैंने दस्तखत कर दिए हैं तो मेरे भीतर से बोझ उतर गया है जैसे मेरा पहाड़ उतर गया हो। मेरा सिर बिल्कुल ठीक हो गया है। दस्तखत करके मैं बिल्कुल हल्का हो गया हूँ। पता नहीं यह क्यों हुआ है कि दस्तखत मुझे करने हैं। यह पन्द्रह दिन पहले दिया गया संमोहन प्रयोग है।

रामकृष्ण ने जिस विधि का उपयोग किया है उस विधि को महावीर ने बहुत दूर तक विकसित किया है लेकिन छोड़ दिया, उसका प्रयोग नहीं किया और मैं यह जानता हूँ कि विवेकानन्द को नुकसान पहुँचा। विवेकानन्द कुछ भी अपना काम नहीं कर सका। अपनी कमाई अभी बाकी रह गई है। यह हुआ है दूसरे के द्वारा। इसमें विवेकानन्द की अपनी कोई उपलब्धि नहीं है। इसलिए विवेकानन्द बहुत चिन्तित, दुखित और परेशान रहे क्योंकि वे रामकृष्ण से बँधे थे। आखिरी समय में जो पत्र लिखे हैं उन्होंने, वे बड़े दुःख के हैं, बड़ी

पीड़ा के हैं, बहुत सन्ताप है उनमें। जैसे जिन्दगी एकदम व्यर्थ हो गई हो, कुछ भी नहीं पा सके। रामकृष्ण ने ऐसा क्यों किया! अगर महावीर ने इसका प्रयोग नहीं किया तो रामकृष्ण ने क्यों किया! कुछ कारण हैं। महावीर वाणी में समर्थ थे। रामकृष्ण वाणी में असमर्थ थे। और वाणी के लिए विवेकानन्द को साधन की तरह उपयोग करना जरूरी हो गया, नहीं तो रामकृष्ण ने जो जाना था वह खो जाता। रामकृष्ण ने जो जाना था। उसे जगत् तक पहुँचाने के लिए रामकृष्ण के पास वाणी नहीं थी। उस वाणी के लिए विवेकानन्द का उपयोग करना जरूरी था। विवेकानन्द सिर्फ रामकृष्ण के ध्वनि-विस्तारक यन्त्र हैं, इससे ज्यादा नहीं। और वह बिल्कुल सम्मोहित अवस्था में सारे जगत् में घूम रहे हैं, बिल्कुल सोयी अवस्था में। रामकृष्ण जो बुलवाना चाह रहे हैं, वे बोल रहे हैं। विवेकानन्द का उपयोग किया गया है एक साधन की भांति। यह जरूरी था रामकृष्ण के लिए। नहीं तो रामकृष्ण किसी को कुछ भी न दे पाते। यही विवेकानन्द से कहा है रामकृष्ण ने "तुझे मैं समाधि में नहीं जाने दूँगा क्योंकि तुझे अभी एक बहुत बड़ा काम करना है।" और जब भी विवेकानन्द ने उनसे पूछा "परमहंस देव, उस दिन जो खुशी मिली थी, प्रकाश मिला था, आनन्द मिला था, वह फिर कब मिलेगा।" तो उन्होंने बहुत जोर से उसे डांटा है, डपटा है, और कहा है कि तू बहुत लोभी है, स्वार्थी है, तू अपने ही आनन्द के पीछे पड़ा है। तुझे मैं एक बड़ा वृक्ष बनाना चाहता हूँ जिसके नीचे बहुत लोग छाया में विश्राम करें। तुझे तो एक बड़ा काम करना है। वह कौन करेगा? तू समाधि में चला जाएगा तो वह कार्य कौन करेगा? महावीर को यह कठिनाई नहीं है। महावीर के पास रामकृष्ण के अनुभव भी हैं। विवेकानन्द की सामर्थ्य भी है। इसलिए दो व्यक्तियों की जरूरत नहीं पड़ती। एक ही व्यक्ति काफी है।

अक्सर ऐसा हुआ है, जैसे गुरजिएफ की मैं बात करता हूँ निरन्तर। गुरजिएफ ने आस्पेंस्की का इसी तरह उपयोग किया है जैसा कि विवेकानन्द का रामकृष्ण ने। गुरजिएफ के पास वाणी नहीं है; आस्पेंस्की के पास वाणी है, बुद्धि है, तर्क है। आस्पेंस्की का पूरा उपयोग किया है गुरजिएफ ने। गुरजिएफ की आप किताब पढ़ें तो समझ हीं नहीं सकते हैं कुछ भी, क्योंकि उसके पास वह अभिव्यक्ति है ही नहीं लेकिन आस्पेंस्की से उसने सब लिखवा लिया है जो उसे लिखवाना था। आस्पेंस्की की किताबें इतनी अद्भुत हैं जिनका कोई हिसाब नहीं। गुरजिएफ को जो कहना था वह आस्पेंस्की से कहलवा लिया है। और यह बिना सम्मोहन प्रयोग के नहीं हो सकता है। महावीर के पास भी वह

साधना है लेकिन उन्होंने देखा कि वह साधन व्यक्ति को नुकसान पहुँचाता है और सोचा कि किसी को अपने साधन की तरह उपयोग करने का सवाल नहीं है; वह तो उसके भीतर संदेश भर पहुँचाने का सवाल है। इसलिए उसका प्रयोग तो उन्होंने बहुत किया, लेकिन किसी को अपने साधन की तरह उपयोग कभी नहीं किया। दूसरा रास्ता है कि दूसरा व्यक्ति ध्यान को उपलब्ध हो जाए तो फिर मौन में ही बात हो सकती है; फिर कोई जरूरत नहीं है उससे शब्दों का उपयोग करने की, क्योंकि शब्द सबसे असमर्थ चीज हैं। मौन में जो कहा जाए वह पहुँच जाता है; जो कहा ही नहीं गया जो समझा जा सकता है वह भी पहुँच जाता है।

इसलिए महावीर का जो भक्त है उसको कहते हैं श्रावक यानी ठीक से सुनने वाला। सुनते हम सभी हैं। हम सभी श्रावक हैं। लेकिन हम सभी श्रावक नहीं हैं। श्रावक वह है जो ध्यान की स्थिति में बैठकर सुन सके—उस स्थिति में जहाँ उसके मन में कोई विचार नहीं है, शब्द नहीं है, कुछ भी नहीं है, मौन में बैठ कर जो सुन सके वह श्रावक है। यह शब्द का उपयोग आकस्मिक नहीं है। भक्त को श्रोता कहने से काम नहीं चलता क्योंकि श्रोता का मतलब है सिर्फ सुनना। श्रावक का मतलब है सम्यक् श्रवण। हम सब सुनते हैं लेकिन हम श्रावक नहीं हैं। श्रावक हम तब होते हैं जब हम सिर्फ सुनते हैं और हमारे भीतर कुछ भी नहीं होता।

गुरजिएफ की मैं अभी बात कर रहा था। पहले कि वह संदेश दे आस्पेंस्की को उसे श्रावक बनाना जरूरी है। वह सुन ले और संदेश को ले जाए। तो गुरजिएफ आस्पेंस्की को जंगल में ले जाकर तीन महीने रहा। उस मकान में तीस व्यक्तियों को वह लाया जिनको वह श्रावक बना रहा था। तीन महीने उन तीस लोगों को रखा एक ही बंगले में जो सब तरफ बंद कर दिया गया, जिसमें बाहर जाने का कोई उपाय नहीं है और जिसमें गुरजिएफ कभी बाहर से खोल कर भीतर आता है और जिसे बंद कर बाहर जाता है। मकान सब तरफ से बंद है। भोजन का इन्तजाम है। सारी व्यवस्था है। शर्त यह है कि तीन महीने न तो कोई कुछ पढ़ेगा, न कोई कुछ लिखेगा, न कोई किसी से बात करेगा। तीस आदमी एक मकान के भीतर हैं। गुरजिएफ ने कहा कि तुम ऐसे समझना कि एक-एक ही वहाँ हो, तीस नहीं। उन्तीस यहाँ हैं ही नहीं तुम्हारे अलावा। आँख के इशारे से भी मत बताना कि दूसरा है। सुबह तुम बैठोगे तो कोई जा रहा है तो जाने देना। तुम मत सोचना कि कोई जा रहा है।

अगर कोई नमस्कार भी करे तो नमस्कार मत करना क्योंकि कोई है ही नहीं जिसको तुम नमस्कार करो। आंख से भी मत पहचानना कि तुम हो। मुस्कराना भी मत, भाव भी मत प्रकट करना। और जो आदमी इस तरह के भाव प्रकट करे उसे मैं बाहर निकाल दूँगा। पन्द्रह दिन में 'छँटाई' करूँगा। पन्द्रह दिन में सत्ताईस आदमी उसने बाहर कर दिए। तीन आदमी रह गए। उनमें एक रूप का गणितज्ञ आस्पेंस्की भी था। आस्पेंस्की ने लिखा है कि पन्द्रह दिन बहुत कठिनाई के थे, दूसरे को न मानना बड़ा कठिन था। कभी सोचा भी नहीं था कि कठिनाई हो सकती है। लेकिन संघर्ष से, संकल्प से पन्द्रह दिन में वह सीमा पार हो गई। दूसरे का ख्याल बंद हो गया। आस्पेंस्की ने लिखा है कि जिस दिन दूसरे का ख्याल बंद हो गया उस दिन से पहली बार अपना ख्याल शुरू हुआ। अब हम सब अपना ख्याल करना चाहते हैं। मगर दूसरे का ख्याल मिटता नहीं है। अपना ख्याल कभी हो नहीं सकता। क्योंकि जगह खाली नहीं। कहते हैं—आत्मस्मरण। मगर आत्म-स्मरण कैसे हो? आत्मस्मरण चौबीस घंटे चल रहा है और उसी के बीच दूसरे का स्मरण भी हो रहा है और फिर हम आत्मस्मरण करना चाहते हैं।

आस्पेंस्की ने लिखा है कि तब तक मैं समझा ही नहीं था कि आत्म-स्मरण का मतलब क्या होता है। और बहुत बार कोशिश की थी अपने को याद करने की। कुछ नहीं होता था। तब ख्याल में आया पन्द्रह दिन के बाद कि वह जो दूसरा भीतर बैठा था बिदा हो गया है। जब भीतर खाली रह गया तो सिवाय अपने स्मरण के कोई मौका ही नहीं रहा। तब पहली बार मैं अपने प्रति जागा। सोलहवें दिन सुबह उठा जैसा कि मैं जिन्दगी में कभी नहीं उठा था। पहली बार मुझे बोध हुआ कि अब तक मैं दूसरे के बोध में ही उठता था। सुबह उठने से दूसरे का बोध शुरू हो जाता था। अब अपना बोध चौबीस घंटे घेरे रहने लगा क्योंकि अब कोई उपाय न रहा। दूसरे को भरने की जगह न रही। एक महीना पूरा होते-होते, उसने लिखा है कि मैं हैरानी में पड़ गया। दिन बीत जाते हैं, मुझे पता ही नहीं चलता कि जगत् भी है, कोई व्यावहारिक संसार भी है, बाजार भी है, लोग भी हैं। दिन बीत जाते हैं, और पता नहीं चलता। सपने विलीन हो गए। जिस दिन दूसरा भूला उसी दिन सपने विलीन हो गए। क्योंकि सब सपने बहुत गहरे में दूसरे से सम्बन्धित हैं। जिस दिन सपने विलीन हुए उस दिन मुझे रात में भी अपना स्मरण रहने लगा। ऐसा नहीं है कि मैं रात में सोया हुआ हूँ। रात में भी सब सोये हैं और मैं जागा हुआ हूँ, ऐसा होने लगा।

तीन महीने पूरे होने के तीन दिन पहले गुरजिएफ ने दरवाजा खोला। आस्पेंस्की ने लिखा है : उस दिन मैंने पहली बार देखा कि यह आदमी कैसा अद्भुत है। इतना खाली था कि अब मैं नहीं देख सकता था। भरी हुई आँख क्या देखेगी? गुरजिएफ को मैंने पहली बार देखा : ओफ! यह आदमी और इसके साथ होने का सौभाग्य! पहले समझा था कि जैसे और लोग थे वैसा गुरजिएफ था। खाली में पहली बार गुरजिएफ को देखा। आस्पेंस्की ने लिखा है, उस दिन मैंने जाना कि वह कौन है। गुरजिएफ सामने बैठ गया और बोला : आस्पेंस्की! पहचाना मुझे! मैंने चारों ओर चौंक कर देखा : गुरजिएफ चुप बैठा है। आवाज गुरजिएफ की है। फिर भी मैं चुप रहा। फिर आवाज आई : आस्पेंस्की! पहचाना नहीं, सुना नहीं। तब मैंने चौंक कर गुरजिएफ की ओर देखा। मैं बिल्कुल चुप बैठा था। मेरे मुँह से कोई शब्द निकल रहा था। तब गुरजिएफ खूब मुस्कराने लगा और फिर कहा : अब शब्द की कोई जरूरत नहीं है। बिना शब्द के भी बात हो सकती है। अब तू इतना चुप हो गया कि मैं भीतर सोचूँ और तू सुन लेगा क्योंकि जितनी शांति है उतनी सूक्ष्म तरंगे पकड़ी जा सकती हैं।

तुम रास्ते से भागे चले जा रहे हो। तुम्हें किसी ने कहा है; तुम्हारे मकान में आग लग गई है। और मैं रास्ते में तुम्हें मिलता हूँ और कहता हूँ नमस्कार! तुमने सुना? तुमने नहीं सुना। तुमने देखा? तुमने नहीं देखा। तुम भागे चले जा रहे हो। तुम्हारे घर में आग लग गई है। दूसरे दिन तुम मुझे मिलते हो। मैं कहता हूँ रास्ते में मिला था, नमस्कार की थी, तुमने कोई जवाब नहीं दिया। तुम कहते हो : मैंने देखा ही नहीं। मेरे घर में आग लग गई थी, मैं भागा जा रहा था। मुझे तुम नहीं दिखाई पड़े। न मैंने देखा कि तुमने हाथ जोड़े। न मैं इस हालत में था कि हाथ जोड़ सकता था। अगर मकान में आग लग गई तो तुम्हारा चित्त इतने जोर से चलता है कि जोड़े गए हाथ दिखेंगे नहीं, किया हुआ नमस्कार सुनाई नहीं पड़ेगा। अगर चित्त का चक्र धीमा हो गया है, ठहर गया है तो जरूरी नहीं कि मैं बोलूँ! इतना ही काफी है कि मैं कुछ चाहूँ कि तुम पर चला जाए, वह एकदम चला जाएगा।

विद्यासागर ने लिखा है कि बंगाल का गवर्नर उन्हें एक पुरस्कार देना चाहता था। विद्यासागर एक गरीब आदमी थे, पुराने ढंग से रहने के आदी थे। वही पुराना बंगाली कुर्ता, पुरानी धोती है। डंडा हाथ में है। मित्रों ने कहा : इस वेष में गवर्नर के दरबार में जाना ठीक नहीं है। हम तुम्हें नए

कपड़े बनवा देते हैं। विद्यासागर ने कहा कि मैं जैसा हूं, ठीक हूं। मित्र नहीं माने। उन्होंने खूब कीमती कपड़े बनवाए। कल सुबह जाना है विद्यासागर को गवर्नर के सामने और पुरस्कार लेना है। दरबार भरेगा। सांझ को वह घूमने निकले। समुद्र के तट पर से घूमकर लौट रहे हैं। सामने ही एक मुसलमान मौलवी छड़ी लिए चुपचाप शान से चला जा रहा है। एक आदमी भागा हुआ आया है और मौलवी से कहा : मीर साहब! तेजी से चलिए, आपके मकान में आग लग गई है। मीर ने कहा ठीक है और फिर वह उसी चाल से चला। विद्यासागर हैरान हो गए क्योंकि सुना है उन्होंने, आदमी ने अभी आकर कहा है कि मकान में आग लग गई है। मगर वह उसी चाल से चल रहा है। फिर, उस आदमी ने घबड़ाकर कहा है : शायद आप समझे नहीं हैं। आपके मकान में आग लग गई है। तो कहा : मैंने समझ लिया है। फिर वह उसी चाल से चलने लगा है। तब विद्यासागर कदम बढ़ा कर आगे गए और कहा : "सुनिए ! हद हो गई है। आपके मकान में आग लग गई है और आप उसी चाल से चल रहे हैं।" उस आदमी ने कहा कि मेरी चाल से मकान का क्या सम्बन्ध है ? और मकान के पीछे चाल बदल दें जिन्दगी भर की ? लग गई है ठीक है, लग गई है। अब मैं क्या करूंगा ? विद्यासागर ने घर आकर कहा कि मुझे वे कपड़े नहीं पहनने हैं। जिन्दगी भर की चाल छोड़ दूं गवर्नर के लिए। एक आदमी जिसके मकान में आग लग गई है उसी चाल से जा रहा है, एक कदम नहीं बढ़ा रहा है। लेकिन ऐसा आदमी मिलना मुश्किल है और अगर मिल जाए तो वह श्रावक हो सकता है।

महावीर की सतत चेष्टा इसमें लगी कि कैसे मनुष्य श्रावक बने, कैसे सुनने वाला बने, कैसे सुन सके। और वह तभी सुन सकता है जब उसके चित्त की सारी विचार-परिक्रमा ठहर जाए। फिर बोलने की जरूरत नहीं। वह सुन लेगा। ऐसी जो न बोली लेकिन सुनी गई वाणी है, उसका नाम दिव्य ध्वनि है। बोली नहीं गई है लेकिन सुनी गई है। दी नहीं गई है लेकिन पहुँच गई है। सिर्फ भीतर उठी है और सम्प्रेषित हो गई है। तो श्रावक बनाने की कला खोजने के लिए बड़ा श्रम करना पड़ा। अब तो हम किसी को भी श्रावक कहते हैं। जो महावीर को मानता है वह श्रावक है। मगर महावीर के मरने के बाद श्रावक होना ही मुश्किल हो गया। असल में जो महावीर के सामने बैठा था वही श्रावक था। उसमें भी सभी श्रावक नहीं थे। बहुत से श्रोता थे। श्रोता कान से सुनता है, श्रावक प्राण से सुनता है। श्रोता को

शब्द बोले जाएँ तो वह सुन ले, जरूरी नहीं है। वह शब्द बोले, जरूरी नहीं है। महावीर ने श्रावक की कला को विकसित किया। यह बड़ी से बड़ी कला है जगत् में। क्योंकि जीसस लोगों को नहीं समझा पाए। उन्होंने सिर्फ इसकी फिक्र की कि मैं ठीक ठीक कहूँ। इसकी फिक्र ही नहीं की कि वह ठीक-ठीक सुन सकता है, या नहीं सुन सकता। मुहम्मद इसकी फिक्र नहीं कर रहे हैं कि वह सुन सकेगा या नहीं। वह इसकी फिक्र कर रहे हैं कि जो मैं कह रहा हूँ वह ठीक होना चाहिए। वह बिल्कुल ठीक है। लेकिन कहना ही ठीक होने से कुछ नहीं होता; सुनने वाला भी ठीक होना चाहिए। नहीं तो कहना व्यर्थ हो जाएगा। तुम कहोगे कुछ, सुना कुछ जाएगा, समझा कुछ जाएगा।

इसलिए मैं महावीर की दूसरी बड़ी देनों में से श्रावक बनने की कला को मानता हूँ। यह बड़े से बड़े योगदान में से एक है कि आदमी श्रावक कैसे बने। और तभी उन्होंने शब्द उठा दिया 'प्रतिक्रमण'। 'प्रतिक्रमण' शब्द श्रावक बनाने की कला का एक हिस्सा है। हमें ख्याल भी नहीं कि 'प्रतिक्रमण' का अर्थ क्या होता है ? 'आक्रमण' का अर्थ हम समझते हैं क्या होता है। आक्रमण से उल्टा मतलब होता है प्रतिक्रमण का। 'आक्रमण' का अर्थ होता है दूसरे पर हमला करना और प्रतिक्रमण का अर्थ होता है सब हमला लौटा लेना, वापस लौट जाना। हमारी चेतना आक्रामक है साधारणतः। प्रतिक्रमण का अर्थ है वापस लौट आना, सारी चेतना को समेट लेना वापस, जैसे सूर्य शाम को अपनी किरणों की जाल समेट लेता है ऐसे ही अपनी फैली हुई चेतना को मित्र के पास से, शत्रु के पास से, पत्नी के पास से, बेटे के पास से, मकान से और धन से वापस बुला लेना है। जहाँ-जहाँ हमारी चेतना ने खूँटियाँ गाड़ दी हैं औरे फैल गई हैं, उस सारे फैलाव को वापस बुला लेना है। प्रतिक्रमण का मतलब है वापस लौट आना। जाना है आक्रमण, लौट आना है प्रतिक्रमण। जहाँ जहाँ चेतना गई है, वहाँ वहाँ से उसे वापस पुकार लेना है कि 'आ जाओ'।

बुद्ध ने एक कहानी कही है। सांझ को नदी के तट पर कुछ बच्चे रेत के घर बना रहे हैं। बहुत से बच्चे हैं। कोई घर बनाता है, कोई गड्ढा खोदता है, किसी बच्चे का किसी के घर में पैर लग जाता है। और जहाँ इतने बच्चे हों वहाँ पैर लग जाना भी सम्भव है। किसी का घर गिर जाता है, मारपीट होती है, गाली गलोज होती है, बच्चे चिल्लाते हैं : मेरा घर मिटा दिया।

क्यों यहां पैर रख रहे हो। ये सब झगड़ते हैं, मारते हैं, पीटते हैं, फिर शान्त हो जाते हैं। और नदी के तट से कुछ दूर घर-घर से बच्चों की मां पुकारती है "लौट आओ, लौट आओ। अब बहुत खेल हो गया" और बच्चे जो लड़ते थे इस पर कि मेरे घर पर लात मत मारना वे अब अपने ही घर को लात मार कर घर की ओर भागते हुए वापस लौट गए हैं। घर पड़े रह गए हैं टूटे-फूटे। नदी तट निर्जन हो गया है। बच्चे घर चले गए हैं अपने ही घर को लात मार कर जिस पर लड़े थे कि मेरा तोड़ मत देना। बुद्ध कहते हैं: ऐसा एक क्षण आता है जीवन में जब तुम रेत के घरों को लात मारकर खुद ही वापस लौट आते हो इसका अर्थ है प्रतिक्रमण। और अगर इसका अभ्यास जारी रहे कि तुम रोज घड़ी भर को प्रतिक्रमण कर जाओ, सब तरफ से चेतनाओं को वापस बुला लो, सब रेत के घरों से आ जाओ वापस अपने भीतर, कहीं से सम्बन्ध न रखो, असंग हो जाओ तो प्रतिक्रमण हुआ। प्रतिक्रमण ध्यान का पहला चरण है। क्योंकि जब तुम लौटोगे ही नहीं, चेतनाओं को वापस नहीं लाओगे तो ध्यान कौन लगाएगा? अभी तो चेतना ही नहीं है मौजूद, वह तो घर के बाहर गई हुई है; वह तो किसी दूसरे ओर भटक रही है, वह तो कहीं और जगह है। तुम चेतना को नहीं लौटाओगे तो ध्यान कैसे करोगे?

प्रतिक्रमण है पहला चरण ध्यान का, सामायिक है दूसरा चरण। सामायिक अर्थात् ध्यान। सामायिक ध्यान से भी अद्भुत शब्द है। महावीर ने जो इस शब्द का उपयोग किया है, वह ध्यान से बेहतर है। ध्यान शब्द में कहीं दूसरा छिपा हुआ है। जैसे हम कहते हैं 'ध्यान में आओ' तो आदमी कहता है 'किसके ध्यान में, किस पर ध्यान करें, कहां ध्यान लगाएँ।' ध्यान शब्द किसी न किसी रूप में पर-केन्द्रित है। उससे सवाल हुआ है 'किसका ध्यान!' सामायिक को महावीर ने बिल्कुल मुक्त कर दिया है। समय का मतलब होता है आत्मा और सामायिक का मतलब है आत्मा में होना। प्रतिक्रमण है पहला हिस्सा कि दूसरे से लौट आओ, सामायिक है दूसरा हिस्सा अपने में हो आओ। और जब तक दूसरे से न लौटोगे तब तक अपने में होओगे कैसे? इसलिए पहली सीढ़ी प्रतिक्रमण और दूसरी सीढ़ी सामायिक है। लेकिन वह जो बकवास प्रतिक्रमण के नाम से चलता है, वह प्रतिक्रमण नहीं है। उससे कोई मतलब ही नहीं है कि कितने देवी-देवता हैं और कहां कौन बैठा है, कितने योजन, क्या दूर है—इससे कोई मतलब ही नहीं है। यह तो दूसरे के लिए भटकना है।

प्रतिक्रमण बहुत अद्भुत बात है। वह चेतना को सब तरफ से असम्बन्धित कर देना है : पत्नी, अब पत्नी नहीं है; बेटा, अब बेटा नहीं है; मकान, अब मकान नहीं है। शरीर, अब शरीर नहीं है। प्रतिक्रमण है सब तरफ से लौटा लेना; सब तरफ से काटते चले आना।

चेतना लौट आए अपने में तो फिर दूसरी बात शुरू होती है कि अब अपने में कैसे रम जाए क्योंकि न रम पाई तो फिर दूसरे में चली जाएगी। अगर बच्चे शाम घर भी लौट आए और अगर मां न रमा पाई तो बच्चे फिर लौट जाएंगे नदी के तट पर। वे फिर रेत के घर बनाएँगे। वे फिर खेलेंगे और फिर लड़ेंगे। लौट आना सिर्फ सूत्र है लेकिन लौट आते हैं तो रमें कैसे, ठहर कैसे जाएँ उसकी चिन्ता करनी है। अगर चिन्ता नहीं की तो लौट भी नहीं पाएँगे। तो प्रतिक्रमण सिर्फ प्रक्रिया है, स्वभाव नहीं। इसलिए कोई प्रतिक्रमण में ही रुकना चाहे तो वह नासमझी में है। चेतना इतनी शीघ्रता से आती है और इतनी शीघ्रता से लौट जाती है कि पता ही नहीं चलता। एक दफा सोचती है कि कहाँ मकान ? क्या मेरा ? लौटती है एक क्षण को। लेकिन यहाँ ठहरने को जगह नहीं पाती। पुनः वहीं लौट जाती है। दूसरा सूत्र है सामायिक। वह हम कल बात करेंगे कि चेतना कैसे स्वयं में ठहर जाए। वह ख्याल में आ गया तो सब ख्याल में आ गया।

महावीर का जो केन्द्र है वह सामायिक है। सामायिक बड़ा अद्भुत शब्द है। दुनिया में बहुत शब्द लोगों ने उपयोग किए हैं लेकिन इससे अद्भुत शब्द का उपयोग नहीं हो सका कहीं भी। समय का अर्थ है आत्मा; सामायिक अर्थात् आत्मा में होना। इसमें कोई यह नहीं पूछ सकता कि सामायिक किसकी। पूछोगे तो वह गलत हो जाएगा। यह सवाल ही नहीं है। ध्यान हो सकता है किसी का। सामायिक किसकी होगी ? किसी की भी नहीं होगी।

१०

प्रवचन

महावीर की साधना-पद्धति में केन्द्रिय शब्द है—सामायिक। यह शद बना है समय से। पहले इस शब्द को थोड़ा-सा समझ लेना उपयोगी होगा।

पदार्थ का अस्तित्व है तीन आयामों में : लम्बाई, चौड़ाई, ऊँचाई। किसी भी पदार्थ में तीन दिशाएँ हैं अर्थात् पदार्थ का अस्तित्व तीन दिशाओं में फैला हुआ है। अगर आदमी में हम इस पदार्थ को नापने जाएँ तो लम्बाई मिलेगी, चौड़ाई मिलेगी, ऊँचाई मिलेगी। अगर प्रयोगशाला में आदमी की काट-पीट करें तो जो भी मिलेगा, लम्बाई, चौड़ाई, ऊँचाई में घटित हो जाएगा। लेकिन आदमी की आत्मा चूक जाएगी हाथ से। आदमी की आत्मा लम्बाई, चौड़ाई और ऊँचाई की पकड़ में नहीं आती है। तीन आयाम हैं पदार्थ के। आत्मा का चौथा आयाम है। लम्बाई, चौड़ाई, ऊँचाई—ये तीन दिशाएँ हैं जिनमें सभी वस्तुएँ आ जाती हैं। लेकिन आत्मा की एक और दिशा है जो वस्तुओं में नहीं है, चेतना की दिशा है। वह है समय जो अस्तित्व का चौथा आयाम है। वस्तु हो सकती है तीन आयामों में लेकिन चेतना कभी भी तीन आयामों में नहीं हो सकती। वह चौथे आयाम में हो सकती है। जैसे अगर हम चेतना को अलग कर लें तो दुनिया में सब कुछ होगा, सिर्फ समय नहीं होगा।

समझ लें कि इस पहाड़ पर कोई चेतना नहीं है तो पत्थर होंगे, पहाड़ होगा, चाँद निकलेगा, सूरज निकलेगा, दिन डूबेगा, ऊगेगा लेकिन समय जैसी कोई चीज नहीं होगी। क्योंकि समय का बोध ही चेतना का हिस्सा है। चेतना के बिना समय जैसी कोई चीज नहीं है। और अगर समय न हो तो चेतना भी नहीं हो सकती। इसलिए वस्तु का अस्तित्व है लम्बाई, चौड़ाई, ऊँचाई में, और चेतना का अस्तित्व है काल में, समय की धारा में। आइंस्टीन ने फिर

बहुत अद्‌भुत काम किया है इस तरफ। और उसने यह चारों आयाम जोड़कर अस्तित्व की परिभाषा की है। काल और क्षेत्र दो अलग चीजें समझी जाती रही हैं सदा से। समय अलग है, क्षेत्र अलग है। आइंस्टीन ने कहा ये अलग चीजें नहीं हैं। ये दोनों इकट्ठी हैं और एक ही चीज के हिस्से हैं। उसने काल और क्षेत्र को जोड़ दिया। ये अलग चीजें नहीं हैं। किसी भी चीज के अस्तित्व में तीन चीजें हमें ऊपर से दिखाई पड़ती हैं—लम्बाई, चौड़ाई और ऊँचाई लेकिन अस्तित्व होगा ही नहीं। हम बता सकते हैं कि कौन सी चीज कहाँ हैं, किस जगह है। लेकिन अगर हम यह न बता सकें कि कब है तो उस वस्तु का हमें कोई पता नहीं चलेगा। तो आइंस्टीन ने अस्तित्व की अनिवार्यता मान लिया समय को। इस बात का पहला बोध महावीर को हुआ है कि समय चेतना की दिशा है। चेतना का कोई अस्तित्व अनुभव में भी नहीं आ सकता समय के बिना। समम का जो बोध है, जो भाव है, वह चेतना का अनिवार्य अंग है। अतः महावीर ने आत्मा को समय ही कह दिया।

इस बात में और भी बातें अन्तर्निहित हैं। इस जगत् में सब चीजें परिवर्तनशील हैं। सब चीजें क्षणभंगुर हैं। आज हैं, कल न होंगी। सब चीजें समय की धारा में बदलती हैं, मिटती हैं, बनती हैं। आज बनती हैं, कल बिखरती हैं, परसों बिदा हो जाती हैं। सिर्फ इस जगत् की लम्बी धारा में समय भर एक ऐसी चीज है जो कभी नहीं बदलता, जो सदा है जिसके भीतर सब बदलाहट होती है। जो न हो तो बदलाहट न हो सकेगी। अगर समय न हो तो बच्चा बच्चा रह जाएगा, जवान नहीं हो सकेगा; कली कली रह जाएगी, फूल नहीं हो सकती। क्योंकि परिवर्तन की सारी सम्भावना समय में है। जगत् में सब चीजें समय के भीतर हैं और परिवर्तनशील हैं लेकिन समय अकेला 'समय' के बाहर है और परिवर्तनशील नहीं है। समय अकेला शाश्वत सत्य है जो सदा था, सदा होगा। और ऐसा कभी भी नहीं हो सकता कि जो न हो। क्योंकि किसी चीज के न होने के लिए भी समय जरूरी है। समय के बिना कोई चीज नहीं हो भी सकती। जैसे जन्म के लिए समय जरूरी है वैसे मृत्यु के लिए भी समय जरूरी है, बनने के लिए भी समय जरूरी है, मिटने के लिए भी समय जरूरी है। उदाहरण के लिए हम ऐसा समझें : यह कमरा है। इसमें से हम सब चीजें बाहर निकाल सकते हैं, या भीतर भर सकते हैं। लेकिन इस कमरे के भीतर जो जगह है उसे हम बाहर नहीं निकाल सकते। कोई उपाय नहीं है। चाहे मकान रहे, चाहे जाए, क्षेत्र तो रहेगा। मकान क्षेत्र में ही बनता

है और क्षेत्र में ही विलीन हो जाता है। लेकिन क्षेत्र रहेगा। ठीक ऐसे ही समझने की जरूरत है कि समय की जो धारा है, उस धारा में सब चीजें बनेंगी, मिटेंगी। जो तत्त्व है, सदा से है और सदा है वह समय है।

महावीर आत्मा को समय का नाम इसलिए भी देना चाहते हैं क्योंकि वही तत्त्व शाश्वत, सनातन, अनादि, अनन्त सदा से और सदा रहने वाला है। सब आएगा, जाएगा। वही भर सदा रहने वाला है। इस कारण भी वह आत्मा को समय का नाम देते हैं। और इस कारण से भी कि आम तौर से हमें ख्याल में नहीं है यह बात कि महावीर की दृष्टि इस सम्बन्ध में भी बहुत गहरी गई है। आम तौर से हम समय के तीन विभाग करते हैं: अतीत, वर्तमान और भविष्य। लेकिन यह विभाजन बिल्कुल गलत है। अतीत सिर्फ स्मृति में है और कहीं भी नहीं। और भविष्य केवल कल्पना में है और कहीं भी नहीं। है तो सिर्फ वर्तमान। इसलिए समय का एक ही अर्थ हो सकता है: वर्तमान। जो है वही समय है। लेकिन अगर कोई पूछे कितना है वर्तमान हमारे हाथ में तो क्षण का कोई लाखों हिस्सा भी हमारे हाथ में नहीं है। जो क्षण का अन्तिम हिस्सा हमारे हाथ में है, उसको महावीर समय कहते हैं। जैसे कि पदार्थ को वैज्ञानिकों ने तोड़कर अन्तिम परमाणु पर ला दिया है और अब परमाणु को भी तोड़ कर इलैक्ट्रोन पर ला दिया है। इलैक्ट्रोन वह हिस्सा है जो अन्तिम खण्ड है, जिसके आगे और खन्ड सम्भव नहीं है। क्योंकि वैज्ञानिक पदार्थ का विश्लेषण कर रहा है, इसलिए उसने पदार्थ के अन्तिम खण्ड को पकड़ने की कोशिश की है। और महावीर चेतना का विश्लेषण कर रहे हैं, इसलिए उन्होंने चेतना के अन्तिम खण्ड अणु को पकड़ने की कोशिश की है। उस अन्तिम अणु का नाम 'समय' है। 'समय' एक विभाजन है वर्तमान क्षण का जो हमारे हाथ में होता है। लेकिन वह छोटा हिस्सा है। जैसे अणु दिखाई नहीं पड़ता है, परमाणु दिखाई नहीं पड़ता है, ऐसे ही क्षण का वह हिस्सा भी हमारे बोध में नहीं आ पाता। जब वह हमारे बोध में आता है तब तक वह जा चुका होता है। तो इतना बारीक हिस्सा है, इतना छोटा टुकड़ा है कि जब हम जागते हैं तब तक यह जा चुका होता है। यानी हमारे होश से भरने में भी इतना समय लग जाता है कि समय जा चुका है। जैसे इस क्षण हमारे हाथ में क्या है? अतीत नहीं, वह जा चुका। भविष्य अभी आया नहीं। दोनों के बीच में एक बारीक बाल के हजारवें हिस्से का छोट सा टुकड़ा हमारे हाथ में होगा। लेकिन वह इतना छोटा टुकड़ा है कि जब हम बोध से भरेंगे उसके

प्रति कि यह रहा वर्तमान तब तक वह जा चुका है, तब तक वह अतीत हो चुका है।

तो महावीर आत्मा को 'समय' इस अर्थ में भी कह रहे हैं कि जिस दिन आप इतने शांत हो जाएँ कि वर्तमान आपकी पकड़ में आ जाए, उस दिन आप सामायिक में प्रवेश कर गए। इसका मतलब यह हुआ कि इतना शांत चित्त चाहिए, इतना शांत, इतना निर्मल कि वर्तमान का जो क्षण है अत्यल्प, छोटा सा कण, वह भी झलक जाए। अगर वह भी झलक जाए तो समझना चाहिए कि हम सामायिक को उपलब्ध हुए। यानी समय के अनुभव को उपलब्ध हुए, समय को हमने जाना, देखा और अनुभव किया। अब तक हमने समय को अनुभव नहीं किया है। हम कहते हैं कि हमारे पास घड़ी है। हम समय नापते भी हैं। हम बताते भी हैं कि इस समय इतना बजा है। लेकिन जब हम कहते हैं—"इतना बजा है, वह बज चुका है।" जब हम कहते हैं कि इस वक्त आठ बजा है जितनी देर में हमने यह कहा कि आठ बजा उतनी देर में आठ बज चुका। घड़ी आगे जा चुकी। जरा कण भी सरक गई, आगे हो गई। यानी हम जब भी कुछ कह पाते हैं, अतीत का ही कह पाते हैं। जब भी पकड़ पाते हैं, अतीत को ही पकड़ पाते हैं। ठीक वर्तमान हमारे हाथ से चूक जाता है। और अतीत कल्पना स्मृति है सिर्फ। वह है नहीं यहाँ। है वर्तमान। जो है, अस्तित्व जो है, वह अभी एक समय का है। और उस एक समय का हमें कोई बोध नहीं क्योंकि हम इतने व्यस्त हैं, इतने उलझे और अशांत हैं कि उस छोटे से क्षण की हमारे मन पर कोई छाप नहीं बन पाती। न हमें वह दिखाई पड़ता है। उससे हम चूकते ही चले जाते हैं। समय से निरन्तर चूकते चले जाते हैं। तो हम अस्तित्व से परिचित कैसे होंगे, क्योंकि जो अस्तित्व है समय भी वही है, बाकी सब या तो हो चुका या अभी हुआ नहीं। जो है, उससे ही प्रवेश करना होगा। और उसका हमें बोध ही नहीं हो पाता, उसे हम पकड़ ही नहीं पाते। तो महावीर इसलिए भी आत्मा को समय कहते हैं कि तुम आत्मा को उपलब्ध तब हुए जब तुम समय का दर्शन कर लो। उसके पहले तुम आत्मा को उपलब्ध नहीं हो। क्योंकि जब तुम अस्तित्व का ही अनुभव नहीं कर पाते तो तुम्हारे अस्तित्व का मतलब क्या है? आत्मा तो सबके भीतर है सम्भावना की तरह, सत्य की तरह नहीं। जैसे एक बीज में छुपा हुआ है वृक्ष—एक सम्भावना की तरह, सत्य की तरह नहीं। बीज वृक्ष हो सकता है। हम भी आत्मा हो सकते हैं। जब हम कहते हैं कि सबके भीतर

आत्मा है तो उसका मतलब सिर्फ इतना है कि हम भी आत्मा हो सकते हैं, अभी हैं नहीं। और हम उसी क्षण आत्मा हो जाएंगे जिस दिन अस्तित्व आमने-सामने हमारे हो जाएगा, उसी क्षण जब हम अस्तित्व को देखने, जानने, पहचानने में समर्थ हो जाएँगे। उसके पहले हम अस्तित्ववान् नहीं हैं।

इसे दूसरी तरह भी समझा जा सकता है : अतीत और भविष्य मन के हिस्से हैं, वर्तमान आत्मा का हिस्सा है। मन हमेशा अतीत और भविष्य में रहता है, पीछे या आगे। यहाँ, इसी वक्त, अभी, अब—ऐसी कोई चीज मन में नहीं होती। मन संग्रह है अतीत का और भविष्य की योजनाओं का। मन जीता है अतीत और भविष्य में। अतीत और भविष्य के बीच में एक अत्यन्त सूक्ष्म रेखा है जो दोनों को तोड़ती है। वह वर्त्तमान है। और वह इतनी बारीक है कि उस बारीक रेखा के अनुभव के लिए हमें अत्यन्त शांत होना जरूरी है। जरा सा कम्पन हुआ कि हम चूक जाएँगे। जरा सा भी कम्पन हुआ भीतर कि निकल जाएगी रेखा। हमारा कम्पन उसे पकड़ नहीं पाएगा। इसलिए अकम्प चेतना जिस दिन हो जाए, तब समय के क्षण का छोटा सा दर्शन भी हमें होगा। वह दर्शन हमें अस्तित्व में उतार देता है यानी ऐसा समझें कि वर्तमान का क्षण ही द्वार है अस्तित्व में प्रवेश का। ब्रह्म में प्रवेश कहें, सत्य में प्रवेश कहें, मोक्ष में प्रवेश कहें, कुछ भी कहें, वर्तमान के क्षण से हम प्रविष्ट होते हैं। वही है द्वार। और वह चूक-चूक जाता है।

एक कहानी मैंने सुनी। एक अंधा आदमी एक बड़े भारी राजभवन में भटक गया है। बड़ा है भवन! हजारों द्वार हैं उस भवन में। लेकिन एक ही द्वार खुला है। सब द्वार बन्द हैं। वह अंधा आदमी द्वारों को टटोलता-टटोलता भटक रहा है कि शायद कोई द्वार खुला मिल जाए। बस पहुँचा जा रहा है खुले द्वार के करीब। ऐसे हजारों द्वार टटोलता-टटोलता वह थक गया है। और जब वह ठीक उस द्वार पर पहुँचा है जो खुला है तो उसे खुजान उठ गई है। उसने माथे पर खुजाया है और वह द्वार फिर चूक गया है। अब फिर हजारों द्वार हैं और वह फिर टटोल रहा है। मीलों के चक्कर के बाद वह फिर उस द्वार पर आया है लेकिन इतना थक गया है टटोलते-टटोलते कि उसने टटोलना बन्द कर दिया है। वह ऊब गया है। वह टटोलना छोड़ देता है। आखिर है भी वह द्वार कि नहीं। लेकिन इतने में वह द्वार फिर निकल गया है। लेकिन क्या करेगा अंधा आदमी? निकलना है तो ऊबे या न ऊबे। फिर

टटोलना शुरू करता है। ऐसे वर्षों बीत जाते हैं और वह अन्धा आदमी बार-बार उस खुले द्वार के पास से आकर चूक जाता है।

यह एक कहानी है। हजारों जन्मों तक हम समय के द्वार को टटोलते हुए घूम रहे हैं कि कहाँ से द्वार मिल जाए मोक्ष का, कहाँ से द्वार मिल जाए जीवन का, कहाँ से द्वार मिल जाए आनन्द का। टटोलते आते हैं मगर या तो हम बन्द द्वार टटोलते हैं जो अतीत के हैं जो बन्द हो चुके हैं या हम भविष्य के द्वार टटोलते हैं जो हैं ही नहीं। जो हैं नहीं उनको हम टटोल नहीं सकते; जो नहीं हो गए हैं उनको भी हम टटोल नहीं सकते। लेकिन एक द्वार जो खुला है वर्त्तमान का, वह बार-बार चूक जाता है। उस वक्त या तो हम माथा खुजाने लगते हैं या कुछ और करने लगते हैं और वह चूक जाता है। मतलब यह कि जब भी उस द्वार पर हम आते हैं, हम किसी और चीज में व्यस्त होते हैं। वर्त्तमान के क्षण में हम सदा व्यस्त हैं, इसलिए चूक जाते हैं। इसलिए सामायिक का अर्थ है अव्यस्त होना। कुछ भी नहीं कर रहे हैं, कुछ भी नहीं सोच रहे हैं तो ही उस समय को हम पकड़ पाएँगे क्योंकि हम कुछ कर रहे हैं तो चूक जाएँगे। उतनी देर में तो वह निकल गया। वह निकलता ही चला जा रहा है।

महावीर ने यह नाम बड़े गहरे प्रयोजन से दिया है। वह तो यही कहने लगे कि समय ही आत्मा है और समय को जान लो, समय में खड़े हो जाओ, समय को पहचान लो और देख लो तो तुम अपने को देख लोगे, अपने को पहचान लोगे। लेकिन समय को जानना ही बहुत मुश्किल बात है। सबसे ज्यादा कठिन है वर्त्तमान में खड़े होना क्योंकि हमारी पूरी आदत या तो पीछे होने की होती है या आगे होने की होती है। एक आदमी को पूछो कि तुम क्या कर रहे हो। या तो तुम उसे अतीत में पाओगे, या भविष्य में पाओगे। या तो वह उन दृश्यों को देख रहा है जो आ चुके हैं या उन दृश्यों की सोच रहा है जो आएँगे। लेकिन शायद ही कभी किसी व्यक्ति को पाओगे कि वह कहे कि मैं कुछ भी नहीं कर रहा हूँ। ऐसा आदमी नहीं मिलेगा। ऐसा आदमी मिल जाए तो समझना कि वह सामायिक में था उस वक्त। उस क्षण में वह कहीं भी व्यस्त नहीं था। बस था। जब हम कुछ भी नहीं कर रहे हैं, बस हैं, कुछ भी नहीं कर रहे हैं, मंत्र भी नहीं जप रहे हैं, श्वास भी नहीं देख रहे हैं, सामायिक में हैं। जिसे मैं श्वास देखने के लिए कहता हूँ वह सामायिक नहीं है। वह सिर्फ इसलिए कह रहा हूँ कि जिससे आपकी व्यर्थ की दूसरी व्यस्तताएँ छूट जाएँ। एक ही व्यस्तता रह जाए कम से कम तब मैं कहूँगा कि इससे भी छलांग लगा जाएँ। इतनी

बहुत सी व्यस्तताएँ टूट गईं। एक ही व्यस्तता रह गई कि श्वांस ही देखना है। अब यह ऐसी व्यस्तता है कि न इससे कोई धन कमाई का उपाय है, न इससे कोई लाभ है। यह एक ऐसी व्यस्तता है जिससे छलांग लगाने में कठिनाई नहीं पड़ेगी। यह एक ऐसी व्यर्थ व्यस्तता है कि अगर आप सबसे छूट गए तो इससे छूटने में देर नहीं लगेगी। जैसे मैं कहूँगा 'छोड़ें!' आप तो तैयार ही थे कि अब इसको छोड़ें। यह अभी सामायिक नहीं है। यह सामायिक के पहले की सीढ़ी है—सिर्फ छलांग लगाने की। जैसे नदी का किनारा है। वहाँ तख्ता लगा हुआ है जिस पर खड़े होकर छलांग लगाई जाती है। अगर आप यहाँ पहुँच गए हैं तो अब एक ही छलांग में आप सागर में पहुँच सकते हैं।

जब तक हम कुछ भी कर रहे हैं तब तक हम चूकते जाएँगे वर्तमान से। जब हम कुछ भी नहीं करते तब हम उतर जाएँगे। लेकिन यह हमारी समझ से एकदम बाहर हो जाता है कि कोई ऐसा मौका भी हमें मिले जब हम कुछ भी नहीं कर रहे, बस हैं। और अगर यह समझ में आ जाए तो कोई कठिनाई नहीं है। इसमें क्या कठिनाई है कि कुछ क्षणों के लिए आप 'बस' हो जाएँ और कुछ न करें? कमरे में पड़े हैं, कोने में टिके हैं, सिर्फ हैं। कुछ भी नहीं कर रहे हैं। बस हैं। आखिर होना इतना कठिन क्या है? वृक्ष हैं, पत्थर हैं, पहाड़ हैं, चाँद-तारे हैं, सब हैं और शायद वे इसलिए सुन्दर हैं कि समय में कहीं गहरे डूबे हुए हैं। हम शायद इसीलिए इतने कुरूप हैं, इतने परेशान, चिन्तित, दुखी और हैरान हैं क्योंकि समय से भागे हुए हैं, समय के बाहर छिटक गए हैं। जैसे जीवन के मूल स्रोत से कहीं झटका लग गया है, जड़ें उखड़ गई हैं, हम कहीं और हैं।

दो तरह की क्रियाएँ हैं। एक तो हमारे शरीर की क्रियाएँ हैं जो हमारी निद्रा में शिथिल हो जाती हैं, बेहोशी में बन्द हो जाती हैं। शरीर की क्रियाओं को रोकना बहुत कठिन नहीं है। शरीर की क्रियाओं से कोई गहरी बाधा नहीं है। उसके भीतर हमारे मन की क्रियाएँ हैं। वही हैं असली बाधाएँ क्योंकि वही हमें समय से चुकाती हैं। शरीर नहीं चुकवाता हमें समय से। शरीर का अस्तित्व तो निरन्तर वर्तमान में है। यह ध्यान रहे कि लोग आम तौर पर साधक होने की स्थिति में शरीर के दुश्मन हो जाते हैं जबकि शरीर बेचारे की कोई दुश्मनी ही नहीं है। शरीर तो निरन्तर समय में है। शरीर तो एक क्षण भी न अतीत में जाता, न भविष्य में जाता है। शरीर वहीं है जहाँ है। शरीर ने कभी भी किसी आदमी को नहीं भटकाया है आज तक। भटकता

है मन क्योंकि मन कहीं-कहीं जाता है। जहाँ नहीं है वहाँ जाता है। रात आप सोते हैं शरीर होगा श्रीनगर में, मन कहीं भी हो सकता है। आप दिन में बैठे हैं, शरीर है चश्मेशाही[1] पर मन कहीं हो सकता है। मगर शरीर सदा वहीं है जहाँ है। लेकिन साधक आम तौर से शरीर से दुश्मनी साध लेता है, जिसने कभी कोई नुकसान पहुँचाया ही नहीं। साधक का गहरे अर्थों में जो प्रयोग है वह होना चाहिए मन पर। किसी न किसी तरह उसे अ-मन की स्थिति में पहुँचना है। कबीर उसे कहते हैं 'अमनी' यानी ऐसी अवस्था में पहुँच जाना जहाँ मन नहीं है। अब यह बड़े मजे की बात है कि मन होगा तो क्रिया होगी; क्रियाँ होगी तो मन बना रहेगा। मन किसी भी तरह की क्रिया के लिए राजी है। आप कहें : दूकान करो। तो वह कहता है : ठीक है, दूकान करते हैं। आप कहें : दूकान नहीं, पूजा करनी है। तो वह कहता है : चलो पूजा करो। मन कहता है : कुछ भी करो, हम राजी हैं क्योंकि करने मात्र में मन बच जाता है। आप कहते हैं कि मंत्र जपो तो वह कहता है : चलो हम राजी हैं। कोई भी क्रिया करो तो मन राजी है। लेकिन मन से कहो कि हम कुछ भी नहीं करना चाहते, तो मन बिल्कुल राजी नहीं है। वह पूरी कोशिश करेगा आपको कुछ न कुछ करवाने की। वह कहेगा कि कम से कम इतना ही करो कि मन से लड़ो। विचारों को निकाल कर बाहर करो, उन्हें आने मत देना। मन कहेगा : ध्यान करो। लेकिन कुछ करो जरूर क्योंकि बिना किए काम नहीं चल सकता।

जापान का एक सम्राट् एक जेन मन्दिर को देखने गया। बड़ी मॉनेस्ट्री है, बड़ा आश्रम है। पहाड़ों पर दूर तक फैले हुए भवन हैं। बीच में बड़ा पगोडा है। सम्राट् द्वार पर ही उस आश्रम के बूढ़े प्रधान भिक्षु को कहता है कि मैं देखने आया हूँ आप कहाँ क्या करते हैं। एक-एक जगह मुझे दिखा दें कि कहाँ क्या करते हैं। वह बूढ़ा ले जाता है जहाँ भिक्षु स्नान करते हैं। वह कहता है : यहाँ भिक्षु स्नान करते हैं। सम्राट् कहता है कि इन सब फिजूल की बातों को मुझे मत दिखाएँ। असली चीज जहाँ करते हों वह बताइए। फिर वह दूसरी ओर ले जाता है। और कहता है : भिक्षु यहाँ फलाँ-फलाँ काम करते हैं। सम्राट् कहता है : क्यों आप बेकार की बातों में मेरा समय नष्ट कर रहे हैं। मैं पूछता हूँ कि भिक्षु कहाँ जरूरी चीजें करते हैं? भिक्षु कहता है यहाँ हम अध्ययन करते हैं, यह पुस्तकालय है। यहाँ भोजन करते हैं, यह भोजन-

१. श्रीनगर का वह स्थान जहाँ भगवान् श्री के ये प्रवचन हुए।

शाला है। यहाँ व्यायाम करते हैं, यह व्यायामशाला है। सम्राट् कहता है कि क्यों तुम फिजूल की बातों में मुझे भटका रहे हो? बीच में जो बड़ा भवन है, वहाँ क्या करते हैं? जब सम्राट् उससे यह पूछता है तो भिक्षु मौन हो जाता है जैसे कि वह बहरा हो। सुनता ही नहीं। दूसरी बातें बताने लगता है। कहता है यहाँ बगीचा लगाते हैं, यहाँ शाम को टहलते हैं। फिर सम्राट् पूछता है: यह सब मैं समझ गया। यह सब ठीक है। वहाँ क्या करते हैं, उस बड़े भवन में क्या करते हैं? तब भिक्षु चुप हो जाता है जैसे कोई प्रश्न पूछा ही नहीं। सम्राट् उकता गया है, परेशान हो गया है, दरवाजे पर वापस आ गया है, अपने घोड़े पर सवार हो गया है, और कहता है कि या मैं पागल हूँ या तुम पागल हो। यह बड़ा भवन जो दिखाई पड़ रहा है इसमें क्या करते हो? बोलते क्यों नहीं? तो वह भिक्षु कहता है: आप मुझे बड़ी मुश्किल में डाल देते हैं। असल में वह जगह ऐसी है जहाँ हम कुछ नहीं करते और आप पूछते हैं क्या करते हो? अगर मैं कहूँ कुछ करना, तो गल्ती हो जाए या मैं चुप रह जाऊँ। क्योंकि आप करने की भाषा समझते हो इसलिए मैंने स्नानगृह दिखलाया, अध्ययनकक्ष दिखलाया, जहाँ हम कुछ करते हैं। आप पूछते हैं: वहाँ क्या करते हो? तो मैं एकदम चुप हो जाता हूँ क्योंकि वहाँ हम कुछ करते ही नहीं। जिसे करना है, उसको वहाँ जाने की मनाही है। वहाँ करने की भाषा नहीं चलती। वहाँ जब किसी को कुछ भी नहीं करना होता तो कोई चुपचाप चला जाता है। वह हमारा ध्यान भवन है। तो सम्राट् कहता है: समझ गया। वहाँ तुम ध्यान करते हो। भिक्षु कहता है कि भूल हुई जाती है क्योंकि ध्यान का अर्थ ही है कुछ न करना।

जब तक हम कुछ कर रहे हैं तब तक ध्यान नहीं हो सकता लेकिन 'ध्यान' शब्द में भी क्रिया जुड़ी हुई है। 'सामायिक' शब्द में वह क्रिया भी नहीं है। 'ध्यान' से लगता है कुछ करने की बात है। 'सामायिक' में करने को कुछ नहीं रह जाता। 'सामायिक' का मतलब है—अपने में होना, 'समय' में होना। करना नहीं है वहाँ होना है सिर्फ। हम सब हैं बाहर-बाहर। कुछ न कुछ कर रहे हैं। ऐसा कभी नहीं है जब हम कुछ भी न कर रहे हों। आकाश में कभी देखा होगा चील को तैरते हुए। जब चील तैरती है तब पंख भी नहीं हिलाती। सिर्फ हवा पर रह जाती है वह। वैसा ही कुछ होता है हमारे भीतर भी, जब हम सिर्फ तुल जाते हैं, पंख भी नहीं हिलाते, कुछ भी नहीं करते भीतर, सब सन्नाटा हो जाता है। वह केवल होने की स्थिति है, क्रिया की नहीं है। यहाँ हम सिर्फ होते हैं, कुछ भी नहीं करते। उस स्थिति का नाम है 'सामायिक'।

इसलिए जब कोई पूछता है कि 'सामायिक' कैसे करें तो इससे और गलत सवाल दूसरा नहीं पूछ सकता। इससे ज्यादा गलत सवाल दूसरा नहीं हो सकता।

हमारी सारी भाषा चिन्तना 'करने' पर खड़ी है। 'न करने' का हमें कोई ख्याल ही नहीं है। लेकिन हम करने में अपने स्वभाव को कभी नहीं जान सकेंगे? क्योंकि 'करना' सदा दूसरे के साथ है। सूक्ष्मतम तलों पर, जब भी हम कुछ कर रहे हैं, सदा और के साथ कर रहे हैं। और जब हम कर्ता बन रहे हैं तब हम कुछ और बन रहे हैं जो हम नहीं हैं। तब हम कोई अभिनय अपने ऊपर ले रहे हैं जो हम नहीं हैं। जैसे एक आदमी दूकानदार बन रहा है। यह एक अभिनय है जो वह अपने ऊपर ले रहा है। दूकानदार होना जीवन के एक बड़े नाटक में उसका अभिनय है। एक आदमी शिक्षक है, एक आदमी नौकर है। यह अभिनय है जो आदमी ले रहे हैं। जिन्दगी के बड़े नाटक में हम यह भूल जाएँगे कि हम कुछ और थे जिन्होंने यह अभिनय स्वीकार किया था। धीरे-धीरे अभिनय से तादात्म्य हो जाएगा। दूकानदार को फिर बड़ा मुश्किल है दूकानदार न हो जाना एक क्षण भर भी।

मैं कलकत्ते में एक घर में मेहमान था। उस घर की पत्नी ने कहा कि उसका पति चीफ़ जस्टिस है हाईकोर्ट का। क्योंकि वह आपको सुनते हैं, समझने की कोशिश करते हैं, कृपा करके इतना इनसे कह दें कि कभी-कभी चीफ़ जस्टिस न हो जाएँ तो बड़ा अच्छा रहे। वे चौबीस घंटे चीफ़ जस्टिस हैं। उनकी वजह से हम बड़े परेशान हैं। वह घर में घुसते हैं और घर एकदम अदालत हो जाता है। बच्चे संभल कर बैठ जाते हैं। काम व्यवस्थित रूप से होने लगता है: चीफ़ जस्टिस आ गए। अब यह आदमी भूल गया है कि वह नाटक है। वह शान्त हो ही नहीं रहा कभी। हम जानते हैं भली भाँति कि कपड़े का दूकानदार रात में चादर भी फाड़ देता है सपने में। ग्राहकों को बेच देता है सामान। नींद खुलती है तब पता चलता है कि उसने चादर फाड़ दी। वह दिन भर कपड़ा काट रहा है, फ़ाड़ रहा है। सपने में भी वही कर रहा है। सपने में हम वही होते हैं जो हम चौबीस घंटे दिन में हैं। हम करेंगे क्या? हमारी क्रिया ने हमारे सारे व्यक्तित्व को चारों ओर से घेरा हुआ है। ऐसा कभी नहीं, जबकि हम बिल्कुल शांत हों, वही हैं जो हैं और कुछ अंगीकार नहीं कर रहे, कुछ ग्रहण नहीं कर रहे क्योंकि जब भी हम कुछ करेंगे, अभिनय शुरू हो जाएगा। और ध्यान रहे जब तक हम

अभिनय में हैं तब तक हम आत्मा में नहीं हो सकते। आत्मा में अगर होना है तो सब तरह के मंचों से नीचे उतरना होगा। अभिनय बदल लेना आसान है। एक दूकानदार संन्यासी हो सकता है। तब वह एक नई दूकान खोल लेगा। वह संन्यासी होने के अभिनय में पड़ जाएगा। लेकिन समस्त अभिनयों से कभी घड़ी भर बाहर उतर आना, जब कि आत्मा न दूकनदार रहे, न संन्यासी रहे, न गृहस्थ रहे, न पिता रहे, न माँ रहे, न बेटा रहे, न पति रहे, न पत्नी रहे और आप सब क्रिया और सब अभिनय को उतार कर एक तरफ रख देना और वही हो जाना जो आप थे जन्म के पहले और हो जाएँगे मरने के बाद।

झेन फकीर लोगों से कहते हैं कि तुम आँख बन्द करके एक काम करो; कोशिश करो खोजने की कि जब तुम जन्मे नहीं थे तुम्हारा चेहरा कैसा था? कहते हैं कि तुम उठकर एक अंधेरे कमरे में बैठ जाओ और इसकी खोज करो। वह आदमी जाता है, सोचता है, कोशिश करता है क्योंकि हम सबको ख्याल है कि चेहरा हर हालत में रहना ही चाहिए। और हमें यह ख्याल ही नहीं है कि कोई एक भीतर भी है जहाँ कोई चेहरा नहीं है। तो वह आदमी खोजता है कि मेरा मूल चेहरा क्या है, परेशान हो जाता है, थक जाता है कि जब पैदा नहीं हुआ था तो मैं कौन था, मेरा चेहरा कैसा था। आकर बार-बार खबर देता है कि शायद ऐसा था तो झेन फकीर कहता है कि यह तो तुम इसी चेहरे की नकल बता रहे हो। यह तो इसी चेहरे से मिलता-जुलता है जो तुम कह रहे हो। यह कहाँ था माँ के पेट में? माँ के पेट के पहले कहाँ था? जरा और खोजो। तब खोज चलती है। किसी दिन विस्फोट होता है और उसे ख्याल आता है कि मेरा भीतर कोई चेहरा है भी? चेहरे तो सब बाहर से लिए हुए हैं; सब मुखौटे हैं। बाजार से एक आदमी मुखोटा खरीद कर शेर बन जाता है तो हम उस पर हंसते हैं। और हम माँ-बाप से कहकर एक चेहरा ले आते हैं खरीद कर और बड़े प्रसन्न हैं। और सोंच रहे हैं यह चेहरा मेरा है। इसी तरह यह चेहरा भी गहरी दुनिया के बाजार से खरीदा गया है, ठेठ बाजार से नहीं लाया गया लेकिन फिर भी बाहर से लाया गया है। भीतर कोई चेहरा नहीं है, कोई नाम नहीं, कोई क्रिया नहीं, कोई अभिनय नहीं।

तो अगर स्वभाव को जानना हो जो मैं हूँ, उसे ही जानना हो तो मुझे सारी क्रिया, सारे चेहरे, सारे अभिनय छोड़कर थोड़ी देर बाहर खड़े हो जाना पड़ेगा। इस थोड़ी देर को बाहर खड़े हो जाने का नाम सामायिक है। और एक बार मुझे पहचाना जाए कि मेरा कोई नाम नहीं, चेहरा नहीं, शरीर

नहीं, कर्म नहीं, कोई अभिनय नहीं, मात्र होना है, अस्तित्व मात्र मेरा स्वभाव है और जानना मात्र मेरी प्रकृति है तो एक मुक्ति, एक विस्फोट होगा। यह विस्फोट व्यक्ति को जीवन के समस्त चक्कर के बाहर तत्क्षण खड़ा कर देता है। और उसे लगता है कि मैं अभिनय में था और इसलिए यह एक चक्कर था, एक खेल था। अभिनय में ऐसी भूल हो जाती है और कई बार ख्याल भी नहीं रहता क्योंकि अभिनय को हम जन्म के साथ ही पकड़ लेते हैं। हमारी सारी सभ्यता, सारी संस्कृति, सारी शिक्षा प्रत्येक व्यक्ति को उसका ठीक अभिनय देने की है। यानी एक-एक आदमी को उसका ठीक-ठीक अभिनय मिल जाए उनकी सारी व्यवस्था है। हमारी पूरी व्यवस्था ऐसी है कि प्रत्येक व्यक्ति को एक चेहरा मिल जाए, एक काम मिल जाए, एक अभिनय मिल जाए, नाटक में काम करे, चेहरा निभाए और जिन्दगी गुजार दे। जिस आदमी को चेहरा न मिल पाए, अभिनय न मिल पाए हम कहते हैं वह आदमी भटक गया, खो गया है। उसके पास न कोई काम है, न कोई चेहरा है। वह क्या करता है, कुछ पता नहीं चलता। वह कौन है कुछ पता नहीं चलता। तो हम उन आदमियों को सफल कहते हैं जो आदमी इस अभिनय में जितना तादात्म्य कर लेते हैं और जितने गहरे उतर जाते हैं।

एक चित्रकार था—गोगां। वह चालीस वर्ष की उम्र तक दलाल रहा। और खूब कमाया उसने। पत्नी थी, बच्चे थे और कभी किसी ने सोचा नहीं था कि गोगां एक रात घर से नदारद हो जाएगा। रात सोया था पत्नी को नमस्कार करके, बच्चों को प्रेम करके और आधी रात कब चला गया घर से पता नहीं चला। न कभी उसे किसी दूसरे स्त्री में उत्सुक देखा गया था कि पत्नी यह विचार करे कि कहीं भाग गया किसी स्त्री के साथ। न किसी क्लब में, न किसी शराब में, न किसी जुए में, उसे कोई उत्सुकता थी। बड़ा सीधा-सादा आदमी था। कमाता था, घर का काम करता था, बच्चों से प्रेम था, पत्नी से प्रेम था। कोई कभी झगड़ा नहीं हुआ था, कोई घटना न घटी थी। अचानक वह आदमी रात कहाँ नदारत हो गया, 'दो साल तक पता न चला। दो साल बाद पता चला कि वह पेरिस में एक चित्रकार के पास चित्रकला सीख रहा है। घर के लोग भागे गए। पत्नी भागी गई, कहा : तुम्हें क्या हो गया, तुम आए क्यों? तो उसने कहा कि ऐसा ख्याल आ गया कि क्या जिन्दगी भर दलाल होने का ही अभिनय करता रहूँगा? उसकी पत्नी ने कहा : यह मेरी कुछ समझ में नहीं आता। इसका क्या मतलब है? उसने कहा कि इसका मतलब

यह है कि मैंने सोचा कि यह कोई मेरा चेहरा तो नहीं है। यह तो ग्रहण किया हुआ चेहरा है। बदल लें चेहरे को। तो उन्होंने कहा कि 'हम बच्चे और पत्नी।' उसने कहा : "तुम्हारे लिए मैं इन्तजाम कर आया हूँ। लेकिन अब मैं किसी का पति नहीं हूँ, किसी का बाप नहीं हूँ।" कोई जिन्दगी भर बाप ही बना रहूँ और पति ही बना रहूँ? किसी की समझ में नहीं आया और उन्होंने समझा कि आदमी पागल हो गया है। दस वर्ष निरन्तर मेहनत करके वह दुनिया के श्रेष्ठतम चित्रकारों में एक हो गया है। लेकिन एक दिन अचानक लोगों ने पाया कि जब उसके चित्र लाखों में बिकने लगे तो वह छोड़कर चला गया। किसी ने उससे पूछा कि यह तुम क्या कर रहे हो? तुम्हारी इतनी प्रतिष्ठा हो गई है, इतना तुमने श्रम किया है। तो उसने कहा कि कोई भी अभिनय मेरा स्वभाव नहीं है। मैं अपने चेहरे की खोज में लगा हूँ। मैं किसी नकली चेहरे को पकड़ना नहीं चाहता।

मैं आपसे यह नहीं कह रहा हूँ कि आप जो कर रहे हैं, उसे छोड़कर भाग जाएँ। कह रहा हूँ कुल इतना कि जो चेहरा आपने सख्त, मजबूती से पकड़ लिया है वही आप हैं इस भ्रम में न पड़ें। वह आपके होने का एक ढोंग है। होना नहीं है। वह आपकी जीवन-पद्धति का, अभिनय का एक रूप है। जो आप कर रहे हैं, वह जरूरी है करेंगे। करना है। लेकिन आपकी न करने की भी कोई अवस्था होनी चाहिए जहाँ आप कुछ भी नहीं कर रहे हैं, जहाँ सारे सम्बन्ध, सारी क्रियाएँ, सारे अभिनय क्षीण हो गए हैं, आप ही रह गए हैं बस अपने होने में। ऐसा जो क्षण उपलब्ध हो जाए तो समय का बोध शुरू होता है, और व्यक्ति स्वयं में स्थिर हो जाता है, रुक जाता है। और वह अनुभूति एक बार भी मिल जाय तो दुबारा कभी खोती नहीं। फिर आप कितना ही कुछ करते रहें, आप प्रत्येक करने में जानते हैं कि यह अभिनय है। थोड़ी देर के बाद उतर कर घर चले जाना है। यह स्मृति इतनी साफ हो जाती है कि फिर आप अभिनेता होने से तादात्म्य नहीं कर लेते हैं अपना। अभिनय जीवन व्यवस्था का अंग हो जाता है। लेकिन अभिनय के बाहर आपकी सत्ता की झलक मिलनी शुरू हो जाती है।

कृष्ण के जीवन व्यवहार को जो नाम दिया है, वह है 'लीला'। 'लीला का मतलब है खेल, नाटक जो सच्चा नहीं, माना हुआ है। जो व्यक्ति सामायिक को उपलब्ध हो आएगा उसका जीवन लीला हो जाएगा। वह चरित्र नहीं रह जाएगा। इसलिए राम के जीवन को हम 'लीला' नहीं कहते। वह एक

चरित्र है। वहां नीति की पकड़ गहरी है। वहां अभिनय भारी है। लेकिन कृष्ण के मामले को हम कहते हैं—'लीला।' क्योंकि वहां चीजें तरल हैं; पकड़ नहीं है। सब खेल है। और भीतर एक आदमी बाहर खड़ा है जो खेल के बिल्कुल बाहर है। क्या ऐसा कर सकते हैं आप कि क्षण भर खेल के बाहर उतर आएं, वे वस्त्र उतार दें जो नाटक के मंच पर पहने थे, वे चेहरे भी निकाल दें, वह मेकअप भी हटा दें जो काम करता था मंच पर, और खाली घर लौट आएं जैसे आप हैं? ऐसा अगर कर सकें तो इसके पहले हिस्से का नाम प्रतिक्रमण है—इस लौटने का नाम। दूसरे का नाम है सामायिक जब आप अपने में ठहर गए हैं, जैसे झींगुर बोल रहा है, वृक्षों में पत्ते लग रहे हैं, आकाश में चांद की किरणें गिर रही हैं, ऐसा ही किसी क्षण में आप कुछ कर नहीं रहे हैं, जो हो रहा है हो रहा है; स्वांस चल रही है चल रही है, आप चला नहीं रहे हैं; आंख झपक रही है झपक रही है, आप झपका नहीं रहे हैं; पैर थक गया है, हिल गया है, आपने हिलाया नहीं है। और आप बिल्कुल ऐसे हो गए हैं जैसे हैं ही नहीं। उस क्षण में आपको पता चल सकेगा कि मैं कौन हूं, मेरी आत्मा क्या है, मेरा अस्तित्व क्या है और एक बार इसका पता चल जाए तो फिर जीवन दूसरा होगा; फिर जीवन वही कभी नहीं होगा जो था। इसे हम दो चार उदाहरणों से समझाने की कोशिश करें।

तिब्बत में एक फकीर हुआ है मार्पा। वह अपने गुरु के पास गया। गुरु लेटा हुआ है। वह गुरु से कहता है: आप इस समय क्या कर रहे हैं? गुरु कहता है: किसी समय मैंने कुछ नहीं किया। मार्पा कहता है: कुछ तो कर ही रहे होगें? बिना किए कैसे हो सकते हैं? गुरु कहता है: करने वाला कभी हुआ है? किया कि गए। नहीं किया कि पाया। मार्पा कहता है कि कुछ समझ में नहीं आया। गुरु कहता है: तुम समझने की कोशिश कर रहे हो इसलिए समझ में कैसे आए? समझने की कोशिश न करो। देखो, जानो और पहचानो।

एक जर्मन विचारक है हैरीगेल। वह जापान गया। वहां उसने बहुत सी तरकीबें खोजीं जिनके माध्यम से वह 'सामायिक' में ले जाना सिखाते हैं। उनमें फूल जमाने की कला भी एक है जिससे आप ध्यान को उपलब्ध हो जाते हैं। जिस दिन फूल जमाने की कला में कोई निष्णात हो जाता है, गुरु पूछता है। जब वह कहता है कि बहुत अच्छे जमाए फूल तो उसका गुरु कहता है उससे: ऐसा मत कह, तू कह कि फूल जम गए, मैंने कुछ किया नहीं है, फूल ऐसे जमना

चाहते थे। मैंने फूल जमाए नहीं। मेरा उन्होंने उपयोग ले लिया और फूल जम गए। तो फूल जमाने से भी सिखाते हैं, तलवार चलाने से भी सिखाते हैं, तीर चलाने से भी सिखाते हैं। हैरीगेल जिस गुरु के पास गया वह धनुर्विद्या से ध्यान सिखाता था। तीन साल तक हैरीगेल ने धनुर्विद्या सीखी। उसके निशाने अचूक हो गए। लेकिन गुरु रोज कहता है: नहीं, अभी कुछ भी नहीं हुआ है। तो हैरीगेल कहता है कि मैं परेशान हो गया तीन साल मेहनत करते-करते। मेरा एक निशाना भी नहीं चूकता है और आप कहते हैं: कुछ नहीं हुआ है। गुरु कहता है: निशाने से लेना-देना क्या है? अभी तीर तू चलाता है, वह चलता नहीं है। निशाने से क्या मतलब? निशाना लगे न लगे यह गौण बात है। और निशाना क्यों न लगेगा? निशाना लगेगा। निशाने से कुछ लेना-देना नहीं है। लेकिन तू तीर चलाता है, तीर अभी चलता नहीं। तीन साल परेशान हो गया हैरीगेल। जो भी देखने आता, वह कहता हैरीगेल अद्‌भुत हो तुम! उसका कोई निशाना नहीं चूकता लेकिन उसका गुरु रोज कह देता 'नहीं, अभी कुछ नहीं हुआ है।' आखिर थक गया है हैरीगेल। और उसने कहा: अब क्षमा करें। अब मैं लौट जाऊँ। लेकिन गुरु ने कहा: सर्टिफिकेट नहीं दे सकूँगा। इतना लिख सकता हूँ कि तीन साल मेरे पास रहा लेकिन असफल लौटता है। वह कहता है कि सब निशाने ठीक लगते हैं। गुरु ने कहा निशाने से हमें कोई मतलब ही नहीं। हम तुझे देख रहे हैं। तू ही ठीक नहीं है क्योंकि तू अभी तक ऐसा नहीं हो पाया है कि तीर चले। अभी तू तीर चलाता है। हैरीगेल पश्चिमी आदमी है। उसकी समझ से बाहर है बिल्कुल ही यह बात। वह लिखता है अपनी किताब में: मेरी समझ के ही बाहर है कि तीर चलेगा ही कैसे जब तक मैं न चलाऊँगा। यह निपट बकवास मालूम पड़ती है कि तीर अपने आप चले। और वह कहता है ऐसा चलाओ जैसा कि तुमने न चलाया हो। बस तीर चल जाए। तुम बीच में मत आओ, तुम क्रिया मत बनो, तुम कर्ता मत बनो। थक गया वह। आखिर तीन साल बाद उसने कहा कि मैं कल टिकट बुक करवा आया हूँ। मैं वापस जा रहा हूँ। गुरु ने कहा: जैसी तुम्हारी मर्जी। दूसरे दिन सांझ को हवाई जहाज चलना है। सुबह वह अन्तिम बिदा लेने गुरु के पास जाता है। गुरु दूसरे शिष्यों को तीर चलाना सिखाता रहा है। हैरीगेल एक बेंच पर बैठ गया है। उसके गुरु ने तीर उठाया है। तीर चलाया है। हैरीगेल एकदम से खड़ा हो गया है। गया है गुरु के पास बिना बोले। धनुष हाथ में लिया है। तीर चलाया है। गुरु ने कहा ठीक: तीर चल गया। हैरीगेल ने

कहा : लेकिन इतने दिन से क्यों नहीं हो सका। उसने कहा : तू इतने दिन से कोशिश में लगा रहा। आज तू कोशिश में नहीं था। आज तू ऐसे आकर बैठा था कि बिदा लेनी है। हैरीगेल ने कहा : 'हाँ, मैं आज तक देख ही नहीं सका आपको। आज मैंने पहली दफा देखा कि तीर चल रहा है और आदमी मौजूद नहीं है। फिर मैं उठा। मैं यह भी नहीं कह सकता कि क्यों उठा ? उठ गया। तीर हाथ में आ गया। तीर चल गया।' गुरु ने कहा : अब मैं तुझे लिखकर दे सकता हूँ। वैसे एक ही दिन काफी है। बात खत्म हो गई। तुझे समझ में आ गया फर्क। न हम कर्ता हैं, न हम अकर्ता हैं। एक क्षण भी अकर्ता हो जाएं तो बात खत्म हो गई। एक क्षण अकर्ता का ही 'सामायिक' का क्षण है। एक और घटना मुझे याद आती है।

चीन में एक हुईहाई फकीर हुआ। वह अपने गुरु के पास जाकर कहता है कि मुझे मोक्ष पाना है, सत्य पाना है। गुरु कहता है : जब तक पाना है तब तक कहीं और जा। जब पाना न हो तब मेरे पास आना। उसने कहा जब मुझे पाना नहीं होगा तो मैं आपके पास क्यों आऊँगा ? गुरु कहता है : 'मत आना।' लेकिन जब तक पाना है तब तक मुझसे क्या 'लेना-देना' क्योंकि पाने की भाषा तनाव की भाषा है। जब तक तू कहता है : 'पाना है तो पाना होगा भविष्य में। तू होगा आज में। और तेरा मन खिंचेगा भविष्य तक। तनाव हो जाएगा'। वह गुरु से पूछता है : आप कुछ पाने के लिए नहीं करते ? गुरु कहता है 'नहीं, जब तक हम पाने के लिए करते थे नहीं पाया। जिस दिन पाना छोड़ दिया, उस दिन पा लिया। मेरे बूढ़े गुरु ने मुझसे कहा था कि 'खोजो और खो दोगे। मत खोजो, और पा लो।' तब मैं भी नहीं समझता था कि मामला क्या है 'मत खोजो और पा लो।' 'खोजोगे और खो दोगे ?' गुरु ने जब मुझसे कहा था तो मैंने कहा कि यह तो बिल्कुल पागलपन की बात है। खोजेंगे नहीं तो पाएंगे कैसे ? गुरु ने मुझसे कहा था कि तुम खोजते हो इसीलिए खो रहे हो क्योंकि जिसे तुम खोजते हो उसे तुम पाए ही हुए हो। एक क्षण तुम खोज को रोको, दौड़ को रोको, ताकि तुम देख सको कि तुम्हें क्या मिला हुआ है। तो गुरु ने कहा : 'मैं भी तुमसे कहता हूँ कि जब तक पाना हो तू कहीं और खोज ले। और जब न पाना हो तब आ जाना। वह युवक कई आश्रमों में भटकता फिरा। कई जगह खोज की। थक गया, परेशान हो गया, कहीं कुछ मिला नहीं, कहीं कुछ पाया नहीं। थका-मांदा वापस लौटा। तब गुरु ने पूछा : 'क्या इरादे हैं। और खोजो ?' वह कहता है :

नहीं मैं बहुत थक गया। कुछ खोजना नहीं है। विश्राम के लिए आया हूँ। तब गुरु ने कहा : आओ, स्वागत है। कभी-कभी जो श्रम से नहीं मिलता है, विश्राम में मिल जाता है।

न भूत में जाना, न भविष्य में जाना, न कुछ पाना, न कहीं कुछ खोजना, बस जहाँ है वहीं रह जाना, नहीं तो सम्पूर्ण उमर बीत जाती है। बुद्ध को जिस दिन उपलब्धि हुई, उस दिन सुबह उनसे लोगों ने पूछा : 'आपको क्या मिला ?' बुद्ध ने कहा : मिला कुछ भी नहीं। जो मिला ही हुआ था, वही मिल गया। कैसे मिला ? बुद्ध ने कहा 'कैसे, की बात मत पूछो। जब तक कैसे की भाषा में मैं सोचता था, तब तक नहीं मिला। क्योंकि जो मिला ही हुआ था, उसको मैं खोजता था। फिर मैंने सब खोज छोड़ दी। और जिस क्षण मैंने खोज छोड़ी, पाया कि जिसे मैं खोजता था वह है ही। असल में स्वभाव का, स्वरूप का मतलब है जो है ही। खोज का मतलब है वह जो नहीं है, उसे हम खोज रहे हैं। इसलिए जब कोई आदमी आत्मा को खोजने लगता है तब वह पागलपन में लग गया है। क्योंकि आत्मा को कौन खोजेगा ? कैसे खोजेगा ? वह तो है ही हमारे पास। जब हम खोज रहे हैं तब भी, जब नहीं खोज रहे हैं तब भी। फर्क इतना ही पड़ता है कि अब खोजने में हम उलझ जाते हैं, चूक जाते हैं। नहीं खोजते हैं—दिख जाता है, मिल जाता है, उपलब्ध हो जाता है।

यह बात ठीक से ख्याल में आ जानी चाहिए कि सामायिक है अप्रयास अ-खोज, कोई लक्ष्य नहीं है जो भविष्य में है, यह भी अभी, और यहीं, अगर हम लक्ष्य को खोजते हुए भटकते रहे तो हम चूकते चले जाएँगे, अनन्त जन्मों तक, अगर आप इसी क्षण में हो सकते है, और कुछ भी नहीं करते तो आप वहीं पहुँच जाएँगे जहाँ महावीर सदा से खड़े हैं। लेकिन हमारा मन वही प्रश्न बार-बार उठाए जाता है : कैसे करें ? क्या करें, कहाँ जाएँ ? कहाँ खोजें ? जो नहीं जानते हैं वे कहेंगे उसे जो खोजने की इच्छा कर रहा है 'खोजो।' जो जानते हैं कहेंगे : और कहीं मत खोजो, जहाँ से प्रश्न उठा है, वहीं उतर जाओ। वे कहेंगे कि जहाँ यह जो भीतर पूछ रहा है कि आत्मा को कैसे पाएँ, मोक्ष को कैसे पाएँ, इसी में उतर जाओ। और इसी में उतरने से मोक्ष मिल जाएगा, आत्मा मिल जाएगी। यही है आत्मा; यही है मोक्ष। लेकिन कहीं कुछ मनुष्य के चित्त की पूरी यांत्रिकता में कुछ बुनियादी भूल है कि वह चूकता ही चला जाता है। एक बारीक सी बात उसके ख्याल में नहीं आ पाती कि जो मुझे पाना है, वह मुझे किसी न किसी अर्थ में मिला ही हुआ है। अगर यह स्पष्ट रूप

से ख्याल में आ जाए तो दूसरी बात ख्याल में आ जाएगी कि हमें श्रम से नहीं पाना है इसे, विश्राम में पाना है। तब यह भी समझ में आ जाएगा कि पाने की भाषा ही गलत है। जो पाया ही हुआ है उसका आविष्कार कर लेना है। इसलिए आत्मा उपलब्ध नहीं होता सिर्फ आत्म-आविष्कार होता है। कुछ ढँका हुआ था, उसे उघाड़ लिया है। और ढँका है हमारी खोज करने की प्रवृत्ति से; ढँका है हमारे और कहीं होने की स्थिति से। हम कहीं और न हों तो उघड़ जाएगा, अपने से उघड़ जाएगा, अभी उघड़ जाएगा। सामायिक न तो कोई क्रिया है, न कोई अभ्यास है, न कोई प्रयत्न है, न कोई साधना है, न कोई साधन है।

मैं एक छोटी सी घटना से समझा दूँ। मुछाला महावीर में पहला शिविर हुआ। राजस्थान की एक वृद्ध महिला भूरबाई भी उस शिविर में आई। उसके साथ उसके कुछ भक्त भी आए। फिर जब भी मैं राजस्थान गया हूँ, निरन्तर प्रतिवर्ष हर जगह भूरबाई आती रही साथ कुछ लोगों को लेकर। सैकड़ों लोग पूजा करते हैं उसकी। सैकड़ों लोग पैर छूते हैं, सैकड़ों लोग उसे मानते हैं। और वह एक निपट साधारण, ग्रामीण स्त्री है। न कुछ बोलती, न कुछ बताती। लेकिन लोग पास बैठते हैं, उठते हैं, सेवा करते हैं और चले जाते हैं। ज्यादा से ज्यादा वह प्रेम करती है लोगों को। उनको खिला देती है, उनकी सेवा कर देती है और उनको बिदा कर देती है लेकिन फिर भी, सैकड़ों लोग उसको प्रेम करते हैं, उसके पास आते हैं। तो वह आई। पहले दिन ही सुबह की बैठक में मैंने समझाया कि ध्यान क्या है जैसे अभी आप से कहा कि 'सामायिक' क्या है और कहा कि ध्यान करना नहीं है, 'न करने' में डूब जाना है। उस भूरबाई के पास एक व्यक्ति पच्चीस वर्षों से उसकी सेवा करते हैं। वह कभी हाईकोर्ट के वकील थे। फिर सब छोड़ कर वे भूरबाई के दरवाजे पर बैठ गए। उसके कपड़े धोते, उसके पैर दबाते और आनन्दित हैं। वह भी आये थे। जब सांझ को सब ध्यान करने आए तो उन सज्जन ने मुझे आकर कहा कि बड़ी अजीब बात है। भूरबाई को हमने बहुत कहा कि ध्यान करने चलो। वह खूब हँसती है। जब हम उससे बार-बार कहते हैं तो वह कहती है कि तुम जाओ। और जब हम नहीं माने तो उसने कहा कि तुम जाओ यहाँ से, तुम ध्यान करो। तो उसने मुझे आकर कहा कि मुझे बड़ी हैरानी हुई कि हम आए किसलिए। वह तो आती नहीं कमरे को छोड़ कर। मैं इधर आया कि

उसने दरवाजा बंद कर लिया। मैंने कहा कि कल जब वह सुबह आए तो उसके सामने ही मुझसे पूछना। सुबह वह बुढ़िया आई और मेरे पैर पकड़कर हंसने लगी और कहने लगी : रात बड़ा मजा हुआ। आपने सुबह कितना समझाया कि ध्यान करना नहीं है और हमारा यह वकील कहता है : ध्यान करने चलो। तो मैंने उससे कहा कि तू जल्दी से जा यहाँ से क्योंकि करने वाला रहेगा तो कुछ न कुछ गड़बड़ करेगा। तू जल्दी से जा यहाँ से। तू ध्यान कर। और जैसे ही यह बाहर आया, मैंने दरवाजा बंद कर लिया और मैं ध्यान में चली गई। और आपने ठीक कहा। 'करने से' नहीं हुआ। वर्षों तक नहीं हुआ करने से और कल रात हुआ क्योंकि मैंने कुछ नहीं किया। बस मैं पड़ गई, जैसे मर गई हूँ। पड़ी रही, और हो गया। और यह कहता था ध्यान करने चलो। यह इधर ध्यान करने आया और मैं उधर ध्यान में गई और यह चूक गया। आप इसको समझाओ कि वह करने की बात भूल जाए।

करने की बात हमें नहीं भूलती, किसी को भी नहीं भूलती। इसलिए मुझे भी समझने में आप निरन्तर चूक जाते हैं कि मैं क्या कह रहा हूँ। महावीर को समझने में भी लोग निरन्तर चूके हैं कि वे क्या कह रहे हैं।

एक छोटी सी घटना है। लाओत्से एक जंगल से गुजर रहा है। उसके साथ उसके कुछ शिष्य हैं। किसी राजा का महल बन रहा है और जंगल में हर वृक्ष की शाखाएँ काटी जा रही हैं, तने काटे जा रहे हैं, लकड़ियाँ काटी जा रही हैं। पूरा जंगल कट रहा है। सिर्फ एक वृक्ष है बहुत बड़ा जिसके नीचे हजार बैलगाड़ी ठहर सकती हैं। उस वृक्ष की किसी ने एक शाखा भी नहीं काटी है। लाओत्से ने अपने शिष्यों से कहा कि जरा जाओ, उस वृक्ष से पूछो कि इसका रहस्य क्या है। जब सारा जंगल कट रहा है तो यह वृक्ष कैसे बच गया है। इस वृक्ष के पास जरूर कोई रहस्य है। जाओ, जरा वृक्ष से पूछ कर आओ। शिष्य दरख्त का चक्कर लगा कर आते हैं और लौट कर कहते हैं कि हम चक्कर लगा आए मगर वृक्ष से क्या पूछें? यह बात जरूर है कि वृक्ष बड़ा भारी है, किसी ने नहीं काटा उसे। बड़ी छाया है उसकी, बड़े पत्ते हैं उसके। बड़ी दूर से आ आकर पक्षी विश्राम करते हैं। हजारों बैलगाड़ियाँ नीचे ठहर सकती हैं। लाओत्से ने कहा तो जाओ, उन लोगों से पूछो जो दूसरे वृक्षों को काट रहे हैं कि इसको क्यों नहीं काटते। रहस्य जरूर है उस वृक्ष के पास। तो वे गए हैं और एक बढ़ई से उन्होंने पूछा है कि तुम इस वृक्ष को क्यों नहीं काटते। उस बढ़ई ने कहा है

कि इस वृक्ष को काटना मुश्किल है। यह वृक्ष बिल्कुल लाओत्से की भाँति है तो उसके शिष्यों ने कहा कि हम लाओत्से के शिष्य हैं। तब बढ़ई ने कहा यह वृक्ष लाओत्से की भाँति है, बिल्कुल बेकार है, किसी काम का नहीं, लकड़ी कोई सीधी नहीं, सब तिरछी हैं, किसी काम में नहीं आतीं, जलाओ तो धुंआ देती हैं। इसे काटे भी कौन? इसलिए बचा हुआ है। वे लौटे। उन्होंने लौटकर कहा बड़ी अजीब बात हुई। बढ़ई ने कहा है कि लाओत्से की भाँति है यह वृक्ष। लाओत्से ने कहा : बिल्कुल ठीक इसी वृक्ष की भाँति हो जाओ। न कुछ करो, न कुछ पाने की कोशिश करो। क्योंकि जिन वृक्षों ने सीधा होने की कोशिश की, सुन्दर होने की कोशिश की, कुछ भी बनने की कोशिश की उनकी हालतें देख रहे हो। एक भर वह वृक्ष है जिसने कुछ भी बनने की कोशिश नहीं की, जो हो गया हो गया, तिरछा तो तिरछा, आड़ा तो आड़ा, धुंआ निकलता है तो धुंआ निकलता है। देखो वह कैसा बच गया है—बिल्कुल लाओत्से जैसा। और ऐसे ही हो जाओ अगर बचना हो और बड़ी छाया पानी हो। और तुम्हारी शाखाओं में बड़े पक्षी विश्राम करें और तुम्हें कभी कोई काटने न आए। फिर शिष्यों ने कहा कि हम ठीक से नहीं समझे कि बात क्या है। यह तो एक पहेली हो गई। वृक्ष से तो नहीं पूछ सके लेकिन जब आप कहते हैं कि मेरे ही भाँति यह वृक्ष है तो हम आपसे ही पूछते हैं कि रहस्य क्या है? तब लाओत्से ने कहा कि रहस्य यह है कि मुझे कभी कोई हरा नहीं सका क्योंकि मैं पहले से ही हारा हुआ था। मुझे कभी कोई उठा नहीं सका क्योंकि मैं सदा उस जगह बैठा जहाँ से कोई उठाने आता ही नहीं। मैं जूतों के पास ही बैठा सदा। मेरा कभी कोई अपमान नहीं कर सका क्योंकि मैंने कभी मान की कामना नहीं की। मैंने कुछ होना नहीं चाहा, न धनी होना चाहा, न यशस्वी होना चाहा, न विद्वान् होना चाहा, इसलिए मैं वही हो गया जो मैं हूँ यानी कुछ और होना चाहता तो मैं चूक जाता। यह वृक्ष—ठीक कहते हैं वे लोग, मेरे जैसा इसने कुछ नहीं होना चाहा। इसलिए जो था, वही हो गया। और परम आनन्द है, वही हो जाना जो हम हैं, जो हम हैं उसी में रम जाना मुक्ति है, जो हम हैं उसी को उपलब्ध कर लेना सत्य है।

सामायिक को अगर ऐसा देखेंगे तो समझ में आ जाएगा और मन्दिरों में जो सामायिक की जा रही है, अगर वहाँ समझने गए तो फिर कभी समझ में नहीं आएगा। वे सब करने वाले लोग हैं। वे वहाँ भी सामायिक कर रहे हैं,

वहाँ भी व्यवस्था दे रहे हैं। मंत्र है, जप है, इन्तजाम है—सब कर रहे हैं। वह सब क्रिया है और क्रिया के पीछे लोभ हैं। क्योंकि ऐसी कोई क्रिया ही नहीं जिसके पीछे लोभ न हों, पाने की कामना न हो। स्वर्ग है, मोक्ष है, आत्मा है, कुछ न कुछ उन्हें पाना है। उसके लिए वे क्रिया कर रहे हैं। और जिसके भी पाने की आकांक्षा है, सब पा लें सिर्फ स्वयं को नहीं पा सकते। क्योंकि स्वयं को पाने की आकांक्षा से नहीं पाया जा सकता। पाने की सब आकांक्षा स्वयं के बाहर ले जाती है। जब पाने की कोई आकांक्षा नहीं रही तो आदमी स्वयं में वापस लौट आता है। यह जो वापिस लौट आना है और घर में ही ठहर जाना है, इसका नाम 'सामायिक' है। महावीर ने अद्‌भुत व्यवस्था की है उस 'अक्रिया' में उतर जाने की—होने मात्र में उतर जाने की। जिसको समझ में आ जाए उसे करने मात्र का सवाल नहीं है फिर। और जिसकी समझ में न आए वह कुछ भी करता रहे, उसे कोई फर्क पड़ने वाला नहीं।

प्रश्न : अठतालीस मिनट का इसमें क्या हिसाब है?

उत्तर : कुछ मतलब नहीं है। यहाँ मिनट का सवाल ही नहीं है। एक समय भर ठहर जाना काफी है। एक क्षण का जो हजारवाँ हिस्सा है, लाखवाँ हिस्सा है उसमें भी अगर तुम ठहर गए तो बात हो गई।

प्रश्न : यह सूत्र क्यों बनाए हैं सामायिक के?

उत्तर : सूत्र अनुयायी बनाते हैं और बाँधते हैं। महावीर को कोई सम्बन्ध नहीं है इन सूत्रों से। असल में सदा ही यह कठिनाई रही है कि अनुयायी क्या करता है। यह बड़ा मुश्किल मामला है। वह जो कर सकता है करता है। और वह सब इन्तजाम कर देता है पूरा का पूरा। और उसमें जो महत्वपूर्ण था वह इन्तजाम में ही खो जाता है। और अनुयायी प्रेम से इन्तजाम करता है। वह कहता है कि सब व्यवस्थित कर दो। लोग पूछते हैं कि क्या करना चाहिए, कितनी देर करना चाहिए, कैसे करना चाहिए। कुछ इन्तजाम करें, नहीं तो लोग कैसे समझेंगे, सामान्य आदमी कैसे समझेगा। सामान्य आदमी के लिए अनुयायी इन्तजाम कर देता है। फिर वह इन्तजाम चलता है। सत्य का उससे कोई सम्बन्ध नहीं रह जाता।

महावीर जैसे लोगों को समझना ही मुश्किल है। क्योंकि वह जो बात कह रहे हैं, इतनी गहराई की है, और हम जहाँ खड़े हैं वह इतने उथलेपन में है बल्कि उथलेपन में भी तट पर खड़े हुए हैं और वहाँ से जो हमारी समझ में आता है, वह इन्तजाम हम कर लेते हैं। अनुयायी सारी व्यवस्था देता है, और

कुछ व्यवस्थापरक मस्तिष्क होते हैं जो सदा व्यवस्था देते रहते हैं। वह किसी भी चीज को व्यवस्थित कर देते हैं। कुछ चीजें ऐसी हैं जो व्यवस्था में ही मर जाती हैं। असल में जीवनबोध की कोई भी चीज व्यवस्था में ही मर जाती है। मेरा कहना है कि व्यवस्था मत देना। क्योंकि व्यवस्था दी तो जिनके समझ में भी कभी आ सकता था उनकी समझ में भी कभी नहीं आएगा फिर। इसलिए उसको अव्यवस्थित ही छोड़ देना। जैसा है वैसा ही छोड़ देना।

प्रश्न—अगर करना हो 'सामायिक' तो क्या कहेंगे? सामायिक करेंगे या नहीं?

उत्तर—नहीं, बिल्कुल नहीं करेंगे।

उसका मतलब इतना है कि कुछ देर के लिए कुछ भी नहीं करना है। जो हो रहा है, होने देना है। विचार आते हैं, विचार आने दो। भाव आते हैं, आने दो। हाथ हिलते हैं, हिलने दो। करवट बदलना है, बदलने दो। सब होने दो। थोड़ी देर के लिए कर्ता मत रहो बस साक्षी रह जाओ। जो हो रहा है, होने दो; कुछ मत करो। जो व्यवस्था उत्पन्न होगी, वह सामायिक है। यानी सामायिक के लिए कुछ भी नहीं करना है। अगर आप कुछ भी न कर रहे हों थोड़ी देर तो हो ही जाएगा। सामायिक तब होगी जब आप बिल्कुल ही अप्रयास में पड़ेंगे। जैसे कभी आपने ख्याल किया हो किसी का नाम आपको भूल गया है और आप कोशिश कर रहे हैं याद करने की और वह याद नहीं आ रहा है, फिर आप ऊब गए और थक गए और आपने कोशिश छोड़ दी और आप दूसरे काम में लग गए और अचानक वह नाम याद आ गया है। तो अब अगर कोई कहे कि हमें किसी का नाम भूल जाए और उसे याद करना हो तो हम क्या करें उससे हम यह कहेंगे कि कम से कम नाम याद करने की कोशिश मत करना। तो वह कहेगा कि हमको नाम ही तो याद करना है और आप यह क्या कहते हैं? तो उससे हम कहेंगे कि नाम याद करने की कोशिश मत करना तो नाम याद आ जाएगा। और तुमने कोशिश की तो मुश्किल में पड़ जाओगे क्योंकि तुम्हारी कोशिश अशान्त कर देती है मस्तिष्क को। तो उसमें से जो आना चाहिए वह भी नहीं आ पाता। मस्तिष्क सख्त हो जाता है।

जुजुत्सू एक कला होती है युद्ध की, लड़ाई की, कुश्ती की। आम तौर से जब दो आदमियों को लड़ने के लिए हम सिखाते हैं, तो हम कहते हैं कि तुम दूसरे पर हमला करना। लेकिन जुजुत्सू में वह सिखाते हैं कि तुम हमला मत करना। जब दूसरा तुम्हारी छाती में घूसा मारे तो उसके घूसे के लिए जगह

बना देना। बिल्कुल राजी होकर घूंसे को पी जाना। तब उसके हाथ की हड्डी टूट जाएगी और तुम बच जाओगे। बहुत कठिन है यह क्योंकि जब कोई आपकी छाती में घूंसा मारे तो आपकी छाती सख्त हो जाएगी फौरन। और सख्ती में आपकी हड्डी टूट जाने वाली है। जैसे दो आदमी चल रहे हैं एक बैलगाड़ी में बैठे हुए। एक शराब पिए हुए है। एक बिल्कुल शराब पिए हुए नहीं है। बैलगाड़ी उलट गई। तो जो शराब पिए हुए है उसको चोट लगने की सम्भावना कम है। जो शराब नहीं पिए है उसको चोट लगेगी। कारण कि वह शराब जो पिए है वह हर हालत में राजी है। वह उलट गई तो वह उसी में उलट गया। उसने बचाव का कोई उपाय नहीं किया। लेकिन वह जो होश में है, बैलगाड़ी उलटी तो वह सजग हो गया। उसने कहा, 'मरे। बचाओ।' तो वह सब सख्त हो गया। जो हड्डियाँ सख्त हो गईं, उन पर जरा सी चोट लगी कि 'टूटी।' इसलिए शराब पीने वाला गिरता है सड़कों पर। कभी हड्डी टूटते देखी उस बेचारे की ? आप जरा गिर कर देखो। कारण कि वह ऐसा गिरता है जैसे बोरा गिर रहा है। उसमें कुछ है ही नहीं। गिर गया तो गिर गया, उसी के लिए राजी हो गया। उसको चोट नहीं लगती। तो जुजुत्सू कहता है कि अगर चोट न खानी हो तो ऐसे गिरना कि जैसे गिरे ही हुए हो। यानी तुम नहीं गिरना है इसका ऐसा ख्याल ही मत करना।

प्रश्न : गिरना भी नहीं है ?

उत्तर : हाँ, गिरना भी नहीं है, तो चोट नहीं खाओगे। दूसरा जब हमला करे तो तुम पी जाना उसके हमले को। तुम राजी हो जाना। ठीक सामायिक का मतलब भी यही है कि चारों तरफ से चित्त पर बहुत तरह के हमले हो रहे हैं। विचार हमला कर रहा है, क्रोध हमला कर रहा है, वासना हमला कर रही है। सबके लिए राजी हो जाना; कुछ करना ही मत। जो हो रहा है, होने देना। और चुपचाप पड़े रहना। एक क्षण को भी अगर यह हो जाए तो सब हो गया। मगर हम करने को इतने आतुर हैं कि विचार आया नहीं कि हम उस पर सवार हुए। या उसके साथ गए, या उसके विरोध में गए। हम बिल्कुल तैयार ही हैं लड़ने को। मैं जब समझना चाहूँ तो यही कह सकता हूँ कि कुछ मत करना। जो हो रहा हो उसको एक घड़ी भर देखना। तेईस घंटे हम कुछ करते ही हैं। एक घंटा कर लेना कि कुछ नहीं करेंगे; बैठे रहेंगे; जो होगा होने देंगे। देखेंगे कि यह हो रहा है। इसे सिर्फ देखना है। साक्षी रह जाना है। साक्षी भाव ही सामायिक में प्रवेश दिला देता है।

११

प्रश्नोत्तर-प्रवचन

प्रश्न : आप जो कुछ जैन दृष्टि के बारे में कह रहे हैं उसमें मुझे ऐसा लगा कि दो तिहाई बातों से सभी लोग सहमत हो जाएँगे। किन्तु एक तिहाई अंश ऐसा है जिससे सहमति कठिन है। पहली बात आप कहते हैं सम्यक् दर्शन की। जिसने थोड़ा भी शास्त्र पढ़ा है वह यह जानता है कि सम्यक् दर्शन के बिना चरित्र का कोई अर्थ नहीं। सम्यक् दर्शन के बिना जो कुछ होता है, वह चरित्र कहलाता ही नहीं। यह दृष्टि बहुत स्पष्ट है। यह भी स्पष्ट है कि चरित्र का और कोई अर्थ नहीं है अतिरिक्त 'आत्मस्थिति' के। आत्मा में स्थित हो जाना, यही चरित्र का अर्थ है। इन दोनों अर्थों में आपसी सहमति लगती है। पर, सम्यक् दर्शन होने के बाद और 'आत्मस्थिति' में पूर्ण स्थिति होने के पहले जो बीच का अन्तराल है, उसमें आपकी दृष्टि परम्परागत दृष्टि से कुछ भिन्न नजर आती है। परम्परा में ऐसा मानते हैं लोग कि एक चरित्र का क्रमिक विकास है। उस चरित्र का बाह्य स्वरूप भी है जिसे त्रिगुप्ति और पंचसमिति नाम से अष्टप्रवचनमातृका कहते हैं। जैसे कि मन, वचन, काय का संयम और आहार व्यवहार में विवेक। यही चरित्र का स्वरूप मानते हैं। पर यह जो अष्टप्रवचनमातृका है, यह पंच व्रतों की रक्षा करने के लिए है। इस पंचव्रत और अष्टप्रवचनमातृका का भी एक सुनिश्चित स्थान जैन आचार मीमांसा में है। अब आप उस सम्बन्ध में क्या कहेंगे? यदि यहाँ आपकी सम्मति कुछ बने और परम्परा से मिल सके तो शतप्रतिशत सहमति हो जाए। पर यदि न मिल सके तो मुझे लगता है कि दो तिहाई तो सहमति हो पाएगी, एक तिहाई अंश में नहीं।

उत्तर : यदि हो पाएगी तो पूरी हो पाएगी। नहीं हो पाएगी तो बिल्कुल न हो पाएगी। क्योंकि चरित्र की जैसी धारणा रही है उस धारणा से मैं

बिल्कुल असहमत हूँ। और वैसी धारणा महावीर की भी नहीं थीं, ऐसा भी मैं कहता हूँ। एक दृष्टि है बाह्य आचरण को व्यवस्थित करने की। असल में बाह्य आचरण को व्यवस्थित नहीं कर सकता है वह जिसके पास अन्तर्विवेक नहीं है। अन्तर्विवेक हो तो बाह्य आचरण स्वयं व्यवस्थित हो जाता है, करना नहीं पड़ता। जिसे करना पड़ता है वह इस बात की खबर देता है कि उसके पास अन्तर्विवेक नहीं है। अन्तर्विवेक की अनुपस्थिति में बाह्य आचरण अंधा है चाहे हम उसे अच्छा कहें या बुरा कहें, नैतिक कहें या अनैतिक कहें। निश्चित ही समाज को फर्क पड़ेगा। एक को समाज अच्छा आचरण कहता है, एक को बुरा कहता है। समाज अच्छा आचरण उसे कहता है जिससे समाज के जीवन में सुविधा बनती है। बुरा आचरण उसे कहता है जिससे असुविधा बनती है। समाज को व्यक्ति की आत्मा से कोई मतलब नहीं है, सिर्फ व्यक्ति के व्यवहार से मतलब है क्योंकि समाज व्यवहार से बनता है, आत्माओं से नहीं बनता। समाज की चिन्ता यह है कि आप सच बोलें। यह चिन्ता नहीं है कि आप सत्य हों। आप झूठ हों कोई चिन्ता नहीं, पर बोलें सच। आप मन में झूठ को गढ़े, कोई चिन्ता नहीं लेकिन प्रकट करें सच को। आपका जो चेहरा प्रकट होता है समाज को मतलब है उससे। आपकी आत्मा जो अप्रकट रह जाती है, उससे कोई मतलब नहीं।

समाज इसकी चिन्ता ही नहीं करता कि भीतर आप कैसे हैं। समाज कहता है बाहर आप कैसे हैं? बस हमारी बात पूरी हो जाती है। बाहर आप ऐसा व्यवहार करें जो समाज के लिए अनुकूल है, समाज के जीवन के लिए सुविधापूर्ण है, जो सबके साथ रहने में व्यवस्था लाता है। समाज की चिन्ता आपके आचरण से है, धर्म की चिन्ता आपकी आत्मा से है। इसलिए समाज इतना फिक्र भर कर लेता है कि आदमी बाह्य रूप से ठीक हो जाए। बस इसके बाद वह फिक्र छोड़ देता है। बाह्य रूप को ठीक करने के लिए वह जो उपाय काता है वे उपाय भय के हैं। या तो पुलिस है, अदालत है, कानून है, पाप-पुण्य का डर है, स्वर्ग है, नरक है। ये सारे भय के रूप उपयोग में आता है। अब यह बड़े मजे की बात है कि समाज के द्वारा आचरण की जो व्यवस्था है वह भय पर आधारित है और बाहर तक समाप्त हो जाती है। परिणाम में समाज व्यक्ति को केवल पाखण्डी बना पाता है या अनैतिक—नैतिक कभी नहीं। पाखण्डी इन अर्थों में कि भीतर व्यक्ति कुछ होता है, बाहर कुछ होता है। और जो व्यक्ति पाखण्डी हो गया उसके धार्मिक

होने की सम्भावना अनैतिक व्यक्ति से भी कम हो जाती है। इसे समझ लेना जरूरी होगा। समाज की दृष्टि में वह आदृत होगा, साधु होगा, संन्यासी होगा लेकिन पाखण्डी हो जाने के बाद वह अनैतिक व्यक्ति से भी बुरी दशा में पड़ जाता है। क्योंकि अनैतिक व्यक्ति कम से कम सीधा है, सरल है, साफ है। उसके भीतर गाली उठती है तो गाली देता है और क्रोध उठता है तो क्रोध करता है। वह आदमी स्पष्ट है जैसा है वैसा है। उसके बाहर और भीतर में कोई फर्क नहीं है। परम ज्ञानी के भी बाहर और भीतर में फर्क नहीं होता। परम ज्ञानी जैसा भीतर होता है वैसा ही बाहर होता है। अज्ञानी भी जैसा बाहर होता है वैसा ही भीतर होता है। बीच में एक पाखण्डी व्यक्ति का मतलब है कि बाहर वह ज्ञानी जैसा होता है और भीतर अज्ञानी जैसा होता है। उसके भीतर गाली उठती है, क्रोध उठता है, हिंसा उठती है। मगर बाहर वह ज्ञानी जैसा होता है, अहिंसक होता है, "अहिंसा परमो धर्मः" की तख्ती लगाकर बैठता है, चरित्रवान् दिखाई पड़ता है, नियम पालन करता है, अनुशासनबद्ध होता है। बाहर का व्यक्तित्व वह ज्ञानी से उधार लेता है और भीतर का व्यक्तित्व वह अज्ञानी से उधार लेता है। यह पाखण्डी व्यक्ति, जिसको समाज नैतिक कहती है, कभी भी उस दिशा से उपलब्ध नहीं होगा जहाँ धर्म है। अनैतिक व्यक्ति उपलब्ध हो भी सकता है। अक्सर ऐसा होता है कि पापी पहुँच जाते हैं और पुण्यात्मा भटक जाते हैं। क्योंकि पापी के दोहरे कारण हैं पहुँच जाने के। एक तो पाप दुखदायी है। उसकी पीड़ा है जो रूपान्तरण लाती है। दूसरी बात यह है कि पाप करने के लिए, समाज के विपरीत जाने के लिए भी साहस चाहिए। जो पाखण्डी लोग हैं वे मध्यम (मीडियाकर) हैं। उनमें साहस नहीं है। साहस न होने की वजह से वे चेहरा वैसा बना लेते हैं जैसा समाज कहती है, समाज के डर के कारण। और भीतर वैसे रहे जाते हैं, जैसे वे हैं। अनैतिक व्यक्ति के पास एक साहस है जो कि आध्यात्मिक गुण है और पाप की पीड़ा है। यह दो बातें हैं उसके पास। पाप उसे पीड़ा और दुख में ले आएगा। दुख और पीड़ा में कोई व्यक्ति नहीं रहना चाहता। और साहस है उसके पास कि जिस दिन भी वह साहस कर ले वह उस दिन बाहर हो जाए।

मैं एक छोटी सी कहानी से समझाऊँ। एक ईसाई पादरी एक स्कूल में बच्चों को समझा रहा है कि नैतिक साहस क्या होता है। एक बच्चा पूछता है कि उदाहरण से समझाइए। वह कहता है कि समझ लो कि तुम तीस बच्चे

हो, तुम पिकनिक के लिए पहाड़ पर गए। दिन भर के थक गए हो, नींद आ रही है। सर्द रात है। उन्तीस बच्चे जल्दी से बिस्तर में कम्बल ओढ़कर सो जाते हैं। लेकिन एक बच्चा कोने में घुटने टेक कर परमात्मा की प्रार्थना करता है। पादरी कहता है कि उस लड़के में नैतिक साहस है। जब उन्तीस बिस्तर में सो गए हैं, सर्द रात है, दिन भर की थकान है जब कि प्रलोभन पूरा है कि 'मैं भी सो जाऊँ' तब भी वह हिम्मत जुटाता है और कोने में भगवान् की प्रार्थना करता है सर्द रात में। तब सोता है जब प्रार्थना पूरी कर लेता है। महीने भर बाद, वह पादरी वापिस आया है। उसने फिर नैतिक साहस पर कुछ बातें की हैं और उसने कहा है कि अब मैं तुमसे समझना चाहूँगा कि नैतिक साहस क्या है। तो एक लड़के ने कहा है कि मैं—जैसा उदाहरण आपने दिया था वैसा ही उदाहरण देकर समझाता हूँ। तीस पादरी हैं। एक पहाड़ पर पिकनिक को गए हुए हैं। दिन भर के थके मांदे लौटते हैं, सर्द रात है। उन्तीस पादरी प्रार्थना करने बैठ जाते हैं। एक पादरी कम्बल ओढ़ कर सो जाता है तो जो आदमी कम्बल के भीतर सो जाता है, वह नैतिक साहस का उदाहरण है। और आपने जो उदाहरण दिया था उससे यह ज्यादा अच्छा है कि जब उन्तीस पादरी प्रार्थना कर रहे हों और कह रहे हों कि नरक जाओगे अगर तुम बिस्तर में सोवोगे तब एक आदमी चुपचाप बिस्तर में सो जाता है।

नैतिक साहस होता ही नहीं उनमें जिन्हें हम नैतिक व्यक्ति कहते हैं। उनकी नैतिकता साहस की कमी के कारण होती है, साहस के कारण नहीं। एक आदमी चोरी नहीं करता। आम तौर से हम उसकी प्रशंसा करते हैं। मगर चोरी न करना ही अचोर होने का लक्षण नहीं है। चोरी न करने का कुल कारण इतना हो सकता है कि आदमी तो चोर है लेकिन चोरी करने का साहस नहीं जुटा पाता। सौ में निन्यानबे मौकों पर ऐसा होता है कि चोरी सब करना चाहते हैं! लेकिन साहस नहीं जुटा पाते। चोरी करना साधारण साहस की बात नहीं है। अंधेरी रात में, दूसरे के घर में अपने घर जैसा व्यवहार करना बहुत मुश्किल बात है। तो जिनको हम नैतिक कहते हैं अक्सर वे साहस-हीन लोग होते हैं। और धर्म एक साहस की यात्रा है। साहसहीन लोग इसलिए नैतिक होते हैं कि उनमें साहस नहीं है। बुरे लोगों में एक गुण स्पष्ट है कि वे पूरे समाज के विरोध में साहसी हैं। जब उन्तीस लोग प्रार्थना कर रहे हैं तब वे सोने चले गए हैं। अब सवाल यह है कि उनका साहस पाप की ओर से हटकर पुण्य की ओर कैसे जाए? आपको ले जाने की जरूरत नहीं है। पाप

की पीड़ा ही अपने आप में इतनी सघन है कि वह आदमी को इससे उठने के लिए मजबूर कर देती है। आज नहीं, कल वह आदमी उठता है।

तो मेरी दृष्टि यह है कि पापी की सम्भावनाएँ धर्म के निकट पहुँचने की ज्यादा हैं अपेक्षाकृत उसके जिसको हम नैतिक व्यक्ति कहते हैं। और जिस दिन पापी धर्म की दुनिया में पहुँचते है वह उतनी ही तीव्रता में पहुँचता है जितनी तीव्रता से वह पाप में गया था। नीत्से ने लिखा है : जब मैंने वृक्षों को आकाश छूते देखा तो मैंने खोजबीन की। मुझे पता चला कि जिस वृक्ष को आकाश छूना हो उस वृक्ष की जड़ों को पाताल छूना पड़ता है। उसने लिखा है कि तब मुझे ख्याल आया कि जिस व्यक्ति को पुण्य की ऊँचाइयाँ छूनी हों उस व्यक्ति के भीतर पाप की गहराइयों को छूने की क्षमता चाहिए। अगर कोई पाप का पाताल छूने में असमर्थ है तो वह पुण्य का आकाश भी नहीं छू सकता क्योंकि ऊपर शिखर उतना ही जाता है जितना नीचे जड़ें जा सकती हैं। यह हमेशा अनुपात में जाता है। जिस घास की जड़ें भीतर बहुत गहरी नहीं जातीं वह घास उतना ही ऊपर आता है जितनी जड़ें जाती हैं। तो पापी की गति बुरे की तरफ है लेकिन वह अच्छे की तरफ भी जा सकता है। तो मेरी दृष्टि में झूठी नैतिकता बाहर से थोपी गई है। परिणाम यह हुआ कि दुनिया में धर्म कम होता चला गया। अच्छा तो यही है कि आदमी सीधा हो चाहे वह पापी हो। बजाय झूठे, व्यर्थ के आडम्बर थोपने के वैसा ही हो जैसा है। इसमें बदलाहट की बड़ी सम्भावना है कि जैसा वह है, अगर वह दुखद है तो बदलेगा। करेगा क्या ? लेकिन पाखण्डी आदमी ने तो व्यवस्था कर ली है। जैसा है वह छिपा लिया है। जैसा नहीं है वह व्यवस्था कर ली है उसने। समाज से आदर भी पाता है, सुख भी पाता है, सम्मान भी पाता है और जैसा है वैसा वह है। इसलिए जो गलत होने की पीड़ा है, वह भी नहीं भोग पाता। वही पीड़ा मुक्तिदायी है।

तो मेरी दृष्टि में पाखण्डी समाज से सीधा ऐन्द्रिक समाज ज्यादा अच्छा है। और इसलिए मैं कहता हूँ कि पश्चिम में धर्म के उदय की सम्भावना है, पूरब में नहीं है। इसको मैं भविष्यवाणी कह सकता हूँ कि आने वाले सौ वर्षों में पश्चिम में धर्म का उदय होगा और पूरब में धर्म प्रतिदिन क्षीण होता चला जाएगा क्योंकि पूरब पाखण्डी है और पश्चिम साफ है। पश्चिम बुरा है मगर साफ है। यह साफ बुरा होना पीड़ा देने वाला है। और उस पीड़ा से उसको बाहर भी निकलना पड़ेगा। पाखण्डी का झूठा अच्छा होना पीड़ा भी नहीं बनता।

और वह कहीं बाहर भी नहीं निकल सकता। पाखण्डी आदमी कुनकुनी हालत में होता है—कभी भाप नहीं बनता, बर्फ भी नहीं बनता। पापी आदमी बर्फ भी बन सकता है, भाप भी बन सकता है क्योंकि वह कुनकुनी हालत में कभी होता ही नहीं। मेरा मानना है कि समाज ने नैतिक शिक्षा देकर समाज को किसी प्रकार सुव्यवस्थित तो कर लिया है मगर व्यक्ति की आत्मा को भारी नुकसान पहुँचाया है। और यह भी मेरा मानना है कि समाज व्यवस्थित है, यह सिर्फ दिखाई पड़ता है। अगर व्यक्ति झूठे हैं तो व्यवस्था सच्ची कैसे हो सकती है। क्योंकि जो व्यक्ति झूठा है वह पीछे के रास्ते से कर ही रहा होगा, जो सामने के रास्ते से नहीं कर रहा है। समाज ज्यादा से ज्यादा एक मकान के दो दरवाजे ही कर देता है। एक सामने का दरवाजा है जिसमें प्रार्थनाएँ, भजन-कीर्तन चलते हैं। एक पीछे का दरवाजा है जिसमें गाली-गलौज चलती है। वह पीछे का दरवाजा भी समाज का ही हिस्सा है, वह जाएगा कहाँ? वह उबल-उबल कर बाहर आता रहता है।

गाली गलौज जो है वह गूँजती ही रहती है क्योंकि वह जाएगी कहाँ? झूठे चेहरे कैसे जिए जा सकते हैं? और जो सब आदमी झूठे चेहरे बना लेते हों और सब को यह पता हो कि सब चेहरे झूठे हैं तो समाज एक मिथ्या हो जाता है। इसलिए अक्सर ऐसा हुआ है कि एक धार्मिक व्यक्ति को असामाजिक होना पड़ा है क्योंकि इस झूठे समाज में वह राजी नहीं हो सका। तो बुद्ध अपने भिक्षुओं को जो नाम देते हैं वह है 'अनागरिक'। उसे नागरिकता छोड़ देनी पड़ी, उसे मिथ्या समाज की व्यवस्था छोड़ देनी पड़ी। वह नागरिक नहीं रहा। असल में भिक्षु, साधु, संन्यासी का मतलब ही यह है कि वह किसी अर्थ में असामाजिक हो गया है। समाज से उसने नाता तोड़ लिया है क्योंकि समाज पाखण्ड और झूठी नैतिकता का गढ़ है। जब झूठी नैतिकता बहुत जोर पकड़ लेती है तो उसकी प्रतिक्रिया भी जोर पकड़ लेती है। झूठी नैतिकता को तोड़ने वाले तत्त्व सक्रिय हो जाते हैं। जब झूठी नैतिकता को तोड़ने वाले तत्त्व सक्रिय हो जाते हैं तो अराजकता आती है, स्वच्छन्दता आती है। जब स्वच्छन्दता तेजी को पकड़ जाती है तो फिर झूठी नैतिकता को समर्थन देने वाले लोग खड़े हो जाते हैं। वे कहते हैं स्वच्छन्दता बुरी है, नैतिकता लाओ।

यानी मेरा मानना है कि समाज का अब तक का इतिहास, झूठी नैतिकता, झूठी व्यवस्था और अराजकता के बीच डोलता रहा है। झूठी नैतिकता उतनी ही खतरनाक है जितनी स्वच्छन्दता। और सच तो यह है कि झूठी नैतिकता

ही स्वच्छन्दता पैदा करने का कारण है। अब बहुत दिन हो गये इसके बीच डोलते-डोलते। अब इस बात की चिन्ता हमें करनी चाहिए कि या तो सच्ची नैतिकता स्वीकार कर लें कि आदमी अनैतिक है तो अनैतिक होकर कैसे जिए, उसका इन्तजाम कर ले। या बजाय आदमी को झूठा बनाने के, सच्चे होने की पहली आधार-शीला रख दें। और जो नीति कहती है कि सत्य कीमती है, वह भी अगर आदमी को झूठा बनाने का उपाय करती है तो वह कैसी नीति है? मेरा कहना है कि अगर आदमी अनैतिक ही है तो इसे हम स्वीकार कर लें और अनैतिक आदमी कैसे जिए, इसका इन्तजाम कर लें। यह ज्यादा अच्छा होगा और सरलता से धर्म की तरफ ले जाने वाला होगा। क्योंकि अनैतिकता दुःख देगी ही। पाप सुख दे ही नहीं सकता।

प्रश्न : एक व्यक्ति ब्रह्मचर्य का पालन कर रहा है मगर झूठा पाखण्ड है वह ब्रह्मचर्य। आप उस व्यक्ति को यह मार्ग नहीं दिखलाते कि वह पाखण्ड ब्रह्मचर्य से सत्य ब्रह्मचर्य को कैसे प्राप्त हो? आप उसको यह मार्ग दिखला दें तो वह पाखण्ड ब्रह्मचर्य को छोड़ ही दे। आप उसे उलटी ओर ले जा रहे हैं अपनी ओर उसको ले आइए।

उत्तर : नहीं, मैं उसे ठीक ओर ही ले जा रहा हूँ क्योंकि काम-वासना उतनी खतरनाक नहीं है जितना पाखण्ड खतरनाक है। पाखण्ड मनुष्य की ईजाद है और काम-वासना परमात्मा की। तो जो आदमी झूठे ब्रह्मचर्य में है, आप सोचते हैं कि मैं उसको ब्रह्मचर्य से भिन्न ले जा रहा हूँ। पाखण्डी ब्रह्मचर्य जैसा ब्रह्मचर्य होता ही नहीं। पाखण्डी ब्रह्मचर्य वाले मनुष्य के भीतर तो गहरी कामुकता होती है।

प्रश्न : उसे काम-वासना के माध्यम से ही सत्य तक पहुँचना होगा?

उत्तर : हाँ, पाखण्ड से कैसे सत्य तक पहुँच सकता है? सत्य से ही सत्य तक पहुँच सकता है। काम-वासना सत्य है तो काम वासना से ब्रह्मचर्य तक पहुँचा जा सकता है। सत्य जो है वह कामवासना की समझ से ही उत्पन्न अन्तिम अनुभूति है। लेकिन पाखण्डी ब्रह्मचर्य जिसने पहले ही थोप लिया है वह सत्य तक कभी नहीं पहुँच पाता। पाखण्ड छोड़ो तो ही सत्य तक पहुँच सकते हो। ये दो बातें समझने जैसी हैं। काम-वासना व्यक्ति के जीवन का सत्य है। इस सत्य को समझने से हम और बड़े सत्य को उपलब्ध हो सकते हैं। यानी ब्रह्मचर्य जो है वह वासना की ही अन्तिम समझ से हुई निष्पत्ति है। वह

वासना के विरुद्ध लड़ी गई बात नहीं है। वासना को जिसने ठीक से समझा है, पहचाना है, वह धीरे-धीरे ब्रह्मचर्य को उपलब्ध हो जाता है। लेकिन जिस वासना को पहचानने से इन्कार कर दिया है और झूठा ब्रह्मचर्य ऊपर से थोप लिया है वह कभी ब्रह्मचर्य को उपलब्ध नहीं होता। पहले उसे झूठे ब्रह्मचर्य से छुड़ाना होगा और सच-सच बताना होगा कि तुम कहाँ हो क्योंकि कोई भी यात्रा तभी हो सकती है जब हम पहले जान लें कि हम कहाँ खड़े हैं। अगर हम इस भ्रम में हैं कि मैं हूँ तो श्रीनगर में, और मैं समझूँ कि मैं बैठा हूँ हिमालय पर तो हिमालय से यात्रा शुरू नहीं हो सकती। यात्रा वहीं से शुरू होगी जहाँ मैं हूँ। तो इस व्यक्ति को जिसका पाखण्डी ब्रह्मचर्य है पहले समझना पड़ेगा कि पाखण्डी ब्रह्मचर्य के भ्रम को तू तोड़। अगर तूने कल्पना में ऐसा मान रखा है कि तू ब्रह्मचर्य को पहुँच चुका है तब और ब्रह्मचर्य को पहुँचने का क्या उपाय है? पाखण्ड का मतलब है कि आदमी जहाँ नहीं पहुँचा है, जान रहा है कि वहाँ पहुँच गया है और जहाँ है वहाँ से इन्कार कर रहा है कि वहाँ मैं नहीं हूँ।

अब मैं साधु संन्यासियों को मिलता हूँ तो हैरान हो जाता हूँ। सबके सामने तो वे आत्मा-परमात्मा की बातें करते हैं, ब्रह्मचर्य के गुण गाते हैं। एकान्त में वे पूछते हैं कि सेक्स से कैसे छुटकारा हो। अभी तक मैं किसी साधु-साध्वी को नहीं मिला हूँ जिसने एकान्त में सेक्स के लिए न पूछा हो कि इससे कैसे छुटकारा हो। हम जले जा रहे हैं इस आग में। लेकिन व्याख्यान ब्रह्मचर्य का कर रहे हैं और लोगों को समझा रहे हैं ब्रह्मचर्य की बातें। और जिस ब्रह्मचर्य को समझा रहे हैं, उसे कहीं भी, कहीं से भी नहीं जान रहे हैं कि वह ब्रह्मचर्य कहाँ है? उसका कारण है कि पहले तो हमारे व्यक्तित्व का जो सत्य है, हम उसे पकड़ें, उसे समझें। जो आदमी सेक्स को ठीक से समझ ले, वह ब्रह्मचर्य को उपलब्ध हुए बिना रह नहीं सकता। उसे ब्रह्मचर्य की ओर जाना ही होगा। यानी उसे ले जाएगा नहीं कोई। उसकी समझ उसकी यात्रा बन जाती है। तो मैं उल्टे नहीं ले जा रहा हूँ। उल्टे रास्ते वह जा रहा है जो उसको ब्रह्मचर्य समझा रहा है। वह उसे कभी भी ब्रह्मचर्य की ओर नहीं ला सकता। अगर ब्रह्मचर्य की ओर लाना हो तो उसे कामवासना की पूरी समझ देनी होगी। और कामवासना के जितने निहित और गहरे छुपे हुए तथ्य हैं वे सब उसे उघाड़ने पड़ेंगे उसे उस सम्मोहन को तोड़ना पड़ेगा जो कामवासना उसे दे रही है। वह सम्मोहन नहीं टूटता तो वह बाहर से ब्रह्मचारी हो जाएगा मगर भीतर से कामुकता सघन हो जाएगी।

यह जानकर हैरानी होगी तुम्हें कि साधारण रूप से कामुक व्यक्ति इतना कामुक नहीं होता। उसकी काम-वासना कभी होती है, कभी नहीं होती। लेकिन जो व्यक्ति ऊपर से ब्रह्मचर्य थोप लेता है वह चौबीस घंटे कामुक होता है। वह एक क्षण भी काम से छुटकारा नहीं पा सकता क्योंकि जो उसने दबाया है, वह भीतर से निकलने के हजार उपाय खोज लेगा, वह उसके सारे चित्त को घेर लेगा, उसके पूरे चित्त के रग-रेशे में प्रविष्ट हो जाएगा। अब यह ध्यान देने की बात है कि सेक्स का अपना एक सुनिश्चित केन्द्र है। अगर कोई व्यक्ति सामान्य रूप से सेक्स जीवन से गुजर रहा है तो उसके मस्तिष्क में सेक्स कभी नहीं घुसता। लेकिन जो व्यक्ति पाखण्डी ब्रह्मचर्य को धारण कर लेता है वह सेक्स के केन्द्र पर इतना दमन डालता है कि सेक्स की प्रवृत्ति दूसरे केन्द्र में प्रविष्ट हो जाती है अर्थात् वह उसके मन और चेतना तक में चली जाती है। यह ऐसा ही मामला है जैसा कि आपके घर में रसोई है, और रसोई में धुँआ उठता है तो आपने धुँआ निकलने की व्यवस्था की हुई है। और एक आदमी धुँआ निकलने का विरोधी हो जाए और रसोई से धुँआ निकलने की चिमनी बन्द कर दे तो धुँआ मिटना बन्द हो जाएगा। रसोई है तो धुँआ होगा। अब यह धुँआ बैठक खाने में भी घूमेगा, घर के दूसरे कमरों में भी प्रवेश करेगा क्योंकि रसोई से निकलने का मार्ग तो उसने बन्द कर दिया। परिणाम यह होगा कि वह पूर्ण घर रसोई जैसा हो जाएगा। सारी दीवारें काली हो जाएँगी। और जितना यह धुँआ बढ़ेगा उतना वह घबड़ाएगा। उतना वह जाकर चिमनी को बन्द करेगा क्योंकि वह कहेगा कि इसको दबाना जरूरी है, यह तो धुँआ और बढ़ता चला जा रहा है। उसे पता नहीं कि दबाने से ही बढ़ता चला जा रहा है। पशु इतने कामुक नहीं हैं आदमी के मुकाबले। और मजे की बात है कि पशु एक वक्त ही कामुक होता है। शेष वक्त पर वह भूल जाता है। कारण कि पशु के चित्त में काम का दमन नहीं है। इसलिए जब वह उसे भोगता है, पूर्ण भोग लेता है। फिर शिथिल हो जाता है, शान्त हो जाता है।

आदमी जो भोग रहे हैं काम को, जिनके बच्चे भी पैदा हो रहे हैं फिर भी भोग नहीं पा रहे। और जो अभोगा छूट जाता है, वह भोग की माँग करता रहता है। सिर्फ मनुष्य ही चौबीस घंटे साल भर कामुक रहता है। कोई जानवर चौबीस घंटे साल भर कामुक नहीं रहते। फिर भी जो लोग काम को भोग रहे हैं, कुछ क्षण के लिए शिथिल भी हो जाते हैं। एक दफा काम का भोग किया तो कम से कम चौबीस घंटे के लिए वे विस्मृत हो जाते हैं। लेकिन साधु संन्यासी

उस घंटे में भी विस्मृत नहीं हो पाते। वे चौबीस घंटे उसी रस में डूबे हुए हैं। मैं उन्हें ब्रह्मचर्य की ओर ले जाने की बात कर रहा हूँ। मैं कह रहा हूँ कि सत्य को समझो, इससे भागो मत, डरो मत, भयभीत मत हो, इसे पहचानो, जागो। जागोगे, पहचानोगे, समझोगे तो यह क्षीण होगा, और एक घड़ी ऐसी आती है कि पूर्ण समझ की स्थिति में सेक्स रूपान्तरित हो जाता है। उसकी सारी शक्ति नए मार्गों से उठनी शुरू हो जाती है। और जब वह नए मार्गों से उठती है तो वह शक्ति व्यक्ति का परम अनुभव हो जाता है।

सेक्स शक्ति के विसर्जन का सबसे नीचे का केन्द्र है। उसके ऊपर और केन्द्र है जिसे हम ब्रह्मरंध्र कहते हैं। वह सेक्स की ही ऊर्जा के विसर्जित होने का अन्तिम श्रेष्ठतम केन्द्र है। नीचे से सेक्स विसर्जित होता है तो प्रकृति में ले जाता है। और जब ब्रह्मरंध्र से सेक्स की शक्ति विसर्जित होती है तो वह परमात्मा में ले जाती है। और इन दोनों के बीच की जो यात्रा है, वह यात्रा वही शक्ति कर सकती है जो समझपूर्वक सेक्स की ऊर्जा को ऊपर उठाने के प्रयोग में लग जाए। मेरा कहना है कि ब्रह्मचर्य की साधना में सेक्स पहला कदम है, विरोध नहीं। जिस ऊर्जा को हमें ऊपर उठाना हो, उसे लड़कर हम ऊपर नहीं उठा सकते। उसे समझकर हम प्रेमपूर्ण आमंत्रण से ही ऊपर उठा सकते हैं क्योंकि लड़कर तो हम दो हिस्सों में टूट जाते हैं। और दो हिस्सों में टूटे कि हम गए। पाखण्डी व्यक्ति खंड-खंड हो जाता है। कई खंड उसमें हो जाते हैं। और मैं चाहता हूँ कि व्यक्ति हो अखण्ड क्योंकि अखण्ड व्यक्ति ही कुछ रूपान्तरण ला सकता है। ब्रह्मचर्य सरल है अगर थोपा न जाए। ब्रह्मचर्य कठिन है अगर थोप लिया जाए। तो मैं कहता हूँ कि समाज को सिखाओ वासना, ठीक से। समाज को सम्यक् वासना सिखाओ, सम्यक् काम सिखाओ।

प्रश्न : महावीर भी यही कहना चाहते थे ?

उत्तर : बिल्कुल कहेंगे ही। इसके सिवाय उपाय ही नहीं है, क्योंकि महावीर भी जिस ब्रह्मचर्य को उपलब्ध हुए हैं, वह जन्म-जन्मान्तरों की वासना की समझ का ही परिणाम है।

प्रश्न : वह भोगकर आएगी या बिना भोग के भी आ सकती है ?

उत्तर : बिना भोग के नहीं आ सकती। जिस चीज को मैंने जाना ही नहीं, जिया ही नहीं, उसको मैं समझूँगा कैसे ? समझने के लिए मुझे गुजरना पड़ेगा उस मार्ग से। वहाँ कभी भी कोई गुजरा हो, यह सवाल नहीं है। लेकिन

बिना गुजरे कभी भी समझ में नहीं आ सकती यह बात। और बिना गुजरने की जो आकांक्षा है हमारे मन में वह भय है। वह समझ नहीं आने देगा। वह डर है। वह कहता है जाओ मत उधर। लेकिन जब जाएँगे नहीं तो जानेंगे कैसे ? जीवन में जो भी हम जानते हैं वह हम जाकर ही जानते हैं। बिना जाए हम कभी नहीं जानते और अगर बिना जाए कोई रुक गया तो किसी दिन वह जाने की इच्छा ही मुसीबत बन जाएगी।

प्रश्न : भोगने से समझ को प्राप्त हो सकता है ?

उत्तर : बिल्कुल प्राप्त हो सकता है। कोई सवाल ही नहीं है। हम जब भोग रहे हैं तभी हम समझपूर्वक भोग सकते हैं। गैर समझपूर्वक भी भोग सकते हैं। अगर हम समझपूर्वक भोगते हैं तो हम ब्रह्मचर्य की ओर जाते हैं। अगर गैर समझपूर्वक भोगते हैं तो हम उसी में घूमते हैं। सवाल भोगने का नहीं है, सवाल जागे हुए भोगने का है। अब सेक्स के साथ बड़ा मजा है कि लोग उसे जन्म-जन्मान्तरों में भोगते हैं लेकिन सोए हुए भोगते हैं। इसलिए कभी भी अनुभव हाथ में नहीं आ पाता कुछ भी। सेक्स के क्षण में आदमी मूच्छित हो जाता है, होश ही खो देता है। बाहर आता है, जब होश में आता है तो वह क्षण निकल चुका होता है। फिर उस क्षण की माँग शुरू हो जाती है। तो ब्रह्मचर्य की साधना की प्रक्रिया का सूत्र यह है कि सेक्स के क्षण में जागे हुए कैसे रहें। और अगर आप दूसरे क्षणों में जागे हुए होने का अभ्यास कर रहे हैं तभी आप सेक्स के क्षण में भी जागे हुए हो सकते हैं।

ठीक ऐसा ही मृत्यु का मामला है। हम बहुत बार मरे लेकिन हमें कोई पता नहीं कि हम पहले कभी मरे। उसका कारण है कि हर बार मरने के पहले हम मूच्छित हो गए हैं। मृत्यु का भय इतना ज्यादा है कि मृत्यु को हम जागे हुए नहीं भोग पाते। और एक दफा कोई मृत्यु में जागे हुए गुजर जाए, मृत्यु खत्म हो गई, क्योंकि वह जानता है कि यह तो अमृत हो गया, मरा तो कुछ भी नहीं, सिर्फ शरीर छूटा है और सब खत्म हो गया। लेकिन हम मरते हैं कई बार, हम बेहोश हो जाते हैं। और जब हम होश में आते हैं तब तक नया जन्म हो चुका है। वह जो बीच की अवधि है मृत्यु के गुजरने की, उसकी हमारे मन में कोई स्मृति नहीं बनती। स्मृति तो तब बनेगी जब हम जागे हुए हों। जैसे एक आदमी को बेहोशी में हम श्रीनगर घुमा ले जाएँ। वह मूच्छित पड़ा है। उसको हमने क्लोरोफार्म सुंघाया हुआ है। श्रीनगर पूरा घुमायें, हवाई जहाज से दिल्ली वापस पहुँचा दें और वह दिल्ली में फिर जगे और हम उससे कहें तुम श्रीनगर

होकर आए हो। वह कहे : क्या पागलपन की बातें हैं ! मैं यहीं सोया था, यहीं जगा हूँ। सिर्फ श्रीनगर से गुजर जाना काफी नहीं है, होश से गुजर जाना जरूरी है। नहीं तो वह आदमी क्लोरोफार्म की हालत में श्रीनगर घूम भी गया और फिर दिल्ली पहुँच कर कहेगा कि मैंने श्रीनगर देखा ही नहीं। मेरे मन में लालसा रह गई श्रीनगर को देखने की। वह मैं देख नहीं पाया। वह कैसा है श्रीनगर ? इसी तरह हम मृत्यु से मूर्च्छित गुजरते हैं, इसलिए मृत्यु से अपरिचित रह जाते हैं। जो मृत्यु से परिचित हो जाए वह आत्मा के अमर स्वरूप को जान लेता है। हम सेक्स से मूर्च्छित गुजरते हैं, इसलिए हम सेक्स से अपरिचित रह जाते हैं। जो सेक्स से परिचित हो जाए, वह ब्रह्मचर्य को जान लेता है। तो मेरा कहना है कि किसी भी स्थिति से अगर हम जागे हुए गुजरे हैं तो सब बदल जाएगा क्योंकि जो हम जानेंगे, वह बदलाहट लाएगा। अगर आपने एक बार किसी का हाथ पकड़ कर चूमा है और बहुत आनन्दित हुए हैं तो दुबारा फिर उस हाथ को होश से चूमें, जागे हुए चूमें और देखें कि आनन्द कहाँ आ रहा है, कैसा आ रहा है, आ रहा है कि नहीं आ रहा है।

एक दिन बुद्ध एक सड़क से गुजर रहे हैं। एक मक्खी उनके कन्धे पर बैठ गई है। आनन्द से बातें कर रहे हैं। मक्खी को उड़ा दिया है। फिर रुक गए हैं। मक्खी तो उड़ गई। आनन्द चौंक कर खड़ा हो गया कि वह क्यों रुक गए ? फिर, बहुत धीरे से हाथ को ले गए कंधे पर। आनन्द ने पूछा कि आप यह क्या कर रहे हैं, मक्खी तो उड़ चुकी है। बुद्ध ने कहा कि वह जरा गलत ढंग से उड़ा दी मैंने। मैं तुम्हारी बातों में लगा रहा और बेहोशी में मक्खी उड़ा दी मैंने। अब मैं जागे हुए ऐसे उड़ा रहा हूँ जैसे उड़ाना चाहिए था। यह मक्खी के साथ दुर्व्यवहार हो गया। मैं मूर्च्छित था, इसलिए दुर्व्यवहार हो गया। अब मैं जागकर उड़ा रहा हूँ। तो किसी का हाथ चूमा, और बहुत आनन्द आया। फिर दुबारा हाथ पकड़ लें और पूर्ण होशपूर्वक चूमें और देखें कि कौनसा आनन्द कहाँ आ रहा है तब बहुत हैरान हो जाएंगे। तब देखेंगे कि हाथ है, होठ है, चुम्बन है मगर आनन्द कहाँ ? और यह जो अनुभव जागा हुआ होगा, यह जो हाथ का पागल आकर्षण होगा वह विलीन हो सकता है, बिल्कुल विलीन हो सकता है।

एक बार किसी भी अनुभव से होशपूर्वक गुजर जाएँ तो उस अनुभव की पकड़ आप पर वही नहीं हो सकती जो आपकी बेहोशी में थी। तरकीब यह है प्रकृति की कि उसने सब कीमती अनुभव आपको बेहोशी में गुजरवाने का

इन्तजाम किया है। क्योंकि नहीं तो आप फिर नहीं गुजरेंगे उससे। और सेक्स प्रकृति की गहरी जरूरत है। वह सन्तति उत्पादन की व्यवस्था है। वह नहीं चाहती कि आप उसको छुएँ, उसमें कुछ गड़बड़ करें। वहाँ से जाकर वह आपको एकदम बेहोशी की हालत में कर देती है। जिसको आप आमतौर से प्रेम आदि कहते हैं, वह सब बेहोश होने की तरकीबें हैं, और कुछ भी नहीं। आपको वेश्या के साथ सम्भोग करने में वह सुख नहीं मिलता जो अपनी प्रेयसी से सम्भोग करने में मिलता है। कारण कि वेश्या के पास आपकी मूर्च्छा कभी गहरी नहीं हो पाती क्योंकि यह धन्धा सौदे का काम है। दस रुपया फेंक कर सम्बन्ध बनाया। कोई सम्मोहित होने का सवाल नहीं है बड़ा। इसलिए वेश्या वह तृप्ति नहीं दे पाती जो प्रेयसी देती है। वह पत्नी भी नहीं दे पाती क्योंकि पत्नी के पास रोज-रोज गुजरने से मूच्छित होने का कारण नहीं रह जाता। वह सम्बन्ध बिल्कुल यांत्रिक हो गया है। लेकिन प्रेयसी के पास आपको पहले मूच्छित होना पड़ता है, उसे मूच्छित करना पड़ता है। प्रेमक्रीडा से गुजरने के पहले सारा गोरख-धन्धा एक दूसरे को मूच्छित करने का उपाय है, चूमना है, चाटना है, गले मिलना है, कविताएँ सुनाना है, गीत गाना है, अच्छी-अच्छी बातें करना है, एक दूसरे की तारीफ करना है, एक दूसरे को सम्मोहित करना है। जब वे दोनों सम्मोहन में आ गए तब फिर ठीक है। तब वे बेहोश गुजर सकते हैं।

यह जो मेरा कहना है वह कुल इतना है कि ऐसी किसी भी क्रिया से जिससे हम मुक्त होना चाहते हों कभी भी हम मूच्छित हालत में मुक्त नहीं हो सकते। और पाखण्ड मूच्छित हालत को थोड़े ही तोड़ता है, उल्टा भ्रम पैदा करवा देता है। और गलत चीजें हमें पकड़ा देता है। लेकिन हम पकड़ते ऐसे ढंग से हैं कि हमें ख्याल में नहीं आता। जैसे महावीर हैं। अगर महावीर स्त्रियों को छोड़कर जंगल चले गए हैं तो हमें लगता है कि हम भी स्त्रियों को छोड़ें और जंगल चले जाएँ। हम महावीर की बुनियादी बात समझना भूल गए हैं। महावीर इसलिए जंगल नहीं चले गए हैं कि स्त्रियों को छोड़े जा रहे हैं। वे इसलिए जंगल चले गए हैं कि स्त्रियों में कोई रस नहीं रहा है। वे जब जंगल जा रहे हैं तो पीछे स्त्रियों की स्मृति नहीं है, उनके मन में। और आप भी जंगल जा रहे हैं स्त्रियों को छोड़कर लेकिन जितनी स्मृति कभी घर पर नहीं थी, उतनी जंगल में आपको घेरे हुए है। और आप समझ रहे हैं कि आप वही काम कर रहे हैं जो महावीर कर रहे हैं। आप भी जंगल में जाकर बैठ

जाएँगे। मगर महावीर बैठेंगे तो स्वयं में खो जाएँगे। आप बैठेंगे तो स्त्रियों में खो जाएँगे। आप कहेंगे कि यह तो महावीर ने भी किया जो हम कर रहे हैं। हमारी कठिनाई यह है कि ऊपर का रूप हमें दिखाई पड़ता है। महावीर जंगल जाते दिखाई पड़ते हैं। उनके भीतर क्या घटी है, यह हमें दिखाई ही नहीं पड़ता। और अगर वह हमें दिखाई पड़ जाय तो बिल्कुल बात और ही हो जाएगी।

बिना अनुभव के कोई मुक्ति नहीं है। पाप के अनुभव के बिना पाप से भी मुक्ति नहीं है। इसलिए भयभीत होकर जो पाप से रुका हुआ है, वह पाप से मुक्त नहीं होगा। वह सिर्फ पाप करने की शक्ति अर्जित कर रहा है। और आज नहीं, कल वह पाप करेगा ही। और पाप करके पछताएगा। स्वयं पछता कर वह फिर दमन करने लगेगा। दमन करके वह फिर पाप करेगा और फिर पछताएगा और यह एक बुरा चक्र है पाप पश्चात्ताप, पाप पश्चात्ताप। मैं कहता हूँ पश्चात्ताप भूल कर भी मत करना। पश्चात्ताप की जरूरत ही नहीं है। पश्चात्ताप का मतलब है कि पाप पहले हो गया है, पीछे फिर आप पश्चात्ताप कर रहे हैं। मैं कहता हूं जानकर पाप करना, पूरे जागे हुए पाप करना। जो भी करना पूरे जागे हुए करना। किसी को गाली भी देना तो पूरे जागे हुए देना। शायद दुबारा गाली देने का मौका न आए और पश्चात्ताप की भी जरूरत न पड़े।

एक फकीर ने लिखा है कि उसका बाप मर रहा था। बूढ़े बाप के पास वह बैठा था। उसकी उम्र कोई पन्द्रह-सोलह साल की थी। मरते हुए बाप ने उसके कान में कहा कि तू एक ही ध्यान रखना : किसी भी बात का जवाब चौबीस घंटे से पहले मत देना। और जिन्दगी भर का अनुभव मैं तुझे एक ही सूत्र में कहे देता हूँ : किसी भी बात का जवाब चौबीस घंटे के पहले देना ही मत। वह फकीर बड़ी शांति को उपलब्ध हुआ और जब लोगों ने उससे पूछा कि तुम्हारी शान्ति का रहस्य क्या है तो उसने कहा कि रहस्य बड़ा अद्‌भुत है। मेरा बाप मर रहा था और उसने कहा था कि चौबीस घंटे से पहले तुम किसी का जवाब ही मत देना। अगर किसी स्त्री ने मुझसे कहा मैं तुझे बहुत प्रेम करती हूँ तो मैं चौबीस घंटे चुप ही रहा। चौबीस घंटे के बाद सब खतम ही हो चुका था क्योंकि यह स्त्री बिदा ही हो चुकी थी दिमाग से उसके। उसने कहा : यह क्या बात है। हम जब कहें तब तो तुम कुछ उत्तर ही नहीं देते। अब आए हो जब नशा ही जा चुका है। किसी ने गाली दी तो वह चौबीस

घंटे बाद जवाब देने गया कि जो तुमने गाली दी थी उसका हम जवाब देने आए हैं। उस आदमी ने कहा : लेकिन अब तो सब बात ही खत्म हो गई। अब क्या फायदा ? अब तुम क्या जवाब दे रहे हो। उस आदमी ने लिखा है कि मैं जब भी चौबीस घंटे बाद गया मैंने पाया कि मैं हमेशा लेट पहुँचता हूँ, ट्रेन छूट चुकी होती है। वह तो उसी वक्त हो सकता था और उसी वक्त अगर होता तो मूच्छित होता। और चौबीस घंटे सोच-विचार के बाद हुआ तो वह बड़ा जागृत था। कई दफे तो मैं यह कहने गया कि तुमने गाली बिल्कुल ठीक दी थी। चौबीस घंटे सोचा तो पाया कि तुमने जो कहा था, बिल्कुल ही ठीक कहा था कि मैं बेईमान हूँ। दबाने को बात नहीं है। अगर दबाया चौबीस घंटे तब तो गाली और मजबूत होकर आएँगी। चौबीस घंटे समझने की कोशिश की कि क्या उत्तर देना है उस आदमी को तो बात बदल जाएगी। उसके बाप ने कहा है कि कोई अगर तुम्हें गाली दे तो मैं मना नहीं करता कि तू गाली मत देना और अगर बाप यह कहता कि तू गाली मत देना चौबीस घंटे, बाद क्षमा माँगना तो बात उल्टी हो जाती। तब वह गाली को दबाता। उसके बाप ने कहा कि गाली जरूर देना, मगर चौबीस घंटे बाद देना। लेकिन चौबीस घंटे समझ लेना कि कौन-सी गाली देनी है, कितने वजन की देनी है, देनी है कि नहीं देनी है, उसकी गाली का मतलब क्या है ? अगर बाप यह कहता है कि चौबीस घंटे बाद क्षमा माँगने जाना तो शायद वह दमन करता। उसने कहा था कि तू गाली देना मजे से लेकिन चौबीस घंटे बाद। इतना अन्तराल छोड़ देना और यह बड़े मजे कि बात है कि कोई भी बुरा काम अन्तराल पर नहीं किया जा सकता, तत्काल ही किया जा सकता है क्योंकि अन्तराल में समझ आ जाती है, ख्याल आ जाता है।

डेल कार्नेगी ने एक अनुभव लिखा है कि लिंकन पर उसने भाषण दिया रेडियो से और जन्मतिथि गलत बोल गया। उसके पास कई पत्र पहुँचे गुस्से के कि तुमको जन्मतिथि तक मालूम नहीं है, तुमने भाषण किसके लिए दिया और एक स्त्री ने उसको बहुत ही सख्त पत्र लिखा और उसमें वह जितनी गालियाँ दे सकती थीं दीं। बड़ा क्रोध आया कार्नेगी को। उसने उसी वक्त रात को उठकर जवाब लिखा। जैसी गालियाँ उसने दी, उसने दुगुने वजन की गालियाँ दीं। लेकिन रात को देर हो गई थी और नौकर चला गया था। उसने चिट्ठी दबाकर रख दी। सुबह उठा, सोचा कि एकबार चिट्ठी को पढ़ लूँ। लेकिन अब बारह घंटे का फर्क पड़ गया था। चिट्ठी पढ़ी तो लगा कि ज्यादती हो गई है

चिट्ठी में। उस स्त्री की चिट्ठी को दुबारा पढ़ा तो वह उतनी सख्त नहीं मालूम पड़ी जितनी बारह घंटे पहले मालूम पड़ी थी क्योंकि अब दुबारा पढ़ी थी। और अपनी चिट्ठी पढ़ी तो लगा कि जरा सख्त उत्तर हो गया है। दूसरा उत्तर लिखा। वह पहले से ज्यादा विनम्र था। लिखते वक्त उसे ख्याल आया कि बारह घंटे और रुककर देखूँ कि कोई फर्क पड़ता है क्या? यह जो बारह घंटे में इतना फर्क पड़ गया तो उसने पहली चिट्ठी फाड़ कर फेंक दी, दूसरी चिट्ठी दबा कर रख दी। सांझ को जब दफ्तर से लौटा, उस पत्र को पढ़ा। उसने कहा अभी भी उसमें कुछ बाकी रह गई है चोट। फिर पत्र तीसरा लिखा। पर उसने कहा : इतनी जल्दी भी क्या? औरत ने माँग तो की नहीं। कल सुबह तक और प्रतीक्षा कर लें। वह सात दिन तक निरन्तर यह करता रहा। सातवें दिन उससे जो पत्र लिखा वह पहले पत्र से बिल्कुल ही उल्टा था। पहला पत्र सख्त दुश्मनी का था। सातवें दिन पत्र मैत्री का था। वह पत्र उसने भेजा। लौटती डाक से उत्तर आया। उस स्त्री ने क्षमा माँगी क्योंकि उसको भी समय गुजर गया था। अगर वह गालियाँ देता तो उसको क्षमा माँगने का मौका ही न मिलता। वह फिर गाली देती। डेल कार्नेगी ने लिखा है कि तब से मैंने नियम बना लिया कि किसी पत्र का उत्तर सात दिन से पहले देना ही नहीं है। उसमें होता क्या है? समय के बीत जाने पर आपके दिमाग का पागलपन क्षीण हो जाता है। बर्नार्ड शा कहता था कि मैं पन्द्रह दिन के पहले किसी पत्र का उत्तर देता नहीं हूँ। यह सवाल नहीं है कि आप सात ही दिन प्रतीक्षा करेंगे। एक अन्तराल चाहिए बीच में। एक विचार का मौका चाहिए। नहीं तो हम बिना विचार के उत्तर दे रहे हैं।

प्रश्न : किसी के साथ ऐसा चौबीस घंटे में भी हो सकता है?

उत्तर : हो सकता है। बिल्कुल हो सकता है। उसमें सिर्फ तय यह करना है कि तत्काल उत्तर नहीं देना है। तत्काल उत्तर मूर्च्छा से आ सकता है ऐसा कोई जरूरी नहीं है। अगर आदमी जागृत हो तो तत्काल उत्तर मूर्च्छा से नहीं आता है। लेकिन चूँकि हम जागृत नहीं हैं, इसलिए अन्तराल का सवाल है।

मैं बर्नार्ड शा के सम्बन्ध में कह रहा था वह निरन्तर पन्द्रह दिन तक उत्तर ही नहीं देता था। पन्द्रह दिन तक उत्तर न देने पर कुछ पत्र अपना जवाब खुद ही दे देते हैं। इस तरह कुछ से छुटकारा हो जाता है। फिर बहुत कम बचते हैं, जिनका उत्तर देने की जरूरत पड़ती है। मेरा मतलब केवल इतना है कि हमारा कोई भी अनुभव, जितना जागरूक हो सके उतना अच्छा है। दमन का

सवाल नहीं है। मेरी निरन्तर यह धारणा रही है कि अनैतिक व्यक्ति को जितना बुरा कहा गया है, वह कहना गलत है। नैतिक व्यक्ति को जितना भला कहा गया है, वह कहना भी गलत है। मेरी समझ में जीवन की व्यवस्था ऐसी होनी चाहिए कि व्यक्ति को सरल और सहज होने का उपाय और मौका हो, न उसकी निन्दा हो, न उसका दमन हो, न उसको जबरदस्ती ढालने-बदलने की चेष्टा हो। लेकिन समाज उसे समझने का विज्ञान और व्यवस्था देता हो; शिक्षा उसे समझने का मौका देती हो। एक बच्चा स्कूल में गया। हम उससे कहते हैं : क्रोध मत करो, क्रोध बुरा है। हम दमन सिखा रहे हैं। सच्चा और अच्छा स्कूल उसे सिखाएगा : क्रोध करो लेकिन जागे हुए। कैसे करो, हम इसकी विधि बताते हैं। क्रोध जरूर करो, लेकिन जागे हुए, जानते हुए, पहचानते हुए करो। हम क्रोध का दुश्मन तुम्हें नहीं बनाते। केवल तुम्हें हम समझदार क्रोध करना सिखाते हैं। अगर ऐसी व्यवस्था हो तो व्यक्ति धीरे-धीरे क्रोध के बाहर हो जाएगा क्योंकि समझपूर्वक कोई कभी क्रोध नहीं कर सकता है।

मेरी बात कई दफा उल्टी दिखती है। कई दफा ऐसा लगता है कि इससे स्वच्छंदता फैल जाएगी, अराजकता फैल जाएगी। लेकिन अराजकता फैली हुई है, स्वच्छंदता फैली हुई है। मैं जो कह रहा हूँ उससे स्वच्छंदता मिटेगी, अराजकता मिटेगी। मेरी बातों से कई दफा ऐसा हो सकता है कि साधारण आदमी भ्रान्त हो जाए, गलत रास्ते पर चला जाए। इस सब में एक बात तुम मान कर चले हो कि साधारण आदमी ठीक रास्ते पर है। अगर यह मानकर चलोगे तो हो सकता है कि साधारण आदमी इसलिए साधारण बना है कि वह गलत रास्ते पर है। नहीं तो कोई आदमी ऐसा नहीं जो असाधारण न हो जाए। लेकिन जिन रास्तों पर वह चल रहा है, वे रास्ते ही उसे साधारण बना रहे हैं। मैं जानता हूँ कि रास्ते साधारण या असाधारण बनाते हैं। जिन रास्तों पर हम चल रहे हैं, वे रास्ते हमें साधारण बना देते हैं। ऐसे रास्ते भी हैं जो हमें असाधारण बना सकते हैं पर उन पर हम चलेंगे तभी। समाज चाहता नहीं कि व्यक्ति असाधारण बने। समाज साधारण व्यक्ति चाहता है क्योंकि साधारण व्यक्ति खतरनाक नहीं होते, विद्रोही नहीं होते, अद्वितीय नहीं होते, व्यक्ति ही नहीं होते, सिर्फ भीड़ होते हैं। समाज चाहता है भीड़, नेता चाहते हैं भीड़, गुरु चाहते हैं भीड़ शोषक चाहते हैं भीड़ जिसमें कोई व्यक्तित्व न हो। उस भीड़ का शोषण किया जा सकता है। और मैं कहता हूँ कि चाहिए व्यक्ति क्योंकि भीड़ की कभी आत्मा नहीं होती। और एक ऐसी दुनिया, एक

ऐसा समाज बनाने की जरूरत है जहाँ व्यक्ति हो। व्यक्ति अलग-अलग होंगे अलग-अलग रास्तों पर चलेंगे। लेकिन यही व्यवस्था होनी चाहिए कि अलग-अलग रास्तों पर चलने वाले लोग, अलग-अलग व्यक्तित्व वाले लोग एक-दूसरे के प्रति प्रेमपूर्वक रह सकें।

पोलपरे के खिलाफ एक आदमी था और उसने पोलपरे को इतनी गालियाँ दीं, और उसके खिलाफ किताबें लिखीं कि पोलपरे को नाराज हो जाना चाहिए था। वह एक दिन रास्ते में पोलपरे को मिला और कहा कि महाशय, आप चाहते होंगे कि मेरी गर्दन कटवा दें क्योंकि मैं आपके खिलाफ ऐसी बातें कर रहा हूँ। पोलपरे ने कहा नहीं, अगर तुम मुझसे पूछोगे तो तुम जो कह रहे हो उसे कहने का तुम्हें हक है। और इस हक को बचाने के लिए अगर जरूरत पड़े तो मैं अपनी जान गंवा दूँगा हालांकि तुम जो कह रहे हो, वह गलत है। हमारा भिन्न-भिन्न होने का सवाल नहीं है। सवाल हमारी भिन्नता की स्वीकृति का है। अभी जो समाज हमने पैदा किया है, वह भिन्नता को स्वीकार नहीं करता। वह या तो भिन्नता का अपमान करता है या उसका सम्मान करता है। और यदि वह भिन्नता को नहीं मानेगा और भिन्न रहता हो चला जाएगा तो वह कहेगा : भगवान् है, मगर कभी स्वीकार नहीं करेगा कि हमारे बीच में हैं। अच्छी दुनिया वह होगी जहाँ भिन्नता स्वीकृत होगी; एक-एक व्यक्ति का अद्वितीय होना स्वीकृत होगा। और हम दूसरे की भिन्नता को आदर देना सीखेंगे।

अभी हम यह कहते हैं कि जो हमसे राजी है वह ठीक है, जो हमसे राजी नहीं, वह गलत है। यह बड़ी अजीब बात है! यह बहुत हिंसक भाव है कि जो मुझसे राजी है वह ठीक है। जो मुझसे राजी है इसका मतलब यह हुआ कि जिसका कोई व्यक्तित्व नहीं है, मैं जिसको पी गया पूरी तरह वह ठीक है। और जो मुझसे राजी नहीं, वह गलत है। यह बहुत ही शोषक वृत्ति है। इसको मैं हिंसा मानता हूँ। और जो गुरु अनुयायियों को इकट्ठे करते फिरते हैं, वे हिंसक वृत्ति के लोग हैं। वे कहते हैं कि हमारे साथ एक हजार लोग राजी हैं; एक हजार लोग हमें मानते हैं। यानी एक हजार लोगों को उन्होंने मिटा दिया है। दस हजार लोग हों तो उनको और मजा आए, करोड़ हैं तो और, क्योंकि इतने लोगों को उन्होंने बिल्कुल पोंछकर मिटा दिया है। ये खतरनाक लोग हैं। अच्छा आदमी यह नहीं चाहता कि आप उससे राजी हों। अच्छा आदमी चाहता है कि आप सोचना शुरू करें। हो सकता है कि सोचना आपको

मुझसे बिल्कुल भिन्न ले जाए। मैं यह नहीं कहता कि जो मैं कहता हूँ वह आप मान लें। मेरा जोर यह है कि आप भी इस भाँति सोचना शुरू करें। हो सकता है सोचकर आप उस जगह पहुँचे जहाँ मैं कभी आपसे राजी न हूँ या आप मुझसे राजी न हों। लेकिन आप सोचना शुरू करें। जीवन में सोचना शुरू हो, जागना शुरू हो, दमन बन्द हो, अनुगमन बंद हो तब प्रत्येक व्यक्ति को आत्मा मिलनी शुरू होगी और आत्मा प्रत्येक को असाधारण बना देती है। मुझे इससे चिन्ता नहीं कि साधारण आदमी भटक जाएगा क्योंकि मैं मानता हूँ कि साधारण आदमी भटका ही हुआ है। अब उसके और भटकने का कोई उपाय नहीं है। वह क्या भटकेगा और? उसे हम अगर और भटका दें तो शायद वह ठीक रास्ते पर पहुँच जाए।

प्रश्न : अब जो आपने कहा, क्या उसका यह अर्थ होगा कि जो लोग आपका विचार पढ़ें या सुनें और उसमें जो जैन श्रावक के व्रतों का, या जैन साधु के व्रतों का पालन कर रहे हों, उन्हें सत्य की प्राप्ति के लिए पहले अपने व्रत छोड़ देने होंगे, तभी कुछ हो पाएगा? यानी सारा जैन समाज, जो श्रावक वर्ग और साधु वर्ग का है, पहले अपने व्रतों को छोड़ दे तभी वह सत्य को पाएगा। इसी के साथ जुड़ा हुआ यह भी प्रश्न है कि क्या इन अढ़ाई हजार वर्षों में जिन्होंने इन व्रतों का पालन किया, श्रावक या साधु वे सबके सब पाखण्डी थे, उनमें कोई सत्य की सम्भावना नहीं थी।

उत्तर : नहीं, कभी भी सम्भावना नहीं थी।

असल में व्रत पालने वाला कभी भी पाखण्डी होने से नहीं बच सकता है। व्रती पाखण्डी होगा ही। सवाल यह है कि व्रत पकड़ता वही है जो भीतर सोया हुआ है। जो भीतर जग गया है, वह व्रत को नहीं पकड़ता है। व्रत आते हैं उसके जीवन में।

प्रश्न : कोई व्रती पाखंडी न रहा हो, यह सम्भव नहीं क्या?

उत्तर : नहीं, असम्भव है यह। यह तो ऐसा है जैसे कोई व्यक्ति आँख फोड़ ले और फिर सोचे कि उसे दिखाई पड़ सकता है कि नहीं। मेरी बात समझ लें। मैं यह कहूँगा कि चाहे अढाई हजार साल तक कोई फोड़े आँखें, चाहे हजार साल तक फोड़े, आँख फोड़कर दिखाई नहीं पड़ेगा। और आँख फोड़ता ही वही है जिसे दिखाई पड़ने से डर पैदा हो गया है, देखना नहीं चाहता।

व्रत का मतलब क्या है ? व्रत का मतलब है चित्त की वह दशा जिसके विपरीत आप व्रत ले रहे हैं। व्रत है दमन का नियम। मैं कामवासना से भरा हूँ, ब्रह्मचर्य का व्रत लेता हूँ। हिंसा से भरा हूँ, अहिंसा का व्रत लेता हूँ। परिग्रह से भरा हूँ, अपरिग्रह का व्रत लेता हूँ। परिग्रह का व्रत नहीं लेना पड़ता किसी को, न हिंसा का लेना पड़ता है, न कामवासना का लेना पड़ता है। क्योंकि **जो हम हैं उसका व्रत नहीं लेना पड़ता। जो हम नहीं हैं उसका व्रत लेना पड़ता है।** तो व्रत का मतलब हुआ कि जो मैं हूँ, वह उलटा हूँ और उससे ठीक भिन्न उलटा व्रत ले रहा हूँ। उस व्रत को बांधकर मैं अपने को बदलने की कोशिश करूँगा। निश्चित ही व्रत दमन लाएगा, मेरा भाव है लोभ का कि मैं करोड़ों रुपए कमा लूँ और व्रत लेता हूँ कि मैं एक लाख रुपए की ही सीमा बांधता हूँ। मेरा मन है करोड़ वाला तो मैं करोड़ वाले मन को लाख वाले मन की सीमा में बांधने की चेष्टा करूँगा। चेष्टा का एक ही परिणाम हो सकता है कि मेरा लाभ दूसरी जगह से प्रकट होना शुरू हो। मेरा मन कहे कि लाख पर अगर तुम रुक गए तो स्वर्ग में तुम्हें जगह मिलेगी। यह लोभ का नया रूप हुआ। लोभ करोड़ का था। लाख पर बांधने की कोशिश की तो उसकी धाराएँ टूट गईं। अब वह स्वर्ग में लोभ करने लगा कि वहाँ अप्सराएँ कैसे मिलेंगी, कल्पवृक्ष कैसे मिलेगा, मकान कैसा होगा, भगवान् के पास होगा कि दूर होगा ?

प्रश्न : व्रती को निःशल्य तो होना ही है क्योंकि यह तो उसकी शर्त है।

उत्तर : न, नहीं। असल में व्रती निःशल्य हो ही नहीं सकता क्योंकि व्रत ही एक शल्य है। अव्रती निःशल्य हो सकता है। व्रती निःशल्य नहीं हो सकता। शल्य तो लगी है पीछे। कांटा चुभा है छाती में। एक स्त्री निकल रही है, वह अपनी पत्नी नहीं है, तो उसको देखना नहीं है, वह चाहे कैसी भी हो। और जो चुपचाप देख लेता है, वह शायद कम शल्य से भरा हुआ है। कांटा कम है उसके चित्त में। लेकिन जो आँख बंद करके एक तरफ बैठ जाता है कि हमने व्रत लिया है कि हमें पत्नी के सिवाय किसी का चेहरा नहीं देखना है तो उसको एक कांटा चुभा ही हुआ है चौबीस घंटे। व्रती तो निःशल्य हो ही नहीं सकता। अव्रती निःशल्य हो सकता है लेकिन मैं यह नहीं कह रहा हूँ कि अव्रती होने से ही कोई निःशल्य हो जाएगा। अव्रती होना हमारे जीवन की स्थिति है। अव्रती दशा में जागना हमरी साधना है। अव्रती स्थिति में दो विकल्प हैं या तो अव्रती स्थिति को व्रत लेकर तोड़ो। लेकिन तब भीतर

जागने की कोई जरूरत नहीं पड़ती। दूसरा रास्ता यह है कि अव्रती स्थिति के प्रति जागो ताकि अव्रती स्थिति बिदा हो जाए। तब व्रत से तुम जो मांग करते थे, वह आएगा। वह तुम्हें लाना नहीं पड़ेगा।

जैसे मैंने उदाहरण के लिए अभी कहा कि सेक्स हमारी स्थिति है, ब्रह्मचर्य हमारा व्रत है। सेक्स के प्रति जागना साधना है। जो व्यक्ति सेक्स की स्थिति को अस्वीकार करेगा, ब्रह्मचर्य का व्रत लेकर, उसका सेक्स कभी मिटाने वाला नहीं। व्रत बाहर खड़ा रहेगा, सेक्स भीतर खड़ा हो जाएगा। जो व्यक्ति ब्रह्मचर्य का व्रत नहीं लेता, सिर्फ सेक्स की वस्तुस्थिति को समझने की साधना का प्रयोग करता है, उसका धीरे-धीरे सेक्स बिदा होता है और ब्रह्मचर्य आता है। यानी ब्रह्मचर्य तुम्हारे व्रत की तरह कभी नहीं आता; वह तुम्हारी समझ की छाया की तरह आता है। और जब आता है तो तुम्हें कसम नहीं खानी पड़ती किसी मन्दिर में जाकर कि मैं ब्रह्मचर्य धारण रखूंगा। क्योंकि कोई सवाल ही नहीं है। आ गया है। इसके लिए कोई कसम की जरूरत नहीं है और जिसकी तुम कसम खाते हो उससे तुम सदा उलटे होते हो। और जो तुम होते हो उसको तुम्हें कभी कसम नहीं खानी पड़ती।

प्रश्न : पर इतने लम्बे काल में जो साधक हुए, उनमें कोई ऐसा साधक नहीं जिसका सहज फलित ब्रह्मचर्य हो ?

उत्तर : वह बिल्कुल अलग बात है। मगर उसको मैं व्रती नहीं कह रहा। तुम जो कह रहे हो कि अढ़ाई हजार साल में व्रती....व्रती तो कभी नहीं पहुँचता। अढ़ाई हजार साल या पच्चीस हजार साल हों उसका कोई सवाल नहीं उठता। व्रती तो कभी नहीं पहुँचता। जो पहुँचता है वह सदा अव्रती, प्रज्ञावान् व्यक्ति होता है। पर इनमें कुछ लोग ऐसे हैं जैसे कुन्दकुन्द। कुन्दकुन्द वैसा ही व्यक्ति है जैसा महावीर। कुन्दकुन्द कोई व्रत नहीं पाल रहा है। वह समझ को जगा रहा है। जो समझ रहा है, वह छूटता जा रहा है। जो व्यर्थ है, वह फिकता चला जा रहा है। लेकिन है वह अव्रती व्यक्ति। और वह जो व्रती व्यक्ति है, वह सदा झूठ है, निपट पाखण्ड है। व्रत पालना बिल्कुल सरल है। इसमें क्या कठिनाई है ? क्योंकि यह सिर्फ वासनाओं को दबाना है। लेकिन व्रत पालने से कोई कभी कहीं नहीं पहुँचा। महावीर को भी मैं अव्रती कहता हूं। कुन्दकुन्द भी अव्रती है। ऐसा है उमास्वाति। ऐसे कुछ और लोग भी हैं। लेकिन जब तुम कहते हो 'जैन श्रावक', 'जैन साधु' तो न तो कुन्दकुन्द जैन हैं, न उमास्वाति जैन हैं। मतलब यह है कि

जिनको जैन होने का कोई पागलपन नहीं है। जिनको जैन होने का पागलपन है, वे कभी नहीं पहुँचते। क्योंकि जैन होने का भ्रम व्रत आदि से होता है कि मैं रात को खाना नहीं खाता इसलिए मैं जैन हूँ, कि मैं पानी छानकर पीता हूँ इसलिए मैं जैन हूँ, कि मैंने अणुव्रत लिए हुए हैं इसलिए मैं जैन हूँ, कि मैं सामायिक करता हूँ, इसलिए मैं जैन हूँ। यानी उसका जैन होना व्रतों पर ही निर्भर है। वह श्रावक है, तो श्रावक के व्रत हैं। साधु है तो साधु के व्रत हैं। अव्रती बात ही अलग है। सब अव्रती हैं। लेकिन अव्रती स्थिति में जो प्रज्ञा को जगाता है तो वह अव्रती सम्यक् हो जाता है।

प्रश्न : मैं समझता हूं कि जैसा शास्त्र कह ही रहे हैं कि जो व्यक्ति व्रत, अव्रत दोनों से ऊपर हो जाता है वही बात आप कह रहे हैं।

उत्तर : वह तो पीछे होगा। लेकिन व्रत पालनेवाला, व्रत बांधनेवाला कभी नहीं हो पाएगा। समझ आएगी तो चीजें मिट जाती हैं। उदाहरण के लिए, अगर समझ आएगी तो हिंसा मिट जाती है। शेष रह जाती है अहिंसा। लेकिन व्रती की हिंसा भीतर होती है और वह अहिंसा थोपता है। व्रती की अहिंसा हिंसा के विरोध में तैयार करनी पड़ती है। प्रज्ञावान् की हिंसा विदा हो जाती है, शेष रह जाती है अहिंसा। प्रज्ञावान् की अहिंसा हिंसा का विरोध नहीं है, वह हिंसा का अभाव है। व्रती की अहिंसा हिंसा का विरोध है, अभाव नहीं। और जिसका विरोध है, वह सदा मौजूद रहता है। वह कभी नहीं मिटता।

प्रश्न : व्रत निरर्थक है। यह व्रत पालने से मालूम पड़ेगा ?

उत्तर : हाँ, बिल्कुल पड़ेगा। और जितने व्रती हैं, उनको जितने जोर से मालूम पड़ता है, उतना आपको नहीं मालूम पड़ता। अगर वे भी सेक्स की तरह इसमें मूच्छित ही लगे हों कि रोज सुबह मन्दिर चले जाते हैं मूच्छित और कभी जागकर नहीं देखा कि क्या मिला, यह प्रश्न ही अगर न पूछा तो जन्म जन्मान्तर तक व्रत मानते रहेंगे। यह प्रश्न पूछ लिया हो तो अभी टूट जाएगा इसी वक्त। अगर व्रती समझ ले मेरी बात को तो उसको जल्दी समझ में आ जाएगी बजाए आपके। क्योंकि उसको व्रत की व्यर्थता का अनुभव भी है। लेकिन वह अनुभव को देखना नहीं चाहता, मूर्च्छा की तरह चला जाता है। वह कहता है अभी नहीं हुआ तो कल होगा, कल नहीं हुआ तो परसों होगा और कुछ तो हो ही रहा है। मेरे पास लोग आते हैं और कहते हैं कि मैं

इतने दिन से णमोकार का पाठ कर रहा हूँ तो मैं पूछता हूँ उससे क्या हुआ ? वह कहता है, बड़ा अच्छा लग रहा है, शांति लग रही है। फिर थोड़ी देर में मुझसे पूछता है : शांति का कोई उपाय बताइए ? मैं कहता हूँ : अब मैं कैसे बताऊँ तुम्हें जब मिल ही रही है शांति। वह कहता है : नहीं, अभी कुछ खास नहीं मिल रही। मैं कहता हूँ : तुम मुझे बिल्कुल साफ-साफ कहो। अगर थोड़ा-थोड़ा लगता है तो करते चले जाओ, धीरे-धीरे ज्यादा लगने लगेगा फिर मुझसे मत पूछो। तुम बिल्कुल ईमानदारी से कहो कि सच में कुछ हुआ है। वह कहता है : कुछ हुआ तो नहीं है। यानी वह जो कह रहा था उसकी भी उसे होश नहीं थी कि वह क्या कर रहा है। एक आदमी कहता है कि मैं मन्दिर जाता हूँ रोज। वह फिर भी पूछता है : "शान्ति चाहिए"। उसको पूछो तो वह कहता है कि मन्दिर जाने से शान्ति मिलती है। मिलती है तो फिर अब और क्या शांति चाहिए ? ठीक है, जाओ। वह कभी जागा हुआ ही नहीं है कि वह क्या कह रहा है, क्या कर रहा है, वह भी सुनी-सुनाई बातें दोहरा रहा है। यानी मन्दिर जाने से शांति मिलती है, यह उसने सुना है और वह मन्दिर जाता है। अब वह भी कह रहा है कि बड़ी शांति मिलती है।

अगर जगे कोई व्रती तो व्रत से एकदम मुक्त हो जाए। अव्रती भी समझ ले तो उसके भी समझ में आ सकता है, क्योंकि ऐसे हम अव्रती भले हों, चाहे हमने कभी कसम खाकर व्रत न लिए हों लेकिन वैसे किसी न किसी रूप में हम सब व्रती हैं। जैसे कि आपने शादी की तो पत्नीव्रत या पतिव्रत लिया। आपको ख्याल में नहीं है। मन्दिर में जाकर नहीं लिया जाता, वह तो हम चौबीस घंटे जो भी कर रहे हैं, उसमें व्रत पकड़ रहे हैं। और अगर हम जाग जाएँ तो हमको पता चले कि कुछ हुआ नहीं है उस व्रत से। चीजें कहीं बदली नहीं हैं। और चित्त वैसा ही रह गया है जैसा था। चित्त की वही दौड़ हैं, वही भाग है। वह तो सभी चीजें अनुभव से आती हैं लेकिन जिन्दगी में व्रत चल ही रहे हैं चौबीस घंटे। जैसे एक व्यक्ति है जो कहता है : "मेरे पिता हैं, इसलिए मैं उनकी सेवा कर रहा हूँ।" यह व्रत ले रहा है सेवा का। इसको पिता की सेवा करने में कोई आनन्द नहीं है। यह कह रहा है : "कर्तव्य है"। यह व्रती आदमी है। पिता की सेवा भी कर रहा है और पूरे वक्त क्रोध से भी भरा हुआ है कि कब छुटकारा हो जाए, यह पैर दबाने से कब छुटकारा मिले ? लेकिन यह व्रतपूर्वक, नियमपूर्वक कर रहा है। पिता है इसलिए कर रहा है। अब सच बात तो यह है कि इसको कभी आनन्द नहीं मिलेगा। यानी पिता हैं',

इसलिए पैर दबाऊँ, अगर यह कर्त्तव्य भाव है तो आनन्द कभी नहीं मिलेगा। और अगर इसे आनन्द आ रहा है पैर दबाने में तो फिर व्रत नहीं रह गया। फिर इसकी एक समझ है, एक प्रेम है, एक दूसरी बात है। एक नर्स है। वह एक बच्चे को व्रतपूर्वक पाल रही है। एक माँ है। वह अपने बच्चे को आनन्दपूर्वक पाल रही है। और अगर कोई उस माँ से पूछेगा कि 'तूने अपने बेटे के लिए बहुत किया तो वह कहेगी कि कुछ भी नहीं कर पाई। जो कपड़े देने थे नहीं दे पाई, जो खाना देना था नहीं दे पाई। लेकिन कोई नर्स से पूछे : 'तुमने फलां लड़के के लिए बहुत किया।' वह कहेगी : 'बहुत किया। पाँच बजे सुबह से काम पर जाती थी, पाँच बजे शाम को लौटती थी। बहुत किया।'

कर्त्तव्य, व्रत की भाषा है, व्रत की बात है। प्रेम अव्रत की भाषा है, अव्रत की बात है। लेकिन अव्रत अकेले काफी नहीं है। अव्रत और जागरण। वह कोई भी करे, जैन करे, मुसलमान करे, ईसाई करे, पुरुष करे, स्त्री करे, इससे कोई सम्बन्ध नहीं है। घटना उस करने से घटती है। लेकिन होता क्या है : परम्पराएँ धीरे-धीरे जड़ नियम बन जाती हैं और जड़ नियम थोपने की प्रवृत्ति शुरू हो जाती है और जब जड़-नियम थोप दिए जाते हैं और लोग उन्हें स्वीकार कर लेते हैं तो वे जड़ नियम भी लोगों को जड़ करते हैं। इसलिए व्रती व्यक्ति जड़ होता चला जाता है धीरे-धीरे।

प्रश्न : महावीर का पौरुष या व्रती का जागरण जल्दी फलित होगा या अव्रती का जागरण जल्दी फलित होगा ?

उत्तर : जागरण, चाहे वह अव्रती का हो या व्रती का हो, फलीभूत होता है। आप जिस स्थिति में हों, वहीं जाग जाएँ। हम किसी न किसी स्थिति में हैं ही, किन्हीं-न-किन्हीं सीमाओं में बंधे हैं, कुछ न कुछ कर रहे हैं। कोई दूकान चला रहा है, कोई मन्दिर में पूजा कर रहा है, कोई मकान बना रहा है, कोई मन्दिर बनवा रहा है, कोई उपवास कर रहा है, कोई खाना खा रहा है। हम कुछ न कुछ कर रहे हैं। हम जो भी कर रहे हैं उसके प्रति जागरण फलीभूत होता है। हम जो भी कर रहे हैं इससे कोई सम्बन्ध नहीं। एक आदमी चोरी कर रहा है और एक आदमी पूजा कर रहा है। करने के प्रति जागने से फल आना शुरू हो जाता है। चोरी करने वाला चोरी करने के प्रति जाग जाए तो वही फल लाएगा। जागरण के पीछे बल होगा अवश्य।

प्रश्न : व्रती का ज्यादा होगा या अव्रती का ?

उत्तर : असल बात यह है कि यह होगा। यह बड़ी बात है। बड़ी इसलिए है कि कौन सा व्रत ? एक आदमी व्रत लिए है पांच बार माला फेर लेना। एक आदमी चोरी करने जा रहा है। यह प्रत्येक घटना पर निर्भर करेगा कि क्या व्रत या क्या अव्रत ? लेकिन कुल कीमत की बात इतनी है कि आदमी जो भी कर रहा है, उसके प्रति उसे जागकर करना है। वह मन्दिर जा रहा हो तो भी जागना है, वेश्यालय जा रहा हो तो भी जागना है। जो भी करे उसे होश-पूर्वक करना है। होशपूर्वक करने से जो शेष रह जाएगा वह धर्म है। जो मिट जाएगा, वह अधर्म है।

प्रश्न : महावीर क्या इसी जागरूकता को पौरुष और क्षात्रधर्म मान रहे हैं या कोई और पौरुष है ?

उत्तर : इसको ही, इससे बड़ा और कोई पौरुष नहीं है। नींद तोड़ने से बड़ा कोई पौरुष नहीं है।

प्रश्न : पर आपने यह भेद किया कि एक मार्ग आत्मसमर्पण का है, दूसरा पौरुष का है।

उत्तर : हां, हां, नींद तोड़ना दोनों में बराबर है। मगर बिल्कुल ही अलग-अलग रास्ते से नींद टूटेगी। समर्पण करने वाले की नींद अगर थोड़ा भी पौरुष हुआ तो नहीं टूटेगी। क्योंकि समर्पण करने में एकदम स्त्रीभाव चाहिए। यानी समर्पण करने में यही पौरुष होगा कि पौरुष बिल्कुल न हो। और पौरुष करने वाले में यही पौरुष होगा कि उसमें समर्पण का भाव न हो जरा भी। महावीर के हाथ तुम किसी के प्रति नहीं जुड़वा सकते हो। तुम कल्पना ही नहीं कर सकते हो कि यह आदमी हाथ जोड़े हुए खड़ा हो कहीं।

प्रश्न : वह अपने आन्तरिक शत्रुओं से लड़ा, यह पौरुष नहीं है ?

उत्तर : नहीं, नहीं, कोई आन्तरिक शत्रु नहीं है सिवाय निद्रा के, मूर्च्छा के, प्रमाद के। इसलिए महावीर से कोई पूछे : धर्म क्या है ? वह कहेंगे : अप्रमाद। और अधर्म क्या है ? वह कहेंगे : प्रमाद। कोई पूछे कि साधुता क्या है ? वह कहेंगे : अमूर्च्छा। असाधुता क्या है ? वह कहेंगे : मूर्च्छा। और सारी साधना का सूत्र है विवेक। कैसे कोई जागे, कैसे कोई होश से भरा हुआ हो तो महावीर का पौरुष काम, क्रोध, लोभ से लड़ने में नहीं है। क्योंकि ये तो लक्षण हैं सिर्फ। इनसे पागल लड़ेगा। इनसे महावीर नहीं लड़ सकता। मूर्च्छा है मूल वस्तु। काम, क्रोध, लोभ, सब उससे पैदा होते हैं। जैसे कि तुम्हें बुखार चढ़ा। अगर

कोई बुद्धिहीन वैद्य मिल गया तो वह तुम्हारे शरीर की गर्मी से लड़ेगा। ठंडा पानी डालेगा तुम्हारे ऊपर शरीर की गर्मी को कम करने के लिए। लेकिन बुद्धिमान् वैद्य कहेगा कि गर्मी बुखार नहीं है। गर्मी केवल खबर देती है कि भीतर कोई बीमारी है। यह केवल सूचना है, यह लक्षण है। इससे लड़े तो मरीज मरेगा। **बीमारी से लड़ो ताकि यह लक्षण विदा हो जाए। बीमारी बिदा हुई तो शरीर से ताप बिदा हो जाएगा।** लेकिन शरीर से ताप बिदा करने की कोशिश की तो बीमारी का बिदा होना जरूरी नहीं। आदमी मर भी सकता है। तो काम, क्रोध, लोभ, मोह—ये लक्षण हैं कि भीतर आदमी मूच्छित है। ये सिर्फ खबरें हैं; मूर्च्छा टूटेगी तो ये बिदा हो जाएँगे। और अगर मूर्च्छा से बचते हुए व्रत को लेकर इनको खत्म करने की कोशिश की तो ये कभी खत्म नहीं होंगे क्योंकि मूर्च्छा भीतर जारी है। वह नए-नए रूपों में इनको पैदा करती रहेगी। सिर्फ रूप बदल जाएँगे ज्यादा से ज्यादा। एक कोने से न निकल कर दूसरे दरवाजे से झरना निकलेगा। महावीर तो बहुत स्पष्ट हैं कि साधना यानी अमूर्च्छा, संघर्ष यानी मूर्च्छा, संकल्प यानी जागरण। इसके अतिरिक्त और कोई सवाल ही नहीं है उनके लिए।

प्रश्न : आचारांग का एक वाक्य है। उसका अर्थ यह है कि 'तू बाह्य शत्रुओं से क्यों लड़ता है, अपनी आत्मा के शत्रुओं से ही लड़।' यह वाक्य आपके विचार में किसी ढंग से व्याख्येय है, या अशुद्ध ही है।

उत्तर : मैं तो फिक्र नहीं करता सूत्रों की। क्योंकि जो लोग उन्हें संगृहीत करते हैं वे कोई बहुत समझदार लोग नहीं हैं। इनकी मैं फिक्र नहीं करता। इनसे कोई ताल-मेल बैठाने का सवाल नहीं है। बैठ जाए, वह आकस्मिक बात है। न बैठे, उसकी कोई जरूरत नहीं है। 'आन्तरिक शत्रुओं से लड़' यह कहीं न कहीं बुनियादी भूल हो गई क्योंकि 'शत्रुओं' शब्द बहुवचन में है। 'आन्तरिक शत्रु से लड़'—यह ठीक बात रही होगी क्योंकि 'शत्रु' एकवचन में है। आन्तरिक शत्रु सिर्फ मूर्च्छा है। महावीर हजार बार दोहरा कर यह कह रहे हैं। इसलिए बहुत शत्रु नहीं हैं भीतर। शत्रु एक ही है और मित्र भी एक ही है। 'जागरण' मित्र है, मूर्च्छा शत्रु है। इसलिए सुनने वाले ने कहीं न कहीं भूलकर दी है। आन्तरिक शत्रुओं से लड़ने में वह फिर काम, क्रोध, और लोभ वाली दुनियाँ में उतर आया है। वह इन्हीं की बात कर रहा है फिर क्योंकि शत्रुओं का प्रयोग उसने बहुवचन में किया है। एकवचन में होता तो मैं राजी हो जाता कि बिल्कुल ठीक है। भूल हो गई बुनियादी। फिर वह इन्हीं को शत्रु समझ रहा है।

ये शत्रु हैं ही नहीं। शत्रु कोई और है। ये उसकी फौजें हो सकती हैं। यानी इनसे लड़ने का कोई मतलब नहीं है। मालिक कोई और है। वह मालिक नई फौजें भेजता रहेगा। अगर पुरानी तुमने हटा भी दीं तो नई फौजें आती रहेंगी। 'आन्तरिक शत्रु' से लड़ना है, 'शत्रुओं' से नहीं।

अक्सर ऐसा हो जाता है कि हमारी जो समझ होती है वह भटक जाती है। इसको यह ख्याल में नहीं आता कि शत्रु एक है। हमारे ख्याल में आता है कि शत्रु बहुत हैं। मगर शत्रु एक ही है और इसलिए जो बहुत शत्रुओं से लड़ रहा है, वह बुनियादी भूल कर रहा है क्योंकि मजा यह है कि अगर काम चला जाए तो लोभ चला जाता है, क्रोध चला जाता है, मोह चला जाता है। इनमें से एक को बिदा कर दो, बाकी तीन को बचा लो तो मैं समझूँ कि यह अलग है। अगर कोई यह कहता हो कि मैंने लोभ बिदा कर दिया, लेकिन अभी काम बचा हुआ है तो यह असम्भव है। क्योंकि काम के साथ अनिवार्य लोभ है। यानी वे चार जो तुम्हें दिखाई पड़ रहे हैं—काम, क्रोध, लोभ और मोह—वे संयुक्त हैं और उन सब का संयुक्त जो तना है नीचे, वह मूर्च्छा है। वहाँ से शाखाएँ निकलती रहती हैं। अब सब लोग इस उलटे काम में लग जाते हैं। कोई लड़ रहा है क्रोध से कि मुझे क्रोध जीतना है। मेरे पास लोग आते हैं और कहते हैं कि हमें कोध बहुत ज्यादा है, क्रोध से बचने का उपाय बताइए। वे समझ रहे हैं, क्रोध उनका शत्रु है। क्रोध शत्रु नहीं है। क्योंकि बाकी अगर तीन की वे फिक्र नहीं कर रहे हैं तो इस क्रोध से कुछ हल नहीं होगा। तब चारों की एक साथ फिक्र करनी होगी। जैसे की एक वृच है, उसमें कई शाखाएँ हैं। एक आदमी एक शाखा काट रहा है, दूसरा आदमी दूसरी शाखा काट रहा है और नीचे के तने पर आदमी पानी सींचते हैं सुबह उठ कर। नीचे के तने पर पानी सींचते हैं रोज और रोज वृक्ष पर चढ़ कर शाखाएँ काटते हैं। एक शाखा कटती है तो दो पैदा हो जाती हैं, दो कटती हैं तो चार पैदा हो जाती हैं। और नीचे के तने पर पानी दिए चले जाते हैं। मजा यह है कि काम, क्रोध, लोभ, मोह से हम लड़ते हैं और मूर्च्छा पर पानी दिए चले जाते हैं। और "मूर्च्छा से वे सब पैदा होते हैं। तो जो थोड़ी सी गहराई में उतरेगा वह कहेगा : मूर्च्छा से लड़ना है।" और लड़ना क्या है जागना है। वह लड़ना ही नहीं, जागना होगा। कभी जागा हुआ आदमी लोभी नहीं पाया गया, और सोया हुआ आदमी कभी अलोभी नहीं हुआ, अकामी नहीं हुआ।

इसलिए मेरे हिसाब में, काम, क्रोध, लोभ सोए हुए आदमी के लक्षण हैं। जब ये बाहर दिखाई पड़ते हों तो भीतर आदमी सोया हुआ है। जब ये बाहर दिखाई नहीं पड़ते तो भीतर आदमी जागा हुआ है। लेकिन कोई उससे उलटी तरकीब में लग जाय कि इनको दिखाई न पड़ने दें तो कोई फर्क नहीं पड़ता। व्रती यही कर रहा है कि क्रोध को दिखाई न पड़ने देंगे तो हो सकता है दिखाई न पड़े। दबा ले तरकीबों से। लेकिन फिर भी वह पहचाना जा सकता है। और उसके भीतर तो रहेगा ही। अगर कोई ढंग से उसको उकसाए तो क्रोध निकाला जा सकता है। यानी उसके क्रोध नए-नए रूप लेंगे और हो सकता है कि कई बार हम उसको उकसा भी न पाएं क्योंकि उसको उकसाने की तरकीब हमें पता न हो। उस तरकीब को अगर हम पकड़ लें तो फौरन उसको उकसाया जा सकता है।

व्रत से कभी कुछ नहीं मिटता क्योंकि व्रत शाखाओं से लड़ाई है। और कभी भी कोई व्यक्ति मुक्त हुआ हो तो वह दमन से मुक्त नहीं हुआ होगा। वह जब भी मुक्त हुआ होगा जागरण से ही मुक्त हुआ होगा। यह दूसरी बात है कि उस दिन की भाषा साफ न हो, अभिव्यक्ति साफ न हो। मगर अभिव्यक्ति निरन्तर साफ होती चली जाती है। जैसे समझ लें कि न्यूटन ने खबर बताई कि चीजें गिरती हैं क्योंकि जमीन में गुरुत्वाकर्षण है। कोई हमसे पूछे कि न्यूटम के पहले जो चीजें गिरती रहीं, वे भी गुरुत्वाकर्षण से ही गिरती थीं। न्यूटन ने तो अभी तीन सौ साल पहले कहा कि चीजें ऊपर से नीचे गिरती हैं क्योंकि जमीन खींचती है, गुरुत्वाकर्षण है। कोई आदमी हमसे पूछ सकता है कि क्या न्यूटन के पहले चीजें नीचे नहीं गिरती थीं और अगर गिरती थीं तो वह भी क्या गुरुत्वाकर्षण से ही गिरती थीं। तो हम कहेंगे कि वह भी गुरुत्वाकर्षण से ही गिरती थीं। जब भी कोई चीज गिरी है, गुरुत्वाकर्षण से ही गिरी है। खबर अभी न्यूटन ने ही दी है। न्यूटन ने सिर्फ नियम बनाया है। चीजें गिर ही रही थीं सदा से। लेकिन इसको न्यूटन ने पहली बार स्पष्ट किया है। महावीर मुक्त हुए हों, कि कृष्ण मुक्त हुए हों, दमन से नहीं, सदा जागरण से हुए होंगे। यह बात फ्रायड ने पहली बार स्पष्ट की है। इस नियम को पहली बार ठीक-ठीक वैज्ञानिक ढंग से कहा है। और इसलिए अब जो लोग महावीर को समझने के लिए फ्रायड के पूर्व की भाषा का उपयोग कर रहे हैं, वे महावीर को कभी भी आज के युग के लिए उपयोगी नहीं बनने देंगे क्योंकि वह बुनियादी गलत बातें और गलत शब्द उपयोग करते रहेंगे।

यह भूल निरन्तर होती रही है, क्योंकि महावीर के साथ अनिवार्य रूप से अढ़ाई हजार साल पुरानी शब्दावली जुड़ी हुई है, जब न फ्रायड हुआ है, न मार्क्स हुआ है, न आइंस्टोन हुआ है। और अगर उसी को पकड़ कर अनुयायी शोर मचाना चाहता है तो वह कभी भी उसको उपयोगी नहीं बना सकता। वह तो जैसे-जैसे शब्द बदलते जाते हैं, नए-नए शब्द आते जाते हैं, उनको हमें समझपूर्वक उपयोग करना चाहिए। वैसी घटना जब भी घटी होगी दमन से कभी नहीं घटी होगी। यानी वह वैज्ञानिक असम्भावना है। उसका महावीर से कोई लेना-देना नहीं है। यानी दो ही उपाय हैं। अगर कोई कहे कि दमन से महावीर उपलब्ध हुए हैं तो फिर महावीर उपलब्ध न हुए होंगे। दूसरा उपाय है कि अगर वह उपलब्ध हुए तो उन्होंने दमन न किया होगा। यानी इसके सिवाए कोई मार्ग ही नहीं है। मैं मानता हूँ कि वह उपलब्ध हुए क्योंकि जैसी शांति, जैसा आनन्द और जैसी ज्योति उनके व्यक्तित्व में आई, वह कभी दमित व्यक्ति को आ ही नहीं सकती। दमित व्यक्ति के चेहरे पर, मन पर सब ओर तनाव होता है क्योंकि जो दबाया है, वह दिक्कत देता रहता है। सिर्फ विमुक्त आदमी के मन में ऐसी शांति हो सकती है जैसी महावीर के मन में है। जिसने कुछ भी नहीं दबाया, वह मुक्त हो गया। मुक्ति और दमन उल्टे शब्द हैं—यह हमें ख्याल में नहीं। दमन का मतलब है भीतर दबाया गया; मुक्ति का मतलब है छूट गया, विसर्जित हो गया। क्रोध विदा ही हो गया है, चला ही गया है, दबाया नहीं गया।

प्रश्न : आपने कहा कि जागृति आती है तो मूर्च्छा चली जाती है। मूर्च्छा के प्रति जागृत होना चाहिए, उसकी शाखा से लड़ने की जरूरत नहीं ?

उत्तर : कोई जरूरत नहीं।

प्रश्न : आपका मतलब है कि अव्रत की अकेले जरूरत नहीं। साथ में जागृति की भी जरूरत है।

उत्तर : मेरा कहना है कि जागृति आ जाएगी तो अव्रत आ ही जाएगा। अव्रत है ही हमारा। व्रती का मतलब है कि जो नियम बांधकर जी रहा है। अव्रती का मतलब है जो नियम बांधकर नहीं जी रहा है। अव्रती हम हैं ही। उसे लाने का सवाल नहीं है।

कुछ हम में व्रती हैं : मन्दिर जाने वाले, मस्जिद जाने वाले, पूजा-पाठ करने वाले, नियम धर्म से जीने वाले। बाकी लोग अव्रती हैं। व्रती को व्रत के प्रति जाग जाना चाहिए और अव्रती को अव्रत के प्रति। जो हम कर रहे हैं उसी के प्रति जाग जाना चाहिए। जागने से वह आ ही जाएगा। जो व्रती चेष्टा कर रहा है व्रत से लाने की वह अपने आप आ जाएगा।

प्रश्न : जागरण के साथ विशेषण विवेक का होना जरूरी है अथवा नहीं? क्योंकि अविवेक हो तो जागरण कैसे हो सकता है?

उत्तर : नहीं, विवेकपूर्ण जागना नहीं हो सकता। जागरण अनिवार्य रूप से विवेकपूर्ण होता है। असल में जागरण और विवेक एक ही अर्थ रखते हैं। जैसे हम यह नहीं कह सकते "जीवित मुर्दा" वैसे ही हम अविवेकपूर्ण जागरण नहीं कह सकते। ये विपरीत शब्द हैं। विवेक यानी जागरण। विवेक से आम ख्याल होता है कि यह गलत है और यह सही है।

लेकिन ऐसा विवेक आप जब तक करते हैं, और कहते हैं कि यह ठीक मानूं, यह गलत मानूं तब तक आपको विवेक नहीं होता। तब तक विवेक-शील लोगों ने जिसको ठीक जिया है, और जिसको गलत माना है, वह आपने पकड़ लिया है। जिस दिन आपका विवेक होगा उस दिन यह तय नहीं करना पड़ता है कि यह गलत है या सही है। जो सही है वह होता है; जो गलत है वह नहीं होता है। सही होता है जागे हुए व्यक्ति से। गलत होता है सोये हुए व्यक्ति से। जागे हुए व्यक्ति से गलत नहीं होता, सोये हुए व्यक्ति से सही नहीं होता। असत्य है यह बात कि कोई अविवेकपूर्ण जागरण होता है क्योंकि जागरण है तो अविवेक टिकेगा कहाँ, ठहरेगा कहाँ?

प्रश्न : परतन्त्रता, स्वच्छंदता और स्वतन्त्रता में क्या फर्क है?

उत्तर : बहुत फर्क है।

परतन्त्रता का मतलब है जो हमसे करवाया जा रहा हो हम वही करें। स्वच्छन्दता का मतलब होता है जो हमसे करवाया जा रहा हो, वह भर हम नहीं कर रहे, हम उससे विपरीत करते हैं। विद्रोह भी परतन्त्रता है यानी विद्रोह में चली गई परतन्त्रता। जैसे कि बाप ने कहा कि "मन्दिर जाना" मगर लड़का मन्दिर नहीं जा रहा है।

एक परतन्त्र है, एक स्वच्छंद। लेकिन जो स्वच्छंद है वह परतन्त्रता के खिलाफ है इसलिए वह विद्रोही परतन्त्र है। इन दोनों से भिन्न स्वतन्त्रता है जिसका मतलब है कि वह न इसलिए जाता है मन्दिर कि बाप कहता है और न इसलिए नहीं जाता है कि बाप कहता है। वह सोचता है, समझता है। ठीक लगता है तो जाता है, ठीक नहीं लगता तो नहीं जाता। मगर वह न तो परतन्त्र है, न स्वच्छंद।

प्रश्न : आपने पीछे कहा कि देवताओं के पास, भूत-प्रेतों के पास वाणी नहीं होती। और कल आपने कहा कि आर्मस्ट्रांग और उसके साथी जब लौट रहे थे, नीचे रिसीव करने वाले स्टेशनों पर दस मिनट तक जैसे हजारों भूत-प्रेत रो रहे हों, हंस रहे हों, चिल्ला रहे हों, ऐसी आवाजें पकड़ी गईं। इनकी कोई व्याख्या नहीं हो सकी कि वे कैसे आईं। तो जब भूत-प्रेतों की वाणी नहीं होती हो वे आवाजें कैसे पैदा हुईं ?

उत्तर : इसे थोड़ा समझना पड़ेगा। पिछले महायुद्ध में एक आदमी के अंगूठे में चोट लगी बम के गिरने से। उसे बेहोश हालत में अस्पताल में लाया गया। बीच-बीच में, जब भी वह होश में आता वह चिल्लाता कि मेरा अंगूठा बहुत जल रहा है, आग पड़ रही है मेरे अंगूठे में। रात उसको बेहोश करके उसका पूरा पैर काट दिया गया क्योंकि पूरा पैर खराब हो गया था; उसको बचाने का कोई उपाय न था और इतनी असह्य वेदना थी कि पूरे शरीर में जहर फैल जाने का डर था। उसका घुटने से लेकर नीचे तक का पैर काट दिया गया। सुबह जब होश में आया तो उसने चीख पुकार मचानी शुरू की कि मेरे अंगूठे में बहुत दर्द हो रहा है। आस-पास के डाक्टरों ने उसे गौर से देखा क्योंकि अंगूठा अब था ही नहीं। अंगूठे में दर्द कैसे हो सकता है जब अँगूठा ही नहीं है, ठीक से सोच कर कहो। अभी उसको बताया नहीं कि उसका पैर कटा हुआ है। उसने कहा : क्या ठीक से सोचें। मेरा अंगूठा जला जा रहा है, आग पड़ रही है। उन्होंने उसका कम्बल उघाड़ा और कहा तुम्हारा पैर तो रात साफ कर दिया, अंगूठा तो है नहीं। उसने देखा और कहा मुझे भी दिखाई पड़ रहा है अंगूठा नहीं है लेकिन दर्द मेरा अंगूठे में हो रहा है, इसको मैं कैसे इन्कार करूं। तब उसकी जांच-परख की गई। और जांच-परख से एक बहुत नया सत्य हाथ में आया जो कभी ख्याल में नहीं था। जांच-परख से यह सत्य पकड़ में आया कि अंगूठे में जो दर्द होता है, उससे सिर

तक खबर पहुँचाने वाले जो स्नायु तन्तु हैं, वे हिलते हैं। अंगूठा सिर में तो है नहीं। अंगूठा तो छः फुट दूर है। दर्द अँगूठे में होता है, सिर में पता चलता है। पता लाने के लिए जो तन्तु हैं, वे हिलते हैं बीच में। उन तन्तुओं के खास ढंग से हिलने से दर्द पता चलता है। अंगूठा तो कट गया, वे तन्तु उसी खास ढंग से हिले जा रहे हैं। वे तन्तु जो आगे के हैं उसी तरह से कांप रहे हैं जिस तरह दर्द में कांपना चाहिए। दर्द का पता चल रहा है और अंगूठे में पता चल रहा है जो है ही नहीं। क्योंकि वह अंगूठे के दर्द की खबर लाने वाला तन्तु है। इसके बाद तो फिर बड़ी काम की चीजें हाथ लगीं। फिर तो यह पता चला कि आपके कान के पीछे जो तन्तु हैं उनमें खास तरह की चोट करके आपके भीतर खास तरह की ध्वनियाँ पैदा की जा सकती हैं। जैसे मैंने कहा : राम ! तो आपके कान के भीतर का तन्तु एक खास ढंग से हिला। कोई राम बाहर न कहे मगर सिर्फ उस तन्तु को आपके कान के पीछे इस तरह से हिला दे जैसे राम बोलते वक्त हिलता है तो आपके भीतर राम सुनाई पड़ेगा। जैसे आपकी आँख है, उससे रोशनी भीतर जाती है। तन्तु एक तरह से हिलते हैं। आपकी आँख बंद कर दी जाए और सिर के भीतर इलेक्ट्रोड डालकर आँख के तन्तु इस प्रकार हिला दिए जाएँ जैसा कि वे प्रकाश के वक्त हिलते हैं, आपको भीतर प्रकाश दिखाई पड़ेगा और आप अंधेरे में बैठे हैं।

यह मैं इसलिए कह रहा हूँ कि भूत, प्रेत, देवताओं के लिए दो उपाय हैं जिससे वे वाणी पैदा कर सकें। एक उपाय यह है कि वे किसी मनुष्य के शरीर का उपयोग करें जैसा कि आमतौर पर वे करते हैं। तब वे बोल सकते हैं। क्योंकि वे आपके कंठ का, आपके बोलने के यंत्र का उपयोग कर लेते हैं। दूसरा उपाय यह है कि आपके रिसीविंग सेन्टर पर, आपके रेडियो स्टेशन पर तरंगें पैदा की जा सकें तो आपका रिसीविंग सेंटर कहेगा कि आवाज हो रही है। इसलिए उस दस मिनट में जो आवाजें पकड़ी गईं उनमें कोई शब्द नहीं पकड़े गए। सिर्फ रोने, हँसने, शोरगुल की आवाजें थीं वे। कोई शब्द नहीं है स्पष्ट। शब्द स्पष्ट पैदा करना बहुत कठिन है। लेकिन इस तरह की तरंगें पैदा की जा सकती हैं कि वे रोने, चिल्लाने, शोर-गुल की आवाजें पैदा कर दें। वे तरंगे ही पैदा की गई हैं। वे तरंगे पैदा करने के लिए वाणी की जरूरत नहीं है। तरंगें पैदा करने के दो ही उपाय हैं। या सीधी तरंगें पैदा कर दी जाएँ या किसी मनुष्य के यंत्र का उपयोग किया जाए। आमतौर

से मनुष्य के यंत्र का उपयोग किया जाता है लेकिन तरंगें भी पैदा की जा सकती हैं। वहाँ बोलने वाले की जरूरत नहीं है। बोलने से जो तरंगें मंडल में पैदा होती हैं वे पैदा कर दी जाएँ तो वे जो भी मनोकामना करें, पैदा हो जाती हैं। वह अगर शोरगुल की मनोकामना करें तो शोरगुल पैदा हो जाए। और जैसा मैंने कहा कि देव या प्रेत योनि में जो सबसे बड़ी अद्भुत खूबी की बात है, वह यह है कि वहाँ कंठ की जरूरत नहीं, वाणी की जरूरत नहीं, सिर्फ मनोकामना पर्याप्त है।

१२

प्रश्नोत्तर-प्रवचन

प्रश्न : आपने कहा कि सामायिक आत्म-स्थिति है। लेकिन जिसे आप सामायिक या आत्म-स्थिति कह रहे हैं क्या वह वीतरागता ही नहीं? और जब व्यक्ति आत्म-स्थिति में यानी चेतना-स्थिति में हो गया है तो फिर वह जीवन-व्यवहार में आकर क्या आत्म-स्थिति को नहीं खो देगा?

उत्तर : नहीं, नहीं खो देगा। जैसे कि आप श्वांस ले रहे हैं, तो चाहे जगें, चाहे सोएं, चाहे काम करें, चाहे न करें, श्वांस चलती रहेगी क्योंकि वह जीवन की स्थिति है। ऐसी ही चेतना की स्थिति है। और एक बार वह हमारे ख्याल में आ जाए तो फिर वह मिटती नहीं। यानी जीवन-व्यवहार में उसका ध्यान नहीं रखना पड़ता कि वह बनी रहे, वह बनी ही रहती है। जैसे एक आदमी धनपति है और उसे पता है कि मेरे पास धन है तो उसे चौबीस घंटे याद नहीं रखना पड़ता कि वह धनपति है। लेकिन वह धनपति होने की स्थिति उसकी बनी रहती है चौबीस घंटे। चाहे वह कुछ भी कर रहा हो, वह सड़क पर चल रहा है, काम कर रहा है, उठ रहा है, बैठ रहा है इससे कोई मतलब नहीं। एक भिखारी है, वह कुछ भी कर रहा है। उसकी वह स्थिति भिखारी होने की बनी ही रहती है। हमारी स्थितियां हमारे साथ ही चलती हैं। होनी चाहिए बस यह है बड़ा सवाल। तो एक पल के हजारवें हिस्से में भी अगर हमें अनुभव में आया है तो वह बना रहेगा क्योंकि हमारे पास पल के हजारवें हिस्से से बड़ा कोई समय होता ही नहीं। उतना ही समय होता है हमेशा। जब भी होगा, उतना ही होगा। वह हमें दिखाई पड़ गया तो बना रहेगा। गीता में जिसे स्थितप्रज्ञ कह रहे हैं, वह वही बात है। उसमें कुछ फर्क नहीं। सामायिक और वीतराग में जो समानता दिखाई

पड़ती है उसका मतलब कुल इतना है कि 'सामायिक' है मार्ग, 'वीतरागता' है उपलब्धि। इससे जाना है, वहाँ पहुँच जाना है। तो दोनों में मेल होगा ही।

यहाँ थोड़ा सा समझ लेना उपयोगी है। सामायिक के लिए मैंने जो कहा, वीतरागता के लिए जो कहा, वह बिल्कुल समान प्रतीक होगा क्योंकि 'सामायिक' मार्ग है, वीतरागता मंजिल है। सामायिक द्वार है, वीतरागता उपलब्धि है। साधना और साध्य अन्ततः अलग-अलग नहीं हैं। क्योंकि साधन ही विकसित होते-होते साध्य हो जाता है। तो वीतरागता में परम उपलब्धि होगी उसकी जिसे सामायिक में धीरे-धीरे उपलब्ध किया जाता है। सामायिक में पूरी तरह स्थिर हो जाना वीतरागता में प्रवेश करना है। कृष्ण ने जिसे 'स्थिर' या 'स्थितप्रज्ञ' कहा है, वह वही है जो वीतराग है। निश्चित ही वह वही है। दोनों शब्द बहुमूल्य हैं। वीतराग वह है जो सब द्वन्द्वों के पार चला गया है, सब दो के पार चला गया है, जो एक में ही पहुँच गया है। अब ध्यान रहे कि स्थिर या स्थितप्रज्ञ का अर्थ है जिसकी प्रज्ञा ठहर गई, जिसको प्रज्ञा काँपती नहीं। प्रज्ञा उसकी काँपती है जो द्वन्द्व में जीता है, दो के बीच में जीता है। वह काँपता रहता है, कभी इधर कभी उधर। जहाँ द्वन्द्व है, वहाँ कम्पन है। जैसे कि एक दिया जल रहा है। तो दिए की लौ काँपती है क्योंकि हवा कभी पूरब झुका देती है, कभी पश्चिम झुका देती है। दिया काँपता रहता है। दिए का कंपन तभी मिटेगा जब हवा के झोंके न हों, यानी जब इस तरफ, उस तरफ जाने का उपाय न रह जाए, दिया वहीं रह जाए जहाँ है। तो कृष्ण उदाहरण देते हैं कि जैसे किसी बन्द भवन में जहाँ हवा का कोई झोंका न जाता हो दिया स्थिर हो जाता है ऐसे ही जब प्रज्ञा, विवेक, बुद्धि स्थिर हो जाती है और काँपती नहीं; डोलती नहीं तब वैसा व्यक्ति 'स्थितधी' है, 'स्थितप्रज्ञ' है। वीतराग का भी यही मतलब है कि जहाँ राग और विराग खो गया, जहाँ द्वन्द्व खो गया वहाँ काँपने का उपाय खो गया और जब चित्त काँपता नहीं है तो वह स्थिर हो जाता है, ठहर जाता है। महावीर ने द्वन्द्व के निषेध पर जोर दिया है इसलिए वीतराग शब्द का उपयोग किया है। द्वन्द्व के निषेध पर जोर है, द्वन्द्व न रह जाए। कृष्ण ने द्वन्द्व की बात ही नहीं की, स्थिरता पर जोर दिया है। एक ही चीज को दो तरफ से पकड़ने की कोशिश की है दोनों ने। कृष्ण पकड़ रहे हैं दिए की स्थिरता से; महावीर पकड़ रहे हैं द्वन्द्व के निषेध से। लेकिन द्वन्द्व का निषेध हो तो प्रज्ञा स्थिर हो जाती है, प्रज्ञा स्थिर हो जाए तो द्वन्द्व का निषेध हो जाता है। ये दोनों एक ही अर्थ रखते हैं। इनमें जरा भी फर्क नहीं है।

और आपने पूछा है कि एक क्षण में, एक क्षण के हजारवें हिस्से में जिसे समय कहते हैं अगर ज्ञान उपलब्ध हो गया, दर्शन हुआ तो क्या जीवन व्यवहार में वह स्थिर रहेगा ? असल में जीवन व्यवहार आता कहाँ से है ? जीवन व्यवहार आता है हमसे ! तो जो हम हैं, गहरे में, जीवन व्यवहार वहीं से आता है। अगर झरना जहर से भरा है, अगर मूल स्रोत जहर से भरा है तो जो लहरें छलकतीं हैं, जो बिन्दु फिरते हैं, और बूँद उचटती हैं उनमें जहर होगा। अगर मूल स्रोत अमृत से भर गया तो फिर उन्हीं बूंदों में, उन्हीं लहरों में अमृत हो जाता है। जीवन व्यवहार हमसे निकलता है। हम जैसे हैं वैसा ही हो जाता है। हम मूच्छित हैं तो जीवन व्यवहार मूच्छित होता है। जो हम करते हैं, उसमें मूर्च्छा होती है। हम अज्ञान में हैं तो जीवन-व्यवहार अज्ञान से भरा होता है। और अगर हम ज्ञान में पहुँच गए तो जीवन व्यवहार ज्ञान से भर जाता है।

जैसे यह कमरा अंधेरे से भरा हो तो हम घिर उठते हैं और निकलने की कोशिश करते हैं। कभी द्वार से टकरा जाते हैं, कभी दीवार से टकरा जाते हैं, कभी फर्नीचर से टकरा जाते हैं। बिना टकराए निकलना मुश्किल होता है। और कई बार ऐसा हुआ है कि टकराते ही रहते हैं और नहीं निकल पाते। निकल भी जाते हैं तो टकराए बिना नहीं निकल पाते हैं। फिर कोई व्यक्ति हमसे कहे कि एक दिया जला लो तो हम उससे कहेंगे कि दिया जला लेंगे। लेकिन क्या दिए के जल जाने पर हम बिना टकराए निकल सकेंगे ? क्या फिर टकराना नहीं पड़ेगा ? क्या फिर सदा ही हमारा टकराने का जो व्यवहार था बन्द हो जाएगा ? तो वह कहेगा कि तुम दिया जलाओ और देखो। क्योंकि दिया जलाने पर तुम टकराओगे कैसे ? टकराते थे अंधेरे के कारण। टकराना भी चाहो तो न टकराओगे क्योंकि चाह कर कभी कोई टकराया है और द्वार जब दिखलाई पड़ेगा तो तुम दीवार से क्यों निकलोगे ? दीवार से भी निकलने की कोशिश चलती थी क्योंकि द्वार दिखाई नहीं पड़ता था। ज्योति जल जाए भीतर तो वह ऐसी नहीं है कि क्षण भर जले और फिर बुझ जाए, दिया हम जलाएँ, वह फिर बुझ सकता है, हम फिर टकरा सकते हैं। दिए का तेल चुक सकता है, दिए को बाती बुझ सकती है, हवा का झोंका आ सकता है, हजारों घटनाएँ घट सकती हैं। जला हुआ दिया भी जरूरी नहीं कि जलता ही रहे। बुझ भी सकता है। लेकिन जिस अन्तर्ज्योति की हम बात कर रहें हैं, वह ऐसी ज्योति नहीं है जो कभी बुझती है। अभी भी वह जल रही है। अभी भी जब हम

उसके प्रति जागे नहीं हैं, वह जल रही है। सिर्फ हम पीठ किए हैं। वह कभी बुझी नहीं क्योंकि वह हमारी चेतना का अन्तिम हिस्सा है, वह हमारा स्वभाव हैं। पीठ फेरेंगे; लौट कर देखेंगे तो उसे जली हुई पाएँगे। जलेगी नहीं वह, जली हुई थी ही, सिर्फ हमारी पीठ बदलेगी। हम पाएँगे कि वह जली है और ऐसी ज्योति जो कभी बुझी नहीं, जो कभी बुझती नहीं, न तेल है, न बाती है, जहाँ जो हमारे अन्तर्जीवन की अनिवार्य क्षमता है, उसको हमने एक बार देख लिया तो बात खत्म हो गई। एक बार हमें पता चल गया कि ज्योति पीछे है फिर हम चाहें भी कि हम पीठ करके चलें ज्योति को तरफ तो हम न चल पाएँगे क्योंकि ज्योति की तरफ पीठ करके कौन चल पाया है? कौन चलेगा? एक बार जान लें। न जानें तो बात अलग है। इसलिए एक क्षण को भी उसकी उपलब्धि हो जाती है तो वह उपलब्धि सदा के लिए स्थायी हो गई और उसके अनुपात में हमारा जीवन-व्यवहार बदलना शुरू हो जाएगा। एकदम ही बदल जाएगा क्योंकि कल जो हम करते थे, वे आज हम कैसे कर सकेंगे? वह करते थे अँधेरे के कारण। अब है प्रकाश इसलिए वह करना असम्भव है।

प्रश्न : एक प्रश्न जो मन में उठता है वह है पुनर्जन्म वाली बात। क्या अन्य प्राणी मनुष्य योनि के अन्दर आ सकते हैं? और आ सकते हैं तो स्वतः आते हैं या वह उनकी उपलब्धि है?

उत्तर : कर्म के सम्बन्ध में बहुत कुछ समझना जरूरी है क्योंकि जितनी इस बात के सम्बन्ध में नासमझी है, उतनी शायद किसी बात के सम्बन्ध में नहीं। इतनी आमूल भ्रान्तियाँ परम्पराओं ने पकड़ ली हैं कि देख कर आश्चर्य होता है कि किसी सत्य-चिन्तन के आस-पास असत्य की कितनी दीवारें खड़ी हो सकती हैं। साधारणतः कर्मवाद ऐसा कहता हुआ प्रतीत होता है कि जो हमने किया है, वह हमें भोगना पड़ेगा। हमारे कर्म और हमारे भोग में एक अनिवार्य कार्य-कारण सम्बन्ध है। यह बिल्कुल सत्य है कि जो हम करेंगे, हम उससे अन्यथा नहीं भोगते हैं। भोग भी नहीं सकते। कर्म भोग की तैयारी है। असल में, कर्म भोग का प्रारम्भिक बीज है। फिर वही बीज भोग में वृक्ष बन जाता है। जो हम करते हैं, वही हम भोगते हैं। यह बात तो ठीक है लेकिन कर्मवाद का जो सिद्धान्त प्रचलित मालूम पड़ता है, उसमें ठीक बात को भी इस ढंग से रखा गया है कि वह बिल्कुल गैर ठीक हो गई है। उस सिद्धान्त में ऐसी बात न मालूम किन कारणों से प्रविष्ट हो गई है और वह यह है कि कर्म तो हम अभी करेंगे और भोगेंगे अगले जन्म में। अब कार्य-कारण के बीच कभी अन्तराल

नहीं होता। अन्तराल हो ही नहीं सकता। अगर अन्तराल बीच में आ जाएगा तो कार्य-कारण विच्छिन्न हो जाएँगे। उनका सम्बन्ध टूट जाएगा। मैं अभी आग में हाथ डालूँगा तो अगले जन्म में जलूँगा। अगर मुझसे कोई कहे तो यह समझ के बाहर बात हो जाएगी क्योंकि हाथ मैंने अभी डाला और जलूँगा अगले जन्म में। कारण तो अभी है और कार्य होगा अगले जन्म में। यह अन्तराल किसी भाँति समझाया नहीं जा सकता। और कार्य-कारण में अन्तराल होता ही नहीं। कार्य और कारण एक ही प्रक्रिया के दो रूप हैं, जुड़े हुए और संयुक्त। इस छोर पर जो कारण है उसी छोर पर वह कार्य है। और यह पूरी शृंखला जुड़ी हुई है। इसमें कहीं क्षण भर के लिए भी अगर अन्तराल हो गया तो शृंखला टूट जाएगी। लेकिन इस तरह के सिद्धान्त की, इस तरह की भ्रान्ति की कुछ वजह थी और वह यह कि जीवन में हम देखते हैं कि एक आदमी भला है और दुःख उठाता हुआ मालूम पड़ता है। एक आदमी बुरा है और सुख उठाता हुआ मालूम पड़ता है। इस घटना ने कर्मवाद के पूरे सिद्धान्त की गलत व्याख्या को जन्म दिया है। इस घटना को कैसे समझाया जाए? अगर प्रतिपल हमारे कार्य और कारण जुड़े हुए हैं तो फिर इसे कैसे बताया जाए? एक आदमी भला है, सच्चरित्र है, ईमानदार है और दुःख भोग रहा है, कष्ट पा रहा है, और एक आदमी बुरा है, बेईमान है, बदमाश है और सुख पा रहा है, पद पा रहा है, यश पा रहा है, धन पा रहा है। इस घटना को कैसे समझाया जाए? अगर अच्छे कार्य तत्काल फल लाते हैं तो अच्छे आदमी को सुख भोगना चाहिए। और अगर बुरे कार्य तत्काल बुरा लाते हैं, तो बुरे आदमी को दुःख भोगना चाहिए। लेकिन यह तो दिखता नहीं। भला आदमी परेशान दिखता है, बुरा आदमी परेशान नहीं दिखता। तो इसको कैसे समझाएँ? इसको समझाने के पागलपन में गड़बड़ हो गई। तब रास्ता एक ही मिला कि जो अच्छा आदमी दुःख भोग रहा है, वह अपने पिछले बुरे कार्यों के कारण और जो बुरा आदमी सुख भोग रहा है वह अपने पिछले अच्छे कर्मों के कारण। हमें एक-एक जीवन का अन्तराल खड़ा करना पड़ा इस स्थिति को सुलझाने के लिए। लेकिन इस स्थिति को सुलझाने के दूसरे उपाय हो सकते थे और असल में दूसरे उपाय ही सच हैं। यह स्थिति इस तरह सुलझाई नहीं गई बल्कि कर्मवाद का पूरा सिद्धान्त विकृत हो गया है और कर्मवाद की उपादेयता भी नष्ट हो गई है।

कर्मवाद की उपादेयता थी कि हम प्रत्येक व्यक्ति को कह सकें कि तुम जो कर रहे हो, वही तुम भोग रहे हो। इसलिए तुम ऐसा करो कि तुम सुख भोग

सको, आनन्द भोग सको। उपादेयता यह थी। उसका जो गहरे से गहरा परिणाम होना चाहिए था व्यक्ति के चित्त पर वह यह था कि तुम जो कर रहे हो वही तुम भोग रहे हो। अगर तुम क्रोध करोगे तो दुःख भोगोगे, भोग ही रहे हो। इसके पीछे ही वह आ रहा है छाया की तरह। अगर तुम प्रेम कर रहे हो, शान्ति से जी रहे हो, दूसरे को शान्ति दे रहे हो तो तुम शान्ति अर्जित कर रहे हो जो आ रही है पीछे उसके, जो तुम्हें मिल जाएगी, मिल ही गई है। यह तो अर्थ था उसका। लेकिन इस सिद्धान्त का इस तरह से उपयोग करना जीवन की इस घटना को समझने के लिए उस अर्थ को नष्ट कर देगा। क्योंकि कोई भी व्यक्ति इतना दूरगामी चित्त का नहीं होता कि वह अभी कर्म करे और अगले जन्म में मिलने वाले फल से चिन्तित हो। होता ही नहीं इतना दूरगामी चित्त। अगला जन्म अंधेरे में खो जाता है। क्या पक्का भरोसा है अगले जन्म में। पहले तो यही पक्का नहीं कि अगला जन्म होगा। दूसरा यह पक्का नहीं कि जो कर्म अभी फल नहीं दे पा रहा, वह अगले जन्म में देगा। अगर एक जन्म तक रोका जा सकता है फल को तो अनेक जन्मों तक क्यों नहीं रोका जा सकता? फिर दूसरी बात यह कि मनुष्य का चित्त तत्कालजीवी है। चित्त की यह क्षमता ही नहीं है कि वह इतनी देर तक की व्यवस्था को पकड़ सके। वह जीता तत्काल है। वह कहता है, ठीक है, अगले जन्म में जो होगा, होगा। अभी जो हो रहा है, वह हो रहा है। अभी मैं सुख से जी रहा हूँ। अभी मैं क्यों चिन्ता करूँ अगले जन्म की। जो उपादेयता थी वह भी नष्ट हो गई, जो सत्य था वह भी नष्ट हो गया। सत्य है कार्यकारण सिद्धान्त जिस पर सारा विज्ञान खड़ा हुआ है। और अगर कार्य-कारण सिद्धान्त को हटा दो तो सारा विज्ञान का भवन गिर जाएगा।

ह्यूम ने इंग्लैण्ड में इस बात की कोशिश की कि कार्य-कारण का सिद्धान्त गलत सिद्ध हो जाए। वह बहुत कुशल और अद्भुत विचारक था। उसने कहा कि तुमने कार्य-कारण देखा कब है। तुमने देखा है कि एक आदमी ने आग में हाथ डाला और उसका हाथ जल गया। लेकिन तुम यह कैसे कहते हो कि आग में डालने से हाथ जल गया। दो घटनाएँ तुमने देखीं। आग में हाथ डाला यह देखा। हाथ जला हुआ निकला यह देखा। लेकिन आग में डालने से जला, इस बीच के सूत्र तुम कैसे पहचान गए? तुम्हें यह कहाँ से पता चला? हो सकता है कि ये दोनों घटनाएँ कार्य-कारण न हों, सिर्फ सहगामी घटनाएँ हों। जैसे ह्यूम ने कहा कि दो घड़ियाँ हमने बना लीं। दो घड़ियाँ लटका

लीं दीवार पर जिनमें भीतर कोई सम्बन्ध नहीं। लेकिन, ऐसी व्यवस्था की कि एक घड़ी में जब बारह बजेंगे तो दूसरी घड़ी बारह के घंटे बजाएगी। यह व्यवस्था हो सकती है। इसमें क्या तकलीफ है? एक घड़ी में जब बारह पर कांटा जाएगा तो दूसरी घड़ी बारह के घंटे बजा देगी। कार्य-कारण सिद्धान्त मानने वाला कहेगा कि जब इसमें बारह बजते हैं तब इसमें बारह के घंटे बजते हैं। इनके बीच कार्य-कारण का सम्बन्ध है जब कि वे सिर्फ समानान्तर चल रही हैं। कोई सम्बन्ध वगैरह है ही नहीं। ह्यूम ने कहा कि हो सकता है कि प्रकृति में कुछ घटनाएँ समानान्तर चल रही हों। यानी इधर तुम आग में हाथ डालते हो उधर हाथ जल जाता है और दोनों के बीच कोई सम्बन्ध नहीं रहता। क्योंकि सम्बन्ध कभी देखा नहीं गया। घटनाएँ देखी गईं। तुम दोनों का सम्बन्ध कैसे जोड़ते हो? तो ह्यूम ने बड़ी चेष्टा की कार्य-कारण सिद्धान्त को गलत सिद्ध करने की। अगर ह्यूम जीत जाता तो पश्चिम में साइंस खड़ी न हो सकती। क्योंकि साइंस खड़ी हो रही है इस आधार पर कि चीजों के सम्बन्ध जोड़े जा सकते हैं। एक आदमी क्षयग्रस्त है, तो हम कारण-कार्य के हिसाब से इलाज कर पाते हैं कि उसको जो कीटाणु हैं, वे दवा देने से मर जाएँगे। यह दवा उनकी मृत्यु का कारण बनेगी और मृत्यु कार्य हो जाएगी। तो हम इलाज कर लेते हैं। फलां बम पटकने से आग पैदा होगी, लोग मर जाएँगे तो बम बन जाता है।

धर्म भी विज्ञान है और वह भी कार्य-कारण सिद्धान्त पर खड़ा है। अगर चार्वाक जीत जाए तो धर्म गिर जाए पूरा का पूरा। जो ह्यूम विज्ञान के खिलाफ कह रहा है, वही चार्वाकों ने धर्म के खिलाफ कहा है: "खाओ, पिओ, मौज करो क्योंकि कोई भरोसा नहीं है कि जो बुरा करता है, उसको बुरा ही मिलता है, देखो एक आदमी बुरा कर रहा है और भला भोग रहा है। कहाँ कोई कारण का सम्बन्ध है इसमें? एक आदमी भला कर रहा है और पीड़ा झेल रहा है। कोई कार्य-कारण का सम्बन्ध नहीं है।" इसलिए चार्वाकों ने कहा: "ऋणं कृत्वा, घृतं पिबेत्।" अगर ऋण लेकर भी घी पीने को मिले तो पिओ क्योंकि ऋण चुकाने की जरूरत क्या है? सवाल असली में घी मिलने का है। वह कैसे मिलता है, यह सवाल ही नहीं है। और तुमने ऋण में लिया और नहीं चुकाया, तो इसका बुरा फल मिलेगा, यह सब पागलपन की बातें हैं। कहाँ फल मिल रहे हैं? ऋण लेने वाले मजा कर रहे हैं; न लेने वाले दुःख उठा रहे हैं। कोई कार्य-कारण का सिद्धान्त नहीं है। ह्यूम

ने इंग्लैंड में विज्ञान के खिलाफ जो बात कही, अगर ह्यूम जीत जाता तो विज्ञान का जन्म नहीं होता। अगर चार्वाक जीत जाता तो धर्म का जन्म नहीं होता क्योंकि चार्वाक ने भी यही कहा कि इसमें कोई क्रम नहीं है। असम्बद्ध क्रम है घटनाओं का। चोर मजा कर सकता है, अचोर दुःख उठा सकता है। क्रोधी आनन्द कर सकता है, अक्रोधी पीड़ा उठा सकता है। जीवन के सभी कर्म असम्बद्ध हैं। इनमें कोई सम्बन्ध ही नहीं है। और यदि कहीं कोई सम्बन्ध दिखाई पड़ता है तो वह समानान्तरता की भूल है। वह सिर्फ इसलिए दिखाई पड़ जाता है कि चीजें समानान्तर कभी-कभी घट जाती हैं। बस और कोई मतलब नहीं है। लेकिन बुद्धिमान् आदमी इस चक्कर में नहीं पड़ता है, चार्वाक ने कहा। बुद्धिमान् आदमी जानता है कि किसी कर्म का किसी फल से कोई सम्बन्ध नहीं है। इसलिए जो सुखद है, वह करता है चाहे लोग उसे बुरा कहें चाहें भला कहें क्योंकि दुबारा लौटना नहीं है, दुबारा कोई जन्म नहीं है।

चार्वाक के विरोध में ही महावीर का कर्म सिद्धान्त है। इस विरोध में ही कि न तो वस्तु-जगत् में और न चेतना-जगत् में कार्य-कारण के बिना कुछ हो रहा है। विज्ञान में तो स्थापित हो गई बात ह्यूम हार गया और विज्ञान का भवन खड़ा हो गया। लेकिन धर्म के जगत् में अब भी स्थापित नहीं हो सकी यह बात। और न होने का बड़े से बड़ा जो कारण बना वह यह कि विज्ञान कहता है : अभी कारण, अभी कार्य; तथाकथित धार्मिक कहते हैं : अभी कारण, कार्य अगले जन्म में। इससे सब गड़बड़ हो गया। यानी धर्म का भवन खड़ा नहीं हो सका। इस अन्तराल में सब बेईमानी हो गई। क्योंकि यह अन्तराल एकदम झूठ है। कार्य और कारण में अगर कोई सम्बन्ध है तो उसके बीच में अन्तराल नहीं हो सकता क्योंकि अन्तराल हो गया तो सम्बन्ध क्या रहा? चीजें असम्बद्ध हो गईं, अलग-अलग हो गईं। फिर, कोई सम्बन्ध न रहा। और यह व्याख्या नैतिक लोगों ने खोज ली क्योंकि वे समझा नहीं सके जीवन को। तो जीवन की पहली बात मैं आपको समझा दूँ जिसकी वजह से यह अन्तराल टूटे। मेरी अपनी समझ यह है कि प्रत्येक कर्म तत्काल फलदायी है। जैसे मैंने क्रोध किया तो मैं क्रोध करने के क्षण से ही क्रोध को भोगना शुरू करता हूँ। ऐसा नहीं कि अगले जन्म में क्रोध का फल भोगूँ। क्रोध करता हूँ और क्रोध का दुःख भोगता हूँ। क्रोध का करना और दुख का भोगना साथ-साथ चल रहा है। क्रोध बिदा हो जाता है लेकिन दुःख का सिलसिला देर तक चलता है। तो पहला हिस्सा कारण हो गया, दूसरा हिस्सा कार्य हो गया। यह असम्भव है कि कोई

आदमी क्रोध करे और दुःख न झेले। यह भी असम्भव है कि कोई आदमी प्रेम करे और आनन्द का अनुभव न करे। क्योंकि प्रेम की क्रिया में ही आनन्द का झरना शुरू हो जाता है। एक आदमी रास्ते पर गिरे हुए किसी आदमी को उठाए, उठाए अभी और अगले जन्म तक आनन्द की प्रतीक्षा करे, ऐसा नहीं। उठाने के क्षण में ही भरपूर आनन्द उसके हृदय को भर जाता है। ऐसा नहीं है कि उठाने का कृत्य कहीं अलग है और फिर आनन्द कहीं दूसरी जगह प्रतीक्षा करेगा। तो कहीं कोई हिसाब-किताब रखने की जरूरत नहीं। इसलिए महावीर, भगवान् को बिदा कर सके। अगर हिसाब-किताब रखना है जन्म-जन्मान्तर का तो फिर नियन्ता की व्यवस्था जरूरी है।

नियन्ता की जरूरत वहाँ होती है जहाँ नियम का लेखा-जोखा रखना पड़ता है। क्रोध मैं अभी करूँ और फल मुझे किसी दूसरे जन्म में मिले तो इसका हिसाब कहाँ रहेगा? यह कहाँ लिखा रहेगा कि मैंने क्रोध किया था और मुझे यह-यह फल मिलना चाहिए और कितना क्रोध किया था, कितना फल मिलना चाहिए? अगर सारे व्यक्तियों के कर्मों को कोई इस तरह की व्यवस्था हो कि अभी हम कर्म करेंगे फिर कभी अनन्त काल में भोगेंगे तो बड़े हिसाब-किताब की जरूरत पड़ेगी, बड़े खाते-वहियों की। नहीं तो कैसे होगा यह? फिर इस सब इन्तजाम के लिए एक महालिपिक की भी जरूरत पड़ेगी जो हिसाब-किताब रखता हो। और परमात्मा को बहुत से लोगों ने महालिपिक की तरह ही सोचा हुआ है। तो इनके विचार में वह नियन्ता है, सारे नियम की देखरेख रखता है कि नियम पूरे हो रहे हैं या नहीं।

महावीर ने बड़ी वैज्ञानिक बात कही है। उन्होंने कहा: नियम पर्याप्त हैं, नियन्ता कि जरूरत नहीं है क्योंकि नियम स्वयं वह काम करता है। जैसे आग में हाथ डालते हैं, हाथ जल जाता है। यह आग का स्वभाव है कि वह जलाती है। यह हाथ का स्वभाव है कि वह जलता है। अब डालने की बात है। डालने से संयोग हो जाता है। डालना कर्म बन जाता है और पीछे जो भोगना है वह फल बन जाता है। इसमें किसी को भी व्यवस्थित होकर खड़े होने की जरूरत नहीं। आग को कहने की जरूरत नहीं कि तू अब जला, यह आदमी हाथ डालता है। हाथ डालना और जलना यह बिल्कुल ही स्वयंभू नियम के अन्तर्गत हैं। नियम है, नियन्ता नहीं। क्योंकि महावीर कहते हैं कि अगर नियन्ता हो तो नियम में गड़बड़ होने की सम्भावना रहती है। क्योंकि प्रार्थना करें, खुशामद करें, हाथ जोड़ें नियन्ता को। नियन्ता किसी पर खुश

हो जाए, किसी पर नाराज हो जाए तो कभी आग में हाथ जले, कभी न जले। कभी प्रह्लाद जैसे भक्त आग में न जलें क्योंकि भगवान् उन पर प्रसन्न है। तो महावीर कहते हैं कि अगर ऐसा कोई नियन्ता है तो नियम सदा गड़बड़ होगा क्योंकि वह जो नियन्ता है वह एक व्यर्थ की परेशानी खड़ी करता है। अब प्रह्लाद उसका भक्त है तो वह उसको जलाता नहीं। पहाड़ से गिराओ तो उसके पैर नहीं टूटते। और दूसरे किसी को गिराओ तो उसके पैर टूट जाते हैं। तो फिर पक्षपात शुरू होगा। प्रह्लाद की कथा पक्षपात की कथा है। उसमें अपने आदमी की फिक्र को जा रही है। उसमें अपने व्यक्ति के लिए विशेष सुविधाएँ और अपवाद दिए जा रहे हैं। महावीर कहते हैं कि अगर ऐसे अपवाद हैं तो फिर धर्म नहीं हो सकता।

धर्म का बहुत गहरे से गहरा मतलब होता है नियम। और कोई मतलब नहीं होता। और नियम के ऊपर अगर कोई नियन्ता भी है तो फिर सब गड़बड़ हो जाएगी। कभी ऐसा हो सकता है कि क्षय के कीटाणु किसी दवा से मरें। और कभी ऐसा हो सकता है कि क्षय के कीटाणु भी प्रह्लाद की तरह भगवान् के भक्त हों और दवा कोई काम न करे। इसमें क्या कठिनाई है। फिर नियम नहीं हो सकता। अगर नियम है तो नियन्ता में बाधा पड़ेगी। इसलिए महावीर नियम के पक्ष में नियन्ता को विदा करते हैं। यह बड़ी महत्त्वपूर्ण बात है नियम के पक्ष में नियन्ता को विदा करने की। वे कहते हैं नियम काफी है और नियम अखण्ड है। नियम से, प्रार्थना, पूजा, पाठ से बचने का कोई उपाय नहीं है। नियम से बचने का एक ही उपाय है कि नियम को समझ लो कि आग में हाथ डालने से हाथ जलता है, इसलिए हाथ मत डालो। इसको समझ लेना जरूरी है। अगर नियन्ता है तो फिर यह भी हो सकता है कि नियन्ता को राजी कर लो फिर हाथ डालो। क्योंकि नियन्ता उपाय कर देगा कि तुम न जलो! 'अच्छा ठहरो', आग को कह देगा : 'रुको अभी! इस आदमी को जलाना मत।' महावीर कहते हैं कि चार्वाक को अगर मान लिया जाए तो भी जीवन अव्यवस्थित हो जाता है क्योंकि वह कहता है कि दो वर्गों के बीच कोई अनिवार्य सम्बन्ध नहीं है। महावीर कहते हैं कि अगर नियन्ता के मानने वालों को मान लिया जाए तो वे भी यह कहते हैं कि अनिवार्य सम्बन्ध के बीच में एक व्यक्ति है जो अनिवार्य सम्बन्धों को शिथिल भी कर सकता है। इसलिए वह कहते हैं कि चार्वाक भी अव्यवस्था में ले जाता है, नियन्ता को मानने वाला भी अव्यवस्था में ले जाता है। यह दोनों एक ही तरह के लोग हैं। चार्वाक नियम को तोड़कर

अव्यवस्था पैदा कर देता है और नियन्ता को मानने वाला भी नियम के ऊपर किसी नियन्ता को स्थापित करके।

महावीर पूछते हैं कि वह भगवान् नियम के अन्तर्गत चलता है या नहीं। अगर नियम के अन्तर्गत चलता है तो उसकी जरूरत क्या है? यानी अगर भगवान् आग में हाथ डालेगा तो उसका हाथ जलेगा कि नहीं? अगर जलता है तो वह भी वैसा ही है जैसे हम हैं और अगर नहीं जलता है तो ऐसा भगवान् खतरनाक है। क्योंकि हम भगवान् से दोस्ती बनाएँगे तो हम आग में हाथ भी डालेंगे और शीतल होने का उपाय भी कर लेंगे। इसलिए महावीर कहते हैं कि हम नियम को इन्कार नहीं करते क्योंकि नियम का इन्कार करना अवैज्ञानिक है। नियम तो है मगर हम नियन्ता को स्वीकार नहीं करते क्योंकि नियन्ता की स्वीकृति नियम में बाधा डाल देती है। तो जो विज्ञान ने अभी पश्चिम में तीन सौ वर्षों में उपलब्ध किया है वह यह है कि विज्ञान सीधे नियम पर निर्धारित है, सीधे नियम की खोज पर। विज्ञान कहता है कि किसी भगवान् से हमें कुछ लेना-देना नहीं। हम तो प्रकृति का नियम खोजते हैं। ठीक यही बात अढाई हजार साल पहले महावीर ने चेतना के जगत् में कही है कि नियन्ता को हम बिदा करते हैं, चार्वाक को हम मान नहीं सकते। वह सिर्फ अव्यवस्था है, अराजकता है। दोनों के बीच में एक उपाय है वह यह कि हम मान लें कि नियम शाश्वत है, अखण्ड है और अपरिवर्तनीय है। उस अपरिवर्तनीय नियम पर ही धर्म का विज्ञान खड़ा हो सकता है। लेकिन उस अपरिवर्तनीय नियम में पीछे के व्याख्याकारों ने जो जन्मों का फासला किया, उसने फिर गड़बड़ पैदा कर दी। यह तीसरी गड़बड़ थी।

पहली गड़बड़ थी चार्वाक की, दूसरी गड़बड़ थी भगवान् के भक्त की, तीसरी गड़बड़ थी दो जन्मों के बीच में अन्तराल पैदा करने वाले लोगों की। महावीर को फिर झुठला दिया गया। यह असम्भव ही है कि एक कर्म अभी हो और फल फिर कभी हो। फल इसी कर्म की श्रृंखला का हिस्सा होगा जो इसी कर्म के साथ मिलना शुरू हो जाएगा। हम जो भी करते हैं उसे भोग लेते हैं। और अगर यह हमें पूरी सघनता में स्मरण हो जाए कि हमारे जीवन में और हमारे कर्म में अनिवार्य अन्तर नहीं पड़ने वाला है, मैं जो भी कह रहा हूँ वही भोग रहा हूँ, या मैं जो भोग रहा हूँ, वही मैं जरूर कर रहा हूँ तो बात स्पष्ट हो जाती है। एक आदमी दुःखी है, एक आदमी अशान्त है और वह आपके पास आता है और पूछता है: शान्ति का रास्ता चाहिए। अशान्त है तो वह सोचता

है कि किसी पिछले जन्म का कर्मफल भोग रहा हूँ। तो उसके पास अनकिया करने का कोई उपाय नहीं है। मगर सही बात यह है कि जो मैं अभी कर रहा हूँ उसे अनकिया करने की अभी मेरी सामर्थ्य है। अगर मैं आग में हाथ डाल रहा हूँ और मेरा हाथ जल रहा है, और अगर मेरी मान्यता यह है कि पिछले जन्म के किसी पाप का फल भोग रहा हूँ तो मैं हाथ डाले चला जाऊँगा क्योंकि पिछले जन्म के कर्म को मैं बदल कैसे सकता हूँ? इधर आग में हाथ डालूँगा और जलूँगा और गुरुओं से पूछूँगा : शान्ति का उपाय बताइए, क्योंकि हाथ बहुत जल रहा है। और वे गुरु जो यह मानते हैं कि पिछले जन्म के फल के कारण जल रहा है वे यह नहीं कहेंगे कि हाथ बाहर खींचो क्योंकि हाथ जल रहा है। इसका मतलब यह हुआ कि हाथ अभी डाला जा रहा है और अभी डाला गया हाथ बाहर भी खींचा जा सकता है लेकिन पिछले जन्म में डाला गया हाथ आज कैसे बाहर खींचा जा सकता है? तो हमारी व्याख्या ने कि अनन्त जन्मों में फल का भोग चलता है मनुष्य को एकदम परतन्त्र कर दिया है। परतन्त्रता पूरी हो गई क्योंकि पीछा उसका बँधा हुआ हो गया। अब उसमें कुछ किया नहीं जा सकता। किन्तु मेरा मानना है कि सब कुछ किया जा सकता है इसी वक्त, क्योंकि जो हम कर रहे हैं, वही हम भोग रहे हैं।

एक मित्र मेरे पास आए कोई दो या तीन वर्ष हुए। उसने कहा कि मैं बहुत अशान्त हूँ। मैं अरविन्द आश्रम गया, वहाँ भी शान्ति नहीं मिली। मैं रमण आश्रम गया, वहाँ भी शान्ति नहीं मिली। मैं शिवानन्द के यहाँ गया, वहाँ भी शान्ति नहीं मिली। सब धोखा-धड़ी है, सब बातचीत है, कहीं शान्ति नहीं मिलती। पाण्डीचेरी में किसी ने आपका नाम लिया तो वहाँ से सीधा यहीं चला आ रहा हूँ। तो मैंने कहा : अब तुम सीधे एकदम मकान से बाहर हो जाओ इसके पहले कि तुम जाकर कहीं कहो कि वहाँ भी शान्ति नहीं मिली। फिर मैंने उससे पूछा कि तुम अपनी अशान्ति खोजने किससे पूछ कर गए थे? तुमने किस से सलाह ली थी। कौन है गुरु तुम्हारा? उसने कहा : कोई गुरु नहीं। अशान्ति खोजने के लिए मैंने किसी से नहीं पूछा। मैंने कहा, इस अशांति के लिए तुम खुद ही गुरु हो, पर्याप्त हो और शान्ति का हमने ठेका लिया हुआ है तुम्हारे लिए? शान्ति तुम हमसे पूछोगे? न मिले तो हम धोखा सिद्ध हुए। मजा यह है कि अशान्ति तुम पैदा करो, शान्ति मैं तुम्हें दूँ और न दे पाऊँ तो धोखा मैं हूँ। मैंने उससे कहा कि कृपा करके इतना ही खोजो कि तुम्हें अशान्ति कैसे मिल रही है, बस। जिस ढंग से तुम अशान्ति पा रहे हो, उस ढंग को

बदलो। वह ढंग अशान्ति देने वाला है वह कारण है तुम्हारी अशान्ति का। उसको तो तुम देखना नहीं चाहते। वह आदमी कहता है कि वह अशान्ति का ढंग तो जन्म-जन्मान्तरों का है। मैंने कहा कि तब जन्म-जन्मान्तर में कोशिश करनी पड़ेगी शान्ति के लिए। फिर यह इतना जल्दी होने वाला भी नहीं। पर मैं तुमसे कहता हूँ कि हो सकता है क्योंकि यह जन्म-जन्मान्तर की बात नहीं, तुम अभी कर रहे हो अशान्ति के लिए सब उपाय।

मैंने कहा कि तुम दो-तीन दिन रुक जाओ कृपा करके। तुम अपनी अशांति की चर्चा करो मुझसे। क्या अशान्ति है? कैसे पैदा हो रही है? क्या पैदा हो रहा है? तीन दिन वह आदमी रुका था। चूँकि मैं शान्ति की कोई तरकीब बता ही नहीं रहा था, उसको अपनी अशान्ति की ही बात करनी पड़ी। धीरे-धीरे उसकी बात खुली। वह लखपति आदमी है, बड़ा ठेकेदार है। एक ही लड़का है उसका और उस लड़के ने, जिस लड़की से बाप नहीं चाहता था कि उसकी शादी हो, शादी कर ली। तो दरवाजे पर बन्दूक लेकर खड़ा हो गया जब वे दोनों आए। और कहा कि सिर्फ लाश अन्दर जा सकती है तुम्हारी, वापिस लौट जाओ। अब मुझसे तुम्हारा कोई सम्बन्ध नहीं है। मैंने उससे पूछा : उस लड़की में कोई खराबी है। उसने कहा कि नहीं, लड़की में कोई खराबी नहीं है। लड़की तो एकदम ठीक है। मैंने कहा कि उस लड़की और लड़के के संबंध में कोई पाप है, उसने कहा : वह भी नहीं है। मैंने कहा : मामला क्या है? आपकी नाराजगी क्या है? सिर्फ इतनी ही कि आपके अहंकार को तृप्ति न मिली, लड़के ने आपकी आज्ञा नहीं मानी। और अहंकार अशान्ति लाता है। अब उस लड़के को बाहर निकाल दिया है। बड़े आदमी का लड़का था। पढ़ा-लिखा भी नहीं था ठीक से। वह दिल्ली में नब्बे रुपए महीने की नौकरी कर रहा है। अब बाप तड़प रहा है। यह कभी अरविन्द आश्रम जा रहा है, कभी इधर जा रहा है, कभी उधर जा रहा है। मैंने कहा कि तुम्हें कहीं जाने की जरूरत नहीं। लड़के से जाकर क्षमा मांगो। तुम्हारा अहंकार तुम्हें दुःख दे रहा है। और अहंकार दुख देता है। और तुम्हारा अहंकार से किया गया कृत्य अशान्ति ला रहा है। मैंने कहा कि तुम अपने दिल की बात कहो कि तुम्हारा मन लड़के को वापस लाने का है या नहीं। उसने कहा : बिल्कुल है। वही मेरा एक लड़का है। अब मैं कितना पछता रहा हूँ। हम बुड्ढे-बुड्ढी हैं दोनों, मरने के करीब हैं। यह सब उसका है और जब हमें पता चलता है कि वह नब्बे रुपए महीने की नौकरी कर रहा है दिल्ली में तो हमारी नींद उचट जाती है। अब यह भी

लगता है कि उस लड़की का भी क्या कसूर है? मैंने कहा कि इसमें तो कोई बात नही। तुम जब बन्दूक लेकर खड़े हो सकते थे तो जाकर क्षमा भी मांग सकते हो। तुम प्रेम का निमंत्रण करोगे। तुम्हारा लड़का है। तुमने बीच में बाधा डाली है इसलिए तुम दुःख भोग रहे हो। मैंने कहा कि तुम अब सीधे चले जाओ दिल्ली और उस लड़के से क्षमा माँग लो। बात उसकी समझ में आ गई। वह आदमी दिल्ली गया। उसने क्षमा मांगी। पन्द्रह दिन बाद उसका पत्र आया कि मैं हैरान हूँ। आपने ठीक कहा था। वह लड़का और बहू घर आ गए हैं और मैं इतना आनन्दित हूँ जितना मैं कभी भी नहीं था। इतना शान्त हूँ जितना मैं कभी नहीं था।

अब हमारी कठिनाई यह है कि हम जो कर रहे हैं, वह अशांति ला रहा है। कुछ बदलाहट लाई जा सकती है इसी वक्त। अगर कभी कुछ किया था वह अशांति ला रहा है तब तो बदलाहट का काई उपाय नहीं। और यह जो पैदा करना पड़ा सिद्धान्त जिन्दगी की विषमता को समझाने के लिए उसका कारण दूसरा है। जैसे मेरी अपनी समझ में एक बुरा आदमी सफल होता है, सुखी होता है तो बुरा आदमी एक बहुत बड़ी जटिल घटना है। हो सकता है वह झूठ बोलता है, बेईमानी करता है लेकिन उसमें कुछ और गुण हैं जो हमें दिखाई नहीं पड़ते। वह साहसी हो सकता है, पहल करने वाला हो सकता है, बुद्धिमान् हो सकता है, एक-एक कदम को समझ कर उठाने वाला हो सकता है। बेईमान हो सकता है, चोर हो सकता है। बुरा आदमी बड़ी घटना है। उसके एक पहलू को ही कि वह बेईमान है, देख कर आपने निर्णय करना चाहा, तो आप गलती में पड़ जाएंगे। और एक अच्छा आदमी भी एक बड़ी घटना है। हो सकता है कि अच्छा आदमी चोरी भी न करता हो बेईमानी भी न करता हो लेकिन वह बहुत भयभीत आदमी हो। शायद इसलिए चोरी और बेईमानी न करता हो कि उसमें बिल्कुल साहस की कमी हो, जोखिम उठा न पाता हो, बुद्धिमान् न हो, बुद्धिहिन हो क्योंकि अच्छा होने के लिए कोई बुद्धिमान् होना जरूरी नहीं। बल्कि अक्सर ऐसा होता है कि बुद्धिमान् आदमी का अच्छा होना मुश्किल हो जाता है। बुद्धिहीन आदमी अच्छा होने के लिए मजबूर होता है। कोई बचने का उपाय नहीं होता क्योंकि बुद्धिहीनता बुरे होने में फौरन फंसा देती है। लेकिन हम इन सब बातों को नहीं तोलेंगे। हम तो कहेंगे : आदमी अच्छा है, मन्दिर जाता है, उसको सफलता मिलनी चाहिए। मेरी मान्यता है कि सफलता मिलती है साहस से। अगर बुरा आदमी

साहसी है तो सफलता ले आएगा। अच्छा आदमी अगर साहसी है तो बुरे आदमी से हजार गुनी सफलता लाएगा। लेकिन सफलता मिलती है साहस से। अगर बुरा आदमी भी साहसी है तो सफलता ले आएगा। सफलता मिलती है बुद्धिमानी से। अगर बुरा आदमी बुद्धिमान् है तो सफलता हो जाएगी। अगर अच्छा आदमी बुद्धिमान् है तो हजार गुना सफल हो जाएगा। लेकिन सफलता अच्छे भर होने से नहीं आती।

सफलता आती है बुद्धिमानी से, विचार से, विवेक से। मगर हम क्या करते हैं। हम पकड़ लेते हैं एक-एक गुण। देखो कि यह आदमी कितना अच्छा है, मन्दिर जाता है, प्रार्थना करता है लेकिन इसके पास बिलकुल पैसा नहीं है। अब मन्दिर जाने से और प्रार्थना करने से पैसा होने का क्या सम्बन्ध है? पैसा कमाना पड़ेगा और अगर वह नहीं कमा रहा तो भटक जाएगा। अगर वह सच में अच्छा आदमी है मगर पैसा नहीं कमा पाया तो यह पीड़ा उसके मन में नहीं होगी। वह सोचेगा कि मैं नहीं कमा पाया तो नहीं कमा पाया। बात खत्म हो गई। और इसके मन में द्वेष भी नहीं होगा कि फलां आदमी बुरा है और वह कमा रहा है। अगर कोई अच्छा आदमी यह कह रहा है कि मैं सुखी नहीं हूँ क्योंकि मैं अच्छा हूँ और वह दूसरा आदमी सुखी है क्योंकि वह बुरा है तो वह आदमी बुरे होने का सबूत दे रहा है। वह ईर्ष्या से भरा हुआ आदमी है। वह बुरे आदमी को जो-जो मिला है सब पाना चाहता है और अच्छा रह कर पाना चाहता है। यानी उसकी आकांक्षा ही बड़ी बेहूदी है। एक तो वह बुरा भी नहीं। वह बेचारा बुरा भी हो, बुरे होकर उसने दस लाख रुपये कमा लिए तो दस लाख रुपये कमाने में बुरे होने का सौदा चुकाया है, बुरे होने की पीड़ा झेली है, बुरे होने का दंश भी झेला है, कांटा भी झेला है। यह जो अच्छा आदमी है वह इन कामों को भी नहीं करना चाहता। न बुरा होना चाहता है, न बुरे होने का दंश झेलना चाहता है, न स्वर्ग बिगाड़ना चाहता है। यह आदमी मन्दिर में पूजा करना चाहता है, घर में बैठना चाहता है, बुरे आदमी को जो दस लाख रुपये मिले हैं, वह भी चाहता है। और जब इसको नहीं मिलते तो यह कहता है कि मैं अपने पिछले जन्मों के बुरे कर्मों का फल भोग रहा हूँ और वह आदमी किसी पिछले जन्मों के अच्छे कर्मों का फल भोग रहा है। अभी जो वह कर रहा है, वह उसको अच्छा फल देने वाला नहीं है, अगले जन्म में वह कष्ट पाएगा, नरक भोगेगा, ऐसे वह सान्त्वना भी दे रहा है अपने को। इस आदमी को अगले जन्म में नरक भेज कर सुख भी पा रहा है कि चलो कोई बात

नहीं। आज हम दुःख भोग रहे हैं, अगले जन्म में हम स्वर्ग में होंगे, तुम नरक में होगे।

मेरा मानना है कि कर्म का फल तत्काल है लेकिन कर्म बहुत जटिल बात है। साहस भी कर्म है। उसका भी फल है। साहसहीनता भी कर्म है, उसका भी फल है। बुद्धिमानी भी कर्म है, उसका भी फल है। बुद्धिहीनता भी कर्म है, उसका भी फल है। पहल करना, जोखिम उठाना भी कर्म है, उसका भी फल है। जोखिम न उठाना, घर में बैठे रहना भी एक कर्म है, उसका भी फल है। और इस सारे कर्मों का इकट्ठा फल होता है। इकट्ठे फल को हम किसी एक कारण से जोड़ेंगे तो हम मुश्किल में पड़ जाएँगे। इकट्ठे फल को किसी एक कारण से नहीं जोड़ा जा सकता। बुरे आदमी सफल हो सकते हैं कि सफलता के कोई कारण उनके भीतर होंगे। अच्छे आदमी असफल हो सकते हैं क्योंकि असफलता के कोई कारण उनके भीतर होंगे। बुरे आदमी सुखी भी हो सकते हैं क्योंकि सुख के भी कोई कारण उनके भीतर होंगे। और अच्छे आदमी दुःखी भी हो सकते हैं क्योंकि दुःख के भी कोई कारण उनके भीतर होंगे। जैसे ईर्ष्या दुःख देती है और अच्छा आदमी ईर्ष्यालु है तो वह दुःख पाएगा। और हो सकता है कि बुरा आदमी ईर्ष्यालु न हो और सुख पाए। अब इसमें कैसे उससे सुख छीना जा सकता है? अच्छा आदमी, हो सकता है, स्वार्थी हो और दुःख पाए और बुरा आदमी स्वार्थी न हो और सुख पाए।

मेरे एक प्रोफेसर थे, उन्हें शराब पीने की आदत थी और यूनिवर्सिटी में उनसे ज्यादा बुरे आदमी का किसी को ख्याल ही न था। कितनी स्त्रियों से उनका सम्बन्ध रहा, इसका कुछ ठीकाना नहीं। शराब पीते थे, जुआ खेलते थे। लेकिन मेरा उनसे दोस्ताना था। मुझे कभी-कभी अपने घर ले जाते और घर सुलाते थे। मैंने देखा कि कभी शराब अकेले न पीते। दस-पाँच मित्रों को इकट्ठा न कर लें तो शराब न पिएँ। दस-पाँच मित्रों को बुला न लाएँ तो शाम का खाना न खाएँ, उस दिन उपवास ही हो जाए। मैंने उनसे कहा कि यह क्या है? उन्होंने कहा : अकेले भी क्या खायें? दस मित्र होते हैं तभी खाने का सुख आता है। यह आदमी शराब पीता है और शराब पीने के जो दुःख हैं, वह भोगेगा, भोगता है। लेकिन यह आदमी बड़े अद्भुत अर्थों में निस्वार्थी है। उनके पास कभी पैसा नहीं बचता। दस-पन्द्रह तारीख तक उनका पैसा खत्म हो जाता है। क्योंकि अकेले खाना नहीं खाना है, अकेले

शराब नहीं पोनी है, अकेले कुछ करना ही नहीं है। वह कहते हैं कि मैं सोच ही नहीं सकता कि कोई आदमी अकेला बैठ कर खाना खा सकता है। यह बात ही सोचने की नहीं है क्योंकि अगर हम खाने में ही साझीदार नहीं बना सकते तो जिन्दगी बेकार है। मैं जितने दिन उनके घर रुका उन्होंने शराब न पी। तो मैंने उनसे कहा कि मैं आपके घर न रुकूँगा क्योंकि मेरे कारण आप शराब पोने से रुकते हैं। उन्होंने कहा : नहीं, नहीं ! तुम्हारे होने से मुझे इतना आनन्द मिलता है कि शराब पीने का ख्याल ही नहीं आता। वह तो पिता ही तब हूँ जब कोई आनन्द नहीं जिन्दगी में। तुम जब मेरे पास होते हो, मैं इतना आनन्दित होता हूँ कि शराब पीने का सवाल ही नहीं है। अब यह जो आदमी है, कई अर्थों में सुखी है। लेकिन इसके सुख के अपने कारण थे। यह कई अर्थों में दुःखी था लेकिन दुःख तो हम किसी का देखने नहीं जाते। यह भी ध्यान रखना एक जरूरी बात है।

दुःख तो हमें किसी का दिखता नहीं, दुःख सिर्फ अपना दिखता है और सुख सदा दूसरे का दिखता है। ऐसे ही, शुभ कर्म हमें अपना दिखता है और अशुभ कर्म दूसरे का दिखता है क्योंकि हमारा अहंकार कभी मान नहीं पाता कि हम अशुभ कर्म कर रहे हैं। हमारे अहंकार को भी सुविधा मिलती है कि अगर अशुभ कर्म किए होंगे तो किसी और जन्म में किए होंगे। अभी तो मैं एकदम शुभ कर्म कर रहा हूँ और दुःख भोग रहा हूँ। अब यह समझ लेने जैसी बात है। मामला है सिर्फ मनोवैज्ञानिक कि प्रत्येक व्यक्ति अपने कर्म को शुभ मानता है क्योंकि उसके अहंकार को इससे तृप्ति मिलती है और वह अपने दुःखों की गिनती करता है, सुखों की गिनती नहीं करता। क्योंकि जो सुख हमें मिल जाता है, उसकी गिनती ही भूल जाती है। जो सुख नहीं मिल पाता वह हमारी गिनती में होता है। जो मकान हमारे पास है हमें कभी नहीं लगता कि इससे हमें कोई बड़ा सुख मिल रहा है। सड़क पर एक भिखमंगा निकलता है और कहता है : देखा वह आदमी कितना सुखी है। मगर उस मकान वाले को कभी पता भी नहीं चलता है कि मैं सुखी हूँ। वह आदमी भी जब एक बड़े महल के पास से निकलता है तो कहता है कि कितना सुखी है यह आदमी ? कैसा मकान है ? कैसा महल है ? उस महल में रहने वाले को कोई पता नहीं अपने सुख का। सुख के हम आदी हो जाते हैं। दुःख के कभी हम आदी नहीं हो पाते। दुःख दिखता ही रहता है, सुख दिखना बन्द हो जाता है। दुःख दिखता है और शुभ कर्म दिखते हैं कि मैंने यह-यह अच्छा किया। क्योंकि अहंकार अपने गलत कर्म

को छिपा देता है, मिटा देता है। और अपने अच्छे कर्मों की लम्बी कतार बढ़ा कर खड़ी कर लेता है। और तब एक मुश्किल खड़ी हो जाती है; दूसरे के अशुभ कर्म दिखाई पड़ते हैं क्योंकि दूसरे को शुभ मानना भी हमारे अहंकार को दुःख देना है कि हमसे भी कोई अच्छा हो सकता है। साधारण आदमी को छोड़ दें। बड़े से बड़े साधु से कहें कि आप से भी बड़ा साधु एक गांव में आ गया है। वह और भी पवित्र आदमी है। आग लग जाएगी क्योंकि यह कैसे हो सकता है कि मुझसे ज्यादा पवित्र कोई आदमी हो ? तो दूसरे की अपवित्रता को हम खोजते रहते हैं निरन्तर, इसीलिए निन्दा में इतना रस है। शायद उससे गहरा कोई रस ही नहीं है। न संगीत में आदमी को उतना आनन्द आता है, न सौन्दर्य में, जितना निन्दा में आता है। सौन्दर्य छोड़ सकता है, संगीत छोड़ सकता है, सब छोड़ सकता है। अगर जरूरी निन्दा का मौका मिल जाए तो उस रस को वह नहीं चूकेगा। अगर हम दूसरों की बातचीत पता लगाने जाएँ तो सौ में से नब्बे प्रतिशत बातचीत किसी भी निन्दा से सम्बन्धित होगी।

निन्दा में रस है क्योंकि दूसरे को छोटा दिखाने में अपने बड़ा होने का ख्याल है। इसलिए हर आदमी दूसरे को छोटा दिखाने की कोशिश में लगा है। अगर कोई हमसे आकर कहे कि फलाँ आदमी बहुत अच्छा है तो हम एकदम से नहीं मान लेते हैं। हम कहेंगे : यह आपकी बात सुनी, जाँच-पड़ताल करेंगे, खोजबीन करेंगे क्योंकि ऐसा नहीं हो सकता कि आदमी इतना अच्छा हो। कहाँ इतने अच्छे आदमी होते हैं ? ये सब बातें हैं। सब दिखते हैं ऊपर से अच्छे। भीतर कोई अच्छा होता नहीं। लेकिन एक आदमी हमसे आकर कहता है कि फलाँ आदमी बिल्कुल चोर है। हम कभी नहीं कहते कि हम खोज-बीन करेंगे। हम कहते हैं कि बिल्कुल होगा ही। यह तो होता ही है। सब चोर हैं ही। जब कोई किसी की बुराई करता है तो हम बिना खोज-बीन के मान लेते हैं, तर्क भी नहीं करते, विवाद भी नहीं करते, लेकिन जब कोई किसी की अच्छाई की बात करता है तो हम बड़े सचेत हो जाते हैं। हजार तर्क करते हैं; फिर भी भीतर सन्देह बना हुआ है। और जाँच रखते हैं जारी कि कहीं कोई मौका मिल जाए और हम बता दें : 'देखो ! वह तुम गलत कहते थे कि यह आदमी अच्छा था। इस आदमी में ये-ये चीजें दिखाई पड़ गईं।' हम दूसरे को छोटा दिखाना चाहते हैं। दूसरे को बड़ा मानना बड़ी मजबूरी में होता है। अत्यन्त कष्टपूर्ण है किसी को बड़ा मानना। किसी को हम बड़ा भी मान लें अगर मजबूरी

में तो भी हम अपने मन में जाँच-पड़ताल जारी रखते हैं कि कोई मौका मिल जाए तो इसको छोटा सिद्ध कर दें।

तो आदमी दूसरे का देखता है अशुभ और सुख; वह अपना देखता है शुभ और दुःख। उपद्रव हो गया तो वह कर्मवाद के सिद्धान्त में ही घुस गया। मेरी मान्यता यह है कि अगर वह सुख भोग रहा है तो वह कुछ ऐसा जरूर कर रहा है जो सुख का कारण है क्योंकि बिना कारण के कुछ भी नहीं हो सकता। अगर एक डाकू सुखी है तो उसमें कोई कारण है उसके सुखी होने का। और अगर एक साधु सुखी नहीं है तो उसमें कोई कारण है दुःखी होने का। अब अगर दस डाकू साथ होंगे तो उनमें इतना भाईचारा होगा जितना दस साधुओं में कभी सुना ही नहीं गया। लेकिन दस डाकुओं में मित्रता है तो वे मित्रता के सुख भोगेंगे। साधु कैसे भोगेगा उस सुख को ? डाकू कभी एक दूसरे से झूठ नहीं बोलेंगे लेकिन साधु एक दूसरे से बिल्कुल झूठ बोलते रहेंगे। सच बोलने का जो सुख है वह साधु नहीं भोग सकता।

प्रश्न : अकस्मात् जो घटनाएँ हो जाती हैं, उसकी क्या वजह है ?

उत्तर : कोई घटना अकस्मात् नहीं होती। असल में उस घटना को हम अकस्मात् कहते हैं जिसका हम कारण नहीं खोज पाते। ऐसी घटनाएँ होती हैं जिसका कारण हमारी समझ में नहीं आता। लेकिन कोई घटना अकस्मात् नहीं होती।

प्रश्नः लाटरी कैसे निकलती है ?

उत्तर : अकस्मात् नहीं है वह भी। सिर्फ हमें दिखता है कि वह अकस्मात् है। मैं एक घटना बताऊँ। मेरे एक मित्र पुँगलिया जी ने चार-पाँच वर्ष पहले एक गाड़ी ली और वे मुझे लेने नासिक आए। लेकिन उनकी लड़की ने कहा कि मुझे ऐसा लगता है कि वे आपकी गाड़ी में आएँगे नहीं। पर इस बात का कोई मतलब न था। शायद उसने सोचा होगा कि मैं किसी दूसरी गाड़ी में आ जाऊँ या कुछ हो जाए। बात खत्म हो गई। वे मुझे लेने नासिक आए। सुबह बारह बजे के करीब हम निकले वहाँ से। नया ड्राइवर था। वह इतनी तेजी से भगा रहा था कि मुझे मन में लगा कि यह कहीं भी गाड़ी उलटेगी। लेकिन ऐसी कोई बात नहीं थी। रास्ते में हम एक बंगाली डाक्टर की गाड़ी को पार किए। उस गाड़ी में जो महिला बैठी थी उसको भी लगा कि यह गाड़ी कहीं गिरेगी। एक दो मिनट बाद ही जाकर दुर्घटना हो गयी। वह गाड़ी उतर

गई नीचे और रेत में उल्टी हो गई। चारों पहिए ऊपर हो गए। मेरे एक दूसरे मित्र मणिक बाबू ने पूना में रात को सपना देखा कि मेरे हाथ में बहुत चोट आ गई है। तो फिर वे मुझे लेने आए। पुंगलिया की लड़की को जो ख्याल हुआ था कि मैं उनकी गाड़ी में नहीं आऊँगा सही हो गया। हमारी गाड़ी उलट गई और मणिक बाबू की गाड़ी में हमें आना पड़ा। लेकिन यह घटना एकदम अकस्मात् नहीं है। और अगर इस बात का थोड़ा विज्ञान समझ में आ जाए तो कारण भी समझ में आ सकेंगे।

जैसे कि सोवियत रूस के कुछ हिस्सों में बाकू के इलाके में हजारों साल से बड़ा मेला लगता था। यहाँ एक देवी का मन्दिर है और वर्ष के एक खास दिन में उसमें अपने-आप ज्वाला प्रज्वलित होती है। कोई आग लगानी नहीं पड़ती, ईंधन डालना नहीं पड़ता। पर जब ज्वाला प्रज्ज्वलित होती है तो आठ दिन तक जलती है और आठ दस दिन वहाँ मेला भरता है। करोड़ों लोग इकट्ठे होते हैं। यह एक बड़ी चमत्कारपूर्ण घटना थी और कोई कारण समझ में नहीं आता था, क्योंकि न कोई ईंधन है, न कोई दूसरी वजह है। फिर कम्यूनिस्ट वहाँ आए। उन्होंने मन्दिर उखाड़ दिया, मेला बन्द कर दिया और खुदाई करवाई। वहाँ तेल के गहरे झरने निकले, मिट्टी के तेल के। लेकिन सवाल यह था कि खास दिन पर वर्ष में क्यों आग लगती है। तेल के झरने से गैस बनती है। गैस जल भी सकती है घर्षण से। लेकिन वह कभी भी जल सकती है। तब खोज-बीन से पता चला कि पृथ्वी जब एक खास कोण पर होती है तभी वह गैस घर्षण कर पाती है। इसलिए खास दिन आग जल जाती है। जब बात साफ हो गई तो मेला बन्द हो गया। अग्नि देवता बिदा हो गए। अब वहाँ कोई नहीं जाता। अब भी वहाँ जलती है आग। अब भी खास दिन पर जब पृथ्वी एक खास कोण पर होती है तो वह गैस जो इकट्ठी हो जाती है वर्ष भर में, फूट पड़ती है। तब तक वह अकस्मात् था। अब वह अकस्मात् नहीं है। अब हमें कारण का पता चल गया है।

प्रश्न : यह जो गाड़ी उलट गई आप सब बच गए उसमें, तो सबका कहना है कि आप उसमें थे इसलिए बच गए।

उत्तर : नहीं। असल में होता यह है कि हम सब बचना चाहते हैं और बचने के लिए बच जाएँ तो भी कोई कारण खोज लेंगे। न बच जाएँ तो भी कोई कारण खोज लेंगे। कारण हम स्थापित कर लें यह एक बात है और कारण की खोज बिल्कुल दूसरी बात है। यानी एक तो यह होता है कि हम

जो होना चाहते हैं उसके लिए भी हम कोई कारण खोज लेते हैं। और इसके पीछे भी एक बुनियादी बात है और वह यह है कि बिना कारण के कोई भी चीज कैसे होगी ? यह बुनियादी सिद्धान्त हमारे भीतर काम कर रहा है। अगर चारों आदमी बच गए और जरा भी चोट नहीं पहुँची तो इसका कोई कारण होना चाहिए। अगर ठीक से समझें इतनी दूर तक तो वैज्ञानिक है यह मामला। क्योंकि अकारण यह भी नहीं हो सकता लेकिन कारण क्या होगा ? हम कुछ भी कल्पित कर लेते हैं कि गाड़ी में एक अच्छा आदमी था इसलिए बच गए। और अगर मान लो न बचते तो भी हम कोई कारण खोज लेते कि एक बुरा आदमी वहाँ था इसलिए मर गए। इसमें एक ही बात पता चलती है वह यह कि आदमी अकारण किसी बात को मानने के लिए राजी नहीं है। और यह बात ठीक है। लेकिन हमसे वह जो कारण बताता है वह कारण ठीक हो यह जरूरी नहीं। कारणों की वैज्ञानिक परिक्षा होनी चाहिए। जैसे कि मुझे बैठाल कर दो चार बार गाड़ी गिरानी चाहिए। और अगर मेरे साथ दो चार दफे गिरने से जो भी गिरे, वे सब बच जाएँ तो फिर जरा पक्का होगा। और अगर न बचें तो बात खत्म हो गई। मेरा मतलब यह है कि वैज्ञानिक परीक्षण के बिना कोई उपाय नहीं है। और एक बात ठीक है कि अकारण कोई आदमी किसी बात को मानने के लिए राजी नहीं है और होना भी नहीं चाहिए। लेकिन दूसरी बात ठीक नहीं है। तब हमें कोई कल्पित कारण नहीं मान लेना चाहिए। इतना फिर हमें ध्यान में रखना चाहिए कि कारण को भी हम फिर स्थापित करने के लिए प्रयोग करें। क्योंकि अगर कारण सही है तो वह निरपवाद सही हो जाएगा। दो चार दस बार मुझे गिरा कर देखेंगे तो उससे पता चलेगा कि सबको चोट लगती है या नहीं लगती। और मजे की बात यह है कि चोट अगर लगी तो थोड़ी सी सिर्फ मुझको ही लगी थी उसमें, बाकी किसी को बिल्कुल नहीं लगी थी। थोड़ा सा जो भी लगा था, वह मेरे पैर में ही लगा था। बाकी तो किसी को भी नहीं लगा था। अगर बुरा आदमी कोई था भी उसमें तो मैं ही था। बाकी जो हम कल्पित आरोपण करते हैं उनका कोई मूल्य नहीं है। लेकिन अकस्मात् कुछ भी नहीं होता है। क्योंकि अकस्मात् अगर हम मान लें तो कार्य कारण का सिद्धान्त गया, एकदम गया। एक बात भी अगर इस जगत् में अकस्मात् होती है तो सारा सिद्धान्त गया। फिर कोई सवाल नहीं है उसके बचने का।

अकस्मात् कुछ होता ही नहीं क्योंकि होने के पीछे कारण के बीना उपाय नहीं है। कारण होगा ही। अब जैसे एक आदमी है। उसको लाटरी मिल

जाती है तो यह बिल्कुल अकस्मात् बात है क्योंकि इसमें तो हम कोई कारण खोज नहीं सकते हैं। लेकिन एक लाख आदमियों ने अगर लाटरियों के टिकट भरे हैं और एक आदमी को मिल गई है तो किसी दिन अगर वैज्ञानिक क्षमता हमारी बढ़े और एक लाख लोगों के चित्तों का विश्लेषण हो सके तो मैं आपको कहता हूं कि कारण मिल जाएगा आदमी को लाटरी मिलने का। और हो सकता है कि एक लाख लोगों में सबसे ज्यादा संकल्प का आदमी यही है, सबसे ज्यादा सुनिश्चित इसी ने मान लिया है कि लाटरी मुझे मिलने वाली है। एक उदाहरण दे रहा हूं। और हजार कारण हो सकते हैं। इन लाख लोगों में सबसे संकल्पवान् आदमी जो है, इच्छा-शक्ति का आदमी जो है, उसको मिलने की सम्भावना ज्यादा है, क्योंकि उसके पास एक कारण है जो दूसरों के पास नहीं है।

अभी इस पर बहुत प्रयोग चलते हैं। अगर हम एक मशीन से ताश के पत्ते फेंके या मशीन से हम पांसे फेंके तो मशीन में कोई इच्छाशक्ति नहीं होती है। मशीन पांसें फेंक देती है। अगर सौ बार पांसे फेंकती है तो समझ लीजिए दो बार बारह का अंक आता है। तो यह अनुपात हुआ मशीन के द्वारा फेंकने का। मशीन की कोई इच्छाशक्ति नहीं है। मशीन सिर्फ फेंक देती है पांसे हिला देती है और फेंक देती है। सौ बार फेंकने में दो बार बारह का अंक आता है। अब एक दूसरा आदमी है जो हाथ से पांसे फेंकता है और हर बार भावना करके फेंकता है कि बारह का अंक आए। वह सौ में बीस बार बारह का अंक ले आता है। आंख बंद है उसकी। वह देख नहीं सकता कि पांसा कैसा है, क्या है? और बीस बार ले आता है। एक तीसरा आदमी है जो कितने ही उपाय करता है कि बारह का आकड़ा आ जाए लेकिन सौ में दो बार भी नहीं ला पाता। यानी दो बार जो कि मशीन भी ले आती, जो कि बिल्कुल ही गणना का सवाल है। यह जो बीस बार लाता है, इस आदमी से हम दुबारा प्रयोग करवाते हैं कि तू इस बार पक्का कर कि बारह का आंकड़ा नहीं आने देना। वह पांसा फेंकता है, बीस बार नहीं आता। समझे, पांच बार आता है, तीन बार आता है, दो बार आता है। अब सवाल होगा यह कि भीतर की इच्छाशक्ति काम करती है। इस पर हजारों प्रयोग किए गए हैं और यह निर्णीत हो गया है कि भीतर का संकल्प पांसे तक को प्रभावित करता है, ताश के पत्तों तक को प्रभावित करता है, घटनाओं को बांधता है, प्रभावित करता है, और हजारों आदमीयों केअनुभवों और कारणों का परिणाम होता है।

वह भी आकस्मिक नहीं है कि किसी आदमी को भीतरी संकल्प मिल गया है। भीतरी संकल्प भी उसके हजारों उन अनुभवों और कारणों का फल होता है जिनसे वह गुजरा है। समझ लीजिए कि एक आदमी है और उसने तय किया है कि मैं बारह घंटे तक आँख नहीं खोलूँगा और वह आदमी बैठ गया है और बारह घंटे में उसने तीन ही घंटे बाद आँख खोल दी है तो इस आदमी का भावी संकल्प क्षीण हो जाएगा। इस आदमी के संकल्प की शक्ति क्षीण हो जाएगी। अगर वह बारह घंटे तक आँख बंद किए बैठा ही रहा, कोई उपाय नहीं किए गए कि वह आँख खोले बारह घंटे में तो यह आदमी एक कर्म कर रहा है जिसका फल होगा, उसका भीतर संकल्प मजबूत हो जाएगा।

जीवन बहुत जटिल है। उसमें कोई बात कैसे घटित हो रही है यह कहना एकदम मुश्किल है लेकिन इतना कहना निश्चित है कि जो घटना हो रही है उसके पीछे कारण होगा, चाहे वह ज्ञात हो, चाहे अज्ञात हो।

दक्षिण में एक बूढ़े संगीतज्ञ का जन्म दिन मनाया जा रहा है। उसके हजारों शिष्य हैं। वे सब भेंटें चढ़ाते हैं क्योंकि हो सकता है कि अगले वर्ष वह जिए भी नहीं। उसके हजारों भक्त हैं, प्रेमी हैं, वे सब भेंटें चढ़ाने आए हैं। रात दो बजे तक भेंटें चढ़ती रहीं। लाखों रुपयों की भेंटें चढ़ गईं हैं। राजा है, रानियाँ हैं। जिन्होंने उससे सीखा है, वे सब भेंटें देने आए हैं। आखिर में दो बजे एक भिखारी जैसा आदमी तम्बूरा लिए हुए द्वार पर आया है। सिपाही ने कहा है कि तुम कहाँ जाते हो? उसने कहा है कि मैं भी कुछ भेंट कर जाऊँ। उसने कहा कि तुम्हारे पास तो कुछ दिखाई नहीं पड़ता। तो उस भिखारी ने कहा कि जरूरी नहीं कि जो दिखाई पड़े, वही भेंट किया जाए। जो नहीं दिखाई पड़ता है, वह भी भेंट किया जा सकता है। तम्बूरा भी उसने सिपाही के पास रख दिया और भीतर गया। भीतर जाकर उसने गुरु के पैर पर सिर रखा। उस भिखारी की उम्र मुश्किल से तीस-बत्तीस वर्ष है। बूढ़ा गुरु उसे पहचान भी नहीं सका। उसने कहा: तुमने कब मुझसे सीखा मुझे याद नहीं पड़ता। भिखारी ने कहा कि मैंने कभी आपसे नहीं सीखा। मैं एक भिखारी का लड़का हूँ। लेकिन महल के भीतर आप गाते-बजाते थे; मैं बाहर बैठकर सुनता था और वहीं मैं भी कुछ सीखता रहा। लेकिन अब आज धन्यवाद देने तो आना ही चाहिए। सीखा तो आपसे ही है। द्वार की सीढ़ी के बाहर बैठ कर ही सीखा; कभी भीतर नहीं आ सका क्योंकि भीतर आने का कोई उपाय नहीं था। आज

भी आना बड़ी मुश्किल से हुआ है। एक छोटी सी भेंट लाया हूँ—अंगीकार करेंगे, इन्कार तो न करेंगे। गुरु ने सहज कहा : नहीं, नहीं, इन्कार कैसे करूँगा ? पर देखा कि उसके पास कुछ है तो नहीं। हाथ खाली है, कपड़े फटे हैं। कहाँ की भेंट है, कैसी भेंट है ? कहा : नहीं, नहीं, इन्कार कैसे कर दूँगा ? तुम जो दोगे, जरूर ले लूँगा। भिखारी ने आँख बन्द की और ऊपर जोर से कहा : 'भगवान्, मेरी शेष आयु मेरे गुरु को दे दो क्योंकि मैं जीकर भी क्या करूँगा ?' यह कहते ही वह आदमी मर गया। यह ऐतिहासिक घटना है। अगर इतना प्रबल संकल्प किसी आदमी का है तो वह पूरा हो सकता है। यह बहुत कठिन बात नहीं है। और वह गुरु पन्द्रह वर्ष और जिया जिसकी एक ही साल में मर जाने की आशा थी। ऐसा व्यक्ति अगर लाटरी पर नम्बर लगाये और लाटरी निकल आए तो इसे संयोग कहा जाएगा क्योंकि हमें कारण तो दिखाई पड़ते नहीं। वही तो ह्यूम कहता है कि सब संयोग है। क्योंकि कारण कहाँ दिखाई पड़ रहे हैं ? जिसमें हमें दिखाई पड़ जाते हैं उसमें तो हम राजी हो जाते हैं। जिसमें दिखाई नहीं पड़ते, संयोग मालूम पड़ता है। लेकिन संयोग बड़ा अद्भुत है। एक आदमी कहे कि मेरी उम्र चली जाए और उसी वक्त उसकी उम्र चली जाए। इतना एकदम आसान नहीं है संयोग। हो सकता है लेकिन यह होना एकदम आसान नहीं मालूम पड़ता। इतने संकल्प का आदमी अगर लाटरी का नम्बर लगा दे तो बहुत कठिन नहीं है कि निकल आए। बहुत से कारण हैं जो हमें दिखाई नहीं पड़ते हैं। और हमको लगता है कि यह आकस्मिक हुआ है मगर आकस्मिक कुछ भी नहीं है।

प्रश्न : किसी एक को लाटरी मिलनी है, इसलिए उसको मिल गई है। क्या ऐसा नहीं कहा जा सकता ?

उत्तर : अब यह जो मामला है इसकी भी भविष्यवाणी की जा सकती है। ऐसे लोग भी हैं जो बता सकें कि लाटरी किसको मिलेगी, तब क्या कहोगे ? तब समझना बहुत मुश्किल हो जाएगा। हिटलर की मृत्यु को बताने वाले लोग हैं कि किस दिन हो जाएगी। गांधी की मृत्यु को बताने वाले लोग हैं कि किस दिन हो जाएगी। चीन किस दिन हमला करेगा भारत पर, इसको बताने वाले लोग भी हैं। एक अर्थ में हम कह सकते हैं कि यह सब संयोग है।

प्रश्न : लेकिन हिरोशिमा में दो लाख व्यक्ति एक साथ कैसे मर गए ?

उत्तर : हाँ, मरे। दो लाख व्यक्ति भी एक साथ मर सकते हैं क्योंकि हमें ऐसा लगता है कि किसी न किसी दिन सारी पृथ्वी एक साथ मरेगी। हमें लगता

है कि यह कितना आकस्मिक है कि दो लाख आदमी एक साथ मर गए क्योंकि इन दो लाख व्यक्तियों के भीतर हमारा कोई प्रवेश नहीं है। और ऊपर से ऐसा दिखता है कि बिल्कुल आकस्मिक है कि एटम गिरा। लेकिन कोई पूछे कि हिरोशिमा पर क्यों गिरा ? हिरोशिमा कोई महत्त्वपूर्ण नगर न था। टोकियो पर गिर सकता था। नागासाकी पर क्यों गिरा ? जब तक हम पूरा भीतर प्रवेश न कर पाएँ कारणों के, जब तक हम हिरोशिमा के लोगों के भीतर न घुस सकें तब तक हम कुछ नहीं कह सकते। कोई नहीं कह सकता कि हिरोशिमा में जापान में सबसे ज्यादा आत्मघातेच्छुक लोग हों कि इसलिए हिरोशिमा एटम को आकर्षित करता हो।

एक मोटर एक्सीडेंट हो जाए, एक एयरोप्लेन एक्सीडेंट हो जाए तो कोई नहीं कह सकता कि उस मोटर में, उस हवाई जहाज में बैठे हुए लोगों के चित्त में क्या चल रहा है और वह किस भाँति परिणाम ला सकता है।

मेहरबाबा की जिन्दगी में दो-तीन घटनाएँ बड़ी अद्भुत हैं। एक मकान उनके लिए बनाया गया। उस मकान में वह प्रवेश करने गए। प्रवेश का उत्सव मनाया जा रहा है, फूल-झाड़ लगाए गए हैं, दिए लगाए गए हैं। दरवाजे पर वह दो मिनट रुके और वापस लौट आए। उन्होंने कहा : इस मकान में मैं नहीं जाऊँगा। लोगों ने कहा : क्या मतलब है आपका इस मकान में न जाने से। उन्होंने कहा : और मुझे कुछ नहीं लगता लेकिन दरवाजे पर मैं एकदम ठिठका इसलिए मैं मकान में नहीं जाता। वह मकान उसी रात गिर गया। इस आदमी को भी साफ नहीं है कि क्या हुआ लेकिन सीढ़ी पर उसको एकदम झिझक मालूम हुई और उसने इन्कार कर दिया।

यही मेहरबाबा एक बार हिन्दुस्तान से यूरोप जाते हैं हवाई जहाज से। और अदन में जहाज पर चढ़ने से इन्कार कर देते हैं। उनकी टिकट है आगे तक की। अदन पर जहाज रुका है। वह एयरपोर्ट पर उतरे हैं और उसके बाद वह एकदम इन्कार कर देते हैं कि मैं जहाज पर नहीं चढ़ सकता और वह जहाज गिर जाता है।

जापान में एक घटना घटी। पिछले महायुद्ध में एक अमेरिकी जनरल जा रहा है एक हवाई जहाज से, किसी सैनिक कार्य से, किसी दूसरे सैनिक कैम्प में। वह घर से निकल गया है सुबह आठ बजे। उसकी टाइपिस्ट भागी हुई उसके घर पहुँची है कोई सवा आठ बजे और उसकी पत्नी से कहा है कि जनरल कहाँ हैं ? उसकी पत्नी ने कहा : क्यों ? उसने कहा : रात मैंने एक सपना देखा है।

मैं उसको कह दूँ। मैं बहुत डर गई हूँ। पहले मैंने सोचा कि कहना है कि नहीं, इसलिए देर हो गई। क्या सपना देखा है, उसकी पत्नी ने पूछा। तो वह अपना सपना बताती है कि जनरल जिस हवाई जहाज से आज जा रहे हैं, वह टकरा जाता है बीच में। उसमें जनरल है, चालक है और एक औरत है। हवाई जहाज टकरा जाता है हालांकि मरता कोई नहीं है। तीनों बच जाते हैं। तो उसकी पत्नी ने कहा कि तुम्हारा सपना यहीं से गलत हो गया क्योंकि जनरल और चालक दो ही जा रहे हैं। उसमें कोई औरत नहीं है। और वह तो निकल चुके हैं। फिर भी, पत्नी और वह, दोनों कार से एयरपोर्ट पर पहुँचते हैं। तब तक जनरल जा चुका है। लेकिन एयरपोर्ट पर पता चला कि एक औरत भी गई हुई है। एक औरत ने वहीं आकर कहा कि मेरा पति बीमार है। और मुझे इस वक्त कोई जाने का उपाय नहीं है। मुझे आप साथ ले चलें तो कृपा होगी। जनरल ने कहा कि हवाई जहाज खाली है, कोई बात नहीं है, तुम चलो। वह औरत साथ गई है। तब उसकी पत्नी घबड़ा गई है। वह एयरपोर्ट पर ही है कि खबर मिलती है कि वह जहाज टकरा गया है लेकिन मरा कोई नहीं है। और उस लड़की ने जिसको सपना आया है कहा है कि कितनी बड़ी चट्टान है जिससे वह जहाज टकराता है, कैसी जगह है, और वहाँ कैसे दरख्त हैं। वह सब शब्द-शब्द सही निकला है। लेकिन अगर यह सपना नहीं है तो बात अकस्मात् है। लेकिन अगर यह सपना है तो बात अकस्मात् नहीं है। कुछ कारण काम कर रहे हैं जिनका तालमेल आधा घंटा या घण्टा भर बाद उस जहाज को गिरा देने वाला है।

जिन्दगी जैसी हम देखते हैं उतनी सरल नहीं है। सब चीजें समझ में नहीं आती हैं। लेकिन इतनी बात समझ में आती ही है कि अकारण कुछ भी नहीं है। कर्म के सिद्धान्त का बुनियादी आधार यह है कि अकारण कुछ भी नहीं है। दूसरा बुनियादी आधार यह है कि जो हम कर रहे हैं वही हम भोग रहे हैं। और उसमें जन्मों के फासले नहीं हैं। और जो हम भोग रहे हैं, हमें जानना चाहिए कि हम उस भोगने के लिए जरूर कुछ उपाय कर रहे हैं, चाहे सुख हो, चाहे दुःख हो, चाहे शान्ति हो, चाहे अशान्ति हो।

प्रश्न : जो बच्चे अंगहीन पैदा हो जाते हैं या अन्धे पैदा हो जाते हैं या अस्वस्थ पैदा हो जाते हैं, उसमें उन्होंने कौन सा कर्म किया है जिसकी वजह से वे वैसे हैं।

उत्तर : हाँ, बहुत से कारण हैं। अब यह बात समझने जैसी है असल में। एक बच्चा अंधा पैदा होता है तो घटनाएँ घट रही हैं। अगर वैज्ञानिक से पूछेंगे तो वह कहेगा कि इसमें माँ-बाप के जो अणु मिले उसमें अंधेपन की गुंजाइश थी। वैज्ञानिक यहाँ समझाएगा। वह भी अकारण नहीं मानता इसको। लेकिन वह विज्ञान के कारण खोजेगा। वह कहेगा कि जो माँ-बाप के अणु मिले उन अणुओं से अंधा बच्चा ही पैदा हो सकता था। अंधा बच्चा पैदा हो गया। उन अणुओं में कोई रसायनिक कमी थी जिससे कि आँख नहीं बन पायी। लेकिन धार्मिक कहेगा कि बात इतनी ही नहीं है। इसके पीछे और भी कारण हैं। विज्ञान के लिए तो आदमी सिर्फ जन्मता है। जन्म के पहले कुछ भी नहीं है। लेकिन वह इस बात को इन्कार कैसे कर सकता है कि पैदा होने के पीछे भी कारण है, सिर्फ अंधा होने के पीछे ही नहीं। यानी वह इतना तो मानता है कि अंधा पैदा हो गया क्योंकि अणुओं में कुछ ऐसा कारण है जिससे अन्धा पैदा होना है। लेकिन पैदा ही क्यों होगा यह आदमी ? बस वह अणुओं के मिलने पर शुरूआत मानता है। धर्म कहता है उसके पीछे भी कोई कारण की शृंखला है, उसको अभी तोड़ा नहीं जा सकता। धर्म कहता है कि जो आदमी मरा, मरते वक्त तक ऐसी स्थितियाँ हो सकती हैं कि वह आदमी खुद भी आँख न चाहे। या उसके कर्मों का पूरा योग हो सकता है उस क्षण में कि आँख सम्भव न रहे। और ऐसा आदमी अगर मरे तो ऐसी आत्मा उसी माँ-बाप के शरीर में प्रवेश कर सकेगी, जहाँ अन्धे होने का संयोग जुड़ गया है। यानी ये दोहरे कारण हैं। अब जैसे मैं उदाहरण के लिए कहूँ। एक लड़की को मैं जानता हूँ जिसकी आँख चली गई सिर्फ इसलिए कि उसके प्रेमी से उसको मिलने के लिए मना कर दिया गया। उसके मन में भाव इतना गहरा हो गया इस बात का कि जब प्रेमी को ही नहीं देखना है तो फिर देखना भी क्या है ? यह भाव इतना संकल्पपूर्ण हो गया कि आँख चली गई। और किसी इलाज से आँख नहीं लौटाई जा सकी जब तक कि उसको प्रेमी से मिलने नहीं दिया गया। मिलने से आँख वापस लौट आई। उसके मन ने ही आँख का साथ छोड़ दिया था। तो मरते क्षण में, मरते वक्त में आत्मा के पूरे के पूरे जीवन की व्यवस्था, उसका चित्त, उसका संकल्प, उसकी भावनाएँ सब काम कर रही हैं। इन सारे संकल्पों, इन सारी भावनाओं, इस सारे कर्म शरीर को, इस सारे संकल्प शरीर को लेकर वह इस शरीर को छोड़ती है। नया शरीर हर कोई ग्रहण नहीं कर लिया जाएगा। वह उसी शरीर की ओर सहज नियम से आकर्षित होगी जहाँ उसकी इच्छाएँ, उसकी भावनाएँ उपलब्ध हो सकेंगी।

दो कारण-परम्पराएँ यहाँ मिल रही हैं।एक शरीर के अणुओं की, एक आत्मा की। शरीर के अणुओं से बनेगा शरीर। लेकिन उस शरीर को चुनेगा कौन? यहाँ हम पचास मकान, पचास ढंग के बनाएँ। आप मकान खरीदने आएँ। आप पचास में से हर कोई मकान नहीं चुन लेते। आप खोजते हैं, फिर आप एक मकान चुन लेते हैं। आपके भीतर उसके चुनाव के कारण होते हैं। हो सकता है कि आपके ख्याल सौन्दर्य रुचि वाले हों कि बड़ा सुन्दर मकान चाहिए हो सकता है कि सुविधा के ख्याल हों कि सुविधापूर्ण मकान चाहिए। बड़ा चाहिए, छोटा चाहिए, कैसा चाहिए? वह आपके भीतर है। तो दोहरे कारण हैं। एक तो इंजीनियर मकान बना रहा है। उसके भी मकान पचास बन गये हैं। उसके भी कारण हैं पचास मकान बनाने के। वह भी हर कुछ नहीं बना देगा। उसके अपने भीतरी कारण हैं, अपनी दृष्टि है, अपने विचार हैं, अपनी धारणाएँ हैं। फिर आप चुनाव करते हैं। पचास में से आपने एक चुना। तो यहाँ दोहरी कारण-शृंखलाओं का मिलन हुआ। एक इंजीनियर की कारण-शृंखला और दूसरी आपकी अपनी कारणशृंखला। हो सकता है कि आप पचास में से कोई भी न चुनें, वापस चले जाएँ कि यहाँ मुझे कुछ पसंद नहीं पड़ता। इन दोनों ने क्रास किया और आपने खास मकान चुना। जो शरीर हमने चुना है, वह हमने चुना है। वह हमारा चुनाव है, चाहे वह अचेतन हो, चाहे वह चेतन हो। लेकिन जो शरीर हमने चुना है उसमें भी कर्म का प्रभाव है क्योंकि कार्य-कारण से अन्यथा कुछ हो ही नहीं सकता।

प्रश्न : एक गाँव है। उसमें जो बच्चे हैं वे तीस प्रतिशत दो साल बाद मर जाते हैं। लेकिन क्या ऐसी व्यवस्था है कि सौ के सौ ही जिन्दा रह जाएँ? क्या नस्ल सुधारी जा सकती है?

उत्तर : हाँ बिल्कुल सुधारी जा सकती है। बिल्कुल सुधारी जा सकती है। फिर वे बच्चे पैदा नहीं होंगे उस गाँव में जो दो साल में मरते हैं। एक और गाँव है जिसमें दो साल में हर दस में से आठ बच्चे मर जाते हैं। इस गाँव में वे ही बच्चे आकर्षित होते हैं जिनकी दो साल से ज्यादा जीने की सम्भावना नहीं। अगर इस गाँव की नस्ल सुधार दी जाए तो इसका मतलब हुआ कि इंजीनियर ने दूसरे मकान बनाए जिनमें वे ही यात्री आकर्षित होंगे जो अभी आकर्षित नहीं हुए थे। इस गाँव में अब वे बच्चे पैदा होंगे जो सौ वर्ष जिन्दा रहने के लिए आए हुए हैं।

प्रश्न : लेकिन क्या सब गाँव में ऐसा किया जा सकता है?

उत्तर : सब गाँव में किया जा सकता है, तो नक्षत्र बदल जाएँगे। इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। यानी एक गाँव बदलता है या दूसरा गाँव यह सवाल नहीं। अगर पूरी पृथ्वी पर हम सौ साल की उम्र तय कर लें तो इस पृथ्वी पर सौ साल से कम पैदा होने वालों का उपाय बन्द हो जाएगा। उनको दूसरे नक्षत्र चुनने पड़ेंगे।

प्रश्न : तब तो फिर दूसरे जन्म तक कर्म गया ?

उत्तर : मेरा मतलब नहीं समझे। दूसरे जन्म तक तुम जाओगे और तुमने जो किया है, तुमने जो भोगा है उसी से तुम निर्मित हुए हो इसको भी ठीक समझ लेना जरूरी है। समझ लो मैंने पानी बहाया इस कमरे में। एक गिलास पानी लुड़का दिया। पानी बहा, उसने एक रास्ता बनाया, दरवाजे से निकल गया। फिर पानी बिल्कुल चला गया। धूप आई। सब सूख गया। सिर्फ एक सूखी रेखा रह गई। पानी नहीं है बिल्कुल अब। लेकिन पानी जिस मार्ग से गया था वह मार्ग रह गया है। आपने दूसरा पानी उलटाया। अब इस दूसरे पानी की हजार सम्भावनाओं में निन्यानवें सम्भावनाएँ यह हैं कि वह उसी मार्ग को पकड़ ले क्योंकि उसमें न्यूनतम प्रतिरोध है, झगड़ा ज्यादा नहीं है। दूसरा मार्ग बनाना हो तो फिर धूल हटानी पड़ेगी, कचरा हटाना पड़ेगा तब पानी मार्ग बना पाएगा। बना हुआ मार्ग है। यह पानी उस मार्ग को पकड़ लेगा और उसी मार्ग से बह जाएगा। पुराना पानी नहीं रह गया था सिर्फ सूखी रेखा रह गई थी।

मेरा कहना है कि एक जन्म से दूसरे जन्म में कर्म के फल नहीं जाते। लेकिन कर्म और फल जो हमने किए और भोगे, उनकी एक सूखी रेखा हमारे साथ रह जाती है। उसको मैं संस्कार कहता हूँ। कर्म फल दूसरे जन्म में नहीं जाते। मैंने पिछले जन्म गाली दी थी तो फल वहीं भोग लिया था। लेकिन गाली दी थी मैंने और तुमने नहीं दी थी तो मैंने गाली का फल भोगा, तुमने वह फल भी नहीं भोगा। तो मैं एक और तरह का व्यक्ति हूँ। मेरे पास एक सूखी रेखा है गाली देने और गाली का फल भोगने की। वह सूखी रेखा मेरे साथ है। इस जन्म में मेरे साथ सम्भावना है कि कोई गाली दे तो मैं फिर गाली दूँ क्योंकि वह सूखी रेखा जो है, न्यूनतम प्रतिरोध की वजह से मैं फौरन उसे पकड़ लूँगा। कल रात हम सब लोग सो जाएँ। आप अलग ढंग से जिए। मैं अलग ढंग से जिया। जो मैं जिया वह गया। आप जो जिए वह भी गया। लेकिन उसकी सूखी रेखाएँ साथ रह गईं।

प्रश्न : मरने के बाद तो कोई श्रीमन्त के यहाँ जन्मता है, कोई गरीब के यहाँ जन्मता है। इसका क्या कारण है ?

उत्तर : हाँ सही है। यहाँ भी हमारी सूखी रेखाएँ ही काम कर रही हैं। हमारा जो चित्त है, उसके जो आकर्षण हैं, हमने जो किया और भोगा है उसने हमें एक खास परिस्थिति दी है, एक खास संस्कार-बद्धता दी है। वह खास संस्कार-बद्धता हमें खास मार्गों पर प्रवाहित करती है। वे खास मार्ग सब रूपों में कारण से बंधे होंगे। चाहे वह समृद्ध के घर पैदा हो, चाहे गरीब के घर में, चाहे हिन्दुस्तान में पैदा हो, चाहे अमेरिका में, चाहे सुन्दर हो, चाहे कुरूप हो, चाहे जल्दी मरने वाला हो या देर तक जीने वाला हो इन सारी चीजों में उस आदमी ने जो किया है और भोगा है, उसकी संस्कारशीलता काम करेगी ही। अकारण यह कुछ भी नहीं है।

प्रश्न : कल जब समाजवाद आ जाएगा, कारण और कार्य दोनों खत्म नहीं होंगे उस वक्त ?

उत्तर : कारण और कार्य खत्म हो गए। जैसे आपने आग में हाथ डाले फिर आपने हाथ बाहर निकाल लिए तो डालना खत्म हो गया। आपका हाथ जला वह भी खत्म हो गया। हाथ की जलन भी खत्म हो गई लेकिन आग में डालने से जला हुआ हाथ पास रह गया।

प्रश्न : किसी के कर्म का जो अन्तिम फल है वही तो चला अगले जन्म में ?

उत्तर : फल नहीं चलने वाला है। फल तो खत्म हो गया।

प्रश्न : आग जलने के कारण हाथ पर कुछ निशान रह गए ?

उत्तर : हाँ ये जो निशान हैं न तो ये जलन है, न आग है। फल जलन था, वह तुमने भोग लिया। अब तुम्हारा हाथ जल गया है।

प्रश्न : यह भी तो एक प्रकार का फल ही है कि हाथ कुरूप हो जाए ?

उत्तर : वह सूखी रेखा है। सिर्फ चिह्न रह गया है कि तुम्हारा हाथ जला था।

प्रश्न : फल तो उसी का है ?

उत्तर : नहीं, तुम फल का मतलब ही नहीं समझते। फल का मतलब होता है जलन। कारण था आपका हाथ डालना, फल था हाथ का जलना। यह एक घटना थी। इस घटना के सूखे संस्कार पीछे रह जाएँगे कि इस आदमी ने

आग में हाथ डाला था। इस बात को मैं संस्कार कहता हूँ, फल नहीं कहता। फल तो जलन थी जो भोग लिया तुमने। प्रत्येक व्यक्ति अपने-अपने भोगने की खबर को लिए हुए है अपने साथ। ये खबरें भी हमें प्रभावित करती हैं। वे हमें न्यूनतम प्रतिरोध का मार्ग सुझाती हैं। जिस आदमी ने पिछले दस जन्मों में हत्या की है बार-बार उसकी बहुत सम्भावना इस जन्म में भी हत्या करने की है। कारण कि दस जन्मों से हत्या करने की उसकी जो वृत्ति है, जो भाव है, जो संस्कार है, वह निरन्तर गहरा होता चला गया है और जब उससे झगड़ा होता है तो पहली बात उसको यही सूझती है कि मार डालो। दूसरी बात नहीं सूझती उसको। यह निकटतम रास्ता है जिस पर सूखी रेखा बनी है। वृत्ति सिर्फ सूखी है, उसमें कोई प्राण नहीं है। अगर आप बदलना चाहें तो बदल सकते हैं। लेकिन अगर आप कहते हैं फल तो फल सूखा नहीं, फल हरा है। फल भोगना पड़ेगा, आप उसे बदल नहीं सकते। जैसे कोई आग में हाथ डालता है तो उसे उसी वक्त जलना पड़ेगा जब कि वह हाथ डालता है लेकिन मेरा कहना है कि यह आदमी आग में हाथ डालने की वृत्ति वाला है। दूसरे जन्म में भी इससे डर है कि कहीं वह आग में हाथ डाल दे। क्योंकि इसकी बार-बार आग में हाथ डालने की आदत भय पैदा करती है। लेकिन इसका यह मतलब नहीं कि यह आग में हाथ डालने को बँधा है। यह चाहे तो न डाले।

इसका मतलब यह होता है अन्ततः कि कर्मों की निर्जरा नहीं करनी है आपको। कर्मों की निर्जरा हर कर्म के साथ होती ही चली जाती है। पीछे सूखी रेखा रह जाती है। इसी सूखी रेखा से आपको ज्ञान हो जाना काफी है। इसलिए मोक्ष या निर्वाण तत्काल हो सकता है। पुरानी धारणा में वह तत्काल नहीं हो सकता क्योंकि आपने जितने कर्म किए हैं उनके फल आपको भोगने ही पड़ेंगे। जब आप सारे फल भोग लेंगे तभी आपको मुक्ति हो सकती है। और इन फलों को भोगने में फिर आपने कुछ कर्म कर लिए तो आप फिर बंध जाएँगे और यह अन्तहीन शृंखला होगी। यानी मैं कह रहा हूँ कि आप प्रतिबार कर्म करके फल भोग लेते हैं। निर्जरा वहीं हो जाती है, रह जाती है सिर्फ सूखी रेखा, कर्म नहीं, फल नहीं। अगर आप होश से मर जाते हैं तो वह अभी विदा हो जाती है।

प्रश्न : सूखी रेखा रहने की जरूरत क्या थी ?

उत्तर : उसकी जरूरत है।

प्रश्न : सूखी रेखा का सिद्धान्त क्या है ?

उत्तर : सिद्धान्त की जरूरत नहीं। तथ्य है यह। जैसे समझ लो कि आज दिन भर मैंने क्रोध किया, दुःख भोगा, गाली खाई, झगड़ा हुआ, उपद्रव हुआ, अशान्त हुआ। फिर मैं सो गया आज रात को। आपने दिन भर क्रोध नहीं किया, प्रेम से लोगों से मिले जुले, आनन्दित रहे। आप भी सो गए। सुबह हम दोनों एक ही कमरे में सोकर उठे। मेरी चप्पल मेरे बिस्तर के पास नहीं मिली मुझे। आपकी भी नहीं मिली। आपको सम्भावना बहुत कम है कि आप क्रोध में आ जाएँ। मेरी सम्भावना बहुत ज़्यादा है कि मैं क्रोध में आ जाऊँ। वह जो कल का दिन था उसकी सूखी रेखा मेरे साथ है। कल दिन भर जो क्रोध किया तो आज सुबह से ही उपद्रव शुरू हो गया। कहाँ है मेरी चप्पल ? कल जो मैंने गाली दी थी, वह भी गई, जो गाली का दुःख था, वह भी गया। लेकिन गाली देने वाला आदमी जिसने दिन भर गालियाँ दीं वह तो शेष है। मुझमें और आप में कोई फर्क तो होना चाहिए क्योंकि आपने गाली नहीं दी और मैंने दिन भर गाली दी। और सुबह फिर ऐसा हो जाए कि कोई भेद न रह जाए तब तो फिर व्यवस्था गई। भेद तो रहेगा ही मुझ में और आप में। क्योंकि हम अलग ढंग से जिए। मैं क्रोध में जिया, आप प्रेम में जिए। तो हम में भेद रहेगा। वह भेद वृत्ति का होगा, फल का नहीं। फल तो गया। अब हमारे साथ रह जाएगा वह जो समग्र संस्कार है हमारा। **इस समग्र संस्कार के प्रति हमारी मूर्च्छा कारण होगी इसको चलाने का।** जैसे समझ लें कि कल मैंने क्रोध किया दिन भर और सुबह सोचूँ कि बहुत क्रोध किया, बहुत दुःख पाया और जाग जाऊँ तो जरूरी नहीं कि मैं फिर क्रोध करूँ यानी मेरे भीतर क्रोध करने की अनिवार्यता नहीं है। सिर्फ मूर्च्छा में ही अनिवार्यता है। अगर मैं सोए-सोए कल जैसा व्यवहार करूँ तो क्रोध चलेगा। अगर जाग जाऊँ तो क्रोध टूट जाएगा।

इसलिए अन्ततः मेरी दृष्टि में कर्म की निर्जरा तो हो चुकी है लेकिन कर्म की सूखी रेखा रह गई है। और **वह सूखी रेखा हमारी मूर्च्छा है।** अगर हम मूर्च्छित रहें तो हम वैसे ही काम करेंगे। अगर हम जाग जाएँ तो काम इसी वक्त बन्द हो जाए। **इसलिए मैं कहता हूँ कि एक क्षण में मुक्ति हो सकती है।** करोड़ जन्मों में आपने क्या किया है, इससे मुझे कुछ लेना-देना नहीं है। सिर्फ आप जाग जाएँ। 'इससे ज्यादा कोई शर्त नहीं। यह मेरी व्यक्तिगत दृष्टि है क्योंकि मैं ऐसी व्याख्या कर रहा हूँ। बुनियादी अन्तर पड़ेगा आपकी व्याख्या से।

आपकी व्याख्या का मतलब यह है कि अगर करोड़ जन्म आपने कर्म किए तो आपको फल भोगने के लिए शेष हैं अभी। वह जब तक आप नहीं भोग लेते तब तक कोई उपाय नहीं। और उनको भोगने में भी नए कर्म होंगे क्योंकि आप बचेंगे कैसे? अगर पुरानी व्याख्या सही है तो मैं मानता हूँ कि कोई कभी मुक्त हो ही नहीं सकता। कारण कि कल मैंने कितने पाप किए, कितनी बुराइयाँ कीं, उनका फल भोगना है। और वह मैं कैसे भोगूँगा? जब मुझे कोई गाली देने आएगा क्योंकि मैंने पिछले जन्म में उसे गाली दी थी तो फिर कर्म शुरू होगा। वह फिर मुझे गाली देगा। और जब मैंने पिछले जन्म में गाली दी थी तो गाली देने की मेरी वृत्ति तो है ही। और अब अगर वह मुझे फिर गाली देगा तो फिर गाली का सिलसिला जारी रहेगा। और सिलसिले का अन्त क्या है? क्योंकि अगर एक कर्म भी शेष रह गया तो उसको भोगने में फिर नए कर्म निर्मित होते चले जाएँगे। और अगर एक भी शेष रहा तो यह निर्मिति कैसे बन्द होगी? और अगर यह बात सही है तो दुनिया में कोई कभी मुक्त हुआ ही नहीं। लेकिन दुनिया में मुक्त लोग हुए हैं और वे इसलिए मुक्त हो सके हैं कि कर्म आगे के लिए शेष नहीं रह जाते। कर्म पीछे ही चुकता हो जाते हैं। सिर्फ रह जाती है सोयी हुई वृत्ति और अगर आदमी सोया ही रहे, तो उन्हीं कर्मों को दुहराता चला जाएगा। जाग जाए तो दुहराना बन्द कर देगा। यानी मुझे कोई मजबूर नहीं कर रहा है कि मैं क्रोध करूँ सिवाय मेरी मूर्च्छा के। और अगर मैं जाग गया हूँ तो मैं कहता हूँ कि ठीक है, इस रास्ते से बहुत बार जा चुके, बहुत दुःख उठा चुके।

इसलिए महावीर ने बड़ी कोशिश की प्रत्येक व्यक्ति को पिछले जन्मों के स्मरण करने की ताकि यह पता चल जाए कि तुम क्या-क्या कर चुके हो; क्या-क्या भोग चुके हो, तुम कितनी बार गुजर चुके हो? और अगर स्मरण आ जाए किसी व्यक्ति को उसके दो चार जन्मों का तो वह जानेगा कि उसने बहुत बार धन कमाया, कई बार बेईमानी से और बहुत बार प्रेम किया, क्रोध किया, यश कमाया, अपमान सहा, मान सहा। सब कर चुका वह जो अब फिर कर रहा है। और अगर उसको यह दिखाई पड़ जाए कि यह मैं बहुत बार कर चुका तो यह निरर्थक हो जाए। और यह चोट अगर उसको पड़ जाए तो वह अभी जाग जाए और कहे कि अब मैं बहुत कर चुका यह। अब दूसरे करने का क्या मतलब? कितनी बार धन कमाया, फिर उसका हुआ क्या? तो यह जागरण उसकी सूखी रेखा को तोड़ने का कारण बन जाएगा। इसलिए इसमें तत्काल

बोध की सम्भावना है। सच तो यह है कि जब भी कभी मुक्ति होती है वह तत्काल होती है।

प्रश्न : फिर यह जो सुधार करना चाहते हैं समाज में, वह व्यर्थ हो गया। जैसे सतीप्रथा थी जो स्त्रियों को जबरदस्ती आग में ढकेल देते थे।

उत्तर : यह बड़ा अच्छा सवाल है। सच में अन्याय कुछ भी नहीं है। क्योंकि जो हम कर रहे हैं, वह हम भोग रहे हैं। एक बात और समझ लेनी जरूरी है। पुराना ख्याल था कि अगर मैं किसी को चाँटा मारूँ तो किसी जन्म में वह मुझको चाँटा मारेगा। कर्म सिद्धान्त का ऐसा ख्याल है। इसका मतलब यह हुआ कि अगर मैंने किसी को चाँटा मार दिया तो जब तक वह मुझे चाँटा न मार ले, तब तक वह भी मुक्त नहीं हो सकता। यानी मेरा कृत्य भी उसकी अमुक्ति का कारण बन जाएगा। समझ लीजिए कि मैंने किसी को चाँटा मारा और वह इसी जन्म में मुक्त हो सकता था। मगर अब नहीं हो सकता जब तक वह मुझे चाँटा न मार ले। क्योंकि मुझे चाँटा कौन मारेगा ? हिसाब कैसे पूरा होगा ? उसे अगला जन्म लेना पड़ेगा और वह भी मेरे कारण जो कि बिल्कुल ही व्यर्थ बात है। नहीं, मेरा कहना यह है कि मैं जब उसको चाँटा मारता हूँ तो वह मुझे चाँटा मारेगा ऐसा फल नहीं होता। मैं चाँटा मारता हूँ। मेरे चाँटा मारने में जिस वृत्ति से मैं गुजरता हूँ, वह मुझे दुःख दे जाती है। उससे कुछ चाँटा लौटाने का सवाल नहीं है। हाँ, मैंने उसे चाँटा मारा। अगर चाँटे को वह साक्षी भाव से देखता रहा, तो वह नया कर्म नहीं बाँधता है क्योंकि वह सिर्फ साक्षी रहता है। मैंने चाँटा मारा, उसने देखा। वह कुछ भी नहीं कर रहा है। अगर वह मेरे चाँटा मारने से मुझे चाँटा मारे तो वह मेरे चाँटा मारने का फल नहीं है। वह उसका कर्म है जिसका फल उसको भोगना पड़ेगा। इस बात को ठीक से समझ लेना चाहिए। मैंने चाँटा मारा है उसको और अगर वह चुपचाप खड़ा रहे और समझे कि वह बिचारा पागल है, चाँटा मारता है और कुछ न करे और समझे, अपने रास्ते बढ़ जाए तो उसने कोई कर्मबद्ध नहीं किया। मैंने कर्म किया और उसका फल भोगा। मेरे इस कर्मबन्ध की शृंखला से उसने कोई सम्बन्ध नहीं जोड़ा। लेकिन वह अगर मुझे चाँटा मारे तो वह मेरे चाँटे का उत्तर तो मैं ही भोग रहा हूँ। उसके चांटे का उत्तर वही भोगने वाला है। यह उसकी कर्म-शृंखला है। इससे मुझे कुछ लेना-देना नहीं है। इसमें अन्याय कुछ भी नहीं है। मैं चांटा मारता हूँ तो मैं दुःख भोग लेता हूँ।

प्रश्न : आपका दृष्टिकोण है कि चांटा मारने से दुःख होगा। लेकिन ऐसी भी वृत्ति होती है कि मैं चांटा भी मारूं और आनन्द भी लूं और जिसे चांटा मारा उसको दुःख नहीं है क्या ?

उत्तर : समझें थोड़ा इसे। मैंने चांटा मारा किसी को तो मैंने कर्म किया, दुःख भोगा, फल भोगा। लेकिन जिसको मैंने चांटा मारा उसके साथ अन्याय हो गया। और मैं कहता हूँ कि अन्याय कुछ भी नहीं है। मेरा कहना है कि मेरा चांटा मारना आधा हिस्सा है। और चांटा भी मैं उसी को मारता हूँ जो चांटे को आकर्षित करता है। वह दूसरा हिस्सा है जो हमें दिखाई नहीं पड़ता। यह असम्भव है कि मैं उसको चांटा मार दूं जो चांटे को आकर्षित नहीं करता। जो चांटा को आकर्षित करता है उसी को चांटा पड़ता है। आकर्षित करने की वजह से वह दुःख उठाता है। आकर्षण उसका हिस्सा है। यानी अकेला कोई आदमी इस दुनिया में मालिक नहीं होता। गुलाम भी उसके साथ गुलाम होना चाहता है। नहीं तो यह सम्बन्ध बन ही नहीं सकता है। हम तो मालिक को थोप देते हैं कि तुमने गुलाम बनाया है इस आदमी को। लेकिन हमने यह कभी नहीं पूछा कि यह आदमी गुलाम बनना चाहता है। अगर यह नहीं बनना चाहता तो असम्भव है इसे गुलाम बनाना।

एक फकीर हुआ है डायोजनीज। रास्ते से गुजर रहा था, नंगा फकीर था। उसे कुछ लोगों ने पकड़ लिया। उसने पूछा कहां ले जाते हो मुझे पकड़ कर। लोगों ने कहा कि हम गुलामों को पकड़ कर बेचते हैं बजारों में। डायोजनीज ने कहा : बहुत बढ़िया, चलो, चलते हैं। पर लोग बहुत हैरान हुए क्योंकि कोई आदमी को पकड़ा गुलामी के लिए तो वह भागता है, बचना चाहता है। डायोजनीज़ ने कहा कि हाथ-पांव छोड़ दो क्योंकि मैं खुद ही चलता हूँ। जो तुम्हारे साथ नहीं जाना चाहता उसे तुम जंजीर बांधकर भी नहीं ले जा सकते। मैं तो चलता ही हूँ। जंजीरें अलग कर लो। वे उसे ले गए। वह उनके साथ चला गया। उसे जाकर खड़ा कर दिया गया। बहुत तगड़ा फकीर था, बड़ा स्वस्थ आदमी था। वैसा ही नग्न रहता और वैसा ही सुन्दर था। उसे चौखटे पर खड़ा कर दिया जहाँ नीलाम-बिक्री होती थी गुलामों की। और बेचनेवाले ने चिल्लाया : कौन इस गुलाम को खरीदता है। उसने कहा : चुप ! यह मत कहना। आवाज मैं ही लगा देता हूँ। उस आदमी ने चौखटे पर खड़े होकर कहा कि किसी को मालिक खरीदना हो तो आ जाए। लोग बड़े चौंके। और भीड़ लग गई। उन्होंने

कहा कि क्या मजाक की बात है ? डायोजनीज़ ने कहा मैं हर हालत में मालिक ही रहूँगा। ये लोग मुझे पकड़ कर भी लाए तो मैंने कहा : हटाओ ये जंजीरें तो इन्होंने जल्दी से हटा लीं। क्योंकि मैंने कहा कि मैं ऐसे ही चलता हूँ क्योंकि मैं मालिक हूँ। इनसे पूछो कि मैं इन्हें कितना डांटता-डपटता ला रहा हूँ। यह जो मुझे पकड़ कर लाए हैं इनका कितना सुधार किया है, इनको कितना ठीक किया है मैंने। इनसे पूछो। और हालत सच में यही थी कि जो उसको पकड़ कर लाए थे, बहुत डरे हुए थे। वह आदमी बड़ी अकड़ से भरा हुआ था। उसने कहा कि कोई गुलाम समझ कर मुझे मत खरीद लेना क्योंकि जो गुलाम होना चाहे वही गुलाम हो सकता है। हम तो मालिक ही हैं। किसी को मालिक खरीदना हो तो खरीद ले। एक राजा को क्रोध आ गया। उसने कहा : यह क्या बात करता है ? उसने उसे खरीद लिया और घर ले जाकर कहा कि इसकी टांग तोड़ डालो। डायोजनीज़ ने टांग आगे कर दी। राजा ने कहा : तुड़वा रहे हैं तुम्हारी टांग। उसने कहा तुम क्या तुड़वा रहे हो हम खुद ही आगे कर रहे हैं। हम मालिक हैं। तुड़वाओगे तुम तब जब हम बचाएँ। तोड़ो लेकिन ध्यान में रहे कि नुकसान में पड़ जाओगे। लेकिन जो खरीदा है मुझको फिर मैं किसी काम का न रह जाऊँगा। टांग टूट गई फिर मैं काम का नहीं रहूँगा। तुम्हारी मर्जी। राजा को भी ख्याल आया कि बात तो सच है। अगर इसकी टांग तुड़वा दी तो यह और बोझ बन जाएगा। राजा ने कहा कि रहने दो, इस आदमी की टांग मत तोड़ो। डायोजनीज़ ने कहा : देखते हो तुम, मालकियत किसकी चल रही है।

तो मैं कह रहा हूँ कि जब एक आदमी गुलाम होता है तो किसी न किसी रूप में वह गुलामी को आमंत्रित करता है। जब मालिक होने की प्रवृत्ति वाले और गुलाम होने की प्रवृत्ति वाले आदमी मिल जाते हैं तो ताल-मेल बैठ जाता है। एक गुलाम बन जाता है, एक मालिक हो जाता है। इसे ऐसा समझना चाहिए कि जैसे हम एक प्लग लगाते हैं तो उसमें हम जो पिनें लगा रहे हैं वहीं मतलब नहीं रखतीं। उसमें जो छेद हैं वे भी मतलब रखते हैं। जब मैं किसी को चांटा मारता हूँ तो इतना ही काफी नहीं कि मैंने चांटा मारा। वह आदमी किसी न किसी ढंग से छेद का कार्य कर रहा है, चांटे को निमन्त्रित कर रहा है। नहीं तो यह असम्भव है। इसलिए मैं कह रहा हूँ कि अन्याय असम्भव है। लेकिन इसका यह मतलब नहीं कि हमें अन्याय मिटाने की कोशिश नहीं करनी चाहिए। नहीं, वह कोशिश हमें करनी

चाहिए । क्यों ? उसका कारण है । हमें एक ऐसी दुनिया बनानी चाहिए जहां न कोई चांटे को आकर्षित करता हो, न कोई चांटा मारने को उत्सुक होता हो । अन्याय कभी भी नहीं है । अन्याय का कुल मतलब इतना हो सकता है कि अभी ऐसे लोग हैं दुनिया में जो चांटा मारने को भी उत्सुक हैं और चांटा खाने को भी उत्सुक हैं । अन्याय घटना में नहीं है, घटना तो हमारी न्याय-संगति है । जो हो रहा है, वैसा ही होता है । वैसा ही हो सकता था । जैसे सतियां होती थीं । वे इसलिए होती थीं कि कुछ स्त्रियां मरने को राजी थीं आग में । नियम चलता था । अन्याय कुछ भी नहीं था । जो स्त्रियां जलने को राजी नहीं थीं, वे उस दिन भी नहीं जलाई गईं । जो स्त्रियां जलने को आज भी राजी हैं वे स्टोव से आग लगा लेती हैं, जहर खा लेती हैं, कुछ भी करती हैं । यानी मेरा कहना यह है कि उस समय भी सारी स्त्रियां तो सती नहीं हो जाती थीं । कुछ ही स्त्रियां सती होती थीं । और अगर तुम हिसाब लगाते जाओ तो जितनी औरतें आज आग लगाकर मरती हैं, वह अनुपात कम नहीं पाओगे । यह सोचने जैसा मामला है । सती की व्यवस्था आग में जलने वाली औरतों के लिए एक सुविधा थी । कुछ लोग जलाने वाले भी हैं । वे अब भी जलाने का इन्तजाम करते हैं ।

प्रश्न : किसी को ढकेल कर भी मार सकते हैं । ढकेल कर भी सती कर सकते हैं ?

उत्तर : ढकेल कर भी सती कर सकते हैं । हां, हां । ढकेल कर भी सती किया जाता था । लेकिन जिसको ढकेल कर सती किया जाता था उसके भी ढकेले जाने की पूरी मनोवृत्ति होती थी । यानी मैं यह कह रहा हूं कि घटना जब भी घटती है उसके दो पहलू होते हैं । उसमें हम एक ही पहलू को जिम्मेदार ठहराते हैं । वह हमारी गलती है । दूसरा पहलू भी उतना ही जिम्मेदार होता है । जैसे हम कहते हैं कि अंगरेजों ने आकर हमको गुलाम बना लिया, यह आधा हिस्सा है । हम गुलाम होने की तैयारी में थे, यह दूसरा हिस्सा है जो हमें ख्याल में नहीं आता । और जब तक हम गुलाम होने की तैयारी में हैं, हम गुलाम रहते हैं । यह दूसरी बात थी कि अंगरेज बनाते, कि हूण बनाते, कि फ्रेंच बनाते । लेकिन गुलामी घटती । तो वह गुलामी की तैयारी थी ।

लेकिन इसका मतलब यह नहीं कि सती की प्रथा जारी रहनी चाहिए । मैं कहता हूं प्रथा तो गलत है । प्रथा इसलिए गलत है कि जलाने वाला भी

गलत कार्य कर रहा है, जलाया जाने वाला भी गलत कार्य कर रहा है। दोनों आदमी गलत हैं। दुनिया ऐसी होनी चाहिए जहाँ न कोई जलाने को उत्सुक हो, न कोई जलने को उत्सुक हो। ऐसी अच्छी दुनिया हमें बनानी चाहिए। लेकिन जो हो रहा है, वह न्याययुक्त है। जीवन और चेतना बदले तो कुछ और होना शुरू हो जाए। अन्याय सिर्फ यह है कि जो हमारी जीवन-व्यवस्था है, वह हमें बहुत दुःख में डाल रही है। और दुःखी हम ही बन रहे हैं, कोई बना नहीं रहा है। इससे बेहतर जीवन व्यवस्था हो सकती है जो ज्यादा हमें सुख में ले जाए, आनन्द में ले जाए। और ऐसी व्यवस्था के लिए हमें सचेष्ट होना चाहिए व्यक्तिगत रूप से भी, सामूहिक रूप से भी।

जैसे रूस में समाजवाद है। वहाँ सारे लोगों की सम्पत्ति बराबर हो गई है। लोग पूछते हैं कि जहाँ सम्पत्ति बराबर नहीं है, वहाँ तो अन्याय हो रहा है। वहा सम्पत्ति बराबर होने की कोई कर्म रेखा, कोई संस्कार उस मुल्क की चेतना में नहीं है क्या? अगर है तो क्यों अन्याय हो रहा है? जिस मुल्क में समानता का संस्कार अर्जित नहीं हुआ है चेतना में वहीं समानता है और वह न्यायसंगत है इन अर्थों में कि जो हमारी चेतना है, वह हमारा फल है। अगर रूस की चेतना उस जगह पहुँच गई है सामूहिक रूप से जहाँ कि सम्पत्ति की समानता संस्कार का हिस्सा हो गई तो ठीक है उन्होंने समानता स्थापित कर ली। और इसका परिणाम यह होगा कि रूस में वे आत्माएँ जन्म लेने लगेंगी जिनमें समानता का उदय हुआ है; असमानता के भाव की आत्माएँ रूस में जन्म लेना बंद कर देंगी। हमें सिर्फ एक तरफ से देखने पर कठिनाई मालूम पड़ती है। अगर हम दोनों तरफ से देखेंगे तो कोई कठिनाई नहीं रह जाती।

प्रश्न : जब से दुनिया बनी है तभी से शुरू हुई है समानता पैदा होनी या जब से यह समाजवाद आया रूस में?

उत्तर : चेतना के विकास में समानता बहुत विकसित चेतना की स्थिति है। असमानता सामान्य स्थिति है। दूसरे के साथ अपने को समान मानने के लिए तैयार होना भी बड़ी उपलब्धि है। चित्त नहीं मानता कि यह मेरे समान हो। असमानता सहज वृत्ति है। विषमता पैदा करना इसलिए सामान्य रहा। समानता पैदा करने वाली जो चेतनाएँ पैदा हुई महावीर उनमें से एक हैं। लेकिन वे चेतनाएँ व्यक्तिगत थीं। तब धीरे-धीरे उनकी सघनता बढ़ी और

सघनता उस जगह पर पहुँच गई कि अब समान करने वाली चेतनाओं का भी एक बड़ा अंश पृथ्वी पर है। जिस दिन असमान वृत्ति वाली चेतनाएँ क्षीण होती जाएँगी उस दिन सारी पृथ्वी पर समानता हो जाएगी। लम्बा वक्त लगता है। लेकिन लम्बा वक्त हमको दिखता है क्योंकि हमारे वक्त का हिस्सा ही छोटा सा है। मनुष्य को हुए मुश्किल से दस लाख वर्ष हुए। और जिसको हम मनुष्य कहते हैं उसको तो मुश्किल से दस हजार साल हुए। पृथ्वी को बने दो अरब वर्ष हुए और पृथ्वी बड़ी नई चीज है। कोई बहुत पुरानी चीज नहीं। तारे हैं, उनका भी कोई हिसाब लगाना मुश्किल नहीं है कि कितने पुराने हैं। और जहाँ अन्तहीन समय की धारा है, वहाँ दस-पाँच हजार वर्ष का क्या मतलब होता है?

मनुष्य अभी भी बिल्कुल ही बचपन में है। विकास की व्यवस्था में अभी हम बिल्कुल बच्चों की तरह हैं। अभी हम जवान भी नहीं हुए। बूढ़ा होना तो बहुत दूर की बात है। अभी कई बातें प्रकट होनी शुरू हुई हैं। जैसे कि एक बच्चा है। वह चौदह साल का हुआ है और उसमें सेक्स का भाव उठा। और लोग कहें कि चौदह साल से यह क्या कर रहा था। चौदह साल से पहले उसे सेक्स का भाव क्यों नहीं उठा? चौदह साल गुजर गए। लेकिन एक अवस्था है बच्चे की। वह चोदह, पन्द्रह, सोलह साल का हो जाए तो प्रकृति उसको मानती है इस योग्य कि अब वह सेक्स की वृत्ति में उतरे। मनुष्य जाति की भी एक अवस्था होगी जहाँ आकर प्रकृति मानेगी कि अब तुम समान हो सकते हो, अब तुम उस योग्यता के हो गए। दस हजार वर्ष लग जाएँ, बीस हजार वर्ष लग जाएँ कोई बात नहीं क्योंकि वह पूरी मानव-जाति का सवाल है, एक व्यक्ति का सवाल नहीं है। हाँ, एक व्यक्ति तो कभी भी समान होने की वृत्ति को उपलब्ध हो सकता है। उसी को हम सम्यक् कहते हैं। समता कहते हैं। मन से भेद ही मिट गया है कि कौन नीचा है, कौन ऊँचा है। यह सवाल ही चला गया है। तो कोई महावीर, कोई बुद्ध इसको उपलब्ध हो इसमें अड़चन नहीं है। लेकिन मनुष्य-जाति इस तल पर आने में हजारों वर्ष लेती है। अन्याय नहीं है इस अर्थ में कि प्रत्येक चीज अपने कारणों से न्याययुक्त है। अन्याय इस अर्थ में है कि जिन्दगी इससे भी ज्यादा आनन्दपूर्ण, ज्यादा शांति की, ज्यादा सौन्दर्य की हो सकती है। उस दिशा में हमें कोशिश करनी चाहिए। तुम कहो कि फिर हम कोशिश भी क्यों करें? लेकिन तुम यह मान लेते हो कि कोशिश जैसे हम कर रहे हैं, वह कोशिश करना भी हमारे

कर्म के संस्कार की पूरी व्यवस्था का हिस्सा होता है। वह न करने का तुम्हारा सवाल भी व्यर्थ है।

प्रश्न : कोशिश करने का भी कारण होता है ?

उत्तर : हां, कारण है। कारण यही है कि तुम दुःख को नहीं झेल सकते, नहीं देख सकते और उसको बदलने की कोशिश करते हो। तो हम जब यह सोचने लगते हैं कि न करें तब हम गलती में पड़ जाते हैं। न करने के लिए कारण जुटाना बहुत मुश्किल है। और नहीं तो न करने का जिस दिन कारण जुटा लोगे उस दिन सामायिक हो जाएगी और मोक्ष हो जाएगा। यानी मेरा मतलब समझे आप ? करने का कारण ही हमने जुटाया है सब। जिस दिन हम उस हालत में आ जाएँगे कि हम कह सकें कि न करना भी काफी है, अब कुछ नहीं करते तो नियम के हम बाहर हो जाएँगे। उस स्थिति का नाम ही मोक्ष है जो करने के बाहर हो गया। लेकिन जो करने के भीतर है, वह कुछ न कुछ करता ही रहेगा।

दूसरी बात यह भी समझ लेनी चाहिए। एक आदमी, हो सकता है कि चांटा मारने में दुःख न उठाए, आनन्दित हो। हम को लगेगा कि फिर उसके साथ क्या होगा ? लेकिन हमें ख्याल नहीं है कि जो आदमी चांटा मारने में आनन्दित है वह आदमी नहीं रह गया है। वह आदमी से बहुत नीचे उतर गया है। और उसने चांटा मारने में इतना खोया जितना कि चांटा मार कर दुःखी होने वाला नहीं खोता है। इस बात को जरा ख्याल में रखें। जो चांटा मार कर दुःखी होता है, वह बहुत थोड़ा फल भोगता है लेकिन जो चांटा मार कर आनन्दित होता है उसने तो भारी फल भोग लिया। उसका तो विकास तल एकदम नीचे चला गया। वह तो एकदम जंगली हो गया। उसने दस हजार, बीस हजार, पचीस हजार साल में जो विकास किया, सब खो दिया। उसका विकास तो इतना पिछड़ गया कि उसको जन्म-जन्मान्तरों का चक्कर हो गया जिसमें कि वह वापस उस जगह आए जहां कि चांटा मारने से दुःख होता है। मेरा मतलब समझे आप ? फल वह भी भोग रहा है। बहुत भारी फल भोग रहा है। उसका फल बहुत गहरा है, बहुत गहरा है।

प्रश्न : आपने जो कहा कि जीवनग्रस्त कर्म की जो सूक्ष्म रेखा अंकित होती है, उससे पुनर्जन्म का सिद्धान्त फलित होता है। आपने कहा कि एक आदमी हत्या करता है दस-बारह जन्मों तक तो उसके हत्यारा होने की सम्भावना बनी रहती है। पहले आपने कहा था कि जो पहले जन्म में वेश्या

होती है दूसरे जन्म में उसकी वृत्ति दमन की होती है। कर्मों की सूखी रेखा से तो उसे वेश्या ही होना चाहिए।

उत्तर : ठीक कहते हैं। साधारणतः तुम समझते हो कि दमन कर्म नहीं है। असल में दमन कर्म है, भोग भी कर्म है, वेश्या होना भी एक कर्म है।

प्रश्न : और दमन भी कर्म है?

उत्तर : हां दमन भी कर्म है। दमन की भी सूखी रेखा रह जाती है। संन्यासी है एक, साध्वी है एक। हजारों सूखी रेखाएँ हैं। हजारों हमारे कर्म हैं, हजारों रेखाओं का जाल है। उस सब जाल की निष्पत्ति हम हैं। एक वेश्या, प्रतिदिन जब भी वह वेश्या के काम से गुजरती है, दुःखी होती है। सामने उसके एक संन्यासिनी रहती है और वेश्या दिन-रात सोचती है कि कैसा अद्‌भुत जीवन है उसका। कैसा अच्छा होता कि मैं संन्यासिनी हो जाती। तो दोहरी रेखाएँ पड़ रही हैं। वह वेश्या होने का कर्म कर रही है, यह उसकी एक रेखा है लेकिन उससे भी प्रबल एक रेखा है कि वह वेश्या होने से पीड़ित है और वह संन्यासिनी होना चाहती है। सामने जो संन्यासिनी रह रही है वह सुबह से सांझ तक ब्रह्मचर्य साध रही है। लेकिन जब भी वेश्या के घर में दिया जलता है,.सुगंधि निकलती है और संगीत बजने लगता है तब उसका मन डांवाडोल हो जाता है। और वह सोचती है कि पता नहीं वेश्या कैसा आनन्द लूट रही होगी। तो साध्वी भी दो रेखाएँ बना रही है। एक रेखा बना रही है वह साध्वी होने की और दूसरी रेखा बना रही है वह वेश्या होने के आकर्षण की। अब इन सबके तालमेल पर निर्भर करेगा अन्ततः कि साध्वी वेश्या हो जाए या वेश्या साध्वी हो जाए।

मेरा मतलब है कि जिन्दगी में हजार-हजार रेखाएँ काम कर रही हैं। सीधी रेखा नहीं है कोई, सीधा रास्ता नहीं है कोई। हजार-पगडंडियाँ कट रही हैं। और वे बहुकारणात्मक हैं। और तुम खुद कभी थोड़ी देर गिर जाते हो, फिर थोड़ी देर उठ जाते हो। तुम कोई सीधी रेखा में नहीं चले जा रहे हो। कभी तुम अच्छे आदमी होने की रेखा में दो कदम चलते हो, दस कदम बुरे आदमी के होने में हट आते हो। तुम्हारी जिन्दगी भी कोई ऐसी नहीं है कि तुम एक रास्ते पर सीधे चले जा रहे हो। तुम बार-बार चौराहे पर लौट आते हो। पीछे जाते हो, आगे जाते हो, बाएँ-दाएँ जाते हो। सब ओर तुम घूम रहे हो। इस सबका समूचा हिसाब होगा। तुम्हारे चित्त पर इस सब के संस्कार होंगे।

१३

प्रवचन

थोड़ी सी बातें पिछले प्रश्नों के सम्बन्ध में कर लें।

यह जरूर पूछा जा सकता है कि यदि पता हो कि एक दुर्घटना होने वाली है तो क्या रुक जाना चाहिए। मगर क्यों रुक जाना चाहिए? मैंने जो मेहर बाबा का उदाहरण दिया वह सिर्फ इस बात को समझाने के लिए कि क्या होने वाला है इसे भी जानने की पूर्ण सम्भावना है। लेकिन जो उन्होंने किया मैं उसके पक्ष में नहीं हूँ। उनका हवाई जहाज से उतर जाना या मकान में न ठहरना, इसके मैं पक्ष में नहीं हूँ। मेरी मान्यता यह है कि जीवन में अगर पूर्ण आनन्द, पूर्ण शान्ति उपलब्ध करनी है तो स्वयं को प्रवाह में ऐसे छोड़ देना चाहिए जैसे किसी ने नदी में अपने को छोड़ दिया हो, जो तैरता नहीं, सिर्फ बहता है, जो हो रहा हो, उसमें सहज बहता है। जीसस को जिस दिन सूली लगी उससे एक क्षण पहले उसने जोर से चिल्ला कर कहा, 'हे परमात्मा! यह क्या करवा रहा है?' शिकायत आ गई और परमात्मा गलत कर रहा है यह भी आ गया। और जीसस परमात्मा से ज्यादा जानते हैं यह भी आ गया। लेकिन तत्क्षण जीसस की समझ में आ गई बात कि कहने में भूल हो गई है। तो दूसरा वाक्य उन्होंने कहा 'मुझे क्षमा करो! मैं क्या जानता हूँ? तेरी मर्जी पूरी हो।' फिर इसके बाद आखिरी वचन जो उन्होंने बोला उसमें कहा कि इन सब लोगों को माफ कर देना क्योंकि ये लोग नहीं जानते कि ये क्या कर रहे हैं। वह उन लोगों की ओर इशारा कर रहा था जो उसे सूली दे रहे थे। और मेरी अपनी समझ यह है कि जिस क्षण जीसस ने कहा कि 'हे परमात्मा! यह क्या कर रहा है, यह क्या करवा रहा है, यह क्या दिखला रहा है, तब तक वह जीसस ही थे और जैसे ही उन्होंने समग्र मन से यह कहा कि 'तेरी मर्जी पूरी हो, क्षमा कर' उसी क्षण वह क्राइस्ट हो गए।

तो मैंने जो यह कहा कि मेहर बाबा लौट गया मकान से या हवाई जहाज से उतर गया, इसका बहुत गहरा अर्थ यह है कि व्यक्ति का अहंकार अभी सुरक्षित है। अभी विश्व के प्रवाह में वह अलग होने को, पृथक् होने को, अपने को बचाने को आतुर और उत्सुक है। मैंने यह नहीं कहा कि जो किया वह ठीक किया। मैंने कुल इतना कहा कि इस बात की सम्भावना है कि बातें पहले से जानी जा सकती हैं। लेकिन परम स्थिति यह है कि जीवन एक बहाव हो, तैरना भी न रह जाए। जिन्दगी जहाँ ले जाए और जो हो उसके साथ चुपचाप राजी हो जाना चाहिए। ऐसी स्थिति को ही मैं आस्तिकता कहता हूँ। मैं कहूंगा मेहर बाबा आस्तिक नहीं है। जरा मुश्किल होगी यह समझने में। आस्तिकता का मतलब यह है कि मृत्यु भी आ जाए तो वह वैसे ही स्वीकृत है जैसा जीवन स्वीकृत था। भेद क्या है मृत्यु और जीवन में ? मकान के बचने में और गिरने में फर्क क्या है ? जैसे पौधे अंकुरित होते हैं, फूल बनते हैं इतना ही शान्त और चुपचाप बहाव होना चाहिए जिसमें अहंकार कोई अवरोध ही नहीं डालता, कोई बाधा ही नहीं डालता। तभी मुक्ति पूरे अर्थों में सम्भव है तो इसलिए मैं चेष्टा करने को गलत ही कहता हूँ। दूसरी बात पूछी जा सकती है कि यदि संकल्प से सब हो सकता है तो फिर कुछ भी किया जा सकता है, धन भी, यश भी कुछ भी इकट्ठा किया जा सकता है, चाहे वह परोपकार के लिए हो, चाहे स्वार्थ के लिए हो—हाँ निश्चित ही किया जा सकता है। इसमें कोई कठिनाई नहीं है। लेकिन वही कर सकेगा जो अभी धन के लिए जीता है, यश के लिए जीता है।

अभी कल ही बात हो रही थी कि रामकृष्ण को कैंसर हो गया और रामकृष्ण के भक्त उनसे कहने लगे कि आप एक बार क्यों नहीं कह देते हैं माँ को कि कैंसर ठीक करो। रामकृष्ण ने कहा कि दो बातें हैं। एक तो जब मैं उनके सामने होता हूँ तो मैं कैंसर भूल जाता हूँ। यानी ये दो बातें एकसाथ नहीं होती हैं। जब मैं उस दशा में होता हूँ तब कैंसर होता ही नहीं। और जब कैंसर होता है तब मैं उस दशा में नहीं होता। इन दोनों का कभी ताल-मेल नहीं होता। और अगर हो भी जाए तो मैं परमात्मा से कहूँ कि कैंसर ठीक कर दे तो इसका मतलब यह हुआ कि मैं परमात्मा से ज्यादा जानता हूं। इसलिए जो हो रहा है, उसे सहज स्वीकार करने के अतिरिक्त और कोई मार्ग नहीं है।

विवेकानन्द बहुत गरीब थे। उनके पिता जब मरे तो बहुत कर्ज छोड़ गए। कई लोगों ने विवेकानन्द को कहा कि रामकृष्ण के पास जाते हो, उनसे पूछ लो कोई तरकीब, कोई रास्ता जिससे धन उपलब्ध हो जाए, कर्ज चुका दो।

ऐसी हालतें थी कि दिन-दिन विवेकानन्द भूखे घूमते रहते, खाने को नहीं था। या घर में इतना कम होता कि माँ अकेली खा सकती या विवेकानन्द खा सकते। तो वह कहते कि आज मैं मित्र के घर निमंत्रित हूँ तुम खाना खा लो, मैं खाना खाकर लौटूँगा। और वह भूखे हँसते हुए घर आ जाते कि बहुत ही बढ़िया खाना आज मित्र के घर मिला। इतना भी नहीं था घर में उपाय, इन्तजाम। एक मित्र ने कहा कि रामकृष्ण से पूछ लो। रामकृष्ण के पास विवेकानन्द गए और कहा कि क्या करूँ, गरीबी है। उन्होंने कहा कि इसमें कहने की क्या बात है? सुबह प्रार्थना के बाद 'माँ' को कह देना कि ठीक कर दे, सब इन्तजाम कर दे। विवेकानन्द गए, प्रार्थना करके वापस लौटे। राम कृष्ण ने पूछा : कहा? विवेकानन्द ने कहा : 'मुँह ही न खुला। क्योंकि यह बात ही अशोभन मालूम पड़ी कि प्रार्थना से भरे चित्त में पैसे को लाया जाए।' फिर दूसरे दिन, फिर तीसरे दिन ऐसा ही हुआ। भूखे हैं, रोटी नहीं मिल रही है, कर्जदार पीछे पड़े हैं। रामकृष्ण रोज-रोज पूछते हैं : 'क्यों? आज कहा? तो वह लौटकर कहते हैं : नहीं, परमहंस देव, यह नहीं हो सकेगा। क्योंकि जब मैं प्रार्थना में होता हूँ तो इतना धनी हो जाता हूँ कि निर्धनता क्या? कैसी? कौन निर्धन? और जब प्रार्थना के बाहर आता हूँ तो फिर वही निर्धन हो जाता हूँ जो था। तब मन करने लगता है कि कह दूँ। लेकिन जब प्रार्थना में होता हूँ तो मुझसे धनी कोई होता ही नहीं।

संकल्प जितना-जितना प्रगाढ़ होता चला जाएगा, उतना ही उसका उपयोग कम होता चला जाएगा। यह समझने जैसी बात है। असल में संकल्प के उपयोग की जो हमारी चित्तवृत्ति है वह संकल्प के न होने के कारण ही है। जैसे-जैसे संकल्प होता जाएगा घना वैसे-वैसे संकल्प का उपयोग बन्द होता चला जाएगा। इस जगत् में सिर्फ शक्तिहीन ही शक्ति के उपयोग की बात सोचते हैं। जिनके पास शक्ति है वे कभी उसका उपयोग करते ही नहीं। क्योंकि शक्ति की उपलब्धि में ही शक्ति के अनुपयोग की सम्भावना छिपी है। आकस्मिक, अनायास कुछ हो जाए तो हो जाए लेकिन सोचते, विचारते, शक्ति का कोई उपयोग नहीं होता। मगर हमें ऐसा लगता है क्योंकि हम धन को मूल्यवान् समझते हैं। एक छोटा बच्चा है। उसके लिए खिलौना मूल्यवान् है। उसका पिता उससे कहता है कि भगवान् से मैं जो भी प्रार्थना करूँ हो जाता है। तो बच्चा कहता है कि मेरे लिए एक खिलौना क्यों नहीं माँग लेते। बाप कहता है। पागल, खिलौना माँग कर मैं क्या करूँगे? क्योंकि बाप के लिए खिलौने बेकार हो गए हैं और यह

कल्पना के बाहर है कि परमात्मा से खिलौने माँगे जाएँ। लेकिन बच्चे की समझ से यह बाहर है कि खिलौने जैसी बढ़िया चीज भगवान् से क्यों नहीं माँग लेते। सबूत हो जाएगा कि कैसा भगवान् है? कैसी शक्ति है? खिलौने जब तक हमें सार्थक हैं तब तक हमें लगता है कि अगर भगवान् मिल जाए तो हम खिलौने ही माँग लें। अगर संकल्प जग जाए तो धन ही ले लें। मगर यह भी ध्यान रहे कि ऐसे चित्त में संकल्प जगेगा भी नहीं। और फिर भी ऐसा नहीं है कि तुम एकहरा व्यक्तित्व लेकर पैदा होते हो। अनन्त सम्भावनाएँ लेकर तुम पैदा होते हो।

एक बच्चा पैदा हुआ। उसके संन्यासी होने की सम्भावना है क्योंकि उसने संन्यासी होने की भी एक रेखा डाली हुई है। उसके बदमाश होने की भी सम्भावना है क्योंकि उसने वह भी रेखा बाँधी हुई है। वह अनन्त सम्भावनाएँ लेकर पैदा हुआ है। अनन्त सूखी रेखाएँ उसे आमंत्रित करेंगी। अब जो रेखा प्रबल सिद्ध हो जाएगी उसमें वह जाएगा। तो हमारी सारी कठिनाई यह है कि नियम जो हैं, उन्हें जब समझाता है कोई तो वे सीधी रेखा में होते हैं। और जिन्दगी जो है, वह बहुत सी रेखाओं की काट-पीट है। जब मैं समझाने बैठता हूँ और जब तुम एक नियम समझ लेते हो तब तत्काल तुमको दूसरा ख्याल आ जाता है कि उसका क्या होगा। और उपाय नहीं है कोई भी इकट्ठा समझाने का। अगर मैं क्रोध समझाऊँगा तो क्रोध समझाऊँगा, घृणा समझाऊँगा तो घृणा समझाऊँगा, प्रेम समझाऊँगा तो प्रेम समझाऊँगा, दया समझाऊँगा तो दया समझाऊँगा और तुम एक साथ सब हो—दया भी, प्रेम भी, घृणा भी, क्रोध भी। तुम्हारी सब सम्भावनाएँ हैं। कोई तुम्हें प्रेम से बात करेगा, तुम प्रेमपूर्ण हो जाओगे। कोई छुरी दिखाएगा, तुम क्रोधपूर्ण हो जाओगे। तुम सब हो। क्योंकि व्यक्ति है अनन्त कारणों से भरा हुआ। और जब हम समझाने बैठते हैं तो एक ही कारण को चुनना पड़ता है। भाषा रेखाबद्ध है। जिन्दगी अनन्त रेखाओं का जाल है। इसलिए भाषा में बहुत भूल होती है क्योंकि भाषा सीधी जाती है एक रेखा में। मैं करुणा समझाऊँगा तो करुणा समझाता चला जाऊँगा। अब करुणा के साथ ही साथ एकदम से क्रोध कैसे समझाऊँ, घृणा कैसे समझाऊँ? वह समझाना मुश्किल है। फिर उनको अलग-अलग समझाऊँगा। ये सब अलग-अलग रेखाएँ बन जाएँगी। व्यक्ति में ये सब रेखाएं अलग-अलग नहीं हैं, सब इकट्ठी जुड़ी खड़ी हैं।

प्रश्न : अगर कोई बलवान् रेखा है उसके कर्म करने की, अब उससे जो कमजोर रेखा है उसकी छाया उसमें साथ आएगी या नहीं?

उत्तर : हां बिल्कुल साथ आएगी।

प्रश्न : एक कमरा है, मच्छर हैं, चीटियां हैं, मक्खियां हैं तो एक मन आता है फ्लिट लगा दो। एक मन आता है फ्लिट न लगाओ। इसमें मन की स्थिति बड़ी डांवाडोल हो जाती है। तो उसमें क्या उचित है ?

उत्तर : उचित वही है जो आप कर सकोगे और करोगे। उचित मानकर आप चले तो मुश्किल में पड़ जाओगे। अगर मैंने कह दिया कि फ्लिट लगाना उचित नहीं है तो रात भर मुझको गाली दोगे क्योंकि मच्छर काटेंगे। या मैंने कह दिया कि फ्लिट लगाना उचित है तो आप समझेंगे कि हिंसा मैंने की। फल उसका मैं भोगूँगा। यह उचित, अनुचित का सवाल नहीं है। आप सोचो और जिओ। जो ठीक लगे, करो।

संकल्प जग सकता है मगर तभी जब चित्त की धारणाएँ चली जाएँ। संकल्प जग जाए तो फिर इनके प्रयोग का कोई मतलब नहीं क्योंकि जब धारणाएँ छूटें तभी संकल्प जगता है। यानी कठिनाई कुछ ऐसी है जैसा बैंक के सम्बन्ध में कहा जाता है। बैंक उस आदमी को पैसे उधार देता है जिसको पैसे की कोई जरूरत नहीं। और जिस आदमी को जरूरत है उसे बैंक पैसा उधार नहीं देता क्योंकि जिसे जरूरत है उससे लौटने की सम्भावना नहीं। बैंक पक्का पता लगा लेता है कि इस आदमी को पैसे की जरूरत नहीं है। फिर बैंक जितना चाहे उतना उधार देता है। और पक्का पता लग जाए कि इस आदमी को पैसे की जरूरत है तो बैंक हाथ खींच लेता है, पैसे नहीं देता है। यह बड़ा उल्टा है नियम। होना तो ऐसा चाहिए था कि जिसे पैसे की जरूरत हो उसे बैंक पैसा दे लेकिन बैंक उसको पैसा नहीं देता। बैंक सिर्फ उसी को पैसा देता है जिसको कोई जरूरत नहीं है।

तो मेरा कहना है कि परमात्मा को विराट् शक्ति उन्हीं को उपलब्ध होती है जिन्हें कोई जरूरत नहीं। और जिन्हें जरूरत है उन्हें उपलब्ध नहीं होती। जीसस का कहना है कि जो अपने को बचाएगा वह नष्ट हो जाएगा और जो अपने को खोने के लिए राजी है उसे कोई भी नष्ट नहीं कर सकता। जो मांगेगा उससे छीन लिया जाएगा और जो छोड़कर भागने लगेगा उसे दे दिया जाएगा। असल में मांगने वाला चित्त संकल्प ही नहीं कर सकता। उसका कारण है क्योंकि मांगने वाला चित्त दीन और दरिद्र होता है कि संकल्प जैसी सम्पदा उसके पास नहीं हो सकती। असल में न मांगने वाला संकल्प कर सकता है। लेकिन हम संकल्प भी इसीलिए करते हैं कि कुछ मांग लेंगे। तब

सारी कठिनाई हो जाती है, सारी असुविधा हो जाती है। तो इसकी बात भी तनिक कर लेनी चाहिए।

जैसा मैंने कहा कि महावीर को कोई फर्क नहीं पड़ता शादी हो या न हो। एक सीमा पर सब बराबर हैं और जहां सब बराबर हैं, वहीं मुक्ति है। और जहां तक भेद है वहां तक मुक्ति नहीं है। जहां तक शर्त है कि ऐसा होगा तो ठीक, और ऐसा न होगा तो गलत हो जाएगा वहां तक हम बंधे हुए हैं। यह चुनाव ही बांधता है। मैं कहता हूँ : बस ऐसा, तो शांत रहूँगा, आनन्दित रहूँगा। ऐसा न हुआ तो फिर अशांत हो जाऊँगा। शांति और अशांति, आनन्द और निरानन्द बंधे हुए हैं कहीं। मैं मुक्त नहीं हूँ। ऐसा नहीं है कि मैं हर हालत में आनन्दित रहूँ। जो आदमी हर हालत में आनन्दित है उसकी कोई शर्त नहीं है। उसकी तो यह भी शर्त नहीं कि बीमार रहे कि स्वस्थ, जिन्दा रहे कि मर जाए, शादी हो कि न हो, मकान हो कि न हो। उसे कोई शर्त नहीं। वह बेशर्त जीता है, जो भी हो जीता है।

मैं अपना ही उदाहरण देता हूँ। शादी के लिए मैंने कभी मना किया ही नहीं। क्योंकि मना भी वही करता है जिसके मन में कहीं 'हाँ' छिपा हो। 'हाँ' छिपा हो तभी 'न' सार्थक होती है। और कई बार तो 'न' का मतलब ही 'हाँ' होता है, यानी 'न' सिर्फ ऊपर की होती है, 'हाँ', पीछे होती है। मैं विश्वविद्यालय से लौटा तो घर के लोग चिन्तित थे। शादी की बड़ी चिन्ता थी। मुझसे पहली रात मेरी मां ने पूछा कि शादी के सम्बन्ध में क्या ख्याल है। मैंने उससे कहा कि दो-तीन बातें समझने जैसी हैं। पहली तो यह कि मैंने अब तक शादी नहीं की इसलिए मुझे कोई अनुभव नहीं। तो मेरे 'हाँ' और 'न' दोनों गैर अनुभवी के होंगे। दूसरा यह कि तुमने शादी की है। तुम्हारा जिन्दगी का अनुभव है। तुम पन्द्रह दिन सोच लो और फिर मुझे कहना कि तुमने शादी करने के बाद कोई ऐसा आनन्द पाया जिससे तुम्हारा बेटा वंचित न रह जाए तो मैं शादी कर लूंगा। और अगर तुम्हें लगा कि शादी करके तुमने कोई आनन्द नहीं पाया और तुम्हें शादी के बाद कई बार ऐसा ख्याल आया कि नहीं की होती तो अच्छा था तो मुझे सचेत कर देना कि कहीं मैं कर न बैठूं। मेरी ओर से न 'न' है, न 'हाँ' है। मेरी ओर से कोई शर्त ही नहीं है। मैंने बात सीधी सामने रख दी क्योंकि मेरा कोई अनुभव ही नहीं है। अभी मैंने शादी नहीं की है, कर सकता हूँ। ऐसी कोई कठिनाई नहीं है। लेकिन जो मुझे प्रेम करते हैं उनको इतना तो मेरे लिए सोचना ही चाहिए कि उन्होंने जो अनुभव

किया है वह अगर ऐसे किसी आनन्द का है जिससे मैं वंचित रहूँ तो उन्हें दुःख होगा तो मैं शादी कर लूँगा। फिर मुझसे पूछना ही मत। और अगर कहीं तुम्हारा ऐसा अनुभव हो कि तुमने दुःख पाया तो तुम्हारा पहला काम होगा मुझे सचेत कर देना ताकि कहीं मैं भूल-चूक से भी शादी न कर लूँ।

पन्द्रह दिन बाद जब माँ ने मुझे कहा कि मुश्किल में डाल दिया है। क्योंकि खोजने गई हूँ तो कैसा आनन्द ? अब मैं नहीं कह सकती हूँ कि तुम शादी करो। वैसे तुम्हारी मर्जी। मैंने कहा अब जब मेरी मर्जी होगी मैं तुमसे कहूँगा। यानी तब तक के लिए बात स्थगित हो गई और वह मर्जी नहीं हुई। न मैंने कभी नहीं कहा है, न कभी हाँ कहा है। यहाँ भी कोई समझाने-बुझाने वाला आ जाए तो मैं राजी हो सकता हूँ। इसमें कोई तकलीफ की बात नहीं है, इसमें कोई अड़चन नहीं है। मेरे पिता के एक मित्र थे। बड़े वकील थे बड़े तार्किक थे। दूसरे गाँव में रहते थे। पिता ने उनको कहा कि आप आकर समझाएँ। वे आए, रात आकर रुके। आते ही उन्होंने मुझसे कहा कि चाहे कितने भी दिन मुझे रुकना पड़े मैं यह सिद्ध करके जाने वाला हूँ कि शादी बहुत उपयोगी है। मैंने कहा कि इसमें देर की जरूरत ही नहीं आज ही आप मुझे समझा दें, आज ही मैं राजी हो जाऊँ। लेकिन ध्यान रहे यह एक तरफ नहीं रहेगा मामला।' उन्होंने कहा : क्या मतलब ? मैंने कहा आप समझाएँगे तो मुझे भी कुछ बोलने का हक होगा। और अगर सिद्ध कर दिया कि शादी करना आनन्द-पूर्ण है तो मैं कल सुबह हाँ भर दूँगा। और अगर सिद्ध हो गया कि आनन्द-पूर्ण नहीं है तो आपका क्या इरादा है ? क्या आप शादी छोड़ने को राजी हैं ? क्योंकि अकेला एकतरफा मामला ठीक नहीं है। यह अन्याय हो जाएगा। यानी मैं दाव लगाऊँ जिन्दगी और आप बिना दाव के लड़ें तो फिर मजा नहीं आएगा। उन्होंने कहा कि तुम ठहर जाओ। मैं सुबह तुमसे बात करूँगा। मेरे उठने के पहले वह जा ही चुके थे। पिता से कह गए थे कि मैं इस झंझट में नहीं पड़ता। इस झंझट से मुझे कोई जरूरत नहीं।

संदिग्ध हमारा मन है भीतर तो हम किसी को क्या समझाएँगे ? फिर बहुत वर्ष बाद जब वे मुझे मिले तो उन्होंने कहा : 'तुमने मुझे बहुत चिन्ता में डाल दिया। मैं रात-भर सो नहीं सका। फिर मैंने कहा कि यह ज्यादती होगी क्योंकि मैं खुद ही छोड़ने की हालत में बैठा हूँ। मैंने कहा इस बात में मुझे पड़ना ही नहीं है। और मैं हार जाता क्योंकि मैं भीतर से ही कमजोर था। यानी मैं खुद ही इस पक्ष का हूँ कि बहुत गल्ती हो गई लेकिन अब कोई उपाय

नहीं।' लेकिन मैंने मना नहीं किया। अभी तक कोई समझाने वाला नहीं आया। क्या करें, कोई उपाय नहीं है। इसलिए उसकी चिन्ता नहीं लेनी चाहिए।

कर्म के सम्बन्ध में आप पूछते हैं कि यह जो विकास हो रहा है जिसमें ये जो पशु-पक्षी हैं मनुष्य योनि तक आ गए हैं क्या अपने आप चल रहा है या उनकी सचेत चेष्टा भी इसमें सहयोगी है। मेरा कहना है कि विकास दो तलों पर चल रहा है। डार्विन की खोज बड़ी गहरी है लेकिन एकदक अधूरी है। डार्विन ने शरीर के विकास पर सारा सिद्धान्त निर्धारित किया है। ऐसा मालूम पड़ता है कि कभी न कभी कुछ लाख वर्ष पहले, बन्दर के ही शरीर से मनुष्य के शरीर की गति हुई होगी। बन्दर के शरीर की व्यवस्था, उसके मस्तिष्क, उसकी हड्डी, मांस-पेशियाँ सब खबर देती हैं कि उससे ही मनुष्य का शरीर आया होगा और खोज करते-करते कहा जा सकता है कि किसी न किसी रूप में मछली से जीवन-यात्रा शुरू हुई होगी और मछली भी किसी न किसी प्रकार के पौधे से ही आई होगी। इस सब के लिए लम्बा वैज्ञानिक अन्वेषण हुआ है। और यह बात तय हो गई है कि इस तरह का क्रमिक विकास शरीर में हो रहा है। लेकिन चूँकि विज्ञान आत्मा की फिक्र ही नहीं करता, इसलिए बात अधूरी है और आधे सत्य असत्य से भी ज्यादा खतरनाक होते हैं क्योंकि आधे सत्यों में पूर्ण सत्य होने का भ्रम पैदा होता है।

यह विकास का एक आधा हिस्सा है। दूसरा हिस्सा वह है जिसके लिए महावीर जैसे लोगों की खोज कीमती है। वह कहते हैं कि चेतना भी विकसित हो रही है। अगर शरीर ही अकेला है बस तब सब विकास परिस्थितिगत है और प्रकृति के नियम के अनुकूल है। क्योंकि अगर शरीर अकेला हो तो इच्छा का सवाल ही नहीं उठता। लेकिन अगर चेतना भी है तो विकास सहज हालत में नहीं हो सकता क्योंकि चेतना का मतलब ही है कि जो यान्त्रिक नहीं है। एक पंखा चल रहा है। पंखे का चलना बिल्कुल यांत्रिक है। पंखे की कोई इच्छा काम नहीं कर रही। लेकिन अगर पंखे की आत्मा हो तो पंखा कभी भी कह सकता है कि आज बहुत सर्दी है, नहीं चलते। या आज बहुत थक गए हैं, आज चलने का मन नहीं है। कभी तेजी से भी चल सकता है अगर प्रेमी पास आ जाए। दुश्मन आ जाए तो बन्द भी हो सकता है। मगर पंखे के पास कोई चेतना नहीं है। किन्तु जहाँ चेतना है वहाँ विकास स्वचालित नहीं हो सकता। उसमें चेतना सक्रिय रूप से भाग लेगी। लेकिन जो हमें विकास दिख रहा है वह मालूम पड़ रहा है और सचेष्ट विकास की यात्रा बहुत कम नजर आती है तो

हम कहते हैं कि विकास शायद निन्यावनवें प्रतिशत स्वचालित है। एक आध प्रतिशत विकास स्वेच्छा से होता है। लेकिन जैसे-जैसे हम ऊपर की तरफ आते हैं विकास सचेष्ट मालूम होता है।

मनुष्य के साथ यह मामला है कि उसके साथ जो विकास होगा वह निन्यानवें प्रतिशत स्वेच्छा से होगा, नहीं तो विकास होगा ही नहीं। और इस लिए मनुष्य कोई पचास हजार वर्षों से ठहर गया है। अब उसमें कोई विकास लक्षित नहीं होता। दस लाख वर्ष के भी जो शरीर मिले हैं उनमें भी कोई विकास हुआ नहीं दिखता। उसमें और हमारे अस्थि-पंजर में कोई बुनियादी फर्क नहीं पड़ा है, न हमारे मस्तिष्क में कोई बुनियादी फर्क पड़ा है। ऐसा प्रतीत होता है कि मनुष्य में निन्यानवें प्रतिशत स्वेच्छा पर निर्भर करेगा। कोई बुद्ध, कोई महावीर—यह स्वेच्छा का विकास है और अगर हम स्वचालित विकास से प्रतीक्षा करते रहे तो एक ही प्रतिशत विकास की सम्भावना है जो बहुत ही धीरे-धीरे घिसटती रहेगी। जितने पीछे हम जाते हैं, उतनी स्वेच्छा कम है, यांत्रिकता ज्यादा है। मनुष्य तक आते हैं तो स्वेच्छा ज्यादा हैं, यांत्रिकता कम है। लेकिन निम्नतम योनि में भी एक अंश स्वेच्छा का है जो कि उसे चेतन बनाता है। नहीं तो चेतन होने का कोई अर्थ नहीं। यानी चेतन होने का अर्थ यही है कि विकास में हम भागीदार हैं और पतन में हम जिम्मेदार हैं। चेतना का मतलब यही है कि हमारा दायित्व है, हमारी जिम्मेदारी है। जो भी हो रहा है उसमें, हम जो हो सकते हैं उसमें अन्ततः हम जिम्मेदार हैं।

सारा विकास—चाहे पशु, पक्षी, मछली, कीड़े-मकोड़े, पौधा—कोई भी विकसित हो रहा हो उसकी इच्छा सक्रिय होकर काम कर रही है। पहचानना मुश्किल है। हम कैसे पहचानें कि पशु पक्षी मानव योनियों में प्रवेश कर रहे हैं। कई रास्ते हो सकते हैं लेकिन सरलतम रास्ता एक ही है : और वह यह कि जो मनुष्य चेतनाएँ आज हैं अगर हम उन्हें उनके पिछले जन्मों में उतार सकें तो हम पा जाएँगे पता इस बात का कि वे पिछले जन्मों में पशुओं और पौधों से भी होकर आई हैं। जातीय-स्मरण के गहरे प्रयोग महावीर ने किए हैं। प्रत्येक व्यक्ति जो उनके निकट आता वह उसे जातीय-स्मरण के प्रयोग में ले जाते ताकि वह जान सके कि उसकी पिछली यात्रा क्या है। यहाँ तक भी वह जान सके कि वह पशु कब था, कैसा पशु था, और पशु होने में उसने कौन सा कर्म किया कि वह मनुष्य हो सका। और अगर यह उसे पता चल जाए कि

पशु होने में उसने कुछ किया जिससे वह मनुष्य बना तो उसे ख्याल में हो सकता है कि मनुष्य होने में कुछ करे तो वह और ऊपर जा सकता है।

महावीर एक व्यक्ति को समझा रहे थे। रात है। महावीर का संघ ठहरा है। हजारों साधु, संन्यासी ठहरे हुए हैं। एक बड़ी धर्मशाला में निवास है। एक राजकुमार भी दीक्षित है। पुराने साधुओं को ज्यादा ठीक जगह मिल गयी। मगर राजकुमार वह जो बीच का रास्ता है धर्मशाला का, उस पर सोया हुआ है। रात भर उसे बड़ी तकलीफ हुई है, बड़ा कष्ट हुआ है। यह ऐसा अपमान ! वह राजकुमार था, कभी जीवन पर चला नहीं था, आज गलियारे में सोया है। वृद्ध साधुओं को कमरे मिल गए हैं; वह गलियारे में पड़ा हुआ है। रात भर कोई गलियारे से निकलता है, तो उसकी नींद टूट जाती है। वह बार-बार सोचने लगा कि बेहतर है मैं लौट जाऊँ। जो था वही ठीक था। यह क्या पागलपन में मैं पड़ गया हूँ। ऐसा गलियारों में पड़े-पड़े तो मौत हो जाएगी। यह मैंने क्या भूल कर दी। सुबह महावीर ने उसे बुलाया और कहा : तुझे पता है कि पिछले जन्म में तू कौन था ? उसने जवाब दिया कि मुझे कुछ पता नहीं। तो महावीर उससे उसके पिछले जन्म की कथा कहते हैं : पिछले जन्म में तू हाथी था। जंगल में आग लगी। सारे पशु, सारे पक्षी भागे। तू भी भागा। जब तू पैर उठा रहा था और सोच रहा था कि किधर को जाऊँ तभी तूने देखा कि एक छोटा-सा खरगोश तेरे पैर के नीचे आकर बैठ गया है। उसने समझा कि पैर छाया है, बचाव हो जाएगा और तू इतना हिम्मतवर था कि तूने नीचे देखा कि खरगोश है तो तूने फिर पैर नीचे नहीं रखा। तू फिर पैर ऊँचा ही किए खड़ा रहा। आग लग गई, तू मर गया लेकिन तूने खरगोश को बचाने की मरते दम तक चेष्टा की। उस कृत्य की वजह से तू आदमी हुआ है। उस कृत्य ने तुझे मनुष्य होने का अधिकार दिया है। और आज तू इतना कमजोर है कि रात भर गलियारे में सो नहीं सका और भागने की सोचने लगा। तो उसे याद आती है अपने पिछले जन्म की और पता चलता है कि ऐसा था। तब सब बदल जाता है। भागने की, पलायन की, छोड़ने की, भयभीत होने की सारी बात खत्म हो जाती है। अब वह दृढ़-संकल्प पर खड़ा हो जाता है। अब एक नई भूमि उसे मिल जाती है।

एक रास्ता यह है कि हम व्यक्तियों को उनके पिछले जन्मों में ले जाएँ। उससे पता चलेगा कि वे किस योनि से कैसे विकसित हुए, कौन-सी घटना थी जिसने उन्हें मूलतः हकदार बनाया कि वे ऊपर की जिन्दगी में चले जाएँ।

यही सरलतम रास्ता है दूसरा रास्ता कठिन है बहुत। और वह यह है कि हम दस बीस पशुओं के निकट रहें और उनसे आन्तरिक सम्बन्ध स्थापित करें। हमें पता चलेगा कि उनमें भी अच्छे, बुरे हैं। वे जो दस कुत्ते हमें दिखाई पड़ रहे हैं, वे सब एक जैसे कुत्ते नहीं हैं। उनका अपना-अपना व्यक्तित्व है।

स्विटजरलैंड के एक स्टेशन पर एक कुत्ते का स्मारक बना हुआ है। वह दुनिया में अकेला स्मारक है कुत्ते के लिए। सन् १९३० या १९३२ की घटना है। एक आदमी के पास एक कुत्ता है। हर रोज जब वह आदमी दफ्तर जाता है सुबह दस बजे की ट्रेन पकड़कर तो वह कुत्ता उसे स्टेशन छोड़ने जाता है। जब ट्रेन छूटती है तब वह कुत्ता खड़ा हुआ उसे बिदा देता रहता है। ठीक पाँच बजे जब वह लौटता है तो कुत्ता स्टेशन पर खड़ा रहता है जहाँ उसका मालिक उतरता है। ऐसा हर रोज चलता है। ऐसा कभी नहीं हुआ कि वह सुबह छोड़ने न आया हो। ऐसा भी कभी नहीं हुआ कि वह ठीक पाँच बजे शाम अपने मालिक को लेने न आया हो। लेकिन एक दिन ऐसा हुआ कि मालिक गया और नहीं लौटा। एक दुर्घटना हुई शहर में और मालिक मर गया। पाँच बजे कुत्ता लेने आया। गाड़ी खड़ी हो गई लेकिन मालिक नहीं उतरा। तो फिर उसने एक-एक डिब्बे में जाकर झांका, चिल्लाया, पुकारा। लेकिन मालिक नहीं है। फिर स्टेशन के लोगों ने उसे भगाने की कोशिश की लेकिन किसी भी हालत में वह भागा नहीं और जो भी ट्रेन आती उस पर मालिक को खोजता ऐसे पन्द्रह दिन उसने पानी नहीं पिया, खाना नहीं खाया और वह भी उसी जगह खड़ा हुआ मर गया जहाँ उसका मालिक उसे रोज पाँच बजे की ट्रेन से आकर मिलता था। सब तरह के उपाय किए गए कि वह एक टुकड़ा रोटी का खा ले लेकिन उसने इन्कार कर दिया। स्विटजरलैंड के अखबारों में सब तरफ चर्चा हो गई। उस कुत्ते के बड़े-बड़े फोटो छपे। लेकिन उस कुत्ते ने हटने से इन्कार कर दिया। उसको वहाँ से भगाओ, वह फिर पाँच-दस मिनट बाद वहाँ हाजिर। उसने स्टेशन का पीछा नहीं छोड़ा और जब तक जिन्दा रहा, हर गाड़ी पर चिल्लाता रहा, रोता रहा। उसकी आँख से आंसू टपकते। वह एक-एक डिब्बे में झांकता। कमजोर हो गया। चल नहीं सकता। वह अपनी जगह पर बैठा है और रो रहा है। आखिर वहीं वह मर गया है, जहाँ मालिक को उसे मिलना था। अब ऐसा कुत्ता कोई साधारण कुत्ता नहीं। इसके व्यक्तित्व में कुछ ऐसा है जो कि मनुष्य तक में कम होता है। यह गति कर जाएगा। इसकी गति निश्चित है। यह उस जगह से ऊपर उठने वाला है। इसकी

चेतना ने कदम उठा लिया है जो इसे आगे ले जाएगी। उसका स्मारक बना है। वह स्मारक के लायक कुत्ता था। कई आदमी भी स्मारक के लायक नहीं होते जिनके स्मारक बने हुए हैं।

दूसरा रास्ता यह है कि हम पशु-पक्षियों के निकट जाकर उनको जानें, पहचानें। इसके भी बहुत से प्रयोग किए गए हैं और इनके आधार पर कहा जा सकता है कि विकास स्वेच्छा से हो रहा है। इसलिए सारे प्राणी विकसित नहीं हो पाते। जो श्रम करते हैं विकसित हो जाते हैं। जो श्रम नहीं करते वे पुनरुक्ति करते रहते हैं उसी योनि में। अनन्त पुनरुक्तियाँ भी हो सकती हैं। लेकिन कभी न कभी वह क्षण आ जाता है कि पुनरुक्ति ऊबा देती है और ऊपर उठने की आकांक्षा पैदा कर देती है। तो विकास किया हुआ है, चेतना श्रम कर रही है विकास में। वह जितनी विकसित होती चली जाती है, उतने विकसित शरीर भी निर्णय कर लेती है। इसलिए शरीर में जो विकास हो रहा है वह भी, जैसा डार्विन समझता है कि स्वचालित है वैसा नहीं है। जितनी चेतना तीव्र विकास कर लेती है उतना शरीर के तल पर भी विकास होना अनिवार्य हो जाता है। लेकिन वह होता है पीछे, पहले नहीं होता। यानी बन्दर का शरीर अगर कभी आदमी का शरीर बनता है तो तभी जब किसी बन्दर की आत्मा इसके पूर्व आदमी की आत्मा का कदम उठा चुकी होती है। उस आत्मा की जरूरत के लिए ही पीछे से शरीर भी विकसित होता है। आत्मा का विकास पहले है, शरीर का विकास पीछे है। शरीर सिर्फ अवसर बनता है। जितनी आत्मा विकसित होती चली जाती है उतना विकसित शरीर को भी बनना पड़ता है।

मनुष्य आगे भी गति कर सकता है और ऐसी चेतना विकसित हो सकती है जो मनुष्य से श्रेष्ठतर शरीरों को जन्म दे सके। इसमें कोई कठिनाई नहीं है। लेकिन मनुष्य तक आ जाना कोई साधारण घटना नहीं है। लेकिन जो मनुष्य है उसे यह ख्याल नहीं आता। हम जिन्दगी ऐसे गंवाते हैं जैसे कि मुफ्त में मिल गई हो। मनुष्य हो जाना साधारण घटना है। लंबी प्रक्रियाओं, लंबी चेष्टाओं, लंबे श्रम और लंबी यात्रा से मनुष्य की चेतना-स्थिति उपलब्ध होती है। लेकिन अगर हमने ऐसा मान लिया कि यह मुफ्त में मिल गई है, और अक्सर ऐसा होता है कि अमीर बाप का बेटा जब घर में पैदा होता है तो वह घर की सम्पत्ति को मुफ्त में हुआ ही मान लेता है। वह एक ही काम करता है कि बाप की अमीरी कैसे विसर्जित हो। बाप कमाता है, बेटा गंवाता है। क्योंकि

बेटे को अमीरी जन्म से उपलब्ध हुई है। उसे लगता है कि यह तो है ही। उसे कभी ख्याल भी नहीं होता कि कितने श्रम से वह अमीरी खड़ी की गई है।

फोर्ड एक दफा इंग्लैंड आया। स्टेशन से उतर कर उसने इंक्वायरी आफिस में जाकर पूछा कि लन्दन में सबसे सस्ता होटल कौन-सा है। संयोग से इंक्वायरी वाला आदमी फोर्ड को पहचानता था। उसने कहा: "आप सस्ता होटल पूछते हैं। आप फोर्ड ही हैं!" उसने कहा, "हां, मैं फोर्ड ही हूं। सस्ता होटल कौन सा है सबसे ज्यादा?" उसने कहा: "मुझे हैरानी में डालते हैं आप। आपका बेटा आता है तो वह पूछता है कि सबसे मंहगा होटल कौन सा है?" फोर्ड ने कहा: "वह फोर्ड का बेटा है। मैं फोर्ड हूँ। मैं गरीब आदमी था, श्रम करके पैसा कमा पाया हूँ। यह अमीर आदमी पैदा हुआ है, श्रम करके गरीब होने की कोशिश करेगा। मैं गरीब आदमी था। मैं सचेत हूँ पूरी तरह कि कैसे कमा पाया हूँ। वह अमीर का बेटा है। हैनरी फोर्ड का बेटा है। उसको ठहरना ही चाहिए मंहगी जगह। लेकिन मैं ठहरा हैनरी फोर्ड।" यह हैनरी फोर्ड एक पुराना कोट पहने रहता था वर्षों से। वह कभी बदलता ही नहीं था उसको। कोट फट गया तो सिलवा लेता, ठीक करवा लेता। किसी मित्र ने कहा कि आपको यह कोट शोभा नहीं देता। तो हैनरी फोर्ड ने कहा कि लोग मुझे ठीक-ठीक पहचानते हैं कि मैं हैनरी फोर्ड हूँ। मैं चाहे कोई भी कोट पहन लूं इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। यह तो मेरे बच्चे के लिए है कि वे शानदार कोट पहनें ताकि लोग पहचान सकें कि हैनरी फोर्ड के लड़के हैं।

तो हम एक जन्म में जो कमाते हैं दूसरे जन्म में वह हमारी सहज उपलब्धि होती है। यानी दूसरे जन्म में वह हमें सम्पत्ति की तरह मिलती है और पिछला जन्म हमें भूल जाता है जैसे कि बेटे को बाप का श्रम भूल जाता है। पिछले जन्म में जो हमने कमाया है उसे हम इस जन्म में भूल जाते हैं और हम उसे अवसर गंवाना शुरू करते हैं। धन के बाबत ही नहीं, पुण्य के बाबत, ज्ञान के बाबत, चेतना के बाबत भी यही होता है। अवसर का उपयोग और बढ़े इसके लिए हम आगे और कुछ भी नहीं कर पाते। जो हो गया है वहीं हम भटक जाते हैं। इसलिए लोग एक ही योनि में बार-बार पुनरुक्त हो सकते हैं। लाख बार भी पुनरुक्त हो सकते हैं। नीचे कोई नहीं जाता। नीचे जाने का कोई उपाय नहीं है। पीछे कोई लौट नहीं सकता। लेकिन

जहां हैं वहीं पुनरुक्त हो सकता है या आगे जा सकता है। दो ही उपाय हैं : या तो आप आगे जाएँ या जहां हैं वहीं भटकते रह जाएँ। और जहां हैं अगर आप वहीं भटकते रहते हैं तो विकास अवरुद्ध हो जाएगा और अगर आप आगे जाते हैं तो विकास फलित होगा।

विकास चेष्टा पर निर्भर है, संकल्प पर निर्भर है, साधना पर निर्भर है। इसीलिए इतने बड़े प्राणी जगत् में मनुष्यों की संख्या बहुत कम है। बढ़ती भी है तो बहुत धीरे-धीरे बढ़ती है। आज हमें लगता है कि बहुत जोर से बढ़ रही है तो वह भी हम सिर्फ मनुष्य को सोचते हैं, इसलिए ऐसा लगता है। अगर हम प्राणीजगत् को देखें तो मनुष्य से ज्यादा छोटी संख्या का कोई प्राणी नहीं है जगत् में। एक घर में इतने मच्छर हो सकते हैं जितनी पूरी मनुष्य जाति। और करोड़ों योनियां हैं। एक-एक योनि में कितने असंख्य व्यक्ति हैं। इतने थोड़े हैं लोग। जैसे कोई एक मन्दिर बनाए और बड़ी भारी नींव भरे, फिर उठते-उठते, आखिर मीनार पर एक छोटी सी कलगी उठी रह जाए। ऐसा बड़ा भवन है जीवन का, उससे मनुष्य की कलगी बड़ी छोटी-सी ऊपर उठी रह गई है। अगर हम सारे प्राणीजगत् को देखें तो हमारी कोई संख्या ही नहीं है। हम एक बड़े समुद्र में एक छोटी बूंद से ज्यादा नहीं हैं। लेकिन अगर हम मनुष्य को देखें तो हमें बहुत ज्यादा मालूम पड़ता है कि साढ़े तीन अरब आदमी हैं और हमें चिन्ता हो गई है कि हम कैसे बचाएँगे इतने आदमियों को, कैसे खाना जुटाएँगे, कैसे मकान बनाएँगे, कैसे क्या करेंगे ? लेकिन यह कोई बड़ी संख्या नहीं है। और ध्यान रहे, मेरी अपनी यह समझ है कि जब जरूरत पैदा होती हैं तब नए उपाय तत्काल विकसित हो जाते हैं जैसे आने वाले पचास वर्षों में होने वाला है। आदमी के जन्म को; जीवन को रोकने की सभी चेष्टाओं से कुल इतना ही हो सकता है कि जितनी तीव्रता से गति हो रही हैं, वह शायद न हो। लेकिन इन आने वाले पचास वर्षों में भोजन के नए रूप विकसित हो जाएँगे। जैसे कि हम समुद्र के पानी से भोजन निकाल सकेंगे; हवा और सूरज की किरणों से सीधा भोजन लिया जा सकेगा। आने वाले पचास वर्षों में भोजन के नए रूप विकसित होंगे जो कभी नहीं थे पृथ्वी पर।

दूसरी बात जो मैं समझता हूं बहुत कीमत की है। जैसे बड़ी चेष्टा चली चांद पर जाने की, मंगल पर जाने की। यह चेष्टा पृथ्वी पर संख्या के अधिक बढ़ जाने का आन्तरिक परिणाम है। ऊपर से दिखाई पड़ता है कि रूस और अमेरिका में दौड़ लगी हुई है चांद पर जाने की। लेकिन बहुत

गहरे में आने वाले सौ वर्षों में मनुष्य की संख्या का तीव्रता से बढ़ने का जो भय है उससे नई जमीन की खोज शुरू हो गई है, जहाँ हम आदमी को पहुँचा सकें। एक जमाना था जबकि आदमी एक जगह से दूसरी जगह भटकता रहता था क्योंकि एक जगह का खाना खत्म हो जाता था। फल टूट गए तो दूसरी जगह चला जाता था। फिर आदमी इतने हो गए कि एक जगह से फल नहीं टूटे, सभी जगह के फल एकसाथ टूटने लगे तो दूसरी जगह कहाँ जाओ। फिर हमें जमीन पर पैदावार करनी पड़ी। फिर खेती भी पर्याप्त नहीं साबित हुई। तब हमें औद्योगिक व्यवस्था करनी पड़ी। अब वह भी पर्याप्त साबित नहीं होगी तो हमें नई व्यवस्थाएँ करनी पड़ेंगी। पृथ्वी इतनी भारग्रस्त हो जाए, इतनी बड़ी संख्या में नीचे की योनियों से मनुष्य में प्राणी आ जायें तो कहीं दूसरी जगह हमको खोजनी पड़ेगी। वह जगह हम किन्हीं दूसरे कारणों से खोजते रहेंगे, यह दूसरी बात है; क्योंकि हमें बहुत कुछ साफ नहीं है कि क्या होता है भीतर। लेकिन भीतर अचेतन शक्ति धक्के देती रहती है कि पृथ्वी के बाहर जगह खोजो क्योंकि आज नहीं कल, पृथ्वी के बाहर बसने की जरूरत पड़ेगी। जैसा मैंने कहा कि जब नई चेतना विकसित होती है तब नए शरीर लेने पड़ते हैं। जब एक चेतन समाज की संख्या बढ़ती है तब नए ग्रह उपग्रह बसाने पड़ते हैं।

पहला जीवन जो पृथ्वी पर आया है, वह भी वैज्ञानिक नहीं बता पाते कि कैसे आया। वैज्ञानिक विकास बता पाते हैं। लेकिन विकास तो उसी चीज का होता है, जो हो। विकास तो बाद की बात है। जीवन आया कहाँ से? कैसे आया? विकास तो ठीक है कि मछली आदमी बन गई। लेकिन मछली? वह प्राण कहाँ से आया? कोई कहे कि पौधा मछली बन गया। पौधे में वह प्राण कहाँ से आया? यानी प्राण को कहीं न कहीं से आने की जरूरत पड़ी है। इसलिए मैं आपसे कहना चाहता हूँ दूसरी बात—वह यह कि जब एक माँ गर्भ के योग्य होती है तो एक आत्मा उसमें प्रवेश करती है। जब एक पृथ्वी या एक उपग्रह जीवन के योग्य होता है तो दूसरे ग्रहों-उपग्रहों से वहाँ जीवन प्रवेश करता है। और कोई उपाय नहीं। यानी जो पहला जीवाणु है, वह सदा प्रसार करता है। इसके सिवाय कोई उपाय नहीं है कि वह किसी दूसरे ग्रह से आएगा। हो सकता है उस ग्रह पर जीवन समाप्त होने के करीब आ गया हो।

इस सम्बन्ध में यह भी समझ लेना जरूरी है कि बुद्ध या महावीर, या मैं या कोई भी जब इतना श्रम करते हैं कि लोग विकसित हों तो कहीं ऐसा कभी

हुआ है ? ऐसा बहुत बार हुआ है मगर हमारी दृष्टि बहुत छोटी है और हम बहुत कम जानते हैं। अगर आदमी का इतिहास हम जानते हैं व्यवस्थित रूप से तो मुश्किल से जीसस के बाद का। इतिहास जीसस से शुरू होता है। तभी तो हम लिखते हैं ईसा के बाद और ईसा के पहले। ईसा के बाद इतिहास व्यवस्थित है और उससे पहले सब धूमिल है। फिर हम बहुत खींचें तो पाँच हजार साल से पहले का हमें कुछ अन्दाज नहीं बैठता। पृथ्वी पर आदमी दस लाख वर्षों से है। पृथ्वी दो अरब वर्षों से है। लेकिन पृथ्वी बहुत नया जन्म है। सूरज पृथ्वी से कई हजार अरब वर्ष पहले से है। लेकिन हमारा सूरज सारे जगत् में सबसे नया सूरज है। और जो चारों तरफ हमें तारे दिखाई पड़ते हैं, वह महासूर्य है जिनमें हमारा सूरज बहुत छोटा है। पृथ्वी से सूरज साठ हजार गुना बड़ा है। लेकिन यह सबसे छोटा तारा है। इससे करोड़, दो करोड़ गुने बड़े तारे हैं। वे हमें छोटे-छोटे दिखाई पड़ते हैं क्योंकि फासला अन्तहीन है। सूरज से हम तक किरण आने में दस मिनट लगते हैं और किरण की गति होती है एक सैकेंड में १ लाख ८६ हजार मील। दस मिनट सूरज से आने में लगते हैं। जो सूरज के बाद निकटतम तारा है उससे चार वर्ष लगते हैं हम तक किरण के आने में। गति वही है एक लाख छयासी हजार प्रति सैकेंड। रोशनी चलेगी आज, आएगी चार वर्ष बाद। इतना हमारा फासला है। लेकिन वह निकटतम तारा है। उसके बाद जो तारा है उससे आठ वर्ष लग जाते हैं हम तक किरण के आने में। और उसके बाद फासले बढ़ते चले जाते हैं। ऐसे तारे भी हैं कि जब पृथ्वी बनी थी यानी दो अरब वर्ष पहले तक की उनकी रोशनी चली है, अब आ पाई है। और ऐसे तारे भी हैं कि उनकी रोशनी अभी तक नहीं पहुँची। और ऐसे तारे होंगे जिनकी रोशनी कभी नहीं पहुँचेगी। उनकी चली हुई रोशनी जब तक आएगी तब तक पृथ्वी बन कर जा चुकी होगी। यह जो अन्तहीन विस्तार है इसके अनन्त विस्तार में अनन्त पृथ्वियाँ हैं। अनेक पृथ्वियों पर जीवन हैं। उन जीवनों ने अनेक बार अन्तिम स्थिति भी पाई है।

असल में बुद्ध, महावीर, क्राइस्ट जैसे लोग न केवल मनुष्य जाति के अतीत में प्रवेश करते हैं बल्कि जीवन की समस्त सम्भावनाओं में, समस्त लोकों में, प्रवेश करते हैं और वहीं से आश्वासन पाते हैं इस बात का कि पूर्णता बहुत बार हो चुकी है। वह आश्वासन आकस्मिक नहीं है। लेकिन हमारी दृष्टि बहुत छोटी है। एक कीड़ा है जो वर्षा में पैदा होता है, फिर वर्षा में मर जाता है। उससे कोई कहे कि वर्षा फिर आएगी, वह कहेगा कभी सुना नहीं, कभी आई नहीं। न

मेरे माँ-बाप ने कहा, न मेरे पुरखों ने लिखा। वर्षा एक ही बार आती है क्योंकि किसी भी कीड़ा ने दो बार वर्षा नहीं देखी क्योंकि वह कीड़ा तो वर्षा में ही पैदा होता है, वर्षा ही में मर जाता है। अनुभूति का कोई सवाल नहीं है और स्मृति लिखने का और स्मृति बनाने का कोई सवाल नहीं है।

हम पृथ्वी पर ही जीते हैं और पृथ्वी पर ही मर जाते हैं। जानने की सीमा इतनी छोटी है कि हमें पता नहीं है कि अंतहीन विस्तार में, इस पूरे ब्रह्माण्ड में कितने-कितने लोकों में जीवन सम्भव है। उस जीवन से भी सम्बन्ध स्थापित करने की निरन्तर चेष्टाएँ की गई हैं। वैज्ञानिक चेष्टाएँ चल रही हैं। धार्मिक चेष्टा बहुत पुरानी है और सम्बन्ध किए गए हैं। उन्हीं सम्बन्धों ने बड़े आश्वासन दिए हैं और उन आश्वासनों ने भरोसा दिया है कि अगर कहीं जीवन और गहराई में विकसित हुआ है, और आनन्द में विकसित हुआ है कि मनुष्य दिव्य हो गया है कहीं, तो यहाँ भी हो सकता है। कोई बाधा नहीं है। फिर, दूसरा और बड़ा आश्वासन यह है कि जो व्यक्ति इस तरह कोशिश कर रहा है वह तो उपलब्ध हो ही गया है। और जिस दिन उसने जान लिया है कि यह हो सकता है, उस दिन सम्भावना खुल गई है कि यह सबके लिए हो सकता है। कोई बाधा नहीं है। अगर हम बाधा न बनें तो वह सम्भावना खुल सकती है पृथ्वी पर भी। वह होगी अवश्य किन्तु देर लग सकती है। लेकिन समय के इतने बड़े प्रवाह में देर का कोई अर्थ ही नहीं होगा। बस देर हमारे छोटे मापदंड की वजह से है। नापने का मापदंड बहुत छोटा है। उससे हम नापते हैं तो बहुत लम्बा मालूम पड़ता है।

अभी महावीर को हुए वक्त ही कितना हुआ। ढाई हजार वर्ष हुए। हमारे लिए यह बड़ा लम्बा फासला है। लेकिन जिस विस्तार की मैं बात कर रहा हूँ उसमें ढाई हजार वर्ष का क्या मतलब ? हमने नाप की बात की है। एक चोंटी एक आदमी के ऊपर चढ़ जाती है तो समझती है कि हिमालय पर पहुँच गई हूँ। इसमें कोई झूठ भो नहीं क्योंकि चींटी और आदमी का अनुपात है। चींटी का नाप कितना ? हमारा नाप कितना ? बहुत छोटा नाप है और वह छोटा नाप हमारे जीवन के साथ है। जीवन को हम सौ साल की अवधि से नापते हैं। लेकिन जिन व्यक्तियों की अतीत में उतरने को सम्भावना है, या जिन व्यक्तियों ने अतीत में उतरने की चेष्टा की है वह अलग बात है। उन्होंने जीवन को पूरा जान लिया है कि एक है पृथ्वी का जीवन। यह पृथ्वी का जीवन जहाँ से आता है, जिन लोगों से आता है, उन लोगों की इस जीवन के भीतर कहीं-न-

कहीं स्मृति भी होती है। उन लोगों में भी इस स्मृति से प्रवेश हो सकता है—विज्ञान शायद प्रवेश नहीं कर पाएगा। क्योंकि चाँद पर विज्ञान पहुँचा, बड़ी कीमती घटना घटी लेकिन अब अगर मंगल पर पहुँचता है तो एक वर्ष जाने में और एक वर्ष आने में लगेगा और सूर्य के जितने उपग्रह हैं उनमें किसी पर जीवन नहीं है पृथ्वी को छोड़कर। सूर्य के उपग्रह छोड़कर अगर किसी दूसरे उपग्रह पर जाना है तो मनुष्य की उम्र का अंत ही नहीं। अगर दो सौ वर्ष आने-जाने में लगें तो कोई उपाय नहीं। जिस तारे से चार वर्ष लगते हैं प्रकाश आने में तो जिस दिन हम प्रकाश की गति को वाहन बना लेंगे, उस दिन चार वर्ष लगेंगे हमको जाने में, चार वर्ष लगेंगे आने में। लेकिन प्रकाश की गति का वाहन कभी हो सकेगा? क्योंकि कठिनाई यह है कि प्रकाश की गति जिस चीज में भी हो जाय वही प्रकाश हो जाएगा। यानी किरण ही हो जाएगी वह चीज। यानी उतनी गति पर अगर किसी चीज को चलाया तो वह ताप की वजह से किरण हो जाएगी। तो प्रकाश की गति असम्भव मालूम पड़ती है। क्योंकि प्रकाश की गति पर हवाई हजाज चला तो जैसे ही वह उतनी गति पकड़ेगा वह पिघलेगा और प्रकाश हो जाएगा, क्योंकि उतनी गति पर उतना ताप पैदा हो जाता है और उतने ताप पर किरण बन जाती है। प्रकाश की गति पर किसी दिन वाहन ले जाया जा सकेगा, यह असम्भव है। तो विज्ञान हमारे सभी जीवनों से सम्बन्ध बना सकेगा, यह करीब-करीब असम्भव बात है। लेकिन इतना हो सकता है कि विज्ञान की इस सारी खोज-बीन के बाद हमें यह ख्याल में आ सके कि धर्म यह सम्बन्ध बना सकता है।

यह जानकर आपको हैरानी होगी कि जैसे ही अन्तरिक्ष की यात्रा शुरू हुई है, रूस और अमेरिका दोनों ही योग में उत्सुक हो गए हैं। अमरीका ने कमीशन बिठाई तीन-चार वैज्ञानिकों का। सारी दुनिया का चक्कर लगाओ और इसकी खबर लाओ कि क्या विचार का सम्प्रेषण बिना माध्यम के हो सकता है, खबरें लाई गई हैं। क्योंकि इस बात का डर है कि अन्तरिक्ष में यात्री जाए, उसका यंत्र बिगड़ जाए और वह कोई खबर न दे सके। वह अन्तहीन में खो जाएगा। उसका हमें दुबारा कभी पता भी नहीं लगेगा कि वह कहाँ गया? एक तो व्यवस्था होनी चाहिए कि अगर यंत्र भी खो जाएँ तो वह सीधा विचार के सम्प्रेषण से खबर दे सके। अगर विचार का सम्प्रेषण सीधा हो सके तभी यह सम्भावना है कि हम दूसरे लोगों के जीवन से सम्बन्ध स्थापित कर सकें। क्योंकि तब विचार की गति का सवाल ही नहीं। विचार में समय लगता ही नहीं।

यानी अगर मैं विचार सम्प्रेषित कर सकता हूँ तो मैंने विचार सम्प्रेषित किया और आपने पाया, इसके बीच में पल भी नहीं लगता। जिसको महावीर समय कहते हैं, पल का भी लाखवाँ हिस्सा, वह भी नहीं लगता। विचार समयातीत सम्प्रेषित होता है। तो उसी दिन विचार के सम्प्रेषण से ही दूसरे जीवनों से सम्बन्ध स्थापित हो सकता है। महावीर, बुद्ध, जीसस, ऐसे जीवन की तलाश में हैं। सम्बन्ध स्थापित करने की पूरी कोशिश की गई है और कुछ बातें खोज भी ली गई हैं कि वह सम्बन्ध स्थापित हो सकता है, हुआ है। उस सम्बन्ध के आधार पर कामना बनती है, आशा बनती है कि पृथ्वी पर भी यह हो सकता है, इसमें कोई कठिनाई नहीं है।

कल जो मैंने कहा उससे स्पष्ट हुआ होगा कि एक ही जन्म नहीं है। जन्मों की एक लम्बी यात्रा है। हम जो आज हैं, वह हम एकदम आज के ही नहीं हैं। हम कल भी थे, परसों भी थे। एक अर्थ में हम सदा थे किन्हीं भी रूपों में। कभी पक्षी में, कभी पत्थर में, कभी खनिज में, कभी इस ग्रह पर, कभी उस ग्रह पर। हम सदा थे। होने के साथ हम एक हैं। अस्तित्व में हमारी प्रतिध्वनि सदा थी। लेकिन मूच्छित से मूच्छित थी। अमूच्छित होती चली गई है, जागृत होती चली गई है। हममें से सभी थे। जरूरी नहीं कि महावीर से सम्बन्धित हुए, जरूरी नहीं कि महावीर के पास थे, जरूरी नहीं कि महावीर के प्रदेश में थे। लेकिन सब थे। कहीं होंगे, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। यह भी हो सकता है कि हममें से कोई महावीर के निकट भी रहा हो, उस गाँव में भी रहा हो जहाँ से महावीर गुजरे हों। जरूरी नहीं कि हम मिलने गए हों। क्योंकि महावीर गाँव से गुजरे तो कितने लोग मिलने जाते हैं इसकी कोई आवश्यकता नहीं। महावीर गाँव में ठहरे भी हों और दस-बीस लोग भी मिले हों तो ठीक है। न मिले हों तब भी कोई जरूरी नहीं। हम सदा थे और हम सदा रहेंगे। मूच्छित या अमूच्छित दो बातें हो सकती हैं। अगर मूच्छित रहे हों तो हमारा होना न होना बराबर था। जब से हम अमूच्छित होते हैं, जागते हैं, चेतन होते हैं, तभी से हमारे होने में कोई अर्थ है। और जितने हम चेतन होते चले जाते हैं उतना ही हमारा होना गहरा होता जाता है। उतना ही हमारा अस्तित्व प्रगाढ़, समृद्ध होता चला जाता है। शायद उस अर्थ में होना हमारा अभी भी नहीं। अभी भी बस हम हैं। यह जो होने की लम्बी यात्रा है, इसमें बहुत बार शरीर बदलने जरूरी हैं। क्योंकि शरीर क्षणभंगुर है, उसकी सीमा है। वह चूक जाता है। असल में कोई भी पदार्थ

से निर्मित वस्तु शाश्वत नहीं हो सकती। पदार्थ से जो भी निर्मित होगा वह बिखरेगा, जो बनेगा वह मिटेगा। शरीर बनता है मिटता है। लेकिन पीछे जो जीवन है, वह न बनता है न मिटता है। वह सदा नए-नए बनाव लेता है। पुराने बनाव नष्ट हो जाते हैं, फिर नए बनाव लेता है। यह नया बनाव उसके संस्कार, उसने क्या दिया, क्या भोगा, क्या किया, क्या जाना—इन सब का इकट्ठा सार है। इसे समझने के लिए दो तीन बातें समझ लेनी चाहिए।

एक, शरीर हमें दिखाई पड़ता है जो हमारा ऊपर का है। एक और शरीर है ठीक इसके ही जैसी आकृति का जो इस शरीर में व्याप्त है। उसे सूक्ष्म शरीर कहें, कर्म शरीर कहें, मनोशरीर कहें, कुछ भी नाम दें—काम चलेगा। इस शरीर से मिलता हुआ, ठीक बिल्कुल ऐसी ही अत्यन्त सूक्ष्म परमाणुओं से निर्मित सूक्ष्म देह है। जब यह शरीर गिर जाता है तब भी वह शरीर नहीं गिरता है। वह शरीर आत्मा के साथ ही यात्रा करता है। उस शरीर की खूबी है कि आत्मा की जैसी मनोकामना होती है, वैसा ही आकार ले लेता है। पहले वह शरीर आकार लेता है और तब उस आकार के शरीर में आत्मा प्रवेश करती है। अगर एक सिंह मरे तो उसके शरीर के पीछे जो छुपा हुआ सूक्ष्म शरीर है, वह सिंह का होगा। लेकिन वह मनोकाया है। मनोकाया का मतलब यह है कि जैसे हम एक गिलास में पानी डालें, उस गिलास का हो जाए रूप उसका, बर्तन में डालें बर्तन जैसा हो जाए, बोतल में भरें, बोतल जैसा हो जाए। हमारा स्थूल शरीर सख्त है और हमारा सूक्ष्म शरीर तरल है। वह किसी भी प्रकार को ले सकता है तत्काल। अगर एक सिंह मरे और उसकी आत्मा विकसित होकर मनुष्य बनना चाहे तो मनुष्य शरीर ग्रहण करने के पहले उसका सूक्ष्म शरीर मनुष्य की आकृति को ग्रहण कर लेता है। वह उसकी मनोआकृति है। सुन्दर, कुरूप, अन्धा, लंगड़ा, स्वस्थ, बीमार—वह उसकी मनोआकृति है जो उसके शरीर को पकड़ जाती है। सूक्ष्म शरीर जैसे ही देह ग्रहण कर लेता है, मनोआकृति बन जाता है। वैसे ही उसकी खोज शुरू हो जाती है गर्भ के लिए।

अब यह भी समझना जरूरी है कि व्यक्ति स्त्री या पुरुष जीवन में अनेक सम्भोग करते हैं लेकिन सभी सम्भोग गर्भ नहीं बनते। और यह भी जानकर हैरानी होगी कि एक सम्भोग में एक व्यक्ति के इतने वीर्य अणु नष्ट होते हैं जिससे अन्दाजन एक करोड़ बच्चे पैदा हो सकते हैं। यानी एक पुरुष अगर जिन्दगी में साधारणतः आम तौर से कोई तीन हजार से लेकर चार हजार

सम्भोग करता है और एक सम्भोग में अन्दाजन एक करोड़ बच्चे के सम्भावना-बीज हैं तो अगर एक पुरुष के सारे अणु प्रयुक्त हो सकें और वास्तविक बन सकें तो एक पुरुष अन्दाजन चालीस करोड़ बच्चों का पिता बन सकता है। स्त्री की यह सम्भावना नहीं है क्योंकि उसका महीने में एक ही बीज परिपक्व होता है। वह महीने में सिर्फ एक व्यक्ति को जन्म दे सकती है। लेकिन एक को भी नहीं दे पाती क्योंकि नौ महीने सिर्फ एक व्यक्ति उसके व्यक्तित्व को रोक लेता है। सभी सम्भोग सार्थक नहीं होते। और इसका कारण है जो कि अभी तक वैज्ञानिक नहीं सोच पाए। स्त्री का बीज मौजूद है। उस पर पुरुष के एक करोड़ बीज एकदम से हमला करते हैं। और ध्यान रहे कि जो बाद में प्रकट होते हैं गुण वह बीज में ही छिपे होते हैं। पुरुष के सारे बीजाणु हमलावर होते हैं, तेजी से हमला करते हैं। स्त्री का बीज प्रतीक्षा करता है वह हमला नहीं करता। यह जो एक करोड़ वीर्याणु हैं बहुत तेजी से गति करते हैं। यह जानकर आप हैरान होंगे कि प्रतियोगिता शुरु हो जाती है। वहाँ जो प्रतियोगिता में आगे निकल जाता है, वह जाकर स्त्रीअणु से एक हो जाता है। जो पीछे छूट जाता है, वह हट जाता है, मर जाता है, समाप्त हो जाता है। लेकिन प्रत्येक बार सम्भोग से गर्भ नहीं बनता। उसका वैज्ञानिक कारण नहीं खोज पाए अब तक। और नहीं खोज पायेंगे। उसका कारण यह है कि गर्भ तभी बन सकता है जब वैसी आत्मा प्रवेश करने के लिए आतुर हो। वह हमें दिखाई नहीं पड़ता। दो अणु मिलते हैं, इतना हमें दिखाई पड़ता है। स्त्री और पुरुष के अणुओं का मिलन सिर्फ जन्म नहीं है, यह है सिर्फ अवसर भर जिसमें एक आत्मा उतर सकती है।

प्रश्न : लेकिन अब तो सम्भावना है बगैर सम्भोग के ही ?

उत्तर : सम्भोग से कोई सम्बन्ध ही नहीं है सम्भावना का। सम्बन्ध तो सिर्फ दो अणुओं के मिलन का है। वह मिलन सम्भोग के द्वारा हो रहा है, यह प्रकृति की व्यवस्था है। कल सिरिंज के द्वारा हो सकता है, वह विज्ञान की व्यवस्था होगी।

प्रश्न : इसमें से हर एक अणु ही उसमें इस्तेमाल हो सकते हैं ?

उत्तर : हाँ, हो सकते हैं और वह तभी हो सकेंगे जब इतनी आत्माएँ जन्म लेने के लिए आतुर हो जाएँ कि गर्भ व्यर्थ हो जाएँ। और इसलिए मैं कह रहा हूँ कि सब जरूरतें अनुकूल तैयार होती हैं, यह हमारे ख्याल में नहीं आता।

यानी अब तक, इस बात की जरूरत ही नहीं पड़ी थी कि हम वीर्य अणु को प्रयोगशाला में ले जाकर बच्चा पैदा करें। लेकिन अब जरूरत पड़ जाएगी इसलिए क्योंकि स्त्री की सम्भावना समाप्त होने के करीब आ गई है। वह एक बच्चे को नौ महीनों में जन्म दे सकती है। वह कितने ही बच्चों को जन्म दे, बीस-पचीस बच्चों से ज्यादा जन्म नहीं दे सकती। अधिकतम जन्म देने वाली स्त्री ने छब्बीस बच्चों को जन्म दिया है। उसकी सम्भावना इससे ज्यादा नहीं है। लेकिन अगर मनुष्य आत्माओं का तीव्र आगमन होने लगे तो फौरन उपाय करने पड़ेंगे। वह हमको दिखता नहीं अभी कि आखिर हम यह उपाय किसलिए कर रहे हैं या यह कभी सम्भव हो सकता है। और तब तो एक व्यक्ति के पूरे के पूरे चालीस करोड़ बीजाणुओं का भी गर्भधारण हो सकता है। लेकिन वह होगा तभी जब आत्मा उतरने को आतुर हो। और मेरा मानना है कि यह जो एक करोड़ की सम्भावना है एक सम्भोग में और चालीस करोड़ की सम्भावना है एक व्यक्ति के जीवन में वह इसलिए है कि आज नहीं कल, हजार वर्ष बाद, दस हजार वर्ष बाद इतनी जीव-आत्माएँ मुक्त होंगी कि इन सब अणुओं की जरूरत पड़ने वाली है। नहीं तो इसका कोई मतलब नहीं है। और प्रकृति बे-मतलब कोई काम नहीं करती। जो भी शरीर में है, उसकी कोई गहरी सार्थकता है, वह हमें पता हो, या न हो। और अगर आज उसकी सार्थकता नहीं तो कल उसकी सार्थकता हो सकती है। एक माँ और एक बाप के व्यक्तित्व से निर्मित जो बीजाणु हैं, वह सम्भावना बनते हैं एक ऐसे व्यक्ति को जन्म देने की जो इन दोनों की सम्भावनाओं से तालमेल खाता हो। इसलिए जो लोग समझ सकते हैं इस विज्ञान को वे यह भी निश्चित करवा सकते है बहुत गहरे में कि कैसे बच्चे उनको पैदा हों। सम्भोग के क्षण में यह उनकी मनोदशा, उनके मनोभाव, उनकी चित्तस्थिति निर्धारित करेगी।

प्रश्न : ये जो महावीर और बुद्ध के सम्बन्ध में हमें ढेर कहानियाँ प्रचलित मिलती हैं, वह किस अर्थ में सार्थक हैं? जैसे महावीर के सम्बन्ध में है कि इतने स्वप्न आते हैं या बुद्ध के सम्बन्ध में है कि इतने स्वप्न आते हैं?

उत्तर : स्वप्न आते हैं, या नहीं आते हैं यह महत्त्वपूर्ण नहीं है। महत्त्व-पूर्ण सिर्फ इतना है कि ऐसे स्वप्न जिस चित्त में आते हों, उस चित्त की एक विशिष्ट अवस्था होगी तो ये स्वप्न आएँगे। सब स्वप्न सबको नहीं आते। चित्त की अवस्था पर स्वप्न निर्भर करते हैं। एक आदमी क्रोधी है तो वह ऐसे स्वप्न देखता है जिनमें क्रोध होगा। एक आदमी कामी है तो वह

ऐसे स्वप्न देखता है जिनमें काम होगा। एक आदमी लोभी है तो वह ऐसे स्वप्न देखता है जिनमें लोभ होगा। स्वप्न वे ही हैं जो व्यक्ति के चित्त की अवस्थाएँ हैं। महावीर जैसा व्यक्ति पैदा होना है तो वह साधारण मनोदशा में पैदा नहीं हो जाता। उसके माता पिता के भीतर चित्त की, शरीर की एक विशिष्ट अवस्था जरूरी है तभी वैसी आत्मा प्रवेश कर सकती है। और उसके पहले के लक्षण भी जरूरी हैं। वे लक्षण भी होने चाहिएँ। प्रतीक हैं वे लक्षण। वे इस बात की खबर देते हैं कि चित्त कैसा है। फ्रायड कहता है कि अगर कोई आदमी स्वप्न में मछली देखता है तो वह सेक्स का प्रतीक है। हजारों स्वप्नों का अध्ययन करने के बाद यह नतीजा निकाला गया कि स्वप्न में मछली देखना सेक्स से सम्बन्धित है। मछली जननेन्द्रिय का प्रतीक है। गलत भी हो सकता है उसका ख्याल। लेकिन हजार स्वप्न अध्ययन किए हैं जिसने उसे ऐसा लगता है कि यह हो सकता है।

अभी तक महावीर के स्वप्नों या बुद्ध के स्वप्नों का कोई मनोवैज्ञानिक अध्ययन नहीं हुआ। उनकी माताओं के स्वप्नों का अध्ययन हो सकता है। लेकिन बड़ी कठिनाई यह है कि ऐसे व्यक्ति बड़ी संख्या में पैदा नहीं हुए। इसलिए तालमेल बिठाने के लिए उपाय नहीं है हमारे पास। तोल नहीं बिठाई जा सकती। कहा जाता है कि महावीर की माँ को स्वप्न में सफेद हाथी दिखाई पड़े। साधारणतः सफेद हाथी दिखाई नहीं पड़ते। आप इतने लोग यहाँ बैठे हैं शायद ही किसी को स्वप्न में हाथी दिखाई पड़ा हो। और सफेद हाथी दिखाई पड़े तो यह सम्भावना और न्यून हो जाती है। महावीर की माँ को अगर सफेद हाथी दिखाई पड़ा है तो यह अपवाद ही है। अगर इस तरह के सौ-दो सौ स्वप्न अध्ययन न किए जा सकें तो सफेद हाथी किस बात का प्रतीक है, यह तय करना मुश्किल हो जाता है। लेकिन फ्रायड ने ही पहली बार यह काम नहीं किया है। जैनों के चौबीस तीर्थंकरों की माताओं के स्वप्नों में जो ताल-मेल है इस बात की भी फिक्र की जाती रही है कि जब तीर्थंकर पैदा होता है तो उसकी माँ को क्या स्वप्न आते हैं। उसके जन्म के पहले उसकी चित्तदशा क्या है ? शांत है, अशांत है, आनन्दपूर्ण है, प्रेमपूर्ण है, घृणापूर्ण है, क्रोधपूर्ण है, पवित्र है, दिव्य है, साधारण है, क्षुद्र है, कैसी है ? यह बिल्कुल ठीक है कि चित्त की विशिष्ट दशा में ही ऐसी आत्मा उतर सकती है। चंगेजखाँ या तैमूरलंग पैदा हों तो भी फिक्र की जानी चाहिए कि उनकी माताएँ कैसे स्वप्न देखती हैं। फिक्र नहीं की गई है। हिटलर पैदा हो, स्टालिन पैदा हो, तो

कैसे स्वप्न उनकी माताएं देखती रही हैं इसकी भी फिक्र की जानी चाहिए। तो शायद हमें यह साफ हो सके कि चित्त की एक विशिष्ट दशा में ऐसी आत्मा प्रविष्ट होती हैं। इतना तो तथ्य है कि हर दशा में हर आत्मा प्रविष्ट नहीं होती। माँ-बाप सिर्फ अवसर बनते हैं आत्मा के उतरने के, अवतरण के। आत्मा एक शरीर को छोड़ती है। जैसे ही मरती है मूर्छित हो जाती है। और दूसरे जन्म तक मूर्च्छित हो रहती है। यानी माँ के पेट के नौ महीनों में भी मूर्च्छित ही रहती है। लेकिन कुछ आत्माएँ सचेत मरती हैं वे माँ के पेट में भी सचेत हो सकती हैं। जो सचेत मरेगा, वह माँ के पेट में भी सचेत होगा। तो यह कहानियाँ आकस्मिक नहीं हैं कि माँ के पेट में भी कुछ सीखा जा सके और बाहर की बातें सुनी जा सकें, या बाहर के अर्थ ग्रहण किए जा सकें। यह असम्भव नहीं है। अगर कोई आत्मा मरते वक्त पूर्ण चेतन थी, होश नहीं खोया था, शरीर होशपूर्वक छोड़ा था तो वह आत्मा होशपूर्वक शरीर लेगी। लाओत्से के सम्बन्ध में कहा जाता है कि वह बूढ़ा ही पैदा हुआ क्योंकि पैदा होते ही उसने ऐसे लक्षण दिखाए जो कि अत्यन्त वृद्ध ज्ञानी में होने चाहिए। और बचपन से उसमें ऐसी बातें दिखाई पड़ने लगीं जो कि बड़े अनुभव के बाद ही हो सकती हैं।

सचेतन रूप से मरा हुआ व्यक्ति सचेतन रूप से पैदा हो सकता है। तो माँ के पेट में महावीर के संकल्प करने की बात अर्थ रखती है। "मैं अपने माता-पिता को दुःख नहीं दूँगा, उनके जीते संन्यास नहीं लूँगा" इस बात का संकल्प गर्भ में किया गया है। लेकिन सामान्यतः हम मरते समय बेहोश हो जाते हैं और दूसरे जन्म तक यह बेहोशी जारी रहती है। असल में प्रकृति की यह व्यवस्था है मूर्च्छा करने की। जैसा हम आपरेशन करते हैं एक आदमी का तो हम उसे मूर्च्छित कर देते हैं ताकि मूर्च्छा में जो भी हो उसे पता न चल सके। क्योंकि पता चलना बहुत घबराने वाला भी हो सकता है। इसलिए प्रकृति की व्यवस्था है मरने के पहले मूर्च्छित करने की और दूसरे जन्म तक मूर्च्छा ही रहती है। और इस मूर्च्छा में जो भी होगा—जैसा कि मैंने कहा कि आत्मा शरीर ग्रहण करेगी तो वह बिल्कुल स्वाभाविक है। स्वाभाविक का मतलब यह है कि आत्मा रुझान जैसी है अचेतन, वह उस तरफ यात्रा कर जाएगी। सचेतन रूप से जन्म बहुत कम लोग लेते हैं। सचेतन रूप से वही लोग जन्म ले सकते हैं जिन्होंने पिछले जीवन में चेतना की बड़ी गहरी उपलब्धि की है। और तब वे जानते हैं पिछले जन्मों को, मृत्यु को, मरने के बाद को।

तिब्बत में एक प्रयोग होता है—बारदो। दुनिया में जिन लोगों ने खोज की है मृत्यु के बाबत उनमें सबसे ज्यादा लोग तिब्बत के हैं। बारदो एक अद्‌भुत प्रयोग है। आदमी मरता है तो भिक्षु उसके आस-पास खड़े होकर बारदो का प्रयोग करते हैं। जब वह मर रहा होता है तब वे उसे चिल्लाकर कहते हैं कि होश रख, होश रख, संभल, बेहोश मत हो जाना क्योंकि बड़ा मौका आया है जैसा कि मरने का मौका फिर सौ वर्ष के बाद आया हो। वे उसे हिलाते हैं, जगाते हैं। आप हैरान होंगे। ऑस्पेन्सी नाम का एक अद्‌भुत विचारक चलते-चलते मरा, लेटा नहीं। अभी मरा दस-पन्द्रह साल पहले। और उसने अपने सारे शिष्यों को इकट्ठा कर लिया मरने से पहले। वह चलता ही रहा। उसने कहा कि मैं होश में ही मरूँगा। मैं लेटना भी नहीं चाहता कि कहीं झपकी न लग जाए। चलता ही रहा। जो लोग मौजूद थे उन्होंने लिखा है कि जो अनुभव हमें उस दिन हुआ वह कभी नहीं हुआ कि कोई आदमी इतने होश से मर सकता है। टहलता ही रहा और कहता रहा कि बस, अब यह होता है, अब यह होता है। अब मैं यहाँ डूब रहा हूँ, अब मैं इस जगह पहुँच रहा हूँ, अब सब इतने सैकेंड में स्वांस चली चली जाएगी। वह एक-एक चीज को नाप कर बोलता रहा। और पूरा सचेत मरा। मरा तब सचेत खड़ा था। बारदो में उस आदमी को चिल्ला चिल्लाकर सचेत करते हैं कि जागे रहना, सो मत जाना। देखो—ऐसा, ऐसा होगा, घबराओ मत। बेहोश मत हो जाना। और फिर अगर वह आदमी होश में रह जाता है तो "बारदो" की प्रक्रिया आगे चलती है। फिर उसको बताते हैं अब ऐसा होगा, देख गौर से देख भीतर की अब ऐसा होगा, अब ऐसा होगा। अब शरीर से प्राण इस तरह टूटेगा। अब शरीर छूट गया, तू घबराना मत। तू मर नहीं गया है। शरीर छूट गया है लेकिन देख तेरे पास देह है, गौर से देख, घबड़ा मत। वह पूरे प्रयोग करवाएंगे मरते वक्त। और मरने की प्रक्रिया बहुत कीमती है। अगर उस वक्त किसी को सचेत किया जा सके तो उसके जीवन में एक क्रान्ति हो गई जो बहुत अद्‌भुत है। लेकिन सचेत उसको रखा जा सकता है जो जीवन में सचेत होने का प्रयोग कर रहा हो।

मैं जिस श्वांस के अभ्यास के लिए आपसे कह रहा हूँ अगर वह आप जारी रखें तो मृत्यु के वक्त में कोई सम्पत्ति काम नहीं आएगी, कोई मित्र काम नहीं आएगा, श्वांस की जागरूकता ही सिर्फ काम में आती है। क्योंकि जो श्वास के प्रति जागरूक है उसकी श्वांस जब डूबने लगती है, वह अपनी जागरूकता

जारी रखती है। और श्वास के डूबने के साथ वह देखता है कि मृत्यु उतरने लगी है। और उसने श्वास की जागरूकता का इतना अभ्यास किया है कि जब श्वास बिल्कुल नहीं रह जाती तब भी वह जागा रहता है। बस वही कोण है जहाँ से उसकी नई यात्रा शुरू हो गई जागरण की। तब फिर उसका जन्म एकदम जागरूक जन्म है। तो 'बारदो' में बड़ी चेष्टा करते हैं। मैं चाहता हूँ कि 'बारदो' जैसी स्थिति इस मुल्क में पैदा की जाए, जो कभी नहीं हो सकी। यहाँ मरने के नाम फिजूल मूर्खतापूर्ण बातें प्रचलित हो गई हैं जिनका कोई देना-लेना नहीं है। कोई मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया नहीं जगा पाया कि मरते हुए आदमी के लिए हम सहयोगी हो जाएँ। सहयोगी हम हो सकते हैं और उसी माध्यम से वह व्यक्ति जब दुबारा जन्म लेगा तो उसके जन्म की पिछली यात्रा उसके सामने रहेगी सदा। वह आदमी दूसरे ढंग का हो जाएगा। उसके दूसरे जन्म में साधना अनिवार्य हो जाएगी। अब वह दूसरा जन्म खोने को तैयार नहीं हो सकता।

वह जो सूक्ष्म शरीर है, जिसकी मैंने बात कही, उसी सूक्ष्म शरीर में वे सूखी रेखाएँ बनती हैं जो कल मैंने कहीं। वे कर्म जो हमने किए, वे फल जो हमने भोगे और वह जो हम जिए उस सबकी सूक्ष्म रेखाएँ उस सूक्ष्म शरीर पर बनती हैं। इसलिए वह जो सूक्ष्म शरीर है उसका एक नाम महावीर ने रखा कामरण शरीर। महावीर का ख्याल है कि जो भी हमने जिया और भोगा उस भोग के कारण विशेष प्रकार के परमाणु हमारे शरीर से जुड़ जाते हैं। जैसे एक क्रोधी आदमी है तो वह एक विशेष प्रकार के परमाणु अपने सूक्ष्म शरीर में जोड़ लेता है। अब तो साइंस बहुत तरह की बातें कहती है कि जब आप क्रोध में होते हैं तो आपके खून में एक तरह का जहर छूट जाता है। जब आप प्रेम में होते हैं तो आपके खून में एक तरह का अमृत छूट जाता है। जब एक आदमी किसी स्त्री के प्रति और कोई स्त्री किसी पुरुष के प्रति पागल हो जाती है प्रेम में तो उसके खून में अमृत के फव्वारे छूट जाते हैं जिनकी वजह से सम्मोहन पैदा हो जाता है और स्त्री सुन्दर दिखाई पड़ने लगती है जितनी वह है नहीं। अगर आपको किसी स्त्री से प्रेम नहीं है तो एल एस डी का इंजैक्शन लगाकर उस स्त्री को देखें जिससे आपको प्रेम नहीं तो आप एकदम दीवाने हो जाएँगे क्योंकि वह इंजैक्शन आपके शरीर में अमृत छोड़ देता है जिससे कोई भी स्त्री आपको अपूर्व सुन्दर दिखाई पड़े। यह सवाल नहीं है कि फलाँ स्त्री। एक साधारण सी स्त्री भी अद्वितीय दिखाई पड़ेगी। एक साधारण सा फूल सुन्दर और आलौकिक दिखाई पड़ेगा।

जब हम क्रोध करते हैं तब एक तरह का जहर, और प्रेम करते हैं तो एक तरह का अमृत—इस तरह सारे के सारे रस शरीर में छूटते रहते हैं। यह तो स्थूल शरीर के तल पर हो रहा है लेकिन सूक्ष्म शरीर के तल पर भी यह हो रहा है। जब आप क्रोध कर रहे हैं तो सूक्ष्म शरीर के साथ विशेष तरह के परमाणु सम्बन्धित हो रहे हैं। जब आप प्रेम कर रहे हैं तो विशेष प्रकार के परमाणु सम्बन्धित हो रहे हैं। इस शरीर के छूट जाने पर वह सूक्ष्म शरीर ही सूखी रेखाओं की तरह आपके भोगे गए जीवन को लेकर नई यात्रा शुरू करता है। और वह सूक्ष्म शरीर ही नए शरीर ग्रहण करता है। वह अन्धा हो सकता है; वह लंगड़ा हो सकता है; बुद्धिमान् हो सकता है। प्रत्येक मृत्यु में स्थूल देह मरती है। फिर अन्तिम मृत्यु है महामृत्यु, जिसे हम मोक्ष कहते हैं। उसमें सूक्ष्म शरीर भी मर जाता है। जिस दिन सूक्ष्म शरीर मर जाता है, उस दिन व्यक्ति का मोक्ष हो गया। स्थूल शरीर तो हर बार मरता है। मगर भीतर का शरीर हर बार नहीं मरता वह तभी मरता है जब उस शरीर के रहने का कोई अर्थ नहीं रह जाता। जब व्यक्ति न कुछ करता है, न भोगता है, न कर्ता बनता है, न किसी कर्म को ऊपर लेता है, न कोई प्रतिक्रिया करता है। जब व्यक्ति केवल साक्षी मात्र रह जाता है तब सूक्ष्म शरीर पिघलने लगता है, बिखरने लगता है। साक्षी की जो प्रक्रिया है, वह सूक्ष्म शरीर को ऐसे पिघला देती है जैसे सूरज निकले और बर्फ पिघलने लगे। साक्षी के निकलते ही सूक्ष्म शरीर के परमाणु पिघल कर बहने लगते हैं। और यह पिघलना ऐसा अनुभव होता है जैसे रात को सर्दी से जुकाम पकड़ गया हो। और जुकाम उतर रहा है तो आप अनुभव करते हैं, किसी को बता नहीं सकते कि अब जुकाम नीचे उतर रहा है। सूक्ष्म शरीर का पिघलना साक्षी को इसी तरह पता चलता है कि कोई चीज भीतर पिघल कर बहती चली जा रही है। और जिस दिन सूक्ष्म शरीर पिघल जाता है, आत्मा और शरीर पृथक् दिखाई देते हैं। सूक्ष्म शरीर जोड़ है। वह पृथक् नहीं दिखाई पड़ने देता। वह दोनों को जोड़कर रखता है। और जिस दिन वे दोनों पृथक् दिखाई पड़ जाते हैं, वह आदमी कह देता है कि यह आखिरी यात्रा है। अब इसके बाद लौटना नहीं।

बुद्ध को जिस दिन ज्ञान हुआ, बुद्ध ने कहा कि वह घर गिर गया जो सदियों से नहीं गिरा था। तो वे घर के बनाने वाले विदा हो गए जो सदा उस

घर को बनाते थे। अब मेरे लौटने की कोई उम्मीद नहीं रही क्योंकि कहाँ लौटूंगा ? अब वह घर ही न रहा, जिसमें सदा लौटता था। और वह घर जो है, वह सूक्ष्म शरीर का घर, उस पर हमारे सारे कर्म, हमारे सारे कर्मों के फल, हमारा भोग, हमारा जिया हुआ जीवन—वह सब वैसा बन जाता है जैसे स्लेट की पट्टी पर रेखाएँ बन जाती हैं। उस सूक्ष्म शरीर को गलाना ही साधना है। अगर मुझसे कोई पूछे कि तपश्चर्या का क्या मतलब तो मैं कहूँगा कि सूक्ष्म शरीर को गलाना ही तपश्चर्या है। तप का मतलब होता है—तीव्र गर्मी, सूर्य की गर्मी ऐसी गर्मी भीतर साक्षी से पैदा करनी है कि सूक्ष्म शरीर पिघल जाए और बह जाए। तप का यही मतलब है। तप का मतलब धूप में खड़े होना नहीं है। वह आदमी पागल है जो धूप में खड़ा होकर तप कर रहा है। जब महावीर को कहते हैं महातपस्वी तो उसका मतलब यह नहीं है कि वह धूप में खड़े होकर शरीर को सता रहे हैं। और जब महावीर को कहते हैं 'काया को मिटाने वाला' तो उस काया का इस काया से कोई मतलब नहीं है। उस काया का मतलब है भीतर की काया से जो असली काया है।

बाहरी काया तो बार-बार मिलती है। आप इस कमीज को अपनी काया नहीं कह सकते। क्योंकि आप रोज उसे बदल लेते हैं। आप शरीर को काया कहते हैं क्योंकि जिन्दगी भर उसे नहीं बदलते। महावीर भली भाँति जानते हैं कि यह शरीर भी तो कई बार बदला जाता है लेकिन एक और काया है जो कभी नहीं बदली, बस एक ही बार खत्म होती है, बदलती नहीं। तो उस काया के पिघलने में लगा हुआ जो श्रम है वही तपश्चर्या है। और उस काया को पिघलाने की जो प्रक्रिया है वही साक्षीभाव, सामायिक का ध्यान है। और वह स्मरण में आ जाए और उसके प्रयोग से हम गुजर जाएँ तो फिर कोई पुनर्जन्म नहीं है। पुनर्जन्म रहेगा, सदा रहेगा अगर हम कुछ न करें। लेकिन ऐसा हो सकता है कि पुनर्जन्म न हो। हम विराट् जीवन के साथ एक हो जाएँ। ऐसा नहीं कि हम मिट जाते हैं, ऐसा नहीं कि हम खत्म हो जाते हैं। बस ऐसा ही हो जाते हैं जैसे बूँद सागर हो जाती है। वह मिटती नहीं, लेकिन मिट भी जाती है, बूँद की तरह मिट जाती है, सागर की तरह रह जाती है। इसलिए महावीर कहते हैं कि आत्मा ही परमात्मा हो जाता है। लेकिन नहीं समझे लोग कि इसका क्या मतलब है। मतलब यह है कि आत्मा कि बूँद खो जाती है परमात्मा में और एक हो जाती है। उस एकता में, उस परम अद्वैत में परम आनन्द है, परम शांति है, परम सौन्दर्य है।

१४

प्रंश्नोत्तर-प्रवचन

प्रश्न : ऐसा कोई व्यक्ति क्यों नहीं मिल सका जिसके चरणों में महावीर आत्मसमर्पण कर सकें ? महावीर क्या खोज रहे हैं जिसकी वजह से वे किसी गुरु के पास नहीं गए ? इस सम्बन्ध में महावीर क्या कहते हैं ?

उत्तर : जीवन में बहुत कुछ है जो दूसरे से नहीं मिल सकता और जो भी श्रेष्ठ है जो भी सत्य है, सुन्दर है, उसे दूसरे से पाने का कोई भी उपाय नहीं है। जो दूसरे से पाया जा सकता है, उसका कोई महत्त्व नहीं। क्योंकि जिसे हम दूसरे से पा लेते हैं वह हमारे प्राणों से विकसित हुआ नहीं होता। वह ऐसा ही है जैसे कागज के फूल कोई बाजार से ले आए और घर को सजा ले। वृक्षों से आए हुए फूलों की बात दूसरी है। वे जीवन्त हैं। मगर वे भी मृत हो जाते हैं। थोड़ी देर गुलदस्ते में धोखा दे सकते हैं जीवित होने का। लेकिन फिर भी वे जीवित नहीं हैं। सत्य के फूल कभी उधार नहीं मिलते। इसलिए जो भी सत्य को खोजने निकला हो, वह गुरु को खोजने नहीं निकलता है। हाँ, असत्य को खोजने कोई निकला हो तो गुरु की खोज बहुत जरूरी है। सत्य की खोज में गुरु एकदम अनावश्यक है। लेकिन शिष्यत्व यानी सीखने की क्षमता बहुत आवश्यक है। असली सवाल सीखने की क्षमता का है और जिसके पास सीखने की क्षमता है वह गुरु नहीं बनाता, सीखता चला जाता है। गुरु बनाना एक तरह का बन्धन निर्मित करना है। वह इस बात की चेष्टा है कि सत्य पाएँगे तो इस व्यक्ति से और कहीं से नहीं।

मेरा मानना है कि सत्य कोई ऐसी चीज नहीं है जो किसी एक व्यक्ति से प्रवाहित हो। सत्य पूरे जीवन पर छाया हुआ है। अगर हम सीखने को उत्सुक हैं, तो सत्य सब जगह से सीखा जा सकता है। गुरु काश समझाए कि जिन्दगी

असार है, कल मौत आ जाएगी, चेत जाओ और अगर हम सीख न सकते हों तो आवाज कान में सुनाई पड़ेगी और समाप्त हो जाएगी। और अगर कोई सीख सकता है तो एक वृक्ष से गिरते हुए सूखे पत्ते को देखकर भी सीख सकता है कि जिन्दगी असार है और अभी जो हरा था, वह अभी सूख गया; कल जो जन्मा था, आज मर गया है। और एक सूखा पत्ता गिरता हुआ भी एक व्यक्ति को जीवन की सारी व्यर्थता का बोध करा सकता है। लेकिन सीखने की क्षमता न हो तो यह बोध कोई भी नहीं करा सकता। महावीर में सीखने की अद्‌भुत क्षमता है, इसलिए उन्होंने कोई गुरु नहीं बनाया। गुरु खोजा भी नहीं। बस सीखने निकल पड़े, खोजने निकल पड़े, बीच में किसी व्यक्ति को लेना नहीं चाहा क्योंकि उधार ज्ञान लेने की उनकी कोई आकांक्षा नहीं। उधार भी कभी ज्ञान हो सकता है? सब चीजें उधार हो सकती हैं, ज्ञान उधार नहीं हो सकता। ज्ञान उसका ही होता है, जो पाता है। वह दूसरे को देते ही व्यर्थ हो जाता है।

गुरुओं की कमी न थी, सब तरफ गुरु मौजूद थे। शास्त्रों की कमी न थी, शास्त्र मौजूद थे। सिद्धान्तों की कमी न थी, सिद्धान्त मौजूद थे। लेकिन महावीर ने सबकी ओर पीठ कर दी क्योंकि शास्त्र की ओर मुँह करना या सिद्धान्त की ओर या गुरु की ओर—बासे और उधार के लिए उत्सुक होना है। वह निपट अपनी खोज पर चले गए। स्वयं ही पा लेना है। और जो स्वयं न मिले वह दूसरे से मांग कर मिल भी कैसे सकता है? मिलने का मार्ग भी क्या है? रास्ता भी क्या है? दूसरे से ज्यादा से ज्यादा शब्द मिल सकते हैं, सिद्धांत मिल सकते हैं, लेकिन सत्य नहीं मिल सकता। इसलिए महावीर ने किसी गुरु के प्रति समर्पण नहीं किया। यह भी समझ लेने जैसी बात है कि समर्पण ही करना हो तो क्षुद्र के प्रति, सीमित के प्रति क्या? समस्त के प्रति क्यों नहीं? सच तो यह है कि एक के प्रति समर्पण असल में समर्पण नहीं है। एक के प्रति समर्पण में शर्त है। जब मैं कहता हूँ कि फलां व्यक्ति के प्रति मैं समर्पण करूँगा, और फलां के प्रति नहीं तो मैं शर्त रख रहा हूँ क्योंकि मैं मानता हूँ कि एक ठीक है, दूसरा गलत है। यह पा लिया है, दूसरा नहीं पाया है। इससे मिलेगा, दूसरे से नहीं मिलेगा। यह दे सकता है, दूसरा नहीं दे सकता। तब समर्पण कैसा हुआ? यह तो सौदा हुआ। जिससे हमें मिलेगा, जिससे हम पा सकते हैं, उसकी आकांक्षा को ध्यान में रखकर अगर समर्पण किया गया तो समर्पण कैसा हुआ? वह सौदा हुआ, लेन-देन हुआ। समर्पण का अर्थ यह है कि बिना शर्त, बिना आकांक्षा के स्वयं को छोड़ देना। तब कोई किसी व्यक्ति के प्रति

कभी समर्पित नहीं हो सकता। समर्पित हो सकता है सिर्फ परमात्मा के प्रति। और परमात्मा का मतलब है समस्त। अगर परमात्मा भी एक व्यक्ति है तो भी समर्पण नहीं हो सकता। जैसे अगर किसी ने परमात्मा को राम मान लिया है तो राम के प्रति उसका समर्पण है, कृष्ण के प्रति समर्पण नहीं है।

एक बड़े रामभक्त सन्त के जीवन में उल्लेख है कि उन्हें कृष्ण के मन्दिर में ले जाया गया। तो बांसुरी बजाते कृष्ण की मूर्ति को उन्होंने नमस्कार करने से इन्कार कर दिया। उन्होंने कहा कि मैं तो धनुर्धारी राम के प्रति ही झुकता हूँ। और अगर चाहते हो कि मैं झुकूं तो इनके हाथ में धनुषबाण दे दो। यानी झुकने वाला शर्त लगाएगा। वह यह भी शर्त लगाएगा कि तुम कैसे खड़े हो? धनुषबाण लेकर कि बांसुरी लेकर। तुम्हारी कैसी शक्ल हो, तुम्हारी कैसी आँखें हों, वह सब शर्त लगाएगा। और इस तरह समर्पण में शर्त हो सकती है। यानी कोई यह कहे कि तुम ऐसे हो जाओ तो मैं समर्पण करूँगा तो क्या समर्पण रहा? समर्पण का तो अर्थ ही सदा बेशर्त है। मैं मानता हूँ कि महावीर का समर्पण है लेकिन किसी व्यक्ति के प्रति नहीं, समस्त के प्रति। और समस्त के प्रति जिनका समर्पण है उनका हमें पता नहीं चलता। क्योंकि पता कैसे चलेगा? हम तो व्यक्तियों के ही समर्पण को समझ पाते हैं कि यह आदमी फलां आदमी के प्रति समर्पित है। लेकिन एक आदमी समस्त के प्रति समर्पित है, उस पत्थर के प्रति भी जो सड़क पर पड़ा है, आकाश के तारे के प्रति भी, आदमी के प्रति भी, और बच्चे के प्रति भी और जानवर के प्रति भी। जो समस्त के प्रति समर्पित है, उसका समर्पण हमारी पहचान में नहीं आएगा क्योंकि हमारा मापदण्ड सीमित सौदे का है।

अगर मैं एक व्यक्ति को प्रेम करूं तो समझ में आ सकता है कि मैं प्रेम करता हूँ। लेकिन अगर मेरा समस्त के प्रति प्रेम हो तो समझ में आना मुश्किल हो जाएगा क्योंकि हम प्रेम को पहचान ही तब पाते हैं जब वह व्यक्ति से बंध जाए। अगर वह फैला हो, असीम हो तो हम नहीं पहचान पाते उसे। इसलिए महावीर को समझने वाले सोचते रहे हैं कि महावीर ने किसी एक के प्रति इसलिए समर्पण नहीं किया कि एक के प्रति समर्पण करने से शेष के प्रति असमर्पण हो जाता है। अगर पूर्ण समर्पण है तो पूर्ण के प्रति, असीमित के प्रति ही हो सकता है। अपूर्ण के प्रति, सीमित के प्रति समर्पण नहीं हो सकता। अब तक किसी ने भी इस तरह नहीं सोचा है महावीर के प्रति कि वह समर्पित व्यक्ति है। मेरा मानना है कि वे बिल्कुल ही पूर्ण समर्पित व्यक्ति हैं। लेकिन

पूर्ण समर्पित व्यक्ति किसी एक के प्रति समर्पित नहीं होता। वह किसी एक के आगे सिर नहीं झुकाता, इसलिए नहीं कि अहंकार है, बल्कि इसलिए कि उसका सिर झुका ही हुआ है सब ओर। अब वह कैसे अलग-अलग खोजने जाए कि इसके प्रति झुको, उसके प्रति न झुको। उसके किसी एक के प्रति झुकने का सवाल ही नहीं, और ध्यान रहे जो व्यक्ति किसी एक के प्रति झुकता है, वह दूसरे के प्रति सदा अकड़ा रहता है। और जो व्यक्ति किसी एक के चरण छूता है, वह किसी से चरण छुवाने को आतुर है।

मैं एक बड़े संन्यासी के आश्रम में गया। बड़े मंच पर संन्यासी बैठे हुए हैं। उनके मंच के नीचे एक छोटा तख्त है, उस पर एक दूसरे संन्यासी बैठे हैं। उस तख्त के नीचे और संन्यासी बैठे हुए हैं। उस बड़े संन्यासी ने मुझसे कहा कि आप देखते हैं मेरे बगल में कौन बैठा है? मैंने कहा मुझे देखने की जरूरत नहीं। कोई बैठा है जरूर। उन्होंने कहा, शायद आपको पता नहीं। वह हाईकोर्ट के चीफ जस्टिस हैं, साधारण आदमी नहीं हैं। लेकिन बड़े विनम्र हैं, कभी मेरे साथ तख्त पर नहीं बैठते हैं। मैंने कहा कि वह मुझे दिखाई पड़ रहा है। लेकिन उनसे भी नीचे तख्त पर कुछ लोग बैठे हुए हैं। और वे आपके मरने की प्रतीक्षा कर रहे हैं कि जब आप मरो तो वे इस तख्त पर बैठें, और आपने जो कहा कि यह आदमी विनम्र है क्योंकि आपके साथ नहीं बैठता तो यह भी सोचना जरूरी है कि आप कैसे आदमी हैं। आप बड़े अहंकारी आदमी मालूम होते हैं। आप कैसे आदमी हैं जो कोई आपके साथ बैठे तो आप अविनय समझते हैं, नीचे बैठे तो विनय समझते हैं। लेकिन वे जो चेले नीचे बैठे हैं प्रतीक्षा करते हैं कि वे कब गुरु हो जाएँ। वे जो हैं किसी के प्रति समर्पित व्यक्ति, वे दूसरों के समर्पण की मांग करते हैं क्योंकि जो वे इधर देते हैं, वह दूसरे से मांग करते हैं। निरन्तर आपने देखा होगा कि जो आदमी किसी की खुशामद करेगा वह अपने से पीछे वाले लोगों से खुशामद मांगेगा। जो आदमी किसी की खुशामद नहीं करेगा वह खुशामद भी नहीं मांगेगा। दोनों बातें एक साथ चलती हैं। जो आदमी नम्रता दिखलाएगा वह दूसरों से नम्रता की मांग करेगा।

महावीर को समझना इस अर्थ में कठिन हो जाता है। न वह किसी के प्रति समर्पित हैं, न कोई उनका गुरु है, न वे किसी के चरण छूते हैं, न वे किसी के चरणों में बैठते हैं, न वे किसी के पीछे चलते हैं। तो उन्हें समझना कठिन हो जाता है। लेकिन मेरी अपनी दृष्टि में यह है कि वह इतने समर्पित व्यक्ति हैं, समस्त के प्रति और इस भाँति झुके हुए हैं कि अब और किसके लिए झुकना

है और क्यों झुकना है। एक आदमी मेरे पास आया और उसने कहा कि आप फलां-फलां आदमी को महात्मा मानते हैं कि नहीं। मैंने कहा कि अगर तुम मुझसे कहते कि आदमी को महात्मा मानते हैं कि नहीं तो मैं जल्दी से राजी हो जाता। तुम कहते हो फलां-फलां व्यक्ति। अब इसमें यह बात छिपी है कि मैं एक व्यक्ति को महात्मा मानूँ तो दूसरों को हीनात्मा मानूँ इसके सिवाय कोई चारा नहीं है। एक को महात्मा मानने में दूसरे को हीनात्मा मानना पड़ेगा। नहीं तो उसे महात्मा कहने का कोई अर्थ नहीं रह जाता। मैंने कहा कि मैं किसी को हीनात्मा मानने में राजी नहीं हूँ इसलिए महात्मा भी विदा हो जाता है। मेरे लिए कोई महात्मा नहीं क्योंकि कोई हीनात्मा नहीं है। और एक को महात्मा बनाओ तो हजार, लाख, करोड़ को हीनात्मा बनाना जरूरी है, नहीं तो काम चलता नहीं। यानी एक महात्मा की रेखा खींचने के लिए करोड़ हीनात्माओं का घेरा खड़ा करना पड़ता है, तब एक महात्मा बन सकता है, बनाया जा सकता है। लेकिन एक आदमी को महात्मा मानने में हम करोड़ों आदमियों को हीनात्मा की दृष्टि से देखना शुरू कर देते हैं। महावीर किसी को न महात्मा मानते हैं, न हीनात्मा मानते हैं। महावीर इस विचार में ही नहीं पड़ते। वह एक-एक की गिनती नहीं कर रहे हैं : समस्त जीवन का सीधा समर्पण है। व्यक्ति बीच में आता ही नहीं।

इस प्रश्न से सम्बन्धित दूसरी बात भी मैं आपको याद दिला दूँ कि चूंकि महावीर ने किसी को गुरु नहीं बनाया इसलिए जितने लोगों ने महावीर को गुरु बनाया उन सबने महावीर के साथ अन्याय किया है। वे समझ ही नहीं पाए महावीर को। यानी जिस आदमी ने किसी को कभी गुरु नहीं बनाया है, वह कभी किसी को शिष्य बनाने की बात भी नहीं सोच सकता। दोनों संयुक्त बातें हैं। क्योंकि जब वह अपने लिए यह ठीक नहीं मानता है कि किसी को गुरु की तरह स्थापित करें, तो वह कैसे मान सकता है कि कोई उसे गुरु की तरह स्थापित करे। इसलिए जो अपने को महावीर के शिष्य और अनुयायी समझते हैं, वे महावीर के साथ एक बुनियादी अन्याय कर रहे हैं। वे उस आदमी को समझ ही नहीं पाए। जिस महावीर ने अपने से पहले चले आए किसी शास्त्र को नहीं माना उस महावीर का शास्त्र बना लेना उसके साथ अन्याय करना है। महावीर ने अपने पहले हुए किसी भी व्यक्ति को ऐसा नहीं कहा है कि उससे मुझे मिल जाएगा या वह मुझे देने वाला हो सकता है। बात ही नहीं उठाई इसकी। उस महावीर के पीछे लाखों लोग हैं जो यह कहते हैं :

"तुम्ही हमें पहुँचा दो, तुम्ही हमें मिला दो, तुम्ही हमारा कल्याण करो। जो कुछ हो तुम्ही हो।" यह सब कहना महावीर के प्रति अशोभन है लेकिन ख्याल में नहीं आता।

यह भी पूछा जा सकता है कि महावीर ऐसा क्या खोज रहे हैं जिसकी वजह से वह किसी गुरु के पास नहीं गए। निश्चित ही वह कोई ऐसी चीज खोज रहे थे जो किसी गुरु से कभी किसी को नहीं मिली। हाँ, कुछ चीजें हैं जो गुरु से मिल जाती हैं। असल में जीवन का बाह्य ज्ञान सदा गुरु से ही मिलता है। गणित सीखना है, भूगोल सीखना है। इन सब का स्वयं ज्ञान नहीं होता। ऐसा नहीं कि एक आदमी आँख बंद करके बैठ जाय और भूगोल सीख जाए। असल में जो चीजें जीवन के बाहरी फैलाव से सम्बन्धित हैं, वे सबकी सब किसी से सीखनी पड़ती हैं। लेकिन कुछ बातें ऐसी भी हैं जो बाहर के फैलाव से सम्बन्धित ही नहीं हैं। जो मेरी अन्तस् चेतना में ही छिपी हैं, उन्हें कभी किसी गुरु से नहीं सीखना पड़ता। जैसे कोई आदमी सोचता हो कि मैं आँख बन्द करके अन्तर्यात्रा करूँ और जगत् का भूगोल जान लूं। जैसी गल्ती वह आदमी करेगा ऐसी ही गल्ती वह आदमी भी करेगा जो अन्तर्यात्रा के लिए और अन्तर्दर्शन के लिए किसी गुरु के पास चला जाता है। कुछ है जो दूसरे से सीखा जाता है। और कुछ है जो स्वयं ही सीखा जाता है और दूसरे से कभी भी नहीं सीखा जा सकता। महावीर उसी परम शक्ति की खोज में थे। इसलिए वह किसी के पास नहीं गए। उन्होंने किसी को बीच में लेना नहीं चाहा क्योंकि बीच में लेने से शुद्धता नष्ट हो जाती है। अगर मैं प्रेम की खोज में हूँ तो मैं किसी को बीच में नहीं लेना चाहूँगा। अगर मैं सत्य की खोज में हूँ तो भी मैं किसी को बीच में नहीं लेना चाहूँगा। अगर मैं सौन्दर्य की खोज में हूँ तो भी मैं अपनी आँखों से सौन्दर्य देखना चाहूँगा। मैं दूसरे की आँखें उधार नहीं लेना चाहूँगा क्योंकि वे आँखें दूसरों की होंगी, अनुभव दूसरों का होगा।

महावीर उस सत्य की खोज में हैं जो स्वयं में ही छिपा रहता है। किसी के पास जाकर माँगने से, हाथ जोड़ने से, प्रार्थना करने से नहीं मिलता। इससे कोई ऐसा न समझ ले कि वे बहुत अहंकारी व्यक्ति रहे होंगे। क्योंकि साधारणतः हमारा ख्याल यह है कि जो किसी के प्रति सिर नहीं झुकाता, किसी के चरणों में नहीं बैठता, किसी को आदर नहीं देता, किसी को सम्मान नहीं देता, वह आदमी बड़ा अहंकारी है। जो आदमी किसी को सम्मान नहीं देता, जो आदमी किसी को आदर नहीं देता, वह आदमी किसी से आदर माँगता है, किसी से

सम्मान माँगता है तो अहंकार की खबर मिलती है। लेकिन जो आदर ही न आदर देता, न माँगता उसे कैसे अहंकारी कहेंगे? जो न गुरु बनाता, न, बनता, जो न शास्त्र मानता, न रचता, उसे कैसे अहंकारी कहोगे? तो महावीर अत्यन्त विनम्र व्यक्ति हैं; सीधी खोज पर अपना सीधा रास्ता खोज रहे हैं। किसी को साथ नहीं लेना चाहते। कोई साथ हो भी नहीं सकता। अकेले के रास्ते हैं, अकेले की यात्राएं हैं।

प्लुटिनस ने एक किताब लिखी है और उस किताब में कहा है: बहुत सी यात्राएँ थीं जो सबके साथ हुई, बहुत सी खोजें थीं जिनमें मित्र थे, बहुत सी सम्पत्ति थी जिसमें साथी-सहयोगी थे। फिर एक ऐसी खोज आई, जहाँ न मित्र थे, न संगी था, न कोई साथी था। अकेले की उड़ान थी अकेले की तरफ। बीच में कोई न था। जरा भी बीच में ले लेते तो बस भटकन शुरू हो जाती क्योंकि उड़ान थी अकेले की अकेले की तरफ। इसलिए महावीर बहुत सचेत हैं। महावीर को प्रेम करने वाले, बुद्ध को प्रेम करने वाले, क्राइस्ट को प्रेम करने वाले लोग भी अगर इतने ही सचेत होते तो दुनिया ज्यादा बेहतर होती। तब दुनिया में विशुद्ध धर्म होता, कोई जैन न होता, हिन्दू न होता, मुसलमान न होता, ईसाई न होता। क्योंकि हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, जैन गुरुओं से बंधी हुई धारणा से पैदा होते हैं। अगर गुरु की धारणा ही टूट जाए तो दुनिया में आदमियत होगी, धर्म होगा लेकिन पंथ न होंगे। और तब सारी वसीयत हमारी हो जाएगी। आज एक ईसाई के लिए महावीर अपने नहीं मालूम पड़ते क्योंकि कुछ दूसरे लोगों ने उन्हें अपना बना रखा है। और जब कुछ लोग किसी को अपना बना लेते हैं तो शेष लोगों के लिए वह पराया हो जाता है। आज क्राइस्ट जैनियों के लिए अपने नहीं मालूम पड़ते क्योंकि कुछ लोगों ने उन्हें अपना बना लिया है। इसका मतलब यह हुआ कि जो लोग किसी बड़े सत्य को अपना बनाने का दावा करते हैं, वे शेष मनुष्य जाति को वंचित कर देते हैं उस सत्य की सम्पदा से, उसकी वसीयत से।

अगर गुरु के आस-पास पागलपन पैदा न हों, श्रद्धा पैदा न हो, अन्धभक्ति पैदा न हो, तो सम्प्रदाय विदा हो जाए। तब क्राइस्ट भी हमारे हों, मुहम्मद भी हमारे हों, बुद्ध भी हमारे हों, सारी दुनिया की समस्त जागृत चेतनाएँ भी हमारी हों और तब हम इतने समृद्ध हों जिसका हिसाब लगाना मुश्किल है। लेकिन हम दरिद्र हैं, और हम दरिद्र अपने हाथों से हैं। महावीर ने दरिद्र होना नहीं चाहा इसलिए उन्होंने किसी को नहीं पकड़ा। जो किसी को पकड़ेगा,

वह दरिद्र हो जाएगा। वह पूर्ण समृद्ध हो गए क्योंकि सब कुछ उनका था। ऐसा कुछ भी न था जिसका निषेध करना है, ऐसा भी कुछ न था जिसको पकड़ना है। जो एक को पकड़ेगा वह दूसरे को छोड़ने की जिद्द करेगा। महावीर समय के प्रति समर्पित व्यक्ति हैं; कोई गुरु नहीं, कोई शास्त्र नहीं, कोई मान्यता नहीं।

प्रश्न : महावीर की उन शर्तों का क्या अभिप्राय है कि ऐसा कोई खास व्यक्ति होगा तो ही भिक्षा लूंगा, नहीं तो नहीं लूंगा !

उत्तर : जैसा मैंने कहा कि खोज पूरी हो चूकी थी पहले ही जन्म में। इस जन्म में वह सिर्फ बांटने आए हैं। इसलिए उन्होंने यह प्रयोग किया कि अगर मैं बांटने ही आया हूं और मेरा स्वार्थ नहीं है तो अगर विश्वसत्ता मुझे भोजन देना चाहे तो ठीक, न देना चाहें तो मैं भोजन भी क्यों लूं। अगर विश्व-सत्ता मुझे जीवन देना चाहे तो ठीक, न देना चाहे को मेरे जीवन का भी क्या अर्थ है ? अब महावीर का कोई निजी स्वार्थ नहीं है। उनमें जिजीविषा नहीं है। इसलिए उन्होंने अनूठे काम किए हैं। भोजन लेने निकलते तो वह अपने मन में संकल्प बना लेते कि आज मैं ऐसे घर में भोजन लूँगा जिस घर के सामने दो गाएँ लड़ती हों। गायों का रंग काला हो, स्त्री खड़ी हो, उसका एक पैर बाहर हो, दूसरा पैर भीतर हो, आँख से आंसू बहते हों, होठों पर हँसी हो। वह एक ऐसी धारणा बना लेते सुबह, और तब वह भिक्षा माँगने निकलते। अगर यह धारणा पूरी हो जाती कहीं तो वह भिक्षा ले लेते, नहीं तो वह वापस लौट आते। इसका मतलब बहुत गहरा है। महावीर कह रहे हैं कि अगर अब विश्व की समग्र सत्ता की इच्छा हो तो ही मैं जीता हूं, अपनी तरफ से मैं जीता ही नहीं। अगर भोजन देना हो तो ठीक, नहीं तो मैं माँगने नहीं जा रहा हूं। कोई मुझे दे रहा है इसलिए भी मैं नहीं लूँगा। अब मैं किसी का अनुग्रह भी नहीं मान रहा हूं। अगर जगत् की पूर्ण सत्ता ही मुझे भोजन देना चाहती हो तो ठीक, अन्यथा मैं वापस लौट आता हूँ। लेकिन मुझे कैसे पता चलेगा कि विश्व की सत्ता ने मुझे भोजन दिया। तो मैं एक शर्त बना लेता हूं। वह शर्त विश्व की सत्ता पूरी कर दे तो मैं समझूं कि भोजन उससे आया। मैं देने वाले को धन्यवाद नहीं दूंगा क्योंकि देने वाले का कोई सवाल ही न रहा। न मैं अनुगृहीत हूं किसी का।

और गहरी बात यह है कि जो व्यक्ति पूर्णता को उपलब्ध हुआ लौट आया है उसके लिए कर्म जैसी कोई चीज नहीं। कर्म होता है इच्छा से और कर्म का

जन्म होता है आकांक्षा से। महावीर कहते हैं कि मैं यह भी इच्छा नहीं करता कि भोजन मुझे मिलना ही चाहिए। मैं यह भी विश्व की सत्ता पर छोड़ देता हूँ। यह पूरे के प्रति समर्पण है। अगर पूरी हवाएँ, पहाड़, पत्थर, मानवीय चेतना, पशु, देवी-देवता जो भी हैं, अगर उस पूरे की आकांक्षा है कि महावीर एक दिन और जी जाएं तो इन्तजाम करो, अन्यथा अपना कोई इन्तजाम नहीं। मैं इसलिए शर्त लगा देता हूँ क्योंकि मुझे पता कैसे चलेगा कि किसी एक व्यक्ति ने मुझे भोजन दिया या पूरे जगत् के अस्तित्व ने मुझे भोजन दिया। तो महावीर बड़ी पेचीदा शर्त लगाते हैं जिसका पूरा होना मुश्किल मालूम होता है कि अब एक स्त्री एक पैर बाहर किए हो, दूसरा पैर भीतर किए हो। राजकुमारी हो, हाथ में हथकड़ियाँ पड़ी हों, आँख से आँसू गिरते हों, मुँह से हँसी आती हो। ऐसा किसी द्वार पर कोई मिल जाए तो उस द्वार पर ही मैं भोजन कर लूँगा। फिर जरूरी नहीं कि उस द्वार पर भोजन देनेवाला हो। ऐसा द्वार मिल जाए आज, यह भी जरूरी नहीं। ऐसी स्थिति बने, यह भी जरूरी नहीं। महावीर बिल्कुल ही अनहोनी की कल्पना करके घर से निकलते हैं, अपनी भिक्षा के लिए निकलते हैं। यह अनहोनी अगर पूरी हो जाए तो महावीर अपने मन में समझ लेते हैं कि विश्व की सत्ता ने एक दिन जीने के लिए और दिया है। यानी मैं अपनी तरफ से, अपनी जिद्द से नहीं टिका हूँ। जरूरत है अस्तित्व को तो मैं आ रहा हूँ। नहीं तो मैं एक दिन भी जीने की इच्छा नहीं करता। अपनी ओर से जीने का कोई अर्थ नहीं है।

ऐसा प्रयोग कभी किसी ने नहीं किया है जगत् में। बहुत अनूठा है यह प्रयोग। आज भी जैन मुनि ऐसा करते हैं लेकिन श्रावक उनको पहले ही बता जाते हैं : ऐसा-ऐसा कर लेना या वे श्रावकों को बता देते हैं। और कुछ बँधे हुए इन्तजाम कर रखे हैं उन्होंने। एक घर के सामने दो केले लटके हैं तो वहाँ वे भोजन ले लेंगे। दस-पाँच घरों में लोग अपने घर के सामने केला लटका देते हैं। एक, दो स्त्रियाँ बच्चे को लेकर खड़ी हो जाती हैं। ऐसे दस-पाँच बँधे हुए नियम हैं उनके। वे बँधे हुए नियम दस घरों में पूरे कर दिए जाते हैं। यह अब भी चलता है। जैन मुनि वैसा ही करता है रोज भोजन लेने के पहले। पच्चीस चौके सज जाते हैं, पच्चीस चौकों के सामने वह घूमता है। पच्चीस चौकों में उसकी बात पूरी हो जाती है। लेकिन महावीर ने जो प्रयोग किया वह बहुत ही अनूठा था। वह ऐसी धारणा लेकर चलते थे कि जिसमें उपाय कम ही था कि वह अपने आप घट जाए जब तक कि विश्वसत्ता राजी न हो।

, महावीर एक-एक दिन जी रहे हैं, अपने लिए नहीं, अगर जरूरत है परमात्मा को तो ही। और उनका पूरा जीवन इस बात का प्रमाण है कि विश्वसत्ता को जिस व्यक्ति की जरूरत है, वह उसके लिए आयोजित करती है। जिसकी श्वांस से, जिसके होने से, जिसके जीने से, जिसकी आँख से, जिसके चलने से कुछ घटित हो रहा है, जोकि कल्प-कल्प बीत जाए तो दुबारा घटित मुश्किल से होता है विश्वसत्ता को जरूरत है उसके अस्तित्व की तो वह उसके लिए आयोजन करती है। तो एक-एक दिन के लिए महावीर जी रहे हैं। ऐसा भी नहीं है कि इकट्ठा एक दिन तय कर लिया तो बारह साल के लिए काफी हो गया। इस आदमी को अपनी ओर से जीने का कोई मोह नहीं रह गया। बहुत कीमती है यह बात कि कोई व्यक्ति चाहे तो बराबर वैसा जी सकता है लेकिन तभी जब उसे अपने जीवन का मोह विदा हो गया हो। तब पूरा अस्तित्व उसके प्रति मोहपूर्ण हो जाता है। और उसे बचाने के उपाय करने लगता है, और उसके ढंग की, बेढंग की शर्तें भी स्वीकार करने लगता है। फिर वह क्या कहता है क्या नहीं कहता, कैसा उठता है कैसा बैठता है सबको स्वीकृति हो जाती है। सारा जगत् एक गहरे प्रेम से उसे घेर लेता है और उसके लिए जो भी किया जा सके, करने लगता है।

बुद्ध के गृहत्याग की कथा प्रचलित है। बुद्ध घर से चले आधी रात को। उनके घोड़े के पैरों की टाप ऐसी है कि वह बारह कोस तक सुनी जाती है। बुद्ध उस घोड़े पर सवार होकर चले हैं। घोड़े की टाप इतनी होगी कि सारा महल जग जाए। कहानी कहती है कि घोड़े के टाप के नीचे देवता फूल रखते चले जाते हैं। टाप फूलों पर पड़ती है ताकि गाँव में कोई जग न जाए। क्योंकि बहुत कल्पों के बाद ही कभी कोई व्यक्ति महाअभिनिष्क्रमण करता है। जब वे नगर के द्वार पर पहुँचते हैं तो बड़ी-बड़ी कीलें हैं वहाँ जिन्हें पागल हाथी भी धक्के मारे तो खुल नहीं सकतीं। और जब द्वार खुलते हैं तो उनकी इतनी आवाज होती है कि पूरा नगर सुनता है मगर जब बुद्ध वहाँ पहुँचते हैं तो देवता द्वार को ऐसा खोल देते हैं जैसे वह बन्द हो न था। यह सारी कहानियाँ निर्मित हैं। लेकिन साथ-साथ ही ये इस बात की भी सूचक हैं कि ऐसे व्यक्ति के लिए सारा जगत्, सारा अस्तित्व सुविधा देने लगता है क्योंकि इस सारे जगत् को, इस सारे अस्तित्व को इस आदमी की जरूरत है। मगर हम सबके लिए अस्तित्व की आवश्यकता रहती है। श्वांस चले इसलिए हवा की जरूरत है, प्यास बुझे इसलिए पानी की जरूरत है, गर्मी मिले इसलिए सूरज की

जरूरत है। सारे अस्तित्व की हमें जरूरत है अपने लिए। लेकिन कभी-कभी ऐसा व्यक्ति भी पैदा हो जाता है जिसके लिए अस्तित्व को उसकी जरूरत है कि वह हो जाए तो थोड़ी देर रह जाए, और उसके लिए कोई असुविधा न हो। और महावीर इस बात को अच्छी तरह जानते हैं कि अगर हमें जिन्दा रखना हो तो आज ऐसा इन्तजाम हो जाए; नहीं तो हम वापस लौट जाएँगे। न कोई शिकायत है पीछे लौटने से, न कोई नाराजगी है। इतनी ही खबर जरूर है कि अस्तित्व कहता है अब तुम्हारी जरूरत नहीं। वह हम स्वीकार कर लेंगे और बिदा हो जाएँगे। इस वजह से वे वैसा भाव लेकर चलते हैं। लेकिन उसको नहीं समझा जा सका। ऐसा आदमी चुनौती दे रहा है विश्वसत्ता को कि रखना हो तो रखो अन्यथा हम जाते हैं।

प्रश्न : महावीर को पारिवारिक या सामाजिक कौन-सा असंतोष था ? क्या उनका गृहत्याग जवाबदारियों से पलायन नहीं है ?

उत्तर : पहली बात यह है कि महावीर को न तो कोई पारिवारिक असंतोष था, और न कोई सामाजिक असंतोष था। इस जन्म में तो कोई व्यक्तिगत असंतोष भी नहीं था। आम तौर से तीन तरह के असंतोष होते हैं। पारिवारिक असंतोष, सामाजिक असंतोष या वैयक्तिक असंतोष। पारिवारिक असंतोष आर्थिक हो सकता है, विवाह-दाम्पत्य का हो सकता है, शरीर की सुविधा-असुविधा का हो सकता है। वैसा असंतोष जिसे है वह आदमी कभी धार्मिक नहीं हो सकता। क्योंकि वैसा आदमी उस असंतोष को मिटाने में लगा रहता है। वैसा आदमी अत्यधिक भौतिक होता है। फिर सामाजिक असंतोष है। व्यवस्था है, समाज की नीति है, नियम है, शोषण है, धन है, राज्य है, सम्पत्ति है, वितरण है। यह सब है। ऐसा असंतोष भी होता है। ऐसा सामाजिक, क्रान्तिकारी, सुधारक व्यक्ति भी धार्मिक नहीं होता। धार्मिक होता है वह व्यक्ति जिसके असंतोष का न समाज से कोई सम्बन्ध है, न परिवार से कोई सम्बन्ध है, न सम्पत्ति से कोई सम्बन्ध है, न शरीर से कोई सम्बन्ध है, जिसके असंतोष का एक ही अर्थ है कि मेरा होना मात्र अभी ऐसा नहीं है कि जिससे मैं सन्तुष्ट हो जाऊँ, जिसकी आखिरी चिन्ता इस बात की है कि मैं जैसा हूँ क्या ऐसा ही होना काफी है, पर्याप्त है ? अगर हिंसक हूँ तो हिंसक होना ही काफी है, पर्याप्त है ? अगर क्रोधी हूँ तो क्रोधित होना ही काफी है ? अशान्त हूँ तो अशान्त होना ही ठीक है ? दुःखी हूँ, अज्ञानी हूं, सत्य का कोई पता नहीं, प्रेम का कोई अनुभव नहीं, क्या ऐसा होना ही काफी है ? एक ऐसा असन्तोष

है जो इस भीतरी जगत् से उठता है जहाँ व्यक्ति कहता है कि जहाँ अज्ञान नहीं, अंधकार नहीं, दुःख नहीं, अशांति नहीं, क्रोध नहीं, घृणा नहीं, द्वेष नहीं, मैं ऐसा जीवन चाहता हूँ। इस आन्तरिक असंतोष से धार्मिक व्यक्ति का जन्म होता है। इस जीवन में महावीर को यह असंतोष भी नहीं है क्योंकि धार्मिक व्यक्ति का जन्म हो चुका है लेकिन पिछले जन्मों में जो उनका नितान्त असंतोष है वह आध्यात्मिक है; वह सामाजिक या पारिवारिक नहीं है।

आध्यात्मिक असन्तोष बहुत कीमती चीज है और वह जिसमें नहीं है वह व्यक्ति कभी उस यात्रा पर जाएगा ही नहीं जहाँ आध्यात्मिक संतोष उपलब्ध हो जाए। जिस असन्तोष से हम गुजरते हैं उसी तल का सन्तोष हमें उपलब्ध हो सकता है। अगर धन का असन्तोष है तो ज्यादा से ज्यादा धन मिलने का सन्तोष उपलब्ध हो सकता है। लेकिन बड़े मजे की बात है कि जिस तल पर हमारा असन्तोष होगा उसी तल पर हमारा जीवन होगा। प्रत्येक व्यक्ति को खोज लेना चाहिए कि मैं किस बात से असन्तुष्ट हूँ तो उसे पता चल जाएगा कि वह किस तल पर जी रहा है। अब यह हो सकता है कि एक आदमी महल में जी रहा है, विलास में, भोग में। और एक आदमी लंगोटी बाँध कर संन्यासी की तरह खड़ा है—नंगा, धूप में, सर्दी में, वर्षा में। इससे कुछ पता नहीं चलता कि कौन धार्मिक है। पता चलेगा यह जानकर कि इस व्यक्ति के भीतर असंतोष क्या है। हो सकता है कि महल में जो व्यक्ति है उसके मन में यह असन्तोष हो कि यह महल किस मतलब का है, यह धन किस मतलब का है। और उसे यह असन्तोष पकड़े हुए है कि मैं उसे कैसे पाऊँ जो मेरा स्वरूप है, जो मेरा अन्तिम आनन्द है। सोता है महल में लेकिन उसका असन्तोष उस तल पर चल रहा है। तो वह व्यक्ति आध्यात्मिक है, धार्मिक है। पर एक आदमी लंगोटी बाँधे सड़क पर खड़ा है, मन्दिर में प्रार्थना कर रहा है, पूजा कर रहा है। लेकिन प्रार्थना में माँग कर रहा है कि आज अच्छा भोजन मिल जाए, ठहरने को अच्छी जगह मिल जाए, इज्जत मिल जाए, अनुयायी मिल जाएँ, भक्त मिल जाएँ, आश्रम मिल जाए। अगर वह इसी तरह की प्रार्थना मन्दिर में भी कर रहा है तो वह धार्मिक नहीं है। हमारा असन्तोष ही हमारी खबर देता है कि हम क्या हैं?

महावीर इस जीवन में किसी असन्तोष में नहीं लेकिन पिछले सारे जन्मों में उनके असन्तोष की एक लम्बी यात्रा है। वह निरन्तर यही है कि मेरा अस्तित्व, मेरा सत्य, मेरी वह स्थिति जहाँ मैं परम मुक्त हो जाऊँ, न

कोई सीमा रहे, न कोई बंधन रहे, वह कहाँ है ? वह कैसे मिले, उसकी खोज जारी है। ऐसी खोज वाला व्यक्ति भी दूसरों के पारिवारिक असन्तोष को मिटाने के लिए उत्सुक हो सकता है, दूसरों के सामाजिक असन्तोष को मिटाने के लिए भी उत्सुक हो सकता है। ऐसा व्यक्ति निपट सन्त भी रह सकता है, क्रान्तिकारी भी बन सकता है, सुधारक भी बन सकता है। लेकिन ऐसे व्यक्ति की स्वयं की चिन्ता इन तलों पर नहीं है। उसकी चिन्ता एक अलग ही तल पर है। और बहुत कम लोग हैं जिनके जीवन में आध्यात्मिक असन्तोष होता है। अगर हम, लोगों के सिर खोल कर देख सकें तो हम बहुत हैरान हो जाएँगे। उनके असन्तोष बहुत ही नीचे तल के होते हैं और जिस तरह के असंतोष होते हैं उस तल पर व्यक्ति होता है।

नीत्से ने कहा है कि अभागा होगा वह दिन जिस दिन आदमी अपने से सन्तुष्ट हो जाएगा। अभागा होगा वह दिन जिस दिन मनुष्य की आकांक्षा का तीर पृथ्वी के अतिरिक्त और किन्हीं तारों की ओर न मुड़ेगा। हम सबकी आकांक्षाओं के तीर पृथ्वी से भिन्न कहीं भी नहीं जाते। हम सब चीजों से अतृप्त होते हैं, सिर्फ अपने को छोड़कर। एक आदमी मकान से अतृप्त होगा कि मकान ठीक नहीं, दूसरा बड़ा मकान बनाऊँ। एक आदमी अतृप्त होगा कि पत्नी ठीक नहीं है दूसरी पत्नी चाहिए, बेटा ठीक नहीं है दूसरा बेटा चाहिए, कपड़े ठीक नहीं हैं दूसरे कपड़े चाहिए। लेकिन अगर हम खोजने जाएँ तो ऐसा आदमी मुश्किल से मिलता है जो न मकान से अतृप्त है, न कपड़ों से, न पत्नी से, न बेटों से, जो अपने से अतृप्त है। और जो कहता है कि मैं स्वयं ठीक नहीं हूँ, मुझे और तरह का आदमी होना चाहिए। जब आदमी अपने प्रति ही असन्तुष्ट हो जाता है तब उसके जीवन में धर्म की यात्रा शुरू होती है। महावीर जरूर असन्तुष्ट रहे। वही यात्रा उन्हें वहाँ तक लाई है जहाँ तृप्ति और सन्तोष उपलब्ध होता है। क्योंकि जिस दिन व्यक्ति अपने को रूपान्तरित करके उसे पा लेता है जो वह वस्तुतः है उस दिन परम तृप्ति का क्षण आ जाता है। उसके बाद फिर कोई अतृप्ति नहीं। अगर वह फिर जीता है एक क्षण भी तो वह दूसरों के लिए ताकि वह उन्हें तृप्ति के मार्ग की दिशा दे सके, पर उसकी अपनी यात्रा समाप्त हो जाती है।

आपने पूछा है कि क्या उनका गृहत्याग दायित्व से पलायन नहीं है। मेरा कहना है कि महावीर ने कभी गृहत्याग किया ही नहीं। गृहत्याग वे लोग करते हैं जिन्हें गृह के साथ आसक्ति होती है। महावीर ने तो वही छोड़ा है जो

घर नहीं था। हमें यह ख्याल में आना जरा मुश्किल होता है क्योंकि हम मिट्टी, पत्थर के घरों को घर समझे हुए हैं। इसलिए गृहत्याग का शब्द ही भ्रान्त है। असल में महावीर घर की खोज में निकले हैं। जो घर नहीं था उसे छोड़ा है और जो घर है उसकी खोज में गए हैं। और हम जो घर नहीं है, उसे पकड़े बैठे हैं और जो घर हो सकता है उसकी ओर आँख बन्द किये हुए हैं। हम पलायनवादी हैं। पलायन का क्या मतलब होता है? एक आदमी कंकड़-पत्थर छोड़ दे और हीरों की खोज पर निकल जाए। पलायनवादी कौन है? क्या आनन्द की खोज पलायन है? क्या ज्ञान की खोज पलायन है? क्या परम जीवन की खोज पलायन है? तो महावीर ने कोई गृहत्याग नहीं किया। वह गृह की खोज में ही गए हैं।

आमतौर से आदमी सोचता है कि जो आदमी जिम्मेदारी से भागता है वह पलायनवादी है। लेकिन क्या पक्का पता है कि यही जिम्मेदारी है? महावीर जैसा आदमी दूकान पर बैठकर दूकान चलाता है, क्या यही दायित्व होगा उसका जगत् के प्रति, जीवन के प्रति? महावीर जैसा व्यक्ति घर में बैठ कर बाल-बच्चों को बड़ा करता रहे, क्या यही दायित्व होगा उसका? महावीर जैसे व्यक्ति के लिए इस तरह के क्षुद्रतम घेरे में खड़े होकर सब खो देने से अधिक दायित्वहीनता और क्या हो सकती है। बड़े दायित्व जब पुकारते हैं छोटे दायित्व तब छोड़ देने पड़ते हैं। बड़े दायित्व की पुकार चूँकि हमारे जीवन में नहीं है, इसलिए हमें देखकर बड़ी मुश्किल होती है कि वह आदमी जिम्मेदारियाँ छोड़कर जा रहा है। यह आदमी कितनी बड़ी जिम्मेदारियाँ ले रहा है, यह हमारे ख्याल में नहीं आता। आदमी एक घर को छोड़ता है तो करोड़ों घर उसके हो जाते हैं। घर के आँगन को छोड़ता है तो सारा आकाश उसका आँगन हो जाता है। पत्नी को, बेटे को, प्रियजन को छोड़ता है तो सारा जगत् उसका प्रियजन, और मित्र हो जाता है। लेकिन हमने हमेशा उसने जो छोड़ा है, उस भाषा में सोचा है। जिस विस्तार पर वह फैला है, वह हमने नहीं सोचा। और जो उस एक घर को छोड़कर गया, उसे भी छोड़कर कहाँ गया?

बुद्ध के जीवन में एक मधुर घटना है। बुद्ध लौटे हैं घर बारह वर्ष बाद। पत्नी नाराज है। बुद्ध का बेटा एक दिन का था जब वह घर छोड़कर चले गये थे। वह अब बारह वर्ष का हो गया है। पत्नी उसे सामने कर देती है व्यंग्य में, मजाक में और कहती है कि यह तुम्हारे पिता हैं, पहचान लो। पूछ लो तुम्हारे लिए क्या कमाई इन्होंने छोड़ी है, तुम्हारा दायित्व क्या निभाया है? यही रहे तुम्हारे

पिता। यह जो भिक्षापात्र लिए खड़े हैं यही सज्जन तुम्हें जन्म देकर एक ही रात बाद भाग गये थे। इन्होंने जगाकर भी मुझे नहीं कहा था कि मैं जाता हूँ। अपने दाय का भाग माँग लो। यह तुम्हारे पिता हैं।

भिक्षु यह सुनकर सन्नाटे में आ गये। आनन्द घबड़ाने लगा कि इस पागल को पता नहीं किससे क्या कह रही है? तब बुद्ध ने आनन्दित होकर राहुल से कहा कि बेटा निश्चिन्त हो मैं तेरा पिता हूँ। हाथ फैला कि जो सम्पत्ति मैंने तेरे लिए इकट्ठी की वह तुझे दे दूँ। बुद्ध का हाथ तो खाली है तो भी राहुल ने हाथ फैला दिया है। बुद्ध ने अपना भिक्षापात्र उसके हाथ में दे दिया और कहा कि तू दीक्षित हुआ। क्योंकि बुद्ध जैसा पिता तुझे ऐसी ही सम्पदा दे सकता है जो तुझे भी बुद्ध बना दे। मैं तो बहुत दिन भटका, अब तुझे क्यों भटकाऊँ? यशोधरा रोने लगी है। लोग चिल्लाने लगे हैं कि यह क्या पागलपन हो रहा है? एक बेटा छोड़कर गये थे उसे भी लिए जाते हैं। तो बुद्ध कहते हैं कि और भी जिसको चलना हो, उसको भी मैं ले जाने को तैयार हूँ। क्योंकि जो मैंने वहाँ पाया है, अपने बेटे को कैसे वंचित रखूँ उससे? जिन हीरों की खदान है वहाँ अपने बेटे को कैसे न ले जाऊँ?

हमें लगता है कि दायित्व छोड़कर बुद्ध भाग गये। लेकिन मैं कहता हूँ कि जैसा बुद्ध थे, वैसा हो रहकर क्या दायित्व पूरा कर लेते हैं? कितने बाप हुए हैं, कितने बेटे हुए हैं, किसने क्या दायित्व पूरा किया है? एक बाप जो कर सकता था ज्यादा से ज्यादा बेटे के लिए वह बुद्ध ने किया है और जो कुछ जाना था, जो कुछ पाया था उसके सामने खोल दिया है। शायद इस दायित्व को समझना हमें मुश्किल हो जाए। अपने दुःख के भार को दूसरे पर लादना ही हम दायित्व समझते हैं। अज्ञान की यात्रा को गति देना ही हम दायित्व समझते हैं।

पलायन वह करता है जो दुःखी हो। भागता वह है जो दुःखी हो, डरता हो, भयभीत हो, जिसे शक हो कि जीत न सकूँगा। ऐसा आदमी हमें भागता दिखता है। घर में आग लगी हो और एक आदमी घर के बाहर निकले उसे आप भागने वाला तो न कहेंगे। कोई यह तो नहीं कहेगा कि घर में आग लगी थी और यह आदमी बाहर निकल आया। कोई नहीं कहेगा कि यह पलायनवादी है क्योंकि वहाँ भागने का सवाल ही नहीं है। विवेक की बात है कि कोई बाहर हो जाए।

महावीर जैसे व्यक्ति जहाँ से भी हटते हैं, भागते नहीं—जहाँ, जहाँ आग है, हटते हैं। हटना एकदम विवेकपूर्ण है। और इसलिए भी हटते हैं कि जहाँ-जहाँ दुःख जन्मता है, जहाँ-जहाँ दुःख बढ़ता है और फैलता है, वहाँ खड़े रहने का क्या प्रयोजन है? वहाँ से वे हटते हैं सिर्फ इसलिए कि और बेहतर जगह हैं जहाँ आग नहीं है। जैसे कि आप बीमार पड़े हैं, आप इलाज कराने चले जाएँ और डाक्टर आपसे कहे कि आप बड़े पलायनवादी हैं, बीमारी से भागते हैं। वह आदमी कहेगा कि मैं बीमारी से नहीं भागता। लेकिन बीमारी में खड़े रहने में न तो कोई बुद्धिमत्ता है, न कोई अर्थ है। मैं स्वास्थ्य की खोज में जाता हूँ। हम बीमार आदमी को कभी नहीं कहते कि तुम डाक्टर के यहाँ मत जाओ। एक अंधेरे में खड़ा आदमी सूरज की तरफ आता है तो हम नहीं कहते कि तुम पलायनवादी हो। लेकिन हम महावीर जैसे लोगों को पलायनवादी कहना चाहते हैं। उसका कारण सिर्फ यह है कि अगर महावीर जैसे लोगों को सिद्ध कर देते हैं पलायनवादी तो हम जहाँ खड़े हैं वहाँ से हटने की हमें जरूरत नहीं रह जाती। हम निश्चिन्त हो जाते हैं कि यह आदमी गड़बड़ है, हम जहाँ खड़े हैं, हम बिल्कुल ठीक हैं। हम सब मिलकर तय कर दें कि यह आदमी सिर्फ भगोड़ा है और हम बहादुर लोग हैं। हम जिन्दगी में खड़े हैं, उस जिन्दगी में जहाँ जिन्दगी है ही नहीं। और बहादुरी क्या है? और उस बहादुरी से हमें क्या उपलब्ध हो रहा है?

जिन लोगों ने महावीर को 'महावीर' नाम दिया, उन लोगों ने महावीर को पलायनवादी नहीं समझा था। शायद कारण यह है कि हम अपनी कमजोरी की वजह से जहाँ से नहीं हट सकते हैं, वहाँ से महावीर अपने साहस की वजह से हट जाते हैं। लेकिन हम अपनी कमजोरी को भी छिपाते हैं, हम उसके लिए कोई न्याययुक्त कारण खोज लेते हैं और कोई नहीं मानना चाहता कि हम कमजोर हैं। और तब हमारे बीच से अगर एक बहादुर आदमी हटता हो—बड़ी मुश्किल है हिम्मत जुटाना तो क्या वह पलायन है? घर में आग लगी हो और घर में पचास आदमी हों और हर आदमी मानता ही न हो कि घर में आग लगी है तो जिस आदमी को आग लगी दिखाई पड़ती हो वह घर के बाहर निकलता हो तो लोग कहेंगे कि यह पलायनवादी है। हमने दुनिया के श्रेष्ठतम लोगों को सदा पलायनवादी कहा है।

स्टीफेन जूड ने आत्महत्या की। लेकिन आत्महत्या करने के पहले उसने एक पत्र में लिखा कि ध्यान रहे, कोई यह न समझे कि मैं पलायनवादी हूँ।

और यह भी ध्यान रहे कि मैं कायर नहीं हूँ। बल्कि मेरा नतीजा तो यह है जिन्दगी भर का कि लोग चूंकि मरने की हिम्मत नहीं जुटा पाते, इसलिए जिन्दा रहे चले जाते हैं। मैं भी बहुत दिन तक हिम्मत नही जुटा पाया इसलिए जिन्दा रहा। इतना मुझे साफ दिखाई पड़ गया है कि इस तरह की जिन्दगी अगर रोज जीनी है तो मैं इसे तोड़ दूँ। और ध्यान रहे कि मैं तोड़ता हूँ तो सिर्फ इसलिए कि मैं हिम्मतवर हूँ और तुम नहीं तोड़ते हो क्योंकि तुम हिम्मतवर नहीं हो। लेकिन मैं जानता हूँ कि मेरे मरने के बाद लोग कहेंगे कि वह कायर था, पलायनवादी था, मर गया, भाग गया जिन्दगी से।

यह आदमी बहुत कीमती बात कह रहा है। यह उस जगह खड़ा है जहाँ से आदमी या तो आत्महत्या करता है, या आत्मसाधना में जाता है। यह उस जगह खड़ा है जहाँ जिन्दगी व्यर्थ हो गई है, वही रोज सुबह का उठना, वही रोज शाम सो जाना, वही काम, वही क्रोध, वही लोभ। वही सब रोज-रोज, एक मशीन की तरह हम घूमते चले जाते हैं। कोई उस जगह पहुँच गया है जहाँ वह कहता है कि अगर यही जिन्दगी है तो मैं खत्म करता हूँ अपने को। और ध्यान रहे कि मैं कायर नहीं। मेरा भी मानना है कि वह कायर नहीं। वह गल्ती करता है, वह चूक गया है एक बिन्दु को जिसको महावीर नहीं चूकते। तो महावीर उस जगह तक पहुँचते हैं जहाँ दुनिया के सभी लोग जिनकी जिन्दगी में क्रान्ति घटित होती है, एक दिन पहुँचते हैं, जहाँ या तो आत्म-हत्या या साधना—दूसरा विकल्प नहीं रह जाता। या तो जैसे हम हैं उसको खत्म करो, शरीर से मिटा दो, या जैसे हम हैं, उसे बदलो आत्मिक अर्थों में ताकि हम दूसरे हो जाएँ। जो आत्महत्या कर लेता है वह कायर नहीं है। है तो बहादुर ही, लेकिन वह भूल से भरा है, क्योंकि आत्महत्या से क्या होगा? जीवन की आकांक्षा फिर नये जीवन बना देगी।

महावीर जैसे व्यक्ति आत्महत्या नहीं करते। आत्मा को ही रूपान्तरित करने में लग जाते हैं। आत्महत्या करने से क्या होगा? आत्मा को ही बदल डालें, नया जीवन कर लें लेकिन हमें दोनों ही भागे हुए लग सकते हैं। और इसके पीछे कारण भी है क्योंकि सौ में से निन्यानवें लोग निश्चित ही भागते हैं। सौ संन्यासियों में से निन्यानवें संन्यासी पलायनवादी ही होते हैं। और उन निन्यानवें के कारण सौ को यह मानना मुश्किल हो जाता है। निन्यानवें तो इसलिए भागते हैं कि बीमारी है, झगड़ा है, पत्नी मर गई है, दिवाला निकल गया है। कुछ ऐसे कारण हैं जो उन्हें कहते हैं कि इस झंझट से दूर हो जाओ।

लेकिन ऐसे आदमी अगर झंझट से भागते हैं तो नई झंझटें खड़ी कर लेते हैं। इसमें कोई फर्क नहीं पड़ता क्योंकि आदमी वहीं का वहीं रहा। वह नई झंझटें निर्मित कर लेता है। ऐसा आदमी पलायनवादी कहा जा सकता है। लेकिन महावीर ऐसे पलायनवादी नहीं हैं। क्योंकि वह कोई नई झंझट खड़ी नहीं कर रहे हैं। और किसी भय से नहीं भाग रहे हैं।

अगर कोई आदमी किसी ज्ञानपूर्ण चेनता में सीढ़ी बदल देता है, दूसरी सीढ़ी पर चला जाता है तो यह पलायन नहीं है। अगर कोई आदमी भाग रहा हो किसी से डर कर तो एक बात, और एक आदमी भाग रहा हो कुछ पाने के लिए तो वह बिल्कुल दूसरी बात। वह आदमी भी भाग रहा है जिसके पीछे बन्दूक लगी हो और वह आदमी भी दोड़ता है जिसको हीरों की खदान दिखाई पड़ गई है। लेकिन एक के पीछे बन्दूक का भय है, इसलिए भागता है; एक को हीरों की खदान दिख गई है, इसलिए भागता है। दूसरे आदमी को आप भागने वाला नहीं कह सकते, उसे गतिवान् कह सकते हैं, क्योंकि वह किसी चीज से भाग नहीं रहा है। उसकी दृष्टि का जोर है जहाँ वह जा रहा है, जहाँ से वह जा रहा है वहाँ नहीं। दोनों हालतों में वह जगह छूट जाती है। लेकिन दोनों हालतों में बुनियादी फर्क है। महावीर कहीं से भी भागे हुए नहीं हैं लेकिन निन्यानवें भागे हुए संन्यासियों में से एक गया हुआ संन्यासी पहचानना मुश्किल हो जाता है। और वह मुश्किल हमारी समझ में ऐसी बाधाएँ खड़ी कर देती हैं कि उसके दो ही रास्ते हैं। या तो हम उन संन्यासियों को गया हुआ मान लेते हैं, और या हम उन्हें भागा हुआ मान लेते हैं। जबकि जरूरत इस बात की है कि हम जाँच-पड़ताल करें कि कोई आदमी पाने गया है, या कोई आदमी सिर्फ छोड़कर भागा है।

पाने गया हो तो जरूर कुछ चीजें छूट जाती हैं। आप सीढ़ियाँ चढ़ रहे हैं। दूसरी सीढ़ी पर पैर रखते हैं, पहली सीढ़ी छूट जाती है, पहली सीढ़ी से आप भागते नहीं, सिर्फ पहली सीढ़ी छूटती है क्योंकि दूसरे सीढ़ी पर पैर रखना जरूरी है। जो लोग ऊँची सीढ़ियों पर पैर रखते हैं, नीची सीढ़ियाँ छूट जाती हैं। नीची सीढ़ियों से जो डरता है वह ऊँची सीढ़ी पर नही पहुँच पाता, वह नीचे की सीढ़ियों पर उतर आता है क्योंकि वह डरा हुआ है। उसका भागना सिर्फ उसे और नीचे की सीढ़ियों पर ले आता है। इसलिए अक्सर ऐसा होता है कि अगर एक गृहस्थ भाग कर संन्यासी हो जाए तो वह महागृहस्थ हो जाता है। उसकी चाल गृहस्थी की चाल से और भी ज्यादा पाखण्डी हो जाती है।

वह फिर भी पैसा इकट्ठा करता है। कल वह कमा कर इकट्ठा करता था, आज वह कमाने वालों को फँसा कर इकट्ठा करता है। अब उसका जाल जरा गहरा सूक्ष्म, चालाकी का हो जाता है। कल भी वह मकान बनाता था, अब भी बनाता है। कल बनाए हुए मकानों को मकान कहता था, अब उनको आश्रम, मन्दिर ऐसे नाम देता है। कल जो कहता था, वही अब करता है। कल भी अदालत में लड़ता था, अब भी अदालत में लड़ता है। लड़ने का आधार कल व्यक्तिगत सम्पत्ति थी, आज आश्रम की सम्पत्ति है। भागा हुआ व्यक्ति नीची सीढ़ियों पर उतर जाता है। लेकिन ऊपर की सीढ़ी पर जो जाएगा उसकी भी सीढ़ी टूटती है। यह बारीक है पहचान और यह हमें समझ में तब आएगी जब हम अपनी जिन्दगी में इसकी पहचान करें कि हम कहीं से भागे हैं, या कहीं गए हैं।

यहाँ आप सब मित्र आए हैं। कोई आ भी सकता है, कोई भागा हुआ भी आ सकता है। एक आदमी बेचैन हो गया है, परेशान हो गया है, पत्नी सिर खाए जाती है, दफ्तर में मुश्किल है, काम ठीक नहीं चलता, चलो पन्द्रह दिन के लिए सब भूल जाओ। ऐसा भी आदमी आ सकता है। वह भागा हुआ दिखाई पड़ेगा और वह बच नहीं सकता क्योंकि जिससे वह भागा है वह उसका पीछा करेगा। वह सब भय, वे सब चिन्ताएँ इस पहाड़ पर भी उसे घेरे रहेंगी। हाँ, थोड़ी देर के लिए बातचीत में भूल जाएगा लेकिन लौट कर फिर सब पकड़ लेगा। और पन्द्रह दिन पहले जिस उलझन से वह भाग आया था, वह उलझन पन्द्रह दिन में कम नहीं होने वाली है, पन्द्रह दिन में और बढ़ गई होगी। पन्द्रह दिन बाद वह फिर उसी उलझन में खड़ा हो जायगा, दुगुनी परेशानी लेकर वहीं पहुँच जाएगा। लेकिन कोई आदमी आया हुआ भी हो सकता है, कहीं से भागा हुआ नहीं है। वह कहीं कोई ऐसी बात न थी जिससे वह भाग रहा है बल्कि कहीं कुछ पाने जैसा लगा है, इसलिए चला आया है। यह आदमी आ सकेगा सच में और आकर पीछे को सब भूल जाएगा क्योंकि कहीं से आया है, कहीं से भागा नहीं है। और यहाँ से लौटकर दूसरा आदमी होकर भी जा सकता है। और आदमी बदल जाए तो सारी परिस्थितियाँ बदल जाती हैं। मैं महावीर को पलायनवादी नहीं कहता हूँ।

१५

प्रश्नोत्तर-प्रवचन

प्रश्न : महावीर ने न नियन्ता को स्वीकार किया है, न समर्पण को, न गुरु को, न शास्त्र को, न परम्परा को। तो क्या यह महावीर का घोर अहंकार नहीं था ? क्या महावीर अहंवादी नहीं थे ?

उत्तर : यह प्रश्न स्वाभाविक है और जो व्यक्ति नियन्ता को स्वीकार करता है, नियन्ता के प्रति समर्पण करता है, गुरु को स्वीकार करता है, गुरु के प्रति समर्पण करता है, शास्त्र-परम्परा के प्रति झुकता है, वह साधारणतः हमें विनम्र, विनीत, निरहंकारी मालूम पड़ेगा ? इन दोनों बातों को ठीक से समझ लेना जरूरी है। पहली बात यह है कि परमात्मा के प्रति झुकने वाला भी अहंकारी हो सकता है। और यह अहंकार की चरम घोषणा हो सकती है उसकी कि मैं परमात्मा से एक हो गया हूँ। 'अहं ब्रह्मास्मि' की घोषणा अहंकार की चरम घोषणा है। यानी मैं साधारण आदमी होने को राजी नहीं हूँ। मैं परमात्मा होने की घोषणा के बिना राजी ही नहीं हो सकता हूँ। नीत्से ने कहा है कि यदि ईश्वर है तो फिर एक ही उपाय है कि मैं ईश्वर हूँ। और यदि ईश्वर नहीं है तो बात चल सकती है। ईश्वर के प्रति समर्पण भी ईश्वर होने की अहम्मन्यता से पैदा हो सकता है।

दूसरी बात यह कि समर्पण में अहंकार सदा मौजूद है, समर्पण करने वाला मौजूद है। समर्पण कृत्य ही अहंकार का है। एक आदमी कहता है कि मैंने परमात्मा के प्रति स्वयं को समर्पित कर दिया है। यहाँ हमें लगता है कि परमात्मा ऊपर हो गया है और यह नीचे। यह हमारी भूल है। समर्पण करने वाला भी नीचा नहीं हो सकता क्योंकि कल चाहे तो समर्पण वापस लौट सकता है। कल कहता है कि अब मैं समर्पण नहीं करता हूँ। असल में कर्ता कैसे नीचे

हो सकता है ? समर्पण में भी कर्ता सदा ऊपर है। वह कहता है मैंने समर्पण किया है परमात्मा के प्रति। और अगर मैं नहीं हूँ तो समर्पण कोई कैसे करेगा, किसके प्रति करेगा। इसे समझ लें तो महावीर की स्थिति समझ में आ सकती है। महावीर नितान्त ही निरहंकार हैं। यानी उतना भी अहंकार नहीं हैं कि 'मैं' समर्पण करूँ। वह 'मैं' तो चाहिए समर्पण के लिए। वह समर्पण कराने का कर्त्तव्यभाव चाहिए। और जैसा मैंने कहा कि जो व्यक्ति समर्पण करता है, वह समर्पण मांगता है। यह मांग एक ही सिक्के का हिस्सा है दूसरा। लेकिन महावीर ने समर्पण किया भी नहीं, माँगा भी नहीं। मेरी दृष्टि में यह परम निरहंकारिता हो सकती है। यानी समर्पण करने योग्य भी तो निरहंकार चाहिए। आखिर मैं ही समर्पित होऊँगा, नियन्ता को मैं ही स्वीकृत करूँगा।

महावीर के अस्वीकार में ऐसा नहीं है कि 'नियन्ता' नहीं है। अस्वीकार का कुल मतलब इतना ही है कि स्वीकार नहीं है। 'अस्वीकार' पर जोर नहीं है। महावीर सिद्ध करते नहीं, घूम रहें हैं कि परमात्मा नहीं है, ईश्वर नहीं है। उनके अस्वीकार का कुल मतलब इतना है कि वह सिद्ध करते नहीं, घूम रहे हैं कि ईश्वर है, नियन्ता है। अस्वीकार फलित है, अस्वीकार घोषणा नहीं। वह सिर्फ स्वीकृति की बात नहीं कर रहे, न समपंण की बात कर रहे हैं। न वे यह कह रहे हैं कि कोई गुरु नहीं है, कोई शास्त्र नहीं है। वह यह भी नहीं कह रहे हैं कि वे गुरु के प्रति समर्पित नहीं हैं, शास्त्र के प्रति समर्पित नहीं हैं। यह फलित है जो हमें दिखाई पड़ता है कि वे समर्पित नहीं हैं। लेकिन समर्पण के लिए भी अहंकार चाहिए। अगर कोई व्यक्ति नितान्त अहंकार शून्य हो जाए तो समर्पण कैसा ? कौन करेगा समर्पण ? समर्पण कृत्य है, कृत्य के लिए कर्ता चाहिए और अगर कर्ता नहीं है तो समर्पण जैसा कृत्य भी असम्भव है। फिर जब कोई कहता है कि मैंने समर्पण किया तो समर्पण से भी 'मैं' को ही भरता है। समर्पण भी उसके 'मैं' का ही पोषण है। वह समझता है कि 'मैं' कोई साधारण नहीं हूँ, मैं ईश्वर के प्रति समर्पित हूँ।

एक सन्त के पास—तथाकथित सन्त कहना चाहिए—सम्राट् अकबर ने खबर भेजी : बड़ा उत्सुक हूँ आपके दर्शन को, मिलने को, सुनने को। तथाकथित सन्त ने खबर भिजवाई वापिस कि हम तो सिर्फ राम के दरबार में झुकते हैं। हम आदमियों के दरबार में नहीं झुका करते। यह व्यक्ति क्या कह रहा है ? यह कह रहा है कि हम तो सिर्फ राम के सामने झुकते हैं, आदमियों के सामने

नहीं झुका करते। और हम राम के दरबार के दरबारी हो गए। ऊपर से लगता है यह आदमी कितनी बढ़िया बात कह रहा है। लेकिन बड़े गहरे अहंकार से निकली बात मालूम पड़ती है। अभी इसे आदमी और राम में फर्क है और यह निरन्तर यह भी कहे चला जा रहा है कि सब में राम है। अकबर भर को छोड़ देता है, अकबर में 'राम' नहीं है। सब में 'राम' देखे चला जा रहा है और अकबर में अटक जाता है, और वहां उसका अहंकार घोषणा कर देता है कि 'मैं कोई ऐसा आदमी थोड़े ही हूँ कि आदमियों के दरबारों में बैठूं; मैं तो राम के दरबार का दरबारी हूँ। यह घोषणा बहुत गहरे अहंकार की सूचना है। इससे यह मत समझ लेना कि जिन्होंने भगवान् को स्वीकार किया है, वे अहंकार-शून्य होंगे। हो सकता है यह अहंकार की अंतिम चेष्टा हो। अहंकार भगवान् को भी मुट्ठी में लेना चाहता है। उसको तृप्ति नहीं होती। संसार को मुट्ठी में ले लेने से आखिर में भगवान् को भी ले लेना चाहता है।

महावीर के पास एक सम्राट् गया। और सम्राट् ने कहा : सब है आपकी कृपा से। राज्य है, सम्पदा है, अन्तहीन विस्तार है, सैनिक है, सुख हैं, सुविधा है, शक्ति है, सब है। लेकिन इधर मैंने सुना है कि मोक्ष जैसी भी कोई चीज है। तो मैं उसको भी विजय करना चाहता हूँ। क्या उपाय है? कितना खर्च पड़ेगा? हँसे होंगे महावीर। सम्राट् है, सब जीतना चाहता है। उसने बहुत इन्तजाम कर लिया है। अब इधर खबर मिली है कि मोक्ष जैसी भी एक चीज है, और ध्यान जैसी भी एक अनुभूति है तो उसके लिए भी खर्च करने को तैयार है। यानी ऐसा न रह जाए कि कोई कहे कि इस आदमी को मोक्ष भी नहीं मिला, ध्यान भी नहीं मिला। महावीर ने उससे कहा कि खरीदने को ही निकले हो तो जो तुम्हारे ही गाँव में एक श्रावक है उसके पास चले जाना। उससे पूछ लेना कि एक सामायिक कितने में बेचेगा, एक ध्यान कितने में बेचेगा। खरीद लेना, उसको उपलब्ध हो गया है। तो नासमझ सम्राट् उस आदमी के घर पहुँचा और हैरान हुआ देखकर कि वह बहुत दरिद्र आदमी है। उसने सोचा कि इसको तो पूरा ही खरीद लेंगे। सामायिक का क्या सवाल है। यानी इसमें कोई झंझट ही नहीं है। पूरे आदमी को चुकता खरीदा जा सकता है। यह तो बड़ी सरल बात है। तो उसने कहा कि महावीर ने कहा है कि सामायिक खरीद लो उस आदमी से जाकर। तो वह आदमी हंसने लगा। उसने कहा कि चाहो तो मुझे खरीद लो लेकिन सामायिक खरीदने का कोई उपाय नहीं।

सामायिक पाई जा सकती है, उसे खरीदा नहीं जा सकता। लेकिन अहंकार उसको भी खरीदना चाहता है, भगवान् को भी खरीदना चाहता है। ऐसा कोई न कहे कि बस तुम्हारे पास धन ही धन है और कुछ भी नहीं। अहंकार धर्म को भी खरीदने जाता है। लेकिन हमें यह दिखाई पड़ना बहुत मुश्किल होता है। असल में कठिनाई क्या है? हमारे मन में दो चीजें हैं: अहंकार या नम्रता। नम्रता अहंकार का ही रूप है, यह हमारे ख्याल में नहीं है।

अहंकार एक विधायक घोषणा है: नम्रता अहंकार की निषेधात्मक घोषणा है। महावीर नियन्ता के प्रति, गुरु के प्रति, परम्परा के प्रति न नम्र हैं, न अनम्र हैं। दोनों बातें असंगत हैं महावीर के लिए। इनसे कुछ लेना-देना नहीं है। मैं एक बड़े वृक्ष के पास निकलूँ और नमस्कार न करूँ तो आप मुझे अनम्र न कहेंगे। लेकिन एक महात्मा के पास से निकलूँ और नमस्कार न करूँ तो आप कहेंगे अनम्र है। लेकिन यह भी हो सकता है कि मेरे लिए महात्मा और वृक्ष दोनों बराबर हों। मेरे लिए दोनों असंगत हों, इस बात से ही मुझे कुछ लेना-देना न हो। लेकिन आप की तोल में एक स्थिति में मैं नम्र हो गया और एक स्थिति में अनम्र हो गया जबकि मुझे इसका कुछ पता ही नहीं।

एक फकीर एक गाँव से निकल रहा है। एक आदमी एक लकड़ी उठा कर उसको मार रहा है पीछे से। चोट लगने पर लकड़ी उसके हाथ से छूट गई है और एक तरफ गिर गई है। उस फकीर ने पीछे लौट कर देखा, लकड़ी उठा कर उसके हाथ में दे दी और अपने रास्ते चला गया। एक दूकानदार यह सब देख रहा है, उसने फकीर को बुलाया और कहा कि तुम कैसे पागल हो? तुम्हें उसने लकड़ी मारी, उसकी लकड़ी छूट गई तो तुमने सिर्फ इतना ही किया कि उसकी लकड़ी उसको उठाकर वापस दे दी और तुम अपने रास्ते चले गए। उस फकीर ने कहा कि एक दिन मैं एक झाड़ के नीचे से गुजर रहा था। उसकी एक शाखा गिर पड़ी मेरे ऊपर तो मैंने कुछ नहीं किया। मैंने कहा कि संयोग की बात है कि जब शाखा गिरी तो मैं उसके नीचे आ गया। मैं शाखा को रास्ते के किनारे सरका कर चला गया। संयोग की बात होगी कि उस आदमी को लकड़ी मारनी होगी हम पर तो इसकी लड़की टूट गई, उसको उठाकर दे दी, और हम क्या कर सकते थे? हम अपने रास्ते चल पड़े। जो मैंने वृक्ष के साथ व्यवहार किया था वही मैंने इस आदमी के साथ भी किया।

एक स्थिति ऐसी हो सकती है कि हमारे प्रश्न असंगत हो जाते हैं। क्योंकि हम जब सोचते हैं तो दो ही में सोच सकते हैं। और यह समझना गलत हो

जाता है। क्योंकि जिस तल पर हम समझ सकते थे उस तल पर उनका कोई भी रूप नहीं बनता है कि वे कैसे आदमी हैं। महावीर अनम्र हैं या विनम्र हैं यह तय करना मुश्किल है क्योंकि ऐसा कोई प्रसंग ही नहीं जिसमें वह कोई भी घोषणा करते हों। तब हमारे ऊपर ही निर्भर रह जाता है कि हम निर्णय कर लें और हमारा निर्णय वही होने वाला है जो हमारी तोल है, जो हमारा माप-दण्ड है। महावीर उस तोल के बाहर हैं।

इसलिए मैं कहता हूँ कि महावीर से ज्यादा निरहंकारी थोड़े ही लोग हुए हैं। हाँ, महावीर से ज्यादा नम्र कई लोग हुए हैं। महावीर से ज्यादा अहंकारी लोग भी हुए हैं लेकिन महावीर से ज्यादा निरहंकारी लोग मुश्किल से हुए हैं। महावीर से ज्यादा नम्र आदमी मिल जाएगा जो झुक-झुक कर नमस्कार करेगा। महावीर झुकेंगे नहीं, क्योंकि कौन झुके? किसके लिए झुके? फिर जब कोई आदमी झुकता है तो हम कहते हैं कि वह नम्र है लेकिन वह किसलिए झुकता है? किसी अहंकार की पूजा में, किसी अहंकार के पोषण में वह झुकता है। और महावीर कहते हैं कि मेरा अहंकार तो बुरा है ही, किसी का भी अहंकार बुरा है। मैं झुकूँ और आप की बीमारी बढ़ाऊँ? मैं झुकूँ आपके चरणों में और आपके दिमाग को फिराऊँ? मैं झुकूँगा तो आपको बड़ा रस आएगा कि यह आदमी बड़ा नम्र है। लेकिन रस इसीलिए आएगा कि आपके अहंकार को तृप्ति मिलती चली जाएगी। महावीर से कोई पूछे तो वह कहेंगे कि देवताओं का दिमाग भी आदमियों ने ही खराब किया है। अगर कहीं भगवान् भी है तो अब तक पागल हो गया होगा। यह जो झुकना चल रहा है दूसरे के अहंकार का पोषण करता है। निरहंकारी न तो अहंकार में जीता है न अहंकार को पोषण देता है। इसलिए उसके जीवन का तल, उसकी अभिव्यक्ति बिल्कुल बदल जाती है। उसे पकड़ पाना मुश्किल हो जाता है कि हम उसे कहाँ पकड़ें, और कहाँ तोलें। महावीर के साथ भी यही कठिनाई मालूम होती है।

प्रश्न : प्रेम में भी कोई शर्त है क्या? तो फिर महावीर की शर्त क्यों?

उत्तर : मैं कहता हूँ कि प्रेम सदा बेशर्त है, क्योंकि जहाँ शर्त है वहाँ सौदा है। जहाँ हम कहते हैं कि मैं तब प्रेम करूँगा जब ऐसा हो; या तुम ऐसे हो जाओ या ऐसे बनो, तब मैं तुम्हें प्रेम करूँगा ऐसा आदमी प्रेम को शर्त से बाँध रहा है और प्रेम को खो रहा है। महावीर की शर्तों की बात प्रेम के सम्बन्ध में नहीं है। महावीर ऐसा नहीं कहते कि जगत् ऐसा करे तो मैं प्रेम करूँगा, जगत् मुझे भोजन दे तो मैं करूँगा। नहीं, यह तो बात ही नहीं है प्रेम का मामला

हो नहीं है। महावीर तो यह कहते हैं कि अगर जगत् को प्रेम हो, अगर अस्तित्व को मेरे प्रति प्रेम हो तो मुझे कैसे पता चले। मैं कैसे जानूँ कि सारा अस्तित्व मुझे बचाना चाह रहा है, और उपयोगी मान रहा है और समझ रहा है कि मैं जिऊँ एक क्षण ताकि उसके लिए फायदा हो जाए। तो महावीर कहते हैं कि मैं कुछ शर्तें लगा देता हूँ जिनकी पूर्ति मुझे खबर दे देगी कि अभी जीना है या नहीं। महावीर यह नहीं कह रहे कि अगर जगत् मेरी शर्तें पूरी करेगा तो मैं प्रेम करूँगा। जगत् के प्रति प्रेम है तो शर्त का कोई सवाल ही नहीं है। शर्त प्रेम पाने के लिए नहीं बांधी जा रही है, सिर्फ इस बात की जानकारी पाने के लिए बाँधी जा रही है कि अगर मुझे जिलाना हो तो जगत् मुझे जिलाए, नहीं तो कोई बात नहीं। महावीर कह रहे हैं कि मैं अपनी तरफ से जीने का उपक्रम नहीं करूँगा। यह मेरी चेष्टा नहीं होगी कि मैं जिऊँ। असल में हो भी यही सकता है कि जिसका 'मैं' ही मिट गया हो अब उसे जीने की लालसा क्या हो सकती है? अब तो यही हो सकता है कि अगर जरूरत हो तो ठीक है।

जैसे समझो कि मैं बोल रहा हूँ। बोलने के दो कारण हो सकते हैं। या तो बोलना मेरी भीतरी वासना हो कि मैं बिना बोले न रह सकूँ यानी मुझे बोलना ही पड़े। अगर कमरे में कोई भी न हो तो दीवार से बोलना पड़े। तब बोलना मेरी विवशता होगी। क्योंकि तब बोलने, न बोलने से मेरा कोई सम्बन्ध हो नहीं। मैं भीतर बेचैन हूँ और मुझे कुछ बोलना है, जैसे कोई पागल बोलता है रास्ते पर, अकेले में भी बोलता है, दीवार से भी बोलता है। इससे फर्क नहीं पड़ता कि सुनने वाले बैठे हों या नहीं। जरूरी नहीं कि बोलने वाला आदमी पागल न हो। यह तो तब पता चलेगा जब हम उसे अकेला दीवार के पास छोड़ दें और वह न बोले। तो अगर बोलना भीतरी पागलपन है तो सुनने वाला फिर बहाना है। उसको जबर्दस्ती थोपा जा रहा है। लेकिन अगर बोलना भीतरी पागलपन नहीं है और मेरी अपनी कोई जरूरत नहीं है और मुझे लगता है कि तुम्हारी जरूरत है, तुम्हारे काम आ जाऊँ तब मैं शर्तें लगाऊँगा ताकि मुझे पता चल जाए कि तुम्हारे लिए बोल रहा हूँ। मैं कहूँगा चुप बैठना तो ही मैं बोलूँगा। यानी मुझे यह तो पता चल जाए कि तुम सुनने का तैयार हो, तुम सुनने को आए हो। अगर तुम सुनने को तैयार नहीं हो, और तब भी मैं बोले चला जा रहा हूँ तब वह मेरा भीतरी पागलपन हो गया। तो मैं एक शर्त लगा दूँगा कि तुम चुप होकर सुनना, तुम बैठकर सुनना तो ही मैं

बोलूँगा। और जिस क्षण तुम खड़े हो जाओ, या बोलने लगो, मैं बोलना बन्द कर दूँगा और विदा हो जाऊँगा। मेरा मतलब समझे आप।

यानी महावीर यह कह रहे हैं कि अगर पूरे अस्तित्व को मेरी जरूरत है, दरख्तों को, हवाओं को, सूरज को, चाँद-तारों को, परमात्मा को, (परमात्मा महावीर के लिए व्यक्ति नहीं है)—समग्र को अगर जरूरत है मेरी, तो मैं चलता चला जाऊँगा। जिस दिन तुम कह दोगे कि जरूरत नहीं है, तो मैं एक इंच भी आगे नहीं जाऊँगा। तो महावीर की शर्त प्रेम के लिए लगाई गई शर्त नहीं है। वह शर्त अपने होने के लिए लगाई गई है कि मैं अभी लौट जाऊँ इसी क्षण। एक क्षण भी मैं नहीं कहूँगा कि और मुझे ठहरने दो, अभी मुझे कुछ कहना है। यह सवाल नहीं है। तुम्हारी खबर आ जाए तो मैं अभी लौट जाऊँगा।

प्रश्न : दुबारा उनका आना भी जगत् की जरूरत है क्या ?

उत्तर : बिल्कुल ही जगत् की जरूरत है। लेकिन जैसे ही किसी व्यक्ति को आनन्द उपलब्ध होता है, वैसे ही सारे जगत् के प्राणी उससे पुकार करने लगते हैं कि बाँटो, क्योंकि जगत् इतने कष्ट में है, इतनी पीड़ा में है कि जब भी कोई एक व्यक्ति आनन्द को उपलब्ध हो जाता है तो सारे जगत् के प्राणियों की पुकार घूम-घूम कर उसके पास पहुँचने लगती है कि बाँटो। वह बाँटना ही लौटाता है। वह बाँटने का जो चारों तरफ से उठा हुआ दबाव है, वही उसे लौटाता है। यह एकदम से हमें दिखाई नहीं पड़ता। 'लोग पूछते हैं कि आप किसलिए बोलते हैं ?' तो उनका सवाल ठीक ही है क्योंकि बोलता मैं हूँ तो सवाल मुझसे पूछा जाएगा। यह ध्यान में आना कठिन है कि कोई सुनने को आतुर हो गया है इसलिए मैं बोलता हूँ। जगत् की स्थिति में तो घटनाएँ उल्टी घटेंगी। मैं बोलूँगा तब सुनने वाला आएगा। लेकिन अन्तर्जगत् में घटनाएँ बिल्कुल भिन्न हैं। कोई सुनने वाला पुकारेगा तभी मैं बोलूँगा। जैसे कि हम नदी के किनारे पर खड़े हो जाएँ तो नदी में दिखाई पड़ता है कि सिर नीचे है और पैर ऊपर हैं। लेकिन वस्तुतः जो किनारे पर खड़ा है उसका सिर ऊपर और पैर नीचे है। नदी में जो प्रतिबिम्ब बनता है, वह उल्टा बनता है। जीवन में जो प्रतिबिम्ब बनते हैं, वे उल्टे बनते हैं। अन्तस्तल के जो प्रतिम्बिब हैं, बिल्कुल उल्टे हैं।

अन्तस्तल में सुनने वाला पहले मौजूद हो जाता है, तब बोलने वाला आता है। बाहर के जगत् में बोलने वाला पहले दिखाई पड़ता है तब सुनने

वाले इकट्ठे होते हैं। महावीर को नहीं कह सकोगे जाकर कि आप फिर बोल रहे हो। क्योंकि महावीर कहेंगे कि तुम क्यों सुन रहे हो ? तुम सुनने के लिए पहले आ गए तब मैं बोलने आया हूँ मगर हमें यह दिखाई नहीं पड़ेगा क्योंकि जिस जगत् पर हम जीते हैं, वह छाया का, प्रतिफलन का जगत् है। वहाँ चीजें सीधी नहीं हैं, वहाँ चीजें उल्टी हैं, और हम उसी हिसाब से सोचते हुए चलते हैं। महावीर तुम्हारे गाँव में भी आएँगे तो तुम कहोगे कि क्यों आए हैं आप यहाँ ? और मजा यह है कि तुम्हीने बुलाया था। लेकिन तुम्हारे बुलाने के प्रति तो तुम सचेतन नहीं हो। महावीर को यह पीड़ा भी झेलनी पड़ेगी कि तुम्हीने बुलाया था और तुम्हीं पूछोगे कि कैसे आप आए हो यहाँ ?

बुद्ध एक गाँव में जा रहे हैं। सुबह का वक्त है और वह उस गाँव में प्रवेश करने को है। एक किसान लड़की अपने पति के लिए भोजन लेकर खेत की ओर जा रही है। रास्ते में बुद्ध को कहती है कि मैं जब तक न लौट आऊँ, बोलना शुरू मत करना। बुद्ध कहते हैं कि तेरे लिए ही तो मैं आ रहा हूं भागा हुआ। अगर तू न होगी तो बोलना शुरू होकर भी क्या करूँगा ? आनन्द बहुत मुश्किल में पड़ जाता है, वह पूछता है कि आप यह क्या कह रहे हैं कि इस लड़की के लिए भागे चले आ रहे हैं दूसरे गाँव से। वह कहते हैं : हाँ इसी लड़की के लिए। देखो वही लड़की मुझसे कहती है कि बोलना शुरू मत करना जब तक मैं न आ जाऊँ। मैं उसी के लिए आ रहा हूँ। फिर वह लड़की चली गई है। गाँव में बुद्ध आए हैं, भीड़ इकट्ठी हो गई है। लोग कहते हैं : अब आप बोलें, आप शुरू करें। बुद्ध चारों ओर देख रहे हैं, लड़की नजर नहीं आती। आनन्द कहते हैं कि लोग क्या कहेंगे कि आप उस लड़की के लिए रुके हैं। आप बोलें। बुद्ध ने कहा कि मैं जिसके लिए आया हूँ और जो रास्ते में मुझे कह भी गई है कि रुकना यह कैसे हो सकता है कि मैं बोलूँ। सांझ होने लगी, लोग बिदा होने लगे। तब वह लड़की भागी हुई आई और कहा कि बड़ी मुश्किल में पड़ गई हूँ। पति बीमार हो गया, उसे कोई कीड़ा काट गया है और मैं वहाँ उलझ गई। और मैं बड़ी परेशान थी कि कहीं आप बोलना शुरू न कर दें। बुद्ध ने कहा कि तेरे बिना बोल के करता भी क्या ? तेरे लिए भागा हुआ आया। तूने मुझे पहले बुलाया है, मैं पीछे चला हूँ। लेकिन हमारी दुनिया में जहाँ हम जीते हैं, वहाँ चीजें बिल्कुल उल्टी हैं। वहाँ बुद्ध पहले आए हैं, लड़की पीछे सुनती है।

हमारे सब सवाल उल्टे हैं क्योंकि हमारे सब सवाल जहाँ से उठते हैं वहाँ चीजें बिल्कुल उल्टी हैं। महावीर के प्रेम में कोई शर्त नहीं है। शायद उतना बेशर्त प्रेम हो कभी नहीं हुआ। बिल्कुल बेशर्त है प्रेम। लेकिन महावीर अपने अस्तित्व के लिए शर्तें बाँध रहे हैं। वे जो शर्तें हैं अपने अस्तित्व के लिए हैं, तुम्हारे प्रेम के लिए नहीं हैं। वह इसलिए कि कहीं ऐसा न हो जाए कि तुम्हारा प्रेम बिदा हो चुका हो, और अस्तित्व को जरूरत न हो और मैं जिए चला जाऊँ। तब बेमानी हो जाएगी बात। एक क्षण भी नहीं रुकना, मुझे खबर देना, और किसी परमात्मा को महावीर मानते नहीं जो कि खबर कर दें। कोई भगवान् नहीं जो कह दे, बस लौट जाओ। यह तो समग्र अस्तित्व ही खबर करे तो ही पता चलने वाला है और कोई उपाय नहीं। अगर भगवान् हो तो वह कह देंगे कि मुझे बता देना, मैं बिदा हो जाऊँ। लेकिन यह समग्र अस्तित्व कैसे कहेगा? हवाएँ कैसे कहेंगी? फूल कैसे कहेंगे? वृक्ष कैसे कहेंगे? चाँद-तारे कैसे कहेंगे? महावीर कहते हैं कि मैं शर्त लगा लेता हूँ ताकि मुझे पता चलता जाए कि अब इसके आगे नहीं जाना। अब बात खत्म हो गई, मेरी जरूरत बिदा हो गई, मैं चुकता हो गया। इस करुणा को हम नहीं समझ सकते कि वह एक क्षण भी हम पर बोझ की तरह नहीं जीना चाहते क्योंकि जो मुक्ति बनने की कामना लेकर खड़ा हो, वह बोझ नहीं बन सकता है। शर्त जो है, वह अपने अस्तित्व के लिए है, प्रेम के लिए नहीं है। प्रेम तो सदा बेशर्त है परन्तु अपना अस्तित्व सदा सशर्त होना चाहिए। अपना अस्तित्व बेशर्त हो जाए तो बहुत मुश्किल की बात है। यह प्रेम के ऊपर बोझ पड़ेगा, बहुत भारी बोझ पड़ेगा।

प्रश्न : आप मेहरबाबा की बात बता रहे थे कि दो बार जब दुर्घटना होने लगी वह बच गए। उन्हें पहले पता चल गया। लेकिन आप पत्ते की भाँति अपने आपको खुला छोड़ना चाहते हैं। और जब दलाई लामा तिब्बत से आए, तो आपने उनको ठीक कहा। यह कैसे?

उत्तर : असल में मेहरबाबा को मैं कहूँगा गलत क्योंकि बचना चाहते हैं वह खुद।

प्रश्न : मेहरबाबा के अन्दर जो प्रेरणा उठी, वह परमात्मा की थी?

उत्तर : प्रेरणा अगर परमात्मा की होती तो वह उस हवाई जहाज में किसी को भी न बैठने देते। वह हवाई जहाज तो गिरा ही, मेहरबाबा ही बच गए। उस हवाई जहाज के लोग मरे ही। प्रेरणा परमात्मा की होती तो वह कहते

कि मैं हवाई जहाज को नहीं जाने दूँगा चाहे मुझे मार डालो। प्रेरणा अपने ही जीवन अस्तित्व की है। खुद तो बच गए हैं, हवाई जहाज तो चला गया। उस मकान में जिसमें वह ठहरने गए थे, खुद तो नहीं ठहरे लेकिन किसी को नहीं कहा कि इसमें मत ठहरो, मकान रात को गिर जाएगा। मेहर बाबा को मैं गलत कहूँगा क्योंकि उन्हें बचने की आकांक्षा है और दलाई को मैं गलत नहीं कहूँगा क्योंकि उन्हें बचने की आकांक्षा ही नहीं है। दलाई के लिए बचने का यही सरल उपाय होता कि वह वहीं रह जाता है और चीनियों के साथ हो जाता। दलाई मुश्किल में पड़ गया और बचा रहा है कुछ जो सबके काम का है। इसमें फर्क समझ लेना। मेहरबाबा बच रहे हैं खुद, दलाई बचा रहा है कुछ जो सबके काम का है। और उस बचाने में दलाई अपनी जान को दाँव पर लगा रहा है। दलाई का भागना दाव पर लगाना है अपने को। और एक अर्थ में शायद वह कभी नहीं लौट सकेगा अब। वह रुक भी जाता, सुलह कर लेता और वह राजा भी बना रह सकता था। लेकिन जहाँ तक सबके हित में आने वाली कोई बात हो, और कुछ ऐसी सम्पदा हो जो मेरे होने, न होने से सम्बन्धित नहीं है और जो पीछे भी काम पड़ सकती है उसके बचाने के लिए जरूर कुछ श्रम किया जा सकता है।

महावीर भी यही श्रम कर रहे हैं। फर्क सिर्फ इतना है कि तुम अपने स्वार्थ के लिए उपयोग कर रहे हो या तुम्हारा कोई स्वार्थ नहीं है। इस दृष्टि से मैं एक को गलत और दूसरे को सही कहूँगा। निर्णायक बात यह है कि व्यक्ति का कोई अपना स्वार्थ निहित है या नहीं। दलाई को कोई छुरा मार दे तो दिक्कत नहीं है, कठिनाई नहीं है। लेकिन जो उसके पास है और निश्चित ही एक ऐसा गुह्य विज्ञान उसके पास है वह इस समय पृथ्वी के दो-चार लोगों की समझ में आ सकता है। क्योंकि पिछले डेढ़-दो हजार वर्षों से, सारी दुनिया से अलग, तिब्बत एक प्रयोग कर रहा है। दूसरा महायुद्ध हुआ। दूसरा महायुद्ध जर्मन जीत सकता था। सिर्फ एक आदमी जर्मनी छोड़कर भाग गया और जर्मनी को हारना पड़ा। वह आइंस्टीन था। जर्मनी के हारने का दूसरा कारण नहीं था। लेकिन जो रहस्य थे, वह एक आदमी के हाथ में थे—आइंस्टीन के हाथ में थे। और वह था यहूदी। और यहूदियों के सताए जाने के कारण आइंस्टीन ने जर्मनी को छोड़ा था। जो एटम बम अमेरिका में बना, वह बर्लिन में बना होता। रहस्य एक आदमी के पास था। वह रहस्य अमेरिका में उपयोगी हुआ। एटम बम बना, हीरोशिमा पर गिरा। हो सकता

था कि लन्दन पर गिरता, न्यूयार्क पर गिरता, मास्को पर गिरता। एक बात पक्की थी कि आइंस्टोन के बिना वह कहीं भी न गिर सकता था जहाँ आइंस्टीन होता वह वहीं उसके काम में आने वाला था। आज दुनिया में दस-बारह वैज्ञानिकों की इतनी कीमत है कि अरबों रुपये देकर एक वैज्ञानिक को चुरा लेना काफी बड़ी बात है। खरबों खर्च हो जाएँ, कोई फिक्र नहीं है। वैज्ञानिक से रहस्य लेना काफी बड़ी बात है क्योंकि वह सिर्फ दस-बारह लोगों के हाथ में है। जिस तरह से पदार्थ-विज्ञान के सम्बन्ध में यह स्थिति हो गई है, ठीक वैसी स्थिति ही आज अध्यात्म-विज्ञान की है। मुश्किल से दुनिया में दो-चार लोग हैं जो उस गहराई पर समझते हैं। लेकिन उनके पास भी हजारों वर्षों के अनुभव का सार नहीं है।

एक आदमी था गुरजिएफ। उसने अपनी जिन्दगी के पहले वर्ष एक अद्भुत खोज में लगाए, जैसा इस सदी के किसी आदमी ने नहीं किया, पिछली सदियों में भी किसी ने नहीं किया। पन्द्रह-बीस मित्रों ने यह निर्णय लिया कि वे दुनिया के कोने-कोने में, जहाँ भी आध्यात्मिक सत्य छिपे हैं, चले जाएँ और उन सत्यों को खोजकर लौट आएं और मिलकर अपने अनुभव बता दें ताकि एक सुनिश्चित विज्ञान बन सके। यह बीस आदमी दुनिया के कोने-कोने में चले गए; कोई तिब्बत में, कोई भारत में, कोई ईरान में, कोई ईजिप्ट में, कोई यूनान में, कोई चीन में, कोई जापान में। ये सारी दुनिया में फैल गए। इन बीसों आदमियों ने बड़ी खोज की, पूरी जिन्दगी लगा दी क्योंकि आदमी की जिन्दगी बहुत छोटी है, जो जानने को है वह बहुत ज्यादा है। अब अगर एक आदमी सूफियों के पास सीखने को जाये तो पूरी जिन्दगी लग जाती है क्योंकि व्यवस्था के अनुसार एक फकीर एक सूत्र सिखाएगा, वर्ष लगा देगा, दो वर्ष लगा देगा, फिर कहेगा कि अब तुम फलां आदमी के पास चले जाओ। अब तुम दूसरे फकीर के पास चले जाओ और वर्ष भर सेवा करो उसकी। हाथ-पैर दाबो उसके। वह जो कहे मानो क्योंकि कुछ बातें ऐसी हैं कि वे तुम्हें तभी दी जा सकती हैं जब तुम धैर्य दिखलाओ; नहीं तो तुम उसके योग्य नहीं। अगर तुम धैर्यहीन हो गए तो वे चीजें तुम्हें नहीं दी जा सकती। उन बीस लोगों ने सारी दुनिया में खोज-बीन की और वे बीस लोग बूढ़े होते-होते लौटकर मिले। उनमें से कुछ मर गए, कुछ लौटे नहीं। कहाँ खो गए, पता नहीं चला। लेकिन उनमें से चार लौटे। उन्होंने जो सूचनाएँ दीं उनके आधार पर गुरजिएफ ने एक पूरी साइंस खड़ी की। उसमें उन सूत्रों की पकड़ उसके हाथों में आई जो सारी दुनिया में फैले हुए हैं।

आध्यात्मिक विज्ञान के सम्बन्ध में तिब्बत के पास सबसे बड़ी सम्पदा है। और दलाई लामा के लिए उपयोगी यही है कि वह सब की फिक्र छोड़ दे, तिब्बत की फिक्र छोड़ दे। तिब्बत का बनना मिटना उतना कीमती नहीं है। तिब्बत के लोग इस राज्य में रहते हैं या उस राज्य में, यह कोई बड़े मूल्य की बात नहीं है। वे किस तरह की व्यवस्था बनाते हैं समाज की, शासन की, वह भी मूल्यवान् नहीं है। मूल्यवान् यह है कि इन डेढ़ हजार वर्षों में एक प्रयोगशाला की तरह तिब्बत ने जो काम किया है वे सूत्र नष्ट न हो जाएँ, उनको भाग कर बचाना जरूरी है। न मेहर बाबा से कोई मतलब है मुझे, न दलाई लामा से कोई मतलब है। मेरा मतलब कुल इतना है कि एक दिशा वह है जहाँ हम परम कल्याण के लिए कुछ बचा रहे होते हैं और एक दिशा वह है जहाँ हम अपने कल्याण के लिए कुछ बचा रहे होते हैं। दोनों में फर्क करना जरूरी है।

प्रश्न : (i) महावीर ने विधायक शब्द 'प्रेम' का उपयोग न करके निषेधात्मक शब्द, 'अहिंसा' का उपयोग क्यों किया।

प्रश्न : (ii) महावीर ने किसी की शारीरिक सहायता क्यों नहीं की ?

उत्तर : अहिंसा शब्द से ही निषेध का, नकारात्मक का बोध होता है। अहिंसा शब्द नकारात्मक है। महावीर ने क्यों उस शब्द का चुना ? वह 'प्रेम' शब्द भी चुन सकते थे। 'प्रेम' विधायक शब्द है, प्रेम का मतलब होता है किसी को सुख देना। अहिंसा का मतलब होता है किसी को दुःख न देना। यानी अगर मैंने आपको दुःख नहीं दिया तो मैं अहिंसक हो गया। मगर इतने से ही बात हल नहीं होती। मैंने आपको सुख दिया कि नहीं ? अगर सुख दिया तो ही प्रेम पूरा होता है। 'प्रेम' तो विधायक शब्द है और जीसस ने प्रेम शब्द का प्रयोग किया है। अहिंसा निपेधात्मक शब्द है और महावीर ने अहिंसा शब्द का प्रयोग किया है। यह समझना बहुत जरूरी है। महावीर क्यों ऐसा प्रयोग करते हैं ? इसमें बड़ी गहराइयाँ छिपी हुई हैं। ऊपर से देखने से यही लगेगा कि 'प्रेम' शब्द का प्रयोग ही ठीक होता और जहाँ तक समाज का संबंध है, शायद ज्यादा ही ठीक होता। क्योंकि जिन लोगों ने महावीर का अनुगमन किया उन लोगों ने 'किसी को दुःख नहीं देना' यह सूत्र बना लिया। इसी कारण वे सिकुड़ते चले गए क्योंकि 'किसी को दुःख नहीं देना' इतना ही उनका विचार रहा, सुख देने की तो बात नहीं। चींटी पैर से न दबे इतना काफी हो गया। चींटी भूखी मर जाए, इससे कोई प्रयोजन नहीं है हमारा। हमने चींटी को पैर से दबा कर नहीं मारा, हमारा काम पूरा हो गया। महावीर का 'अहिंसा' शब्द समाज के

लिए महँगा पड़ा क्योंकि अहिंसा का अर्थ पकड़ा गया कि किसी को दुःख नहीं देना है बस बात खत्म हो गई। अपने को इससे ज्यादा कोई प्रयोजन नहीं है। और प्रयोजन तब बनता है जब हम किसी को सुख देने जाएँ। अच्छा होता कि महावीर प्रेम शब्द का प्रयोग करते। लेकिन महावीर ने प्रेम का प्रयोग नहीं किया। यह बहुत कीमती बात है। और महावीर की दृष्टि बहुत गहरी है।

अहिंसा शब्द के प्रयोग करने में कई कारण हैं। पहला कारण यह है कि किसी को दुःख नहीं देना। यह कोई साधारण बात नहीं है। इसका मतलब इतना ही नहीं होता कि हम किसी को चोट न पहुँचाएँ। अगर बहुत गहरे में देखें तो किसी क्षण में किसी को सुख न देना भी उसको दुःख देना है। उतने दूर तक अनुयायी की पकड़ नहीं हो सकी। मैं आपको दुःख न दूँ यह तो ठीक है। बहुत मोटा सूत्र हुआ कि आप को चोट न पहुँचाऊँ, आपकी हिंसा न करूँ, तलवार न मारूँ। लेकिन किसी क्षण यह भी हो सकता है कि मैं आपको सुख न पहुँचाऊँ तो निश्चित रूप से आपको दुःख पहुँचे। लेकिन यह पकड़ में आना साधारणतः मुश्किल था। महावीर इसको साफ कह सकते थे। लेकिन उन्होंने साफ नहीं कहा और उनके भी कारण हैं। क्योंकि महावीर की गहरी समझ यह है कि कभी-कभी किसी को सुख पहुँचाने से भी उसको दुःख पहुँच जाता है। यानी कभी-कभी आक्रामक रूप से किसी को सुख पहुँचाने की चेष्टा भी उसको दुःख पहुँचा सकती है।

यह जरूरी नहीं कि आप सुख पहुँचाना चाहते हों इससे दूसरे को सुख पहुँच जाए। सुख पहुँचाने में भी दुःख पहुँचाया जा सकता है। सच तो यह है कि अगर कोई कोशिश करे किसी को सुख पहुँचाने की तो उसको दुःख पहुँचाता ही है। अगर बाप अपने बेटे को सुख पहुँचाने की कोशिश में लग जाए, उसके सुधार, उसकी नीति की व्यवस्था करने लगे और सोचे कि इससे उसे सुख पहुँचेगा तो सम्भावना इस बात की है कि बेटे को दुःख पहुँचेगा, और बाप जो भी चाहता है बेटा उसके विपरीत जाएगा इसलिए अच्छे बाप अच्छे बेटों को पैदा नहीं कर पाते। बुरे बाप के घर अच्छा बेटा पैदा भी हो सकता है। अच्छे बाप के घर अच्छा बेटा पैदा होना अपवाद है। अच्छा बाप बेटे को अनिवार्यतः बिगाड़ने का कारण बनता है। क्योंकि वह उसे इतना सुख पहुँचाना चाहता है और इतना शुभ बनाना चाहता है कि बेटे पर उसका यह सुख बोझ हो जाता है।

यह बड़े मजे की बात है कि हम यदि किसी से सुख लेना चाहें तो ही ले सकते हैं। सुख इतनी सूक्ष्म चित्त दशा है कि कोई मुझे पहुँचाना चाहे तो नहीं

पहुँचा सकता। मैं लेना चाहूँ तो ही ले सकता हूँ। इसलिए महावीर ने पहुंचाने पर जोर ही नहीं दिया, बात ही छोड़ दी। हाँ, जो लेना चाहे, उसे दे देना क्योंकि नहीं दोगे तो उसे दुःख मत पहुँचाना। अगर कोई तुमसे सुख लेना चाहे तो दे देना, वह भी सिर्फ इसीलिए कि अगर तुम न दोगे तो उसे दुःख पहुँचेगा। लेकिन तुम सुख पहुँचाने मत चले जाना। क्योंकि अगर तुम सुख पहुँचाने गए तो सिवाय दुःख पहुँचाने के कुछ भी नहीं कर पाओगे। आक्रामक सुख पहुँचाने वाला आदमी दुःख ही पहुँचाता है। अगर जबरदस्ती हम किसी को सुखी करना चाहेंगे तो हम उसे दुःखी कर देंगे। जबरदस्ती में किसी को भी सुखी नहीं किया जा सकता है। जबरदस्ती में हिंसा शुरू हो जाती है। तो महावीर की पकड़ बहुत गहरी है।

और भी एक गहराई है जो कि आज तक महावीर को समझने वाले लोगों की समझ में नहीं आई। और वह यह है कि अन्ततः परम स्थिति में जहाँ अहिंसा पूर्ण रूप से प्रकट होती है, या प्रेम पूर्ण रूप से प्रकट होता है—कोई भी नाम दें—उस परम स्थिति में न विधेय है, न निषेध है। परम स्थिति में दोनों नहीं हैं।

यह प्रश्न भी पूछा है आपने कि उन्होंने कभी किसी के शरीर को सहायता क्यों नहीं पहुँचाई? गिरे हुए को क्यों नहीं उठाया? प्यासे को पानी क्यों नहीं पिलाया? भूखे को रोटी क्यों नहीं खिलाई? बीमार के पैर क्यों नहीं दाबे? किसी के शरीर की सेवा क्यों नहीं की? सवाल तो पूछने जैसा है। उसका भी कारण है। परम अहिंसा की स्थिति में व्यक्ति किसी को दुःख तो पहुँचाना ही नहीं चाहता, सुख भी पहुँचाना नहीं चाहता। क्योंकि बहुत गहरे में देखने पर सुख और दुःख एक ही चीज के दो रूप हैं। जिसे हम सुख कहते हैं वह दुःख का ही एक रूप है और जिसे हम दुःख कहते हैं, वह भी सुख का ही एक रूप है। बहुत गहरे में जो देखेगा वह पाएगा कि जिसे हम सुख कहते हैं उसकी यात्रा अगर थोड़ी बढ़ा दी जाए तो वह दुःख में बदल जाता है। आप भोजन कर रहे हैं, बड़ा सुखद है। और आप ज्यादा भोजन करते चले जाएँ तो सुख दुःख में बदल जाता है। आप मुझे प्रेम से आकर मिलें, मैंने आपको गले लगा लिया। बड़ा सुखद है एक क्षण, दो क्षण। लेकिन मैं छोड़ता ही नहीं अब आप तड़फने लगेंगे कि बाहों से कैसे छूट जाएँ। पाँच मिनट और तब सुख दुःख में बदल जाता है। और अगर आधा घंटा हो गया तो आप पुलिस वाले को चिल्लाते हैं कि 'मुझे बचाइये यह आदमी मुझे छोड़ता नहीं।' किस क्षण पर सुख दुःख में

बदल गया, बताना बहुत मुश्किल है। एक क्षण तक झलक थी सुख की, दूसरे क्षण में दुःख शुरू हो गया।

एक प्रेमी है, एक प्रेयसी है। दोनों घड़ी भर मिलते हैं। बड़ा सुखद है। फिर पति-पत्नी हो जाते हैं और बड़ा दुखद हो जाता है। पश्चिम में जहाँ प्रेम-विवाह प्रचलित है वहाँ एक अनुभव हुआ कि प्रेमी जितना प्रेयसी को सुखी करता है उतना ही दुःखी कर देता है। यह बड़ी अजीब बात है। सुख कब दुःख में बदल जाता है कहना मुश्किल है। **सब सुख दुःख में बदल सकते हैं और ऐसा कोई दुःख नहीं जो सुख में न बदल सके।** सब दुःख भी सुख में बदल सकते हैं। कितना ही गहरा दुःख है उसमें भी आप सम्भावनाएँ देख सकते हैं सुख की। एक मां है। वह नौ महीने पेट में बच्चे को रखती है। दुःख ही उठाती है। प्रसव है, बच्चे का जन्म है। असह्य दुःख उठाती है लेकिन सब दुःख सुख में बदल जाता है। आगे की सुख की आशा दुःख को झेलने में समर्थ बना देती है। प्रसव-पीड़ा भी एक सुख की तरह आती है। बच्चे का बोझ भी सुख की तरह आता है। और उसे बच्चे को बड़ा करना लम्बे दुःख की प्रक्रिया है। लेकिन माँ का मन उसे सुख बना लेता है। दुःख को हम सुख बना सकते हैं। अगर आशा, सम्भावना, आकांक्षा, कामना तीव्र हो तो दुःख सुख बन जाता है। सुख को भी हम दुःख बना सकते हैं। अगर सुख में सब आशा सब सम्भावना क्षीण हो जाए तो सुख दुःख बन जाता है।

यानी इसका मतलब यह हुआ कि सुख और दुःख में कोई मौलिक भेद नहीं है, हमारी दृष्टि का भेद है। हम कैसे देखते हैं इस पर सब निर्भर करता है। हमारे देखने पर ही सुख दुःख का रूपान्तरण हो जाता है। एक आदमी के पैर में घाव है और डाक्टर आपरेशन करता है। आपरेशन का दुःख भी सुख बन जाता है क्योंकि वहाँ पीड़ा में छुटकारे की आशा काम कर रही है। आदमी जहरीली से जहरीली दवाई, कड़वी से कड़वी दवाई पी जाता है क्योंकि वहाँ बीमारी से दूर होने की आशा काम करती है। आशा हो तो दुःख को सुख बनाया जा सकता है। और आशा क्षीण हो जाए तो सब सुख फिर दुःख हो जाते हैं। महावीर कहते हैं कि न तो तुम किसी को सुख पहुँचाओ, न तुम किसी को दुःख पहुँचाओ। जिस दिन कोई व्यक्ति उस स्थिति में पहुँच जाता है जहाँ वह न किसी को सुख पहुँचाना चाहता है, न किसी को दुःख पहुँचाना चाहता है वहीं से वह व्यक्ति सबको आनन्द पहुँचाने का कारण बन जाता है। इसे समझ लेना जरूरी है।

आनन्द पहुँचाने का कारण ही तभी कोई व्यक्ति बनता है जब वह सुख और दुःख के चक्कर से मुक्त होता है और उस दृष्टि को उपलब्ध होता है जहाँ सुख और दुःख का कोई मूल्य नहीं रह जाता। पर आनन्द को हम जानते नहीं। हमें कोई दुःख पहुंचाए तो हम पहचान जाते हैं कि यह आदमी बुरा है। हमें कोई सुख पहुँचाए तो हम पहचान जाते हैं कि यह आदमी अच्छा है। लेकिन हमें कोई आनन्द पहुँचाए तो हम बिल्कुल नहीं पहचान पाते कि यह आदमी कैसा है क्योंकि हम आनन्द को पहचान ही नहीं पाते, पकड़ ही नहीं पाते। आनन्द उस चेतना से सहज ही विकीर्ण होने लगता है जो चेतना सुख और दुःख के द्वन्द्व के पार चली जाती है। ऐसे व्यक्ति के जीवन से सहज ही आनन्द की किरणें चारों तरफ फैलने लगती हैं। निश्चित ही जिनके पास आँखे होती हैं, वे उस आनन्द को देख लेते हैं। जिनके पास आँखें नहीं होती हैं, वे नहीं देख पाते। लेकिन सूरज को चाहे कोई देख पाए, चाहे न देख पाए, जो देखता है उसको भी सूरज गर्मी पहुँचाता है, और जो नहीं देखता है उसको भी गर्मी पहुँचाता है। फर्क इतना ही है कि नहीं देखने वाला कहता है: कैसा सूरज? किस सूरज को धन्यवाद दूँ, कोई सूरज कभी देखा नहीं, किसी ने कभी कोई गर्मी पहुँचाई नहीं। गर्मी अगर पहुँची है तो वह मेरी अपनी है क्योंकि सूरज का कोई पता नहीं। आँख वाला जानता है कि गर्मी सूरज से आई है और इसलिए अनुगृहीत भी है, धन्यवाद भी करता है, कृतज्ञ भी है। लेकिन अन्धे को समझना बहुत मुश्किल है।

महावीर किसी के पैर दाब रहे हों तो हमें समझ में आ सकता है कि वह किसी की सेवा कर रहे हैं। यह ऐसा ही है कि जैसे घर में छोटे बच्चे होते हैं और अगर एक भिखमंगा आए और मैं उसे सौ का नोट उठाकर दे दूँ, और वह बच्चा बाद में मुझसे पूछे कि आपने एक भी पैसा उसे नहीं दिया क्योंकि सौ के नोट का उसे कोई अर्थ ही नहीं होता। वह पहचानता है पैसों को। वह कहता है कि एक पैसा भी उसको नहीं दिया, आप कैसे कठोर हैं? आया था मांगने, कागज पकड़ा दिया। भूखा था, कागज से क्या होगा? एक पैसा दे देते कम से कम। और वह लड़का जाकर गाँव में कहे कि बड़ी कठोरता है मेरे घर में। एक भिखमंगा आया था तो उसको कागज का टुकड़ा पकड़ा दिया। कागज के टुकड़े से किसी की भूख मिटी है क्या? एक पैसा ही दे देते कम से कम। लेकिन पैसे का सिक्का बच्चा पहचानता है, रुपये के सिक्के से उसे कोई मतलब नहीं, और सौ के नोट का कोई अर्थ नहीं। महावीर निकल रहे हैं एक रास्ते से। एक

आदमी किनारे पर लंगड़ा होकर पड़ा है। अगर महावीर उसके पैर दबाएँ, तो हम पैसे के सिक्के पहचानने वाले लोग, एक फोटो निकाल देंगे, अखबार में छाप देंगे कि बड़ा अद्भुत सेवक है महावीर। लेकिन महावीर चुपचाप चले गए हैं। वह जो लंगड़ा पड़ा है किनारे पर, जरूर ही यह कहेगा कि यह कैसा आदमी है! मैं यहाँ लंगड़ा पड़ा हूँ और यह चुपचाप चला जा रहा है। लेकिन उसके चुपचाप चलने में इतनी किरणें झर सकती हैं, इतनी तरंगें पैदा हो सकती हैं, इतना दान हो सकता है जितना कि हाथ का प्रयोग करने से नहीं। क्योंकि महावीर की गहरी से गहरी दृष्टि यह है कि जो शरीर नहीं है उसे शरीर से कोई सहायता नहीं पहुँचाई जा सकती। वह जो लंगड़ा पड़ा है वह पैर से लंगड़ा है। लेकिन हमें ख्याल नहीं है इस बात का कि दुःख पैर के लंगड़े होने से नहीं पहुंचता। मैं पैर से लंगड़ा हूँ, इस चित्त के भाव से, इस आत्मभाव से पहुँचता है और जरूरी नहीं है कि उस लंगड़े का आप पैर ठीक कर दें तो कोई लाभ हो जायगा। महावीर को क्या जरूरी है, यह वह जानते हैं। जानने का मतलब यह है कि वे जितनी करुणा उस पर फेंक सकते हैं, फेंक कर चले जाएँगे।

मैंने सुना है कि सूफी फकीर को एक रात किसी फरिश्ते ने दर्शन दिए और कहा कि परमात्मा तुम पर बहुत खुश है और कुछ मांग लो तो वह वरदान दे देगा। पर उसने कहा कि जब परमात्मा खुश है तो इससे बड़ा वरदान और क्या हो सकता है। बात खत्म हो गई, मिल गया जो मिलना था। लेकिन उस फरिश्ते ने कहा : "नहीं, ऐसे काम नहीं चलेगा ? कुछ मांगो।" तो उसने कहा कि अब कोई कमी ही न रही, जब परमात्मा खुश है तो कमी क्या रही? और जब परमात्मा ही खुश है तब खुशी ही खुशी है, दुःख आएगा कहाँ से ? तो अब मैं माँगू क्या ? अब मुझे भिखारी मत बनाओ, अब तो मैं सम्राट् हो गया। अगर तुम नहीं मानते हो तो तुम्हीं दे जाओ जो तुम्हारी इच्छा है। उस फरिश्ते ने कहा कि मैं तुम्हें वरदान देता हूँ कि तुम जिसको छू दो, मरा हो तो जिन्दा हो जाए, बीमार हो तो स्वस्थ हो जाए, सूखा वृक्ष हो तो हरे पत्ते निकल आएँ, हरे फूल निकल आएँ। उसने कहा कि यह देते हो तो ठीक है लेकिन सीधा मुझे मत दो, कहीं मुझे ऐसा न लगने लगे कि मेरे हाथ कोई बीमार ठीक हुआ क्योंकि बीमार को तो फायदा हो जायगा किन्तु मुझे नुकसान हो जाएगा। तब फरिश्ते ने कहा कि और क्या उपाय हो सकता है। उस फकीर ने कहा कि मेरी छाया को दे दो कि मैं जहाँ से निकलूं, अगर छाया पड़ जाए किसी वृक्ष पर और वह सूखा हो तो हरा हो जाए लेकिन मुझे दिखाई भी न पड़े क्योंकि मैं तब

तक निकल ही चुका हूँगा। मैंने सूखा ही वृक्ष देखा था। मुझे पता भी नहीं चलेगा कि कब हरा हो गया। अगर किसी मरीज पर छाया पड़ जाए तो वह स्वस्थ हो जाएगा लेकिन मुझे पता भी न चले। मैं 'मैं' की झंझट में ही नहीं पड़ना चाहता। फिर कहते हैं उस फरिश्ते ने उसे वरदान दिया। फिर वह सूखे खेतों के पास से निकलता तो वे हरे हो जाते, और सूखे वृक्षों पर उसकी छाया पड़ जाती तो उनमें पत्ते निकल आते, और बीमार ठीक हो जाते, मुर्दे जिन्दा हो जाते, अन्धे को आँख मिल जाती, बहरे को कान मिल जाते। ये सब उसके आस-पास घटित होने लगा। लेकिन उसे कभी पता नहीं चला। उसे पता चलने का कारण भी न था क्योंकि उसकी छाया से यह घटित होते थे। उसका कोई सीधा सम्बन्ध नहीं था। असल में जो परम स्थिति को उपलब्ध होते हैं, उनका होना मात्र करुणा है। उनकी मौजूदगी मात्र काफी है। जो भी होता है उनकी छाया से होता है। उन्हें कुछ सीधा नहीं करना पड़ता। जिनके पास ऐसी छाया नहीं है उन्हें कुछ सीधा करना पड़ता है। लेकिन वह पैसे के सिक्के हैं। हमें हिसाब मिल जाता है कि इन्होंने कितनी सेवा की, कितने कोढ़ियों की मालिश की, कितने बीमारों का इलाज किया, कितने अस्पताल खोले। ये बिल्कुल कौड़ियों की बातें हैं। इनका कोई भी मूल्य नहीं है बहुत गहरे में।

श्री अरविन्द आजादी के शुरू दिनों में आतुर थे और शायद उनसे अधिक प्रतिभाशाली कोई व्यक्ति हिन्दुस्तान की आजादी के आन्दोलन में कभी नहीं आया। लेकिन अचानक एक मुकदमें के बाद वह सब छोड़ कर चले गए। मित्र घबराये कि जिनसे प्रेरणा मिलती थी, वह आदमी चला गया। जाकर अरविन्द से कहा कि आप भाग आए। अरविन्द ने कहा, मैं भाग नहीं आया। पैसे कौड़ी का काम तुम्हीं कर लो, वह तुम कर सकोगे। मैं कुछ और बड़े काम में लगा हूँ जो मैं कर सकता हूँ। और इस मुल्क में, भारत की स्वतन्त्रता के लिए जितना काम अरविन्द ने किया उतना किसी ने भी नहीं किया। लेकिन भारत की स्वतन्त्रता के इतिहास में अरविन्द का नाम शायद ही लिखा जाए। क्योंकि अरविन्द ने जो काम किया उसका हिसाब कौड़ियों का हिसाब रखने वाले नहीं रख सकते। वह आदमी चौबीस घंटे जागकर सारे प्राणों से इस मुल्क को जिस भाँति आन्दोलित करने की चेष्टा करता रहा उसका हम कोई हिसाब नहीं रख सकते। यह हो सकता है कि गांधी में जो बल था, वह बल अरविन्द का था, सुभाष में जो ताकत थी, वह अरविन्द की थी।

हिन्दुस्तान के विद्रोह और स्वतन्त्रता के इतिहास में जो सबसे बड़ा कीमती आदमी है, हिन्दुस्तान की स्वतंत्रता के इतिहास में कभी उसका उल्लेख नहीं होगा, यह पक्का मानिए। लेकिन वह उस तल पर काम कर रहा है जिस तल पर हमारी कोई पकड़ नहीं है। वह उन तरंगों को पैदा करने की कोशिश कर रहा है जो मुल्क की सोई हुई तन्द्रा को तोड़ दें, जो विद्रोह के भाव को जगाएँ, क्रान्ति की हवा लाएँ। लेकिन हमें ख्याल भी नहीं। और जिस दिन कभी हजार दो हजार साल बाद विज्ञान समर्थ होगा इन सूक्ष्म तरंगों को पकड़ने में, शायद उस दिन हमें इतिहास बिल्कुल बदल कर लिखना पड़े। जो लोग हमें बहुत बड़े दिखाई पड़ते हैं इतिहास में वह दो कौड़ी के हो सकते हैं। और जिन्हें हम कभी नहीं गिनते थे, वे एकदम परम मूल्य पा सकते हैं। क्योंकि जब तक सौ रुपये का नोट पहचान में न आए तब तक बड़ी कठिनाई है। और वैज्ञानिक कहते हैं कि अगर एक फूल खिल रहा है, माली पानी डाल देता है, खाद डाल देता है और चला जाता है और एक संगीतज्ञ उसी के पास बैठ कर वीणा बजाता है, कल जब बड़े-बड़े फूल खिलेंगे तो संगीतज्ञ को कौन धन्यवाद देगा। संगीतज्ञ से मतलब क्या है फूल का। माली को लोग पकड़ेंगे कि तूने इतना बड़ा फूल खिला दिया, तेरे खाद, पानी और तेरी सेवा ने। लेकिन ध्वनि-शास्त्र कहता है कि माली जो कुछ भी कर सकता है उसके करने का कोई बड़ा मूल्य नहीं है। लेकिन अगर व्यवस्था से संगीत पैदा किया जाए तो फूल उतना बड़ा हो जाएगा जितना कभी नहीं हुआ था। ऐसा संगीत भी बजाया जा सकता है कि फूल सुकड़ कर छोटा रह जाए और वह सिर्फ ध्वनियों का खेल है। जब ध्वनियाँ फूलों को बड़ा कर सकती हैं तो कोई वजह नहीं कि विशिष्ट चित्त की तरंगें देश की चेतना को ऊपर न उठाती हों।

अभी रूस और अमेरिका के वैज्ञानिक इस चेष्टा में संलग्न हैं कि क्या इस तरह की ध्वनि तरंगे पैदा की जा सकती हैं कि पूरे मुल्क में आलस्य छा जाए। और इसमें वे काफी हद तक सफल होते चले जा रहे हैं। कोई कठिनाई नहीं है कि आने वाले युद्ध बमों का युद्ध ही न हों, वे सिर्फ ध्वनि तरंगों के युद्ध हों, आलस्य छा जाए। यानी रूस में रेडियो स्टेशन इस तरह की ध्वनि-लहरियाँ पूरे भारत पर फेंक दें कि पूरे भारत का आदमी एकदम आलस्य से भर जाए। यानी उसको कुछ लड़ने का सवाल ही न रहे, कोई भाव ही न रहे, सैनिक एकदम सो जाएँ और हमारी समझ में कुछ न आए कि यह क्या हो गया। हमारे भीतर जो सक्रियता है, वह सारी की सारी छीन ली जाए।

इसी पर बड़ा काम चल रहा है क्योंकि आखिर चारों ओर ध्वनि-तरंगे हमें घेरे हुए हैं। यह उन पर निर्भर है कि हम क्या करें ? लेकिन उससे भी गहरी तरंगे हैं जिनका अभी विज्ञान को ठीक-ठीक पता नहीं हो पाया। उन तरंगों पर काम करने वाले लोग हैं। महावीर ने कभी किसी की सेवा नहीं की और यह एक उनके ऊपर इल्जाम रहेगा। लेकिन तब तक यह इल्जाम रहेगा जब तक हम पैसे के सिक्के पहचानते हैं। जिस दिन हम सौ रुपये के नोट पहचानना शुरू कर देंगे उस दिन यह इल्जाम नहीं रह जाएगा बल्कि इसका पता चलेगा कि जो पैर दबा रहे थे, इसलिए दबा रहे थे कि वे और बड़ा कुछ नहीं कर सकते थे। इसलिए पैर दबा कर तृप्ति पा रहे थे। लेकिन पैर दबाने से होता क्या है ?

महावीर की अहिंसा उस तल पर है जिस तल पर सुख-दुःख पहुँचाने का भाव बिदा हो गया है, जहाँ सिर्फ महावीर जीते हैं। विज्ञान में इन्हीं तत्त्वों को कैटेलेटिक एजेन्ट कहते हैं जिनकी मौजूदगी से ही कुछ हो जाता है। जो खुद कुछ नहीं करते हैं अब जैसे कि हाइड्रोजन और आक्सीजन। इन दोनों को आप पास ले आएँ तो वे मिलते नहीं, अलग-अलग ही रहते हैं। लेकिन बीच से बिजली चमक जाए तो वे दोनों मिल जाते हैं और पानी बन जाता है। बिजली की चमक कोई योगदान नहीं करती। उन दोनों के मिलाने में उसका कोई योगदान नहीं है। सिर्फ उसकी मौजूदगी में वे मिल जाते हैं। उससे न कुछ जाता है, न कुछ आता है, न कुछ मिलता है, न कुछ छूटता है। बस वह मौजूद हो जाती है और वे मिल जाते हैं। जिस भाँति भौतिक तल पर कैटेलेटिक एजेन्ट हैं, वैसे ही आध्यात्मिक तल पर कुछ लोगों ने उनकी स्थिति को छुआ है, जहाँ उनकी मौजूदगी सिर्फ काम करती है, जहाँ वे कुछ भी नहीं करते। यानी महावीर की मौजूदगी ही काम कर देगी इस जगत् में जब वे मौजूद हैं। महावीर और कुछ भी नहीं करेंगे, वह सिर्फ हो जाएँगे। उनका होना काफी है। चेतना के बल पर उनकी मौजूदगी हजारों, लाखों चेतनाओं को जगा देगी, स्वस्थ कर देगी, लेकिन अभी इसकी खोज-बीन होना बाकी है वैज्ञानिक तल पर। आध्यात्मिक तल पर तो खोज-बीन पुरानी है। लेकिन विज्ञान की भाषा में अध्यात्म को समझाया जा सके यह कभी किसी ने सोचा ही नहीं है।

यह कभी आप सोचते ही नहीं हैं कि आप हर हालत में वही नहीं होते। आप हर स्थिति में बदल जाते हैं। अगर आप मेरे सामने हैं तो आप वही आदमी नहीं हैं जो आप घड़ी भर पहले थे। आपके भीतर कुछ ऐसा उठ

आएगा जो आपके भीतर कभी नहीं उठा था। और उसमें कुछ मैं भी नहीं कर रहा हूँ। वह उठ सकता है मेरी मौजूदगी में। तो बहुत गहरे तल पर काम करने वाले लोग हैं, बहुत गहरे तल पर सेवा है। लेकिन चूँकि हम पैसों के सिक्के पहचानते हैं, इसलिए कठिनाई हो जाती है! महावीर पर यह इल्जाम रहेगा। इसको मिटाया नहीं जा सकता। जिस दिन यह मिटेगा, उस दिन वे जिनकी वजह से यह इल्जाम था, दो कौड़ी के हो जाने वाले हैं। तब महावीर एक नये अर्थ में प्रकट होंगे जिसका हिसाब लगाना अभी मुश्किल है। अरविन्द ने जरूर एक चेष्टा की है इस युग में, भारी चेष्टा की है, बड़ा श्रम उठाया है इस दिशा में लेकिन उनको भी पहचानना मुश्किल पड़ रहा है और उनको भी सहयोग नहीं मिल पाता। यह हमारी कल्पना के ही बाहर है कि एक गांव में एक आदमी के हट जाने से पूरा गांव बदल जाता है। वह कुछ भी नहीं करता था, बस वह था। तो भी उसके बदल जाने से पूरा गांव बदल जाता है।

जबलपुर में एक फकीर थे मग्घा बाबा। वह ऐसे अद्‌भुत आदमी हैं कि उनको चोरी भी हो जाती है। उन्हें अगर कोई उठाकर ले जाए तो वह चले जाते हैं। उनकी कई बार चोरी हो चुकी है। वह वर्षों के लिए खो जाते हैं। क्योंकि कोई गाँव उनको चुराकर ले जाता है क्योंकि उनकी मौजूदगी के भी परिणाम हैं। अभी वह दो साल से चोरी चले गये हैं। पता नहीं कौन ले गया है उनको उठाकर। ऐसा कई दफा हो चुका है। उनको किसी ने उठा कर गाड़ी में रख लिया तो वह यह भी नहीं कहेंगे कि क्या कर रहा है, कहाँ ले जा रहा है, क्यों ले जा रहा है? मगर उनकी मौजूदगी के कुछ अच्छे परिणाम हैं जो लोगों को पता चल गये हैं। तो लोग उनको चुराकर ले जाते हैं। और जिस गाँव में वह होते हैं, जिस घर में वह होते हैं, वहाँ को सब हवा बदल जाती है। वहाँ कुछ भी नहीं रहता। और वह पड़े रहते, सोये रहते हैं ज्यादा-तर। वह कुछ नहीं बोलते। लोग आकर उनकी सेवा करते रहते हैं। ऐसा अवसर हो जाता है कि उनको चौबीस घंटे ही नहीं सोने देते। दिन-रात उनकी सेवा करते हैं। एक रात मैं उनके पास से गुजरा, कोई दो बजे थे। उन्होंने मुझसे कहा: मुझ पर कुछ कृपा करो। लोगों को समझाओ। चौबीस घण्टे दबाते रहते हैं। कभी दो-चार आदमी इकट्ठे दबा रहे हैं। तो वह बूढ़ा आदमी बेचारा लेटा है और कोई आदमी पैर दबा रहा है, कोई सिर दबा रहा है। उनकी सेवा का आनन्द है और उनके पास होने में आनन्द है। कोई जरूरत नहीं कि वह कुछ करें।

प्रश्न : बहुत विशाल पृथ्वी है, इस विशाल पृथ्वी पर छोटे से भारत में और वहाँ भी दो-तीन प्रदेशों में ही चौबीस तीर्थंकर क्यों हुए ? हर कहीं क्यों नहीं हुए ?

उत्तर : यह हर कहीं नहीं हो सकते। क्योंकि प्रत्येक की मौजूदगी दूसरे के होने की हवा पैदा करती है। यह एक श्रृंखला है इसमें वह एक जो मौजूद था उसने उस क्षेत्र की, उस प्रदेश की, चेतना को एकदम ऊँचा उठा दिया। इस ऊँची उठी हुई चेतना में ही दूसरा तीर्थंकर पैदा हो सकता है। एक श्रृंखला है उसमें। और यह भी जानकर आप हैरान होंगे कि जब दुनिया में महापुरुष पैदा होते हैं तो करीब-करीब एक श्रृंखला की तरह सारी पृथ्वी को घेर लेते हैं। महावीर, बुद्ध, गोशाल, अजित, संजय, पूर्ण काश्यप—ये सब हुए पांच सो वर्ष के बीच में बिहार में। उन्हीं पांच सो वर्षों में एथेन्स में सुकरात, अरस्तू, प्लेटो हुए हैं। यानी पांच सौ वर्षों में सारी पृथ्वी पर एक श्रृंखला घूम गई जिसे कि अब विज्ञान समझता है श्रृंखलाबद्ध विस्फोट। अगर हम एक हाइड्रोजन बम के अणु को फोड़ दें तो उसकी गर्मी से पड़ोस का दूसरा हाइड्राजन बम फूट जाएगा और उसकी गर्मी से तीसरा और उसकी गर्मी से चौथा। और एक हाइड्रोजन बम के फूटने पर पृथ्वी नहीं बनेगी क्योंकि श्रृंखला में पृथ्वी के सारे हाइड्रोजन एटम टूटने लगेंगे। सूरज इसी तरह गर्मी दे रहा है। सिर्फ पहली बार हाइड्रोजन एटम कभी अरबों, खरबों वर्ष पहले टूटा होगा। और वह भी हुआ होगा किसी बड़े तारे की मौजूदगी से जो करीब से गुजर गया होगा। इतना गर्म रहा होगा वह तारा कि उसके करीब से गुजरने से एक अणु टूट गया होगा। उसके टूटने से उसके पड़ोस का अणु टूटा होगा, उसके टूटने से उसके पड़ोस का और तब से सूरज के आस-पास जो हीलियन की गैस इकट्ठी है उसके अणु टूटते चले जा रहे हैं। उन्हीं से हमें गर्मी मिल रही है। इसीलिए वैज्ञानिक कहते हैं कि चार हजार साल बाद सूरज ठंडा हो जाएगा क्योंकि अब जितने अणु बचे हैं वे चार हजार साल में खत्म हो जाएँगे। यह श्रृंखला चल रही है।

जैसे पदार्थ के तल पर श्रृंखलाबद्ध स्फोट (एक्सप्लोजन) होता है वैसे ही अध्यात्म के तल पर श्रृंखलाबद्ध स्फोट होता है। जैसे एक मकान में आग लग गई तो पड़ोस के मकान में आग लग जाए, पड़ोस के मकान में लग गई तो उसके पड़ोस में लग जाए, और इस प्रकार पूरा गाँव जल जाए वैसे ही एक आदमी महावीर की कीमत का पैदा होता है तो सम्भावना पैदा कर देता है उस कीमत

के सैकड़ों लोगों के पैदा होने की। ऊपर से दिखता है कि महावीर और बुद्ध दुश्मन हैं। लेकिन महावीर के विस्फोट का फल हैं बुद्ध। फल इन अर्थों में कि अगर महावीर न हों तो बुद्ध का होना मुश्किल है। ऊपर से लगता है कि अजित, पूर्ण काश्यप, गोशाल सब विरोधी हैं। लेकिन किसी को ख्याल नहीं है इस बात का कि वे सब एक ही श्रृंखला के हिस्से हैं। एक का विस्फोट हुआ है तो हवा बन गई है। उसकी उपस्थिति ने सारी चेतनाओं को इकट्ठा कर दिया है और आग पकड़ गई है। अब इस आग पकड़ने में जिनकी सम्भावना ज्यादा होगी वह उतनी तीव्रता से फूट जाएँगे। इसलिए अक्सर ऐसा होता है कि एक युग में एक तरह के लोग पैदा हो जाते हैं। एक वक्त में, एक प्रदेश में, एकदम से प्रतिभा प्रकट होती है। इस प्रतिभा के भी आन्तरिक नियम और कारण हैं. तो चौबीस तीर्थंकरों का पैदा होना सीमित क्षेत्र में और वहीं-वहीं, एक ही देश में उसका कारण है। उस तरह की प्रतिभा के विस्फोट के लिए हवा चाहिए।

प्रश्न : शृङ्खला में चौबीस व्यक्ति ही क्यों होते हैं? पच्चीस क्यों नहीं होते, तीस क्यों नहीं होते?

उत्तर : हाँ उसका भी कारण है। उसका संख्या से कोई सम्बन्ध नहीं है। असल में पच्चीस होते हैं, छब्बीस होते हैं, सत्ताईस होते हैं, कितने ही होते हैं इसका संख्या से कोई सम्बन्ध नहीं है। लेकिन जब एक श्रृंखला में एक बहुत ही प्रतिभाशाली व्यक्ति पैदा हो जाता है जैसे कि चौबीस तीर्थंकरों की श्रृंखला में महावीर सबसे ज्यादा प्रतिभाशाली व्यक्ति हैं तब हमें परम बात उपलब्ध हो जाती है। जो जानना था, वह जान लिया गया है, जो पहचानना था, वह पहचान लिया गया है। जो कहना था, वह कह दिया गया है। और अनुयायी को हमेशा डर होता है कि अगर प्रतिभा के लिए आगे द्वार खुले तो प्रतिभा हमेशा अस्त-व्यस्त कर देती है क्योंकि वह विद्रोही है और अराजक है। तो अनुयायी भयभीत होता है। वह अपनी सुरक्षा के लिए व्यवस्था कर लेता है। वह कहता है कि अब बस ठीक है।

प्रश्न : बीस तक क्या कम हैं?

उत्तर : हाँ, कम ही हैं। इन चौबीस तीर्थंकरों में महावीर केन्द्र हैं। इनके मुकाबले में कोई आदमी नहीं है। ज्ञान तो बराबर उपलब्ध होता है सबको। लेकिन महावीर के बराबर कोई अभिव्यक्ति नहीं कर पाता है, कोई समझा नहीं पाता है, कोई खबर नहीं पहुँचा पाता है।

प्रश्न : आपकी राय में कोई पच्चीसवाँ तीर्थंकर हो सकता है ?

उत्तर : होता ही रहता है। जैन मना कर देते हैं तो पच्चीसवाँ तीर्थंकर नम्बर एक बन जाता है किसी दूसरी शृंखला का। अगर पच्चीसवाँ होता तो बुद्ध को अलग शृंखला की जरूरत न पड़ती। बुद्ध पच्चीसवें हो जाते। कठिनाई यह है कि जब भी कोई परम्परा अपने अन्तिम पुरुष को पा लेती है तो फिर वह उसके बाद दूसरों के लिए द्वार बन्द कर देती है स्वाभाविक रूप से क्योंकि फिर वह उपद्रव नहीं लाना चाहती क्योंकि नई प्रतिभा नया उपद्रव लाती है। इसलिए वह सुनिश्चित हो जाती है कि हमारी बात पूरी हो गई, हमारा शास्त्र पूरा हो गया है, अब हम शृङ्खलाबद्ध हो जाते हैं, अब हम दूसरे को मौका नहीं देंगे। इसीलिए फिर पच्चीसवें को नई शृङ्खला का पहला होना पड़ता है। बुद्ध पच्चीसवें हो गए होते। कोई बाधा न थी। मगर इन्होंने द्वार खोल रखे होते। लेकिन एक और कारण हो गया कि बुद्ध मौजूद थे उसी वक्त। और द्वार बन्द कर देने एकदम जरूरी हो गए। क्योंकि अगर बुद्ध आते हैं तो सब अस्त-व्यस्त हो जाता है। जो महावीर कह रहे हैं उसको अस्त-व्यस्त कर देंगे, नई व्यवस्था देंगे। वह नई व्यवस्था मुश्किल में डाल देगी। इस वजह से एकदम दरवाजा बन्द कर दिया गया कि चौबीस से ज्यादा हो ही नहीं सकते और चौबीसवाँ हमारा हो चुका है।

प्रश्न : यह अनुयायियों ने किया ?

उत्तर : यह अनुयायियों की व्यवस्था है सारी। अनुयायी बहुत भयभीत हैं, एकदम भयभीत हैं। समझ लें कि आप मुझे प्रेम करने लगे और मेरी बात आपको ठीक लगने लगे तो आप एक दिन दरवाजा बन्द कर देंगे क्योंकि आपको लगेगा कि दूसरा आदमी अगर आता है और फिर वह उनकी सब बातें गड़बड़ कर देता है तो आपको पीड़ा होगी उससे। आप दरवाज़ा ही बन्द कर देंगे कि बस अब कोई जरूरत नहीं है। इसलिए मुहम्मद के बाद मुसलमानों ने दरवाजा बन्द कर दिया। जीसस के बाद ईसाइयों ने दरवाजा बन्द कर दिया। बुद्ध के बाद बौद्धों ने दरवाजा बन्द कर दिया। एक मैत्रेय की कल्पना चलती है कि कभी बुद्ध एक और अवतार लगे मैत्रेय का। लेकिन वह भी बुद्ध ही लेंगे, कोई दूसरा आदमी नहीं लेगा।

यहाँ सबसे ज्यादा प्रभावशाली आदमी इन दो-तीन सौ वर्षों में रमण और कृष्णमूर्ति हैं। लेकिन न तो रमण के पीछे शृङ्खला बन सकी और न

कृष्णमूर्ति के पीछे बनेगी। कृष्णमूर्ति बनाने के विरोध में हैं और रमण के पीछे बन नहीं सकी। उस कीमत का आदमी नहीं मिला जो बढ़ा सके आगे बात को। रामकृष्ण को विवेकानन्द मिले। विवेकानन्द बहुत शक्तिशाली व्यक्ति थे, अनुभवी नहीं। शक्तिशाली होने की वजह से उन्होंने चक्र तो चला दिया लेकिन चक्र में ज्यादा जान नहीं है। इसलिए वह जाने वाला नहीं है। रामकृष्ण बहुत अनुभवी हैं लेकिन शिक्षक होने की, तीर्थंकर होने की कोई स्थिति नहीं है उनकी। शिक्षक वह नहीं हो सकते इसलिए ऐसा कई बार होता है कि जब कोई व्यक्ति शिक्षक नहीं हो सकता तो वह दूसरे व्यक्ति के कंधे पर हाथ रखकर शिक्षण का कार्य करता है। तो रामकृष्ण ने विवेकानन्द के कन्धे पर हाथ रखकर शिक्षक का कार्य विवेकानन्द से लिया। लेकिन गड़बड़ हो गई। रामकृष्ण अपने आप शिक्षक नहीं हो सकते और विवेकानन्द अनुभवी नहीं हैं। इसलिए सब गड़बड़ हो गई। अस्त-व्यस्त हो गया सब मामला और फिर राम-कृष्ण की मृत्यु हो गई। फिर विवेकानन्द रह गए। विवेकानन्द ने जो शक्ल दी उस व्यवस्था को, वह विवेकानन्द का है। विवेकानन्द एक बहुत बड़े व्यव-स्थापक हैं। अगर विवेकानन्द को अनुभव होता तो एक शृंखला शुरू हो जाती। लेकिन वह नहीं हो सकी क्योंकि विवेकानन्द को कोई अनुभव नहीं था। और जिसको अनुभव है वह व्यवस्थापक नहीं। रमण के साथ हो सकती थी घटना क्योंकि वह उसी कीमत के आदमी हैं जिस कीमत के बुद्ध या महावीर हैं लेकिन वह नहीं हो सका क्योंकि कोई आदमी नहीं उपलब्ध हो सका। कृष्णमूर्ति उसके विरोध में हैं इसलिए कोई सवाल उठता नहीं।

प्रश्न : पश्चिम में भी क्या यह शृंखला है ?

उत्तर : पश्चिम में भी यह शृङ्खला है। पश्चिम में भी फकीरों की शृंखला है। जैसे जीसस की शृंखला चली थोड़े दिनों तक। फिर शृङ्खला का द्वार बन्द हो गया। उसके बाद दूसरी शृङ्खला चली। जर्मनी में एकहार्ट नाम का एक बहुत कीमत का आदमी हुआ। लेकिन वह शृङ्खला नहीं पकड़ सका क्योंकि वह कोई शिक्षक नहीं था। जो बातें कहता है वे बेबूझ हो जाती हैं। समझाने की समझ न हो तो समझाया नहीं जा सकता। कुछ बातें एकदम विरोधी मालूम होती हैं। समझ ली तो ही उनके विरोधाभास को मिटाया जा सकता है और समझ के करीब लाया जा सकता है। बोहमे हुआ जर्मनी में। वह भी एक शृङ्खला बन सकता था लेकिन नहीं बन सका। सब शृङ्खलाएं धीरे-धीरे मर

जाती हैं। जैसे जापान में ज़ेन शृङ्खला चलती है। उसमें अभी भी एक प्रतिभाशाली आदमी था सुज़ूकी। लेकिन वह मर गया। उसने बड़ी कोशिश की कि वह गति दे दे लेकिन वह गति नहीं हो पाई। और फिर होता क्या है? जब कोई महापुरुष एक शृङ्खला को जन्म दे जाता है अगर उसके बाद छोटे-छोटे लोग इकट्ठे हो जाएँ और वे उसके दावेदार हो जाएँ तो दोहरा नुकसान पहुँचता है। एक तो वे कुछ चला नहीं सकते और दूसरा जब कोई प्रतिभाशाली व्यक्ति उस शृङ्खला में पैदा भी हो जाए तो उसे उस शृङ्खला के बाहर कर देते हैं। वह नासमझों की भीड़ उसे एकदम बाहर कर देती है।

असल में जीसस यहूदी शृङ्खला का हिस्सा हो सकता था। लेकिन यहूदी भीड़ जीसस को बर्दाश्त न कर सकी। उस भीड़ ने बाहर कर दिया उसको। यहूदियों का बेटा यहूदियों के बाहर हो गया और ईसाइयत शुरू हो गई। अब ईसाइयत के बीच जो भी कीमती आदमी पैदा होता है, ईसाइयत उसको बाहर कर देती है फौरन। होता क्या है कि वह जो नासमझों की भीड़ इकट्ठी हो जाती है, वह फिर किसी प्रतिभा को बर्दाश्त नहीं कर सकती। और जो प्रतिभा शृंखला को जिन्दा रख सकती है, उसको वह बाहर कर देती है। तब नई शृङ्खलाएँ शुरू हो जाती हैं। दुनिया में सिर्फ कोई पचास शृंखलाएँ चली हैं, थोड़ी-बहुत चलीं, टूट गईं और मिट गईं। मेरा कहना है कि दुनिया को जितना आध्यात्मिक लाभ पहुँच सकता था इन सबसे वह नहीं पहुँच पाया। और अब हमें चाहिए कि हम सारी व्यवस्था तोड़ दें सम्प्रदाय की ताकि प्रतिभा को बाहर निकालने का उपाय ही न रह जाए कहीं से भी। जैसे थियोसाफी की शृङ्खला थी बड़ी कीमती। उसे ब्लेवटस्की ने शुरू किया और वह कृष्णमूर्ति तक आई। लेकिन कृष्णमूर्ति इतने साहसी साबित हुए कि थियोसोफिस्ट बर्दाश्त नहीं कर सके। थियोसोफिस्टों ने कृष्णमूर्ति को बाहर कर दिया। थियोसोफिस्ट शृंखला मर गई। वह मर गई इसलिए कि जो कीमती आदमी उसे गति दे सकता था उसको तो बाहर निकाल दिया।

जब तक दुनिया से सम्प्रदाय मिट न जाएँ, सीमाएँ मिट न जाएँ, तब तक विस्फोट छू नहीं पाता। जैसे इस मकान में आग लगी तो पड़ोस के मकान में इसलिए आग लग सकती है कि वह उससे जुड़ा हुआ है। अगर बीच में एक गली है तो आग नहीं लग सकती। अब अगर रमण पैदा भी हो जाएँ तो ईसाइयत से उनका कोई सम्बन्ध नहीं जुड़ता क्योंकि मकान अलग-अलग हैं। तो शृङ्खला बहुत दफा पैदा होती है। लेकिन वे जो अलग-अलग टुकड़े बनाकर

रखे हुए हैं वह उन्हीं में भटक कर मर जाती है। बाहर जाने का कोई उपाय नहीं। और अगर दुबारा कोई प्रतिभाशाली व्यक्ति पैदा हो जाय तो वह भीड़ उसे निकाल बाहर कर देती है कि हमारे घरों में इसे रहने नहीं देना, यह आग लगवा देगा, और उसको फिर नया घर बनाना पड़ता है, और नया घर बनाना मुश्किल है। मतलब यह कि वह मुश्किल से जिन्दगी भर में थोड़े बहुत लोग इकट्ठा कर पाता है। तो अब तक आध्यात्मिक जगत् में जो नुकसान पहुँचता रहा है मनुष्य को वह इसलिए कि जो सम्प्रदाय हैं, सीमाएँ हैं वे बहुत सख्त और मजबूत हो जाती हैं। **पच्चीसवाँ तीर्थंकर पैदा हो सकता है निरन्तर।** इसमें कोई कठिनाई नहीं है। छब्बीसवाँ होगा, **इसमें** कोई सवाल ही नहीं है, **कोई सीमा नहीं, कोई संख्या नहीं।**

प्रश्न : **महावीर का कुछ काम बाकी रहे तब पच्चीसवां हो सकता है ?**

उत्तर : काम तो कभी खत्म होता ही नहीं। महावीर का थोड़े ही कोई काम है? काम तो यहाँ ज्ञान और अज्ञान की लड़ाई का है, मूर्च्छा और अमूर्च्छा का है। महावीर का थोड़े ही कोई काम है।

प्रश्न : **मुसलमानों में भी फकीर हुए हैं क्या मुहम्मद के बाद ?**

उत्तर : हाँ, मुहम्मद के बाद बहुत लोग हुए हैं लेकिन उन्हें निकाल दिया मुसलमानों ने बाहर। जैसे वायजिद हुआ। उसे बाहर निकाल दिया फौरन। जैसे मन्सूर हुआ। गर्दन उड़ा दी उसकी। **मुहम्मद के बाद जो भी कीमती आदमी हुए वे अलग हिस्सा हो गए सूफियों का।** मुसलमान फिक्र नहीं करता उनको मानने की और सूफियों में भी सिलसिले बढ़ते चले गए।

प्रश्न : **सूफी किसे कहते हैं मोटे तौर पर ?**

उत्तर : **सूफी मुसलमानों के बीच में** क्रान्तिकारी रहस्यवादियों **का एक वर्ग है जैसा** कि बौद्धों में ज़ेन फकीरों का एक वर्ग है, जैसा **यहूदियों** में 'हसीद' **फकीरों का एक वर्ग है।** यह सब **बगावती लोग** हैं जो परम्परा में पैदा होते हैं लेकिन इतने कीमती हैं कि उनको बगावत करनी पड़ती है। **अब जैसे कि** मुहम्मद के पीछे नियम बना कि एक ही अल्लाह है और उस अल्लाह का एक ही पैगम्बर है : मुहम्मद। सूफियों ने कहा कि एक अल्लाह है, यह तो बिल्कुल सच है लेकिन पैगम्बर हजारों हैं। बस झगड़ा शुरू हो गया। मुसलमान जब मस्जिद में नमाज पढ़ता है तो वह कहता है कि एक ही परम्परा है और एक ही उसका पैगम्बर है मुहम्मद। सूफी भी मस्जिद में नमाज पढ़ता है लेकिन वह

कहता है कि एक ही परमात्मा है लेकिन पैगम्बर अर्थात् सन्देश लाने वाले तो हजारों हैं। क्योंकि वह कहता है कि महावीर भी ठीक, बुद्ध भी ठीक, जीसस भी ठीक, यह सभी पैगम्बर हैं। एक ही खबर लाने वाले ये अनेक लोग हैं। मगर यह मुसलमान की बरदाश्त के बाहर है।

अभी मेरा एक वक्तव्य छपा। उसमें मैंने महावीर के साथ मुहम्मद और ईसा का नाम लिया। तो एक बड़े जैन मुनि हैं, जिनके बड़े भक्त हैं, उनको वह किताब किसी ने न दी तो उन्होंने उसे उठाकर फेंक दिया और कहा कि महावीर का नाम मुहम्मद के साथ ! कहाँ मुहम्मद कहाँ महावीर ! महावीर सर्वज्ञ तीर्थंकर और मुहम्मद साधारण अज्ञानी। कहाँ मेल बैठा दिया। दोनों का नाम साथ दिया, यही पाप हो गया। फिर उन्होंने कहा कि इसको मैं पढ़ ही नहीं सकता। तो वही मुहम्मद को मानने वाला भी कहेगा कि मुहम्मद का नाम महावीर के साथ लिख दिया। कहाँ पैगम्बर मुहम्मद और कहाँ महावीर ? क्या रखा है महावीर में। तो वह जो सूफी कहेगा कि सब पैगम्बर हैं उसी के, वह बरदाश्त के बाहर हो जाएगा। अज्ञानियों की भीड़ में ज्ञान सदा बरदाश्त के बाहर हो जाता है, इसलिए कठिनाई हो जाती है। सबकी चेतना समान है किन्तु अभिव्यक्ति बिल्कुल अलग-अलग हैं। मुहम्मद मुहम्मद हैं, महावीर महावीर हैं। अभिव्यक्ति अलग-अलग होगी। मुहम्मद जो बोलेंगे, वह मुहम्मद का बोलना है। अपनी भाषा होगी, अपनी परम्परा के शब्द होंगे। अभिव्यक्ति अलग-अलग होगी। अनुभूति बिल्कुल एक है।

प्रश्न : सबकी एक-एक अभिव्यक्ति है तो उनके सुनने वाले समझ कर साधना में लग जाते हैं। फिर आपने सब अभिव्यक्तियों की अलग-अलग बात की है तो आपके सुनने वालों का क्या होगा ?

उत्तर : मेरे सुनने वालों को बड़ी कठिनाई है क्योंकि अगर मैं कोई एक ही बात कहता तब बहुत आसान था मेरे पीछे चलना। पहली बात कि मैं पीछे नहीं चलाना चाहता किसी को। जरूरत ही नहीं मेरे पीछे चलने की। दूसरी बात मैं चीजों को इतना आसान भी बनाना नहीं चाहता क्योंकि आसान बनाकर नुकसान हुआ है। सम्प्रदाय इसीलिए बने। मैं तो उन सारी धाराओं की बात करूँगा, उन सारे नियमों की बात करूँगा और उन सारी पद्धतियों की, उन सारे रास्तों की जो मनुष्य ने कभी भी अख्तियार किए है। शायद इस तरह की कोशिश कभी नहीं की गई। रामकृष्ण ने थोड़ी-सी कोशिश की थी। उन्होंने

सभी साधना-पद्धतियों का प्रयोग किया और वे इस नतीजे पर पहुँचे कि सब रास्ते अलग हैं किन्तु पहाड़ की चोटी पर सब एक हो जाते हैं। लेकिन उनके पास कोई उपाय नहीं था कि वह कह सकते। फिर उन्होंने वही साधना-पद्धति अपनाई जो बंगाल में उन्हें उपलब्ध थी। सारे जगत् के बाबत उनका विचार विस्तीर्ण नहीं था।

मैं एक प्रयोग करना चाहता हूँ कि सारी दुनिया में अब तक जो किया गया है परम जीवन को पाने का, उसकी सार्थकता को एक साथ इकट्ठा ले आऊँ। निश्चित ही मैं कोई सम्प्रदाय नहीं बनाना चाहता। लेकिन मैं चाहता हूँ कि सम्प्रदाय मिट जाएँ। मैं अनुयायी भी नहीं बना सकता क्योंकि मैं चाहता हूँ कि अनुयायी हो ही नहीं। मेरी चाह यह है कि मनुष्य ने जो अब तक खोजा है वह एकदम निकट आ जाए। इसलिए मेरी बातों में बहुत बार विरोधाभास मिलेगा। क्योंकि जब मैं किसी मार्ग की बात कर रहा होता हूँ तो मैं उसी मार्ग की बात कर रहा होता हूँ। जब दूसरे मार्ग की बात कर रहा होता हूँ तो उस मार्ग की बात कर रहा होता हूँ। और इन दोनों मार्गों पर अलग-अलग वृक्ष मिलते हैं, अलग-अलग चौराहे मिलते हैं। इन दोनों मार्गों पर अलग-अलग मन्दिर का आभास है। इन दोनों मार्गों पर अलग-अलग रास्ते की अनुभूतियाँ हैं: मगर परम अनुभूति समान है। वह तो मैं जिन्दगी भर बोलता रहूंगा, धीरे-धीरे जब तुम्हें सब साफ हो जाएगा कि मैं हजार रास्तों की बातें कर रहा हूं तब तुम्हें ख्याल में आएगा और फिर तुम्हें जो ठीक रास्ता लगे चलना। लेकिन एक फर्क पड़ेगा।

मेरी बात समझकर जो गति करेगा वह किसी भी रास्ते पर जाए तो वह उसे अनुकूल होगा। वह दूसरे मार्ग की दुश्मनी की बात नहीं करेगा। वह इतना ही कहेगा कि मेरे लिए अनुकूल है यही रास्ता। तब हो सकता है कि पति सूफियों को मानता हो, पत्नी मीरा के रास्ते पर जाती हो, बेटा हिन्दू हो, जैन हो या बौद्ध हो। तब एक परम स्वतन्त्रता होगी रास्तों की। और हर घर में रास्तों के बाबत थोड़ा-सा परिचय होगा ताकि प्रत्येक व्यक्ति अपने लिए रास्ता चुन सके कि उसके लिए क्या उचित हो सकता है। अभी कठिनाई यह है कि एक आदमी जैन घराने में पैदा हो जाता है। और हो सकता है कि उसके लिए महावीर का रास्ता अनुकूल न हो। मगर वह कभी कृष्ण के रास्ते पर नहीं जाएगा जो कि उसके लिए अनुकूल हो सकता था। एक आदमी कृष्ण को मानने वाले घर में पैदा हो गया तो वह महावीर के बारे में कभी सोचेगा ही

नहीं। और हो सकता है कि उसे कृष्ण का रास्ता बिल्कुल अनुकूल न हो और वह महावीर के रास्ते जा सकता था। तो मेरा काम ही यह है कि मैं सारे रास्तों को निकट खड़ा कर दूं ताकि एक दृष्टि में वे दिखाई पड़ने लगें, एक झलक में आदमी उन्हें देख सके, पहचान सके और निष्पक्ष होकर सोच सके अपनी स्थिति के साथ तोल करके कि कौन-सा रास्ता मेरे लिए उपयोगी है। लेकिन तब वह दूसरे की दुश्मनी नहीं है। तुमने जो कपड़े पहने हुए हैं वह तुम्हारी मौज है।

प्रश्न : रास्तों का भी विश्लेषण किसी वक्त हो सके ?

उत्तर : ऐसा तो होता ही चला जाता है। अब जैसे मैंने महावीर की बात की तो इसमें महावीर के रास्ते का पूरा विश्लेषण हो जाएगा। कल मुहम्मद की बात करूँगा तो उनका हो जाएगा। परसों क्राइस्ट की बात करूँगा तो उनका हो जाएगा, कृष्ण की बात करूँगा तो उनका हो जाएगा। वह होता चला जाएगा। व्यक्तियों को चुनकर भी बात कर लेना चाहता हूं और फिर शास्त्र को चुनकर भी बात कर लेना चाहता हूं। जैसे गीता को, कुरान को, बाइबिल को। उनको भी चुनकर बात कर लेना चाहता हूँ। अगर पूरी जिन्दगी में इतना भी काम हो सका तो बड़ा तृप्तिदायी है।

प्रश्न : जिन्दगी सीमित है। कहीं ऐसा न हो कि जो आप सोच रहे हैं वह अधूरा रह जाए। इसे किसी दूसरे को देने वाली बात भी आप के ध्यान में रहनी चाहिए।

उत्तर : आप ठीक कहते हैं कि जिन्दगी का कोई भरोसा नहीं और यह भी बात ठीक है कि इतने बड़े काम को एक आदमी जिन्दगी में कर पाए, न कर पाए। भरोसा एक ही है कि काम में मेरा कोई स्वार्थ नहीं है। अगर जिन्दगी की मर्जी होगी तो पूरा काम ले लेगी, नहीं होगी तो नहीं लेगी। यानी उससे मुझे कोई जिद्द भी नहीं कि वह पूरा होना ही चाहिए। वे लोग जो धीरे-धीरे मेरे करीब आते हैं निश्चित ही उनसे काम लिया जा सकता है। और वह भी जिन्दगी को लेना होगा तो ही। उसका भी मेरे मन में कल के लिए हिसाब नहीं है। कल आएगा तो जो काम जिन्दगी को लेना होगा, ले लेगी। नहीं लेना होगा तो कल नहीं आएगा। इसमें मेरा कोई आग्रह नहीं है। इसलिए मैं निश्चिन्त हूँ। कोई तनाव भी नहीं है उसका।

अब जैसे मैं महावीर के सम्बन्ध में जो कह रहा हूँ उसे कभी मैंने बैठकर सोचा भी नहीं है। आप से बात होती है तो सोचता चलता हूँ। कल क्राइस्ट के बाबत क्या कहूँगा, यह मुझे खुद पता नहीं है। सोचता चलूँगा। इधर मेरी अपनी भीतरी स्थिति यह है कि बिल्कुल सब छोड़ा हुआ है। जहाँ परमात्मा ले जाए, जहाँ बहा दे, जो करवाना है करवा दे, न करवाना है न करवा दे तो उसकी मर्जी। उसमें भी मेरी ओर से कोई आग्रह नहीं है किसी तरह का। और उसे काम लेना होता है तो हजार तरह से काम ले लेता है, हजार तरह से पूरा करवा लेता है। वह भी उसके हाथ की बात है।

प्रश्न : आपने कहा कि इसलिए कि शृंखला न चले, सम्प्रदाय न रहें, मैं हर धर्म को सामने पेश करूँगा किन्तु इसमें तो सम्प्रदाय खड़ा रहेगा। मगर परिवार के अन्दर जब कर्त्तव्य वाले आदमी होंगे तो सत्य का स्वरूप स्वयं प्रकट होगा, सत्य अपने आप आ जाएगा। इस पर आप जोर क्यों नहीं देते ?

उत्तर : अगर सब धर्मों को समझने की सद्बुद्धि हममें आ जाए तो सत्य का स्वरूप स्वयं प्रकट हो जाएगा। उस पर जोर देने की जरूरत नहीं है। यानी अभी तक जो झगड़ा है वह इसी बात का है कि प्रत्येक धर्म वाला व्यक्ति यह समझता है कि सत्य का मेरा ठेका है और बाकी सब असत्य हैं। अगर मैं सबके भीतर सत्य को बता सकूँ तो यह बात टूट जाती है। इसको जोर देने की जरूरत नहीं है। यह तो सुनते-सुनते टूट जाएगी और तुम उस जगह पर पहुँच जाओगे कि यह कहना मुश्किल हो जाएगा कि मैं हिन्दू हूं कि मैं मुसलमान हूं कि मैं ईसाई हूं। अगर तुम सुनते-सुनते न पहुँच जाओ और मुझे जोर देना पड़े तो वह जोर जबरदस्ती हो जाएगी। यानी मेरा कहना यह है कि अगर मेरी बात सुनते-सुनते तुम करीब पहुँच गए तो ठीक। पीछे से जोर देना पड़े तो फिर ठीक नहीं है।

प्रश्न : क्या उपयोगी दृष्टि से पशुहिंसा न्यायसंगत है ?

उत्तर : सिर्फ उपयोगी दृष्टि से ही पशुहिंसा न्यायसंगत नहीं है, बाकी सब दृष्टियों से न्यायसंगत है। इसलिए मनुष्य से नीचे तलों पर हम पशुहिंसा को अन्याय नहीं कहते क्योंकि उन तलों पर जीवन ही सब कुछ है और जीवन के लिए जो कुछ किया जा रहा है, सब ठीक है। पशु और मनुष्य में एक ही फर्क है कि मनुष्य सचेत है, जागृत है, स्वचेतन है। उसने चीजों में देखना शुरू

किया है। उसके लिए भोजन इतना महत्त्वपूर्ण नहीं जितना भोजन का साधन महत्त्वपूर्ण है। एक बार वह भोजन से चूक सकता है, लेकिन मनुष्यता से नहीं चूक सकता।

मैंने एक कहानी पढ़ी है। हिन्दुस्तान-पाकिस्तान का बटवारा हुआ। एक गांव में उपद्रव हो गया, दंगा हो गया। एक परिवार भागा। पति है, साथ में पत्नी है, बच्चा है। दो बच्चे कहीं खो गए। गाएँ थीं, भैंसें थीं वह सब खो गईं। सिर्फ एक गाय बचा पाए। लेकिन उस गाय का बछड़ा था, वह भी खो गया। वे सब जंगल में छिपे हैं। दुश्मन आस-पास हैं, मशालें दिखाई पड़ रही हैं। बच्चा रोना शुरू करता है। माँ घबड़ा जाती है। वह पहले उसका मुँह बंद करती है, उसे दबाती है, रोकती है। लेकिन वह जितना दबाती है वह उतना रोता है। फिर माँ-बाप उसकी गर्दन दबाते हैं क्योंकि जान बचाने के लिए दूसरा कोई उपाय नहीं है। वह चिल्लाता है तो अभी दुश्मन आवाज सुन लेगा और मौत हो जाएगी। लेकिन तभी उस गाय के बछड़े की आवाज कहीं दूसरे दरख्तों के पास से सुनाई पड़ती है और वह गाय जोर-जोर से चिल्लाने लगती है। गाय को चिल्लाते सुनकर दुश्मन पास आ जाता है। बच्चे की गर्दन दबानी आसान थी, गाय की गर्दन भी नहीं दबती। गाय को मारो कैसे! कोई उपाय भी नहीं है मारने का। तो वह औरत अपने पति से कहती है कि तुमसे कितना कहा कि इस हैवान को साथ मत ले चलो। लेकिन पति कहता है कि मैं यह विचार कर रहा हूँ कि पशु कौन है? हम या यह गाय? हमने अपने बच्चे को मार डाला है अपने को बचाने के लिए तो हैवान कौन है? मैं इस चिन्ता में पड़ गया हूँ। दुश्मनों की मशालें करीब आती चली जाती हैं। गाय भागती है क्योंकि उसी तरफ उसके बछड़े की आवाज आ रही है। वह दुश्मनों के बीच घुस जाती है। लोग उसे आग लगा देते हैं। वह जल जाती है लेकिन बछड़े के लिए चिल्लाती रहती है। तो वह पति कहता है कि मैं पूछता हूँ कि पशु कौन है, आज मेरे तरफ से पहली दफ़ा जिन्दगी में ख्याल उठा है कि किसको हम मनुष्य कहें, किसको हम पशु कहें? उपयोगी दृष्टि से शायद यह जरूरी है कि मनुष्य पशुओं को मारे, नहीं तो मनुष्य नहीं बच सकेगा। यह बात इस अर्थ में बिल्कुल ठीक है कि मनुष्य अगर शरीर के तल पर ही बचना चाहता तो शायद पशुओं को मारता ही रहता। लेकिन मनुष्य अगर मनुष्यता के आत्मिक तल पर बचना चाहता हो तो पशुओं को मारकर कभी नहीं बच सकता।

एक बार हमें यह ख्याल में आ जाए कि सिर्फ मनुष्य के **शरीर को बचाना है या मनुष्यता को बचाना है,** तो सवाल बिल्कुल अलग-अलग हो जाएँगे। देहधारी मनुष्य को बचाते हैं तो हम हैवान से ऊपर नहीं हैं। और अगर हम उसके भीतर की मनुष्यता को बचाने के लिए सोचते हैं तो शायद पशुहिंसा किसी भी तरह ठीक नहीं ठहराई जा सकती। लेकिन कहा जाएगा कि फिर आदमी बचेगा कैसे ? मेरा कहना है कि आदमी बचने के उपाय खोज लेता है जैसे कृत्रिम खाद्य बनाए जा सकते हैं। जितना पृथ्वी भोजन देती है उससे करोड़ गुना भोजन समुद्र के पानी से निकाला जा सकता है, हवाओं से सीधा भोजन पाया जा सकता है। एक बार यह तय हो जाए कि मनुष्यता मर रही है तो फिर हम मनुष्य को बचाने के हजार उपाय खोज सकते हैं। यह तय न हो तो हम मनुष्य को बचा लेते हैं—देहधारी दिखाई पड़ने वाले मनुष्य को, लेकिन भीतर कुछ गहरा तत्त्व खो जाता है। वह गहरा तत्त्व तभी खो जाता है जब हम किसी को दुःख देने के लिए उत्सुक हो जाते हैं। किसी को दुःख देने का जो भाव है, वही हमें नीचे गिरा देता है। तो किसी को हम दुःख दें और मनुष्य बने रहें, इन दोनों बातों में कठिनाई है।

यह बात सच है कि आज तक ऐसी स्थिति नहीं बन सकी कि एकदम से मांसाहार बन्द कर दिया जाए, एकदम से पशुहिंसा बन्द कर दी जाए तो आदमी बच जाए। लेकिन नहीं बन सकी तो इसलिए नहीं बन सकी कि हमने उस बात को ख्याल में नहीं लिया, अन्यथा बन सकती है। क्योंकि अब हमारे पास वैज्ञानिक साधन उपलब्ध हो गए हैं जिनसे पशुओं को मारने की कोई जरूरत नहीं। अब तो कृत्रिम मांस भी बनाया जा सकता है। आखिर गाय घास खाकर मांस बनाती है। मशीन भी हो सकता है जो घास खाए और मांस बनाए। इसमें कोई कठिनाई नहीं है। **दूध कृत्रिम बन सकता है, मांस कृत्रिम बन सकता है, सब कृत्रिम बन सकता है।** मैं अतीत की बात छोड़ देता हूँ जबकि सब नहीं बन सकता था। लेकिन अब, जबकि सब बन सकता है तो मनुष्य के सामने एक नया चुनाव खड़ा हो गया है और वह चुनाव यह है कि **अब जब सब बन सकता है तब पशुहिंसा का क्या मतलब ?** पीछे कठिनाइयाँ थीं। आदमी को बचाना मुश्किल था। शायद अतीत में, शरीर ही नहीं बचाया जा सकता था। जब शरीर ही नहीं बचता था तो आत्मा को क्या बचाते आप ? **शरीर बिल्कुल सारभूत था** जिसे बचाए तो पीछे आत्मा भी बच सकती थी, मनुष्यता भी बच सकती थी। **इसलिए बुद्ध ने समझौता** किया कि मरे हुए

पशु का मांस खाया जा सकता है। यह सिर्फ उस स्थिति का समझौता था। लेकिन इस कारण बुद्ध पशु जगत् से सम्बन्ध स्थापित करने में असमर्थ हो गए। महावीर इस समझौते के लिए राजी नहीं हुए क्योंकि अगर पशु जगत् तक संदेश पहुँचाना था तो समझौता अमान्य था।

प्रश्न : गहरे में वनस्पतिजीवन और पशुजीवन में क्या अन्तर है ?

उत्तर : बहुत अन्तर है। पशु विकसित है, बहुत विकसित है पौधे से। विकास के दो हिस्से उसने पूरे कर लिए हैं। एक तो पौधे में गति नहीं है, थोड़े से पौधों को छोड़कर जो पशुओं और पौधों के बीच में हैं। कुछ पौधे हैं जो जमीन पर चलते हैं, जो जगह बदल लेते हैं, जो आज यहाँ हैं, तो कल सरक जाएँगे थोड़ा। साल भर बाद आप उनको उस जगह न पाएँगे जहाँ साल भर पहले आया था। साल भर में वह यात्रा कर लेंगे थोड़ी सी। पर वे पौधे सिर्फ दलदली जमीन में होते हैं। जैसे अफ्रीका के कुछ दलदलों में कुछ पौधे हैं जो रास्ता बनाते हैं अपना, चलते हैं, अपने भोजन की तलाश में इधर-उधर जाते हैं। नहीं तो पौधा ठहरा हुआ है। ठहरे हुए होने के कारण बहुत गहरे बन्धन उस पर लग गए हैं और वह कोई खोज नहीं कर सकता, किसी चीज की। जो आ जाए बस वही ठीक है। अन्यथा कोई उपाय नहीं है उसके पास। पानी नीचे हो तो ठीक, हवा ऊपर हो तो ठीक, सूरज निकले तो ठीक, नहीं तो गया वह। यह जो उसकी जड़ स्थिति है उसमें प्राण तो प्रकट हुआ है— जैसा पत्थर में उतना प्रकट नहीं हुआ। वैसे पत्थर भी बढ़ता है, बड़ा होता है। दुःख की संवेदना पत्थर को भी किसी तल पर होती है। लेकिन पौधे को दुःख की संवेदना बहुत बढ़ गई है। चोट भी खाता है तो दुःखी होता है। शायद प्रेम भी करता है, शायद करुणा भी करता है। लेकिन बँधा है जमीन से। तो परतंत्रता बहुत गहरी है। और उस परतंत्रता के कारण चेतना विकसित नहीं हो सकती।

अब हमें ख्याल में नहीं है कि गति से चेतना विकसित होती है जितनी हम गति कर सकते हैं स्वतंत्रता से उतनी चेतना को नई चुनौतियाँ मिलती हैं, नये अवसर नये मौके, नये दुःख, नये सुख, उतनी चेतना जगती है। नये का साक्षात्कार करना पड़ता है। वृक्ष के पास इतनी चेतना नहीं है तो वृक्ष करीब उस हालत में है जिस हालत में आप क्लोरोफार्म मे हो जाते हैं। आप चल-फिर नहीं सकते। आप हाथ नहीं उठा सकते। कोई गरदन काट जाए तो कुछ कर नहीं सकते। प्रकृति उतनी ही चेतना देती है जितना आप उसका उपयोग

कर सकते हैं। अगर पौधे को इतनी चेतना दे दी जाए कि उसकी कोई गरदन काटे तो वह उतना ही दुःखी हो जितना आदमी होता है तो पौधा बड़ी मुश्किल में पड़ जाएगा। चूँकि गरदन कोई रोज काटेगा उसकी, इसलिए उसे इतनी मूर्च्छा चाहिए क्लोरोफार्म वाली कि कोई गरदन भी काटे तो भी पता न चले।

पशु पौधे के आगे का रूप है जहाँ पशु ने गति ले ली है। अब उसकी गरदन काटो तो वह उस हालत में नहीं है जिसमें कि पौधा है। उसको पीड़ा बढ़ गई है, संवेदना बढ़ गई है, सुख बढ़ गया है। और गति ने उसको विकसित किया है। लेकिन वह भी एक तरह की निद्रा में चलता रहा है। क्लोरोफार्म की हालत नहीं है लेकिन एक निद्रा की हालत है। उसे अपना कोई पता ही नहीं है। जैसे एक कुत्ता है। उसको आपने झिड़का तो वह भाग जाता है। आपका झिड़कना ही महत्त्वपूर्ण है, उसका भागना सिर्फ प्रत्युत्तर है। आपने रोटी डाली तो खा लेता है, आपने प्रेम किया तो पूँछ हिलाता है। **वह कोई कर्म नहीं करता, वह प्रतिकर्म करता है।** जो होता रहता है, उसमें वह भागीदार है। भूख लगती है, प्यास लगती है तो घूमने लगता है। भूख न लगे तो वह कुछ खाता नहीं। अगर वह बीमार है तो उस दिन वह कुछ नहीं खाएगा। वह घास खाकर उल्टी भी कर देगा। कुत्ते को अगर खाने की स्थिति नहीं है तो वह कुछ नहीं खाएगा। आदमी खाने की स्थिति में नहीं है तो भी खा सकता है। कुत्ते को अगर खाने की स्थिति है तो उपवास नहीं कर सकता। करना पड़े तो वह बात दूसरी है। आदमी पूरा भूखा है तो भी उपवास कर सकता है। यानी इसका मतलब यह हुआ कि **आदमी कर्म कर सकता है,** कुत्ता सिर्फ प्रतिक्रिया करता है। लेकिन **सभी आदमी कर्म भी नहीं करते।** इसलिए बहुत कम आदमी आदमी की हैसियत में हैं; अधिकतर आदमी प्रतिकर्म ही करते हैं। यानी किसी ने आपको प्रेम किया तो आप प्रेम करते हैं तो यह प्रतिकर्म हुआ और किसी ने गाली दी तो फिर आप प्रेम करें तो कर्म हुआ। यह वैसा ही हुआ जैसे कुत्ता पूँछ हिलाता है उसको रोटी डालो तो। कोई बुनियादी फर्क नहीं है दोनों में।

तो मैं कह रहा हूँ कि कुछ पौधे सरकने लगे हैं। वह जानवर की दिशा में प्रवेश कर रहे हैं! जानवर भी थोड़ा-बहुत आदमी की दिशा में सरक रहे हैं। कुछ आदमी भी चेतना लोकों की तरफ सरक रहे हैं। फर्क है स्वतन्त्रता का। पत्थर सबसे ज्यादा परतंत्र है, पौधा उससे कम, पशु उससे कम, तथाकथित मनुष्य उससे कम। महावीर, बुद्ध जैसे लोग बिल्कुल कम। अगर हम ठीक से

समझें तो सारे विकास को हम स्वतन्त्रता के हिसाब से नाप सकते हैं और इसलिए मेरा निरन्तर जोर स्वतन्त्रता पर है। कोई व्यक्ति जितनी स्वतन्त्रता अर्जित करे जीवन में उतना चेतना की तरफ जाता है और स्वतन्त्रता बहुत प्रकार की है : गति की स्वतन्त्रता, विचार की स्वतन्त्रता, कर्म की स्वतन्त्रता, चेतना की स्वतन्त्रता। यह जितनी पूर्ण होती चली जाती है उतना मोक्ष की तरफ बढ़ा जा रहा है। कर्म की भाषा में कहें तो जीवन मुक्त होने की तरफ जा रहा है। जितना हम नीचे जाते हैं उतना हम अमुक्त हैं। पत्थर कितना अमुक्त है। एक ठोकर आपने मार दी तो कुछ भी नहीं कर सकता, प्रतिक्रिया भी नहीं कर सकता। जहाँ पड़ गया वहीं पड़ गया। कोई उपाय नहीं है उसके पास। सबसे ज्यादा बद्ध अवस्था में है वह। महावीर प्रबुद्ध आत्मा हैं, मुक्त आत्मा हैं।

प्रबुद्ध होने से मुक्त होने तक की यात्रा में कई तल हैं। तो मोटी सीढ़ियां बाँट ली हैं हमने लेकिन सब सीढ़ियों पर अपवाद हैं। जैसे समझ लें पचास सीढ़ियाँ हैं और आदमी चढ़ रहे हैं। कोई आदमी पहली सीढ़ी पर खड़ा है, कोई दूसरी सीढ़ी पर खड़ा है; पहली सीढ़ी से उठ गया है लेकिन अभी दूसरी सीढ़ी पर पैर रखा नहीं है, अभी बीच में है। कोई आदमी तीसरी सीढ़ी पर खड़ा है। कोई आदमी दूसरी से पैर उठा लिया है, तीसरी पर अभी रखा नहीं है। इस तरह स्थूल रूप में देखें तो हमको ऐसा लगता है कि पत्थर है, पौधा है। कुछ पत्थर पौधे की हालत में पहुँच रहे हैं। कुछ पत्थर बिल्कुल पौधे जैसे हैं। उनकी डिजाइन, उनके पत्ते, उनकी शाखाएँ बिल्कुल पौधे जैसी हैं। वे पौधे की तरफ बढ़ रहे हैं। कुछ पौधे बिल्कुल पशुओं जैसे हैं। कुछ पौधे अपना शिकार भी खोजते हैं। पक्षी उड़ रहा है आकाश में तो वे चारों तरफ से पत्ते बन्द कर लेते हैं और फांस लेते हैं उसे। कुछ पौधे प्रलोभन भी डालते हैं। अपनी कलियों पर बहुत मीठा, बहुत सुगंधित रस भर लेते हैं ताकि पक्षी आकर्षित हो जाएँ और ज्योंही पक्षी उस पर बैठते हैं कि चारों तरफ के पत्ते बन्द हो जाते हैं। कुछ पौधे अपने पत्तों को पक्षियों के शरीर में प्रवेश कर वहाँ से खून खींच लेते हैं। वे पौधे अब पौधे की हालत में नहीं रहे। वे पशु की तरफ गति कर रहे हैं। कुछ पशु मनुष्य की तरफ गति कर रहे हैं। बहुत से कुत्तों में, घोड़ों में, हाथियों में, गायों में, मनुष्य जैसी बातें दिखाई पड़ती हैं। जिन-जिन जानवरों से मनुष्य सम्बन्ध बनाता है, उन-उन जानवरों से सम्बन्ध बनाने का कारण ही यही है। सभी जानवरों से मनुष्य सम्बन्ध नहीं बनाता।

जिनको हम पालतू पशु कहते हैं वे कहीं, किसी तल पर हमसे मेल खाते हैं। लेकिन फिर भी उसी जाति के सभी पशु एक तल पर नहीं होते। कुछ आगे बढ़े होते हैं, कुछ पीछे हटे होते हैं।

प्रश्न : जो लोग शाकाहारी नहीं होते हैं उनमें करुणा की भावना, मनुष्यता की भावना अधिक होती है ऐसा कि पश्चिमी देशों में। लेकिन हम हिन्दुस्तान में आम तौर से शाकाहारी हैं तो भी हम में करुणा की भावना, मनुष्यता की भावना रह ही नहीं गई। यह कैसे?

उत्तर : हाँ, उसके कारण हैं क्योंकि अगर आप करुणा के कारण शाकाहारी हुए हैं तब तो बात अलग है और अगर जन्म के कारण शाकाहारी हैं तो इससे कोई सम्बन्ध ही नहीं है करुणा का। यानी आप क्या खाते हैं, इससे करुणा का सम्बन्ध नहीं है। आपकी करुणा क्या है, इससे आप का सम्बन्ध हो सकता है। तो मुल्क में जो शाकाहारी है वह जबरदस्ती शाकाहारी हैं। उसके चित्त में शाकाहार नहीं है। उसके चित्त में कोई करुणा नहीं है। फिर जो मांसाहारी है उसके मन की कठोरता बहुत कुछ उसके भोजन, उसकी जीवन-व्यवस्था में निकल जाती है और वह मनुष्य के प्रति ज्यादा सहृ हो सकता है। और आप शाकाहारी हैं तो आपको वह भी मौका नहीं है। यानी मेरा कहना यह है कि एक शाकाहारी आदमी में आधा पाव कठोरता है और एक मांसाहारी आदमी में भी आधा पाव कठोरता है तो वह मांसाहारी आदमी ज्यादा करुणा-वान् सिद्ध होगा बजाय शाकाहारी के क्योंकि वह जो आधा पाव कठोरता है उसकी वह और दिशाओं में बह जाती है। और आपकी आधा पाव कठोरता का कहीं बहने का उपाय नहीं है। वह सिर्फ आदमी की तरफ ही बहती है, वह सिर्फ आदमी को ही चूसती है। इसलिए पूरब के मुल्क में जहाँ शाकाहार बहुत है वहाँ बड़ा शोषण है, बड़ी कठोरता है और आदमी के आपसी सम्बन्ध बहुत तनावपूर्ण हैं। और आदमी आदमी के प्रति इतना दुष्ट मालूम पड़ता है जिसका हिसाब लगाना मुश्किल है। और बाकी मामलों में वह बड़ा हिसाब लगाता है कि कहीं चींटी पर पैर न पड़ जाये, पानी छान कर पीता है। वह जो कठोरता के बहने के इतर उपाय थे बंद हो जाते हैं। फिर एक ही उपाय रह जाता है। आदमी-आदमी का सम्बन्ध बिगड़ जाता है।

तो मैं शाकाहार का पक्षपाती हूँ, इसलिए नहीं कि आप शाकाहारी हो बल्कि इसलिए कि आप करुणावान् हों और आप उस चित्त-दशा में पहुँचे हुए हों जहाँ से जीवन के प्रति कठोरता क्षीण हो जाती है। जब कठोरता क्षीण

होगी तो वह पशु के प्रति भी क्षीण होगी, मनुष्य के प्रति भी क्षीण होगी। मगर जन्म के साथ शाकाहारी हो जाता है आदमी और कठोरता क्षीण नहीं होती। क्योंकि जीवन एक तरह से बहुत ही शक्तियों का ताल-मेल है, उसमें अगर कुछ शक्तियाँ भीतर पड़ी रह जाती हैं तो मुश्किल पड़ जाती है। जैसे उदाहरण के लिए इंग्लैंड भर में विद्यार्थियों का कोई विद्रोह नहीं और उसका कुल कारण इतना है कि इंग्लैंड के बच्चों को तीन घंटे से कम खेल नहीं खेलना पड़ता। तीन घंटे हाकी, फुटबाल—इस तरह थका डालते हैं कि तीन घंटों में उसकी सारी की सारी उपद्रव की प्रवृत्ति निकास पा जाती है। तो वह घर शांत होकर लौट आता है। इंग्लैंड के लड़के को उपद्रव के लिए कहो तो वह उपद्रव की हालत में नहीं है। जिन मुल्कों में खेल बिल्कुल नहीं है—जैसे हमारा मुल्क है, जैसे फ्रांस है खेल करीब-करीब न के बराबर है—उपद्रव बहुत ज्यादा हैं। अब वह ख्याल में नहीं आता कि एक नियत व्यवस्था है कि एक लड़के को कितना उपद्रव करना जरूरी है। **खेल का मतलब है व्यवस्थित उपद्रव।** लट्ठ मार रहा है गेंद में एक आदमी। वह उतना ही है जैसे कोई खोपड़ी में लट्ठ मारे। **व्यवस्थित उपद्रव अगर करवाते हैं तो उपद्रव कम हो जाएगा।** और व्यवस्थित उपद्रव नहीं करवाते तो फिर अव्यवस्थित उपद्रव बढ़ेगा। इन सबके भीतर हमारी एक निश्चित मात्रा है जो निकलनी चाहिए एक उम्र में। उसका निकलना बहुत जरूरी है।

अब जैसे एक आदमी जंगल में लकड़ी काटता है। यह आदमी एक दुकान में बैठे हुए आदमी से ज्यादा करुणावान् हो सकता है। कारण कि काटने पीटने का इतना काम करता है वह कि काटने पीटने की वृत्ति मुक्त हो जाती है। वह ज्यादा दयालु मालूम पड़ेगा। एक दुकान पर बैठा हुआ आदमी दयालु नहीं हो सकता क्योंकि उसके काटने-पीटने की वृत्ति मुक्त नहीं हुई। जंगल का एक चरवाहा है। वह भेड़ों को चरा रहा है। उसके चेहरे पर कैसी शांति प्रकट होगी। कारण कि वह जानवरों के साथ जो व्यवहार कर रहा है—डंडा मार रहा है, गाली दे रहा है, कुछ भी कर रहा है—वह व्यवहार आप भी करना चाहते हैं लेकिन कोई नहीं मिलता, किससे करें। पत्नी से करते हैं, बेटे से करते हैं, नये-नये बहाने खोजते हैं कि बेटे का सुधार कर रहे हैं, लेकिन भीतरी कारण बहुत दूसरे हैं। इसलिए अक्सर ऐसा होता है कि गाँव का किसान ज्यादा शांत मालूम पड़ता है। उसका कारण है कि काट-पीट के इतने काम उसको मिल जाते हैं, दिन भर में वृक्षों को काट रहा है, पौधों को काट रहा

है, जानवरों को मार रहा है कि वह शान्त हो जाता है। काट-पीट के इतने काम आपको भी मिल जाएँ तो आप भी शान्त हो जाएँगे। मगर आपको नये रास्ते निकालने पड़ते हैं इसके लिए। आप भी किसी को कोड़ा मारना चाहते हैं। मारें कैसे ? तो हमारे मन को वृत्तियाँ फिर नये-नये रास्ते खोजती हैं। और वे नये उपाय खतरनाक सिद्ध होते हैं।

इसलिए मेरा कहना है कि वृत्तियाँ जाननी चाहिएँ, आचरण बदलने का जोर गलत है। मैं किसी को नहीं कहता कि कोई शाकाहारी हो। मैं कहता हूँ: अगर मांसाहार करना है तो मांसाहार करो। इतना जरूर कहूँगा कि यह कोई बहुत ऊँचे चित्त की अवस्था नहीं है। कुछ और ऊँचे चित्त की अवस्थाएँ हैं जिनके खोजने से मांसाहार छूट सकता है। लेकिन मांसाहार छूट जाए और आपकी स्थिति वही रहे तो आप दूसरे तरह के मांसाहार करेंगे जो ज्यादा मंहगे साबित होने वाले हैं।

तो हिन्दुस्तान कठोर हो गया है और हिन्दुस्तान में जो लोग गैर मांसाहारी हैं, वे बहुत कठोर हो गए हैं। एक आदमी कभी दो-चार साल में एक बार कठोर हो जाए तो ठीक है। मगर एक आदमी चौबीस घंटे कठोर रहे तो वह ज्यादा मँहगा पड़ जायेगा। इसलिए बड़े आश्चर्य की बात है कि बर्बर मनुष्य भी हैं जो कच्चे आदमी को खा जाएँ, लेकिन बड़े सरल हैं। आप जाकर कारागृह में देखें कैदियों को। कैदी एकदम सरल मालूम पड़ता है बजाय उन लोगों के जो मजिस्ट्रेट बने बैठे हैं। एक मजिस्ट्रेट की शक्ल देखें और उसके सामने कारागृह में जिसको उसने दस साल की सजा दे दी है, उस आदमी को शक्ल देखें तो अन्तर स्पष्ट हो जायेगा। अब हो सकता है कि दस साल की सजा देने में इस आदमी के भीतर रस हो—कानून तो ठीक ही है, कानून सिर्फ बहाना हो, तरकीब हो, खूंटी हो। मानो वह आदमियों को सताने के यह उपाय खोज रहा है। मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि हर आदमी मजिस्ट्रेट नहीं होता; हर आदमी शिक्षक नहीं होता। मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि शिक्षक वे लोग होना चाहते हैं जो बच्चों को सताना चाहते हैं। उनके भीतर बच्चों को सताने की वृत्ति है। तीस बच्चे मुफ्त मिल जाते हैं, तनख्वाह भी मिलती है। और बच्चों को ढंग से सताते हैं और वे बच्चे कुछ कर भी नहीं सकते। बिल्कुल निहत्थे वे हैं। सौ में से सत्तर शिक्षक सताने वाले मिलेंगे। यानी जिनको अगर आप शिक्षक न होने देते तो वे और कहीं सताते। दिन भर सता कर शिक्षक बहुत सीधा-सादा हो जायेगा। जब वह लौटता है घर तो वह बहुत अच्छा आदमी, बहुत भला आदमी मालूम पड़ता है। वह कितना भला आदमी है क्योंकि वह अपना बुरा मन तो निकाल लेता है।

१६

प्रश्नोत्तर-प्रवचन

आपने पूछा है कि इस जगत् का, इस जीवन का प्रारम्भ कब हुआ, कैसे हुआ ? महावीर के प्रसंग में भी यह बात बड़ी महत्त्वपूर्ण है। महावीर उन थोड़े से चिन्तकों में से एक हैं जिन्होंने प्रारम्भ की बात को ही स्वीकार नहीं किया। महावीर कहते हैं कि प्रारम्भ सम्भव ही नहीं है। अस्तित्व का कोई प्रारम्भ नहीं हो सकता। अस्तित्व सदा से है। और कभी ऐसा नहीं हो सकता कि अस्तित्व न रह जाए। प्रारम्भ की और अन्त की बात ही वह इन्कार करते हैं। और मैं भी उनसे सहमत हूँ। प्रारम्भ की धारणा ही हमारी नासमझी से पैदा होती है। क्योंकि हमारा प्रारम्भ होता है और अन्त होता है इसलिए हमें लगता है कि सब चीजों का प्रारम्भ होगा और अन्त होगा। लेकिन अगर हम अपने भीतर गहरे में प्रवेश कर जाएँ तो हमें पता चलेगा कि हमारा भी कोई प्रारम्भ नहीं, कोई अन्त नहीं। एक चीज बनती है, मिटती है तो हमें ख्याल हो जाता है कि जो भी बनता है वह मिटता है। लेकिन बनना और मिटना प्रारम्भ और अन्त नहीं है। क्योंकि जो चीज बनती है, वह बनने के पहले किसी दूसरे रूप में मौजूद होती है और जो चीज मिटती है वह मिटने के बाद फिर किसी दूसरे रूप में मौजूद होती है।

महावीर कहते हैं कि जीवन में सिर्फ रूपान्तरण होता है। न तो प्रारम्भ है और न कोई अन्त है। प्रारम्भ असम्भव है क्योंकि अगर हम यह मानें कि कभी प्रारम्भ हुआ तो यह भी मानना पड़ेगा कि उसके पहले कुछ भी न था। फिर प्रारम्भ कैसे होगा ? अगर उसके पहले कुछ भी न हो तो प्रारम्भ होने का उपाय भी नहीं। अगर हम यह मान लें कि कुछ भी नहीं था, समय भी नहीं था, स्थान भी नहीं था तो प्रारम्भ कैसे हुआ ? प्रारम्भ होने के लिए कम से कम

समय तो पहले चाहिए ही ताकि प्रारम्भ हो सके। और अगर समय पहले है, स्थान पहले है तो सब पहले हो गया। क्योंकि इस जगत् में मौलिक रूप से दो ही तत्त्व हैं गहराई में—समय और स्थान।

महावीर कहते हैं कि प्रारम्भ की बात ही हमारी नासमझी से उठी है। अस्तित्व का कभी कोई प्रारम्भ नहीं हुआ और जिसका कभी कोई प्रारम्भ न हुआ हो उन्हीं कारणों से उसका कभी अन्त भी नहीं हो सका। क्योंकि अन्त होने का मतलब होगा कि एक दिन कुछ भी न बचे। यह कैसे होगा? अस्तित्व अनादि है और अनन्त है। न कभी शुरू हुआ है, न कभी अन्त होगा। सदा है, सनातन है। लेकिन रूपान्तरण रोज होता है। कल जो रेत था वह आज पहाड़ है, आज जो पहाड़ है वह कल रेत हो जाएगा। लेकिन होना नहीं मिट जाएगा। रेत में भी वही था, पहाड़ में भी वही होगा। आज जो बच्चा है, कल जवान होगा, परसों बूढ़ा होगा। बाद बिदा हो जाएगा। लेकिन जो बच्चे में था वही जवान में होगा, वही बुढ़ापे में होगा, वही मृत्यु के क्षण में बिदा भी ले रहा होगा। वह जो था, वह निरन्तर होगा।

अस्तित्व का अनस्तित्व होना असम्भव है और अनस्तित्व से भी अस्तित्व नहीं आता है। इसलिए महावीर ने स्रष्टा की धारणा ही इन्कार कर दी है। महावीर ने कहा कि जब सृष्टि शुरूआत ही नहीं होती तो शुरूआत करने वाले की धारणा को क्यों बीच में लाना है? जब शुरूआत ही नहीं होती तो स्रष्टा की कोई जरूरत नहीं है। यह बड़े साहस की बात थी उन दिनों। महावीर ने कहा सृष्टि है और स्रष्टा नहीं है। क्योंकि अगर स्रष्टा होगा तो प्रारम्भ मानना पड़ेगा और महावीर कहते हैं कि स्रष्टा भी हो तो भी शून्य से प्रारम्भ नहीं हो सकता। और फिर मजे की बात यह है कि अगर स्रष्टा था तो फिर शून्य कहना व्यर्थ है। तब था ही कुछ। और उस होने से कुछ होता रहेगा। जैसे साधारणतः हम जिसको आस्तिक कहते हैं वस्तुतः वह आस्तिक नहीं होता। साधारणतः आस्तिक की दलील यह है कि कोई चीजों को बनाने वाला है तो परमात्मा भी होना चाहिए। लेकिन नास्तिकों ने और गहरा सवाल पूछा कि अगर सब चीजों का बनाने वाला है तो फिर परमात्मा को बनाने वाला भी होना चाहिए। और तब बड़ी मुश्किल खड़ी हो जाएगी। अगर परमात्मा का स्रष्टा भी मान लें तो फिर अन्तहीन विवाद खड़ा हो जाएगा। क्योंकि फिर उसका बनाने वाला चाहिए, फिर उसका, फिर उसका, इसका अन्त कहाँ होगा? किसी भी कड़ी पर यही सवाल उठेगा : इसका बनाने वाला कौन है?

महावीर कहते हैं कि आस्तिक भूल में है और इसलिए नास्तिक को उत्तर नहीं दे पा रहा है क्योंकि आस्तिक बुनियादी भूल कर रहा है। महावीर परम आस्तिक हैं खुद भी। लेकिन वह कहते हैं कि बनाने वाले को बीच में लाने की जरूरत नहीं है। अस्तित्व पर्याप्त है। कोई बनाने वाला नहीं है। इसलिए यह भी सवाल नहीं है कि उसके बनाने वाला कहाँ है? महावीर के परमात्मा स्रष्टा की धारणा अस्तित्व की गहराइयों से निकलती है अस्तित्व के बाहर से नहीं आती। अस्तित्व अलग और परमात्मा अलग बैठकर उसको बना रहा है जैसे कि कुम्हार घड़ा बना रहा हो, ऐसा नहीं है कोई परमात्मा। इसी अस्तित्व में जो सारभूत विकसित होते-होते अन्तिम क्षणों तक विकास को उपलब्ध हो जाता है, वही परमात्मा है। परमात्मा की धारणा में महावीर के लिए विकास है यानी परमात्मा की धारणा अस्तित्व का सारभूत अंश है जो विकसित हो रहा है।

साधारण आस्तिक की धारणा है कि परमात्मा अलग बैठा है और जगत् को बना रहा है। तब प्रारम्भ की बात आ जाती है। उसी आस्तिक की नासमझी को वैज्ञानिक भी पकड़े हुए चला जाता है। हालाँकि वह ईश्वर से इन्कार कर देता है। लेकिन फिर वह सोचता है कि प्रारम्भ कब हुआ? हाँ, यह हो सकता है कि इस पृथ्वी का प्रारम्भ कब हुआ इसका पता चल जाएगा। इस पृथ्वी का कब अन्त होगा, यह भी पता चल जाएगा लेकिन पृथ्वी जीवन नहीं है, जीवन का एक रूप है। जैसे मैं कब पैदा हुआ, पता चल जाएगा। मैं कब मर जाऊँगा, पता चल जाएगा। लेकिन मैं जीवन नहीं हूँ, जीवन का सिर्फ एक रूप हूँ। जैसे हम एक सागर में जाएँ। एक लहर कब पैदा हुई पता चल जाएगा। एक लहर कब गिरी यह भी पता चल जायगा। लेकिन लहर सिर्फ एक रूप है सागर का। सागर कब शुरू हुआ? सागर का कब अन्त होगा? और अगर सागर का पता चल जाए तो फिर सागर भी एक लहर है बड़े विस्तार की।

अन्ततः जो है गहराई में वह सदा से है। उसके ऊपर की लहरें आई हैं, गई हैं, बदली हैं। आएँगी, जाएँगी, बदलेंगी। पर जो गहराई में है, जो केन्द्र में है, वह सदा से है। और यह हमारे ख्याल में आ जाए तो प्रारम्भ का प्रश्न समाप्त हो जाता है, अन्त का प्रश्न भी समाप्त हो जाता है। सूरज ठंडा होगा क्योंकि सूरज गर्म हुआ है। जो गर्म होगा, वह ठंडा होगा। वक्त कितना लगता है, यह दूसरी बात है। एक दिन सूरज ठंडा था, एक दिन सूरज फिर ठंडा हो जाएगा। एक दिन पृथ्वी ठंडी होगी। इनके भी जीवन हैं। असल में हमें ख्याल

भी नहीं है कि पृथ्वी भी जीवित है। इसे थोड़ा समझ लेना उपयोगी होगा। हम कहते हैं कि मैं जीवित हूं लेकिन हम कभी ख्याल भी नहीं करते कि हमारे शरीर में करोड़ों कीटाणु भी जीवित हैं। उन कीटाणुओं का अपना जीवन है और उन कीटाणुओं से मिले हुए जीवन में एक और भी जीवन है जो हमारा है। पृथ्वी का अपना एक जीवन है। इसलिए महावीर कहते हैं कि पृथ्वी काया है जीवन की। इस पृथ्वी पर पौधों, पक्षियों, मनुष्यों का अपना जीवन है। लेकिन पृथ्वी का अपना जीवन है। पृथ्वी की अपनी जीवनधारा है। उसका जन्म हुआ है। वह मरेगी। सूरज का अपना जीवन है। चाँद का अपना जीवन है। वह भी शुरू हुआ, उसका भी अन्त होगा। लेकिन जीवन का, अस्तित्व का कोई अन्त नहीं है। ऐसा ही समझ लें कि अस्तित्व एक सागर है, उस पर लहरें उठती हैं, आती हैं, जाती हैं, लेकिन पूरे अस्तित्व का कभी प्रारम्भ हुआ हो, न ऐसा है, न ऐसा हो सकता है।

इसे ऐसा समझना चाहिए। हमारे सारे तर्क एक सीमा पर जाकर व्यर्थ हो जाते हैं। हम यहां लकड़ी के तख्तों पर बैठे हुए हैं। कोई हमसे पूछ सकता है कि आपको कौन संभाले हुए हैं तो हम कहेंगे—लकड़ी के तख्ते। फिर वह पूछ सकता है कि लकड़ी के तख्तों को कौन संभाले हुए है तो हम कहेंगे—जमीन। फिर वह पूछ सकता है कि जमीन को कौन संभाले हुए है तो हम कहेंगे कि ग्रहों-उपग्रहों का गुरुत्वाकर्षण। फिर वह पूछ सकता है कि ग्रहों-उपग्रहों को कौन संभाले हुए हैं? तो शायद हम और खोजते चले जाएँ। लेकिन अन्ततः कोई पूछे कि इस समय को, इस पूरे को, जिसमें ग्रह, उपग्रह, तारे, पृथ्वी सब आ गए हैं इस सबको कौन संभाले हुए है तो हम उससे कहेंगे कि अब बात जरा ज्यादा हो गई है। इस सबको कौन संभाले हुए है, यह प्रश्न असंगत है क्योंकि हमने पूछा कि सबको कौन संभाले हुए हैं? अगर संभालने वाले को हम बाहर रखते हैं तो सब अभी हुआ नहीं। और अगर उसे भीतर कर लेते हैं तो बाहर कोई बचता नहीं जो उसे संभाले। सबको कोई भी नहीं संभाले हुए है। सब स्वयं संभला हुआ है। एक-एक चीज को एक-एक दूसरा संभाले हुए है। लेकिन समग्र को कोई भी नहीं संभाले हुए है। वह खुद संभला हुआ है। वह स्वयं है। इसीलिए महावीर कहते हैं कि जीवन स्वयंभू है। न इसका बनाने वाला है, न इसका मिटाने वाला है। वह स्वयं है। जैसा कि वे कहते हैं कि इससे क्या फायदा कि तुम एक आदमी को लाओ बीच में। फिर कल यही सवाल उठे कि उसको कौन बनाने वाला है फिर तुम किसी और को

लाओ, फिर वही सवाल उठे। फिर परमात्मा का प्रारम्भ कब हुआ, यह सवाल उठे। और फिर परमात्मा की मृत्यु कब होगी, यह सवाल उठे। हमें सवालों में जाने का कोई अर्थ नहीं है।

तो महावीर उस परिकल्पना को एकदम इन्कार कर देते हैं। और मेरी अपनी समझ है कि जो लोग अस्तित्व की गहराइयों में गए हैं, वह स्रष्टा की धारणा को इन्कार ही कर देंगे। उनकी परमात्मा की धारणा, स्रष्टा की धारणा नहीं होगी। उनकी परमात्मा की धारणा जीवन के विकास की चरम बिन्दु की धारणा होगी। यानी सामान्यतः जिसको हम आस्तिक कहते हैं उसका परमात्मा पहले है। महावीर की जो आस्तिकता है उसमें परमात्मा चरम विकास है। और इसलिए रोज होता रहेगा। एक लहर गिर जाएगी और सागर हो जाएगी। लेकिन दूसरी लहर उठती रहेगी तो इसलिए कोई कभी अन्त नहीं होगा। लहरें उठती रहेंगी, गिरती रहेंगी। सागर सदा होगा। इसलिए आस्तिक वह है जो लहरों पर ध्यान न दे, उस सागर पर ध्यान दे जो सदा है। आस्तिक वह है जो बदलाहट पर ध्यान न दे, उस पर ध्यान दे जो सदा से है।

एक आदमी मर रहा है। उससे हम पूछें कि सच में वह तूने किया हो था या कोई सपना देखा था तो मरते आदमी को तय करना बहुत मुश्किल है कि जिन्दगी में जो लाखों कमाए थे, वे कमाए ही थे, या कि कोई सपना था। बर्टेंड रसल ने एक मजाक की है कि मरते वक्त मैं यह नहीं तय कर पाऊँगा कि जो हुआ वह सच में हुआ या कि मैंने एक सपना देखा। और कैसे तय करूँगा, दोनों में फर्क क्या करूँगा कि वह सच में हुआ था। आप ही पीछे लौटकर देखिए कि जो बचपन गुजर गया वह आपका एक सपना था या कि सचमुच था। आज तो आपके पास सिवाय एक स्मृति के और कुछ नहीं रह गया। मजे की बात यह है कि जिसे हम जीवन कहते हैं उसकी स्मृति भी वैसे ही बनती है जैसे कि सपने की बनती है। इसीलिए छोटे बच्चे तय भी नहीं कर पाते कि यह सपना है। छोटा बच्चा अगर रात में सपना देख लेता है कि उसकी गुड्डी किसी ने तोड़ दी है तो वह सुबह रोता हुआ उठता है, पूछता है मेरी गुड्डी तोड़ डाली गई है। उसे अभी साफ नहीं है। उसने जो सपना देखा उसमें और जागकर जो गुड्डी देखी उसमें फर्क है। लेकिन उसे अभी फर्क नहीं मालूम पड़ता। इसलिए हो सकता है कि वह सपने में डरा हो और जागकर रोता रहे। और समझाना मुश्किल हो जाए क्योंकि हमें पता ही नहीं उसके कारण का कि वह डरा किस

वजह से है। हो सकता है कि सपने में किसी ने उसे मार दिया हो और वह रोता चला जा रहा है जाकर। उसके लिए फासला नहीं है अभी। जो लोग जीवन की गहराइयों पर उतरते हैं वे अन्त में फिर उस जगह पर पहुँच जाते हैं जहाँ फासले खो जाते हैं।

चीन में च्वांगत्से नाम का एक अद्भुत विचारक हुआ है। एक रात सपना देखा उसने, सुबह उठा। वह बड़ा परेशान था। मित्रों ने पूछा कि आप इतने परेशान क्यों हैं। हमारी परेशानी होती है, तो हम आप से सलाह लेते हैं। आज आप परेशान हैं ? क्या हो गया आपको ? उसने कहा : मैं बड़ी मुश्किल में पड़ गया हूँ। रात मैंने एक सपना देखा कि मैं तितली हो गया हूँ और फूल-फूल पर भटक रहा हूँ। तो मित्रों ने कहा, इसमें क्या परेशान होने की बात है ? सपने सभी देखते हैं। उसने कहा : नहीं, इससे परेशान होने की बात नहीं है। अब मैं इस चिन्ता में पड़ गया हूँ कि अगर रात च्वांग नाम का आदमी सोया और तितली हो गया सपने में तो कहीं ऐसा तो नहीं है कि वह सपने की तितली अब सो गई है और अब सपना देख रही है च्वांग हो जाने का। क्योंकि जब आदमी सपने में तितली हो सकता है तो तितली सपने में आदमी हो सकती है। अब मैं सच में च्वांग हूँ या फिर तितली सपना देख रही है। वह जिन्दगी भर लोगों से पूछता रहा कि कैसे तय हो इस बात का।

जैसे ही कोई आदमी गहरे जीवन में उतरेगा तो उसे पता चलेगा कि वहीं से सपने आते हैं, वहीं से जीवन आता है, वहीं से सब लहरें आती हैं। इसलिए सब लहरें एक अर्थ में समानार्थक होती हैं। तब सुख और दुःख बेमानी है। तब आरम्भ और अन्त बेमानी हैं, तब ऐसा होना और वैसा होना बेमानी हैं। तव सब स्थितियों में आदमी राजी है। लेकिन चूँकि हम लहरों का हिसाव रखते हैं इसलिए हम परम सत्य की बाबत भी पूछना चाहते हैं वह कब शुरू हुआ, कब अन्त होगा।

सूरज बनेगा, मिटेगा। वह भी एक लहर है जो जरा देर तक चलने वाली है। पृथ्वी दो अरब वर्ष चलेगी। वह भी मिटेगी, बनेगी। वह भी एक लहर है। हजारों पृथ्वियाँ बनी हैं और मिटी हैं। हजारों सूरज बने और मिटे हैं। और प्रतिदिन कहीं, किसी कोने पर कोई सूरज ठंडा हो रहा है। और किसी कोने पर सूरज जन्म ले रहा है। इस वक्त भी, अभी जब हम यहाँ बैठे हैं तो कोई सूरज बूढ़ा हो रहा है। कोई सूरज अभी मरा होगा। कोई सूरज नया जन्म ले रहा होगा। कोई सूरज बच्चा है अभी, कोई जवान हो रहा है। हमारा

सूरज भी बूढ़ा होने के करीब पहुँच रहा है। उसकी उम्र ज्यादा नहीं है। वह चार-पांच हजार वर्ष लेगा ठंडा होने में। हमारी पृथ्वी भी बूढ़ी होती चली जा रही है। एक छोटी सी इल्ली है, वह वर्षा में ही पैदा होती है, वर्षा में ही मर जाती है। वह वृक्ष पर चढ़ रही है। वृक्ष उसको सनातन मालूम पड़ता है। उसके बाप भी इसी पर चढ़े थे। यह वृक्ष कभी मिटता हुआ नहीं दिखता। इल्ली को हजारों पीढ़ियाँ गुजर जाती हैं और यह वृक्ष है कि ऐसा ही खड़ा रह जाता है। इल्लियाँ सोचती होंगी कि वृक्ष न कभी पैदा होते हैं न कभी मरते हैं। इल्लियाँ पैदा होती हैं और मर जाती हैं। वृक्ष की उम्र है दो सौ वर्ष और इल्ली एक मौसम भर जीती है। उसकी दो सौ पीढ़ियाँ एक वृक्ष पर गुजर जाती हैं। हमारी दो सौ पीढ़ियों में कितना लम्बा फासला है। महावीर से हमारा कितना फासला है? पच्चीस सौ वर्ष ही न? अगर हम पचास वर्ष को भी एक पीढ़ी मान लें तो कितना फासला है? कितनी पीढ़ियाँ गुजरी हैं? कोई बहुत ज्यादा नहीं।

तो न कोई प्रारम्भ, न कोई अन्त है। और जिसका प्रारम्भ है और अन्त है, वह केवल एक रूप है, एक आकार है। आकार बनेंगे और बिगड़ेंगे, आकृति उठेगी और गिरेगी। सपने पैदा होंगे और खोएँगे। लेकिन जो सत्य है वह सदा है। उसे हम कभी ऐसा भी नहीं कह सकते कि वह था। उसके लिए ऐसा भी नहीं कह सकते कि वह होगा। उसके लिए तो एक ही बात कह सकते हैं कि वह है और अगर बहुत गहरे में कोई जाता है तो वह पाता है कि यह कहना भी गलत है कि सत्य है। क्योंकि जो है वही सत्य है। सत्य के साथ 'है' को भी जोड़ना बेमानी है क्योंकि 'है' उसके साथ जोड़ा जा सकता है जो नहीं है, हो सकता हो। कह सकते हैं कि यह मकान है क्योंकि मकान 'नहीं' है यह भी हो सकता है। लेकिन 'सत्य है' इसके कहने में कठिनाई है थोड़ी। क्योंकि सत्य 'नहीं है' कभी नहीं हो सकता। इसलिए सत्य और 'है' पर्यायवाची हैं। इनका दोहरा उपयोग करना एक साथ पुनरुक्ति है। 'सत्य है', इसका मतलब है, जो है वह है।

इस दृष्टि का थोड़ा सा ख्याल आ जाए तो सब बदल जाता है। तब पूजा और प्रार्थना नहीं उठती। तब मस्जिद और मन्दिर नहीं खड़े होते, लेकिन सब बदल जाता है। आदमी मन्दिर बन जाता है। आदमी का उठना, चलना, बैठना, सब पूजा और प्रार्थना हो जाती है। क्योंकि अब जो विस्तार का बोध आता है तो अपनी क्षुद्रता खो जाने का अर्थ लगने लगता है। फिर उसका कोई

मतलब नहीं रह जाता। 'मैं' 'हूँ'— इसका कोई अर्थ नहीं। 'मैं था'—इसका कोई अर्थ नहीं। 'मैं होऊँगा'—इसका कोई अर्थ नहीं। लेकिन मेरे भीतर जो सदा है, वही सार्थक है। और वह सब के भीतर है और वह एक ही है। तो व्यक्ति खो जाता है, अहंकार खो जाता है। तब जिसका जन्म होता है उसी को हम कहेंगे 'बदला हुआ चित्त', बदली हुई चेतना जो भी नाम देना चाहें, हम दे सकते हैं।

प्रश्न : जड़ और चेतना दो पृथक् चीजें हैं या एक ही वस्तु के दो रूप ?

उत्तर : ये पृथक् चीजें नहीं हैं। पृथक् दिखाई पड़ती हैं। जड़ का मतलब है इतना कम चेतन कि हम अभी उसे चेतन नहीं कह पाते। चेतन का मतलब है इतना कम जड़ कि अब हम उसे जड़ नहीं कह पाते। वह एक ही चीज के दो छोर हैं। जड़ता चेतन होती चली जा रही है, जड़ता में भीतर कहीं चेतन छिपा है। फर्क सिर्फ प्रकट और अप्रकट का है। और जिसको हम जड़ कहते हैं, वह अप्रकट चेतन है यानी जिसकी अभी चेतना प्रकट नहीं हुई है। जिसको हम चेतन कहते हैं, वह प्रकट हो गया है। जैसे कि एक बीज रखा है और एक वृक्ष खड़ा है। कौन कहेगा कि बीज और वृक्ष एक ही है ? क्योंकि कहाँ वृक्ष ? और कहाँ बीज ? लेकिन बीज में वृक्ष अप्रकट है। बस इतना ही फर्क है। दो दिखाई पड़ते हैं; दो हैं नहीं। और जहाँ-जहाँ हमें दो दिखाई पड़ते हैं, वहाँ-वहाँ दो नहीं हैं। 'है' तो एक ही लेकिन हमारे देखने की क्षमता इतनी सीमित है कि हम दो में ही देख सकते हैं। यह हुआ है हमारी सीमित क्षमता के कारण क्योंकि जड़ में हमें चेतन दिखाई नहीं पड़ता और चेतन को हम कैसे जड़ कहें। इसलिए जो झगड़ा चलता आ रहा है वह एकदम बेमानी है।

जिन लोगों ने कहा कि यह पदार्थ ही है, वे भी ठीक कहते हैं। क्योंकि सब पदार्थ में ही तो आ रहा है तो कहा जा सकता है कि पदार्थ ही है। इसमें झगड़ा कहाँ है ? लेकिन कोई कहता है कि पदार्थ है ही नहीं। बस, चेतन ही है। वह भी ठीक कहता है। वे ऐसे ही लोग हैं जैसे एक कमरे में आधा भरा गिलास रखा हो और एक आदमी बाहर आए और कहे कि गिलास आधा खाली है। और फिर दूसरा आदमी बाहर आए और कहे : गलत बोलते हो बिल्कुल ! गिलास आधा भरा है। और दोनों विवाद करें। और तब दो सम्प्रदाय बन जाएँगे। और ऐसे लोगों के सम्प्रदाय बनते हैं जो भीतर कभी जाते नहीं दीखते कि गिलास कैसा है ? मकान के बाहर ही निर्णय कर लेते हैं। दो आदमी खबर लाएँ और एक कहें कि मकान के भीतर जो गिलास है वह आधा खाली है

और दूसरा कहे कि वह आधा भरा है। दोनों ही ठीक कहते हैं। सिर्फ उनका जोर भिन्न है। एक खाली पर जोर देकर चला है; एक भरे पर।

जो लोग पदार्थ पर जोर दे रहे हैं, वे भी ठीक हैं। और जो अध्यात्म पर जोर दे रहे हैं वे भी ठीक हैं क्योंकि पदार्थ और चेतन दो चीजें नहीं हैं। **पदार्थ चेतन की अप्रकट स्थिति है और चेतन पदार्थ की प्रकट स्थिति है।** तो मेरी दृष्टि में जिस दिन दुनिया और ज्यादा सम्प्रदायों से उठकर देखना शुरू करेगी उस दिन भौतिकवादी और अध्यात्मवादी मे कोई झगड़ा नहीं रहेगा। वह आधे गिलास का झगड़ा है। हाँ, फिर भी मैं पसंद करूँगा कि जोर इस तथ्य पर दिया जाए **कि सब चेतन है।** पसंद इसलिए करूँगा कि जब हम इस बात पर जोर देते हैं कि सब पदार्थ है तो हमारी चेतना के प्रकट होने में बाधा पड़ती है। दूसरी ओर जब हम इस बात पर बल देते हैं कि सब चेतन है तो हमारी चेतना पर बल पड़ता है और विकास की सम्भावना उद्भूत होती है। इसलिए अध्यात्मवाद में और पदार्थवाद में बुनियादी भेद नहीं है। भेद सिर्फ इस बात का है कि पदार्थवाद आदमी को रोक सकता है विकास से। क्योंकि जब सब पदार्थ ही है तो बात खत्म हो गई। और अध्यात्मवाद विकासशील बना सकता है आदमी को। लेकिन जब कोई पहुँचता है जीवन के सत्य पर तो वह पाता है कि दोनों बातें ठीक हैं। बातों में कोई झगड़ा न था लेकिन जोर में फर्क पड़ता था और फर्क उपयोगी था।

भोज के जीवन में एक उल्लेख है कि उसके दरबार में एक ज्योतिषी आया भोज का हाथ देखा और कहा, "तुम बड़े अभागे हो। तुम अपनी पत्नी को भी मरघट पहुँचाओगे, अपने बेटों को भी मरघट पहुँचाओगे। तुम घर के एक-एक सदस्य को मरघट पहुँचाना पड़ेगा। बाद में तुम मरोगे।" भोज बहुत नाराज हो गया और उसने ज्योतिषी को हथकड़ियां डलवा दीं और कहा इसे बन्द कर दो। यह आदमो कैसी अपशकुन की बातें बोल रहा है? कालिदास चुपचाप बैठा था। वह खूब हंसने लगा। उसने कहा ज्योतिषी कुछ अपशकुन नहीं बोलता। सिर्फ बोलने की समझ नहीं है। जोर गलत चीज पर देता है। भोज ने पूछा : क्या मतलब? कालिदास ने कहा कि मैं आपका हाथ देखूँ और हाथ देखकर कहूँ, "बहुत धन्यभागी हैं आप। आपकी उम्र बहुत ज्यादा है। और धन्यभागी इन अर्थों में हैं कि न तो आपकी मृत्यु से आपकी पत्नी कभी दुःखी होगी, न आपकी मृत्यु से आपके बेटे कभी दुःखी होंगे। न कोई संबंधी दुःखी होगा। आप बड़े धन्यभागी हैं।" और भोज ने कहा कि जितना इनाम चाहिए लो, ऐसे शकुन की

बात करनी चाहिए, अपशकुन की नहीं। यह जो जोर का फर्क है चित्त पर इसके परिणाम भिन्न होते हैं। पहली बात बड़ा उदास कर देगी। दूसरी बात बड़ा प्रसन्न कर देगी। और बात बिल्कुल एक ही है। लेकिन उनके कहने का ढंग, उनका जोर बदल गया है।

पदार्थवाद मनुष्य को एकदम उदास कर देता है। अध्यात्मवाद एक गति देता है, विकास के द्वार खोलता है, कुछ होने की सम्भावना प्रकट करता है। बात वही है। इसलिए मैं फिर भी कहता हूँ कि अध्यात्मवाद ही ठीक कहता है, यद्यपि भौतिकवाद गलत नहीं कहता है।

प्रश्न : क्या यह मानवज्ञान की सीमा नहीं है कि वह सृष्टि के आदि को नहीं जान सकता ?

उत्तर : नहीं, यह मनुष्य के ज्ञान की सीमा का सवाल नहीं है। मनुष्य का ज्ञान कितना ही असीम हो जाए, तो भी प्रारम्भ की सम्भावना नहीं है।

प्रश्न : जानने की सम्भावना नहीं ?

उत्तर : नहीं, जानने की बात नहीं। बात है प्रारम्भ होने की। जानने का सवाल नहीं है। अगर प्रारम्भ है तो जाना जा सकता है। जो है वह जाना जा सकता है। अब जो नहीं है, उसके लिए क्या करेंगे ? प्रारम्भ असम्भव है। ज्ञान की सीमा का सवाल ही नहीं है। यानी ऐसा नहीं है कि महावीर यह कहते हैं कि मुझे पता नहीं कि प्रारम्भ है या नहीं। मैं भी ऐसा नहीं कह रहा हूँ कि यह हमारे ज्ञान की सीमा है कि हमें पता नहीं चल सकता कि प्रारम्भ कब हुआ ? नहीं, यह सवाल नहीं है। सवाल यह है कि प्रारम्भ की अवधारणा असम्भव है क्योंकि प्रारम्भ के लिए भी पहले कुछ सत्ता से होना चाहिए, नहीं तो प्रारम्भ हो ही नहीं सकता। यानी प्रारम्भ के सम्भव होने के लिए भी प्रारम्भ के पहले अस्तित्व चाहिये। और जब पहले अस्तित्व चाहिये तो वह प्रारम्भ नहीं रह गया और फिर इसको आप पीछे खींचते चले जाएँ। जैसे कोई आदमी कहे कि दुनिया की एक सीमा है और हम कहें कि हमें तो सीमा का कोई पता नहीं। कोई कहे कि अस्तित्व एक जगह जाकर समाप्त हो जाता है, जिसके आगे कुछ भी नहीं है तो हम कहें हमें पता नहीं है। हो सकता है कि एक दिन आदमी उस जगह पहुँच जाए जहाँ जगत् समाप्त हो जाता है। क्योंकि हमारा ज्ञान अभी सीमित है, हम बहुत थोड़ा सा ही जानते हैं, अभी चांद पर ही पहुँच पायें हैं, मुश्किल से। और जगत् का अस्तित्व तो बहुत विस्तीर्ण है। कभी हम पहुँच

पाएँगे, यह नहीं कह सकते। इसलिए अन्त के सम्बन्ध में हम कैसे कहें? लेकिन मैं कहता हूँ कि अन्त नहीं हो सकता, अन्त असम्भव है।

अन्त इसलिए असम्भव है कि किसी चीज का अन्त सदा दूसरे का प्रारम्भ होता है। यानी अगर हम किसी दिन ऐसी जगह पहुँच जाएँ जहाँ एक रेखा आ जाती हो और हम कह सकें कि यह जगत् का अन्त हुआ तो यह कैसे संभव है? रेखा बनेगी कैसे? रेखा बनती है दो के अस्तित्व से। एक शुरू होता है और एक अन्त होता है। जहाँ आपका मकान खत्म होता है वहाँ पड़ोसी का मकान शुरू हो जाता है। इसीलिए जहाँ कुछ अन्त होता है, वहीं प्रारम्भ होता है। यानी प्रत्येक अन्त प्रारम्भ को जन्म देता है और प्रत्येक प्रारम्भ अन्त को जन्म देता है। जहाँ ऐसी स्थिति हो, वहाँ हम बिना किसी दिक्कत के कह सकते हैं कि चाहे कितना ही कहीं मनुष्य पहुँच जाए ऐसा कभी नहीं होगा कि मनुष्य कहे कि यह है जगत् की सीमा, अब इसके आगे कुछ भी नहीं है। लेकिन 'आगे' तो होगा। इतना भी अगर रहा कि इसके 'आगे' कुछ नहीं पर 'आगे' तो होगा, फिर 'आगे' तो अभी जारी रहा, खत्म कहाँ हुआ। यानी आप विचार भी नहीं कर सकते ऐसा कि एक जगह ऐसी आ गई जिसके आगे 'आगे' भी नहीं है। ऐसी जगह कैसे आएगी? इसलिए न तो अवधारणा हो सकती है और न सम्भावना।

महावीर का दावा जारी रहेगा। वह दावा कभी भी खंडित नहीं हो सकता। यानी अगर किसी दिन हमने पता भी लगा लिया कि इस दिन पृथ्वी का प्रारंभ हुआ तो हम पाएँगे कि उसके पहले कुछ है जिससे प्रारम्भ हुआ। फिर जब उसका पता लगा लिया तो पता चलेगा कि उसके पहले कुछ है जिससे प्रारम्भ हुआ। यानी प्रारम्भ शून्य से नहीं हो सकता है, और अगर शून्य से प्रारम्भ हो सके तो शून्य को शून्य कहना गलत होगा। उसका मतलब होगा कि शून्य में भी बीज की तरह कुछ छिपा है जो प्रकट होगा। फिर वही 'शून्य' न रहा। 'शून्य' का मतलब है जिसमें कुछ भी नहीं छिपा, जो है ही नहीं। इसका जो कारण है वह यह नहीं है कि मनुष्य का ज्ञान सीमित है। इसका कारण यह है कि ज्ञान कितना ही बढ़ जाए, प्रारम्भ की धारणा असम्भव है। प्रारम्भ कभी है ही नहीं। यानी उस प्रारम्भ होने की धारणा में ही उसका विरोध छिपा हुआ है। वह कैसे होगा? और जहाँ से भी होगा पूर्व स्थिति की जरूरत पड़ेगी। और वह पूर्वस्थितियाँ प्रारम्भ को खंडित कर देती हैं।

प्रश्न : जीवन की भिन्न-भिन्न प्रतिकूल परिस्थितियों में महावीर की मानसिक स्थिति का विश्लेषण उपलब्ध नहीं होता। आज जो साहित्य उपलब्ध है, उसके आधार पर उनकी अंतरंग स्थिति का स्पष्टीकरण क्या हो सकेगा ?

उत्तर : यह बहुत बढ़िया सवाल है। बढ़िया इसलिए है कि हम सबके मन में उठ सकता है कि भिन्न-भिन्न अनुकूल या प्रतिकूल परिस्थितियों में महावीर जैसे व्यक्ति की चित्तदशा क्या होगी ? कोई उल्लेख नहीं है। तो कोई सोच सकता है क उल्लेख इसलिए नहीं है कि महावीर ने कभो कुछ कहा न हो। मगर यह कारण नहीं है। उल्लेख न होने का कारण दूसरा है जो कि बहुत गहरा, बुनियादी है।

महावीर जैसी चेतना की अभिव्यक्ति में परिस्थितियों से कोई भेद नहीं पड़ता। इसलिए भिन्न-भिन्न परिस्थिति कहने का कोई अर्थ नहीं है। भिन्न-भिन्न परिस्थितियों में प्रतिकूल, अनुकूल में चित्त सदा समान है। जैसे कि किसी ने गाली दी तो हम क्रुद्ध होते हैं और किसी ने स्वागत किया तो हम आनन्दित होते हैं। प्रत्येक स्थिति में हमारा चित्त रूपान्तरित होता है। जैसी स्थिति होती है वैसा चित्त हो जाता है। इसी को महावीर बन्धन की अवस्था कहते हैं। स्थिति जैसी होती है, वैसा चित्त को होना पड़ता है। फिर हम बंधे हुए हैं। स्थिति दुःख की होती है तो हमें दुःखी होना पड़ता है। स्थिति सुख की होती है तो हमें सुखी होना पड़ता है। इसका मतलब यह हुआ कि चित्त की अपनी कोई दशा नहीं है। सिर्फ बाहर की स्थिति जो मौका दे देती है चित्त वैसा हो जाता है। इसका अर्थ यह हुआ कि चेतना अभी उपलब्ध हो नहीं हुई। अभी हम उस जगह नहीं पहुँचे हैं जहाँ स्थितियाँ कोई फर्क नहीं लाती है, जहाँ सुख आए, दुःख आए तो प्रतिकूल और अनुकूल जैसी चीज ही नहीं होती।

महावीर के अंतरंग चित्त में क्या हो रहा है ? किसी दिन बहुत शिष्य इकट्ठे हुए होंगे तो महावीर का मन कैसा है ? किसी दिन कोई नहीं आया होगा गाँव में सुनने तो महावोर का मन कैसा है ? किसी दिन सम्राट् आए होंगे सुनने और चरणों में लाखों रुपये रखे होंगे और किसी दिन कोई भिखारी आया होगा और उसने कुछ नहीं रखा होगा तो महावीर का मन कैसा हुआ होगा ? किसी गाँव में स्वागत-समारम्भ हुए होंगे, फूल-मालाएँ चढ़ी होंगी और किसी गाँव में पत्थर फेंके गए होंगे, गालियाँ दी गई होंगी और गाँव के बाहर खदेड़ दिया गया होगा

तो महावीर का मन कैसा हुआ होगा ? यानी इन स्थितियों में महावीर के भीतर क्या होता है ?

असल में महावीर होने का मतलब ही यह है कि भीतर अब कुछ भी नहीं होता। जो होता है वह सब बाहर होता है। यही महावीर होने का अर्थ है, यही क्राइस्ट होने का अर्थ है, यही बुद्ध होने का अर्थ है, यही कृष्ण होने का अर्थ है कि अब भीतर कुछ भी नहीं होता। भीतर बिल्कुल अछूता छूट जाता है। जैसे एक दर्पण है और उसके सामने से कोई निकलता है, जैसा व्यक्ति है— सुन्दर या कुरूप—वैसी तस्वीर बन जाती है। व्यक्ति निकल गया, तस्वीर मिट गई, दर्पण रह जाता है। इसमें कोई फर्क नहीं पड़ता कि वह दर्पण सुन्दर व्यक्ति को कुछ ज्यादा रस से झलकाए, कुरूप को कम रस से झलकाए। सुन्दर है कि कुरूप है, कौन गुजरता है सामने से, इससे कोई मतलब नहीं है। दर्पण का काम है झलका देना। लेकिन एक फोटो-प्लेट है वह भी दर्पण का काम करती है लेकिन बस एक ही बार। क्योंकि जो भी उस पर अंकित हो जाता है उसे पकड़ लेती है, फिर उसे छोड़ नहीं पाती। इसका मतलब यह हुआ कि दर्पण की घटनाएँ सब बाहर ही घटती हैं, भीतर नहीं घटतीं। फोटो-प्लेट में भीतर घटना घट जाती है। बाहर से कोई निकलता है और भीतर घट जाता है। बाहर से तो निकल ही गया लेकिन फोटो-प्लेट फंस गई। वह तो पकड़ गई भीतर से।

दो तरह के चित्त हैं जगत् में, फोटो-प्लेट की तरह या दर्पण की तरह काम करने वाले। फोटो-प्लेट की तरह जो काम कर रहे हैं उन्हीं को राग-द्वेष ग्रस्त कहते हैं। असल में फोटो-प्लेट बड़ा राग-द्वेष रखती है। राग-द्वेष का मतलब है जकड़ती है जल्दी, पकड़ती है जल्दी, फिर छोड़ती नहीं। राग भी पकड़ता है, द्वेष भी पकड़ता है। दोनों पकड़ते हैं। एक मित्र की तरह पकड़ता है, एक शत्रु की तरह पकड़ता है। दोनों पकड़ लेते हैं और चित्त की, जो दर्पण की निर्मलता है, वह खो जाती है। हम सब फोटो-प्लेट की तरह काम करते हैं, इसलिए बड़ी मुसीबत में पड़े होते हैं। एकदम चित्त भरता जाता है, खाली नहीं होता और फिर स्थिति पकड़ी जाती है। और कोई स्थिति ऐसी नहीं है जो हमारे पास से अस्पर्शित निकल जाए। महावीर जैसे व्यक्ति दर्पण की तरह जीते हैं। समाधिस्थ व्यक्ति दर्पण की तरह जीता है। कोई गाली देता है तो वह सुनता है; कोई सम्मान करता है तो वह सुनता है। लेकिन जैसे सम्मान

बिदा हो जाता है ऐसे गाली भी बिदा हो जाती है भीतर कुछ पकड़ा नहीं जाता।

इसलिए महावीर के चित्त की अलग-अलग स्थितियां नहीं हैं जिनका वर्णन किया जाए। इसलिए वर्णन नहीं किया गया। कोई स्थिति ही नहीं है। अब क्या दर्पण का वर्णन करो बार-बार ? इतना कहना ही काफी है कि दर्पण है। जो भी आता है वह झलकता है, जो चला जाता है। झलक बंद हो जाती है। इसको रोज-रोज क्या लिखो ? इसको रोज-रोज क्या कहो ? इसे कहने का कोई अर्थ नहीं है। न महावीर की, न क्राइस्ट की, न बुद्ध की, न कृष्ण की— किन्ही की अन्तः परिस्थिति का कोई उल्लेख नहीं किया गया, नहीं किए जाने का कारण है। उल्लेख योग्य कुछ है ही नहीं। एक समता आ गई है चित्त की। वह वैसा ही रहता है।

जैसे कि महावीर को कुछ लोग पत्थर मार रहे हैं या कान में कीलें ठोंक रहे हैं, या गांव के बाहर खदेड़ रहे हैं तो महावीर को मानने वाले कहते हैं कि बड़े क्षमावान् हैं वह। महावीर ने गाली नहीं दी उन्हें, क्षमा कर दिया और आगे बढ़ गए। लेकिन वह भूल जाते हैं कि क्षमा तभी की जा सकती है जब मन में क्रोध आ गया होगा। क्षमा अकेली बेमानी है। वह क्रोध के साथ ही साथ आती है। नहीं तो उसका कोई अर्थ ही नहीं है। हम क्षमा कैसे करेंगे यदि हम क्रुद्ध न हुए। और वह कहते हैं कि उन्होंने लौटकर गाली न दी, क्षमा कर दी और आगे बढ़ गए। लेकिन लौटकर तभी कुछ दिया जा सकता है जब भीतर कुछ हुआ हो। नहीं तो लौटकर कुछ भी नहीं दिया जा सकता। तो मैं आपसे कहता हूँ कि महावीर क्षमावान् नहीं थे क्योंकि महावीर क्रोधी नहीं हैं। और महावीर ने क्षमा भी नहीं किया, चाहे देखने वालों को लगा हो कि हमने गाली दी, और इस आदमी ने गाली नहीं दी, बड़ा क्षमावान् है। बस इतना ही कहना चाहिए कि इस आदमी ने गाली नहीं दी। बड़ा क्षमावान् है, यह कहना भूल हो जायेगी। इस आदमी ने गाली सुनी जैसे एक शून्य भवन में आवाज गूँजे, चाहे गाली की, चाहे भजन की। आवाज गूँजे और निकल जाए और भवन फिर शून्य हो जाए।

इस तल पर, इस चेतना में जीने वाले व्यक्ति शून्य भवन की तरह हैं। जिन में जो भी आता है, वह गूँजता जरूर है, हमसे ज्यादा गूँजता है क्योंकि हमारी संवेदनशीलता इतनी तीव्र नहीं होती। क्योंकि हमने इतनी चीजें पहने

से भर रखी होती हैं। जैसे खाली कमरा है। खाली कमरे में आवाज गूँजती है और बहुत फर्नीचर भरा हो तो फिर नहीं गूँजता। हम फर्नीचर भरे लोग हैं जिनमें बहुत भरा हुआ है, फोटो-प्लेट ने बहुत इकट्ठा कर लिया है, आवाज गूँजती ही नहीं, कई दफा तो सुनाई ही नहीं पड़ता कि क्या सुना, क्या देखा, कुछ पता ही नहीं चलता। लेकिन महावीर जैसे व्यक्ति की संवेदनशीलता बड़ी प्रगाढ़ है। सब गूँजता है। जरा सी आवाज होती है, सुई भी गिरती है तो गूँज जाती है। लेकिन बस गूँजती है। और जितनी देर गूँज सकती है, गूँजती है और बिदा हो जाती है। महावीर उसके प्रति कोई प्रतिक्रिया नहीं करते—न क्षमा की, न क्रोध की। महावीर का सारा योग अप्रतिक्रियायोग है। प्रतिक्रिया मत करो, देखो, जानो, सुनो लेकिन प्रतिक्रिया मत करो।

प्रश्न : एक मन्दबुद्धि व्यक्ति भी तो प्रतिक्रिया नहीं करता ?

उत्तर : हाँ, वह इसलिए नहीं करता क्योंकि न वह सुनता है, न वह जानता है, न वह देखता है।

प्रश्न : मन्दबुद्धि भी एक आदमी है ?

उत्तर : हाँ, वह इसीलिए प्रतिक्रिया नहीं करता क्योंकि वह देख नहीं पाता, सुन नहीं पाता, समझ नहीं पाता। और वह मंदबुद्धि, प्रतिक्रिया नहीं करता। परम स्थिति में भी अक्सर जड़ जैसी अवस्था मालूम होने लगती है।

प्रश्न : तो मालूम कैसे पड़े ?

उत्तर : मालूम करने की जरूरत नहीं है। हाँ ! तुम अपनी फ़िक्र करो कि हम कहाँ हैं। परम स्थिति को उपलब्ध व्यक्ति हमें जड़ जैसा मालूम पड़ेगा। क्योंकि हमने जड़ को ही जाना है। अगर आप एक जड़ को गाली दें तो हो सकता है कि वह बैठा हुआ सुनता रहे। इसलिए नहीं कि उसने गाली सुनी बल्कि सिर्फ इसलिए कि सुना ही नहीं उसने कि क्या हुआ। महावीर को गाली दो तो हो सकता है वह भी वैसे बैठे सुनते रहें, इसलिए नहीं कि उन्होंने गाली नहीं सुनी। गाली पूरी सुनी, जैसी किसी आदमी ने कभी न सुनी होगी। लेकिन कोई प्रतिक्रिया नहीं की क्योंकि गाली की प्रतिक्रिया क्या होती ? प्रतिक्रिया का फल क्या है ? प्रतिक्रिया से लाभ क्या है, प्रयोजन क्या है ?

अक्सर ऐसा होता है कि परम स्थिति को उपलब्ध व्यक्ति ठीक जड़ जैसा मालूम पड़े क्योंकि हम जड़ को ही पहचानते हैं। लेकिन फर्क तो बहुत गहरे

होंगे। वक्त लगेगा पहचानने में और शायद हम ठीक से पहचान भी न सकें जब तक हमारे भीतर फर्क होना शुरू न हो जाए।

यह कुछ अद्भुत सी बात है लेकिन दो विरोधी अतियाँ कभी-कभी बिल्कुल समान ही मालूम होती हैं। जैसे एक बच्चा है. वह सरल मालूम होता है, निर्दोष मालूम होता है। लेकिन अज्ञानी है, ज्ञान बिल्कुल नहीं। **परम ज्ञान को उपलब्ध व्यक्ति भी बच्चे जैसा मालूम होने लगेगा।** इतना ही सरल, इतना ही निर्दोष। शायद बच्चे जैसा व्यवहार भी करने लगेगा! शायद हमें तय करना मुश्किल हो जाएगा कि इस आदमी ने बुद्धि खो दी, यह कैसा बच्चों जैसा व्यवहार कर रहा है, कैसी बालबुद्धि का हो गया है। लेकिन दोनों में बुनियादी फर्क है। बच्चा अभी निर्दोष दिखता है लेकिन कल निर्दोषता खोएगा; अभी सरल दिखता है लेकिन कल जटिल होगा। यह आदमी जटिल हो चुका है। निर्दोषता खो चुका है। वह पूर्ण उपलब्धि है कि सरलता लौट आई है, फिर निर्दोष हो गया है। अब खोने का सवाल नहीं है यह जानकर, जी कर लौट आया है। यह उन अनुभवों से गुजर गया है जिनसे बच्चे को गुजरना पड़ेगा। **बच्चे की सरलता अज्ञात की है। एक सन्त की सरलता ज्ञान की है।** लेकिन दोनों सरलताएँ अक्सर एक सी मालूम पड़ेंगी। एक सन्त भी बच्चों जैसा सरल हो सकता है। और अगर सन्त बच्चों जैसा सरल न हो सके तो अभी वृत्त पूरा नहीं हुआ, अभी बात वापस नहीं लौटी, जटिलता शेष रह गई, कठिनाई शेष रह गई है। कहीं कोई चालाकी शेष रह गई है। इसीलिए कभी-कभी बहुत भूलें हो जाती हैं।

मैं फकीर नसरुद्दीन की निरन्तर बात करता हूँ। वह ऐसा ही आदमी था जो देखने में परम जड़ मालूम पड़े, जिसका व्यवहार परम जड़ का हो, लेकिन जो देख सके उसे वहीं परम ज्ञान दिख जाए। एक बात मैं बताना चाहूँगा। फकीर नसरुद्दीन एक रास्ते से गुजर रहा है। उसने देखा कि एक व्यक्ति तोता बेच रहा है और जोर से चिल्ला कर कह रहा है कि बड़ा कीमती तोता है यह, बड़े सम्राट् के घर का तोता है, इस-इस तरह की वाणियाँ जानता है, इस-इस भाषा को पहचानता है, इस-इस भाषा को बोलता है। और सैकड़ों लोग इकट्ठे हुए हैं। नसरुद्दीन भी उस भीड़ में खड़ा हो गया है। कई सौ रुपए में वह तोता नीलाम हुआ और बिक गया। नसरुद्दीन ने लोगों से कहा कि ठहरो, मैं इससे भी बढ़िया तोता लेकर अभी आता हूँ। भागा हुआ घर आया और अपने तोते के पिंजरे को लेकर बाजार में खड़ा कर दिया और कहा वह क्या तोता

था ? अब दाम इसके बोलो। और जहाँ से उसकी बोली खत्म हुई वहाँ से शुरू करो। लोगों ने समझा कि उससे भी बढ़िया तोता आ गया है तो उन्होंने बोली शुरू की लेकिन तब धीरे-धीरे किसी ने कहा कि वह जो तोता था, बार-बार बोलता था, जवाब देता था, कई दफा बोली भी बढ़ाता था लेकिन यह तो कुछ बोलता ही नहीं है। नसरूद्दीन ने कहा कि बोलने वाले तोते का क्या मूल्य ? यह मौन तोता है, यह बिल्कुल परम स्थिति को पहुँच गया है। उन्होंने कहा हटाओ इसको। कोई एक पैसे का भी नहीं खरीदेगा इसे। उसने कहा बड़े पागल लोग हो तुम। लोगों ने कहा : अरे यह मूर्ख है नसरूद्दीन; इसकी बातों में क्यों पड़ते हो। यह पागल है इसमें कुछ अकल नहीं है। तोता सहित इसको निकाल बाहर करो।

लोगों ने नसरूद्दीन को तोता सहित बाहर निकाल दिया। रास्ते पर लोगों ने पूछा : कहो नसरूद्दीन तोता बिका कि नहीं। उसने कहा कि क्या बिकता क्योंकि वहाँ खरीदाकर केवल वाणी को समझ सकते थे, मौन को कोई नही समझ सकता था। हम पिट गए क्योंकि वहाँ कोई मौन को समझने वाला न था। मैंने तो सोचा कि जब वाणी के इतने दाम लग रहे हैं तो मौन का तो मजा आ जाएगा। लेकिन लोगों को वह आदमी पागल लगता है। जो तोता बोलता नहीं उसको कौन खरीदेगा ?

यह आदमी नसरूद्दीन निरन्तर अपने गधे पर यात्राएँ करता है। गधे पर शक्कर भर कर जा रहा है। नदी पड़ी। गधा नदी में बैठ गया। सारी शक्कर बह गई। नसरूद्दीन ने गधे से कहा है कि तू हमसे भी ज्यादा बुद्धिमानी दिखला रहा है। ठहर बेटे, तुझे भी आगे बतलाएँगे। क्योंकि हम कोई साधारण आदमी नहीं, हम भी तर्क जानते हैं। गधे को वापस लाया। उस पर रूई लादी। उसे नदी के पास ले गया। गधा फिर बैठा। रूई भारी हो गई। गधे का उठना मुश्किल हो गया। उसने आस-पास के लोगों को बुलाकर कहा : देखो ! नस-रूद्दीन जीत गया, गधा हार गया। लोगों ने कहा : तुम बिल्कुल जड़ बुद्धि हो तुम गधे से विवाद कर रहे हो। नसरूद्दीन ने कहा : विवाद गधे के सिवाय किससे करना पड़ता है। असल में गधों से झगड़ा है। गधों से बकवास है। दोनों एक से हैं। उनकी बातों का कोई मतलब नहीं।

इस आदमी की जिन्दगी में ऐसे बहुत मौके हैं जब कि एकदम समझना मुश्किल हो जाता है कि यह आदमी क्या पागलपन कर रहा है। लेकिन पीछे

कहीं कोई बात छिपी रहती है। नसरूद्दीन जा रहा है एक रास्ते से। जोर की वर्षा हो रही है। एक मकान के पास बैठ गया है। गाँव का मौलवी भाग रहा है वर्षा से। नसरूद्दीन चिल्लाता है : अरे मौलवी, भाग रहे हो। मैं सारे गाँव को बता दूँगा। मौलवी ने कहा कि मैंने क्या अपराध किया है? उसने कहा : पाप तुम कर रहे हो। भगवान् पानी गिरा रहा है और तुम भाग रहे हो। यह भगवान् का अपमान है। तो मौलवी धीरे-धीरे चला लेकिन सर्दी से बुखार हो गया। तीसरे दिन मौलवी अपने घर के दरवाजे पर परेशान बैठा था जब कि पानी गिरने लगा। नसरूद्दीन भागा जा रहा था। मौलवी ने कहा : ठहर नसरूद्दीन। मुझे तो तूने धीरे चलने को कहा था, अब तू क्यों भाग रहा है। उसने कहा : भगवान् के पानी पर कहीं मेरा पैर न पड़ जाए इसलिए मैं भाग रहा हूँ और वह भाग गया। दूसरे दिन यह मौलवी मिला तो कहा कि तू बड़ा बेईमान है मुझे उपदेश दे रहा था मगर खुद क्या कर रहा है। नसरूद्दीन ने कहा : सब समझदार लोग बेईमान पाए जाते हैं। ईमानदारी करो तो नासमझ हो जाते हैं। फिर व्याख्या हमेशा अपने अनुकूल करनी पड़ती है। शास्त्रों का क्या भरोसा? अपने पर भरोसा रखना पड़ता है। तुम जब पानी में थे तो हमने वह व्याख्या की। जब हम पानी में हैं तो हमने यह व्याख्या की। सभी बुद्धिमान् यही करते हैं।

ऊपर से मन्द बुद्धि मालूम होता है यह आदमी जो लोग परम प्रज्ञा को उपलब्ध होते हैं उनमें से एक है यह आदमी। मगर उसे पकड़ना मुश्किल है। और कई बार उसकी बातें बड़ी बेहूदी मालूम होती हैं। घर लौट रहा है। एक मित्र ने कुछ मांस भेंट दिया है और साथ में एक किताब दी है जिसमें मांस बनाने की तरकीब लिखी है। किताब बगल में दबाकर, मांस हाथ में लेकर बड़ी खुशी से भागा चला आ रहा है। चील ने झपटा मारा। चील मांस ले गई। नसरूद्दीन ने कहा : अरे मूर्ख जा क्योंकि बनाने की तरकीब तो किताब में लिखी है।" घर पहुँचा। घर जाकर अपनी पत्नी से कहा : सुनती हो। आज एक चील बड़ी बेवकूफ निकली। क्या हुआ? मैं मांस लेकर आ रहा था। वह मांस ले गई लेकिन मांस बनाने की तरकीब तो किताब में लिखी है। उसकी औरत ने कहा कि तुम बहुत बुद्धू हो, चील इतनी बुद्धू नहीं है। उसने कहा कि सभी बुद्धिमानों को मैंने किताब पर भरोसा करते पाया है। इसीलिए मैंने भी किताब पर भरोसा किया। यह आदमी एक बार तो दिखेगा कैसा पागल है? जड़ बुद्धि है। लेकिन कहीं कोई गहरे में उसकी भी अपनी समझ है और

वह इतने बड़े व्यंग भी कर रहा है और इतनी सरलता से कि किसी के ख्याल में आए तो उसके प्राणों में घुस जाए, न आए तो वह आदमी बुद्धू है। बहुत बार ऐसा हो सकता है कि हमें पकड़ में ही न आए कि क्या बात है। लेकिन हमें पकड़ में तभी आएगा जब हमारी समझ उतनी गहराई पर खड़ी हो।

प्रश्न : क्या महावीर की अहिंसा पूर्ण विकसित है? क्या महावीर के बाद अहिंसा का उत्तरोत्तर विकास नहीं हुआ है? क्या गीता और बाइबिल में महावीर से भी अधिक सूक्ष्म रूप हैं?

उत्तर : पहली बात यह है कि कुछ ऐसी चीजें हैं जो कभी विकसित नहीं होतीं। विकसित हो ही नहीं सकतीं। वे चीजें हैं जहाँ हमारा विचार, हमारा मस्तिष्क, हमारी बुद्धि, सब शांत हो जाते हैं। और वे तब हमारे अनुभव में आती हैं। जैसे कोई कहे कि बुद्ध को ज्ञान उपलब्ध हुए पचीस सौ साल हो गए। अब जिन लोगों को ज्ञान उपलब्ध हुआ है वह आगे विकसित होता है या नहीं? महावीर के बाद आज तक की अवधि में लोग विकसित हो गए हैं तो ध्यान आगे विकसित होगा या नहीं, ध्यान है स्वयं में उतर जाना। स्वयं में कोई चाहे लाख साल पहले उतरा हो और चाहे अब उतर जाए। स्वयं में उतरने का अनुभव एक है, स्वयं में उतरने की स्थिति एक है। इससे कोई फर्क नहीं पड़ता।

महावीर को जो अहिंसा प्रकट हुई वह उनकी स्वानुभूति का ही बाह्य परिणाम है। भीतर उन्होंने जाना जीवन की एकता को और बाहर उनके व्यवहार में जीवन की एकता अहिंसा के रूप में प्रतिफलित हुई। अहिंसा का मतलब है जीवन की एकता का सिद्धान्त, इस बात का सिद्धान्त कि जो जीवन मेरे भीतर है, वही तुम्हारे भीतर है। तो मैं अपने को ही कैसे चोट पहुँचा सकता हूँ। मैं ही हूँ तुममें भी फैला हुआ। जिसे यह अनुभव हुआ हो कि मैं ही सब में फैला हुआ हूँ, या सब मुझसे ही जुड़े हुए जीवन हैं उसके व्यवहार में अहिंसा फलित होती है। इसमें क्राइस्ट को हो कि किसी और को हो, जीवन की एकता का यह अनुभव कम ज्यादा कैसे हो सकता है? यह थोड़ा समझने जैसा है।

अक्सर हम सोचते हैं कि सब चीजें कम ज्यादा हो सकती हैं। समझ लें कि आपने एक वृत्त (सर्किल) खींचा। कभी आपने सोचा कि कोई वृत्त कम और कोई वृत्त ज्यादा हो सकता है? हो सकता है कि जो वृत्त आपने खींचा है

कुछ कम हो, दूसरा वृत्त कुछ ज्यादा हो ? यह नहीं हो सकता क्योंकि वृत्त का अर्थ ही यह है कि या तो वह वृत्त होगा, या नहीं होगा। कम ज्यादा नहीं हो सकता। जो वृत्त कम है, वह वृत्त ही नहीं है। जैसे प्रेम है। कोई आदमी कहे कि मुझे कम प्रेम है या ज्यादा प्रेम है तो शायद उस आदमी को प्रेम का पता ही नहीं है। प्रेम या तो होता है या नहीं होता है। उसके कोई टुकड़े नहीं होते। और ऐसा भी नहीं कि प्रेम विकसित होता हो क्योंकि विकसित तभी हो सकता है जब थोड़ा-थोड़ा हो सकता हो। ऐसा नहीं होता। अक्सर हमारी पसंद विकसित होती है इसलिए हम सोचते हैं कि प्रेम विकसित हो रहा है। पसंद और प्रेम में बहुत फर्क है। पसंद कम हो सकती है, ज्यादा हो सकती है लेकिन प्रेम न कम होता है, न ज्यादा होता है। या तो होता है या नहीं होता। ऐसा कोई नहीं कह सकता कि ऐसा वक्त आएगा जब लोग ज्यादा प्रेम करेंगे। ऐसा नहीं हो सकता।

जीवन के जो गहरे अनुभव हैं, वे होते हैं या नहीं होते। महावीर को जो जीवन की एकता का अनुभव हुआ वही जीसस को हो सकता है, बुद्ध को हो सकता है, लेकिन ऐसा नहीं हो सकता कि उसमें किसी को ज्यादा हो और किसी को कम हो। होगा तो होगा, नहीं होगा तो नहीं होगा। दुनिया में कुछ चीजें हैं आन्तरिक जो कभी विकसित नहीं होती। जब वे उपलब्ध होती हैं, पूर्ण ही उपलब्ध होती हैं या उपलब्ध होती ही नहीं हैं। जैसे की पानी भाप बन रहा है। निन्यानबे डिग्री पर गर्मी हो गई, अभी भाप नहीं बना है। अट्ठानवे डिग्री पर था, भाप नहीं बना, नब्बे डिग्री पर था, भाप नहीं बना, एक सौ डिग्री पर आया कि भाप बन गया। गर्मी कम-ज्यादा हो सकती है। अस्सी डिग्री, नब्बे डिग्री, पचानवे डिग्री, निन्यानबे डिग्री। दस बर्तन रखे हैं सबमें अलग-अलग डिग्री का पानी है। उनमें पानी अभी भाप नहीं बन रहा है। गर्मी कम-ज्यादा हो सकती है। कम होगी तो भाप नहीं बनेगी। जब पूरी होगी तभी भाप बनेगी। या तो भाप बनती है, या नहीं बनती है। इसके बीच में कोई डिग्री नहीं होती। भाप बनने की स्थिति आने तक पानी की डिग्रियाँ हो सकती हैं।

अज्ञान की डिग्रियाँ होती हैं ज्ञान की कोई डिग्री नहीं होती हालाँकि हम सब ज्ञान को डिग्रिय देते हैं। एक आदमी कम अज्ञानी, एक आदमी ज्यादा अज्ञानी, यह सार्थक है। लेकिन एक आदमी कम ज्ञानी, एक आदमी ज्यादा ज्ञानी—यह बिल्कुल ही असंगत, निरर्थक बात है। कम-ज्यादा ज्ञान होता ही नहीं। हाँ, अज्ञान कम-ज्यादा हो सकता है। दो अज्ञानियों में भी ज्ञान

का फर्क नहीं होता सिर्फ सूचना का फर्क होता है। एक आदमी यूनिवर्सिटी से लौटता है, सूचनाएँ इकट्ठा करता है। उसका ही एक भाई गाँव में, देहात में रह गया था। सूचनाएँ इकट्ठी नहीं कर पाया। ये दोनों मिलते हैं तो एक ज्ञानी मालूम पड़ता है, दूसरा अज्ञानी मालूम पड़ता है। असल में दोनों अज्ञानी हैं। एक के पास सूचनाओं का ढेर है, एक के पास सूचनाओं का ढेर नहीं है। एक ज्यादा अज्ञानी है, यह कम अज्ञानी है, मगर यह भी ज्ञान के हिसाब से नहीं है तोल। **जब ज्ञान आता है तो बस आता है।** जैसे आँख खुल जाए और प्रकाश दिख जाए, जैसे दिया जल जाए और अंधेरा मिट जाए। **ज्ञानी कभी छोटे-बड़े नहीं होते।** लेकिन हम चूँकि अज्ञानी हैं सब और छोटे-बड़े की भाषा में जीते हैं तो हम ज्ञानियों के भी छोटे-बड़े होने का हिसाब लगाते रहते हैं। कोई कहता है कबीर बड़ा कि नानक, महावीर बड़े कि बुद्ध, राम बड़े कि कृष्ण, कृष्ण बड़े कि मुहम्मद। इस तरह बड़े-छोटे का हिसाब लगाते रहते हैं अपने हिसाब से। कोई बड़ा-छोटा नहीं है वहाँ।

आज से तीन सौ चार सौ साल पहले सारी दुनिया में एक ख्याल था कि अगर हम छत पर खड़े होकर एक छोटा और एक बड़ा पत्थर गिरायें साथ-साथ तो बड़ा पत्थर पहले पहुँचेगा जमीन पर, छोटा पत्थर पीछे। यह बिल्कुल ठीक गणित था। किसी ने गिरा कर देखा नहीं था। गणित बिल्कुल साफ ही दिखता था। क्योंकि बड़ा पत्थर है, पहले गिरना चाहिए। छोटा पत्थर है बाद में गिरना चाहिए। जिस पहले आदमी ने पिसा के टावर पर पहली दफा खड़े होकर पत्थर गिरा कर देखा कि दोनों पत्थर साथ-साथ गिरे तो उसने दो-चार बार गिरा कर देखा कि कहीं कुछ भूल जरूर हो रही है क्योंकि बड़ा पत्थर छोटा पत्थर साथ-साथ कैसे गिरे। फिर जब उसने यूनिवर्सिटी के प्रोफेसरों को कहा कि दोनों पत्थर साथ-साथ गिरते हैं तो उन्होंने कहा : तुम पागल हो गए हो, ऐसा कभी हुआ है ? हालांकि ऐसा किसी ने कभी देखा नहीं था जाकर। फिर भी उसने कहा कि ऐसा हुआ है। प्रोफेसर बामुश्किल देखने गए क्योंकि पंडितों से ज्यादा जड़ कोई भी नहीं होता। वह जो पकड़े रखते हैं, उसको इतनी जड़ता से पकड़ते हैं कि उसको इंच दो इंच भी हिलने नहीं देते। जब पत्थर गिराकर देखा तो कहा इसमें जरूर कोई शरारत है, इसमें जरूर कोई तरकीब की बात है क्योंकि यह कैसे हो सकता है कि बड़ा पत्थर और छोटा पत्थर दोनों साथ-साथ गिरें। इसमें कोई तरकीब है या शैतान का हाथ है। और तुम इस झंझट में मत पड़ो। इसमें शैतान कुछ पीछे शरारत कर रहा है,

भगवान् के नियमों में गड़बड़ कर रहा है। असल में बड़े छोटे पत्थर बड़े-छोटे होने के कारण नहीं गिरते। गिरते हैं जमीन की कशिश के कारण। और कशिश दोनों के लिए बराबर है। छत पर से गिर भर जाएँ फिर बड़ा और छोटा होने का कोई मूल्य नहीं है। मूल्य कशिश की है और वह सबके लिए बराबर है।

एक सीमा है मनुष्य की। उस सीमा से बाहर मनुष्य छलांग भर लगा जाए, फिर परमात्मा की कशिश उसे खींचती है। फिर उसे कुछ नहीं करना पड़ता। उस सीमा के बाद कोई छोटा-बड़ा नहीं रह जाता। फिर सब पर बराबर कशिश काम करती है। एक सीमा भर है। उस सीमा को मैं कहता हूँ विचार। जिस दिन आदमी विचार से निर्विचार में कूद जाता है उसके बाद फिर कोई छोटा बड़ा नहीं रहता, कोई कमजोर नहीं है, कोई ताकतवर नहीं है। कोई फर्क ही नहीं है। बस एक बार विचार से कूद जाए निर्विचार में फिर जो जीवन की, अस्तित्व की परम शक्ति है, वह खींच लेती है एक साथ। तो हमारे सब फर्क कूदने के पहले के फर्क हैं। जब तक हम नहीं कूदे हैं तब तक के हमारे फर्क हैं। जिस दिन हम कूद गए उस दिन कोई फर्क नहीं है। महावीर ने जो छलांग लगाई है वही कृष्ण की है, वही क्राइस्ट की है। उसमें कोई फर्क नहीं है।

इसलिए कोई विकास अहिंसा में कभी नहीं होगा। महावीर ने कोई विकास किया है, इस भूल में भी नहीं पड़ना चाहिए। महावीर ने जो छलांग लगाई है, वह अनुभव वही है। मगर उस अनुभव की अभिव्यक्ति में भेद है। लेकिन ऐसा कुछ नहीं है कि महावीर ने पहली बार अहिंसा का अनुभव किया हो। लाखों लोगों ने पहले किया है। लाखों लोग पीछे करेंगे। यह अनुभव किसी की बपौती नहीं है। जैसे हम आँख खोलेंगे तो प्रकाश का अनुभव होगा। यह किसी की बपौती नहीं है। मेरे पहले लाखों, करोड़ों, अरबों लोगों ने आँख खोली और प्रकाश देखा। और मैं भी आँख खोलूँगा तो प्रकाश देखूँगा। मेरी इसमें कोई बपौती नहीं है कि मेरे पीछे आने वाले लोग आँख खोलेंगे तो मुझसे कम देखेंगे या ज्यादा देखेंगे। आँख खुलती है तो प्रकाश दिखता है। कोई विकास नहीं हुआ है, कोई विकास हो ही नहीं सकता।

कुछ चीजें हैं जिनमें विकास होता है। परिवर्तनशील जगत् में विकास होता है। शाश्वत, सनातन अन्तरात्मा के जगत् में कोई विकास नहीं होता। वहाँ जो जाता है, परम अन्तिम में पहुँच जाता है। वहाँ कोई विकास नहीं, कोई

आगे नहीं, कोई पीछे नहीं। वहाँ सब पूर्ण के निकट होने से, पूर्ण में होने से कोई विकास नहीं होता। परमात्मा से मतलब समग्र जीवन के अस्तित्व का है। वहाँ विकास का कोई अर्थ ही नहीं। जैसे एक बैलगाड़ी जा रही है, चाक चल रहे हैं। बैलगाड़ी में बैठा हुआ मालिक भी चल रहा है, बैल-भी चल रहे हैं। बैलगाड़ी प्रति पल आगे बढ़ रही है। विकास हो रहा है। लेकिन कभी आपने ख्याल किया कि बढ़ते हुए चाकों के बीच में एक कील है जो हिल भी नहीं रही है, जो वहीं की वहीं खड़ी है। चाक उसके ऊपर घूम रहा है। अगर कील भी चल जाए तो चाक गिर जाएगा। कील नहीं चलती है इसलिए चाक चल पाता है। कील भी चली कि अभी गाड़ी गई। फिर कोई विकास नहीं होगा।

मेरा कहना है कि जो कि विकास हो रहा है वह किसी एक चीज के केन्द्र पर हो रहा है पूर्ण के चारों तरफ विकास का चक्र घूम रहा है और पूर्ण अपनी जगह खड़ा हुआ है। हो सकता है आपने कील पर ख्याल ही न किया हो, सिर्फ चाक के घूमने को ही देखा हो। लेकिन जिसने कील पर ख्याल कर लिया उसके लिए चाक का घूमना बेमानी हो जाता है। कबीर ने एक पंक्ति लिखी है कि चलती हुई चक्की को देखकर कबीर रोने लगा। और उसने लौट कर अपने मित्रों से कहा कि बड़ा दुःख मुझे हुआ क्योंकि दो पाटों के बीच जितने दाने मैंने पड़े देखे, सब चूर हो गए। और दो पाटों के बीच में जो पड़ जाता है, वह चूर हो जाता है। उसका लड़का कमाल हँसने लगा। उसने कहा : ऐसा मत कहो। क्योंकि एक कील भी है दो चाकों के बीच में और जो उसका सहारा पकड़ लेता है, वह कभी चूर होता ही नहीं।

इस पूरे अस्तित्व के विकासचक्र के बीच में भी एक कील है। उस कील को कोई परमात्मा कहे, धर्म कहे, आत्मा कहे, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। जो उस कील के निकट पहुँच जाता है वह उतना ही चाकों के बाहर हो जाता है। उस कील के तल पर कोई गति नहीं है। सब गति उसी के ऊपर ठहरी हुई है। महावीर जैसे व्यक्ति कील के निकट पहुँच गये हैं—जहाँ कोई लहर भी नहीं उठती, कोई तरंग भी नहीं उठती, जहाँ कभी विकास नहीं होता, जहाँ कोई भी पहुँचे, अनुभव वही होगा। जहाँ गति नहीं, वहाँ कोई विकास नहीं।

तो महावीर की अहिंसा में कोई गति नहीं है,.कोई प्रगति नहीं है, कोई विकास नहीं है।

१७

प्रश्नोत्तर-प्रवचन

प्रश्न : महावीर के भी विरोधी थे। क्या उनके विरोध की चिन्ता महावीर को नहीं थी ? अहिंसक व्यक्ति के भी विरोधी पैदा होना अहिंसा के विषय में संदेह पैदा करता है।

उत्तर : ऐसी धारणा रही है कि जो अहिंसक है उसका कोई विरोधी नहीं होना चाहिए। क्योंकि जिसके मन में द्वेष, विरोध, घृणा, हिंसा नहीं है, उसके प्रति घृणा, हिंसा और द्वेष क्यों होना चाहिये ? ऊपर से देखे जाने पर यह बात बहुत सीधी और साफ मालूम पड़ती है। लेकिन जीवन ज्यादा जटिल है और जितने सरल सिद्धान्त होते हैं, जीवन उतना सरल नहीं है। सच तो यह है कि पूर्ण अहिंसक व्यक्ति के विरोधी पैदा होने की सम्भावना अधिक है। उसके कारण हैं। पहला कारण तो यह है कि हम सब हिंसक हैं तो हिंसक से हमारा ताल-मेल बैठ जाता है। अहिंसक व्यक्ति हमारे बीच एकदम अजनबी है, उसे बरदाश्त करना भी मुश्किल है। बरदाश्त न करने के कई कारण हैं। पहली बात यह है कि अहिंसक व्यक्ति की मौजूदगी में हम इतने ज्यादा निन्दित प्रतीत होने लगते हैं, इतने ज्यादा दीन-हीन, इतने ज्यादा क्षुद्र, कि हम निन्दित होने का बदला लिए बिना नहीं रह सकते। हम बदला लेंगे ही। पूर्ण अहिंसक व्यक्ति हिंसक व्यक्ति के मनों में अनजाने ही तीव्र बदले की भावना पैदा कर देता है। यह भावना हिंसा के कारण पैदा होती है।

महावीर जैसे व्यक्ति को अनिवार्य है कि लाखों विरोधी मिल जाएँ। लेकिन इससे उनकी अहिंसा पर संदेह नहीं होता। इससे खबर मिलती है कि आदमी इतना अजनबी था कि हम सब उसे स्वीकार नहीं कर सकते थे और जब हम उसे स्वीकार भी करेंगे तब हम उसे आदमी न रहने देंगे; हम उसे भगवान् बना

देंगे। वह भी अस्वीकार की एक तरकीब है। पूजा कर सकते हैं उसकी। लेकिन चूंकि वह आदमी ही नहीं है इसलिए आदमियों को उससे अब क्या लेना-देना रह जाता है। पहले हम निन्दा करते हैं, विरोध करते हैं। अगर अहिंसक व्यक्ति भी हिंसा पर उतर आए तो हमारी और उसकी भाषा एक हो जाती है। तब तो उपाय मिल जाता है। और अगर वह अपनी अहिंसा पर खड़ा रहे और हमारी हिंसा उसमें कोई फर्क न कर पाए तो फिर हमें कोई उपाय नहीं मिलता। हारे-थके, पराजित फिर हम उसे भगवान् बना देते हैं। यह दूसरी तरकीब है आखिरी जिससे हम उसे मनुष्यजाति से बाहर निकाल देते हैं। फिर हमें इसकी चिन्ता करने की जरूरत नहीं रह जाती। फिर हम निश्चिन्त हो जाते हैं। यह भी समझना जरूरी है कि मैं कितने ही जोर से बोलूं, और मेरे बोलने में कितना ही प्रेम हो, कितनी ही आवाज हो, कितनी बड़ी ताकत हो लेकिन जो बहरा है उस तक मेरी आवाज नही पहुँचेगी। यानी जब मैं बोलता हूँ तो दो बातें हैं : मेरा बोलना और आपका सुनना। अगर बहरे तक आवाज न पहुँचे तो यह नहीं कहा जा सकता कि मैं गूंगा था। मेरे बोलने पर इसलिए शक नहीं किया जा सकता कि बहरे तक आवाज नहीं पहुँची, इसलिए मैं गूंगा था। महावीर के अहिंसक होने में इसलिए शक नहीं हो सकता कि हिंसक चित्तों तक उनकी आवाज नहीं पहुँच पाती। **बहुत गहरे में हम बहरे हैं। न हम सुनते हैं, न हम संवेदन करते हैं, न हम देखते हैं।**

इसी सम्बन्ध में एक प्रश्न और भी किसी ने पूछा है कि महावीर के प्रेम में क्या कुछ कमी थी कि वह गोशालक को समझा न पाए। निश्चित हो, समझाने में प्रेम काम आता है और पूर्ण प्रेम समझाने की पूरी व्यवस्था करता है। लेकिन इससे यह सिद्ध नहीं होता कि पूर्ण प्रेमी समझा ही पाएगा। क्योंकि, दूसरी तरफ पूर्ण घृणा भी हो सकती है जो समझने को राजी ही न हो, पूर्ण बहरापन भी हो सकता है जो सुनने को राजी न हो। महावीर के प्रेम या अहिंसा पर इसलिए शक नहीं हो सकता कि वह दूसरे को नहीं समझा रहे हैं, या दूसरे को नहीं बदल पा रहे हैं, या दूसरे की हिंसा नहीं मिटा पा रहे हैं। इसके तो कई कारण हो सकते हैं। महावीर की अहिंसा की जांच करनी हो तो दूसरे की तरफ से जाँच करना गलत है। सीधे महावीर को ही देखना उचित है। सूरज को जानना हो तो किसी अंधे आदमी को माध्यम बनाकर जानना गलत है। हम अंधे आदमी से जाकर पूछें कि सूरज है और वह कहे कि नहीं है तो हम कर सकते हैं कि कैसा सूरज है जो एक अंधे आदमी को

भी दिखाई नहीं पड़ रहा है। अगर कोई अंधे से सूरज को जांच करने जाएँगा तो सूरज के साथ अन्याय हो जाएगा। सूरज की जांच करनी हो तो सीधी करनी होगी, कोई मध्यस्थ बीच में लेना खतरनाक है क्योंकि तब जांच अधूरी हो जाएगी और मध्यस्थ महत्त्वपूर्ण हो जाएगा। और मध्यस्थ के पास आँखें होंगी तो सूरज हो जाएगा, धोमी आँखें होंगी तो सूरज का प्रकाश धीमा हो जाएगा, अन्धा होगा तो सूरज नहीं होगा।

सीधा ही देखना जरूरी है। महावीर को भी सीधा देखना जरूरी है। तभी हम पहचान सकते हैं कि उनकी अहिंसा और उनका प्रेम पूर्ण है या नहीं। लेकिन कई बार ऐसा होता है कि हमारी खुद की आंखें इतनी कमजोर होती हैं कि सीधा देखना मुश्किल हो जाता है। तो हम परोक्ष देखते हैं, किसी और से पूछते हैं। खुद की आँखों की इतनी ताकत भी नहीं कि सूरज के सामने सीधा देख लें। तो हम दूसरों से खबर जुटाने जाते हैं। और यही कारण है कि महावीर, कृष्ण या क्राइस्ट जैसे लोगों के सम्बन्ध में हम सीधा देखने से बचते हैं। वहाँ भी प्रकाश बहुत गरिमा में प्रकट होता है। वहाँ भी साधारण कमजोर आँखें बन्द हो जाती हैं, देख नहीं पाती हैं। इसलिए हम बीच के गुरुओं को खोजते हैं, आचार्यों को खोजते हैं, टीकाकारों को खोजते हैं, व्याख्याकारों को खोजते हैं; उनके माध्यम से हम देखना चाहते हैं। गीता को हम सीधा नहीं देखना चाहते, टीकाकार से देखना चाहते हैं। हम आंख को सीधा उठाने की कोशिश भी नहीं करते।

प्रश्न : महावीर ने जिन सिद्धान्तों की चर्चा की, जैसे अहिंसा, सत्य, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, अनेकान्त—उनका प्रयोगात्मक रूप क्या हो सकता है ?

उत्तर। इस सम्बन्ध में भी बड़ी भूल हुई है। पहली बात यह है कि सत्य अहिंसा, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, अचौर्य ये सिद्धान्त नहीं हैं। और इसलिए इनका सीधा प्रयोग करने की बात ही गलत है। इनका सीधा प्रयोग हो ही नहीं सकता। जैसे एक आदमी भूसा इकट्ठा करना चाहता हो तो उसे गेहूँ बोना पड़ता है खेत में, भूसा नहीं। और अगर वह पागल आदमी भूसा पैदा करने के लिए भूसा ही बो दे तो जो पास का भूसा है वह भी खेत में सड़ जाएगा, कुछ पैदा नहीं होगा। क्योंकि भूसा उप-उत्पत्ति (बाई प्रोडेक्ट) है, गेहूँ के साथ पैदा होता है। गेहूँ पैदा होता है तो उसके पीछे वह भी पैदा होता है। गेहूँ पैदा न हो तो अकेला भूसा पैदा करने का कोई उपाय ही नहीं है।

अहिंसा, अपरिग्रह, अचौर्य, अस्तेय—ये सिद्धान्त नहीं हैं। यह उप-उत्पत्तियाँ हैं। जहां समाधि पैदा होती है वहाँ ये सब भूसे की तरह अपने आप पैदा हो जाते हैं और जो व्यक्ति इनको सीधा पैदा करने जाएगा वह भूसा की पैदावार करने में लगा हुआ है भूसे से। जो भूसा हमने डाला खेत में, वह भी सड़ जाएगा। भूसा तो पैदा होने वाला नहीं है। कई बार ऐसी भूल हो जाती है कि चूंकि गेहूँ और भूसा साथ-साथ पैदा होते हैं तो हम सोच सकते हैं कि गेहूँ को बोओ तो भूसा हो जाता है, भूसा को बोओ तो गेहूँ हो जाएगा। लेकिन ऐसा नहीं है। साथ-साथ वे जरूर दिखाई पड़ते हैं। लेकिन भूसा पीछे है, गेहूँ आगे है। गेहूँ आएगा तो भूसा आएगा। वह उसकी छाया की तरह आता है। अहिंसा, सत्य—सब छाया की तरह आते हैं समाधि के अनुभव में। समाधि पहले है, ध्यान पहले है। ध्यान आया कि उसके पीछे छाया की तरह ये सब आते हैं। लेकिन हमें ध्यान दिखाई नहीं पड़ता। गेहूँ भी दिखाई नहीं पड़ता, दिखाई तो भूसा ही पड़ता है पहले। आखिर खेत में भी गए तो गेहूँ छिपा है भूसे में। दिखाई तो पड़ता है भूसा पहले; आता है भूसा पीछे। भूसे को उघाड़ें तो गेहूँ दिखाई पड़ेगा। भूसा गेहूँ की चारों तरफ से रक्षा करता है।

समाधि आती है पहले, लेकिन दिखाई नहीं पड़ती पहले। महावीर के पास जाएँगे तो सत्य, अहिंसा, अचौर्य दिखाई पड़ेंगे। समाधि दिखाई नहीं पड़ेगी। वह भूसा है। वह चारों तरफ से समाधि को घेरे हुए है। लेकिन समाधि आई है पहले। उसके पीछे छाया की तरह सब आया है। लेकिन हमको दिखाई पड़ेगा पहले। तो हमारे साथ एक मुश्किल हो जाएगी। हमें अहिंसा पहले दिखाई पड़ेगी। हम सोचेंगे अहिंसा साधो, सत्य साधो, अस्तेय साधो, चोरी मत करो, ब्रह्मचर्य साधो, काम छोड़ो—हमें यह दिखाई पड़ेगा और हम भूसा बोने की दौड़ में लग जाएँगे।

महावीर अहिंसा नहीं साध रहे हैं, क्योंकि जो अहिंसा साधेगा वह करेगा क्या? वह सिर्फ हिंसा को दबाएगा और क्या कर सकता है? और दबी हुई हिंसा से कोई अहिंसक नहीं होता। दबी हुई हिंसा से अगर कोई आदमी अहिंसा भी करेगा तो भी उसकी अहिंसा में हिंसा के लक्षण होंगे। हिंसा उसके पीछे खड़ी होगी। उसकी अहिंसा में भी हिंसा का स्वर होगा, दबाव होगा। अगर किसी व्यक्ति ने काम को रोका और ब्रह्मचर्य साधा तो उसके ब्रह्मचर्य के भीतर अब्रह्मचर्य और व्यभिचार बैठा ही रहेगा। अब यह बड़ी उल्टी बात है। महावीर के भीतर है समाधि और बाहर है ब्रह्मचर्य। और अगर हमने

ब्रह्मचर्य साधा तो ब्रह्मचर्य होगा बाहर और भीतर होगा व्यभिचार। समाधि भीतर होगी नहीं। तब हम चूक जाएँगे, बिल्कुल ही चूक जाएँगे। वह जो होने वाला था वह हमें कभी नहीं हो पाएगा बल्कि हम उल्टी स्थिति में पहुँच जाएँगे।

इसलिए मेरा जोर इस बात पर है कि महावीर जैसे व्यक्ति को अगर समझना हो तो बाहर से भीतर की तरफ समझना ही मत। भीतर से बाहर की तरफ समझना उसे। तो ही वह समझ में आ सकता है, नहीं तो भूल हो जाएगी। तो मैं अहिंसा, अस्तेय, ब्रह्मचर्य इनको सिद्धान्त नहीं कहता। इनका दो कौड़ी भी मूल्य नहीं है समाधि के मुकाबले। उतना ही मूल्य है जितना भूसे का होता है। महावीर को जो उपलब्धि है, वह है समाधि। उपलब्धि की जो उप-उत्पत्तियाँ हैं, वे हैं सत्य, अहिंसा, अपरिग्रह, ब्रह्मचर्य। ये सिद्धान्त नहीं हैं। और न इनको सीधा प्रयोग करने की कोई जरूरत है। न कोई इनका सीधा प्रयोग कभी कर सकता है, न कभी किसी ने किया है। हाँ करने की कोशिश की है बहुत लोगों ने। और कोशिश में असफल हुए हैं, बिल्कुल हुए हैं वे और कभी भी तट तक नहीं पहुँचे हैं।

इसलिए यह तो पूछो ही मत कि इनका प्रयोगात्मक रूप क्या है? प्रयोगात्मक रूप तो ध्यान का है। प्रयोग तो करना है ध्यान का। ये आएंगे छाया की तरह। आप यहाँ आए हैं तो मैं आपसे नहीं कहता कि आप अपनी छाया को भी साथ ले आएँ या आज आपकी छाया को भी निमंत्रण दिया है वह भी आए। अगर मैं ऐसा कहूँ तो आप कहेंगे। आप कैसी बातें करते हैं? मैं आऊंगा तो मेरी छाया आ ही जाएगी। उसे अलग से निमंत्रण देने की कोई जरूरत नहीं है। लेकिन इससे उल्टा नहीं हो सकता कि आपकी छाया को मैं ले आऊँ और उसके साथ आप आ जाएँ। पहली बात तो यह है कि मैं आपकी छाया को ला ही नहीं सकता। और कोई धोखा खड़ा कर लूँ तो आप उससे नहीं आ जाएँगे। इसलिए अहिंसा नहीं साधनी है, साधना है ध्यान। अहिंसा फलित होती है। वह ध्यान का सहज परिणाम है। जब ध्यान आता है तब आदमी हिंसक नहीं रह जाता। अहिंसा साधनी नहीं पड़ती, हिंसा तिरोहित हो जाती है, भीतर कुछ बचता नहीं।

यह भी समझ लेने की जरूरत है कि अहिंसा, हिंसा का उल्टा नहीं, अहिंसा हिंसा का अभाव है। लेकिन हमें उल्टा दिखाई पड़ता है क्योंकि हमारे भीतर होती है हिंसा, अहिंसा हम साधते हैं। तो वह उल्टी मालूम पड़ती है। अहिंसा

साधनी है तो जो हिंसक करता है, वह हम न करें। ब्रह्मचर्य साधना है तो जो कामुक करता है, वह हम न करें ? बस उससे उल्टा करें। तो हमारे लिए काम से उल्टा होता है ब्रह्मचर्य, हिंसा से उल्टी होती है अहिंसा, चोरी से उल्टा होता है अचौर्य, असत्य से उल्टा होता है सत्य। जबकि ये बातें बिल्कुल गलत हैं। ये कोई उल्टे नहीं होते। ये अभाव हैं। अहिंसा उस दिन आती है जिस दिन हिंसा होती नहीं। हिंसा के न होने पर जो स्थिति रह जाती है, उसका नाम अहिंसा है। वह बिदाई है हिंसा की। जहाँ काम बिदा हो जाता है, वहाँ जो शेष रह जाता है उसका नाम है ब्रह्मचर्य। इसलिए ब्रह्मचर्य काम का उल्टा नहीं है। उल्टे में तो काम की मौजूदगी रहेगी ही। यह ध्यान में रहे कि हर उल्टी चीज में अपने से विरोधी की मौजूदगी उपस्थित रहती है। वह कभी मिटती नहीं। अगर क्षमा क्रोध से उल्टी है तो क्रोध के भीतर क्षमा मौजूद है, क्षमा के भीतर क्रोध मौजूद है। अगर ब्रह्मचर्य काम से उल्टा है तो ऊपर ब्रह्मचर्य होगा भीतर काम होगा। क्योंकि जो उल्टा है, विपरीत है, वह अपने दुश्मन के बिना जी नहीं सकता। वह उसके साथ ही जीता है। दोनों अनिवार्य रूप से जुड़े हुए हैं।

इस बात को ठीक से समझ लेना चाहिए कि जीवन के जो परम सत्य हैं, जो परम अनुभूतियाँ हैं, वे अभाव की अनुभूतियाँ हैं—विरोध की नहीं। जैसे ही समाधि फलित होती है वैसे ही कुछ चीजें बिदा हो जाती हैं। हिंसा बिदा हो जाती है क्योंकि समाधिस्थ चित्त के साथ हिंसा का सम्बन्ध नहीं जुड़ता। मेरे देखे ये लक्षण हैं। अगर एक आदमी हिंसक है, अब्रह्मचारी है तो वह इस बात का लक्षण है कि भीतर ध्यान को उपलब्ध नहीं हुआ। इसलिए मैं अब्रह्मचर्य को, काम को, हिंसा को, चोरी को लक्षण मानता हूं भीतर की स्थिति का। और जो व्यक्ति लक्षण को बदलने में लगेगा, वह वैसे ही पागल है जैसे किसी को बुखार आ गया है, शरीर गर्म हुआ और हम उसका शरीर ठंडा करने में लग गए। गर्म होना सिर्फ लक्षण है कि भीतर कहीं कोई बीमारी है, जिस बीमारी में शरीर के तत्त्व संघर्ष में पड़ गए हैं, संघर्ष के कारण शरीर उत्तप्त हो गया है और अगर वैद्य इस गर्मी को ही ठंडक देने में लग गया, ठंडे पानी से नहलाने में लग गया तो बीमारी के मिटाने की सम्भावना कम है, बीमारी के बढ़ जाने की सम्भावना ज्यादा है। तो चिकित्सक गर्मी देखकर सिर्फ पहचानता है कि भीतर बीमारी है, बीमारी को मिटाने लगता है, गर्मी बिदा हो जाती है। इसी तरह हिंसक चित्तवृत्ति, कामुक चित्तवृत्ति भीतर मूर्च्छा की

सूचक है, निद्रा की, अ-ध्यान की, सोए हुए होने की, तन्द्रा की, नशे की। उस नशे की हालत को भीतर से तोड़ दें तो बाहर से हिंसा बिदा हो जाएगी और अहिंसा फलित होने लगेगी। इसलिए इन सिद्धान्तों के सीधे प्रयोग की बात उचित नहीं है और जिन लोगों ने भी इन सिद्धान्तों के सीधे प्रयोग का विचार किया है, वे केवल दमन, आत्म-उत्पीड़न और एक तरह की अपने को सताने की लम्बी प्रक्रिया में उतर गए हैं जिसके परिणाम में कभी भी विमुक्ति तो उपलब्ध होने से रही, विक्षिप्तता, पागलपन जरूर उपलब्ध हो सकता है।

प्रश्न : आत्मा परमात्मा से बाहर नहीं, भटकने से कहीं कुछ मिलता नहीं, न परिवर्तन में कुछ है तो महावीर क्यों साधु बने और दूसरों को साधु बनने का उपदेश क्यों देते रहे ?

उत्तर : यह बात भी बहुत मजेदार है। अक्सर हमें लगता है कि महावीर साधु बने और दूसरों को भी साधु बनने के लिए कहते रहे। यह हमें इसलिए ऐसा लगता है क्योंकि हम असाधु हैं। और अगर हमें साधु होना हो तो साधु बनना पड़ेगा। जबकि सच्चाई यह है कि **साधुता आती है, बनाना नहीं पड़ता।** और जो बनेगा उसकी साधुता थोथी, झूठ, मिथ्या, आडम्बर होगी।

एक युवक एक फकीर के पास गया और उस फकीर से उसने पूछा कि मैं कैसे साधुता उपलब्ध करूँ, मुझे बताएँ ? तो उस फकीर ने कहा कि दो तरह की साधुताएँ हैं। साधु बनना हो तो बहुत सरल है बात, साधु होना हो तो बहुत कठिन है बात। साधु बनना एक अभिनय की बात है। तुम जो हो, रहे आओ। कपड़े बदलो, वेष बदलो, भाषा बदलो, ऊपर से सब बदलो, तुम साधु बन जाओगे। साधु होना हो तो मामला बहुत कठिन है क्योंकि तब वेष बदलने से, वस्त्र बदलने से, आवरण बदलने से कुछ भी न होगा तब तो तुम ही बदलोगे। महावीर साधु बने, यह अत्यन्त गलत शब्दों का प्रयोग है। बनना होता है चेष्टा से। महावीर साधु हुए आत्म-परिवर्तन से। अगर महावीर ने किसी को कहा कि तुम साधु बनो तो भी बात गलत है। महावीर ने किसी को भी साधु बनने को नहीं कहा। **महावीर ने कहा कि जागो असाधुता के प्रति और तुम पाओगे कि साधुता आनी शुरू हो गई है।**

प्रयास करके हम कुछ बन सकते हैं लेकिन साधु नहीं बन सकते हैं। साधुता तो आत्मपरिवर्तन है पूरा का पूरा। तो साधुता कोई ऐसी चीज नहीं है कि कल एक आदमी असाधु था, आज साधु हो गया; आज दीक्षा ले ली, वस्त्र

बदले, मुँहपट्टी बांधी और साधु हो गया। कल तक असाधु था, आज साधु हो गया। और कल फिर मुँह-पट्टी फेंक दी, वस्त्र बदल लिए फिर असाधु हो गया। यह मुँह-पट्टी, वस्त्र और यह सब का सब जो बाह्य आडम्बर है, अगर किसी को साधु बनाता है तो बड़ी आसान बात है। कोई साधु बन सकता है, फिर असाधु बन सकता है। लेकिन कभी सुना है ऐसा कि कोई साधु हो गया हो, और फिर असाधु हो जाए। क्योंकि जिसने साधुता का आनन्द जाना है, वह कैसे असाधु होने के दुःख में उतरेगा। असल में वह साधु हुआ ही नहीं था, सिर्फ वस्त्र ही बदले थे, सिर्फ वेष ही बदला था, सिर्फ ढोंग बदला था, सिर्फ अभिनय बदला था। अभिनय फिर बदला जा सकता है। जो हमारे ऊपर की बदलाहट है वह हमारे भीतर की बदलाहट नहीं है।

महावीर साधु नहीं बने क्योंकि जो साधु बना है, वह कल असाधु बन सकता है। शायद महावीर को पता ही नहीं चला होगा कि वह साधु हो गए हैं। होने की जो प्रक्रिया है वह अत्यन्त धीमी, शान्त और मौन है। बनने की जो प्रक्रिया है वह अत्यन्त घोषणापूर्ण है। बैंड-बाजे के साथ बनना होता है। बनने की प्रक्रिया भीड़-भाड़ के साथ है, जुलूस के साथ है। बनने की प्रक्रिया और है, होने की प्रक्रिया और है। रात में कली खिल जाती है, फूल बन जाती है, शायद पौधे को भी पता न चलता होगा। कब एक छोटा-सा अंकुर बड़ा पत्ता बन जाता है, शायद पत्ते को भी पता न चलता होगा। आप कब बच्चे थे और कब जवान हो गये, कब जवान थे और कब बूढ़े हो गए, कब जन्मे थे, और कब मर जाएँगे, पता चलेगा क्या? यह सब चुपचाप हो रहा है। जीवन चुपचाप काम कर रहा है।

ठीक ऐसे ही अगर कोई अपनी असाधुता को समझता चला जाए, तो वह एक दिन हैरान होगा कि कब वह साधु हो गया, किस क्षण बदल गया। वेष वही होता है, वस्त्र वही होते हैं, सब वही होता है। लेकिन यह घटना चुपचाप घट जाती है। महावीर न कभी साधु बने और न महावीर ने कभी किसी को कहा कि तुम साधु बनो। हाँ, महावीर को देखने वाले लोग साधु बने और उन्होंने दूसरों को यह समझाया कि साधु बनो। बस देखने में भूल हो जाती है। क्योंकि देखने में हमें 'क्रमिक विकास दिखाई नहीं पड़ता, सिर्फ बाहर की घटनाएँ दिखाई पड़ती हैं कि बाहर कल आदमी ऐसा था आज ऐसा हो गया। भीतर का, बीच का सेतु छूट जाता है। वही मूल्यवान् है।

कुछ वर्ष हुए एक मुसलमान वकील मुझे मिलने आए और उन्होंने मुझे कहा—कई महीनों से आना चाहता था लेकिन नहीं आया। चित्त अशान्त था। पूछना चाहता था आपसे कि कैसे शांत हो जाऊँ। लेकिन यह डर लगता था कि आप कहेंगे कि माँस खाना छोड़ो, चोरी करना छोड़ो, बेईमानी छोड़ो, शराब मत पिओ, जुआ मत खेलो—और ये सब मेरे पीछे लगे हैं। जब भी किसी साधु के पास गया उसने यही कहा कि यह सब छोड़ो तभी शांत हो सकते हो। ये मुझसे छूटते नहीं फिर मैंने साधुओं के पास जाना ही बंद कर दिया। इसलिए मैं आपके पास नहीं आया। फिर मैंने कहा। आज आप कैसे आए ? उसने कहा, आज किसी मित्र के घर खाना खाने गया था ! उन्होंने मुझसे कहा कि आप कहते हैं कि कुछ छोड़ो ही मत। तो मुझे लगा कि इस आदमी के पास जाना चाहिए। आप कुछ भी छोड़ने को नहीं कहते ; शराब पी सकता हूँ, जुआ भी खेल सकता हूँ। मैंने कहा मुझे तुम्हारे शराब और जुए से क्या मतलब। यह तुम्हारा काम है, तुम जानो। तो उसने कहा कि फिर आपसे मेरा मेल पड़ सकता है। फिर मैं क्या करूँ ? अशांत हूँ, दुःखी हूँ। मैंने कहा कि आप ध्यान का छोटा-सा प्रयोग करें। आत्म-स्मरण का प्रयोग शुरू करें। आधा घंटा रोज बैठकर अकेले स्वयं ही रह जाएँ, सब भूल जाएँ। उतनी देर मन में जुआ न खेलें। बाहर के जुए से मुझे कोई मतलब नहीं। उतनी देर मन में शराब न पिएँ, बाहर की शराब में मुझे कोई मतलब नहीं। उतनी देर मांस न खाएँ, बस इतना बहुत है। उन्होंने कहा कि यह हो सकता है। आधा घंटा बचा सकता हूँ।

फिर छः महीनों के बाद वह आदमी वापस आया। उसकी चाल बदल गई थी। वह आदमी बदल गया था। उसने मुझे आकर कहा कि आपने मुझे धोखा दिया। मैं क्यों आपको धोखा दूँ ? वह आधा घंटा तो ठीक था लेकिन मेरे साढ़े तेईस घंटे दिक्कत में पड़ जाते हैं। कल मैंने शराब पी और मुझे वमन हो गया उसी वक्त। क्योंकि मेरा पूरा मन इन्कार कर रहा था। रिश्वत लेने में एकदम हाथ खिच गए पीछे जैसे कोई जोर से कह रहा हो कि तुम क्या कर रहे हो ? क्योंकि उस आधा घंटा में जो शान्ति और आनन्द मुझे मिल रहा है, वह अब मैं चाहता हूँ कि चौबीस घंटे में फैल जाए। मैंने कहा वह तुम्हारा काम है।

छः महीने बाद वह आदमी दुबारा आया और उसने कहा कि जो आनन्द मैंने उस आधे घंटे में पाया वह सारे जीवन में नहीं पाया। अब मैं मांस नहीं खा सकता। अब मुझे तकलीफ होती है यह सोचकर कि मैं इतने दिन कितना

संवेदनहीन था कि मांस खाता रहा। आज मैं सोच भी नहीं पाता कि मैं इतने वर्षों तक कैसे शराब पीता रहा ? मैंने कहा अब क्या दिक्कत है शराब पीने में ? उसने मुझे कहा कि दिक्कत बहुत साफ हो गई है। पहले मैं अशांत था शराब पीता था, अब मैं शान्त हूँ शराब नहीं पीता हूँ। फिर मैंने कहा कि यह तुम्हारी मर्जी है। अब जो तुम समझो करना।

महावीर का ध्यान ऐसा है कि जो उस ध्यान से गुजरेगा वह मांसाहार नहीं कर सकता है। महावीर कहते नहीं किसी को कि मांसाहार मत करो। वह ध्यान ऐसा है कि आप उससे गुजरेंगे तो मांसाहार नहीं कर सकते। इतने संवेदनशील हो जाएंगे आप कि ये बात मूर्खतापूर्ण मालूम पड़ेगी, जड़ता-पूर्ण मालूम पड़ेगी कि भोजन के लिए किसी का प्राण लिया जाए। महावीर कहते हैं कि जो ध्यान से गुजरेगा वह शराब नहीं पी सकता है क्योंकि वह ध्यान इतने जागरण में, इतने आन्द में ले जाता है कि शराब पीना उस सबको नष्ट करना होगा। लेकिन हमारी हालत उल्टी है। हम पकड़े हुए हैं कि मांस मत खाओ, शराब मत पियो, यह मत करो, वह मत करो, बस फिर जो महावीर को है, आपको हो जाएगा। मगर कभी नहीं होने वाला है यह। क्योंकि आप गलत दिशा की ओर चल पड़े हैं। आप भूसा बो रहे हैं, गेहूँ का आपको पता ही नहीं है।

प्रश्न : महावीर समानता के समर्थक थे। फिर भी उनके संघ में साध्वी-संघ उपेक्षित क्यों रहा ?

उत्तर : यह बहुत विचारणीय बात है। महावीर के मन में स्त्री-पुरुष के बीच असमानता का कोई भाव नहीं है। समानता की पकड़ इतनी गहरी है कि मनुष्य और पशु में भी, मनुष्य और पौधे में भी वह असमानता का भाव नहीं रखते। लेकिन फिर भी स्त्री और पुरुष के बीच साधुसंघ में उन्होंने कुछ भेद किया है और उसके कुछ कारण हैं। और वह कारण अब तक नहीं समझे जा सके हैं। न समझे जाने का रहस्य आपको ख्याल में आ सकता है। महावीर स्त्री के विरोध में नहीं हैं, स्त्रैणता के विरोधी हैं और इसको नहीं समझा जा सका। महावीर पुरुष के पक्ष में नहीं हैं लेकिन पुरुष होने का एक गुण है, उसके पक्ष में हैं। इन बातों को हम समझेंगे तो ख्याल में आ जाएगा। कई पुरुष हैं जो स्त्रैण हैं, कई स्त्रियाँ हैं जो पुरुष हैं। स्त्रैणता का अर्थ है निष्क्रियता। पुरुषत्व का अर्थ है सक्रियता पुरुष आक्रामक है। स्त्री अगर प्रेम भी करे तो भी आक्रमण नहीं करती। वह जानकर किसी को पकड़ नहीं लेती कि मुझे

तुमसे प्रेम है। प्रेम भी करे तो चुपचाप बैठकर प्रतीक्षा करती है कि तुम आओ और उससे कहो कि 'मैं तुम्हें प्रेम करता हूँ।' स्त्री आक्रामक नहीं है। स्त्रैण चित्त आक्रामक नहीं है। इससे स्त्री का ही सम्बन्ध नहीं है। बहुत पुरुष ऐसे हैं जो इसी भाँति प्रतिक्षा करेंगे। महावीर का कहना है—जैसा मैंने पीछे समझाया कि महावीर की पूरी साधना संकल्प की, श्रम की साधना है—कि जिसे सत्य पाना है उसे यात्रा पर निकलना होगा, उसे खोज में जाना होगा, उसे जूझना पड़ेगा, उसे चुनौती, साहस, संघर्ष में उतरना पड़ेगा। ऐसे बैठ कर सत्य नहीं मिल जाएगा।

तो महावीर कहते हैं कि स्त्री को भी अगर सत्य पाना है तो पुरुष होना पड़ेगा। इस बात को बहुत गलत समझा गया। ऐसा समझा गया कि स्त्री योनि से मोक्ष असम्भव है। स्त्री को भी एक जन्म लेना पड़ेगा पुरुष का, फिर पुरुषयोनि से मोक्ष हो सकेगा। बात बिल्कुल दूसरी है। पुरुषयोनि से ही मोक्ष हो सकता है महावीर के मार्ग पर। लेकिन पुरुष योनि का मतलब पुरुष हो जाना नहीं है शरीर से, पुरुष योनि का मतलब है निष्क्रियता छोड़ देना। एक स्त्री है। उसके मन को सहज यही लगता है कि वह कृष्ण का गीत गाए और कहे तुम्ही ले चलो जहाँ ले चलना हो। तुम्ही हो मार्ग, तुम्ही हो सहारे, मैं तो कुछ भी नहीं हूँ, तुम्हीं हो सब, अब जहाँ चाहो मुझे ले जाओ।' जितना भक्तिमार्ग है वह सब स्त्रैण की उत्पत्ति है—स्त्री की नहीं। जैसे प्रेयसी अपने प्रेमी के कन्धे पर हाथ रख ले, अपने प्रेमी के हाथ में हाथ दे दे और प्रेमी जहाँ ले जाए, वहाँ चली जाए। स्त्रैण चित्त कह रहा है कि कोई ले जाए तो मैं जाऊँ, कोई पहुँचाए तो मैं पहुँचूँ, मैं समर्पण कर सकती हूँ। जैसे, एक लता है। वह सीधी खड़ी नहीं हो पाती। किसी वृक्ष का सहारा मिल जाए तो वह खड़ी हो सकती है। लता को वृक्ष का सहारा चाहिए, स्त्री सहारा माँगती है और महावीर सहारे के एक दम खिलाफ हैं। वह कहते हैं कि सहारा माँगा कि तुम परतन्त्र हुए। सहारा माँगो ही मत, बिल्कुल बेसहारा हो जाओ। तुमने सहारा माँगा कि तुम पंगु हुए। सहारा भगवान् का भी मत माँगना। सहारा माँगना ही दीन हो जाना है।

तो महावीर कहते हैं कि सहारा मांगना ही मत। यह अत्यन्त पुरुषमार्ग है। इस पुरुषमार्ग पर स्त्रैण चित्त की गति नहीं है। लेकिन शरीर से कोई स्त्री हो, किन्तु उसमें पौरुष हो तो गति हो सकती है। एक तीर्थंकर हैं जैनों के मल्ली-बाई। वह स्त्री है और दिगम्बरों ने उसे मल्लीनाथ ही कहा है। उसे स्त्री कहना

बेमानी है। क्योंकि वह ठीक पुरुष जैसी बेसहारा खड़े होने की हिम्मत रख सकी। उसने कोई सहारा नहीं मांगा। इसलिए स्त्री कैसी? मल्लीबाई कहा ही नहीं दिगम्बरों ने। उन्होंने कहा : मल्लीनाथ। पीछे झगड़ा खड़ा हो गया कि मल्लीबाई स्त्री थी कि पुरुष। दिगम्बर कहते हैं : पुरुष, श्वेताम्बर कहते हैं : 'स्त्री' दोनों ठीक कहते हैं। मल्लीबाई स्त्री थी। लेकिन उसके चित्त की दशा स्त्रैण नहीं है। यहां काश्मीर में एक स्त्री हुई : लल्ला। काश्मीर के लोग कहते हैं कि हम दो ही नाम पहचानते हैं : अल्ला और लल्ला। मगर लल्ला को स्त्री कहना मुश्किल है। इतिहास में वह अकेली ही स्त्री है जो नग्न रही। महावीर नग्न रहे वह ठीक है। पुरुष नग्न रह सकता है क्योंकि वह दूसरे की फिक्र ही नहीं करता। स्त्री चौबीस घंटे दूसरे की फिक्र में है। चाहे वह पति हो, चाहे प्रेमी हो, चाहे समाज हो। महावीर नग्न खड़े हो गए, यह कोई बड़ी बात न थी। लेकिन लल्ला नग्न खड़ी हो गई, यह बड़ी भारी बात है। उसके पास पुरुषचित्त है। वह जीवन भर नग्न रही।

गांधी जी ठहरे हुए थे रवीन्द्रनाथ के पास, शांतिनिकेतन में। सांझ दोनों घूमने जाने वाले थे। तो रवीन्द्रनाथ ने कहा रुकें दो मिनट, मैं जरा बाल संवार आऊँ। वह भीतर गए। एक तो गान्धी जी को यह सुनकर बहुत आश्चर्य हुआ कि बुढ़ापे में, बाल संवारने की इतनी चिन्ता क्यों। पर रवीन्द्रनाथ थे। और कोई होता तो शायद गान्धी जी उसको वहीं कुछ कहते भी। एकदम से कुछ कहा भी नहीं जा सका। रवीन्द्रनाथ भीतर चले गए। दो मिनट क्या, दस मिनट बीत गए। गान्धी खिड़की से झांक रहे हैं। रवीन्द्र आइने के सामने खड़े हैं और बाल संवारे चले जा रहे हैं। वह खो ही गए हैं आइने में। पन्द्रह मिनट बीत गये तब बरदाश्त के बाहर हो गया। गान्धी जी भीतर गए और कहा कि क्या कर रहे हैं आप। रवीन्द्र ने चौंक कर देखा और कहा अरे! मैं भूल गया। चलता हूं। चलने लगे हैं तो रास्ते में गान्धी जी ने उनसे कहा कि मुझे बड़ी हैरानी होती है कि इस उम्र में आप बाल संवारते हैं। रवीन्द्र ने कहा कि जब जवान था तो बिना संवारे भी चल जाता था। जब से बूढ़ा हुआ हूं तब से बहुत संवारना पड़ता है। बड़ी चिन्ता मन में लगती है कि किसी को देखकर कैसा लगूंगा। और मुझे तो ऐसा भी लगता है कि अगर मैं कुरूप हूं तो यह हिंसा है क्योंकि दूसरे की आंख को दुःख होता है तो मुझे सुन्दर होना चाहिए। मैं जितना हो सके सुन्दर बनने की कोशिश करता हूं। रवीन्द्रनाथ पुरुष हैं मगर उनके पास एक स्त्रैण चित्त है। अगर कोई हिम्मत करे तो जैसा

मल्लीबाई को मल्लीनाथ कहा है, ऐसा रवीन्द्रनाथ को रवीन्द्र बाई कहने लगे। वह जो चित्त है भीतर गहरे में, वह एकदम स्त्री का है। शायद सभी कवियों के पास स्त्रैण चित्त होता है। असल में शायद काव्य का जन्म ही नहीं हो सकता पुरुष चित्त से।

वह जो काव्य का जगत् है, वह स्त्रोचित्त का जन्म है। इसलिए दुनिया में जितना विज्ञान बढ़ता जा रहा है, काव्य पीछे हटता जा रहा है। विज्ञान पुरुष चित्त की देन है और पुरुष जीतता चला जाएगा तो काव्य पीछे हटता चला जाएगा। स्त्री का पूरा चित्त काव्य का है, स्वप्न का है, कल्पना का है। वह निष्क्रिय है, कुछ कर नहीं सकता, सिर्फ कल्पना कर सकता है। असल में कवि का मतलब है निष्क्रिय चित्त। वह कल्पना कर सकता है, और कुछ भी नहीं कर सकता। वह कई महल बना सकता है लेकिन कल्पना में। जो बैठे-बैठे बन सकते हैं, वही महल बना सकता है। खड़े होकर और गिट्टी तोड़ कर और पत्थर जमा कर जो महल बनाने पड़ते हैं, वह उसके वश की बात नहीं है। वह बैठकर शब्दों के महल बना सकता है। रवीन्द्र कहते हैं कि मैंने क्या गाया? जब मैं नहीं होता हूं तब परमात्मा ही उतर आता है और मुझसे गाता है। अब यह जो निष्क्रिय चित्त है इसमें कुछ उतरता है, इससे बहता है। यह प्रतीक्षारत है, राह देखता है, अवसर खोजता है लेकिन अपनी जगह चुप और मौन है। तो सभी कविचित्त स्त्रीचित्त होंगे।

महावीर का यह जो जोर है, इसके पीछे कारण है। यह स्त्री और पुरुष के बीच नीचे-ऊँचे की बात नहीं है। यह स्त्रैण चित्त और पुरुषचित्त क्या कर सकते हैं, इस बात के सम्बन्ध में विचार है। इसलिए महावीर कहते हैं स्त्री का मोक्ष नहीं है। इसका मतलब है स्त्रैण चित्त को मोक्ष नहीं है। स्त्री मोक्ष जा सकती है लेकिन चित्त पुरुष का होना चाहिए—महावीर के मार्ग से। अगर मीरा के मार्ग से कोई जाना चाहे तो मीरा कहेगी पुरुष को कोई मोक्ष नहीं है। मीरा के मार्ग से जाना हो तो स्त्रीचित्त ही चाहिए। उस मार्ग से : पुरुष के लिए कोई मुक्ति नहीं है क्योंकि पुरुष इस तरह की बातें नहीं सोच सकता जैसा मीरा सोच सकती है। और अगर कभी पुरुष सोचता तो वह स्त्रैण हो जाता। जब कबीर या सूर कृष्ण के प्रेम में पागल हो जाते हैं तो सोचते क्या हैं? फौरन स्त्रैण चित्त की बातें शुरू हो जाती हैं। कबीर कहते हैं "मैं तो राम की दुलहनियाँ"—मैं राम की दुलहन हूँ। वे कहेंगे कि मैं प्रतीक्षा कर रहा हूँ सेज पर तुम्हारी, तुम कब आओगे? स्त्री का भाव शुरू हो जाएगा। जगत् में दो

ही तरह के चित्त हैं—स्त्रीचित्त और पुरुषचित्त। इसलिए बहुत गहरे में मुक्ति के दो ही मार्ग हैं। स्त्री का और पुरुष का। महावीर का मार्ग पुरुष का मार्ग है, इसलिए महावीर के मार्ग पर स्त्री के लिए कोई गुंजाइश नहीं है।

प्रश्न : ज्यादातर लोग तो मिश्रित होते हैं ?

उत्तर : हाँ, उनके लिए बीच का कोई मार्ग होता है। मार्ग बहुत हैं लेकिन मौलिक रूप से दो ही मूल मार्ग होंगे क्योंकि मनुष्य जीवन में पुरुष और स्त्री दो अति छोर हैं, जहाँ दो तरह का अस्तित्व होता है। अधिक लोग बीच में होते हैं, वे बीच का रास्ता पकड़ते हैं जिसमें वे ध्यान भी करते हैं और पूजा भी करते हैं। अब यह मजा है कि ध्यान पुरुषमार्ग का हिस्सा है और पूजा स्त्री-मार्ग का हिस्सा है। दोनों के घोल-मेल से मुक्त होना बहुत मुश्किल है, क्योंकि वहाँ कभी हम थोड़ा इस रास्ते पर जाते हैं, थोड़ा उस रास्ते पर जाते हैं। इसलिए चित्त का विश्लेषण जरूरी है कि किस व्यक्ति के लिए कौन-सा मार्ग उचित है ? महावीर के मार्ग पर स्त्रियाँ उपेक्षित हैं, ऐसा नहीं है। बल्कि स्त्री-चित्त उपेक्षित है जैसा कि मीरा के मार्ग पर पुरुषचित्त उपेक्षित है।

एक बार मीरा गई वृन्दावन। वहाँ एक बड़ा साधु है, पुजारी है, सन्त है। वह उसके दर्शन के लिए उसके द्वार पर खड़ी हो गई। उसने खबर भेजी कि मैं तो स्त्रियों को देखता नहीं, मिलता नहीं। मीरा ने उत्तर भिजवाया कि मैं तो सोचती थी कि एक ही पुरुष है जगत् में और वह है कृष्ण। मुझे पता न था कि तुम दूसरे पुरुष भी हो। वह भी था कृष्ण का भक्त। वह पुजारी भागा हुआ आया और कहा कि माफ करना, भूल हो गई क्योंकि कृष्ण के साथ सखियों के सिवाय और किसी का निर्वाह नहीं। वहाँ राधा जैसा स्त्री-चित्त चाहिए—पूर्ण समर्पित, और प्रतीक्षा करता हुआ।

वह भी एक मार्ग है। अगर कोई पूर्ण रूप से उस तरफ जाए तो उधर से भी उपलब्धि हो सकती है। लेकिन महावीर का वह मार्ग नहीं है। महावीर के मार्ग पर स्त्रीचित्त उपेक्षित होगा ही। मगर वह स्त्री की उपेक्षा नहीं है।

एक साध्वी ने पूछा है कि महावीर के मार्ग पर यह बड़ी बेबूझ बात है कि एक दिन का दीक्षित साधु हो, सत्तर वर्ष की दीक्षित साध्वी हो, तो भी साध्वी साधु को प्रणाम करेगी। यहं पुरुष के लिए इतना सम्मान और स्त्री के लिए इतना अपमान है जबकि महावीर समानता का ख्याल रखते हैं। एक तो जो मैंने पूरी बात कही वह ख्याल में रहे। महावीर के मन में स्त्रीचित्त यानी स्त्रैणता के

लिए कोई जगह नहीं है। एक दूसरा मनोवैज्ञानिक कारण भी है कि वृद्धा साध्वी एक दिन के दीक्षित जवान साधु को नमस्कार करे। स्वभावतः लगेगा कि पुरुष को बहुत सम्मान दे दिया गया, स्त्री को बहुत अपमानित कर दिया गया। बात उल्टी है। स्त्रियों से संयम की सम्भावना ज्यादा है सदा पुरुषों के बजाय। क्योंकि पुरुष आक्रामक है, उसका चित्त आक्रामक है। स्त्री को जब तक कोई असंयम में न ले जाए, वह अपने से जाने वाली नहीं है, चाहे मोक्ष की तरफ, चाहे नरक की तरफ। हर चीज में—चाहे पाप हो चाहे पुण्य, चाहे मोक्ष हो चाहे नरक, चाहे अंधकार हो चाहे प्रकाश, पुरुष पहले करने वाला है। ऐसा बहुत कम मौका है कि कभी कोई स्त्री किसी पुरुष को पाप में ले गई हो। कभी ले जाए तो उसका कारण यही होगा कि उसके पास पुरुषचित्त है।

महावीर यहाँ बहुत अद्भुत मनोवैज्ञानिक सूझ का परिचय दे रहे हैं जो कि फ्रायड के पहले किसी आदमी ने कभी दिया ही नहीं था। लेकिन सूझ इतनी गहरी है कि एकदम से दिखाई नहीं पड़ती। चूंकि पुरुष ही पाप में ले जा सकता है, स्त्री कभी नहीं, इसलिए महावीर ने बड़ा सुगम उपाय किया है कि स्त्री पुरुष को आदर दे। और स्त्री जिस पुरुष को आदर देती है, उसके अहं-कार को कठिनाई हो जाती है उस स्त्री को पाप की ओर ले जाने में। एक स्त्री आपको आदर दे, पूज्य माने, सिर रख दे पैरों में, तो आपके अहंकार को कठिनाई हो जाती है अब इसको नीचे ले जाने में। इसलिए महावीर ने कहा कि कितनी ही वृद्धा स्त्री हो, पुरुष को आदर दे, उसका पैर छू ले, ताकि उसके अहंकार को कठिनाई हो जाए कि वह किसी स्त्री को पाप में ले जाने को कल्पना भी न कर सके।

यहाँ अगर ध्यान से देखा जाए तो मालूम होगा झुकती तो स्त्री है किन्तु वस्तुतः पुरुष का अनादर हो गया है इस घटना में और स्त्री का पूर्ण आदर हो गया है। लेकिन यह देखना जरा मुश्किल मामला है। यह भी ध्यान रखें कि महावीर के तेरह हजार साधु थे और चालीस हजार साध्वियाँ थीं। यह अनुपात हमेशा : ऐसा ही रहा है। और साध्वियाँ जितनी साध्वियाँ होती हैं साधु उतने साधु नहीं होते हैं। चूंकि वे पहल नहीं करतीं किसी भी काम में, इसलिए वे जहाँ हैं, वहीं रुक जाती हैं। अगर स्त्री को काम-वासना में दीक्षित न किया जाए तो वह जीवन भर ब्रह्मचर्य से रह सकती है। स्त्री के शरीर और मन की व्यवस्था बहुत और तरह की है। पुरुष के शरीर और मन की व्यवस्था बहुत और तरह की है। स्त्री को काम-वासना में भी दीक्षित करना पड़ता है, धर्म

साधना में भी दीक्षित करना पड़ता है। वह पहल लेती ही नहीं। इसलिए निर्दोष लड़कियाँ मिल जाती हैं, निर्दोष लड़के मिलना बहुत मुश्किल हैं। कुंवारी लड़कियाँ मिल जाती हैं, कुंवारे लड़के मुश्किल से होते हैं। लड़कियों पर जो हमें इतने नियंत्रण और बन्धन मालूम पड़ते हैं वे असल में लड़कियों पर नहीं हैं। लड़कियों को जो घर में रोका गया है, लड़को से नहीं मिलने दिया है, वह इसलिए नहीं कि लड़कियों पर अविश्वास है उसका कारण यह है कि लड़कों पर विश्वास नहीं है। वे पहल दे सकते हैं पाप की। और चूंकि लड़कियाँ कोई पहल नहीं दे सकतीं कभी भी, महावीर ने व्यवस्था की कि हर स्थिति में साध्वी साधु को आदर दे। इसमें पुरुष के अहंकार की भी तृप्ति हुई। साधुओं ने समझा होगा हमारा बड़ा सम्मान हुआ। आज भी यही समझ रहे हैं।

प्रश्न : नमस्कार करने वाले का अहंकार टूटता है या जिसको नमस्कार किया जाता है, उसका अहंकार टूटता है ?

उत्तर : यहाँ अहंकार तोड़ने का मतलब नहीं है। यहाँ महावीर पुरुष का अहंकार पूरी तरह सुरक्षित कर रहे हैं। साध्वी पुरुष को नमस्कार करे इसमें साध्वी का अहंकार टूटेगा, पुरुष का मजबूत होगा। और जब पुरुष को एक बार पता चल जाए कि एक स्त्री ने मुझे आदर दिया तो वह उस स्त्री को पाप में नहीं ले जाएगा। अगर एक स्त्री आपके पैर छू ले तो आप इस स्त्री को काम की दिशा में ले जाने में एकदम असमर्थ हो जाएँगे। इसलिए कि आपके अहंकार को बड़ी बाधा हो जाएगी। अब आप आदर की रक्षा करेंगे। लेकिन स्त्री के मामले में उल्टी बात है।

अगर यह कहा जाए कि स्त्री को पुरुष आदर दे, उसके पैर छुए, तो इसमें भी समझने जैसा मामला है। स्त्री का चाहे पैर छुओ, चाहे कोई शरीर का अंग छुओ, स्त्री की कामुकता उसके पूरे शरीर पर व्याप्त है। पुरुष की कामुकता सिर्फ उसके काम-केन्द्र के आस-पास है। इसलिए पुरुष को सिर्फ सम्भोग से आनन्द आता है, स्त्री को सिर्फ सम्भोग से आनन्द नहीं आता जब तक कि वह उसके पूरे शरीर के साथ न खेले, और उसके पूरे शरीर को न जगाए। अगर पुरुष स्त्री के पैर भी छू ले तो भी स्त्री में काम की सम्भावना जागृत हो सकती है। उसका पूरा शरीर कामुक है। और यह शुरूआत आगे बढ़ सकती है। पुरुष को अगर पहले ही झुका दिया जाए तो उसको और झुकने में डर नहीं रहा। अब वह स्त्री को किसी भी पाप-मार्ग से दीक्षित कर सकता है। इसलिए महावीर की बात तो अद्भुत है, आमतौर से यही समझा जाता है कि स्त्री को

अपमानित कर रहे हैं, पुरुष को सम्मानित कर रहे हैं। मामला बिल्कुल ही उल्टा है। पुरुष पूरी तरह अपमानित हुआ है इस घटना में और स्त्री पूरी तरह सम्मानित हुई है।

प्रश्न : ऐसी व्याख्या किसी और ने भी की है क्या ?

उत्तर : नहीं, अब तक तो मुझे ख्याल में नहीं है कि किसी ने की है।

प्रश्न : अभी तक उन्होंने कैसी व्याख्या की है इसकी ?

उत्तर : अभी तक की व्याख्या यही है कि स्त्री नीच योनि है। पुरुष ऊँची योनि है, इसलिए पुरुषयोनि को वह नमस्कार करे। लेकिन मैं इस व्याख्या को बिल्कुल ही गलत मानता हूँ।

प्रश्न : महावीर के जमाने में बहुत से लोग साधु और साध्वियाँ हो गए। ध्यान में तो पीछे गये होंगे। लेकिन पहले घर-बार छोड़कर उनके साथ क्यों हो गए ? आप तो ऐसी सलाह देते नहीं हैं ?

उत्तर : महावीर ने मनुष्य के चार वर्गीकरण किए हैं—श्रावक, श्राविका, साधु, साध्वी। महावीर की साधना-पद्धति श्रावक से शुरू होती है या श्राविका से। एकदम से कोई साधु नहीं हो सकता। महावीर की साधना का पूरा व्यवस्थाक्रम है। पहले उसे श्रावक होना होगा। साधना, ध्यान और सामायिक श्रावक की है। जब वह उससे गुजर जाए, जब उसको उतनी उपलब्धि हो जाए फिर वह साधु के जीवन में प्रवेश कर सकता है। महावीर सीधे उत्सुक नहीं हैं किसी को भी साधु की दीक्षा देने को। श्रावक वह भूमिका है जहाँ साधु का जन्म हो जाए तो फिर वह जा सकता है। और तब भी उनका आग्रह नहीं है कि वह जाए ही। वह श्रावक रहकर भी मोक्ष पा सकता है। सिर्फ महावीर ने ही यह कहने की हिम्मत की है। साधु होना अनिवार्य नहीं है बीच में। मान लीजिए कि आप गहरे ध्यान में गए और आप को वस्त्र पहनना ठीक मालूम पड़ता है तो आप जारी रखे। और कहीं आपको ऐसा भीतर लगने लगे कि छोड़ दें, कोई अर्थ नहीं है इनमें तो इसको भी क्यों रोकें, छोड़ दें। यानी महावीर की आस्था है कि एक सहज भाव में अगर एक व्यक्ति को लगता है कि वह शान्त हुआ, ध्यानस्थ हुआ, घर में रहकर ही तो ठीक है। अगर उसे लगता है कि यह व्यर्थ हो गया, वह इसे छोड़ दे। रुकावट नहीं है उनकी कोई, कोई आग्रह नहीं है।

प्रश्न : श्रावक होने से पहले साधु बनने को उन्होंने नहीं कहा क्या ?

उत्तर : नहीं, बनने का उपाय ही नहीं। श्रावक की व्यवस्था से उसे गुजरना पड़ेगा। या तो श्रावक होने में ही साधु हो जाए और या वह जिसे हम साधु कहते हैं, वैसा हो जाए।

प्रश्न : परम्परा से प्रामाणिक एवं निर्णीत महावीर के जीवन का बौद्धिक एवं तथ्यपूर्ण आपका विश्लेषण क्या समाज को स्वीकृत होगा ?

उत्तर : समाज को स्वीकृत हो, ऐसी आवश्यकता भी नहीं। समाज को स्वीकृत हो इसका ध्यान भी नहीं। समाज को स्वीकृत होने से ही वह ठीक है, ऐसा कोई कारण भी नहीं।

समाज को जो स्वीकृत है, वह वही है कि जैसा समाज है उसको वह वैसा ही बनाये रखे। प्राथमिक रूप से जो मैं कह रहा हूँ उसकी अस्वीकृति की ही सम्भावना है समाज से। लेकिन अगर जो मैं कह रहा हूँ वह बुद्धिमत्तापूर्ण है, वैज्ञानिक है, तथ्य है, तथ्यगत है, तात्त्विक है तो स्वीकृति को टूटना पड़ेगा; अस्वीकृति जीत नहीं सकती है। और अगर यह तथ्यपूर्ण नहीं है, अवैज्ञानिक है, तात्त्विक नहीं है तो अस्वीकृति जीत जाएगी। सवाल यह नहीं कि कौन उसे स्वीकार करे, कौन अस्वीकार करे। **मुझे जो सत्य मालूम पड़ता है, वह मुझे कह देना है।** अगर वह सत्य होगा तो आज नहीं कल स्वीकार करना ही पड़ेगा। लेकिन सत्य प्राथमिक रूप से अस्वीकार किया जाता है, क्योंकि हम जिस असत्य में जीते हैं वह उससे विपरीत पड़ता है। इसलिए वह पहले अस्वीकृत होता है लेकिन अगर वह सत्य तो टिक जाता है और स्वीकृति पाता है और अगर असत्य है तो मर जाता है, गिर जाता है।

एक अद्भुत व्यक्ति थे महात्मा भगवान् दीन। वह जब किसी सभा में बोलते और लोग ताली बजाते तो वह बहुत उदास हो जाते। मुझसे वह कहते थे कि जब कोई ताली बजाता है तो मुझे शक होता है कि मैंने कोई असत्य तो नहीं बोल दिया क्योंकि इतनी भीड़ सत्य के लिए ताली बजाएगी एकदम से, इसकी सम्भावना नहीं है। वह कहते कि मैं उस दिन की प्रतीक्षा करता हूँ जब भीड़ एकदम से पत्थर मारेगी तो मैं समझूँगा कि जरूर कोई सत्य बोला गया है क्योंकि भीड़ असत्य में ही जीती है, समाज असत्य में जीता है। **और सत्य पर पहले तो पत्थर ही पड़ते हैं। वह सत्य की पहली स्वीकृति है।** और सत्य अगर सत्य है तो अस्वीकृति को आज नहीं कल मर जाना होगा।

निरन्तर कथा यही है। अंधकार घना है, अज्ञान गहरा है। ज्ञान की पहली किरण उतरे, प्रकाश उतरे तो पहला काम हमारा यह होता है कि हमारी आँखें एकदम बन्द हो जाती हैं क्योंकि अंधेरे में जाने वाला व्यक्ति प्रकाश को देखने की क्षमता भी नहीं जुटा पाता। लेकिन आँख कितनी देर तक बन्द रहेगी, वह तो खोलनी ही पड़ेगी और प्रकाश अगर सचमुच प्रकाश था तो पहचाना भी जा सकेगा। कभी हजार वर्ष लगेंगे, कभी दो हजार वर्ष। मेरी अपनी समझ यह है कि महावीर, बुद्ध, क्राइस्ट या कृष्ण को जो दिखाई पड़ा वह आज भी स्वीकृत हो सका है? सत्य अभी भी प्रतीक्षा कर रहा है कि वक्त आएगा। सत्य को अनन्त प्रतीक्षा करनी पड़ती है क्योंकि हमारा असत्य बड़ा गहरा है।

एक पुरानी कहानी है कि असत्य के पास अपने कोई पैर नहीं होते। अगर उसे चलना भी है तो सत्य के पैर ही उधार लेने होते हैं। अपने पैर उसके पास नहीं हैं। यानी असत्य अपने पैर पर खड़ा ही नहीं हो सकता। आप सब की स्वीकृति मिल जाए तो वह खड़ा हो सकता है, सत्य जैसा भासने लगता है। और सत्य को अस्वीकृति मिल जाए तो भी वह असत्य नहीं हो जाता, असत्य जैसा भासने लगता है। लेकिन सत्य सत्य है, असत्य असत्य है। असत्य करोड़ों वर्षों तक चले तो भी असत्य है। सत्य बिल्कुल न चल पाए तो भी सत्य है। गैलीलियों ने जब यह कहा कि सूरज पृथ्वी का चक्कर नहीं लगाता है, पृथ्वी सूरज का चक्कर लगाती है तो ईसाई जगत् में क्रोध पैदा हुआ क्योंकि बाइबल कहती है कि पृथ्वी स्थिर है, सूरज चक्कर लगाता है। तो क्या जीसस को पता नहीं था? क्या हमारे पैगम्बरों को पता नहीं था? सत्तर साल के बूढ़े गैलीलियो को जंजीरें डाल कर पोप की अदालत में लाया गया और उससे कहा गया कि तुम कहो कि जो तुमने कहा है वह असत्य है। कहो कि पृथ्वी स्थिर है, सूरज चक्कर लगाता है। गैलीलियों ने कहा जैसी आपकी मर्जी। उसने कागज पर लिखा दिया कि आप कहते हैं तो मैं लिखे देता हूँ कि सूरज ही चक्कर लगाता है पृथ्वी का, पृथ्वी चक्कर नहीं लगाती। लेकिन मैं कुछ भी लिखूँ इससे फर्क नहीं पड़ता, चक्कर तो पृथ्वी ही लगाती है। मैं क्या कर सकता हूँ? यानी मैं चक्कर लगाना थोड़े ही रोक सकता हूँ। गैलीलियो भी इन्कार कर दे तो क्या फर्क पड़ता है? गैलीलियो थोड़े ही चक्कर लगवा रहा है। लेकिन बाइबल हार गई, गैलीलियो जीत गया। क्योंकि सत्य जीतता है। न बाइबल

जीतता है, न गैलीलियो जीतता है, न क्राइस्ट जीतते हैं, न कृष्ण, न महावीर, न मुहम्मद। जीतना सत्य है, असत्य हारता है। लेकिन वक्त लग सकता है।

असत्य अपने को बचाने की सारी कोशिश करता है, अपनी सुरक्षा करता है और उसकी सबसे बड़ी सुरक्षा है स्वीकृति, लोगों में स्वीकृति पैदा कर देना। इसलिए असत्य स्वीकृति में जीता है। सत्य स्वीकृति की चिन्ता भी नहीं करता। वह अस्वीकृति में जी लेगा क्योंकि उसके पास अपने पैर है, अपनी स्वांस है, अपने प्राण हैं और वह प्रतीक्षा करता है अनन्तकाल तक। कभी तो आंखें खुलती हैं और चीजें दिखाई पड़ती हैं।

मुझे चिन्ता नहीं है जरा भी कि जो मैं कह रहा हूं उसे कौन मानेगा। जिस व्यक्ति को यह चिन्ता होती है, वह कभी सत्य बोल नहीं सकता। क्योंकि तब यह पहले आपकी तरफ देख लेता है कि आप क्या मानोगे? उसको मान्यता ज्यादा मूल्यवान् है। और मान्यता जिन लोगों से पानी है अगर वे सत्य को हो उपलब्ध होते तो बात करने की कोई जरूरत न थी। अंधेरे में खड़े लोगों से सूरज के लिए मान्यता लेनी है तो वे अंधेरे में खड़े लोग कहते हैं कि सूरज से अंधेरा निकलता है। उनकी स्वीकृति लेनी हो तो कहो कि बहुत घना अंधेरा सूरज से निकलता है। वे ताली पीट देगें। या उनसे कहो कि सूरज से अंधेरा कभी निकला ही नहीं। सूरज तो अंधेरे को तोड़ता है तो इसका मतलब हुआ कि तुम अकेले, आंख वाले पैदा हुए हो, हम सब अंधे हैं। और यह बात बड़ी अपमानजनक है कि कोई आदमी कहे कि मेरे पास आंख है और सब अंधे हैं। इससे बड़ा दुःख होता है। फिर सब मिलकर आंख वाले की आंख फोड़ने की कोशिश करें तो उसमें कुछ हर्जा भी नहीं है। वह ठीक ही प्रतिकार ले रहे है। वह उनको चोट पहुँची, उनके मन का अपमान हुआ, उनके अहंकार को धक्का पहुँचा। लेकिन सत्य प्रतीक्षा करता है और प्रतीक्षा करने का धैर्य रखता है।

प्रश्न : आप कहते हैं कि समाज असत्य में जीता है तो क्या असत्य समाज के लिए अनिवार्य है, जीने के लिए ?

उत्तर : जैसा समाज है हमारा, उस समाज के जीने के लिए असत्य अनिवार्य है। जैसा हमारा समाज है दुःख से भरा हुआ, पीड़ा से भरा हुआ, शोषण, अहंकार, ईर्ष्या और द्वेष से भरा हुआ, इस समाज को जिलाना हो तो यह असत्य पर ही जी सकता है। अगर बदलना हो, नया बनाना हो—आनन्द से, प्रकाश से, प्रेम से भरा हुआ, जहां ईर्ष्या न हो, महत्वाकांक्षा न हो, घृणा न हो, द्वेष न हो, क्रोध न हो तो फिर सत्य लाना पड़ेगा ?

प्रश्न : यह तो सबकी इच्छा है ही ?

उत्तर : यह सबकी इच्छा है कि आनन्द मिले। लेकिन मैं जैसा हूँ वैसा ही मिल जाए, मैं न बदलूँ। लेकिन आनन्द वैसी हालत में नहीं मिलता और मैं बदलने की तैयारी में नहीं हूँ। बदलने की तैयारी दिखाऊँगा तो आनन्द मिल सकता है। यानी मैं कहता हूँ कि प्रकाश तो मिले लेकिन मुझे आँख न खोलनी पड़े। तो फिर मुश्किल है। सबको इच्छा है कि आनन्द मिले। हर आदमी आनन्द की ही कोशिश में लगा हुआ है और सिर्फ दुःख पा रहा है। हर आदमी आनन्द पाना चाहता है, शान्ति पाना चाहता है लेकिन जो कर रहा है शान्ति पाने के लिए, आनन्द पाने के लिए, उस सबसे दुःख पाता है, अशान्ति पाता है। लेकिन वह करने को नहीं बदलना चाहता है। अब जैसे एक आदमी महत्वाकांक्षी है और कहता है कि मुझे आनन्द चाहिए। लेकिन महत्वाकांक्षी चित्त कभी भी आनन्दित नहीं हो सकता क्योंकि जो भी मिल जाएगा उससे वह सन्तुष्ट नहीं होगा और जो नहीं मिलेगा उसके लिए पीड़ित हो जाएगा। कितना ही कुछ मिल जाए उसको, उसका महत्वाकांक्षी चित्त आगे के लिए पीड़ा से भर जाएगा। वह कहता है कि मैं आनन्दित होना चाहता हूँ और वह यह भी कहता है कि मैं महत्वाकांक्षी सिर्फ इसलिए हूँ कि मुझे आनन्द चाहिए। अब महत्वाकांक्षा और आनन्द में विरोध है, यह देखने को वह राजी नहीं है। सिर्फ गैर महत्वाकांक्षी व्यक्ति आनन्द को उपलब्ध हो सकता है। लेकिन महत्वाकांक्षा चलाए रखना चाहते हैं हम और आनन्दित होना भी चाहते हैं।

अब एक आदमी है जो कहता कि मैं प्रेम चाहता हूँ और प्रेम कभी देता नहीं। और यह ऐसी हालत है जैसे एक गाँव में सभी भिखमंगे हों; सभी एक दूसरे के सामने हाथ जोड़े खड़े हों और सभी माँगना चाहते हों, देना कोई भी न चाहता हो। उस गाँव की जो हालत हो जाए वैसी हम सबकी हालत होगी ? प्रेम देना कोई भी नहीं चाहता, प्रेम माँगना चाहता है। और यह भी ध्यान रहे जो आदमी प्रेम देने की कला सीख जाता है, वह कभी माँगता नहीं। मिलना शुरू हो जाता है, उसके माँगने का सवाल ही नहीं रह जाता। माँगता सिर्फ वही है जो दे नहीं पाता। अब बुनियाद यह है कि हम सब प्रेम चाहते हैं। ठीक है, इसमें कुछ बुरा भी नहीं है। लेकिन प्रेम सिर्फ उन्हें मिलता है जो चाहते नहीं और देते हैं। वह सूत्र है पाने का। और वह सूत्र हमारी समझ में नहीं आता इसलिए भूल हो जाती है, भटकन हो जाती है।

हम आनन्द चाहते हैं, शान्ति चाहते हैं, प्रेम चाहते हैं। चाहते हम सब कुछ हैं लेकिन जैसे हम हैं वैसे में चाहते हैं जोकि असम्भव है। हम सब चाहते हैं कि पहुँच जाएँ आकाश में लेकिन पृथ्वी से पाँव न छोड़ना पड़े। गड़े रहना चाहते हैं जमीन में, पहुँचना चाहते हैं आकाश में। अगर कोई यह कहे कि आकाश में जाना है तो मैं कहता हूँ कि आकाश की फिक्र छोड़ो, पहले जमीन छोड़ो। पर वह आदमी कहता है कि जमीन हम पीछे छोड़ेंगे, पहले हम आकाश पर पहुँच जाएँ। क्योंकि आप हमसे जमीन भी छीन लो और आकाश भी न मिले, तो हम मुश्किल में पड़ जाएँगे। लेकिन बात यह है कि जमीन छोड़ने से आकाश मिल ही जाता है .क्योंकि जाओगे कहाँ? यह हमारी कठिनाई है कि हमेशा से हम यही चाहते रहे हैं कि आनन्द हो, शांति हो, प्रेम हो, लेकिन जो हम करते रहे हैं वह एकदम उल्टा है। उससे न शांति हो सकती है, न प्रेम और न आनन्द।

प्रत्येक व्यक्ति के साथ यह कठिनाई है, प्रत्येक व्यक्ति द्वेष में जी रहा है, ईर्ष्या में जी रहा है, वह चाहता है कि आनन्द हो जाए। मगर ईर्ष्यालु चित्त कैसे आनन्द पायेगा? ईर्ष्यालु चित्त सदा दुखी है। सड़क पर बड़ा मकान दिखता है, बगिया लगी दिखती है, कार दिखती है, किसी की स्त्री दिखती है, किसी के कपड़े दिखते हैं तो वह दुखी है। हर चीज उसे दुःख देती है। और ऐसा भी नहीं कि बड़ा मकान ही उसे दुःख दे। कभी-कभी यह भी दुःख देता है कि यह आदमी झोपड़ी में रह रहा है और खुश है। कभी एक भिखारी भी आनन्दित दिख जाता है तो वह दुःखी है कि मेरे पास सब है और मैं सुखी नहीं हूँ, यह भिखारी है और आनन्दित है। वह ईर्ष्या चित्त में दुःख पैदा करने की कीमिया है।

ईर्ष्यालु चित्त दुःख पैदा करता है और ईर्ष्यालु चित्त सुख चाहता है। अब बड़ी मुश्किल हो गई। इस विरोध को अगर न देखा जाए तो हम फँस गए। हम फिर जी नहीं सकते, चाहते रहेंगे सुख और पैदा करेंगे दुःख। और जितना दुःख पैदा होगा उतना ज्यादा सुख चाहेंगे। और जितना ज्यादा दुःख पैदा होगा, सुख की माँग बढ़ेगी उतने ही ज्यादा जोर से ईर्ष्यालु होते चले जाएँगे और दुःख होता चला जाएगा। ऐसा एक-एक व्यक्ति भीतरी विरोध में फँसा हुआ है। इस विरोध के प्रति सजग हो जाना ही साधना की शुरूआत है कि इस विरोध के प्रति कि मैं जो चाह रहा हूँ, मैं जो कर रहा हूँ वह सही है। मैं चाह तो रहा हूँ कि मकान के ऊपर चढ़ जाऊँ लेकिन उतर रहा हूँ नीचे की तरफ, वह तो मैं उल्टा काम कर रहा हूँ। तो ईर्ष्या मुझे नीचे की तरफ ले जा रही है। ईर्ष्या

मुझे दुःख दे रही है। मगर मुझे सुखी होना है तो ईर्ष्या से मुझे मुक्त हो जाना चाहिए ताकि मुझे कोई भी दुःख न दे सके, बड़ा मकान भी न दे सके, आनन्दित आदमी भी न दे सके, कार भी न दे सके, स्त्री भी न दे सके, कोई भी चीज दुःख न दे सके क्योंकि मेरे पास वह जो तरकीब थी दुःख पैदा करने की, वह बिदा हो गई। अब मैं ईर्ष्यालु नहीं हूँ। और जब मैं ईर्ष्यालु नहीं हूँ तो मुझे हर चीज सुख दे सकती है क्योंकि अब तो दुःख का कोई कारण नहीं रहा। वह व्यवस्था टूट गई, वह यंत्र ही टूट गया जो दुःख पैदा कर देता था।

जीवन के विरोध के प्रति जाग जाना कि हम जो चाहते हैं, उससे उल्टा कर रहे हैं, साधना की शुरूआत है। और जब हमें दिखाई पड़ जाय तो हम उल्टा न कर सकेंगे। हम कैसे उल्टा करेंगे? उदाहरण के लिए एक आदमी सोना चाहता है। नींद उसे आती नहीं। वह नींद लाने की तरकीबें करता है। पैर धोता है, आँख धोता है, पानी पीता है, राम-नाम जपता है, माला फेरता है, करवट बदलता है, टहलता है, भेड़-बकरियाँ गिनता है, हजार तरकीबें करता है कि किसी तरह उसे नींद आ जाए। लेकिन उसे पता नहीं कि जितनी तरकीबें वह कर रहा है, वह नींद न आने देने की हैं। क्योंकि कोई भी प्रयास ही वह नींद को तोड़ने वाला है। वह कुछ भी न करे तो शायद नींद आ जाए। उसने कुछ भी किया तो फिर नींद नहीं आ सकती क्योंकि करना नींद के बिल्कुल उल्टा है। नींद आती है न करने से। इसलिए एक बार एक आदमी की नींद गड़बड़ हो गई फिर वह बुरे चक्कर में पड़ गया क्योंकि अब वह नींद लाने का उपाय करेगा। उपाय नींद को तोड़ेंगे। जितनी नींद टूटेगी उतने ज्यादा उपाय करेगा; जितने ज्यादा उपाय करेगा उतनी ज्यादा नींद टूटेगी। और वह एक चक्कर में पड़ जाएगा जिसके बाहर निकलना मुश्किल है। उसका यह विरोध दिखाई पड़ जाएगा किसी दिन कि प्रयास से नींद नहीं आ सकती है। नींद तो तब आती है जब कोई कुछ नहीं करता। चाहे वह मंत्र पढ़े, चाहे माला फेरे, चाहे कुछ भी करे। करना मात्र नींद का उल्टा है। लेकिन हम पूरी जिन्दगी में विरोधाभास में जीते हैं। जैसे ही कोई इस बोध को उपलब्ध हो जाता है और अपने भीतर विरोध देखने लगता है, वैसे ही क्रान्ति शुरू हो जाती है क्योंकि विरोध दिख जाए तो फिर उसमें जीना मुश्किल है। फिर आप जी नहीं सकते। यह कैसे सम्भव है कि एक आदमी को जाना छत पर है और वह नीचे उतर आए और उसे दिख जाए कि उतर रहा हूं नीचे की ओर, जाना है ऊपर तो क्या वह फिर नीचे उतर सकता है? बात खत्म हो गई। ऊपर जाएगा ही वह। और

जब विरोध मिटता है तो योग पैदा होता है जीवन में। हम जो करना चाहते हैं, वही करते हैं; जो होना चाहते हैं, वही होते हैं। तब एक सरलता, सहजता आ जाती है क्योंकि विरोध गए, चिन्ता गई। अपने ही भीतर खण्ड-खण्ड उल्टे-उल्टे जा रहे थे, वे बिदा हो गए।

हमारी हालत ऐसी है जैसे कि किसी ने बैलगाड़ी में दोनों ओरबैल जोड़ दिए हों और दोनों ओर से बैलगाड़ी चलने की कोशिश कर रही है। अब इसमें सिर्फ अस्थि-पंजर बैलगाड़ी को खींचे चले जा रहे हैं। बैलगाड़ी कहीं जाती नहीं। कभी एक तरफ के बैल मजबूत हो जाते हैं तो दस कदम अपनी ओर खींच लेते हैं। जब तक वे दस कदम खींचते हैं तब तक थक जाते है। फिर उल्टी ओर के बैल मजबूत हो जाते हैं तो दस कदम दूसरी ओर खींच लेते हैं और ऐसा चल रहा है। एक चौराहे पर बैलगाड़ी है। दोनों तरफ बैल जुते हैं। यहीं-वहीं होती रहती है। करीब-करीब हम उसी जगह मरते हैं, जहाँ हम पैदा होते हैं। कोई फर्क नहीं पड़ता, क्योंकि हमें विरोध ही दिखाई नहीं पड़ता कि चार बैल पास हैं तो एक ही तरफ जोत दें, दो तरफ क्यों जोते हुए हैं। विरोध दिख जाए तो एक नया जीवन शुरू हो जाता है जिसे हम पहचानते भी नहीं, जानते भी नहीं। तब आदमी वही करता है जो उसे करना चाहिए। वह उसी तरफ जाता है जहाँ जाना है। तब स्वभावतः शान्ति आ जाती है क्योंकि अशांति का कोई कारण नहीं रह जाता।

प्रश्न। आसक्ति अथवा राग जैसा कर्मबन्ध का कारण है वैसे द्वेष और घृणा भी। महावीर ने संसार, शरीर—इन सबके प्रति घृणा का भाव पैदा करके संसारत्याग का क्यों उपदेश दिया ?

उत्तर : राग, द्वेष—ये दोनों एक ही तरह के उपद्रव के कारण हैं। राग, द्वेष ऐसे ही हैं जैसे एक आदमी सीधा खड़ा हो और एक आदमी शीर्षासन करता हुआ खड़ा हो। इन दोनों में कोई फर्क नहीं है। एक सिर नीचा करके खड़ा है, एक सिर ऊँचा करके खड़ा है। राग का ही उल्टा जो है, वह द्वेष है। राग शीर्षासन करता हुआ द्वेष है। दोनों फाँसते हैं। दोनों बांध लेते हैं क्योंकि जिससे हम राग करते हैं, उससे भी हम बँध जाते हैं। जिससे हम द्वेष करते हैं, उससे भी हम बँध जाते हैं। मित्र भी बाँधता है, शत्रु भी बांधता है। हम शत्रु को भी भूल नहीं पाते, मित्र को भी भूल नहीं पाते। वे दोनों हमें बाँध लेते हैं। अगर हमारा एक मित्र मरता है तो भी हममें एक कमी हो जाती है। अगर हमारा एक शत्रु मरता है तो भी हममें एक कमी हो जाती है। और कई बार

तो ऐसा होता है कि शत्रु के मरने से आपका बल ही खो जाए क्योंकि बल उसके विरोध में बनकर आता था। दोनों बाँधते हैं, दोनों जिन्दगी को भरते हैं। और ऐसा भी नहीं है कि शत्रु ही दुःख देते हैं। मित्र भी दुःख देते हैं। फर्क थोड़ा-सा पड़ जाता है। मित्र भी दुःख देते हैं, शत्रु भी सुख देते हैं। ढंग अलग-अलग हैं लेकिन बाँधते दोनों हैं। और जिसे बंधन ही दुःख हो गया, वह न मित्र बनाता है, न शत्रु बनाता है वह न राग बाँधता है, न द्वेष बाँधता है। वह न किसी के पक्ष में होता है, न किसी के विपक्ष में होता है। वह प्रत्येक चीज के प्रति एक साक्षी का भाव लेता है। अपनी ही जिन्दगी को दूर खड़ा होकर देखने लगता है। खुद द्रष्टा हो जाता है और राग द्वेष के बाहर हो जाता है। जब तक कोई द्रष्टा नहीं तब तक वह राग-द्वेष के बाहर नहीं होता। कर्त्ता कभी राग-द्वेष के बाहर नहीं होता। क्योंकि करेगा कुछ तो मित्र बनेंगे, शत्रु बनेंगे। किसी को बचाना होगा, किसी को मिटाना होगा। कर्त्ता हमेशा राग-द्वेष से घिरा है, अकर्ता साक्षी है।

यह पूछा जा सकता है कि महावीर ऐसा तो कहते हैं कि राग-द्वेष बाँध लेते हैं लेकिन शरीर और संसार के प्रति वह घृणा सिखाते हैं, शरीर असार है, संसार असार है, ऐसा सिखाते हैं। तो फिर यह द्वेष शुरू हो गया शरीर और संसार के प्रति। महावीर संसार के या शरीर के प्रति द्वेष नहीं सिखाते हैं। लेकिन जिन्होंने महावीर को नहीं समझा है, वे जरूर ऐसा ही सिखा रहे हैं। शरीर को ऐसा प्रेम करने वाला आदमी मुश्किल से पैदा हुआ होगा। न वह संसार के प्रति द्वेष सिखाते हैं न राग सिखाते हैं क्योंकि वह तो कहते ही यह हैं कि द्वेष बाँध लेता है, प्रेम बाँध लेता है। अगर हम राग से भरे हैं तो हम राग से ऊब जाते हैं। अगर हम द्वेष से भरे हैं तो हम द्वेष से ऊब जाते हैं। हर चीज ऊबा देती है। जब राग ऊब जाता है तो घड़ी का पेंडुलम दूसरी ओर शुरू हो जाता है। वह द्वेष की ओर चलना शुरू हो जाता है। जिस चीज से हम ऊब जाते है उससे हम द्वेष करने लगते हैं। राग खत्म हो जाता है। फिर उससे आप मुक्त होना चाहते हैं। कल तक उसको आप पकड़ना चाहते थे। आज आप हटाना चाहते हैं। लेकिन कल तक जब आपने उसको पकड़ा था तो पकड़ने का अभ्यास हो गया। अब ऊब गए पकड़ने से तो अब हटना चाहते हैं। अभ्यास बाधा डाल रहा है। पकड़ने की आदत बन गई है। अब भागना चाहते हैं। द्वन्द्व खड़ा हो गया है।

महावीर द्वेष नहीं सिखाते किसी के प्रति, न संसार के प्रति। क्योंकि महावीर द्वेष सिखा ही नहीं सकते। महावीर सिखाते हैं कि अपने द्वेष, अपने राग, अपनी घृणा, अपने प्रेम—इन सबके प्रति जाग जाओ। इन सबको जाग कर देख लो। जिस दिन पूरी तरह तुम देख लोगे उस दिन तुम पाओगे कि राग-विराग, मित्रता-शत्रुता एक ही चीज के दो छोर हैं। तब तुम समझ जाओगे कि जैसे एक सिक्का हो किसी के पास रुपये का और वह चाहता हो कि एक पहलू बचा ले और दूसरे को फेंक दे तो वह पागल है क्योंकि वह दोनों पहलू एक ही सिक्के के हैं। या तो वह दोनों फेंक सकता है, या दोनों बच जाएँगे। हाँ फर्क हो सकता है कि कौन-सा पहलू आप ऊपर रखें। यह हो सकता है कि सिक्के का सिर वाला पहलू आप ऊपर रखें या पीठ वाला ऊपर रखें। सिर वाला ऊपर रखेंगे तो पीठ वाला नीचे रहेगा। तो जो आदमी प्रेम करता है उसके ठीक नीचे ही घृणा छिपी बैठी रहती है, मौके की तलाश में कि कब सिक्का पलटे। जब इससे ऊब जाते हैं तो आप सिक्के पलट लेते हैं, पीछे की ओर देखने लगते हैं। इसलिए मित्र के शत्रु हो जाने में देर नहीं लगती। असल में बात यह है कि अगर कोई मित्र न हो तो उसको शत्रु बनाना ही मुश्किल है। पहले उसका मित्र होना जरूरी है, तभी वह शत्रु बनाया जा सकता है। शत्रु के भी मित्र बनने में कोई कठिनाई नहीं है। ये दोनों बातें घट सकती हैं क्योंकि एक ही चीज के दो पहलू हैं।

राग है किसी को, वह विराग बन जाता है और जिस चीज से विराग है, अगर आप विराग ही करते चले जाएँ तो आप पाएँगे कि विराग शिथिल होने लगा और राग पकड़ने लगा। असल में जैसे घड़ी का पेंडुलम बाईं ओर गया तो जब वह बाईं ओर जा रहा है तब आपको ख्याल भी नहीं है कि वह दाईं ओर जाने की शक्ति अर्जित कर रहा है। और जब वह दाईं ओर गया तो आँख देख रही है कि दाईं ओर गया। लेकिन जो गहरे में देख रहे हैं, वे कह रहे हैं कि वह बाईं ओर जाने की तैयारी कर रहा है और वह फिर बाईं ओर जाएगा। ऐसे चित्त द्वन्द्व के बीच घड़ी के पेंडुलम की तरह घूमता रहता है। जिससे हम प्रेम करने जाते हैं, हमें ख्याल नहीं कि उससे हम घृणा करने की शक्ति अर्जित कर रहे हैं। इसलिए प्रेमी जल्दी घृणा करने वाले बन जाते हैं। कल तक जो प्रेयसी थी, परसों वही भारी पड़ जायेगी। कल तक हम कहते थे कि वह अगर न मिले तो जीवन व्यर्थ हो जाएगा, आत्महत्या कर लेंगे। कल तक जिसके न मिलने से आत्महत्या कर रहे थे हो सकता है कि कल उसके मिलने से ही आत्म-हत्या करनी पड़े।

मैंने सुना है कि एक मनोवैज्ञानिक एक पागलखाने में पागल देखने गया। डाक्टर एक कटघरे में एक आदमी दिखलाता है जो बिल्कुल पागल है। मनोवैज्ञानिक पूछता है 'इसको क्या हो गया है।' तो डाक्टर रजिस्टर में उसकी केस हिस्ट्री निकालता है और कहता है कि यह आदमी एक लड़की को प्रेम करता था। वह लड़की इसको नहीं मिली इसलिए पागल हो गया। दूसरी कोठरी में एक दूसरा आदमी बन्द है। मनोवैज्ञानिक पूछता है : 'इसको क्या हो गया है।' वह डाक्टर केस हिस्ट्री उलटकर देखता है। वह कहता है इसको वह लड़की मिल गई जो इसको नहीं मिलनी चाहिए थी। तो एक न मिलने से पागल हो गया है, एक मिलने से पागल हो गया है। महावीर यह नहीं सिखा सकते। वे बाएँ जाना नहीं सिखा सकते क्योंकि वे जानते हैं कि जो बाएँ जाएगा, उसे दाएँ जाना पड़ेगा। वह दाएँ जाना नहीं सिखा सकते क्योंकि वह जानते हैं कि जो दाएँ जाएगा उसे बाएँ जाना पड़ेगा। एक ही बात सिखा सकते हैं कि न तुम दाएँ जाओ, न तुम बाएँ जाओ, तुम ठहर जाओ, बीच में खड़े हो जाओ। न द्वेष रहे न घृणा, न राग न विराग।

तो महावीर विरागी नहीं हैं और जो विरागी उनके पीछे पड़े हुए हैं, वह बिल्कुल गलती में पड़े हुए हैं। महावीर को कुछ लेना-देना नहीं है उन विरागियों से। क्योंकि विरागी हुए कि उन्होंने राग अर्जित करना शुरू कर दिया। महावीर कहते हैं, खड़े हो जाओ, ठहर जाओ। प्रेम, द्वेष दोनों को देख लो, जाओ कहीं मत, दोनों को पहचान लो, फिर तुम कहीं नहीं जाओगे, फिर तुम अपने में आ जाओगे। तीन दिशाएँ हैं। एक प्रेम की ओर ले जाती है, एक घृणा की ओर। ये सारे द्वन्द्व हैं और जो द्वन्द्वों से बच जाता है वह त्रिकोण के तीसरे बिन्दु पर आ जाता है जहाँ जाना नहीं है, आना नहीं है, सिर्फ ठहर जाना है। वहाँ प्रज्ञा स्थिर हो जाती है। वहाँ ठहर कर हम देख पाते हैं। या जो देखने लगता है, वह ठहर जाता है क्योंकि देखने के लिए ठहरना अनिवार्य तत्त्व है। अगर राग और द्वेष को देखना है तो जाओ मत किसी की ओर। ठहर कर देख लो कि राग क्या है। द्वेष क्या है, क्रोध क्या है।

प्रश्न : यह केवल ध्यान की भूमिका है क्या ?

उत्तर : हाँ, यह केवल ध्यान की भूमिका है। जैसे ही कोई स्वयं में खड़ा हो जाता है, वह उस द्वार पर पहुँच जाता है जहाँ से ज्ञान की शुरूआत है। लेकिन स्वयं में खड़ा होना पहला बिन्दु है। फिर वहीं से यात्रा भीतर की ओर

हो सकती है। हम या तो राग में होते हैं, या द्वेष में होते हैं, स्वयं के बाहर होते हैं। राग द्वेष में होने का अर्थ है स्वयं के बाहर होना, कहीं और होना। मित्र पर हों, चाहें शत्रु पर हों। लेकिन हमारी चेतना, कहीं और होगी—राग में भी, द्वेष में भी। जो आदमी धन इकट्ठा करने में पागल है उसका ध्यान भी धन पर होगा, जो आदमी धन त्याग करने पर पागल है उसका ध्यान भी धन पर होगा। धन पर ही दृष्टि-बिन्दु होगी उन दोनों की। और सब द्वन्द्वों से जिसकी दृष्टि लौट आती है, अपने पर खड़ी हो जाती है वह चुपचाप देखने लगता है कि यह रहा त्याग, यह रहा क्रोध। न मैं भोग करता हूँ, न मैं त्याग करता हूँ। मैं खड़े होकर देखता हूँ। ऐसी स्थिति में स्वयं का द्वार खुल जाता है जहां से ज्ञान की परम भूमिका में जाया जा सके।

प्रश्न : निगोद का क्या अर्थ है ?

उत्तर : निगोद की धारणा महावीर की अपनी है, बड़ी मौलिक, बहुत जटिल। निगोद का अर्थ है : संसार है, मोक्ष है। दो शब्द हमारी समझ में हैं। मोक्ष का मतलब है वे आत्माएँ जो सब बंधनों के पार चली जाएँ। संसार का अर्थ है वे आत्माएँ जो अभी बंधनों में हैं, पार जा सकती हैं। निगोद का अर्थ है वे आत्माएँ जो बंधन में प्रसुप्त हैं। निगोद प्रथम है, मोक्ष अन्त में है, संसार मध्य में है। निगोद से आत्मा उठती है, संसार में आती है, संसार से उठती है मोक्ष में जाती है। मोक्ष है मुक्ति; निगोद है पूर्ण अमुक्ति जहाँ बिल्कुल अंधकार है, जहाँ गहरी निद्रा है यानी जहाँ इसका भी होश नहीं है कि बंधन है, जहाँ यह भी पता नहीं कि हाथ में जंजीरें हैं, जो मूर्छित आत्माओं का लोक है, जहाँ से धीरे-धीरे आत्माएँ उठती हैं, इस मध्यम लोक में आती हैं, जहाँ, अर्द्ध मूर्छा, अर्द्ध अमूर्छा चलती है, कभी चित्त जागता है, कभी सो जाता है, कभी हम जगे लगते हैं, कभी सोए, कभी होश आती है, कभी बेहोशी, कभी विवेक-पूर्ण होते हैं, कभी अविवेकपूर्ण, जहाँ निद्रा और जागृति के बीच हम डोलते रहते हैं। जैसे रात निद्रा है, दिन जागरण है और दोनों के बीच में एक स्वप्न की अवस्था है, जहाँ न तो हम पूरी तरह सोए होते हैं, न पूरी तरह जागे होते हैं। स्वप्न का मतलब है, आधा जागना, आधा सोना। इतने जागे भी होते हैं कि सुबह याद रह जाती है कि सपना देखा। इतने सोए भी होते हैं कि पता भी नहीं चलता कि सपना चल रहा है। लगता है कि सब चल रहा है। संसार है स्वप्न, निगोद है निद्रा, मोक्ष है जागृति। ये तीन अवस्थाएँ हैं।

अब सवाल यह उठा कि सारी आत्माएँ कहाँ से आती हैं। महावीर नहीं मानते कि इनका सृजन होता है। आत्माएँ सदा से हैं। प्रश्न उठता है कि वे आती कहाँ से हैं। महावीर कहते हैं कि अमूर्छित का एक लोक है, जहाँ अमूर्छित अनन्त असंख्य आत्माएँ हैं। ध्यान में रहे कि इस जगत् में ऐसा कुछ भी नहीं है जो अनन्त न हो। यह भी समझ लेना जरूरी है कि इसमें अनन्त (इनफाइनेट) होना अनिवार्य है। कोई भी चीज संख्या में हो ही नहीं सकती। क्योंकि संख्या में अगर चीजें हों तो फिर जगत् असीम नहीं हो सकेगा, और जगत् सीमित नहीं है। **निगोद का अर्थ है अनन्त आत्माएँ जहाँ प्रसुप्त हैं अनन्त काल से।** आत्माएँ एक-एक उठती हैं। उठने वाली आत्माओं की संख्या है। संसार उससे बनता है, फिर संसार से आत्माएँ मुक्त होती, चली जाती हैं, दूसरे लोक में, जहाँ वह परम चैतन्य को उपलब्ध हो जाती हैं। प्रश्न यह है कि क्या कभी ऐसा होगा कि सब आत्माएँ मुक्त हो जाएँ। ऐसा कभी नहीं होगा क्योंकि आत्माएँ अनन्त हैं।

'अनन्त' शब्द हमारे ख्याल में नहीं आता। क्योंकि हमारा मस्तिष्क अनन्त की धारणा को नहीं पकड़ पाता। हम बड़ी से बड़ी संख्या सोच सकते हैं लेकिन अनन्त नहीं। क्योंकि अनन्त का मतलब है जहाँ संख्या होती ही नहीं। लेकिन असंख्य का मतलब अनन्त नहीं होता। असंख्य का मतलब होता है जिसकी संख्या गिनी न जा सके; संख्या हम गिनें तो थक जाएँ। जैसे कि कोई आपसे पूछे कि आपकी खोपड़ी पर कितने बाल हैं तो आप कहें असंख्य यानी कोई गिनती नहीं। लेकिन तथ्य ऐसा नहीं है। बालों को गिनती है। गिनना कठिन हो सकता है थोड़ा बहुत लेकिन गिना जा सकता है। अनन्त का मतलब है कि जहाँ संख्या अर्थहीन है। जहाँ हम कितना ही गिनें तो भी गिनने को शेष रह जाएगा। जहाँ शेष रहना अनिवार्य है। जहाँ कभी कोई चीज अशेष होती ही नहीं।

तो निगोद है मूर्छित आत्माओं का लोक। संसार है अर्द्ध मूर्छित आत्माओं का लोक। मोक्ष है परम अमूर्छित आत्माओं का लोक। मोक्ष है पूर्ण जागृत आत्माओं का लोक। पर हमारा मन चूंकि संख्याओं में ही सोचता है इसलिए सवाल निरन्तर उठता है कि कितनी अमूर्छित आत्माएँ हैं? कितनी मुक्त हो गई हैं? इसका भी कोई सवाल नहीं है क्योंकि अनन्त काल से आत्माएँ मुक्त हो रही हैं, अनन्त आत्माएँ मुक्त हो गई हैं।

अनन्त के साथ एक मजा है कि उसमें से कितना ही निकालो, पीछे उतना ही शेष रहता है जितना था। इसको थोड़ा समझ लेना जरूरी है। क्योंकि वह जो हमारा आम गणित है वह कहता है कि इस कमरे में कितने ही लोग हों लेकिन अगर दो आदमी बाहर निकल गए तो फिर पीछे उतने तो नहीं रहे जितने थे। हमारा गणित कहता है कि ऐसा कैसे हो सकता है कि पीछे उतने ही रह जाएँ जितने थे क्योंकि दो निकल गए। और अगर हम यह मान लें कि दो के निकलने से पीछे कुछ कम हो गए तो फिर संख्या हो सकती है क्योंकि कम होते चले जाएँगे। एक वक्त आएगा, शून्य भी हो सकता है।

यह गणित की बड़ी पहेलियों में से एक है कि अनन्त में से हम कुछ भी निकालें, अनन्त ही शेष रहता है। इसलिए निगोद उतने का ही उतना है जितना था; उतना ही रहेगा जितना था, और उतना ही सदा है, उतना ही सदा रहेगा। मुक्त आत्माएँ रोज होती चली जाएँगी, मोक्ष में कोई भीड़ नहीं बढ़ जाएगी। इसमें भीड़ बढ़ने का कोई सवाल नहीं है। लेकिन हमारा जो गणित है संख्या का उसे समझना बड़ा मुश्किल होता है। उदाहरण के लिए, हम एक सीधी रेखा खींचते हैं जमीन पर। दो बिन्दुओं के बीच निकटतम जो दूरी है, वह सीधी रेखा बन जाती है। लेकिन जो नयी ज्योमेट्री इसके खिलाफ में विकसित हुई है, कहती है कि सीधी रेखा होती ही नहीं क्योंकि जमीन गोल है। इसलिए कितनी ही सीधी रेखा खींचो, अगर तुम उसको दोनों तरफ बढ़ाते चले जाओ, तो अन्त में वह वृत्त बन जाएगी। इसलिए सब सीधी रेखाएँ किसी बड़े वृत्त के खंड हैं। और वृत्त के खंड कभी सीधी रेखाएँ नहीं हो सकते। इसका मतलब हुआ कि सीधी रेखा होती ही नहीं। वह हमको सीधी लगती है। अगर हम उसे फैलाते चले जाएँ तो अन्ततः वह एक बड़ा सर्किल बन जाएगी। और जब वह बड़ा सर्किल बन सकती है तो वह बड़े सर्किल का हिस्सा है। और सर्किल का हिस्सा, सीधा नहीं हो सकता। इसलिए कोई रेखा जगत् में सीधी नहीं है। यह हमारे ख्याल में आना मुश्किल है कि कोई भी रेखा जगत् में सीधी खींची ही नहीं जा सकती। क्योंकि जितना ही तुम खींचते चले जाओगे, अन्त में वह मिल ही जाएगी। इसलिए कोई सीधी रेखा नहीं है, सब वृत्त हैं। सब वृत्त खंड है। साधारण गणित कहता है कि बिन्दु वह है जिसमें लम्बाई चौड़ाई नहीं है मगर ज्योमेट्री कहती है कि जिसमें लम्बाई-चौड़ाई न हो वह तो हो ही नहीं सकता, इसलिए कोई बिन्दु नहीं है। सब रेखाओं के खंड हैं—छोटे खंड। रेखा है बड़े वृत्त का खंड, और बिन्दु है रेखा का खंड। सब बिन्दुओं में लम्बाई-

चौड़ाई है। लेकिन यह बात जब तक मानी जाती रही तब तक बिल्कुल ठीक लगती थी। अब एकदम गड़बड़ हो गई।

जैसी कि हमारी संख्या की, गणित की व्यवस्था है। हम सब मानते हैं कि एक से नौ तक संख्या होती है। कोई कभी नहीं पूछता कि इससे ज्यादा क्यों नहीं होती, इससे कम में क्यों नहीं होती। यह एक परम्परा है। किसी पहले आदमी को फतूर सवार हो गया। उसने नौ का हिसाब बना डाला। वह चल पड़ा। और चूँकि गणित एक जगह पैदा हुआ फिर सारी दुनिया में फैल गया इसलिए कभी किसी ने नहीं सोचा। लेकिन पीछे कई लोग पैदा हुए जिन्होंने कुछ बदला जैसे लीबनिस हुआ। लीबनिस ने तीन अंकों से काम चलाया। उसने कहा कि तीन से ज्यादा की जरूरत नहीं—एक, दो, तीन। फिर तीन के बाद आता है—१०-११-१२-१३, फिर बीस आ जाता है। बाकी सब विदा कर दिये उसने। सब गणित हल कर ली उतने में ही। आइंस्टीन ने कहा कि तीन की भी क्या जरूरत है। दो से ही काम चल जाता है। १-२-१०-११-१२, २०, २१, २२ ऐसे चलता-चला जाता है। अगर हम पुराना गणित मानते हैं तो एक, दो, तीन, चार, पाँच होते हैं। अगर आइंस्टीन का गणित मान लेते हैं, १,२,१०,११,१२ इस तरह का तो ये पाँच हैं ही नहीं। यह पाँच सिर्फ हमारा गणित का हिसाब है। गणित का हिसाब बदल दें तो ये सब बदल जाएँगे।

तो हमारा संख्या का हिसाब है जगत् में और हम सब चीजों को संख्या से तोलते हैं, जबकि सच्चाई यह है कि संख्या बिल्कुल ही झूठी बात है, आदमी की ईजाद है। क्योंकि यहाँ कोई भी ऐसी चीज नहीं जिसकी संख्या हो। प्रत्येक चीज असंख्य है। और अगर असंख्य का हम ख्याल करें तो गणित बेकार हो जाता है। फिर गणित का कोई मतलब ही नहीं रह जाता। जब असंख्य है, गिना ही नहीं जा सकता, गिनने योग्य ही नहीं है और कितना ही निकाल लो बाहर, उतरना ही फिर पीछे रह जाता है तो जोड़ का क्या मतलब, घटाने का क्या मतलब ? भाग का क्या मतलब ? गुणा का क्या मतलब ? अगर हम जगत् की पूरी व्यवस्था को ख्याल में लाएँ तो गणित एकदम गिर जाता है, क्योंकि गणित बना है काम चलाऊ हिसाब से कि हम उसमें गिनती करके काम चला लें। और उसी काम चलाऊ गणित से अगर हम जगत् के सत्य को जानने जाएँ तो हम मुश्किल में पड़ जाते हैं। तो महावीर की बात एकदम गणित से उल्टी है और जो भी सत्य के खोजी हैं उनकी बातें निरन्तर गणित से उल्टी है। इसलिए उपनिषद् कहते हैं कि वह पूर्ण ऐसा है कि उससे अगर तुम पूर्ण को भी

बाहर निकाल लो तो भी पूर्ण ही शेष रह जाता है। उससे जरा भी कमी नहीं पड़ती। मगर हमारे दिमाग में मुश्किल हो जाती है कि हम जब भी कुछ निकालते हैं तो पीछे कमी पड़ जाती है। क्योंकि हमने सीमित से ही कुछ निकाला है सदा। अगर हमने असीमित में से कुछ निकाला होता तो हमें पता चलता। असीमित का हमको कोई अनुभव नहीं है।

इसलिए निगोद अनन्त है। उसमें कमी कभी नहीं पड़ती, मोक्ष अनन्त है, वहाँ कभी भीड़ नहीं होती। दोनों के बीच का संसार एक अपना अनन्त है क्योंकि दो अनन्तों को जोड़ने वाली चीज अनन्त हो सकती है। वह भी संख्या में नहीं हो सकती क्योंकि दो अनन्तों का जो सेतु बनता है, वह कैसे सीमित हो सकता है। अनन्तों को अनन्त ही जोड़ सकता है। उस तल पर जाकर गिनती का कोई मतलब नहीं है। मोक्ष की धारणा बहुत लोगों को है। काल में निगोद की धारणा महावीर की अपनी है और मैं मानता हूँ कि बिना निगोद की धारणा के मोक्ष की धारणा बेमानी है क्योंकि वहाँ आत्माएँ चलती चली जाएँगी। आएँगी कहाँ से ?

प्रश्न : निगोद से आत्मा मोक्ष तक नहीं पहुँच सकती क्या ?

उत्तर : नहीं, मूर्छित आत्मा मोक्ष तक कैसे पहुँच सकती है ? उसे अमूर्छा के रास्तों से गुजरना पड़ेगा। आप जब निद्रा से जगते हैं तो एकदम नहीं जग जाते। बीच में तन्द्रा का एक काल है, जिससे आप गुजरते हैं। जैसे सुबह आप उठ गए हैं। आपको लगता है कि उठ गए लेकिन फिर करवट बदल कर आँखें बंद कर ली हैं। फिर घड़ी की आवाज सुनाई पड़ी है। फिर किसी ने कहा उठिए, तो आप फिर उठ गए हैं। फिर आँख खोली है, फिर करवट बदलकर सो गए हैं। सोने और जागने के बीच में, चाहे कितना ही छोटा हो, तन्द्रा का एक काल है जब न तो आप ठीक जाग गए होते हैं, न ठीक सोए हुए होते हैं। सोने की तरफ भी झुकाव होता है, जागने की तरफ भी मन होता है। इन दोनों के बीच एक तनाव होता है।

निगोद से सीधा कोई मोक्ष में नहीं जा सकता। संसार से गुजरना ही पड़ेगा। कितनी देर गुजरना है, यह दूसरी बात है। कोई पन्द्रह बीस मिनट बिस्तर पर करवट बदल कर उठता है, कोई पाँच मिनट, कोई एक मिनट, कोई एक सैकेंड और जो बिल्कुल छलांग लगा कर उठ आता है वह भी सिर्फ हमको दिखाई पड़ता है। बिल्कुल, काल का कोई सूक्ष्म अंश उसको भी बिस्तर पर

गुजारना पड़ता है जागने के बाद। संसार छोटा बड़ा हो सकता है। जीवन में कोई मुक्त हो सकता है। लेकिन संसार से गुजरना ही पड़ेगा। वह अनिवार्य मार्ग है, जहाँ से मोक्ष का द्वार है।

प्रश्न : जैसे समुद्र है। समुद्र से बादल उठते हैं, उसका पानी बरसता है, बर्फ बनती है, लेकिन फिर वह समुद्र में चली जाती है तो एक चक्कर है। इस तरह मुक्त आत्मा निगोद में किसी तरीके से जाती रहती होगी। ऐसा भी हो सकता है?

उत्तर : नहीं, ऐसा चक्र नहीं है क्योंकि पानी, भाप, समुद्र, तीन चीजें नहीं हैं। यह एक ही चीज का यांत्रिक चक्र है। पानी के बीच से कोई बूँद मुक्त होकर पानी के बाहर नहीं हो पाती। चक्र घूमता रहता है जहाँ तक मोक्ष का सम्बन्ध है, वहाँ से लौटना मुश्किल है। क्योंकि यांत्रिकता छूट जाए, चित्त पूर्ण चेतन हो जाए, तो ही मोक्ष को जा सकता है। पूर्ण चेतना से लौटना असम्भव है। हाँ संसार में कोई चक्कर लगा सकता है। एक मनुष्य, हजार बार मनुष्य हो कर चक्कर लगा सकता है। वही-वही चक्कर लगा सकता है क्योंकि सोया हुआ है। अगर जग जाय तो चक्कर लगाना बन्द कर दे, बाहर हो जाए चक्कर के। चूँकि मोक्ष समस्त चक्कर के बाहर हो जाने का नाम है, इसलिए वापस चक्कर नहीं लगाया जा सकता।

पानी की बूंद मूर्छित है, उसमें जो आत्माएँ हैं, वे निगोद में ही है। पदार्थ का जगत् निगोद में ही है। वहीं तो पूरा चक्कर है। हम कह सकते हैं कि पानी गरम करेंगे तो भाप बनेगा। ऐसा पानी कभी नहीं देखा गया जो इन्कार कर दे कि मैं भाप नहीं बनता हूँ उसके पास कोई चेतना नहीं है। हम पूर्वसूचित कर सकते हैं पानी के बाबत। लेकिन आदमी के बाबत पूर्वसूचित करना मुश्किल है। ऐसा जरूरी नहीं कि प्रेम करेंगे तो वह प्रेम करेगा ही। बिल्कुल जरूरी नहीं, साधारणतः जरूरी है। लेकिन एकदम जरूरी नहीं है। और इसलिए आदमी प्रिडिक्शन के थोड़ा बाहर है क्योंकि उसमें चेतना है। उसका पक्का नहीं बताया जा सकता कि वह क्या करेगा? पदार्थ के बाबत पक्का बताया जा सकता है। इसलिए पदार्थ का विज्ञान बन गया है। और आदमी का विज्ञान अभी तक नहीं बन पा रहा है। न बनने का कारण यह है कि पदार्थ की सारी व्यवस्था यांत्रिक है, नियम पक्का है। इतने पर गर्म करो पानी भाप बन जाएगा, इतने पर ठंडा करो बर्फ बन जाएगा। इसमें कोई संदेह ही नहीं है—चाहे तिब्बत में करो,

चाहे चीन में करो, चाहे ईरान में करो, कहीं भी करो। वह भाप बनेगा उतने पर, उतने पर ही बर्फ बनेगा। वह नियम पक्का है क्योंकि यांत्रिक है पूरा। लेकिन जैसे-जैसे हम ऊपर आते हैं यांत्रिकता टूटती चली जाती है। आदमी में आकर भी यांत्रिकता बहुत शिथिल हो जाती है। आदमी के बाबत पक्का नहीं कहा जा सकता कि वह क्या करेगा? आप ऐसा करोगे तो वह क्या करेगा? बिल्कुल ही प्रिडिक्शन के बाहर काम करने वाला आदमी मिल सकता है। तरह-तरह के लोग हैं, और उनको तरह-तरह की चेतना है। लेकिन मोक्ष में तो प्रिडिक्शन बिल्कुल ही नहीं हो सकती। क्योंकि वहाँ तो जितना पूर्ण मुक्त है, पूर्ण जागरण है, उसकी बाबत तुम कुछ भी नहीं कह सकते। क्योंकि वहाँ कोई नियम का यंत्रवत् व्यवहार नहीं है। मनुष्य में इसलिए तकलीफ होती है क्योंकि मनुष्य का विज्ञान नहीं बन सका पूरी तरह। मनुष्य का पूर्ण विज्ञान बनाना मुश्किल भी है। किसी को हम गाली देंगे तो साधारणतः वह क्रोध करेगा लेकिन कोई महावीर मिल सकता है जिसे आप गाली दें तो वह चुपचाप खड़ा रहे और क्रोध न करे।

आदमी जितना चेतन हो जाएगा उतना ही उसकी बाबत कुछ नहीं कहा जा सकता कि गणित के हिसाब से ऐसा होगा। यह प्रकृति चक्र है बिल्कुल। वर्षा आती है, सर्दी आती है, गर्मी आती है, चक्र घूम रहा है। नदियाँ हैं, पानी है, पर्वत हैं। बादल बने हैं, लौट रहे हैं, चक्कर चल रहा है। जितने नीचे उतरेंगे, चक्कर उतना सुनिश्चित है। जितना ऊपर उठेंगे, चक्कर उतना शिथिल है। जितना ऊपर उठते चले जाएँगे, चक्कर उतना शिथिल होता चला जाएगा। पूर्ण उठ जाने पर चक्कर नहीं है, सिर्फ आप रह जाते हैं, कोई दबाव नहीं है, कोई दमन नहीं है, कोई जबरदस्ती नहीं है। सिर्फ आपका होना है। यह मुक्ति, स्वतंत्रता का अर्थ है। अमुक्ति, बंधन, परतन्त्रता का यही अर्थ है कि बँधे हुए चक्कर लगा रहे हैं, कुछ उपाय नहीं है। बटन दबाते हैं, पंखे को चलना पड़ता है, कोई उपाय नहीं है। पंखे की कोई इच्छा नहीं है। कोई स्वतन्त्रता नहीं है। **बंधन से मोक्ष की ओर जो यात्रा है, वह अचेतन से चेतन की ओर यात्रा है।**

१८

प्रश्नोत्तर-प्रवचन

प्रश्न : आपने कहा कि महावीर की आत्मा मुक्त होकर भी वापिस आ गयी थी—कृपया इसे स्पष्ट करें। क्या मुक्त आत्मा घूम कर फिर निगोद अवस्था में नहीं पहुँच जाती ?

उत्तर : महायान में एक बहुत मधुर कथा का उल्लेख है। बुद्ध का निर्वाण हुआ। वह मोक्ष के द्वार पर पहुँच गए। द्वारपाल ने द्वार खोल दिया। बुद्ध को कहा : स्वागत है आप भीतर आएँ। लेकिन बुद्ध उस द्वार की ओर पीठ करके खड़े हो गए। और उन्होंने द्वारपाल से कहा : जब तक पृथ्वी पर एक व्यक्ति भी अमुक्त है, तब तक मैं भीतर कैसे आ जाऊँ। अशोभन है यह। लोग क्या कहेंगे ? अभी पृथ्वी पर बहुत लोग बंधे हैं, दुःखी हैं, और बुद्ध आनन्द में प्रवेश कर गए ! तो मैं रुकूँगा। मैं इस द्वार से सभी के बाद ही प्रवेश कर सकता हूँ।

यह कहानी महायान बौद्धों में प्रचलित है। इसका अर्थ यह है कि एक व्यक्ति मुक्त भी हो सकता है, लेकिन मुक्त हो जाना ही मोक्ष में प्रवेश नहीं है। इस बात को समझ लेना जरूरी है कि मुक्त होना मोक्ष का प्रवेश-द्वार है। मुक्त होकर ही कोई व्यक्ति मोक्ष में प्रवेश पा सकता है, मुक्त हुए बिना प्रवेश नहीं पा सकता है। लेकिन मुक्त हो जाना ही प्रवेश नहीं है। ठेठ द्वार पर भी खड़े होकर कोई वापिस लौट सकता है और जैसा कि मैंने पीछे कहा कि एक बार वापिस लौटने का उपाय है। वह मैंने पीछे समझाया भी कि क्यों ऐसा उपाय है। जो उपलब्ध हुआ है वह अगर अभिव्यक्त नहीं हो पाया, जो पाया है अगर वह बांटा नहीं जा सका, जो मिला है अगर वह दिया नहीं जा सका तो एक

जीवन की वापिस उपलब्धि की सम्भावना है। यह सम्भावना वैसी ही है जैसा मैंने कहा कि कोई आदमी साइकिल चलाता हो, पैंडल चलाता हो, फिर पैंडल चलाना बन्द कर दे तो साइकिल उसी क्षण नहीं रुक जाती। एक प्रवाह है गति का कि पैंडल रुक जाने पर भी साइकिल थोड़ी दूर बिना पैंडल चलायी जा सकती है, लेकिन अन्तहीन नहीं जा सकती, बस थोड़ी दूर जा सकती है। यह जो थोड़ी देर का वक्त है, जब कि पैंडल चलाना बन्द हो गया तब भी साइकिल चल जाती है, ठीक ऐसे ही वासना से मुक्ति हो जाए तो भी थोड़ी देर जीवन चल जाता है। वह अनन्त जीवन का मोमेंटम है पैंडल चलाना बन्द कर देने के बाद, कोई चाहे तो थोड़ी देर साइकिल पर सवार रह सकता है, कोई चाहे तो ब्रेक लगाकर नीचे उतर सकता है। सवार रहना पड़ेगा, ऐसी भी कोई अनिवार्यता नहीं है। पैंडल चलाना बन्द हो गया है तो व्यक्ति उतर सकता है। लेकिन न उतरना चाहे तो थोड़ी देर चल सकता है, बहुत देर नहीं चल सकता।

जैसा मैंने कहा कि जीवन की व्यवस्था में एक जीवन समस्त वासना के क्षीण हो जाने पर भी चल सकता है। मगर यह जरूरी नहीं है। कोई व्यक्ति सीधा मोक्ष में प्रवेश करना चाहे तो कर जाए लेकिन मुक्त व्यक्ति चाहे तो एक जीवन के लिए वापस लौट आता है। ऐसे जो व्यक्ति लौटते हैं इन्हीं को मैं तीर्थंकर, अवतार, पैगम्बर, ईश्वरपुत्र कह रहा हूँ यानी ऐसा व्यक्ति जो स्वयं मुक्त हो गया है और अब सिर्फ खबर देने, वह जो उसे फलित हुआ है, घटित हुआ है उसे बांटने, उसे बताने चला आया है। हम भोगने आते हैं, वह बांटने आता है। इतना ही फर्क है। और जो स्वयं न पा गया हो, वह न तो बांट सकता है, न इशारा कर सकता है।

एक जीवन के लिए कोई भी मुक्त व्यक्ति रुक सकता है लेकिन जरूरी नहीं है। सभी मुक्त व्यक्ति रुकते हैं, ऐसा भी नहीं है। लेकिन जो व्यक्ति रुक जाते हैं इस भांति, वे हमें बिल्कुल ऐसे लगते हैं जैसे कि वे ईश्वर के भेजे गए दूत हों क्योंकि वे पृथ्वी पर हमारे बीच से नहीं आते। वे उस दशा से लौटते हैं, जहाँ से साधारणतः कोई भी नहीं लौटता है। इसलिए अलग-अलग धर्मों में अलग-अलग धारणा शुरू हो गई। हिन्दू मानते हैं कि वह अवतरण है परमात्मा का, ईश्वर स्वयं उतर रहा है। क्योंकि यह जो व्यक्ति है, इसे अब मनुष्य कहना किसी भी अर्थ में सार्थक नहीं मालूम पड़ता। क्योंकि न तो इसकी कोई वासना है, न इसकी कोई तृष्णा है, न इसकी कोई दौड़ है, न कोई महत्वाकांक्षा है। यह अपने लिए जीता भी नहीं मालूम पड़ता। अपने लिए श्वास भी नहीं लेता। तो

सिवाय ईश्वर के यह कौन हो सकता है ? और मुक्त व्यक्ति करीब-करीब ईश्वर हो गया है।

तो हिन्दुओं ने उसे अवतरण कहा है, यानी ऊपर से उतरना जहाँ हम जाना चाहते हैं। स्वभावतः जिन्होंने भी अवतरण की यह धारणा बनाई, उन्हें वह ख्याल नहीं है कि यह व्यक्ति भी यात्रा करके ऊपर गया होगा तो ही यह वापस लौटा है। इस आधे हिस्से पर उनकी दृष्टि नहीं है। इसलिए हिन्दुओं ने अवतरण कहा है। जैनों ने अवतरण को बात ही नहीं कही; उन्होंने तीर्थंकर कहा है। तीर्थंकर का मतलब है शिक्षक, गुरु। तीर्थंकर का अर्थ है जिसके मार्ग पर चलकर कोई पार जा सकता है, जिसके इशारे को समझकर कोई पार उतर सकता है। लेकिन पार उतरने का इशारा वही दे सकता है जो पार तक हो आया हो। अगर मैं इस किनारे पर खड़ा होकर बता सकूँ कि वह रहा दूसरा किनारा तो अगर इसी किनारे से वह किनारा दिखता हो तो आपको भी दिखता होगा। तब मुझे बताने की जरूरत नहीं है। किनारा कुछ ऐसा है कि दिखता नहीं है। और जब भी कोई इशारा कर सकता है कि वह रहा किनारा तो एक अर्थ है उसका कि वह उस किनारे से होकर लौटा हुआ व्यक्ति है, नहीं तो उसकी ओर इशारा कैसे कर सकता है। अगर सबको दिखाई पड़ता होता तो हमको भी दिखाई पड़ जाता। हम सब को दिखाई नहीं पड़ता। सिर्फ उस व्यक्ति का इशारा दिखाई पड़ता है, व्यक्ति की आँखों की शांति दिखाई पड़ती है, उसके प्राणों के चारों ओर झरता हुआ आनन्द दिखाई पड़ता है, उसकी ज्योति दिखाई पड़ती है। किनारा नहीं दिखाई पड़ता लेकिन उसका इशारा दिखाई पड़ता है और वह आदमी आश्वासन देता हुआ दिखाई पड़ता है। उसका सारा व्यक्तित्व आश्वासन देता हुआ मालूम पड़ता है कि वह किसी दूसरे किनारे का अजनबी है, किसी और तल को छूकर लौटा है। कुछ उसने देखा है जो हमें दिखाई नहीं पड़ रहा है। लेकिन वह व्यक्ति भी उस किनारे की ओर इशारा कैसे कर सकता है जहाँ वह हो न आया हो ?

तीर्थंकर का मतलब ही यह हुआ कि जो उस पार को छूकर लौट आया है इस पार खबर देने को। और मैं मानता हूँ कि उचित ही है कि जीवन में ऐसी व्यवस्था हो कि जो उस पार जा सके, कम से कम एक बार तो लौट कर खबर दे सके। अगर यह व्यवस्था न हो, अगर जीवन के अन्तर्नियम का यह हिस्सा न हो तो शायद हमें कभी भी खबर न मिले। आज कोई व्यक्ति चाँद से होकर लौट आया है तो चाँद के सम्बन्ध में हमें बहुत सी खबर मिली है। चाँद यहाँ

से दिखाई भी पड़ता है। परमात्मा तो यहाँ से दिखाई भी नहीं पड़ता। उसकी खबर मिलने का तो कोई सवाल ही नहीं। लेकिन कभी कोई उसको छूकर लौट आए तो खबर दे सकता है। तीर्थंकर का अर्थ है ऐसा व्यक्ति जो छूकर लौट आया है शायद खबर देने ही; जो उसे मिला उसे बाँटने, जो उसने पाया उसे बताने। जैनों ने अवतरण की बात नहीं की। क्योंकि ईश्वर की धारणा उन्होंने स्वीकार नहीं की। इसलिए एक ही रास्ता था कि जो व्यक्ति गया हो उस किनारे तक वह वापस लौटकर खबर देने आ गया हो।

ईसाई हैं। वे न तीर्थंकर की कोई धारणा करते हैं, न अवतार की। वे तो सीधे ईश्वरपुत्र की धारणा करते हैं—ईश्वर के बेटे की। क्योंकि ईश्वर के सम्बन्ध में जो खबर देता हो वह ईश्वर के इतना निकट होना चाहिए जितना की बाप के निकट बेटा हो। बेटे का और कोई मतलब नहीं है। उसका मतलब इतना है कि जो उसके प्राणों का हिस्सा हो, उसका ही खून बहता हो जिसमें, वही तो खबर देगा। जगत् में इस तरह की अन्य धारणाएँ हैं। लेकिन उन सब में एक बात सुनिश्चित है और वह यह कि जो जानता है, वही जना भी सकता है। जिसने जाना है, पहचाना है, देखा है, जिया है, वही खबर भी दे सकता है। उसकी खबर कुछ अर्थ भी रखती है।

मुक्त व्यक्ति एक बार लौट सकता है। महावीर के अब लौटने का कोई सवाल नहीं है। महावीर लौट चुके हैं। लेकिन बुद्ध के लौटने का सवाल अभी बाकी है। बुद्ध के एक अवतरण की बात है। मैत्रेय के नाम से कभी भविष्य में उनका एक अवतरण होगा। क्योंकि बुद्ध को जो सत्य की उपलब्धि हुई है, वह इसी जीवन में हुई है। इसके पहले जीवन में नहीं। बुद्ध ने जो पाया है इसी जीवन में पाया है। एक जीवन का उन्हें उपाय और मौका है और बहुत सदियों से, जब से बुद्ध गए तब से उनको प्रेम करने वाले, उन्हें जानने वाले प्रतीक्षा करते हैं उस अवसर की जब कि बुद्ध अवतरित होंगे। बुद्ध के आने की एक बार उम्मीद है। जीसस की भी एक बार आने की उम्मीद है। जीसस को भी जो उपलब्धि हुई वह इसी जन्म में हुई। दुबारा जन्म हो सकता है। लेकिन एक ही लिया जा सकता है और प्रतीक्षा भी हो सकती है।

फिर हमें ऐसा कठिन मालूम पड़ता है कि बुद्ध को मरे पच्चीस सौ वर्ष होते हैं। जीसस को मरे भी दो हजार वर्ष होते हैं। तो दो हजार वर्ष तक वह जन्म नहीं हुआ। हमारी समय की जो धारणा है उसकी वजह से हमको ऐसी कठिनाई है। तो थोड़ी-सी समय की धारणा भी समझ लेनी जरूरी है। आप रात

सोए, रात में एक सपना देखा। सपने में सैकड़ों वर्ष बीत जाते हैं। नींद टूटती है और आप पाते हैं कि झपकी लग गई थी और घड़ी में अभी मुश्किल से एक मिनट हुआ है। सपने में वर्षों बीत गए। और अभी आँख खुली है तो देखते हैं कि घड़ी में एक ही मिनट सरका है। झपकी लग गई थी कुर्सी पर और एक लम्बा सपना देख गए। तब सवाल उठता है कि इतना लम्बा सपना वर्षों बीतने वाला, एक मिनट में कैसे देखा जा सका? देखा जा सका इसलिए कि जागने के समय की धारणा अलग है, समय की गति अलग है। सोने के समय की गति अलग है।

मुक्त व्यक्ति के लिए समय की गति का कोई अर्थ नहीं रह जाता। वहाँ समय की गति है ही नहीं। हमारे तल पर समय की गति है। हम ऐसा सोच सकते हैं कि अगर हम एक वृत्त खींचे और एक वृत्त पर, परिधि पर तीन बिन्दु बनाएँ, वे तीनों काफी दूर पर हैं, फिर हम तीनों बिन्दुओं से वृत्त के केन्द्र की तरफ रेखायें खींचें। जैसे-जैसे केन्द्र के पास रेखाएँ पहुँचती जाती है, वैसे-वैसे करीब होती जाती हैं। परिधि पर इतना फासला था। केन्द्र के पास आते-आते फासला कम हो गया। केन्द्र पर आकर दोनों रेखाएँ मिल गईं। परिधि पर दूरी थी, केन्द्र पर एक ही बिन्दु पर आकर मिल गई हैं। केन्द्र पर परिधि से खींची गई सभी रेखाएँ मिल जाती हैं। और जैसे-जैसे पास आती जाती हैं वैसे-वैसे मिलती चली जाती हैं। समय का बड़ा विस्तार है जितना हम जीवन केन्द्र से दूर हैं, समय उतना बड़ा है। और जितना हम जीवन केन्द्र के करीब आते-जाते हैं, उतना समय छोटा होता जाता है।

कभी शायद आपने ख्याल नहीं किया होगा कि दुःख में समय बहुत लम्बा होता है, सुख में बहुत छोटा होता है। किसी को अपना प्रियजन मिल गया है, रात बीत गई है और सुबह प्रियजन बिदा हो गया है तो वह कहता है कि कितनी जल्दी रात बीत गई। इस घड़ी को क्या हो गया कि आज जल्दी चली जाती है। घड़ी अपनी चाल से चली जाती है। घड़ी को कुछ मतलब नहीं है कि किस का प्रियजन मिला है किसका नहीं मिला है, घर में कोई बीमार है, उसकी खाट के किनारे बैठकर आप प्रतीक्षा कर रहे हैं। चिकित्सक कहते हैं बचेगा नहीं। रात बड़ी लम्बी हो गई है। ऐसा कि घड़ी के कांटे चलते हुए भी मालूम नहीं पड़ते। ऐसा लगने लगता है कि घड़ी आज चलती ही नहीं, रात बड़ी लम्बी हो गई है। दुःख समय को बहुत बना देता है, सुख समय को एकदम सिकोड़ देता है। उसका कारण है क्योंकि सुख भीतर के कुछ निकट है, दुःख परिधि पर है।

आनन्द समय को बिल्कुल मिटा देता है। इसलिए आनन्द कालातीत (टाइमलैस) है, वहाँ समय है ही नहीं, साधारण से सुख में समय छोटा हो जाता है, साधारण से दुःख में समय बड़ा हो जाता है।

आइंस्टीन से कोई पूछ रहा था कि आप सापेक्षता का सिद्धान्त (थ्योरी ऑफ रिलेटिविटी) हमें समझाएँ। आइंस्टीन ने कहा कि बहुत मुश्किल है समझाना क्योंकि जमीन पर थोड़े से लोग हैं, जो सापेक्षता की बात समझ सके हैं क्योंकि उसे समझना बहुत कठिन है। सापेक्ष का मतलब है कि जो प्रत्येक परिस्थिति में छोटा-बड़ा हो सकता है। चौड़ा-संकरा हो सकता है, जिसका कोई स्थिर होना नहीं है। फिर उसने कहा कि उदाहरण के लिए मैं कहता हूँ कि तुम अपनी प्रेयसी के पास बैठे हो, आधा घंटा बीत जाता है, कितना लगता है। तो उस आदमी ने कहा कि क्षण भर। तो आइंस्टीन ने कहा : छोड़ो प्रेयसी को। तुम एक जलते हुए स्टोव पर बैठा दिये गये हो और आधा घंटा रखे गए हो। उसने कहा कि आधा घंटा, क्या आप कह रहे हैं ? तब तक तो मैं मर ही चुकूँगा। आधा घंटा ! जलते हुए स्टोव पर। अनन्त हो जाएगा, समय का एक-एक क्षण गुजारना मुश्किल हो जाएगा, बहुत लम्बा हो जाएगा। आधा घंटा बहुत ज्यादा हो जाएगा। तो आइंस्टीन ने कहा कि सापेक्ष से मेरा यही प्रयोजन है।

समय वही है लेकिन तुम्हारी चित्त की अवस्था के अनुसार बड़ा-छोटा हो जाता है। स्वप्न में एकदम छोटे समय में कितनी लम्बी यात्रा हो जाती है। जागरण में नहीं हो पाती। जागने में समय की परिधि पर हम खड़े हैं। सोने में हम अपने भीतर आए हैं। तो स्वप्न भीतर की ओर है, जागृति बाहर की ओर है। स्वप्न में हम अपने भीतर बन्द हैं, केन्द्र के ज्यादा निकट हैं। जागने में ज्यादा दूर हैं। जब कोई व्यक्ति केन्द्र पर पहुँच जाता है, उसका नाम समाधि है। तब समय एकदम मिट जाता है, एकदम लीन हो जाता है। समय होता ही नहीं। सब ठहर गया होता है। फिर क्षण हो जाता है। यह समय रहित कालातीत क्षण है। इस क्षण में ठहरे हुए पच्चीस सौ साल बीत गए कि पच्चीस हजार साल बीत गए, कोई फर्क नहीं होता। सब फर्क परिधि पर है, केन्द्र पर कोई फर्क नहीं है। वहाँ सब परिधि से खींची गई रेखाएँ संयुक्त हो गई हैं।

तो ऐसा व्यक्ति प्रतीक्षा कर सकता है उस क्षण की जब यह सर्वाधिक उपयोगी हो सके और ऐसा भी हो सकता है कि कुछ शिक्षक प्रतीक्षा करते-करते

ही मोक्ष में बिदा ले लेते हों। शायद उनके योग्य पृथ्वी पर समय न बन पाता हो। बहुत बार ऐसा भी हुआ है कि कुछ शिक्षक प्रतीक्षा करते हुए बिदा हो गए हैं क्योंकि वह बन नहीं पाई बात। और इसलिए इस तरह की चेष्टाएँ चलती हैं कि शिक्षक के जन्म लेने के पहले कुछ और व्यक्ति जन्म लेते हैं, जो हवा और वातावरण तैयार करते हैं। जैसा जीसस के पहले एक व्यक्ति पैदा हुआ—सन्त जोन। उसने सारे यहूदी मुल्कों में जेरूसलम में, इजरायल में, सब ओर खबर पहुँचाई कि कोई आ रहा है, तैयार हो जाओ। उसने हजारों लोगों को दीक्षित किया कि कोई आ रहा है, तैयार हो जाओ। लोग पूछते कि कौन आ रहा है तो वह कहता कि प्रतीक्षा करो, क्योंकि तुम उसे देखकर ही समझ सकोगे, मैं कुछ बता नहीं सकता। लेकिन कोई आ रहा है। उसकी उसने तैयारी की। उसने पूरी अपनी जिन्दगी गाँव-गाँव घूमकर जीसस के लिए हवा तैयार की। और जब जीसस आ गए तो जोन ने जीसस को आशीर्वाद दिया और इसके बाद वह चुपचाप बिदा हो गया। फिर उसका कोई पता नहीं चला। फिर जोन कहाँ गए? वह जो हवा उसने बनाई थी, जीसस ने उसका पूरा उपयोग किया। बहुत बार ऐसा भी हुआ है कि जब कोई शिक्षक वापस लौटे तो वह कुछ प्राथमिक शिक्षकों को भेजे जो हवा पैदा कर दें।

थियोसॉफी ने अभी एक बहुत बड़ी मेहनत की थी लेकिन वह असफल हो गई। जैसा कि मैंने कहा था कि बुद्ध के एक जन्म की सम्भावना है। थियोसाफिस्टों ने मैत्रेय को लाने के लिए भारी प्रयास किया। यह प्रयास अपने किस्म का अनूठा था। इस प्रयास में बड़ी साधना चली। इसमें कुछ लोगों ने प्राणों को संकट में डालकर आमंत्रण भेजा और कृष्णमूर्ति को तैयार किया कि मैत्रेय की आत्मा उसमें प्रविष्ट हो जाए। और कोई बीस-पच्चीस वर्ष कृष्णमूर्ति को तैयारी में लगे। कृष्णमूर्ति की जैसी तैयारी हुई, दुनिया में वैसी किसी आदमी की शायद ही हुई हो। अत्यन्त गूढ साधनाओं से कृष्णमूर्ति को गुजारा गया। ठीक वक्त पर तैयारियाँ पूरी हुईं। सारी दुनिया में कोई छः हजार लोग एक स्थान पर एकत्र हुए जहाँ कृष्णमूर्ति में मैत्रेय की आत्मा के प्रविष्ट होने की घटना घटने वाली थी। लेकिन शायद भूल-चूक हो गई। वह घटना नहीं घटी। और कृष्णमूर्ति अत्यन्त ईमानदार आदमी हैं। अगर कोई बेईमान आदमी उसकी जगह होता तो वह शायद अभिनय करने लगता कि घटना घट गई है। कृष्णमूर्ति ने इन्कार कर दिया गुरु होने से।

कृष्णमूर्ति का सवाल ही न था। सवाल तो किसी और आत्मा का था। आत्मा के लिए तैयारी थी उनके शरीर की। क्योंकि ऐसा अनुभव किया गया है कि मैत्रेय के उतरने में बड़ी बाधा पड़ रही है। कोई शरीर इस योग्य नहीं मिल रहा है कि मैत्रेय उतर जाएँ। और कोई गर्भ ऐसा निर्मित नहीं हो रहा है कि मैत्रेय के लिए अवसर बन जाए। तो हो सकता है कि दो चार हजार वर्ष प्रतिक्षा करनी पड़े। हो सकता है कि प्रतीक्षा समाप्त हो जाए, और बस चेतना बिदा हो जाए। लेकिन आशा कम है। वह प्रतीक्षा जारी रहेगी। कृष्ण-मूर्ति के लिए किया गया प्रयोग असफल हो गया। और अब ऐसा कोई प्रयोग पृथ्वी पर नहीं किया जा रहा है। अब तक सदा आकस्मिक शिक्षक ही उतरे थे, कभी-कभी तैयारियाँ भी हुई थीं। तो वह जो मैंने कहा एक बार लौटने का उपाय है मुक्त आत्मा को और यह उसका हक है, उसका अधिकार है क्योंकि जिसने जीवन में इतना पाया उसे अगर बांटने का और खबर देने का अधिकार भी न मिलता हो तो वह जीवन बड़ा असंगत और तर्कहीन है। उपलब्धि के बाद अभिव्यक्ति का मौका अत्यन्त जरूरी है। इसलिए मैंने कहा कि महावीर पिछले जन्म में उपलब्ध किए हैं, इन जन्म में बांटे हैं, उनकी चेतना के लौटने का कोई सवाल नहीं है।

दूसरी एक बात आपने पूछी है कि हम प्रकृति में तो चक्रीय गति देखते हैं। सब चीजें दौड़ती हैं, घूमती हैं। सब चीजें लौट कर फिर घूम जाती हैं। तो मन में सम्भावना उठती है, कल्पना उठती है कि कहीं ऐसा तो नहीं है कि निगोद से आत्माएँ मोक्ष तक जाती हों, फिर वापस निगोद में पहुँच जाती हों। क्योंकि जहाँ सभी कुछ चक्र में घूमता हो, वहाँ सिर्फ एक आत्मा की गति को चक्रीय न माना जाए यह कुछ नियम का खंडन होता मालूम पड़ता है। सब चीजें लौट आती हैं, बीज वृक्ष बनता है, फिर वृक्ष में बीज आ जाते हैं। फिर बीज वृक्ष बनते हैं, फिर वृक्ष के बीज आ जाते हैं। सब लौटता चला जाता है।

किसी वैज्ञानिक को कोई पूछ रहा था कि मुर्गी और अंडे में कौन पहले है। बहुत जमाने से आदमियों ने यह बात पूछी है। उस वैज्ञानिक ने कहा कि पहले का तो सवाल ही नहीं है क्योंकि मुर्गी और अंडा दो चीजें नहीं हैं। तो उस आदमी ने पूछा कि अगर दो चीजें नहीं हैं तो मुर्गी क्या है? अंडा क्या है? वैज्ञानिक ने फिर बहुत बढ़िया बात कही कि मुर्गी है अंडे का रास्ता, अंडे पैदा करने के लिए। या इससे उल्टा कह सकते हैं कि अंडा मुर्गी का रास्ता है, मुर्गी पैदा करने के लिए। सब चीजें घूम रही हैं। घड़ी के कांटे की तरह सब

घूम रहा है। फिर काँटे बारह पर आ जाते हैं। सिर्फ आत्मा के लिए ही इस नियम को तोड़ना उचित नहीं मालूम पड़ता क्योंकि विज्ञान बनता है निरपवाद नियमों से। अगर जीवन के सब पहलुओं पर यह सच है कि बच्चा जवान होता है, जवान बूढ़ा होता है, बूढ़ा मरता है, बच्चे पैदा होते हैं, फिर जवान होते हैं, फिर बूढ़े होते हैं, फिर मरते हैं। अगर जीवन की चक्रीय गति इस तरह चल रही है और आत्मा का पुनर्जन्म मानने वाले भी इस चक्रीय गति को स्वीकार करते हैं कि जो अभी मरा वह फिर बच्चा होगा, वह फिर जवान होगा, फिर बूढ़ा होगा, फिर मरेगा, फिर बच्चा होगा, फिर वह चक्र घूमता रहेगा तो सिर्फ आत्मा को यह चक्र क्यों लागू नहीं होगा। साधारणत: लागू नहीं होता। नियम यही है और ऐसे ही सब घूमता चलता है।

मुक्त आत्मा एक अनूठी घटना है, सामान्य घटना नहीं है। सामान्य नियम लागू भी नहीं होते। असल में चक्र के बाहर जो कूद जाता है, उसी को मुक्त आत्मा कहते हैं। नहीं तो मुक्त कहने का कोई मतलब नहीं है। संसार का मतलब है जो घूम रहा है, तो घूमता ही रहता है। मुक्त का मतलब है जो इस घूमने के बाहर छलांग लगा जाता है। मुक्त को अगर हम फिर चक्रीय गति में रख लेते हैं तो मुक्ति व्यर्थ हो गई। अगर मोक्ष से फिर निगोद में आत्मा को आना है तो पागल हैं वे जो मुक्त होने की कोशिश कर रहे हैं। क्योंकि इससे कोई मतलब ही नहीं। अगर काँटे को बारह पर लौट ही आना है—वह कुछ भी करे, चाहे मुक्त हो, चाहे न हो—फिर तो मोक्ष अर्थहीन हो गया।

अगर छलांग लगानी है तो हमें सजग होना पड़ेगा इस चक्र के प्रति। जैसे कि कल आपने क्रोध किया, फिर पश्चात्ताप किया। आज फिर आप क्रोध कर रहे हैं, फिर पश्चात्ताप कर रहे हैं। फिर क्रोध है, फिर पश्चात्ताप है। हर क्रोध के पीछे पश्चात्ताप, हर पश्चात्ताप के आगे फिर क्रोध है। एक चक्र में आप घूम रहे हैं। और अगर इस चक्र में आप खड़े रहते हैं, तो घूमना जारी रहेगा। लेकिन यह भी हो सकता है कि आप चक्र के बाहर छलांग लगा जाएँ। छलांग लगाने का मतलब है कि एक आदमी न तो क्रोध करता है न पश्चात्ताप करता है, बाहर हो जाता है। जब उसे कोई गाली देता है तो न वह क्षमा करता है, न वह पश्चात्ताप करता है। वह कुछ करता ही नहीं, वह एकदम बाहर हो जाता है। यह जो बाहर हो जाना है, यह जो छिटक जाना है, चक्र के बाहर, यह तो चक्र में नहीं गिना जा सकता। अगर इसे भी चक्र में गिना जा सकता है तो महावीर नासमझ हैं, बड़ी भूल में पड़े हैं। बुद्ध नासमझ हैं,

नासमझी में पड़े हैं। क्राइस्ट भी गल्ती कर रहे हैं। असल में तब मोक्ष की बात करने वाले सब पागल है। क्योंकि अगर सबको घूमते ही रहना है तो सब बात व्यर्थ हो गई। अगर हम मोक्ष की धारणा को, जो सतत (कान्स्टेन्ट) है, समझ लें तो उसका मतलब ही कुल इतना है कि चक्र के बाहर कूदा जा सकता है और जो व्यक्ति इस चक्र के प्रति सचेत हो जाएगा, वह बिना कूदे नहीं रह सकता क्योंकि चक्र बिल्कुल कोल्हू के बैल की तरह घूम रहा है। और कोल्हू के बैल में कौन जुता रहना चाहेगा।

जीवन की जो साधारण यात्रा है, उसकी जो लोहपटरी है, उससे कोई अगर छलांग लगा जाता है, तो वह मुक्त हो जाता है। उसको वापस चक्र में रखने का कोई उपाय नहीं है। हां, जैसा मैंने कहा, एक बार वह स्वयं, अपनी इच्छा से चाहे तो उस चक्र में लौट सकता है जिसमें अपने प्रियजनों को, अपने मित्रों को, उन सबको जिनके लिए वह आया है आनन्द में लाना चाहता है। एक बार फिर वापस आकर बैठ सकता है उस चक्र पर लेकिन चक्र पर बैठा हुआ भी वह घूमेगा नहीं। घूमेगा वह इसलिए नहीं कि अब घूमने का कोई मतलब न रहा। और इसलिए हम उसे पहचान भी पाएँगे कि कुछ अजब तरह का आदमी है, कुछ भिन्न तरह की बात है, यह कुछ और अनुभव करके लौटा है। अब वह खड़ा भी होगा हमारे बाजार में लेकिन हमारे बाजार का हिस्सा नहीं होगा। अब वह हमारे बीच भी खड़ा होगा लेकिन ठीक हमारे बीच नहीं होगा। कहीं हमसे दूर फासले पर होगा। उस व्यक्ति में दोहरी घटना घट रही होगी। वह होगा हमारे बीच और हमसे बिल्कुल अलग होगा। यह हम प्रतिपल अनुभव भर पाएँगे कि कहीं उससे हमारा मेल होता भी है, कहीं नहीं भी होता और कहीं बात बिल्कुल अलग हो जाती है। वह कुछ और ही तरह का आदमी है। यह जो वैज्ञानिक है, भौतिकवादी है, वह यही कह रहा है कि यहां तो सब नियम वहीं पहुँच जाते हैं जहां से हम आते हैं। आपका जाने का कोई उपाय नहीं है। सागर का पानी सागर में पहुँच जाता है, पत्तों में आई मिट्टी वापिस मिट्टी में पहुँच जाती है। पत्ते गिर कर फिर मिट्टी हो जाते हैं। वही वैज्ञानिक कहता है, वही भौतिकवादी कहता है लेकिन धार्मिक खोजी यह कह रहा है कि एक ऐसी भी जगह है जहाँ से हम नहीं आए हैं और जहां जा सकते हैं और जहाँ हम चले जाएँ तो फिर इस चक्कर में गिर जाने का कोई उपाय नहीं है।

अगर यह सम्भव नहीं है तो धर्म की सम्भावना खत्म हो गई; साधना का प्रयोजन व्यर्थ हो गया। फिर कुछ बात ही नहीं। फिर तो चक्र में हम घूमते

रहेंगे। आवागमन से छूटने की जो कामना है, यह उन लोगों को उठी है जिन्हें इस घूमते हुए चक्र की व्यर्थता दिखाई पड़ गई कि जन्मों-जन्मों से एक-सा घूमना हो रहा है; हम घूमते चले जा रहे हैं और इससे छलांग लगाने का ख्याल नहीं आता। छलांग लग सकती है, छलांग यह घटना है जिसके लिए फिर वे नियम लागू नहीं होते। जैसे आप छत पर खड़े हैं। दस आदमी छत पर खड़े हैं। कोई भी छत से नहीं गिर रहा है। एक आदमी छत पर छलांग लगाता है। यह आदमी छत से बाहर हो गया। छत इसे जमीन की कशिश से बचा रही थी। अब जमीन इसे खींचेगी अपनी तरफ जो कि छत पर खड़े हुए किन्हीं लोगों को नहीं खींच सकती है। अभी जो हमने चांद पर आदमी भेजा इसके लिए सबसे भारी कठिनाई एक ही है। और वह यह कि जमीन की कशिश से कैसे छूटें। दो सौ मील तक जमीन के ऊपर चारों तरफ जमीन की कशिश का प्रभाव है। इसके बाद एक इंच बाहर हो गए कि जमीन का खींचना खत्म हो गया। तो जो सैकड़ों वर्षों से चिन्तना चलती थी कि चांद पर कैसे पहुँचे, उसमें सबसे बड़ी कठिनाई यह थी कि जमीन से कैसे छूटें ? क्योंकि जमीन का गुरुत्वाकर्षण इतनी जोर से खींचता है कि उसके बाहर कैसे हो जाएँ ? यह पहले सम्भव नहीं हो सकता था, अब सम्भव हो गया है। क्योंकि हम इतना बड़ा विस्फोट पैदा कर सके रोकेट के पीछे कि उस विस्फोट के धक्के में यह रोकेट गुरुत्वाकर्षण के घेरे के बाहर हो गया। एक बार बाहर हो गया पृथ्वी की जकड़ के कि अब वह कहीं भी जा सकता है। अब कोई सवाल नहीं है कहीं जाने का। दूसरा डर चांद पर उतारने का था कि पता नहीं कितनी दूरी से चांद खींचेगा या नहीं खींचेगा। तो हर एक कशिश का क्षेत्र है एक, हर नियम का एक क्षेत्र है। और उस नियम के बाहर उठने का उपाय है। अपवाद के रूप में बाहर जा सकते हैं उस क्षेत्र के।

जीवन की जो गहरी परिधि है उसके केन्द्र में पृथ्वी की कशिश है, ऐसे जीवन के चक्र का केन्द्र वासना है। अगर जीवन के बाहर छिटकना है तो किसी न किसी रूप में वासना के बाहर निकलना होगा। प्रत्येक व्यक्ति के भीतर जो तृष्णा है, जिसको बुद्ध तृष्णा कहते हैं, वह जो वासना है, जो हमें स्थिर नहीं होने देती और कहती है, वह लाओ, वह पाओ, वह बन जाओ, हमें चक्कर में दौड़ाती रहती है। वह इशारे करती है चक्र के भीतर और कहती है कि धन कमाओ, यश कमाओ, स्वास्थ्य लाओ। वह कहती है और जियो, ज्यादा जियो, ज्यादा उम्र बनाओ। वह जो भी कहती है, वह सब उस चक्र के भीतर के

पहलू हैं। जो व्यक्ति एक क्षण भी वासना के बाहर हो जाए, वह अन्तरिक्ष में यात्रा कर गया—उस अन्तरिक्ष में, जो हमारे भीतर है। वह जीवन के चक्र के बाहर छलांग लगा गया। क्योंकि उसने कहा कि न मुझे यश चाहिए, न धन चाहिए, न कोई काम चाहिए, मुझे कुछ चाहिए ही नहीं ? मैं जो हूँ, हूँ। मैं कुछ होना नहीं चाहता। वासना का मतलब है कि मैं जैसा हूँ वैसा नहीं, जो मेरे पास है वह काफी नहीं, कुछ और चाहिए। छोटा क्लर्क बड़ा होना चाह रहा है, छोटा मास्टर बड़ा मास्टर होना चाह रहा है। छोटा मिनिस्टर बड़ा मिनिस्टर होना चाह रहा है।

तो सारे खोजियों की खोज यह है कि एक क्षण के लिए भी वासनाओं के बाहर ठहर जाओ और वह क्षेत्र जो चक्कर लगवाता था, उसके आप बाहर हो जाओगे। और एक क्षण भी आप बाहर हो गए तो आप हैरान हो जाओगे यह जानकर कि जिसे हम अनन्त जन्मों से पाने की आकांक्षा कर रहे हैं वह हमारे पास ही था, वह मिला ही हुआ था। वह हमें उपलब्ध ही था। अपने तरफ देखने भर की जरूरत थी। लेकिन जैसे अन्तरिक्षयात्रा नहीं हो सकती जब तक कि जमीन की कोशिश से छूट न जाएँ, वैसे ही अन्तर्यात्रा नहीं हो सकती जब तक हम वासना की कोशिश से छूट न जाएँ। और वासना की कशिश जमीन की कशिश से ज्यादा मजबूत है। क्योंकि जमीन की जो कशिश है वह एक जड़ शक्ति है खींचने की। वासना की जो कशिश है वह एक सजग चेतनशक्ति है खींचने की।

आप रास्ते पर चलते हैं, आपको कभी पता नहीं चलता कि जमीन आपको खींच रही है। यह जब पता चले तब हम कशिश से बाहर हो जाएँ। अभी अन्तरिक्ष में जो यात्री गए उनको पता चला कि यह तो बड़ा मुश्किल मामला है। एक सैकेंड भी कुर्सी पर बिना बेल्ट बाँधे नहीं बैठा जा सकता। बेल्ट छूटा कि आदमी उठा, छप्पर से लग गया एकदम। और उनको पहली दफा जाकर पता लगा कि वजन जैसी कोई चीज ही नहीं है। जमीन की कशिश है, जमीन का खिचाव है। चूँकी चाँद पर जमीन की कशिश बहुत कम है, इसलिए कोई भी आदमी छलांग लगाकर ऊँची दीवार से निकल सकता है। चाँद की कशिश आठ गुनी कम है। जो आदमी जमीन पर आठ फीट छलांग लगा सकता है वह वहाँ आठ गुनी छलांग लगा सकेगा क्योंकि उसका वजन कम हो गया है। लेकिन हमें पता ही नहीं है कि हमें पूरे वक्त, जमीन खींचे हुए है क्योंकि हम उसी में पैदा होते हैं, उसी में पड़े होते हैं और उसी में हम निर्धारित हो जाते हैं। हमको

यह भी पता नहीं है कि वासना हमें चौबीस घंटे खीचे हुए हैं क्योंकि हम उसी में पैदा होते हैं। पैदा हुआ बच्चा कि वासना की दौड़ शुरू हुई। वासना ने उसे पकड़ना शुरू किया। उसे यह चाहिए, उसे वह चाहिए। उसे यह बनाना है, उसे वह बनाना है—दौड़ शुरू हो गयी और चक्र जोर से घूमने लगा।

इस चक्र के बाहर, जिसे भी छलांग लगानी हो, उसे वासना के बाहर होना पड़ता है और साक्षी का भाव वासना के बाहर ले जाता है। जैसे कोई व्यक्ति साक्षी हो गया वह वासना के बाहर चला जाता है और हमारी कठिनाई यह है कि जीवन में साक्षी होना बहुत कठिन है। हम नाटक, फिल्म तक में साक्षी नहीं हो सकते। फिल्म के परदे पर, जहाँ कुछ भी नहीं है, जहाँ सिवाय प्रकाश के, कम ज्यादा फेंके गए किरण-जाल के और कुछ भी नहीं है, वहाँ हम कितने दुःखी, सुखी, क्या-क्या नहीं हो जाते? तीन आयामों (थ्री डायमैन्शन) में एक फिल्म बनी है। जब पहली बार उसका प्रदर्शन हुआ तो बड़ी हैरानी हुई क्योंकि उसमें तो बिल्कुल ऐसा दिखाई पड़ा कि आदमी पूरा है। यह जो फिल्में हैं दो आयामों में बनी हैं, लम्बाई-चौड़ाई गहराई नहीं है इनमें। गहराई फिल्म में आ जाती है तो फिर सच्चे आदमी में और फिल्म के आदमी में कोई फर्क नहीं रहता। पर्दे पर जो दिखाई पड़ रहा है, वह बिल्कुल सच्चा हो गया है। जब पहली बार यह फिल्म बनी, लन्दन में उसका प्रदर्शन हुआ। उसमें एक घोड़ा है, एक घुड़सवार है जो भागा चला आ रहा है। हाल के सारे लोग एकदम झुक गए कि वह घोड़ा एकदम हाल के अन्दर से निकल जाए। एक भाला फेंका उस घुड़सवार ने और सब लोग अपनी खोपड़ी बचाने की फिक्र में पड़ गए कि कहीं वह खोपड़ी में न लग जाए। तब पता चला कि आदमी उस पल में कितना भूल जाता है कि यह परदा है। और हम सब रोज भूलते हैं। हम साक्षी नहीं रह पाते।

टालस्टाय ने लिखा है "मैं बड़ा हैरान हुआ। मेरी माँ रोज थियेटर जाती थी। रूस की सर्दी! बाहर थियेटर के बग्घी खड़ी रहती, बग्घी पर दरबान खड़ा रहता क्योंकि मेरी माँ कब बाहर आ जाए, पता नहीं। मैं देखकर हैरान हुआ कि मेरी माँ थियेटर में इतना रोती कि उसके रूमाल भीग जाते। बाहर हम आते और अक्सर ऐसा होता कि कोचवान बर्फ की वजह से मर जाता, तो उसे बाहर फिकवा दिया जाता और माँ आंसू पोंछती रहती फिल्म के। मैं दंग रह जाता, हैरान रह जाता यह देखकर कि एक जिन्दा आदमी मर जाय हमारी कोच पर बैठा हुआ सिर्फ इसलिए कि हम उसको छुट्टी नहीं कर सकते, न हटा

सकते, उसको कोच रखनी पड़ती क्योंकि माँ किसी वक्त बाहर आ सकती है। तो कोचवान बर्फ की ठंड में मर गया है माँ के सामने उसकी लाश फिंकवा दी गई है और दूसरा कोचवान सड़क से पकड़ कर बैठा दिया गया है और कोच घर की तरफ चली गई है। माँ पूरे रास्ते रोती रही है उस फिल्म के लिए, या उस नाटक के लिए जहाँ कोई मर गया था, या जहाँ कोई प्रेमी बिछुड़ गया था, या जहाँ कोई और दुर्घटना घट गई थी।

कई बार ऐसा हो जाता है कि बाहर की जिन्दगी हमें उतनी ज्यादा नहीं पकड़ती जितनी चित्र की कहानी पकड़ लेती है क्योंकि बाहर की जिन्दगी बहुत अस्त-व्यस्त है और चित्र की कहानी बहुत व्यवस्थित है और आपके मन को कितना डूबा सके, उसकी सारी व्यवस्था की गई है। बाहर की जिन्दगी में यह सब व्यवस्था नहीं है। तो नाटक तक में, फिल्म तक में, हम साक्षी नहीं रह पाते। बहुत गहरे में हम खोज करेंगे तो फिल्म और जीवन में फर्क ज्यादा नहीं है। यह शरीर उसी तरह विद्युत कणों से बना है, जिस तरह फिल्म के परदे पर बना हुआ शरीर विद्युत कणों से बना है। फिल्म या नाटक की कहानी जितना अर्थ रखती है, उससे ज्यादा हमारे जीवन की कहानी अर्थ नहीं रखती है। हाँ, फर्क इतना ही है कि वह तीन घंटे की मंच है; यह शायद सत्तर साल की, सौ साल की मंच है। इसमें अभिनेता बदलते चले जाते हैं, आते हैं, चले जाते हैं; यह नाटक चलता ही रहता है। इस नाटक में दर्शक और अभिनेता अलग-अलग नहीं हैं।

अगर हमें स्मरण आ सके कि यह एक लम्बा नाटक खेला जा रहा है, तो शायद हम भी साक्षी हो सकें। और फिर शायद नाटक के इन पात्रों में क्या मैं हो जाऊँ यह ख्याल टूट जाए। जो हम हैं, शायद हम उसी को चुपचाप निभाकर बिदा हो जाएँ। ऐसी चित्त की दशा में जहाँ वासना टूट जाती है, तृष्णा टूट जाती है, जहाँ हम दौड़ से बाहर खड़े हो जाते हैं और दौड़ सिर्फ नाटक रह जाती है व्यक्ति छलांग लगा लेता है। फिर भी क्योंकि हम नाटक में जो खोए हैं, नाटक में जो भटके हैं, अभिनय ही जीवन रहा, है, तो हमें वास्तविक जीवन की खबर समझ में नहीं आती। जैसे कि नाटक के मंच के पीछे ग्रीन रूम है जहाँ कोई राम बना था कोई रावण बना था, मंच पर लड़ रहे थे, झगड़ रहे थे, मगर पीछे ग्रीन रूम में जाकर एक दूसरे को चाय पिला रहे हैं और गपशप कर रहे हैं।

जिस दिन कोई देख पाता है वास्तविक जिन्दगी को तब हैरान होता है कि असली जिन्दगी के नाटक में राम और रावण जब पर्दे के पीछे चले जाते हैं तब चाय पीते हैं और गपशप करते हैं। सब झगड़े खत्म हो जाते हैं। लेकिन वह ग्रीन रूम जरा गहरे में छिपा है और पर्दा बहुत लम्बा है। और पर्दे के बाहर ही हम पूरे वक्त रहते हैं कि हमें पता ही नहीं है कि पीछे ग्रीन रूम भी है। तो हम एक बड़े नाटक के हिस्से हैं, कभी आपने सोचा, एक नाटक के पात्र की तरह कभी देखा, कभी सुबह उठकर ख्याल किया कि एक नाटक शुरू होता है— रोज सुबह। रात थक जाते हैं, एक नाटक का अन्त हो जाता है, फिर सुबह उठते हैं, नाटक शुरू हो जाता है। और कभी आपने सोचा कि कई बार आपको ध्यान रखना पड़ता है कि नाटक में भूल-चूक न हो जाए।

एक फ्रेंच चित्रकार अमेरिका जा रहा था। उसके भुलक्कड़ होने की बड़ी कहानियाँ हैं। उसकी पत्नी और उसकी नौकरानी, दोनों उसको विदा देने एयरपोर्ट आईं। उसने जल्दी में नौकरानी को चूम लिया और पत्नी को कहा कि खुश रहना, बच्चों का ख्याल रखना, और वे दोनों घबड़ा गईं। उसकी पत्नी ने कहा : यह क्या करते हैं। ख्याल नहीं करते कि वह नौकरानी है, उसको आप चूमते हैं और मुझे नौकरानी बनाते हैं, मैं आपकी पत्नी हूँ। उसने कहा : चलो, बदले देता हूँ। फिर पत्नी को चूम लिया और नौकरानी को कहा : बच्चों का ख्याल रखना और कहा कि कभी-कभी चूक जाता हूँ, ख्याल नहीं रख पाता। तो कुछ लोग ख्याल रख पाते हैं, कुछ लोग चूक जाते हैं।

यह मेरा पिता है, यह मेरी पत्नी है, यह मेरा बेटा है इसका हमें ख्याल रखना पड़ता है चौबीस घंटे और अगर न ख्याल रखें तो दूसरे हमें ख्याल दिला देते हैं कि वह तुम्हारे पिता हैं, या खुद आदमी ख्याल दिला देता है कि मैं तुम्हारा पिता हूँ। वह नाटक हमें पूरे वक्त याद रखना पड़ता है कि कहीं भूल न जाएँ, कहीं चूक न हो जाए। और जो इस नाटक को जितनी अच्छी तरह से निबाह लेता है, उतना कर्तव्यनिष्ठ है। मैं यह नहीं कहता हूँ कि नाटक न निभाएँ। नाटक निभाने के लिए ही है और बड़ा मजेदार भी है। इसमें कुछ ऐसी तकलीफ भी नहीं है। बस एक ख्याल न भूल जाएँ, और चाहे सब भूल जाएँ कि यह सिर्फ नाटक है और कहीं भीतर हमारे एक बिन्दु है जहाँ हम सदा बाहर हैं।

स्वामी रामतीर्थ हुए हैं। उनकी बड़ी अजीब सी आदत थी। अमरीका में लोगों को बड़ी मुश्किल हुई क्योंकि वह हमेशा अन्य पुरुष (थर्ड पर्सन) में ही बोलते थे। यहाँ तो उनके मित्र उन्हें पहचानने लगे थे। वहाँ तो बड़ी कठिनाई हुई। और हम अजीव-अजीब तरह के लोगों के थोड़े आदी भी हैं। सारी दुनिया इतनी आदि नहीं है। यहाँ महावीर, बुद्ध जैसे अजीव-अजीब लोग हुए हैं। उन्होंने हमें बहुत सी बातों की आदत डलवा दी है जोकि दुनिया में बहुत लोगः को नहीं है। राम जब वहाँ पहुँचे तो लोग बड़ी मुश्किल में पड़ गए। क्योंकि वह कहते कि राम को इस वक्त बहुत भूख लगी है। अब जो आदमी सामने बैठा है वह चारों ओर देखता है कि कौन है राम? क्योंकि अगर मुझे भूख लगी है तो मैं कहूँगा कि मुझे भूख लगी है और राम कहते हैं कि राम को बड़ी भूख लगी है, देखते क्या हो, कुछ इन्तजाम करो, राम बड़ा परेशान हो रहा है। उन लोगों ने कहा : कौन राम? तो उन्होंने कहा कि यह राम। तो लोगों ने कहा कि आप ऐसा क्यों नहीं कहते कि 'मैं'। उन्होंने कहा, वैसा मैं कैसे कह सकता हूँ क्योंकि मैं तो खुद ही देख रहा हूँ कि 'राम' को तकलीफ हो रही है, 'राम' को भूख लगी है। 'राम' को मुश्किल हो रही है। 'राम' को ठंड लगी है। मैं देख रहा हूँ। कई दफा ऐसा होता है कि कई लोग 'राम' को खूब गाली देते हैं, हम बहुत हँसते हैं। कहते हैं : देखो! राम को कैसी पड़ी? राम कैसा मुश्किल में फँसे? आ गया न मजा? अब यह जो ख्याल कि कहीं मैं अलग हूँ, सारे खेल से कहीं दूर हूँ, साक्षी बना देता है। तब वासना की दौड़ टूट जाती है। खेल फिर भी चलता है क्योंकि आप अकेले खिलाड़ी नहीं। खेल फिर भी चलता है क्योंकि खिलाड़ी बहुत हैं। और फिर खेलकर क्या बिगाड़ना है? बड़े बूढ़े छोटे बच्चों के साथ गुड़िया का खेल भी खेल लेते हैं।

एक मेरे मित्र जापान में किसी के मेहमान थे। उनको पता न था। सुबह ही घर में बड़ी सज-धज शुरू हो गई और घर के बड़े-बूढ़े भी बड़े उत्तेजित मालूम पड़े। उन्होंने पूछा कि बात क्या है। तो उन्होंने कहा कि आज विवाह है। आप भी सम्मिलित हों। उन्होंने कहा : जरूर सम्मिलित हो जाऊँगा। सांझ आ गई। घर में बड़ी तैयारी चलती रही। बच्चों से लेकर बूढ़ों तक सब तैयारी में लगे हैं। वह भी बेचारे बहुत तैयार हो गए। जब देखा तो बहुत हैरान हुए। जो विवाह था, वह एक गुड़िया और एक गुड्डे का था। पड़ोस के घर की एक लड़की ने गुड़िया की शादी रचाई थी। और पड़ोस के दूसरे घर के एक लड़के ने अपने गुड्डे का विवाह रचाया था। उन दोनों का विवाह

हो रहा था। गाँव के बड़े-बूढ़े मौजूद थे। लेकिन मेरे मित्र ने कहा कि यह क्या पागलपन है। और इतना साज-संवार चल रहा था, इतने बैंड-बाजे बज रहे थे, तो मेरे मित्र ने उस घर के बूढ़े को कहा कि यह क्या पागलपन है कि आप लोग इस गुड़िया के विवाह में सम्मिलित हुए। तो उन्होंने कहा कि इस उम्र में पता चल जाना चाहिए कि सभी विवाह गुड़ियों के हैं। उस बूढ़े ने कहा कि इसमें भी क्या फर्क है। उसमें और इसमें कोई फर्क नहीं है। अभी बच्चे खेल खेल रहे हैं, हम उसमें सम्मिलित होते हैं और हम उतनी गम्भीरता से ही सम्मिलित होते हैं जितनी गम्भीरता से हम असली विवाह में सम्मिलित होते हैं ताकि बच्चे समझ लें कि असली विवाह भी गुड़ियों के खेल से ज्यादा नहीं हैं। बूढ़े दोनों में एक ही गम्भीरता से सम्मिलित होते हैं।

उस बूढ़े का ख्याल देखिए। वह कह रहा है कि बच्चों को अभी से पता चल जाए कि हमारी गम्भीरता में कोई फर्क नहीं है। गुड़िया के विवाह में भी हम उसी गम्भीरता से आते हैं जैसे हम असली विवाह में आते हैं। दोनों में कोई फर्क नहीं है। दोनों में हम कोई भेद भी नहीं करते हैं। ठीक है। वह एक तल की गुड़ियों का विवाह है, वह दूसरे तल की गुड़ियों का विवाह है। लेकिन विवाह हो रहा है। लोग मजा ले रहे हैं और हम भागीदार हो जाते हैं। हम क्यों नाहक लोगों के इस रस में, इस राग-रंग में बाधा बन जाएँ।

जहाँ बुद्धिमत्ता आती है वहाँ जगत् माया से अलग नहीं हो जाता, वहाँ जगत् नाटक से अलग नहीं हो जाता। वह नाटक और जगत् एक हो हैं। कोई निन्दा नहीं आ जाती कि नाटक गलत है। ऐसा कुछ भी नहीं हो जाता। वहाँ सब बराबर हैं, जगत् और नाटक एक हो जाते हैं। सिर्फ एक घटना घट जाती है कि साक्षी अलग खड़ा हो जाता है। जिस दिन साक्षी अलग खड़ा हो जाता है जीवन से, उसी दिन दौड़ के बाहर हो जाता है। तो महावीर की साधना मौलिक रूप से साक्षी की साधना है। सभी साधनाएँ मौलिक रूप से साक्षी की साधनाएँ हैं कि हम किस भाँति देखने वाले न रह जाएँ, भागने वाले न रह जाएँ, करने वाले न रह जाएँ, दर्शक, द्रष्टा, साक्षी हो जाएँ, किस भांति सिर्फ साक्षी रह जाएँ।

एपीटेक्टस एक अद्भुत व्यक्ति हुआ है। बीमारी भी आती, दुःख भी आता, चिन्ता भी आती तब भी लोग उसे वैसा ही पाते जैसा जब वह स्वस्थ था, निश्चिन्त था, शांत था, सुखी था। लोगों ने हर हालत में उसे देखा लेकिन वैसा ही पाया जैसा वह था। उसमें कोई फर्क नहीं देखा कभी भी। कुछ लोग उसके

पास गये और कहा कि एपीटेक्टस, अब तो मौत करीब आती है, तुम बूढ़े हो गए। तो उसने कहा : जरूर आए, देखेंगे। **जब सब चीजें देखने की ताकत आ गई तो मौत को देखने की ताकत भी** आ गई। जो जिन्दगी को नहीं देख पाते, वे मौत को भी नहीं देख पाते। जो जिन्दगी को देख लेता है वह मौत को भी देख लेता है। लेकिन एपीटेक्टस ने कहा, देखेंगे। बड़ा मजा आयेगा, क्योंकि बड़े दिन हो गए, मौत को नहीं देखा।

मौत आई है। बहुत से लोग इकट्ठा हो गये हैं। एपीटेक्टस मर रहा है लेकिन घर में संगीत हो रहा है क्योंकि उसने अपने मित्रों और शिष्यों को कहा है कि मरते क्षण में मुझे रोकर विदा मत देना क्योंकि रोकर हम उसको विदा देते हैं जो जानता नहीं था। मुझे तुम हँसकर विदा देना क्योंकि मैं जानता हूँ, कि मैं मर नहीं रहा हूँ। मैंने देखना सीख लिया है, हर स्थिति को देखना सीख लिया है और **जिस स्थिति को मैंने** देखना सीखा मैं उसके बाहर हो गया उसी वक्त। अगर मैंने दुःख को देखा, मैं दुःख के बाहर हो गया। अगर मैंने सुख को देखा, मैं सुख के बाहर हो गया। अगर मैंने जीवन को देखा तो मैं जीवन के बाहर हो गया। तो तुमसे मैं कहता हूँ कि मैं देखने को कला जानता हूँ। मैं मौत को देख लूँगा और मौत के बाहर हो जाऊँगा। तुम इसकी फिक्र ही मत करो, मैंने जिस चीज को देखा मैं उसके बाहर हो गया। **यह मेरे जीवन भर का अनुभव है कि देखो और बाहर हो जाओ।** मगर हम देख ही नहीं पाते।

इसलिए हम देखने के तत्त्व-विचार को 'दर्शन' का नाम दिया है। दर्शन का मतलब है **देखने की क्षमता।** पश्चिम में जो दर्शन है उसे मीमांसा कहना चाहिए, तत्त्व-विचार कहना चाहिए। भारत में जिसे हम दर्शन कहते हैं—महावीर, बुद्ध, पतञ्जलि, कपिल, कणाद का दर्शन, वह पश्चिम का दर्शन नहीं है। भारत का दर्शन है देखने की कला : देख लो और बाहर हो जाओ। सोचने का सवाल नहीं है यहाँ। और जिस चीज को आप देखोगे उसी के बाहर हो जाओगे। यह कभी सोचा आपने कि जिस चीज को आप देखने में समर्थ हो जाते हैं, आप तत्काल उसके बाहर हो जाते हैं। हम यहाँ इतने लोग बैठे हैं और अगर आप गौर से देखेंगे, आप फौरन बाहर हो जाएँगे। आप इतने लोगों को गौर से देखेंगे और आप पाएँगे कि भीड़ नहीं रही। आप अकेले रह गए। कभी कितनी ही भीड़ में आप खड़े हों और गौर से चारों तरफ देखें और जग जाएँ तो आप पाएँगे कि भीड़ चली गई, आप अकेले ही रह गए; भीड़ है पर आप बिलकुल अकेले रह गए हैं। **जिस चीज को आप देखने की क्षमता जुटा**

लेंगे उसी के बाहर हो जाएँगे। तो इस चक्र में सब चीजें एक सी घूमती चली जाती हैं अगर द्रष्टा हो जाएँ तो हम तत्काल बाहर हो जाते हैं।

पाम्पई के शहर में आग लगी क्योंकि पाम्पई का ज्वालामुखी फूट गया था। सारा गाँव भागा। जिसके पास जो था बचाने को, बचा सकता था, भागा बचाकर। किसी ने धन, किसी ने किताबें, किसी ने बही खाते, फर्नीचर, कपड़े मोती, जवाहर—जो जिसके पास था, लिया और भागा। फिर भी कोई पूरा नहीं बचा सका क्योंकि जब आग लगी हो तो पूरा बचाना मुश्किल है। और जब भागने का सवाल हो, जिन्दगी मुश्किल में पड़ी हो तो बहुत ज्यादा बचाने की चेष्टा में खुद को अटकाया भी नहीं जा सकता। लोग भागे। आधी रात थी। एक सिपाही चौरास्ते पर खड़ा है जिसको सुबह छः बजे ड्यूटी बदलेगी। तब दूसरा आदमी आएगा। रात दो बजे नगर जल उठा है। सारा नगर भाग रहा है। पुलिस वाला अपनी जगह पर खड़ा है। जो भी उसके करीब से निकलता है उससे कहता है, भागो, यह कोई वक्त है खड़े रहने का! वह कहता है लेकिन अभी छः कहाँ बजा है? और अगर तुम भी खड़ा होना सीख जाओ तो भागने की जरूरत नहीं। आग लगी है, वह बाहर है। और कितनी ही आग लग जाए, अगर मैं खड़ा हो रहूँ और देखता ही रहूँ तो आग सदा ही बाहर रहेगी क्योंकि देखने वाला तो मैं पीछे हूँ, अलग हो, छूट जाऊँगा हर बार। आग करीब आ सकती है, शरीर में लग सकती है लेकिन अगर मैं देखता ही गया तो मैं छूट जाऊँगा बाहर। तुम व्यर्थ भाग रहे हो क्योंकि जहाँ तुम भाग रहे हो आग वहाँ भी लग सकती है और कहीं भी भागोगे तो एक दिन आग लगेगी ही।

हम सब भाग रहे हैं और खड़े नहीं हो पाते हैं। भागने की जो दौड़ है वह चक्रीय है। हम उसमें चक्कर लगाते चले जाते हैं। हर बार लगता है कि कहीं पहुँच रहे हैं, मगर कहीं भी नहीं पहुँच पाते क्योंकि चक्कर और आगे दिखाई पड़ने लगता है। लेकिन कोई खड़ा भी हो जाता है अभी पटरी से नीचे उतर कर और देखने लगता है उस चक्कर को तब बहुत हँसी आती है कि यह लोग व्यर्थ पागल की तरह दौड़े चले जाते हैं। और जिस जगह को छोड़कर वे भाग रहे हैं थोड़ी देर में उसी जगह पर आ जाएँगे क्योंकि चक्कर गोल है और उसमें वे गोल घूम रहे हैं। कहीं कोई जा नहीं सकता, और सब भागे चले जा रहे हैं एक दूसरे के पीछे। जो व्यक्ति बाहर खड़ा हो जाता है, वह वैसा ही हो जाता है जैसे एक बड़ा नाटक चलता हो और कोई आदमी बाहर खड़ा होकर देखे।

जीवन की कला जीवन में खड़े हो जाने की कला ही है। धर्म का विज्ञान द्रष्टा बन जाने का ही विज्ञान है, और सारे शास्त्रों का सार है। और उन सारे व्यक्तियों की वाणी का अर्थ एक ही सत्य है और वह यह है कि खड़े हो जाओ, दौड़ो मत, देखो, डूबो मत। पास खड़े हो जाओ, दूर खड़े हो जाओ। अगर कोई अनडूबा खड़ा रह जाए एक क्षण भी तो आप जो पूछ रहे हैं कि क्या फिर लौटना नहीं हो जाएगा? मैं कहता हूँ नहीं! एक बार कोई खड़ा हो गया तो वहाँ से लौटने का सवाल ही नहीं है। मगर हम चूंकि दौड़ रहे हैं, लौटेंगे। बहुत बार लौट चुके हैं, लौटते रहेंगे और दौड़ते ही रहेंगे। और कई बार ऐसा होता है कि थोड़ा दौड़कर हम उपलब्ध नहीं हो पाते तो हम सोचते हैं कि और तेजी से दौड़ें।

छोटी सी कहानी से मैं अपनी बात पूरी करूँ। एक आदमी को अपनी छाया से डर पैदा हो गया। वह अपनी छाया से भयभीत होने लगा। वह अपनी छाया से बचने के लिए भागा। वह जितनी तेजी से भागा, छाया उसके पीछे भागी। उसने देखा कि छाया बड़ी तेज भाग सकती है। इतनी तेजी से काम नहीं चलेगा और तेजी से भागना पड़ेगा। उसने अपनी सारी जान लगा दी। जितनी तेजी से वह भागा, छाया उतनी तेजी से भागी। क्योंकि छाया उसकी ही थी जिससे वह भाग रहा था। वह स्वयं ही से भाग रहा था। पहुँच कहाँ सकता था? छाया से छूट कैसे सकता था? अपने से ही छूटने का उपाय क्या था? लेकिन गाँव-गाँव में खबर फैल गई। और गाँव-गाँव में लोग उसके दर्शन करने लगे और फूल फेंकने लगे। उसको रुकने की फुरसत कहाँ थी? क्योंकि रुकता है तो छाया और जोर से पकड़ लेती है, रुके और छाया फिर पकड़ ले।

तो वह गाँव-गाँव में भागता रहता। उसकी पूजा होने लगी। उस पर फूल बरसाने लगे। उसके चरणों में लाखों लोग झुकने लगे और जितने लोग ज्यादा झुकने लगे, जितने फूल गिरने लगे वह उतनी ही तेजी से भागने लगा। और गाँव-गाँव में खबर हो गई कि ऐसा तपस्वी कभी नहीं देखा गया जो एक क्षण भी नहीं ठहरता, जो रुकता ही नहीं, जो रात बेहोश होकर गिर पड़ता और जब उसकी आँख खुलती और छाया दिखती तो वह फिर भागना शुरू कर देता। आखिर ऐसे आदमी का क्या हाल हो सकता है? वह आदमी मरा। वह छाया साथ ही रही और मरा। जब मरा तब उसकी लाश की भी छाया बन गई। फिर लोगों ने उसको दफना दिया, एक कब्र बना दी बड़े दरख्त के नीचे और

एक फकीर के पास लोग पूछने गए कि हम उसकी कब्र पर क्या लिख दें। तो वह फकीर आया, उसने कब्र देखी दरख्त की छाया में। कब्र की कोई छाया न थी। तो उस फकीर ने कब्र पर लिखा कि जो तू जो कर न पा सका, वह तेरी कब्र ने पा लिया है और पा लिया है इसलिए कि तू भागता था और कब्र तेरी खड़ी है। उसकी छाया खो गई है। तू भागता था धूप में और तेजी से; छाया तेरा पीछा करती थी। अपनी कब्र से तू सीख ले तो अच्छा है, नहीं तो ऐसी तेरी बहुत बार कब्र बनेगी और तू कभी न सीखेगा, भागता ही रहेगा। खड़ा हो जाना सूत्र है, छाया में ठहर जाना सूत्र है। हम सब धूप में दौड़ रहे हैं। वासना और तृष्णा की गहरी धूप है और हम सब की दौड़ है तो फिर हम चक्र के बाहर नहीं हो सकते।

१६

प्रश्नोत्तर-प्रवचन

प्रश्न : भगवान् महावीर ने इन्द्र को स्पष्ट कहा कि मुझे स्वयं कर्मों से युद्ध करना है। तो भी वह एक देवता को उनकी देख-रेख के लिए नियुक्त कर गए। इस घटना में क्या कोई औचित्य है ?

उत्तर : इसमें दो बातें समझने योग्य हैं। एक तो कर्मों से युद्ध; दूसरा अज्ञान से युद्ध। महावीर इस बात की तैयारी में नहीं थे कि कोई भी उनके संघर्ष में सहयोगी बने। चाहे स्वयं देवता ही सहयोग के लिए क्यों न कहें, महावीर सहयोग के लिए राजी नहीं। उनकी दृष्टि यह है कि खोज में कोई संगी-साथी नहीं हो सकता। अगर खोज में कोई संगी-साथी के लिए रुकेगा तो वह खोज से वंचित रह जाएगा। नितान्त अकेले की खोज है। और जिसे नितान्त अकेले होने का साहस है, वही इस खोज पर जा सकता है। मन तो हमारा चाहता है कि कोई साथ हो, कोई गुरु, कोई मित्र, कोई जानवर, कोई मार्गदर्शक, कोई सहयोगी साथ हो। अकेले होने के लिए हमारा मन नहीं करता है। लेकिन जब तक कोई अकेला नहीं हो सकता तब तक आत्मिक खोज की दशा में इंच भर भी आगे नहीं बढ़ सकता। अकेले होने की शक्ति सबसे कीमती बात है। हम तो दूसरे को साथ लेना चाहेंगे।

महावीर को कोई निमंत्रण देता है आकर कि मुझे साथ ले लो, मैं सहयोगी बन जाऊँगा तो वह सधन्यवाद निमंत्रण वापस लौटा देते हैं। देव इन्द्र कहता है आकर कि मैं सहयोगी बनूँ तो वह कहते हैं : क्षमा करिए ! यह खोज ऐसी नहीं है कि इसमें कोई साथी हो सके। यह खोज नितान्त अकेले की है। क्यों ? यह अकेले का इतना आग्रह क्यों ? अकेले के आग्रह में बड़ी गहरी बातें हैं।

पहली बात यह है कि जब हम दूसरे का साथ माँगते हैं तभी हम कमजोर हो जाते हैं। असल में साथ माँगना ही कमजोरी है। वह हमारा कमजोर चित्त ही है जो कहता है कि साथ चाहिए। और कमजोर चित्त क्या कर पाएगा जो पहले से ही साथ माँगने लगा। तो पहली जरूरत यह है कि हम साथ की कमजोरी छोड़ दें और पूरी तरह जो अकेला हो जाता है, जिसके चित्त से संग की माँग, सहयोग की इच्छा मिट जाती है सारा जगत् उसे संग देने को उत्सुक हो जाता है।

कहानी का दूसरा मतलब है यह कि खुद देवता भी उत्सुक हैं उस व्यक्ति को सहारा देने के लिए जो अकेला खड़ा हो गया। दूसरी ओर जो साथ माँगता है उसे साथ मिलता नहीं—नाममात्र को लोग साथी हो जाते हैं। असल में माँग से कोई साथ पा ही नहीं सकता। लेकिन जो माँगता ही नहीं साथ, जो मिले हुए साथ को भी इन्कार कर देता है, उसके लिए सारे जगत् की शुभ शक्तियाँ आतुर हो जाती हैं साथ देने को। कहानी तो काल्पनिक है, पुराण है, गाथा है किन्तु प्रबोध कथा है। वह कहती है कि जब कोई व्यक्ति नितान्त अकेला खड़ा हो जाता है तो जगत् की सारी शुभ शक्तियाँ उसको साथ देने को आतुर हो जाती हैं। लेकिन अगर ऐसा व्यक्ति उनका साथ लेने को भी तैयार हो जाए तो वह भटक जाता है क्योंकि उसकी यह साथ लेने की बात इस तथ्य की खबर है कि मन के किसी अँधेरे कोने में, संग और साथ की इच्छा शेष रह गई है। इसलिए निमंत्रण तो मिला है महावीर को कि हम साथ देते हैं लेकिन वह कहते हैं कि हम साथ लेते नहीं।

तो जब जगत् की सारी शुभ शक्तियाँ भी साथ देने को तत्पर हों तब भी वैसा आदमी अकेला होने की हिम्मत कायम रखता है। यह बड़ी अप्रेरणा है कि भीतर कहीं छिपा हो कोई भाव, साथी का, संगी का, समाज का, तो वह प्रकट हो जाए। महावीर उसे भी इन्कार कर देते हैं। इस भाँति वे अकेले खड़े हो जाते हैं। और यह इतनी बड़ी घटना है मनोजगत् में व्यक्ति का पूर्णतया अकेले खड़े हो जाना, जिसके मन के किसी भी परत पर किसी तरह के साथ की कोई आकांक्षा नहीं रह गई। यह व्यक्ति एक अर्थ में अद्भुत रूप से मुक्त हो गया है क्योंकि जो हमारी साथ की इच्छा हमें बाँधती है, गहरे में वही हमारा बन्धन है। समाज को छोड़कर भागना बहुत आसान है। लेकिन समाज की इच्छा से मुक्त हो जाना बहुत कठिन है। आदमी अकेला नहीं होना चाहता। कोई भी कारण खोज कर वह किसी के साथ होना चाहता है। अकेले में बहुत

भयभीत होता है कि कोई भी नहीं है, मैं बिल्कुल अकेला हूँ। हालांकि सच्चाई यह है कि जब सब है तब भी हम अकेले हैं। तब भी कौन साथ है किसका ? आस-पास हो सकते हैं, निकट हो सकते हैं, साथ कैसे हो सकते है !

हमारी यात्राएँ अकेली हैं लेकिन हम एक साथ का भ्रम पैदा कर लेते हैं, पति-पत्नी, मित्र-मित्र, गुरु-शिष्य साथ का एक भ्रम पैदा कर लेते हैं। आदमी इसी भ्रम में है कि कोई मेरे साथ है, मैं अकेला नहीं हूँ। दोनों इस भ्रम को पोस कर बड़े सुख में हैं कि कोई साथ है, कोई डर नहीं। लेकिन साथ कौन किसके है ? मैं मरूँगा तो बस मैं मरूँगा, मैं जिऊँगा तो बस मैं जिऊँगा और आज भी अपने मन की गहराइयों मे वहाँ मैं अकेला हूँ। वहाँ कौन साथ है मेरे ? तो जब तक मैं साथ माँगता रहूँगा तब तक मैं अपने मन की गहराइयों में भी नहीं उतर सकता। क्योंकि साथ हो सकता है परिधि पर, केन्द्र पर साथ नहीं हो सकता। वहाँ तो मैं कभी अकेला ही जाऊँगा।

उस परिधि पर, जहाँ हमारे शरीर होते हैं, बस वहीं, उसी तक हम साथ हो सकते हैं। और जो व्यक्ति साथ के लिए आतुर है, वह परिधि पर ही जिएगा, वह कभी केन्द्र पर नहीं सरक सकता। क्योंकि जैसे-जैसे भीतर गया, वैसे-वैसे साथ खोया और गया। अभी हम इतने लोग यहाँ बैठे हैं। हम सब आँख बंद करके शांत हो जाएँ और भीतर जाएँ तो यहाँ एक-एक आदमी ही रह जाता है। सब अकेले रह जाते हैं यहाँ। फिर कोई दूसरा साथ नहीं रह जाता। दो व्यक्ति एक साथ ध्यान में थोड़े ही जा सकते हैं। एक साथ बैठ सकते हैं जाने के लिये, जाएँगे तो अकेले-अकेले। और जैसे भीतर सरके कि वहाँ कोई भी नहीं है, फिर हम अकेले रह गए। जो व्यक्ति साथ के लिए बहुत आतुर है, वह आदमी परिधि के भीतर नहीं जा सकता। साथ को पूरी तरह कोई इन्कार कर दे, अस्वीकार कर दे तो ही वह अपने भीतर जा सकता है। क्योंकि तब परिधि पर होने का कोई रस नहीं रह जाता। यह थोड़ी समझने की बात है।

हम अपनी परिधि पर जीते ही हैं इसलिए कि वहाँ दूसरों के होने की सुविधा है। हम अपने केन्द्र पर इसीलिए नहीं होते कि वहाँ हमारे अकेले होने का उपाय है, वहाँ कोई दूसरा साथ नहीं हो सकता। समाज को छोड़ने का जो मतलब है, वह यह नहीं है कि एक आदमी जंगल में भाग जाए क्योंकि हो सकता है कि जंगल में वह वृक्षों के साथ दोस्ती कर ले, पक्षियों के साथ दोस्ती कर ले, जानवरों के साथ दोस्ती कर ले, पहाड़ों के साथ दोस्ती कर ले। यह सवाल नहीं

कि वह भाग जाए क्योंकि वहाँ भी वह संग खोज लेगा। वहाँ भी वह साथ खोज लेगा। सवाल गहरे में यह है कि कोई व्यक्ति परिधि से भीतर जाने का उपाय करे तो उसे दिखाई पड़ेगा कि परिधि के सम्बन्धों की जो आकांक्षा है, वह छोड़ देनी पड़ेगी। इससे यह सवाल नहीं उठता है कि वह सम्बन्ध तोड़ देगा। सम्बन्ध रह सकते हैं, लेकिन अब उनको कोई आकांक्षा उनके भीतर नहीं रह गई। अब वह परिधि के खेल हैं, और जो लोग परिधि पर जी रहे हैं, वह व्यक्ति उनके लिए परिधि पर खड़ा हुआ भी मालूम पड़ेगा, लेकिन अपने आप में वह अकेला हो गया है, और अपने भीतर जाना शुरू कर दिया है।

महावीर की जो अन्तर्यात्रा है, उसमें चूंकि कोई संगी साथी नहीं हो सकता इसलिए वह सब संग को अस्वीकार कर देते हैं। लेकिन जैसे ही कोई सब संग अस्वीकार करता है जीवन की सारी शक्तियाँ, उसका साथी होना चाहती हैं। जो अकेला है, जो असहाय है, जो असुरक्षित है, जीवन उसके लिए सुरक्षा भी बनता है, सहायता भी बनता है। जीवन के आन्तरिक नियम ऐसे हैं कि अगर पूर्णतया कोई असहाय है तो सारा जीवन उसका सहायक बन जाता है। यह जीवन के भीतरी नियम हैं। यह नियम वैसे ही हैं जैसे कि चुम्बक लोहे को खींच लेता है और हम कभी नहीं पूछते कि क्यों खींच लेता है। हम कहते हैं कि यह नियम है। चुम्बक में ऐसी शक्ति है कि वह लोहे को खींच लेता है। यह भी नियम है कि जो व्यक्ति भीतर में पूर्णतः असहाय खड़ा हो गया, सारे जगत् की सहायता उसकी तरफ चुम्बक की तरह खिचने लगती है। क्यों खिचने लगती है यह सवाल नहीं, यह नियम है। नियम का मतलब यह है कि असहाय होते ही, कोई व्यक्ति बेसहारे नहीं रह जाता, सब सहारे उसके हो जाते हैं। और जब तक कोई अपना सहारा खोज रहा है तब तक वह गहरे अर्थों में असहाय होता है। तो हम ऐसा कुछ करें जिसमें सुरक्षा रहे, असुरक्षित न हो जाएँ क्योंकि असुरक्षित चित्त को ही परमात्मा की सुरक्षा उपलब्ध होती है। जो खुद ही अपनी सुरक्षा कर लेता है, उसे परमात्मा की कोई सुरक्षा उपलब्ध नहीं होती क्योंकि वह परमात्मा के लिए तो मौका ही नहीं दे रहा है। वह तो अपना इन्तजाम खुद कर रहा है

एक कहानी है कि कृष्ण भोजन को बैठे हैं, दो चार कौर लिए हैं और भागे हैं थाली छोड़ कर। रुक्मिणी ने उनसे पूछा : आपको क्या हो गया है ? कहाँ जा रहे है ? लेकिन उन्होंने सुना नहीं। वह द्वार पर चले गए हैं दौड़ कर जैसे कहीं आग लग गई हो। रुक्मिणी भी उठी है, उनके दो चार कदम पीछे

गई है। फिर वह दरवाजे से ठिठक गए, वापस लौट आए। थाली पर बैठकर चुपचाप भोजन करने लगे। रुक्मिणी ने कहा कि मुझे बड़ी पहेली में डाल दिया आपने। एक तो आप ऐसे भागे कि मैंने पूछा : कहाँ जा रहे हैं तो उसका उत्तर देने तक की भी आपको सुविधा न थी। और फिर आप ऐसे दरवाजे से लौट आए कि जैसे कहीं भी न जाना था। हुआ क्या ? तो कृष्ण ने कहा कि मुझे प्रेम करने वाला, मेरा एक प्यारा एक रास्ते से गुजर रहा है। लोग उस पर पत्थर फेंक रहे हैं और वह मंजीरे बजाए चला जा रहा है, मेरा ही गीत गाए चला जा रहा है। लोग पत्थर फेंक रहे हैं। उसने उत्तर भी नहीं दिया है उनका। मन में भी सिर्फ देख रहा है कि वे पत्थर फेंक रहे हैं। खून की धारा बह रही है। तो मेरे जाने की जरूरत पड़ गई थी। इतने बेसहारे के लिए अगर मैं न जाऊँ तो फिर मेरा अर्थ क्या है ? तो रुक्मिणी ने पूछा कि फिर लौट क्यों आए ? उन्होंने कहा कि जब तक मैं दरवाजे पर गया, वह बेसहारा नहीं रह गया था। उसने मंजीरें नीचे फेंक दीं और पत्थर हाथ में उठा लिया। उसने अपना इन्तजाम खुद ही कर लिया। अब मेरी कोई जरूरत नहीं है। उसने मेरे लिए मौका नहीं छोड़ा है।

जब व्यक्ति अपना इन्तजाम स्वयं कर लेता है तो जीवन की शक्तियों के लिए कोई उपाय नहीं रह जाता। और हम सब अपना इन्तजाम स्वयं कर लेते हैं और इसीलिए वंचित रह जाते हैं। संन्यासी का मतलब ही सिर्फ इतना है कि जो अपने लिए इन्तजाम नहीं करता, छोड़ देता है सब इन्तजाम और असुरक्षा में खड़ा हो जाता है। बड़ी कठिन बात है मन को इस बात के लिए राजी करना कि 'असुरक्षा में खड़े हो जाओ, मत करो इन्तजाम।'

मलूक ने कहा है कि पंछी काम नहीं करते, अजगर चाकरी नहीं करता, सबको देने वाले हैं राम। समझी नहीं गई बात। लोगों ने समझा कि बड़े आलस्य की बात सिखाई जा रही है। इसका मतलब हुआ कि कोई कुछ न करे और जैसे पक्षी और अजगर पड़े हैं, ऐसा पड़ा रह जाए। तब तो सब खत्म हो जाए। लेकिन मलूक कुछ आलस्य की बात नहीं कर रहा है। वह कह रहा है कि करो या न करो, भीतर से जैसा पक्षी असुरक्षित है, कि कल का कोई पता नहीं, सांझ का कोई भरोसा नहीं, जैसे अजगर असुरक्षित पड़ा है, कोई इन्तज़ाम नहीं, कोई सुरक्षा नहीं—ऐसा भी चित्त हो सकता है, और जब ऐसा चित्त हो जाता है तो फिर राम ही हो जाता है सहारा, फिर कोई सहारा नहीं

खोजना पड़ता। यह आलस्य की शिक्षा नहीं है, बहुत गहरे में असुरक्षा के स्वीकार की शिक्षा है।

ऐसी असुरक्षा में महावीर असंग खड़े हो गए हैं। न कोई संगी है, न कोई साथी है क्योंकि वह भी हमारी सुरक्षा का उपाय है। एक स्त्री अकेली होने में डरती है। जगत् भय देने वाला है। एक पति चाहिए जो उसकी सुरक्षा बन जाए। पति भी शायद असुरक्षित है क्योंकि स्त्रियाँ उसको आकर्षित करेंगी, स्त्रियाँ उसे खीचेंगी और तब बड़ी असुरक्षा पैदा हो सकती है। इसलिए एक स्त्री चाहिए जो उसे दूसरी स्त्रियों के खिचाव से बचाने के लिए सुरक्षा बन जाए और जो दूसरे खिचावों से रोक सके, और कोई खतरा, कोई उपद्रव जिन्दगी में न हो। जिन्दगी व्यवस्थित हो जाए। जब अहंकार इंतजाम करता है तब परमात्मा को इंतजाम छोड़ देना पड़ता है। जब अहंकार छोड़ देता है तो परमात्मा के हाथ व्यवस्था चली जाती है।

महावीर इसमें किसी तरह के सहयोग, संग, साथ, सुरक्षा लेने को तैयार नहीं हैं। लेकिन फिर बिल्कुल अकेले-अकेले ही खोजेंगे, भटकेंगे, उसमें कुछ हर्ज नहीं है क्योंकि भटकना भी खोज में अनिवार्य हिस्सा है और भटकने में ही वह प्राण, वह चेतना जागती है जो पहुँचाएगी। तो भटकने का कोई भय नहीं है। इसलिए वे सब तरह के सहारे को इन्कार करते हैं। लेकिन ध्यान रहे कि ऐसे व्यक्ति को सब तरह के सहारे स्वयं आकर उपलब्ध होते हैं। जो भागते हैं चीजों के पीछे उन्हीं को वे उपलब्ध नहीं कर पाते और जो ठहर जाते हैं या विपरीत चल पड़ते हैं, उसके पीछे चीजें चलने लगती हैं।

जीवन की गहराइयों में कहीं कोई बहुत शाश्वत नियमों की व्यवस्था भी है। उसमें एक नियम यह भी है कि जिसके पीछे आप भागेंगे, वह आपसे भागता चला जाएगा और जिसका मोह आप छोड़ेंगे और अपनी राह चल पड़ेंगे आप अचानक पाएँगे कि वह आपके पीछे चला आया। धन को जो छोड़ते हैं उनके पास धन चला आता है। मान को जो छोड़ते हैं उनके पास मान की वर्षा होने लगती है। सुरक्षा जो छोड़ते हैं, उन्हें सुरक्षा उपलब्ध हो जाती है। सब जो छोड़ देते हैं, शायद उन्हें सब उपलब्ध हो जाता है। एक घर वे छोड़ते हैं, शायद सब घर उनके हो जाते हैं। जो एक प्रेमी की फिक्र छोड़ देते हैं, शायद सबका प्रेम उनका हो जाता है। और महावीर इसे बहुत देख रहे हैं। इसलिए वह कहीं बीच में कोई पड़ाव नहीं डालना चाहते और इन्द्र के निमन्त्रण को अस्वीकार करने में उनकी यही भावना प्रकट हुई है।

प्रश्न : यह कथा है या फिर वास्तव में बातचीत हुई है इन्द्र और महावीर में ?

उत्तर : नहीं, यह बिल्कुल कथा है।

प्रश्न : तो फिर इसका उल्लेख क्यों आया है कि महावीर ने इन्द्र से बातचीत की।

उत्तर : हम कहानियाँ ही समझ पाते हैं और वह भी तब जब वे ऐतिहासिक हैं, ऐसा कहा जाए। अगर कोई कहानी ऐतिहासिक नहीं तो हम कहेंगे कि बस यह कहानी है। फिर हम उसे समझ ही नहीं पाएँगे।

मैं एक शिविर में एक पहाड़ पर था। एक दिन की बात है। पर्वत के एक शिखर पर सूर्यास्त देखने की इच्छा हुई। बड़ी धूप थी। सूर्य ढल रहा था। दो बहनें मेरे साथ थीं। एक बेंच पर उन्होंने बिठा दिया मुझे। फिर उन्हें चिंता हुई कि बहुत धूप में वे मुझे लाई हैं। दोनों मेरे सामने आकर खड़ी हो गईं और कहा कि हम आपके लिए छाया बनी जाती हैं। मैंने कहा ठीक, मगर एक दिन यह बात ऐतिहासिक तथ्य बन जाएगी कि मैं धूप में था और दो बहनें मेरे लिए छतरी बन गईं। वे मेरे लिए छाया बन गईं। उन्होंने धूप झेली और मैं छाया में बैठा रहा। लेकिन कभी यह उपद्रव की बात हो सकती है कि दो स्त्रियाँ छतरी बन गई थीं।

तो हम काव्य को नहीं समझ पाते। बड़ी जड़ता से हम चीजों को पकड़ते हैं। जो भी अद्भुत व्यक्ति पैदा होता है वह इतना अद्भुत होता है कि उसके आस-पास काव्य बन जाता है, कथाएँ बन जाती हैं। कथाएँ सच हैं, ऐसा नहीं है। व्यक्ति ऐसा था कि उसके आस-पास कथाएँ पैदा होंगी। उसके व्यक्तित्व से ढेर काव्य पैदा होंगे। लेकिन बहुत जल्दी काव्य नहीं रह जाएगा और जब हम उसे जोर से पकड़ लेंगे तब कविता मर जाएगी और तथ्य निकालने की चेष्टा शुरू हो जाएगी। वहीं जाकर जीवन झूठे हो जाते हैं। महावीर का, बुद्ध का, मुहम्मद का, जीसस का—सारा जीवन झूठा हो गया। झूठा होने का कुल कारण इतना है कि जो काव्य था, जो कविता थी और बड़े प्रेम में कही गई थी वह मर गई। और बहुत बार ऐसा होता है।

इतनी अनूठी हैं जीवन की घटनाएँ कि उन्हें शायद तथ्यों में कहा ही नहीं जा सकता। उनके साथ हमें काव्य जोड़ना ही पड़ता है। और जब हम काव्य जोड़ते हैं तभी कठिनाई हो जाती है। जैसा मैंने कहा अभी। मुहम्मद के संबंध

में कहानी है कि जहाँ भी मुहम्मद जाते, एक बदली सदा उनके ऊपर छाया किए रहती। अब जिन लोगों ने भी मुहम्मद को जाना है, जो उनके पास जिए होंगे, उनको लगा होगा कि ऐसे आदमी पर सूरज भी धूप करे, यह ठीक नहीं। ऐसे आदमी पर बदली भी ख्याल रखे यह बिल्कुल ठीक है। यह बड़ा गहरा भाव है जो कवि ने, देखने वाले ने, प्रेम करने वाले ने बदली पर फैला दिया है जो उनके मन में था। कविता तो ठीक थी लेकिन फिर यह तथ्य की तरह हो गई।

तो मैं मानता हूँ कि सभी महापुरुषों के, सभी उन अद्वितीय व्यक्तियों के, आस-पास हजार तरह के काव्य को जन्म मिलता है। उस काव्य को बाद के लोग इतिहास समझ लेते हैं और तब उन व्यक्तियों का जीवन ही झूठा हो जाता है। और अगर हम सिर्फ तथ्य लिखें तो तथ्य रूखे मालूम पड़ते हैं। उन पर काव्य चढ़ाना ही पड़ता है, नहीं तो वह बड़े रूखे-सूखे हो जाते हैं। जैसे समझें हम कि एक व्यक्ति किसी स्त्री को प्रेम करता हो तो प्रेम में वह ऐसी बातें कहे जो तथ्य नहीं है लेकिन फिर भी सत्य हैं। और जरूरी नहीं कि कोई चीज तथ्य न हो तो सत्य न हो। नहीं तो काव्य खत्म ही हो जाएगा, फिर काव्य का कोई सत्य ही नहीं रह जाएगा। और कुछ लोग ऐसे हैं, जैसे प्लेटो। वह कहता है कि कवि नितान्त झूठे हैं और दुनिया से जब तक कविता नहीं मिटती तब तक झूठ नहीं मिटेगा। ऐसे लोग हैं जो कहते हैं कि कविता नितान्त झूठी है। लेकिन उनके विपरीत लोग भी हैं और उनकी पकड़ ज्यादा गहरी है। वे कहते हैं अगर कविता ही झूठी है तो फिर जीवन में कोई सच ही नहीं रह जाता, फिर जीवन सब व्यर्थ है। अब एक युवक एक युवती को प्रेम करता हो तो वह कहता है तेरा चेहरा चाँद की तरह है। अब यह बात बिल्कुल अतथ्य है, इससे झूठी कोई बात हो सकती है क्या ? किसी स्त्री का चेहरा चाँद की तरह कैसे हो सकता है ? अगर आइंस्टीन से जाकर कहो कि हम ऐसा मानते हैं कि एक स्त्री का चेहरा चाँद की तरह है तो वह कहेगा कि तुम पागल हो गए हो। चाँद का इतना वजन है कि एक स्त्री क्या, पृथ्वी की सारी स्त्रियाँ इकट्ठी होकर उस वजन को नहीं झेल पाएँगी। तो स्त्री का चेहरा चाँद-सा कैसे हो सकता है। चाँद पर बड़े खाई-खड्ड हैं। कहाँ का बेहूदा ख्याल तुम्हारे दिमाग में आया है कि तुम एक स्त्री को चाँद-सा बता रहे हो। लेकिन जिसने कहा है, वह फिर भी कहेगा कि नहीं ! चेहरा तो चाँद ही है। असल में वह कुछ और ही कह रहा है। वह कह रहा है कि चाँद को देखकर जैसे मन में छाया छू जाती है, चाँद की धार छूट जाती है, किसी का चेहरा देखकर भी वैसा हो सकता है।

इस कविता को अगर कभी गणित और विज्ञान की कसौटी पर कसने चले गए तो तुम गल्ती में पड़ जाओगे। इसलिए मैं इन सारी बातों को रूपक कथाएँ कहता हूँ जिनके माध्यम से कुछ बातें कही गई हैं जो कि शायद और माध्यम से कही नहीं जा सकतीं।

जीसस से किसी ने पूछा कि आप कहानियाँ क्यों कहते हैं, सीधा क्यों नहीं कह देते। तो जीसस ने कहा कि सीधी बात समझने वाले लोग अभी पैदा कहाँ हुए हैं? तो कहानी कहनी पड़ती है। फिर जीसस ने कहा कि कहानी कहने में एक और फायदा है। जो नहीं समझ पाते उनका नुकसान नहीं होता क्योंकि सिर्फ एक कहानी उन्होंने सुनी है। लेकिन जो समझ पाते हैं वे कहानी में से निकाल लेते हैं जो निकालना था। और कभी-कभी सीधे सत्य नुकसान भी पहुँचा सकते हैं! अगर न समझ में आएँ तो कठिनाई में डाल सकते हैं। क्योंकि उनको कहानी कह कर आप टाल नहीं सकते। तो वे आपकी जिन्दगी पर भारी भी हो सकते हैं। कहानी है तो आप टाल भी देते हैं। लेकिन जो देख सकता है वह खोज लेता है। कहानियाँ सत्य को कहने का एक ढंग हैं कि सत्य रूखा भी न रह जाए, मृत भी न हो जाए, जीवन्त हो जाए। लेकिन अगर नासमझ आदमी के हाथ में कहानियाँ पड़ जाएँ तो वह उनको सत्य बना लेता है। और सत्य बना कर सारे व्यक्तित्व को झूठ कर देता है। तो मैं उनको रूपक कथाएँ, बोध कथाएँ ही कहता हूँ। उनमें बड़ा बोध छिपा है लेकिन वे ऐतिहासिक तथ्य नहीं हैं।

प्रश्न : महावीर ने किसी दूसरे का सहारा लेने से इन्कार कर दिया। सही बात है। लेकिन साथ ही साथ प्रश्न उठता है कि सहारा न लेना जितना महत्त्वपूर्ण है सहारा न देना भी उतना ही महत्त्वपूर्ण होना चाहिए। लेकिन उनकी अभिव्यक्ति और उसके बाद फिर श्रावक, और श्रमण यह सब है—यह दूसरे को सहारा देने वाली बातें हैं। तो इस पहलू पर क्यों नहीं विचार किया गया कि मैं जब सहारा नहीं लेता हूं तो मैं सहारा देने वाला भी कौन हूं?

उत्तर : इसे भी समझना चाहिए। यह महत्त्वपूर्ण प्रश्न है। और साधारणतः ऐसा ही दिखाई पड़ेगा कि अगर कोई व्यक्ति सहारा नहीं ले रहा है तो बिल्कुल ठीक बात यह है कि वह किसी को सहारा भी न दे। यह बिल्कुल तर्कयुक्त मालूम पड़ेगा लेकिन यह तर्क एकदम भ्रान्त है भ्रांति कहाँ है यह समझ लेना चाहिए।

जब हम कहते हैं कि सहारा नहीं लेना है तो इसका कुल मतलब इतना है कि भीतर जाने में मैं किसी को साथ नहीं ले सकता हूँ। भीतर मुझे अकेला ही जाना होगा। अकेले ही जाने का एकमात्र मार्ग है वहाँ पहुँचने का। इसलिए मैं सब सहारे इन्कार करता हूँ। लेकिन अगर यह बात मैं किसी को कहने जाऊँ कि सहारा लोगे तो भटक जाओगे तो एक अर्थ में मैं उसको सहारा दे रहा हूँ और एक अर्थ में उसे सहारे से बचा रहा हूँ। यह दोनों बातें हैं। महावीर जो सहारा दे रहे हैं वह इसी तरह का सहारा है। वह लोगों को कह रहे हैं कि मैं अकेला भीतर गया। जब तक मैंने सहारा पकड़ा तब तक मैं भीतर नहीं गया; तुम भी तो कहीं सहारा नहीं पकड़ रहे हो ? अगर सहारा पकड़ रहे हो तो भीतर नहीं जा सकोगे। "बेसहारे हो जाओ। मैं जो कहता हूँ लोगों से कि किसी विधि से तुम न जा सकोगे यह केवल मैं खबर कर रहा हूँ कि विधि के चक्कर में मत पड़ना, नहीं तो भटक जाओगे। मैं भटका हूँ। यह खबर मैं तुम्हें दे देता हूँ। यह मुझे हक है कि मैं किसी को इतनी बात कह दूँ कि विधि से कभी कोई नहीं पहुँचा है, इसलिए तुम विधि मत पकड़ना। और मेरी भी बात मत पकड़ना। इसको भी तुम खोज-बीन करना क्योंकि इसको भी अगर तुमने पकड़ा तो यह तुम्हारी विधि हो जाएगी।

यूनान के नीचे सिसली एक छोटा सा द्वीप है। वहाँ सूफिस्ट विचारक हुए जो बड़े अद्भुत थे एक अर्थ में और एक अर्थ में बिल्कुल फिजूल थे। अद्भुत इस अर्थ में थे कि जितना तर्क उन्होंने किया किसी ने भी नहीं किया और फिजूल इस अर्थ में थे कि उन्होंने सिर्फ तर्क किया और कुछ भी नहीं किया। तो वे प्रत्येक चीज को खंडित कर सकते थे और प्रत्येक चीज का समर्थन कर सकते थे। क्योंकि उनका कहना था कि कोई भी चीज ऐसी नहीं है जो एक पहलू से खंडित न की जा सके और दूसरे पहलू से समर्थित न की जा सके। इसलिए वे कहते थे कि यह सवाल ही नहीं है कि सत्य क्या है। सवाल यह है कि तुम्हारा दिल क्या है, तुम्हारी मर्जी क्या है ? तो वे कहते थे कि हम पैसे पर भी सत्य को सिद्ध करते हैं। उनको कोई नौकरी पर रख ले तो वह जो कहेगा वे उसको सत्य सिद्ध कर देंगे और कल उससे विपरीत आदमी उनको नौकरी पर रख ले तो वह उसकी बात सिद्ध कर देंगे।

उनका कहना था कि कोई चीज सिद्ध ही नहीं है। जिन्दगी इतनी जटिल है कि उसमें सब पहलू मौजूद हैं और तर्क देने वाला सिर्फ उस पहलू को जोर से ऊपर उठा लेता है जो पहलू वह सिद्ध करना चाहता है और शेष पहलुओं

को पीछे हटा देता है और कुछ भी नहीं करता। लेकिन अगर हमें पूरी जिन्दगी देखनी हो तो हमें ख्याल रखना होगा कि यह बात सच है कि किसी का सहारा कभी मत लेना क्योंकि सहारा भटकाने वाला होगा। और यह बात तो फिर उसके साथ ही जुड़ गई कि मैं आपको सहारा दे रहा हूँ यह बात कह कर। अब आप क्या करेंगे ?

सूफिस्ट एक उदाहरण देते थे कि सिसली से एक आदमी आया और उसने ऐथन्स में आकर कहा कि सिसली में सब लोग झूठ बोलने वाले हैं। तो एक आदमी ने खड़े होकर उससे पूछा कि तुम कहाँ के रहने वाले हो। उसने कहा कि मैं सिसली का रहने वाला हूँ। तो उसने कहा : हम बड़ी मुश्किल में पड़ गए। तुम कहते हो सिसली में सब झूठ बोलने वाले हैं। तुम सिसली के रहने वाले हो। तुम एक झूठ बोलने वाले आदमी हो। अब हम तुम्हारी बात को क्या कहें ? अगर हम यह बात मान लें कि सिसली में कम से कम एक आदमी है जो सच बोलता है तो भी तुम्हारी बात गलत हो जाती है कि सिसली में सब झूठ बोलने वाले लोग हैं। अगर हम तुम्हें झूठ मानते हैं तो मुश्किल हो जाती है। तो एक आदमी ने खड़े होकर कहा कि अब हम करें क्या ? अब उस आदमी को शायद कुछ भी नहीं सूझा कि अब वह क्या करे, क्या कहे ?

जिन्दगी इतनी जटिल है कि दोनों बातें सही हो सकती हैं। सिसली में सब झूठ बोलने वाले लोग भी हो सकते हैं। इस आदमी का वक्तव्य भी सही हो सकता है। क्योंकि सब लोग सब समय झूठ न बोलते हों। बस मौके पर सिसली का यह आदमी झूठ न बोल रहा हो। जिन्दगी इतनी जटिल है कि हम जब कभी उसे एक कोने से पकड़ कर आग्रह करने लगते हैं तभी हमारा आग्रह झूठा हो जाता है।

परसों कोई पूछ रहा था अनेकान्त के लिए। तो इस सन्दर्भ में यह समझ लेना जरूरी है। महावीर कहते हैं कि जीवन के एक पहलू को पकड़कर कोई दावा करे तो यह है एकान्त। एकान्तवादी वह है जिसने जीवन का एक ही कोना देखा है, एक ही कोने को देखकर पूरी जिन्दगी के निष्कर्ष निकाले हैं। इसने सब कोने अभी नहीं देखे हैं। और अगर यह सब कोने देख लेगा तो यह दावा छोड़ देगा। क्योंकि इसे ऐसे कोने मिलेंगे जो ठीक इससे विपरीत हैं और इतने ही सही हैं जितना यह सही है। और तब यह दावा नहीं करेगा। महावीर बड़े अद्‌भुत व्यक्ति हैं। वह कहते हैं कि सत्य का आग्रह भी गलत है क्योंकि

वह भी एकान्त है। क्योंकि सत्य के अनेक पहलू हैं और सत्य इतनी बड़ी बात है कि ठीक एक सत्य से विपरीत सत्य भी सही हो सकता है। इसलिए महावीर कहते हैं कि मैं अनेकान्तवादी हूँ यानी सब एकान्तों को स्वीकार करता हूँ। अगर एक आदमी आकर महावीर को पूछता है: आत्मा शाश्वत है कि अशाश्वत ? तो महावीर कहेंगे शाश्वत भी, अशाश्वत भी। वह आदमी कहेगा कि ये दोनों कैसे हो सकते हैं। तो महावीर कहेंगे : किस कोने में खड़े होकर तुम देखते हो। अगर तुम शरीर को ही आत्मा समझते हो जैसा कि नास्तिक समझता है तो अशाश्वत है। अगर तुम आत्मा को शरीर से भिन्न समझते हो जैसा आत्मवादी समझता है तो आत्मा शाश्वत है और मैं कोई एक वक्तव्य न दूँगा। क्योंकि एक वक्तव्य एकान्त होगा। अनेकान्त का अर्थ है जीवन के सब पहलुओं की एक साथ स्वीकृति।

हम सब कहानी जानते हैं कि एक हाथी के पास पाँच अन्धे खड़े हो गए। और जिसने हाथी का पैर छुआ उसने कहा : हाथी खम्भे की तरह है, केले के वृक्ष की तरह है। जिसने कान छुए उसने कहा कि हाथी गेहूँ साफ करने वाले सूप की तरह है और उन सबने अपने-अपने दावे किए हैं क्योंकि हाथी न तो खम्भे की तरह है, न सूप की तरह है। और हाथी में कुछ है जो सूप की तरह है और कुछ है जो खम्भे की तरह है। महावीर कहते हैं कि अगर कोई आदमी दिया जलाकर वहाँ पहुँच जाए और उन पाँच अन्धों को विवाद करते देखे तो वह आदमी जिसने दिया जला लिया है वह क्या करे, वह किसका साथ दे। वह प्रत्येक अन्धे से कहेगा कि तुम ठीक कहते हो लेकिन पूरा ठीक नहीं कहते हो। और वह प्रत्येक अन्धे से कहेगा कि तुम जिसे विरोधी समझ रहे हो वह तुम्हारा विरोधी नहीं है। वह भी हाथी के एक अंग के बाबत बात कर रहा है। पूरा हाथी—तुम जो कहते हो उन सब का जोड़ और उससे ज्यादा भी है। अगर हर पाँचों अन्धों के अनुभवों को भी हम जोड़ लें तो भी असली हाथी नहीं बनेगा। असली हाथी उन सबके अनुभव से ज्यादा भी है क्योंकि कुछ तो ऐसा है जो कि हाथी ही अनुभव कर सकता है कि वह क्या है, जिसको न अन्धा अनुभव कर सकता है, न दिया जलाने वाला अनुभव कर सकता है। यानी पूरी तरह देख लो हाथी को तो वह भी हाथी नहीं है। हाथी का एक अपना अनुभव है। और हो सकता है कि हाथी का वह अनुभव अगर हाथी कभी कह सके तो न पाँच अन्धों से मेल खाए और न दिए जलाने वाले से मेल खाए।

महावीर कहते हैं कि अनुभव के अनन्त कोण हैं और प्रत्येक कोण पर खड़ा हुआ आदमी सही है। बस भूल यहाँ हो जाती है कि वह अपने कोण को सर्वग्राही बनाना चाहता है। वह कहता है कि जो मैंने जाना, वही ठीक है। और हम जल्दी करते हैं इस बात की कि अगर हमने एक ही कोना जान लिया और पूरी तरह से जान लिया तो हम सोचते हैं कि बस जानना पूरा हो गया।

यहाँ समझ लें कि एक बिजली का बल्ब जला हुआ है। उस बिजली के बल्ब को बुझाना हो तो एक आदमी डंडे से बल्ब को चोट कर दे तो बल्ब बुझ जाएगा। दूसरा आदमी कैंची लाए और वायर को काट दे तो भी बल्ब बुझ जाएगा। तीसरा आदमी बटन दबा दे तो भी बल्ब बुझ जाएगा। जिस आदमी ने वायर काटा वह कह सकता है कि बिजली वायर थी। जिस आदमी ने बल्ब फोड़ा वह आदमी कह सकता है कि बिजली बल्ब थी। तीसरा आदमी कह सकता है कि बटन बिजली थी और वह भी हो सकता है कि बटन भी न दबे, बल्ब भी न फूटे, तार भी कायम रहे और बिजली भी खो जाए। किसी ने यह भी देखा हो तो वह कहेगा कि इस सबमें कोई बिजली नहीं है। ये चारों आदमी अपनी-अपनी दृष्टि से बिल्कुल ही ठीक कह रहे हैं और प्रत्येक की दृष्टि ऐसी लगती है कि दूसरे की दृष्टि के विरोध में है। लेकिन महावीर कहते हैं कि विरोधी दृष्टि ही नहीं है और सब एक दूसरे के परिपूरक हैं और सब एक ही सत्य के कोने हैं। सिर्फ हमारी सीमित दृष्टि के कारण ही यह सब विरोधी दिखाई पड़ रहा है। अगर हम पूरे को देख सकें तो वह भी एक सहयोगी दृष्टि है।

महावीर कहते हैं कि हम सब दृष्टियाँ जोड़ लें तो भी सत्य पूरा नहीं हो जाता क्योंकि और दृष्टियाँ भी हो सकती हैं जो हमारे ख्याल में न हों। इस-लिए महावीर अनेक की सम्भावना रखते हैं, एक का आग्रह नहीं करते। और उसी युग में उनके कम से कम प्रभाव पड़ने का कारण यही था। बुद्ध की एक दृष्टि है। उनकी दृष्टि पक्की है। वह अपनी दृष्टि पर सख्ती से खड़े हैं। उस दृष्टि में वह इंच मात्र यहाँ-वहाँ नहीं हिलते। और जब कोई एक आदमी सख्ती से एक दृष्टि पर बात करता है तो लगता है कि वह आदमी कुछ जानता है; ढीला ढाला नहीं है दिमाग उसका, हर किसी बात में 'हाँ' नहीं कह देता। बहुत साफ दृष्टि है उसकी। अब यह बड़े मजे की बात है कि साफ दृष्टिवाला हम जिसको कहते हैं वह एकान्तवादी होता है। क्योंकि वह बिल्कुल एक बात पक्की कह देता है कि सूप जैसा है हाथी, इसमें रत्ती भर गुंजाइश नहीं रह जाती शक की। और जो इससे अन्यथा कहता है, वह पागल है, नासमझ है, अज्ञानी

है, झूठ है। वह साफ कह देता है और वह बिल्कुल पक्का है। उसने हाथी को सूप की तरह जाना है और बात खत्म हो गई है। लेकिन एक आदमी है जो कहता है : हाथी सूप की तरह भी है, हाथी सूप की तरह नहीं भी है; हाथी खम्भे की तरह भी है, हाथी खम्भे की तरह नहीं भी है। जो सब दृष्टियों में कहता है कि ऐसा भी है, ऐसा नहीं भी है।

मेरे पिता हैं। मुझे निरन्तर बचपन में उनसे बड़ी परेशानी भी रही। मेरी समझ के ही बाहर था यह। मेरे घर में सब तरह के लोग थे। नास्तिक भी थे घर में। कोई कम्युनिस्ट भी था, कोई सोशलिस्ट भी था, कोई कांग्रेसी भी था, बड़ा परिवार भी था। उसमें सब तरह के लोग थे। घर पूरी की पूरी एक तरह की जमात थी जिसमें अपनी-अपनी दृष्टि पर पक्के लोग थे, और जिसको ठीक समझते थे ठीक ही समझते थे, जिसको गलत समझते थे, गलत ही समझते थे। इसमें कोई समझौते का उपाय भी न था। और मैं बहुत हैरान था कि अगर मेरे पिता को जाकर कोई कहे कि ईश्वर नहीं है तो वह कहते कि ठीक कहते हैं। अगर कोई कहे कि ईश्वर है वह कहते कि ठीक कहते हैं। यह मैंने बहुत बार सुना उनके मुख से। सब तरह की बात में स्वीकृति देखी। मैंने उनसे पूछा कि यह बात क्या है ? आप सब बातों को स्वीकार कर लेते हैं यह तो बड़ी मुश्किल बात है। सब ठीक कैसे हो सकती है। उन्होंने कहा कि सत्य बहुत बड़ा है, इतना बड़ा कि वह सबको समा लेता है। उसमें आस्तिक भी समा जाता है, नास्तिक भी। और सत्य अगर इतना छोटा है कि उसमें सिर्फ आस्तिक समाता है तो ऐसे सत्य की कोई जरूरत नहीं।

असत्य बहुत छोटा है, अत्यन्त संकीर्ण है। और सत्य संकीर्ण नहीं हो सकता है। सत्य होगा विराट्। उसमें सब समा जाएँगे। इसलिए सबके लिए 'हाँ' कहा जा सकता है। और कोई चाहे तो सब के लिए 'न' भी कह सकता है। 'न' इसलिए कह सकता है कि कोई भी सत्य पूरे को नहीं घेरेगा। और 'हाँ' इसलिए कह सकता है कि कोई भी सत्य पूरे सत्य का हिस्सा होगा। तो इसलिए जो जानता है वह बड़ी मुश्किल में पड़ जाएगा कि वह क्या कहे, 'हाँ' कहे या 'न' कहे या दोनों कहे, या चुप रह जाए। तो महावीर साफ नहीं मालूम पड़ते। हर किसी बात में 'हाँ' कहते हैं, हर किसी बात में 'न' कहते हैं। इसका मतलब है कि या तो इन्हें पता नहीं या पता है तो साफ-साफ पता नहीं।

२०

प्रश्नोत्तर-प्रवचन

प्रश्न : अन्तर्राष्ट्रीय विचारकों में बुद्ध या कनफ्युसियस का नाम लिया जाता है, महावीर का नाम नहीं लिया जाता है। करोड़ों लोग मिल जाएँगे पृथ्वी पर जिन्होंने महावीर के नाम को कभी नहीं सुना। इतना अद्भुत व्यक्ति और इतने कम लोगों तक उसकी खबर पहुंचे तो इसका क्या कारण हो सकता है ?

उत्तर : ठीक पूछा आपने। इसका कारण है। महावीर वादी नहीं है। और जो वादी नहीं है उसकी बात हमारी समझ में आनी बहुत मुश्किल है। जो वादी नहीं है वह सुबह कुछ, साँझ कुछ, दोपहर कुछ कहेगा। उसका हर वक्तव्य दूसरे वक्तव्य का विरोधी मालूम होगा। और हम चाहते हैं सुसंगति कि वह एक बार जो बात कहे फिर वही कहता रहे। टालस्टाय ने कहा है कि जब मैं जवान था तो मैं सोचता था कि वही असली विचारक है जो सुसंगत चीज कहता है। जब एक चीज कहता है तो उसके विरोध में कभी दूसरी बात नहीं कहता है। लेकिन अब जब मैं बूढ़ा हो गया हूँ तो मैं जानता हूँ कि सुसंगति है, उसने विचार ही नहीं किया क्योंकि जिन्दगी सारे विरोध से भरी है। जो विचार करेगा उसके विचार में भी विरोध आ जाएँगे। वह ऐसा सत्य नहीं कह सकता जो एकांगी, पूर्ण और दावेदार हो। उसके प्रत्येक सत्य की घोषणा में भी झिझक होगी। लेकिन झिझक उसके अज्ञान की सूचक बन जाएगी जबकि झिझक उसके ज्ञान की सूचक है।

अज्ञानी जितनी तीव्रता से दावा करता हैं उतना ज्ञानी के लिए करना मुश्किल है। असल में अज्ञानी सदा दावा करता है, दावा कर सकता है क्योंकि समझ इतनी कम है, देखा इतना कम है, जाना इतना कम है, पहचाना इतना

कम है कि उस कम में वह व्यवस्था बना सकता है। लेकिन जिसने सारा जाना है और जिन्दगी के सब रूप देखे हैं उसे व्यवस्था बनाना मुश्किल है।

महावीर के अनेकान्त का यही अर्थ है कि कोई दृष्टि पूरी नहीं है, कोई दृष्टि विरोधी नहीं है; सब दृष्टियाँ सहयोगी हैं और सब दृष्टियाँ किसी बड़े सत्य में समाहित हो जाती हैं। जो विराट् सत्य को जानता है, न वह किसी के पक्ष में होगा, न वह किसी के विपच्च में होगा। ऐसा व्यक्ति निष्पच्च हो सकता है। यह बड़े मजे की बात है कि सिर्फ वही व्यक्ति, अनेकान्त की जिसकी दृष्टि हो, निष्पच्च हो सकता है और इसलिए मैं कहता हूँ कि जैनी अनेकान्त की दृष्टि वाले लोग नहीं हैं क्योंकि वे पच्च पर हैं, उनका पक्ष है। वे कहते हैं कि हम महावीर के पक्ष में हैं। और महावीर का. कोई पक्ष नहीं हो सकता क्योंकि अनेकान्त जिसकी दृष्टि है, उसका पच्च कहाँ ? सब पक्ष उसके हैं, कोई पक्ष उसका नहीं। सब पक्षों से अनुस्यूत सत्य उसका है लेकिन किसी पक्ष का दावा नहीं। तो महावीर का पक्ष कैसे हो सकता है ?

महावीर को दोहरा नुकसान पहुँचा। पहला नुकसान तो यह पहुँचा कि बहुजन तक उनकी बात नहीं पहुँच सकी। दूसरा नुकसान यह पहुँचा कि जिन तक उनकी बात पहुँची, वे पक्षधर हो गए। कुछ मित्र न बन पाए और जो मित्र बने वे शत्रु सिद्ध हुए। यह इतनी दुर्घटनापूर्ण बात है कि एक तो मित्र न बन पाए बहुत क्योंकि बात ऐसी थी कि इतने मित्र खोजने मुश्किल थे। दूसरे, जो मित्र बने वे शत्रु सिद्ध हुए क्योंकि वे पक्षधर हो गए। और महावीर पच्चधरता के विपरीत हैं।

अब यह बड़े मजे की बात है कि अनेकान्त को भी उनके अनुयायियों ने अनेकान्तवाद बना दिया। अनेकान्त का मतलब है 'वाद' का विरोध क्योंकि 'वाद' हमेशा पक्ष होगा, दृष्टि होगी, नय होगा, एक दावा होगा। वाद का मतलब ही होता है दावा। अनेकान्त को वाद के साथ जोड़ देना, फिर दावा शुरू हो गया। यानी फिर 'अनेकान्त' के पीछे चलने वाले लोगों ने एक नया दावा बनाया जबकि वह दावे का विरोधी था।

इसी ख्याल में यह भी समझ लेना चाहिए कि महावीर शायद हजार दो हजार वर्ष बाद पुनः प्रभावी हो सकें; उनका विचार बहुत से लोगों के काम आ सके। क्योंकि जैसे-जैसे दुनिया आगे बढ़ रही है एक बहुत अद्भुत घटना घट रही है। वह यह है कि 'वादी' चित्त नष्ट हो रहा है; पक्षधर बेमानी होता

जा रहा है। जितनी बुद्धिमत्ता और विवेक बढ़ रहा है उतना आदमी निष्पक्ष होता चला जा रहा है। सम्प्रदाय जाएगा, वाद जाएगा। आज नहीं कल, ज्यादा दिन टिकने वाला नहीं है। जिस दिन 'वाद' चला जाएगा उस दिन हो सकता है कि आज जो नाम बहुत महत्त्वपूर्ण मालूम पड़ते हैं, कम महत्त्वपूर्ण हो जाएँ और जो नाम आज तक एकदम ही गैर महत्त्व का मालूम पड़ रहा है वह एकदम पुनः महत्त्व स्थापित कर ले। लेकिन जैन अगर महावीर के पीछे इसी तरह पड़े रहे तो महावीर के विचार की क्रान्ति सब लोगों तक कभी नहीं पहुँच सकती।

प्रश्न : आन्तरिक जीवन में असुरक्षा का भाव कठिन है लेकिन व्यावहारिक जीवन मे असुरक्षा का भाव कैसे प्रारम्भ किया जा सकता है? यानी यह जो बाह्य जीवन है इसमें असुरक्षा का भाव कैसे प्रारम्भ कर सकते हैं?

उत्तर : असल में सवाल बाहर और भीतर का नहीं है। सवाल इस सत्य को जानने का है कि हम क्या असुरक्षित हैं या सुरक्षित हैं, बाहर या भीतर या कहीं भी। सम्बन्ध सुरक्षित हैं? नहीं। कल जो अपना था, वह आज भी अपना होगा? नहीं। जो आज अपना है, वह कल सुबह अपना होगा? नहीं। सम्मान सुरक्षित है? नहीं। कल जिसके पीछे भीड़ थी, आज वह आदमी जिन्दा है या मर गया इसका भी कोई पता नहीं चल रहा। कौन सी चीज सुरक्षित है? कोई भी नहीं। तो असुरक्षा इस सत्य का बोध है कि जीवन असुरक्षित है। न जन्म का भरोसा, न जीवन का भरोसा, न शरीर का भरोसा, किसी भी चीज का कोई भरोसा नहीं है। इस सत्य का बोध और इस सत्य के बोध के साथ जीना, भीतर और बाहर दोनों तलों पर।

मैं यह नहीं कहता हूँ कि एक आदमी मकान न बनाए। लेकिन मैं यह कहता हूँ कि मकान बनाते वक्त भी जान ले कि असुरक्षा खत्म नहीं होती; असुरक्षा अपनी जगह खड़ी है। मकान रहे तो भी, मकान न रहे तो भी। ज्यादा से ज्यादा जो फर्क पड़ता है, वह इतना कि जिसके पास मकान नहीं है, उसे असुरक्षा प्रतीत होती है, और जिसके पास मकान है, उसे असुरक्षा प्रतीत नहीं होती लेकिन वह खड़ी अपनी जगह है, उससे कोई फर्क नहीं पड़ता है।

गरीब भी असुरक्षित है, अमीर भी। लेकिन अमीर को सुरक्षा का भ्रम पैदा होता है। यह मैं नहीं कहता हूँ कि परिवार न बसाएँ, विवाह न करें, मित्र न बनाएँ। यह मैं नहीं कहता हूँ। यह जानते हुए कि सब असुरक्षित है आपकी

पकड़ नहीं होगी। तब आप जी जान से नहीं पकड़ेंगे क्योंकि आप जानते हैं कि पकड़ो, या न पकड़ो, असुरक्षा अपनी जगह खड़ी है। तब धन भी होगा, आप धनी नहीं हो पाएँगे। क्योंकि धनी होने का कोई कारण नहीं है। तब धन भी होगा और आप दरिद्र बने रहेंगे। क्योंकि आप जानते हैं कि दरिद्रता अपनी जगह खड़ी है; वह धन से नहीं मिट जाती। तब जितना ही अच्छा स्वास्थ्य होगा तो भी मौत भूल नहीं लाएगी क्योंकि आप जानेंगे कि अच्छे या बुरे स्वास्थ्य का सवाल नहीं है। मौत है। वह खड़ी है। वह बीमार के लिए भी खड़ी है, स्वस्थ के लिए भी खड़ी है। असुरक्षा का बोध, असुरक्षा की भावना आपको करनी नहीं है। हम सुरक्षा की भावना कर-करके असुरक्षा के बोध को मिटाते हैं। लेकिन असुरक्षा सत्य है।

अभी मैं भावनगर में था। एक चित्रकार युवक मेरे पास आया। वह कई वर्ष अमेरीका रह कर लौटा है और बड़ी प्रतिभा का युवक है। लेकिन परेशान हो गए हैं माँ-बाप। पत्नी परेशान है। वे सब मेरे पास आए। पत्नी, माँ, बाप, बूढ़े—और यह एक ही लड़का है उनका। उसी पर सब लगा दिया है और अब बड़ी मुश्किल हो गई है। उन्होंने मुझे आकर कहा कि हम बड़ी मुश्किल में पड़ गए हैं। हमारा लड़का बिल्कुल ही व्यर्थ की असुरक्षाओं से परेशान है, व्यर्थ के भय से पीड़ित है। जो घटना कभी नहीं हो सकती उसके साथ वह मरा जा रहा है। यह लड़का अगर बाहर जाए, किसी को अन्धा देख ले तो एकदम घर लौट आता है, बिस्तर पर लेट जाता है, कंपने लगता है और कहता है कि कहीं मैं अंधा न हो जाऊँ। कोई मर जाए पड़ोस में तो उसकी हमें फिक्र नहीं होती जितनी हमें इसकी फिक्र होती है कि इसको पता न चल जाए क्योंकि इसे पता चला कि यह दो चार दिन के लिए बिल्कुल ठंडा हो जाता है और कहता है कि मैं मर तो नहीं जाऊँगा। हम समझा-समझा कर परेशान हो गए। अमेरिका में उसका मनोविश्लेषण भी करवाया है। उससे भी कुछ हित नहीं हुआ। हिन्दुस्तान के भी कुछ डाक्टरों को दिखा चुके हैं, उससे भी कुछ फायदा नहीं हुआ। जिसके पास ले जाते हैं वह कहता है कि ये फिजूल के भय हैं। अभी तुम पूरे जवान हो, कहाँ मर जाओगे, तुम्हारी आँखे बिल्कुल ठीक हैं। हम परीक्षाएँ करवा देते हैं, आँखें तुम्हारी बिल्कुल ठीक हैं। वह कहता है: यह सब तो ठीक है लेकिन क्या यह पक्का है कि आँख ठीक हो तो अन्धा नहीं हो सकता आदमी। क्या यह बिल्कुल पक्का है कि आदमी जवान हो तो नहीं मरता। वह कहता है कि हम यह सब समझ जाते हैं लेकिन फिर भी

भय पकड़ता है। एक आदमी लंगड़ा हो गया है तो मुझे डर लगता है कि मैं लंगड़ा तो नहीं हो जाऊँगा।

वह युवक मेरे पास बैठा है। वह डरा हुआ है। मैंने उसके पिता को, उसकी माँ को, उसकी पत्नी को कहा कि तुम सरासर झूठी बातें इस युवक को सिखा रहे हो। एकदम बिल्कुल झूठी बातें। वह युवक एकदम ठीक कह रहा है। मैंने इतना कहा कि वह युवक जो सिर झुकाए, रीढ़ नीचे किए बैठा था सीधा होकर बैठ गया। उसने सिर ऊँचा किया। उसने मुझे गौर से देखा। उसने कहा, क्या कहते हैं आप कि मैं ठीक कह रहा हूँ। मैंने कहा : हाँ तुम ठीक कह रहे हो। आँख का कोई भरोसा नहीं, जिन्दगी का भी कोई भरोसा नहीं। तुम्हारे माँ-बाप सरासर झूठी बातें करके तुम्हें एक भ्रम में रखना चाहते हैं जबकि तुम सच ही कह रहे हो। लेकिन मैंने कहा कि तुम इससे भागना क्यों चाहते हो ? भाग कहाँ सकते हो ? क्या तुम मरने से बच सकते हो ? कोई रास्ता है बचने का ? उसने कहा कि कैसे बच सकता हूँ ? मैंने कहा कि मृत्यु की जो स्थिति है, इसे स्वीकार कर लेना चाहिए। जिससे बच ही नहीं सकते हो वह मृत्यु है। फिर इसमें चिन्ता की क्या बात है ? उस युवक ने कहा कि नहीं, ऐसी चिन्ता की बात नहीं मालूम होती। लेकिन यह सब मुझे समझाते हैं कि यह बात ही झूठ है। तब मैं द्वन्द्व में पड़ जाता हूँ। उधर मुझे लगता है कि मौत होगी और ये लोग कहते हैं कि नहीं होगी। तो मैं द्वन्द्व में पड़ जाता हूँ। आप कहते हैं मौत होगी।

मैंने कहा बिल्कुल पक्का है। कल सुबह भी पक्का नहीं कि तुम जिन्दा उठोगे। इसलिए आज की रात में ही ठीक से सो जाओ। कल सुबह का कोई भरोसा नहीं। मैंने उससे पूछा कि तुम्हें आँख जाने का डर क्यों है। उसने कहा तो फिर मैं पेन्ट कैसे करूँगा ? अगर मेरी आँख चली गई तो मैं पेन्ट कैसे करूँगा ? मैंने कहा कि जब तक आँख है तब तक पेन्ट करना। क्योंकि आँख का कोई भरोसा नहीं। जब तुम्हारी आँख नहीं होगी तब तुम पेन्ट नहीं कर सकोगे। अभी तुम्हारी आँख है तो भी तुम पेन्ट नहीं कर रहे हो। आँख नहीं होगी इस चिन्ता में नष्ट किए दे रहे हो। आँख खत्म हो सकती है अगर यह पक्का है तो तुम शीघ्रता से पेन्ट करो।

माँ-बाप लाए थे उसे मेरे पास कि मैं उसे आश्वासन दूँ। वे बहुत घबड़ा गए और बोले कि यह आप क्या कर रहे हैं, हम तो और मुश्किल में पड़

जाएँगे। मैंने कहा : मुश्किल में आप नहीं पड़ेंगे। वह युवक दूसरे दिन सुबह मेरे पास आया। उसने कहा कि चार साल बाद मैं पहली बार सो पाया। क्योंकि जब मैंने कहा कि ऐसा है और ऐसा हो सकता है तो अब क्या सवाल है। अब ठीक है। बात खत्म हो गई।

अगर मौत है और उसकी स्वीकृति है तो संघर्ष कहाँ है? मौत है और स्वीकृति नहीं, तो हम मौत नहीं है ऐसे भाव पैदा करते हैं। और इस तरह की व्यवस्था करते हैं कि पता ही न चले कि मौत है। मरघट गाँव के बाहर बनाते हैं कि पता ही न चले कि मौत जिन्दगी का कोई हिस्सा है। गाँव में किसी को पता ही नहीं चलता कि कोई मरता है। मरघट होना चाहिए ठीक गाँव के बीच में जहाँ से दिन में दस बार निकलना पड़े और दस बार खबर आए कि मौत खड़ी है। उसको बनाते हैं गाँव के बाहर ताकि किसी को पता ही न चले कि मौत है। अगर कोई मर जाए तो उनको भेज आते हैं लेकिन जिन्दा आदमी को बचाते हैं। कोई मर जाए, रास्ते से अर्थी निकल रही हो तो बच्चे को माँ भीतर घर में बुला लेती है, दरवाजा बन्द कर लेती है कि अर्थी निकल रही है बेटा, भीतर आ जाओ। जबकि माँ को थोड़ी समझ हो तो बच्चों को बाहर ले आना चाहिए कि बेटा अर्थी निकल रही है, इसको ठीक से देखो और समझो कि कल मैं मरूँगी, परसों तुम मरोगे। यह जीवन का सत्य है। इससे भागने का, बचने का कोई उपाय नहीं है।

असुरक्षा के बोध का यह मतलब है कि उसके अन्दर पूरी चेतनता होनी चाहिए। वह अचेतन में दबा न रह जाए। चेतन हमें ख्याल में हो तो हमारी जिन्दगी बिल्कुल दूसरी हो। जो कुछ चल रहा है उसमें कुछ भी फर्क नहीं होगा लेकिन आप बिल्कुल बदल जाएँगे। आपकी पकड़ बदल जाएगी, आसक्ति बदल जाएगी, राग बदल जाएगा, द्वेष बदल जाएगा, आप दूसरे आदमी हो जाएँगे, क्योंकि क्या राग करना, क्या द्वेष करना? अगर जिन्दगी इतनी असुरक्षित है तो इस सब पागलपन का क्या अर्थ है? क्यों ईर्ष्या करनी? क्यों आकांक्षा करनी? क्यों महत्त्वाकांक्षा? वह बोध आपकी इन सारी चीजों को मिटा देगा।

मेरा सारा जोर इस बात पर है कि अगर हम जीवन के तथ्य को देख लें तो हम सत्य की ओर अपने आप गति कर जाएँगे। हम क्या किये हैं कि तथ्य तक को झुठला दिया है और सब ओर से लीप पोतकर ऐसा कर दिया है कि

वह तथ्य ही नहीं रहा है। और झूठ से सत्य की यात्रा नहीं हो सकती। तथ्य से सत्य तक जाया जा सकता है लेकिन तथ्य को छिपा कर, बदल कर, तोड़-मरोड़ कर, हम कभी सत्य तक नहीं जा सकते।

महावीर भी उसी असुरक्षा के बोध को संन्यास कहते हैं। लेकिन अब जिसको हम संन्यासी कहते हैं, वह हमारा बिल्कुल उल्टा आदमी है। संन्यासी हमारे गृहस्थ से ज्यादा सुरक्षित है। गृहस्थ का दिवाला निकल चुका है, संन्यासी का कोई दिवाला निकलने का कोई सवाल ही नहीं उठता। तो गृहस्थ के ऊपर हजारों चिन्ताएँ और झंझटें हैं। संन्यासी के ऊपर वे चिन्ताएँ और झंझटें नहीं हैं। संन्यासी बिल्कुल सुरक्षित है। अगर आज संन्यासी को हम देखें तो आज जो उल्टी बात दिखाई पड़ती है वह यह कि संन्यासी ज्यादा सुरक्षित है। उसे न बाजार के भाव से कोई चिन्ता है, न किसी दूसरी बात से कोई चिन्ता है। उसे न कोई दिक्कत है, न कोई कठिनाई है। खाने-पीने का सब इन्तजाम है, भक्त है, समाज हैं, मन्दिर हैं, आश्रम हैं। सब इन्तजाम है। संन्यासी इस समय सबसे ज्यादा सुरक्षित है जबकि संन्यासी का मतलब यह है कि जिसने सुरक्षा का मोह छोड़ दिया, जो इस बोध के प्रति जाग गया कि सभी असुरक्षित है और जब सुरक्षा के ख्याल में भी नहीं रहा, अब जो असुरक्षा में ही जीने लगा, कल की बात ही नहीं करता, भविष्य का विचार ही नहीं करता, योजना नहीं बनाता, बस क्षण-क्षण जिए चला जाता है, जो होना होगा, वह उसके लिए राजी है। मौत आए तो राजी है, जीवन हो तो राजी है, दुःख हो तो राजी है, सुख हो तो राजी है। ऐसी चित्त-दशा का नाम संन्यास है और ऐसा व्यक्ति अगृही है। अगर बहुत गहरे में खोजने जाएँ तो सुरक्षा 'गृह' है, असुरक्षा 'अगृह' है! सुरक्षा में जीने वाला, सुरक्षा में जीने की व्यवस्था करने वाला 'गृहस्थ' है। सुरक्षा में न जीने वाला, असुरक्षा की स्वीकृति में जीने वाला संन्यासी है, अगृही है।

इस सम्बन्ध में एक प्रश्न किसी ने पूछा है कि महावीर ने संन्यासियों से यह क्यों कहा कि तुम गृहस्थों को विनय मत देना, उनको तुम नमस्कार मत करना, उनका तुम आदर मत करना। यह बात महावीर ने क्यों कही? इसे संन्यासी और गृहस्थ के बीच बना लेने से भूल हो जाती है। असल में अगर हम बहुत ध्यान से देखें तो जो असुरक्षित व्यक्ति है, वह ऐसे जी रहा है जैसे हवा-पानी जी रहा है। वह जो सुरक्षा के भ्रम में, सपने में और नींद में खोया है वह ऐसा ही है जैसे कोई कहे जागे हुए आदमी को कि तू सोए हुए आदमी

को नमस्कार मत करना। क्योंकि कहीं ऐसा न हो कि आदर उसके सोए हुए होने को और बढ़ाए। लगता तो ऐसा है लेकिन महावीर के पीछे आने वाले साधुओं ने उसका दूसरा ही मतलब निकाला है। उन्होंने इसे बिल्कुल अहंकार की प्रतिष्ठा बना ली है। यानी वे कुछ ऊँचे हैं, अहंकार में प्रतिष्ठित हैं, सम्मानित हैं, पूज्य हैं, दूसरे को उनकी पूजा करनी है। लेकिन बड़े मजे की बात है कि महावीर ने यह कहीं नहीं कहा कि साधु गृहस्थ से पूजा ले, संन्यासी गृहस्थ से विनय माँगे। इतना ही कहा है कि गृहस्थ को अगृही विनय न दे। क्योंकि गृहस्थ से मतलब ही इतना है कि जो अज्ञान में घिरा हुआ खड़ा है इसके अज्ञान की तृप्ति को जगह-जगह से गिराना जरूरी है। इसके अहंकार को बढ़ाना उचित नहीं है।

अहंकार न बढ़ जाए गृही का इसलिए महावीर कहते हैं कि साधु उसे विनय न दे। लेकिन उन्हें पता नहीं था शायद कि उनका साधु ही इसको अहंकार का पोषण बना लेगा और साधु ही इस अहंकार में जीने लगेगा कि उसे पूजा मिलनी चाहिए और वह अविनीत हो जाएगा। महावीर की कल्पना भी नहीं है कि साधु अविनीत हो सकता है, इसलिए वह कहते हैं कि साधुता का तो मतलब ही है पूर्ण विनम्रता में जीना चौबीस घंटे। यानी कोई न भी हो पास में तो भी विनम्रता में ही जीना। वह तो साधुता का मतलब ही है। क्योंकि साधुता का मतलब है सरलता और सरलता अविनम्र कैसे होगी ?

महावीर को यह कल्पना ही नहीं कि साधु भी अविनम्र हो सकता है। हाँ, गृहस्थ अविनम्र हो सकता है क्योंकि वह अहंकार में जीता है, वहीं उसका घर है। उसे विनय मत देना। लेकिन भूल हो गई। मालूम होता है कि भूल ऐसी हो गई कि उन्हें पता नहीं कि साधु भी एक प्रकार का गृहस्थ हो सकता है। इसका कोई ख्याल नहीं है उन्हें कि साधु भी बदला हुआ गृहस्थ हो सकता है। सिर्फ कपड़े बदल कर साधु हो सकता है और उसकी चित्तवृत्तियों की सारी माँग वही हो सकती है जो गृहस्थ की है। असल बात यह है कि जिसे हम गृहस्थ कह रहे हैं वह तो गृहस्थ है लेकिन जिसे हम साधु कह रहे हैं, वह साधु नहीं है।

जापान के एक सम्राट् ने एक बार अपने वजीरों को कहा कि तुम जाकर पता लगाओ कि अगर कहीं कोई साधु हो तो मैं उससे मिलना चाहता हूँ। वजीरों ने कहा कि यह बहुत मुश्किल काम है। सम्राट् ने कहा मुश्किल ? मैं

तो रोज सड़क से भिक्षुओं को, साधुओं को निकलते देखता हूँ। वजीरों ने कहा कि यह बहुत कठिन है, वर्षों लग सकते हैं। फिर भी हम खोज करेंगे। उन्होंने बहुत खोज-बीन की। आखिर वह खबर लाए कि एक पहाड़ पर एक बूढ़ा है। वह आदमी साधु है। सम्राट् वहाँ गया। वह बूढ़ा एक वृक्ष के पास दोनों पैर फैलाए हुए आराम से बैठा था। सम्राट् जाकर खड़ा हो गया। साधु ने न तो उठकर सम्राट् को नमस्कार किया जैसी सम्राट् की अपेक्षा थी, न उसने पैर सिकोड़े। वह पैर फैलाए ही बैठा रहा। न उसने इसकी कोई फिक्र की कि सम्राट् आया है। वह जैसा बैठा था, बैठा रहा। सम्राट् ने कहा: आप जाग तो रहे हैं न? खड़े होकर नमस्कार करने का शिष्टाचार भी नहीं निभाते हैं आप! पैर फैलाकर अशिष्ट ग्रामीणों की तरह बैठे हैं? मैं तो यह सुनकर आया कि मैं एक साधु के पास जा रहा हूँ। वह बूढ़ा खूब खिलखिलाकर हँसने लगा। उसने कहा कि कौन सम्राट् और कौन साधु? यह सब नींद के हिस्से हैं। कौन किसको आदर दे? कौन किससे आदर ले? अगर साधु के पास आना हो तो सम्राट् होना छोड़कर आओ। क्योंकि सम्राट् और साधु का मेल कैसे होगा? बड़ा मुश्किल हो जाएगा। तुम कहीं पहाड़ पर खड़े हो, हम कहीं गड्ढे में विश्राम कर रहे हैं। मेल कहाँ होगा? मुलाकात कैसे होगी? साधु से मिलना है तो सम्राट् होना छोड़ कर आओ। और रही पैर सिकोड़ने, फैलाने की बात। अगर शरीर पर ही नजर है तो यहाँ तक आने की कोशिश व्यर्थ हुई। अगर इसी पर ही दृष्टि अटकी है तो नाहक तुम यहाँ चढ़े, वापिस लौट जाओ।

सम्राट् को सुन कर लगा कि आदमी असाधारण है। उसके पास कुछ दिन रुका, उसके जीवन को देखा, परखा, पहचाना, बहुत आनन्दित हुआ। जाते वक्त एक बहुमूल्य मखमल का कोट, जिसमें लाखों रुपयों के हीरे-जवाहरात जड़े थे, भेंट करना चाहा। उस साधु ने कहा कि तुम भेंट करो और मैं न लूँ तो तुम दुखी होगे। लेकिन तुम तो भेंट करके चले जाओगे। इस जंगल के पशु-पक्षी ही यहाँ मेरे जान-पहचान के हैं। यह सब मुझ पर बहुत हँसेंगे कि बुढ़ापे में भी मुझे बचपन सूझा है। तुम सोचते हो कि करोड़ों की चीज दिए जा रहे हो, लेकिन वे आँखें कहाँ हैं जो इसको करोड़ों का समझती हैं। इधर मैं निपट अकेला हूँ। यह पशु-पक्षी मेरे साथी हैं। ये इनको कंकड़-पत्थर समझेंगे और मुझको पागल समझेंगे। यह कोट तो ले जाओ। किसी दिन कोई बहुमूल्य चीज तुम्हें लगे तो ले आना जिसको यहाँ भी बहुमूल्य समझा जा सके। ये पक्षी, ये आकाश, ये चाँद और तारे भी जिसे बहुमूल्य समझें।

सम्राट् वापस लौटा। उसने अपने वजीरों से कहा कि उन्हें कुछ न कुछ तो भेंट देनी ही चाहिए। लेकिन ऐसी कौन सी बहुमूल्य चीज है जिसे मैं वहां ले जा सकूं। तो उन वजीरों ने कहा कि वह तो सिर्फ आप ही हो सकते हैं। लेकिन आपको बदल कर जाना पड़ेगा, साधु होकर जाना पड़ेगा क्योंकि वह बहुमूल्य चीज सिर्फ साधुता ही हो सकती है जो उस पहाड़ पर, उस एकान्त जंगल में भी पहचानी जा सके। आदमी के मूल्य तो राजधानी की सड़कों पर पहचाने जा सकते हैं। परमात्मा के मूल्य एकान्त में ही पहचाने जा सकते हैं। जहाँ कोई भी पारखी नहीं है वहीं वे परखे जा सकते हैं। साधुता का अर्थ ही खो गया है आजकल। जो साधु के नाम से बैठे हैं वे आमतौर से बदले हुए गृहस्थ हैं, जिन्होंने कपड़े बदल लिए हैं मगर गृहस्थी का ही काम कर रहे हैं।

एक साधु मुझसे मिलने आए। मैंने उनसे कहा कि आप मुँहपट्टी क्यों बांधे हुए हैं? यह सच में आपको लगती है कुछ बांधने जैसी? उन्होंने कहा: बिल्कुल नहीं लगती। मैंने कहा कि इसे छोड़ दें आप। उन्होंने कहा कि अगर छोड़ दें तो कल खाने, पीने का क्या होगा? कौन सम्मान देगा? यह मुँहपट्टी की वजह से सब व्यवस्था है। यह गई कि सब व्यवस्था चली जाएगी।

अब यह मुँह-पट्टी की व्यवस्था का इन्तजाम है। हम मुँह-पट्टी बांधते हैं, हम गेरूआ वस्त्र पहनते हैं क्योंकि ये सब हमारी सुरक्षा के साधन हैं। जैसे हम कुछ इन्तजाम कर रहे हैं, ऐसा यह साधु भी इन्तजाम कर रहा है। यह भी हिम्मत करने को राजी नहीं है कि खड़ा हो जाय कि कोई दे देगा तो ठीक, नहीं देगा तो ठीक; रोटी मिलेगी तो ठीक, नहीं मिलेगी तो ठीक। इतनी हिम्मत जुटाकर खड़ा न हो जाए तो इसे गृहस्थ से भिन्न कहने का क्या कारण है? सिर्फ एक ही कारण है कि गृहस्थ दूसरों का शोषण करता है, यह गृहस्थों का शोषण करता है। गृहस्थ शोषण करता है तो वह उसकी वजह से पापी हुआ जा रहा है। और यह उन पापियों का शोषण करता है तो उसकी वजह से पापी नहीं हो रहा है। यह किसी बन्धन में नहीं है। इसने बंधन में न होने का भी इन्तजाम किया हुआ है। लेकिन इन्तजाम ही बन्धन है यह इसे ख्याल में नहीं है।

तो यह साधु की जो कल्पना महावीर के मन में है, उस कल्पना का साधु इतना विनम्र होगा कि उसे विनीत होने की जरूरत ही नहीं है। विनीत होना पड़ता है सिर्फ अहंकारियों को। वह इतना सरल होगा कि कौन साधु है, कौन गृहस्थ है इसकी पहचान मुश्किल हो जाएगी। लेकिन जो उन्होंने कहा है, वह

सिर्फ यह है कि मूर्छित व्यक्ति को, जागृत व्यक्ति सम्मान न दे। लेकिन मजा यह है कि बिना इसकी फिक्र किए कि हम जागृत है या नहीं, सम्मान न दिया जाए तो सब गड़बड़ हो जाता है। उसमें आधी शर्त ख्याल में रखी गई है कि जागृत व्यक्ति मूर्छित को सम्मान न दे। दूसरा व्यक्ति मूर्छित है, यह पक्का है ? लेकिन हम जागृत हैं या नहीं, यह अगर पक्का नहीं है तो शर्त कहाँ पूरी हो रही है ? और दूसरा मूर्छित है यह पता भी हमें तभी चल सकता है जब हम जागृत हों। लेकिन पता ही नहीं चलता है कि आदमी सोया हुआ है। अब दस आदमी कमरे में सोए हुए हैं तो सिर्फ जागे हुए आदमी को ही पता चल सकता है कि बाकी लोग सोए हुए हैं। सोए हुए को पता नहीं चल सकता कि कौन सोया हुआ है और जागृत व्यक्ति को कैसी विनम्रता, कैसा अविनय, यह सवाल ही नहीं है। पर ध्यान उनका यही है कि मूर्छित को सम्मान कम हो, अमूर्छित को सम्मान हो ताकि समाज अमूर्छा की ओर बढ़े और व्यक्ति अमूर्छित दिशा को तरफ अग्रसर हो। साधु के लिए सम्मान का बड़ा ध्यान उन्होंने किया है सिर्फ इसीलिए कि साधु वह है जो सम्मान नहीं माँगता। जो समाज ऐसे व्यक्तियों को सम्मान देता है, वह समाज धीरे-धीरे निरहंकारिता की ओर बढ़ने का कदम उठा रहा है।

२१

प्रश्नोत्तर-प्रवचन

प्रश्न : महावीर प्राकृत भाषा में क्यों बोले ? संस्कृत में क्यों नहीं ?

उत्तर : यह प्रश्न सच में गहरा है। संस्कृत कभी भी लोकभाषा नहीं थी। सदा से पंडित की भाषा रही—दार्शनिक की, विचार की। प्राकृत लोकभाषा थी—साधारण जन की, अशिक्षित की, ग्रामीण की।। शब्द भी बड़े अद्‌भुत हैं। प्रकृति का मतलब है स्वाभाविक: संस्कृत का मतलब है परिष्कृत। प्रकृति से ही जो परिष्कृत रूप हुए थे, वे संस्कृत बने। प्राकृत मूलभाषा है। संस्कृत उसका परिष्कार है। इसलिए संस्कृत शब्द शुरू हुआ उस भाषा के लिए जो परिष्कृत थी।

संस्कृत धीरे-धीरे इतनी परिष्कृत होती चली गई कि वह अत्यन्त थोड़े से लोगों की भाषा रह गई। लेकिन पंडित, पुरोहित के यह हित में है कि जीवन में जो कुछ भी मूल्यवान् है वह सब ऐसी भाषा में हो जिसे साधारण जन न समझ सके। साधारण जन जिस भाषा को समझता हो, अगर वह उस भाषा में होगा तो पंडित पुरोहित और गुरु बहुत गहरे अर्थों में अनावश्यक हो जाएँगे। उनकी आवश्यकता शास्त्र का अर्थ करने में है। साधारण जन की भाषा में हों अगर सारी बातें होंगी तो पंडित का क्या प्रयोजन ? वह किस बात का अर्थ करे ? पुराने जमाने में विवाद को हम कहते थे शास्त्रार्थ। शास्त्रार्थ का मतलब है—शास्त्र का अर्थ। दो पंडित लड़ते हैं। विवाद यह नहीं है कि सत्य क्या है। विवाद यह है कि शास्त्र का अर्थ क्या है ?

पुराना सारा विवाद सत्य के लिए नहीं है, शास्त्र के अर्थ के लिए है कि व्याख्या क्या है शास्त्र की ? इतनी दुरूह और इतनी परिष्कृत शब्दावली विकसित की गई जो साधारण जन की हैसियत के बाहर है और जिस बात को

साधारण जन कम से कम समझ पाए, वह अनिवार्य-रूपेण जनता का नेता और गुरु हो सकता है। इसलिए इस देश में दो परम्पराएँ चल पड़ीं। एक परम्परा थी जो संस्कृत में ही लिखती और सोचती थी। वह बहुत थोड़े से लोगों की थी। एक प्रतिशत लोगों का भी उसमें हाथ न था। बाकी सब दर्शक थे। ज्ञान का जो आन्दोलन चलता था वह बहुत थोड़े से अभिजातवर्गीय लोगों का था। जनता अनिवार्य रूप से अज्ञान में रहने को बाध्य थी। महावीर और बुद्ध—दोनों ने जन-भाषाओं का उपयोग किया। जिस भाषा में लोग बोलते थे उसी भाषा में वे बोले। और शायद यह भी एक कारण है कि हिन्दू ग्रन्थों में महावीर के नाम का कोई उल्लेख नहीं है। न उल्लेख होने का कारण है क्योंकि संस्कृत में न उन्होंने कोई शास्त्रार्थ किए, न उन्होंने कोई दर्शन विकसित किया। न उनके ऊपर, उनके सम्बन्ध में, कोई शास्त्र निर्मित हुआ। आज भी हिन्दुस्तान में अँग्रेजी दो प्रतिशत लोगों की अभिजात भाषा है। हो सकता है कि मैं हिन्दी में ही बोलता चला जाऊँ तो दो प्रतिशत लोगों को यह पता ही न चले कि मैं भी कुछ बोल रहा हूँ। वे अँग्रेजी में पढ़ने और सुनने के आदी हैं।

महावीर चूँकि अत्यन्त जन-भाषा में बोले, इन पंडितों का जो वर्ग था, उसने उनको बाहर ही रखा। जनसाधारण ग्राम्य ही थे, उनको उसने भीतर नहीं लिया। इसलिए किसी भी हिन्दू ग्रन्थ में महावीर का उल्लेख नहीं है। यह बड़े आश्चर्य की बात है कि महावीर जैसी प्रतिभा का व्यक्ति पैदा हो और देश की सबसे बड़ी परम्परा में, उसके शास्त्र में, उस समय के लिपिबद्ध ग्रन्थों में उसका कोई उल्लेख भी न हो, विरोध में भी नहीं। अगर कोई हिन्दू ग्रन्थों को पढ़े तो शक होगा कि महावीर जैसा व्यक्ति कभी हुआ भी या नहीं। अकल्पनीय मालूम पड़ता है कि ऐसे व्यक्ति का नाम भी नहीं है।

मैं उसके बुनियादी कारणों में एक कारण यह मानता हूँ कि महावीर उस भाषा में बोल रहे हैं जो जनता की है। पंडितों से शायद उनका बहुत कम सम्पर्क बन पाया। हो सकता है कि हजारों पंडित अपरिचित ही रहे हों कि यह आदमी क्या बोलता है। क्योंकि पंडितों का अपना एक अभिजात भाव है। वे साधारण जन नहीं हैं। वे साधारण जन की भाषा में न बोलते हैं न सोचते हैं। वे असाधारण जन हैं। वे चुने हुए लोग हैं। उन चुने हुए लोगों की दुनिया का सब कुछ न्यारा है। साधारण जन से कुछ लेना-देना नहीं। साधारण जन तो भवन के बाहर हैं, मन्दिर के बाहर हैं। कभी-कभी दया करके, कृपा करके साधारण जन को भी वे कुछ बता देते हैं। लेकिन गहरी और गम्भीर चर्चा

तो वहाँ मन्दिर के भीतर चल रही है जहाँ साधारण जन को प्रवेश निषिद्ध है।

महावीर और बुद्ध की बड़ी से बड़ी क्रान्तियों में एक क्रान्ति यह भी है कि उन्होंने धर्म को ठेठ बाजार में लाकर खड़ा कर दिया, ठेठ गाँव के बीच। वह किसी भवन के भीतर बन्द चुने हुए लोगों की बात न रही, वह सबकी—जो सुन सकता है, जो समझ सकता है, बात हो गई।

इसलिए उन्होंने संस्कृत का उपयोग नहीं किया। और भी कई कारण हैं। असल में प्रत्येक भाषा जो किसी परम्परा से सम्बद्ध हो जाती है, उसके अपने सम्बन्ध हो जाते हैं। उसका प्रत्येक शब्द एक निहित अर्थ ले लेता है। और उसके किसी भी शब्द का प्रयोग खतरे से खाली नहीं है। क्योंकि जब उस शब्द का प्रयोग करते हैं तो उस शब्द के साथ जुड़ी हुई परम्परा का सारा भाव पीछे खड़ा हो जाता है। इस अर्थ में जनता की जो सीधी-सादी भाषा है, वह अद्भुत है। वह काम करने की, व्यवहार करने की, जीवन की भाषा है। उसमें बहुत शब्द ऐसे हैं जिनको नए अर्थ दिए जा सकते हैं। और महावीर को जरूरी था कि वह जैसा सोच रहे थे, वैसे अर्थ के लिए नई शब्दावली लें। कठिन था कि वह संस्कृत शब्दावली को उपयोग में ला सकें। क्योंकि संस्कृत सैकड़ों वर्षों से, हजारों वर्षों से, परम्पराबद्ध विचार की एक विशेष दिशा में काम कर रही थी। उसके प्रत्येक शब्द का अर्थ निश्चित हो गया था। तो उचित यह था कि ठीक अनपढ़ जनता की भाषा को सीधा उठा लिया जाए। उसे नए अर्थ, नए तराश, नए कोने दिए जा सकते थे। तो उन्होंने सीधी जनता की भाषा उठा ली और उस जनता की भाषा में अद्भुत चमत्कारपूर्ण व्यवस्था दी।

यह इस बात का भी प्रमाण हो सकता है कि महावीर का मन, शास्त्रीय नहीं है। कुछ लोग ऐसे होते हैं जिनका मन शास्त्रीय होता है, जो सोचते हैं शास्त्र में, समझते हैं शास्त्र में, जीते हैं शास्त्र में। शास्त्र के बाहर उन्हें कोई जीवन लगता ही नहीं। अगर उनकी बातचीत सुनने जाएँगे तो पता चलेगा कि शास्त्र के बाहर कहीं कुछ है ही नहीं, और शास्त्र बड़ी संकीर्ण चीज है, जिन्दगी बड़ी विराट् चीज है। उनके प्रश्न भी उठते हैं तो जिन्दगी से नहीं आते, किताब से आते हैं। वे अगर कुछ पूछेंगे भी तो वह इसलिए कि उन्होंने किताबें पढ़ी हैं। उनकी सीधी जिन्दगी से कोई प्रश्न नहीं उठते। और इस लिहाज से यह बड़ी हैरानी की बात है कि कभी ग्रामीण से ग्रामीण व्यक्ति भी

जीवन से सम्बन्धित प्रश्नों की बात उठा देता है जबकि पंडित से वैसी आशा असम्भव है।

पंडित प्रश्न भी उधार ही पूछता है यानी प्रश्न भी उसका अपना नहीं होता। उत्तर तो बहुत दूर की बात है। वह प्रश्न भी उसने किताब में पढ़ा होगा। और जब वह प्रश्न पूछता है तब उसके पास उत्तर तैयार होता है। यानी वह आपसे कोई बड़े प्रश्न के उत्तर की आकांक्षा नहीं कर रहा है। वह शायद आपका परीक्षण ही कर रहा है कि आपको भी यह उत्तर पता है या नहीं। उत्तर भी उसके पास है, प्रश्न भी उसके पास है। प्रश्न से भी पहले वह उत्तर को पकड़ कर बैठा हुआ है। और अब वह जो प्रश्न उठा रहा है, वह प्रामाणिक नहीं है, उत्तर प्राणों से नहीं आ रहे हैं।

तो शास्त्रीय लोग भी हैं जिनकी सारी जिन्दगी किताबों के द्वन्द्व-फंदों के भीतर गुजरती है। महावीर खुली जिन्दगी के पक्षपात हैं, खुले आकाश के नीचे नग्न खड़े हैं। खुली जिन्दगी, सच्ची जिन्दगी, जैसी है वह उसको छूना चाहते हैं, इसलिए शास्त्र को बिल्कुल हटा देते हैं, शास्त्रीयता को बिल्कुल हटा देते हैं, शास्त्रीय व्यवस्था को ही हटा देते हैं और हमेशा ऐसी जरूरत पड़ जाती है कि कुछ लोग वापिस जिन्दगी का हमें स्मरण दिलाएँ। नहीं तो किताबें बड़ी खतरनाक हैं। धीरे-धीरे हम यह भूल ही जाते हैं कि जिन्दगी कुछ और है और किताब कुछ और है। एक घोड़ा वह है जो बाहर सड़क पर चल रहा है।

एक घोड़ा वह है जो शब्दकोष में लिखा हुआ है। जिन्दगी भर जो किताब में उलझे रहते हैं, वे किताब के घोड़े को ही असली घोड़ा समझने लगें तो आश्चर्य नहीं है। यहाँ, इतना जरूर है कि किताब के घोड़े पर चढ़ने की भूल कोई कभी नहीं करता। लेकिन किताब के परमात्मा पर प्रार्थना करने की भूल निरन्तर हो जाती है। किताब का परमात्मा इतना ही सही मालूम पड़ने लगता है जितना कि असली परमात्मा होगा। लेकिन किताब का परमात्मा बात ही और है। शब्द 'आग' आग नहीं है। किसी मकान पर 'आग' लिख देने से मकान नहीं जल जाता। 'आग' बात ही और है। 'आग' तो कुछ बात ऐसी है कि 'आग' शब्द भी जल जाएगा उसमें। वह भी नहीं बच सकेगा। लेकिन भूल होने का डर है कि शब्द 'आग' को कहीं हम 'आग' न समझ लें और शब्द 'परमात्मा' को कहीं हम परमात्मा न समझ लें। और जो शब्दों की दुनिया में जीते हैं, उनमें यह भूल होती ही है। उन्हें याद ही नहीं रह जाता कि कब जिन्दगी से वे खिसक गए हैं और एक शब्दों की दुनिया में भटक गए हैं।

पंडित का अपना जगत् है। महावीर उस शब्द जाल से भी बाहर आ जाना चाहते हैं। इसलिए पंडित का शब्द-जाल है संस्कृत का। आम जनता की बातचीत तो सीधी-सादी है उसमें जाल नहीं है। न व्याख्या है, न परिभाषा है। जिंदगी को इंगित करने वाले शब्द हैं। तो उन्होंने वे शब्द पकड़ लिए और सीधी जनता से बात शुरू कर दी। वह जनता के आदमी हैं। इन अर्थों में वे पंडित नहीं है। और उन्होंने यह भी न चाहा कि उनके शास्त्र निर्मित हों।

किसी ने पूछा भी है एक सवाल कि महावीर के बहुत पूर्व काल से लिखने की कला विकसित हो गई थी और जैन कहते हैं कि खुद प्रथम तीर्थंकर ने लोगों को लिखने की कला सिखाई। प्रथम तीर्थंकर को हुए कितना काल व्यतीत हो चुका था। लोग लिखना जानते थे, पढ़ना जानते थे, किताब बन सकती थी फिर महावीर के जीते जी महावीर ने जो कहा उसका शास्त्र क्यों नहीं बना?

हमें ऐसा लगता है कि लिखने की कला न हो तो शास्त्र निर्मित होने में बाधा पड़ती है। लिखने की कला हो तो शास्त्र निर्मित होना ही चाहिए। मेरी अपनी दृष्टि यह है कि महावीर चूँकि शास्त्रीय-बुद्धि नहीं है, उन्होंने नहीं चाहा होगा कि उनका शास्त्र निर्मित हो और जब तक उनका बल चला शास्त्र न बन पाये। शास्त्रीय व्यक्ति की बुद्धि जीवन से पृथक् होकर शब्दों की दुनिया में प्रवेश कर जाती है और एक विचित्र काल्पनिक लोक में भटकने लगती है। तो महावीर ने सुनिश्चित रूप से, शास्त्र को रोकने की कोशिश की होगी। इसलिए मर जाने के दो-तीन चार सौ वर्षों तक, जब तक लोगों को उनका स्पष्ट स्मरण रहा होगा कि शास्त्र नहीं लिखने हैं तब तक शास्त्र नहीं लिखा जा सका होगा। लेकिन हमारा मोह भारी है, हम प्रत्येक चीज को स्मृति में रख लेना चाहते हैं। तो कहीं ऐसा न हो कि महावीर का कहा हुआ विस्मरण हो जाए; कहीं ऐसा न हो कि महावीर विस्मरण हो जाएँ, तो हमारे पास उपाय क्या है? हम लिपिबद्ध कर लें, शास्त्रबद्ध कर लें, फिर नहीं खोएगा। महावीर खो जाएँगे लेकिन शास्त्र बचेगा। लेकिन कभी हमें सोचना चाहिए कि जब महावीर जैसे जीवन्त व्यक्ति भी खो जाते हैं तो शास्त्र को तुम बचा कर क्या महावीर को बचा सकोगे।

महावीर जैसे व्यक्ति तो यही उचित समझेंगे कि जब व्यक्ति ही विदा हो जाता है, और वहाँ चीजें परिवर्तनीय हैं, सभी आती हैं और चली जाती हैं वहाँ कुछ भी स्थिर न हो, वहाँ शब्द और शास्त्र भी स्थिर न हों, वह भी खो जाएँ। क्योंकि जीवन का नियम जब यह है—जन्म लेना और मर जाना, होना और

मिट जाना, और महावीर को भी जब वह जीवन का नियम नहीं छोड़ता है तो महावीर की वाणी पर भी यह क्यों न लागू हो ?

हम क्यों आशा बाँधें कि हम शब्दों को बचा कर महावीर को बचा लेंगे। क्या बचेगा हमारे हाथ में ? अंगारा कभी नहीं बचता। अंगारा तो बुझ ही जाता है। राख बच जाती है। अंगारे को आप सदा नहीं रख सकते; राख को आप सदा रख सकते हैं। राख बड़ी सुविधापूर्ण है। अंगारे को थोड़ी देर रखा जा सकता है। क्योंकि वह जीवन्त है इसलिए वह बुझेगा। असल में अंगारा जिस क्षण चलना शुरू हुआ है, उसी क्षण बुझना भी शुरू हो गया है। एक पर्त जल गई है, वह राख हो गई है। दूसरी पर्त जल रही है, वह राख हो रही है। तीसरी पर्त जलेगी, वह राख हो जाएगी। अंगार जो है वह थोड़ी देर में राख हो जाएगा। राख बचाई जा सकती है करोड़ों वर्षों तक क्योंकि राख मृत है। हम उसे बाँध कर रख सकते हैं और खतरा यह है कि कभी हम राख को कहीं अंगार न समझ लें। कभी राख अंगार थी लेकिन राख बनी ही तब जब अंगार 'न' हो गया। अब इसमें सोचने की दो बातें हैं।

राख अंगार थी और राख अंगार नहीं थी। राख अंगार थी—इसका मतलब यह हुआ कि अंगार से ही राख आई है। अंगार के जीने से ही राख का आना हुआ है। लेकिन एक अर्थ में राख कभी भी अंगार नहीं थी क्योंकि जहाँ-जहाँ राख हो गई थी, वहाँ-वहाँ अंगार तिरोहित हो गया था। राख जो है वह जीवित अंगार की छूटी हुई छाया है। अंगार तो गया, राख हाथ में रह गई। राख को संजोकर रखा जा सकता है।

महावीर ने चाहा होगा कि राख को मत बचाना। क्योंकि असली सवाल अंगार का है। वह तो बचेगा नहीं। उसे तो तुम संभाल नहीं सकोगे। राख संभाल कर रख लोगे। और कल यह धोखा होगा तुम्हारे मन को कि यही है अंगार। और तब इतनी बड़ी भ्रान्ति पैदा होगी जितनी महावीर की सब वाणी खो जाए तो भी पैदा होने को नहीं है। हिम्मतवर आदमी रहे होंगे। अपनी स्मृति के लिए कोई व्यवस्था न करना बड़े साहस की बात है। मृत्यु के विरोध में हम सभी यह उपाय करते हैं कि किसी तरह तो मरेंगे—लेकिन किसी तरह स्मृति की एक रेखा हमारे पीछे रह जाए, बची ही रहे। फिर वह शब्द जो पत्थर पर लगा हुआ नाम है, शास्त्र है, रह जाए।

हमारा मन न मरने की आकांक्षा करता है। न मरने के लिए हम कुछ व्यवस्था कर जाते हैं। महावीर ने जीते जी न मरने की कोई व्यवस्था नहीं की

है। क्योंकि महावीर की दृष्टि में जो मरने वाला है, वह मरेगा ही। जो नहीं मरने वाला है वह नहीं मरता है। और जो मरने वाले को बचाने की कोशिश करते हैं वे बड़ी भ्रान्ति में पड़ जाते हैं। वह अक्सर राख को अंगार समझ लेते हैं।

शास्त्र से जो धर्म है, वह राख है। जीवन में जो धर्म है, वह अंगार है। तो जीते जी उन्होंने शास्त्र निर्मित नहीं होने दिया। तीन चार सौ वर्षों तक, जब तक कि लोगों को ख्याल रहा होगा उस आदमी का, उसके निषेध का, उसके इन्कार का, तब तक उन्होंने प्रलोभन को रोका होगा लेकिन जब वह स्मृति शिथिल पड़ गई होगी, धीरे-धीरे विस्मरण के गर्त में चली गई होगी, तब उनके सामने सबसे बड़ा सवाल यही रह गया होगा कि हम कैसे सुरक्षित कर लें जो भी उन्होंने कहा।

यह ध्यान रखने की बात है कि आज तक जगत् में जो भी महत्वपूर्ण है, जो भी सत्य है, जो भी सुन्दर है, वह लिखा नहीं गया है, वह कहा हो गया है। कहने में एक बड़ी जीवन्त बात है, लिखने में वह मुर्दा हो जाती है। क्योंकि जब हम कहते हैं तो कोई जीवन्त सामने होता है जिससे कहते हैं। अकेले में तो कह नहीं सकते, लिखने वाले के समक्ष कोई भी मौजूद नहीं है, सिर्फ लिखने वाला मौजूद है। बोलने वाले के समक्ष, बोलने वाले से भी ज्यादा सुनने वाला मौजूद है। और एक जीवन्त सम्पर्क है। इस जीवन्त सम्पर्क के कारण न तो उन्होंने शास्त्रों की भाषा उपयोग की, न शास्त्रीयता का उपयोग किया; न अपने पीछे शास्त्र की रेखा बनने दी।

और लोकमानस का, सामान्य जन का बहुत पुराना संघर्ष है यह जोकि अभी पूर्ण नहीं हो पाया है। ऐसी धारणा रही है कि धर्म थोड़े से चुने हुए लोगों की बात है। और सत्य थोड़े से लोगों की समझ की बात है। मुझसे लोग आकर कहते हैं कि आप ऐसी बातें लोगों से मत कहिए। ये बातें तो थोड़े लोगों के लिए हैं। सामान्य आदमी को मत कहिए। सामान्य आदमी इनसे भटक जाएगा। अब यह बड़े मजे की बात है कि सामान्य आदमी को सत्य भटकाता है और असत्य मार्ग पर लाता है। और मेरी दृष्टि यह है कि वह बेचारा सामान्य हो इसीलिए है कि उसे सत्य की कोई खबर नहीं मिलती।

प्रश्न : क्या अनधिकारी को ज्ञान नहीं मिलना चाहिए ?

उत्तर : कोई भी अनधिकारी नहीं है ज्ञान की दृष्टि से। कौन निर्णायक है कि कौन अधिकारी है। निर्णय कौन करेगा ? फूल नहीं कहता कि अधिकारी

को सौन्दर्य दिखाई पड़ेगा, अधिकारी को सुगंध देंगे। सूरज नहीं कहता कि अधिकारी को प्रकाश मिलेगा। स्वांस नहीं कहती कि अधिकारी के हृदय में पलूँगा ? खून नहीं कहता कि अधिकारी के भीतर बहूँगा। जगत् अधिकारी की मांग नहीं करता। सिर्फ ज्ञान के सम्बन्ध में पंडित कहता है कि अधिकारी पहले पक्का हो जाए। क्यों ? सारा जीवन अनधिकारी को मिला हुआ है, सिर्फ ज्ञान भर अधिकारी को मिलेगा। तो भगवान् बड़ा नासमझ है। अनधिकारियों को जीवन देता है और पंडित बड़ा समझदार है। और अधिकारी को पक्का कर ले तब ज्ञान देगा।

अधिकारी की बात ही अत्यन्त व्यापारिक और तरकीब की बात है। तब वह उसको देना चाह रहा है, जिससे उसे कुछ मिलता हो। वह मिलना किसी भी तल पर हो सकता है। इज्जत, आदर, श्रद्धा, धन, मान-सम्मान, किसी भी तरकीब से उसको देगा जिससे कुछ मिलने का पक्का होगा। और उसको देगा, जो उसका अपना है। सबको नहीं देगा खुले हाथ। अपरिचित, अनजान, अजनबी ले जाए, ऐसा नहीं देगा। इसी वजह से ज्ञान को गुरु-शिष्य की परम्परा में बांधने की तरकीब है। उस तरकीब में कभी भी ज्ञान विस्तीर्ण नहीं हो सका।

एडीसन को अगर पता चल गया कि बिजली कैसे बनता है तो वह ज्ञान सबके लिए हो गया। और एडीशन ने नहीं पूछा कि अधिकारी कौन है जिसके घर में बिजली जले। वह सबके लिए खुली किताब हो गई, जो भी उपयोग में लाना चाहें, ले आए। विज्ञान इसीलिए जीता है धर्म के खिलाफ कि धर्म था थोड़े से लोगों के हाथ में, और विज्ञान ने सत्य दे दिया सबके हाथ में। विज्ञान की जीत का कारण यह है कि विज्ञान ने पहली दफा ज्ञान को सार्वलौकिक बना दिया। और धार्मिक लोगों ने ज्ञान को बना लिया बिल्कुल ही सीमित दायरे में रहने वाला यानी सोच-विचार कर किसको देना, किसको नहीं देना। और कई बार ऐसा होता है कि जानने वाला आदमी पात्र को, अधिकारी को खोजते-खोजते ही मर जाता है और उसे अधिकारी नहीं मिल पाता है।

मैंने सुना है कि एक फकीर हिमालय की तराई पर रहता था और नब्बे वर्ष का हो गया था। कई बार लोगों ने आकर कहा कि हमें ज्ञान दो, पर उसने कहा कि अधिकारी के सिवाय ज्ञान तो किसी को नहीं मिल सकता। अधिकारी लाओ। शर्तें उसकी ऐसी थीं कि वैसा आदमी पूरी पृथ्वी पर खोजना

मुश्किल था। अधिकारी की शर्तें ऐसी थीं। यानी ऐसा ही है कि जैसे कोई डाक्टर किसी से कहे कि हम बीमार को दवा नहीं देते, हम तो स्वस्थ आदमी को दवा देंगे। स्वस्थ आदमी ले आओ। अब मेरी अपनी समझ है कि स्वस्थ आदमी डाक्टर के पास जाएगा ही नहीं। अधिकारी जो हो गया है, वह किसी से लेने क्यों जाएगा? क्योंकि जिस दिन अधिकार उपलब्ध होता है उसी दिन अपनी उपलब्धि हो जाती है। जिस दिन पात्रता पूरी होती है। उसी दिन परमात्मा खुद ही उतर आता है। अनधिकारी ही खोजता है। अधिकारी खोजेगा ही क्यों? अधिकारी का मतलब है कि जिसका अधिकार हो गया। अब तो ज्ञान उसे मिलेगा ही। वह सीधी माँग कर सकता है इस बात की। तो अधिकारी किसी के पास नहीं जाता है।

तो लोग थक गये थे। फिर वह बूढ़ा हो गया, बहुत बूढ़ा। फिर एक दिन उसने एक आदमी को जो रास्ते से गुजर रहा था, कहा: सुनो! ज्यादा नहीं, मैं तीन दिन में मर जाऊँगा। गाँव में जितने लोगों को खबर हो सके, पहुँचा दो। जिसको भी ज्ञान चाहिए वह एकदम चला आए। उस आदमी ने कहा लेकिन मेरा गाँव बहुत छोटा है, अधिकारी वहाँ कोई भी नहीं। फकीर ने कहा, अब अधिकारी, गैर-अधिकारी का सवाल नहीं रहा। क्योंकि तीन दिन बाद मैं मर जाने को हूँ। जाओ, जो भी आए, उसको ले आओ। वह आदमी गाँव में गया, और डोंडी पीट दी। उस बूढ़े से तो लोगों का कभी कुछ सम्बन्ध नहीं था। फिर भी किसी को दूकान पर आज काम नहीं था तो उसने कहा कि चलो, मैं भी चल सकता हूँ। किसी की पत्नी मर गई थी तो उसने कहा कि चलो, हम भी चलते हैं। किसी को कुछ और हो गया था। कोई दस बारह लोग मिल गए और वे पहाड़ पर चढ़कर वहाँ जा पहुँचे। लेकिन वह जो ले जा रहा था मन में बड़ा चिन्तित था कि इन सबको वह फौरन ही बाहर निकाल देगा। इनमें कोई भी अधिकारी नहीं है, कोई भी पात्र नहीं है। उसने डरते-डरते जाकर कहा कि दस-बारह लोग आए हैं लेकिन मुझे शक है कि कोई आपके अधिकार के नियम में उतरेगा। फकीर ने कहा: वह बात ही मत करो। एक-एक को भीतर लाओ। तो उसने पूछा: आपने अब अधिकार की बात छोड़ दी। तो फकीर ने कहा कि सच बात यह है कि जब तक मेरे पास कुछ नहीं था, तब तक मैं इस भाँति अपने को बचाता था कि अनधिकारी को कैसे दूँ? मेरे पास ही नहीं था देने को कुछ। लेकिन यह मानने की हिम्मत नहीं पड़ती थी कि मेरे पास कुछ नहीं है। तो मैंने यह तरकीब निकाली थी कि पात्र कहाँ है

जिसको मैं दूं। लेकिन अब जब मुझे ज्ञान हो गया है, तब प्राण ऐसे आतुर हैं कि कोई अपात्र भी आ जाए तो उसको लेकर पात्र हो जाएगा क्योंकि अपात्र रह कैसे सकेगा ? तो अब मेरी फिक्र नहीं है कि तुम किसको लाते हो।

महावीर ने इस सम्बन्ध में बड़ी भारी क्रान्ति की। ठेठ बाजार में पहुँचा दी सारी बात। इससे क्रोध भी बहुत हुआ। रहस्य की बातें तो हैं ये। पंडित का धंधा चलता था कि बातें गुप्त थीं। आप जानते हैं कि जब डाक्टर प्रिसक्रिप्शन लिखता है दवाई का तो लैटिन और ग्रीक-भाषा का उपयोग करता है, सीधी-सादी अंग्रेजी का भी उपयोग नहीं करता, हिन्दी की तो बात दूर है। लैटिन और ग्रीक शब्दों का उपयोग दवाइयों के नाम के लिए किया जाता है। कारण कि अगर आपको उसका ठीक-ठीक नाम, पता चल जाए तो आप उसके लिए पाँच रुपये देने को राजी नहीं होंगे। आपको वह दवा बाजार में दो पैसे में मिल सकती है। रहस्य यह है कि जो उसने लिखा है, वह आपकी पकड़ के बाहर है। हो सकता है उसने लिखा हो अजवाइन। लेकिन लिखा है लैटिन में। अजवाइन का सत तो हम घर में ही निकाल लेंगे। इसके लिए लिए हम पाँच या दस रुपए क्यों देंगे बाजार में ? लेकिन अजवाइन का सत लिखा है ग्रीक में। आपको पता चलता नहीं कि क्या मतलब है ? आप दो पैसे की चीज को पाँच या दस रुपए में खरीद कर लाते हैं।

पूरा मेडिकल धन्धा बेईमानी का है। क्योंकि अगर सीधी-सीधी बातें लिख दी जाएँ तो सब दवाई की दूकानें खत्म होने के करीब पहुँच जाएँ। क्योंकि दवाइयाँ बहुत सस्ती हैं और उन्हीं चीजों से बनी हैं जो बाजार में आम मिल रही हैं लेकिन एक तरकीब उपयोग की जा रही है निरन्तर कि नाम अंग्रेजी में भी नहीं हैं, लैटिन और ग्रीक में हैं। अंग्रेजी पढ़ा लिखा आदमी भी नहीं समझ सकता। डाक्टर जिस ढंग से लिखते हैं, वह ढंग भी कारण है उसमें। यानी वह लैटिन और ग्रीक भी आप ठीक से नहीं समझ सकते कि वह क्या लिखा हुआ है। वह भी सिर्फ दूकानदार ही समझता है जो बेचता है दवा। वह भी शायद नहीं समझता है। बड़े अज्ञान में काम चलता है। मैंने सुना है कि एक आदमी को किसी डाक्टर की चिट्ठी आई थी। किसी डाक्टर ने चिट्ठी लिखी थी। घर पर उसने भोज बुलाया हुआ था और डाक्टर नहीं आ सकता था तो उसने क्षमा माँगी थी लेकिन निरन्तर आदत के बस उसने उसी ढंग से लिखा दिया था, जैसा वह प्रिस्क्रिप्शन लिखता था। उस आदमी ने बहुत पढ़ा। उसे समझ में नहीं आया कि वह आ रहा है कि नहीं आ रहा है।

तो उसने सोचा कि छोड़ो, मेरी समझ में नहीं आएगा, जरा चल कर केमिस्ट को दिखा लूँ। वह तो कम से कम डाक्टरों की भाषा समझता है। वह बता देगा कि क्या लिखा है। उसने जाकर वह चिट्ठी एक केमिस्ट को दी। केमिस्ट ने चिट्ठी देखी : कहा रुकिए, भीतर गया। दो बोतलें निकाल कर ले आया। उसने कहा : माफ करिए! बोतल का सवाल ही नहीं है। इसमें सिर्फ उसने क्षमा माँगी है कि मैं आज भोज में आ सकूँगा, कि नहीं। यह मेरी समझ में नहीं आ रहा है कि बात क्या है? यह सारा का सारा खेल चलता है।

तो पंडित ने एक तरकीब निकाली है बहुत पुराने दिन से। वह यह कि जनता की भाषा में सीधी-सीधी बात मत कहना कभी भी। उसको ऐसी शब्दावली में कहना कि वह रहस्य हो जाए, वह उसकी समझ से बाहर पड़ जाए और तब लोग तुमसे समझने आएँगे। इसलिए दुनिया में दो तरह के लोग हुए हैं। एक जो जीवन के रहस्य के लिए द्वार बनाना चाहते हैं ताकि प्रत्येक के लिए द्वार खुल जाए और एक जीवन में जो रहस्य नहीं भी है, उसको जबर-दस्ती चारों तरफ से गोल-गोल करके उसे ऐसी स्थिति में खड़ा कर देना चाहते हैं कि वह किसी के लिए सीधा-सरल तथ्य न रह जाए।

उमर खय्याम ने लिखा है कि जब मैं जवान था तो साधुओं के पास गया, ज्ञानियों के पास गया, पंडितों के पास गया। और उसी दरवाजे से बाहर आया जिस दरवाजे से भीतर गया था, क्योंकि मेरी कुछ पकड़ में ही नहीं पड़ा कि वहाँ क्या हो रहा है। वही का वही वापस लौटा जो मैं था क्योंकि मेरी कुछ पकड़ में नहीं पड़ा कि वहाँ क्या हो रहा है? कौन शब्द वहाँ चल रहा है? किन शब्दों की वे बातें कर रहे हैं? किन लोगों की वे चर्चा कर रहे हैं? जीवन से उनका कोई सम्पर्क नहीं है।

महावीर की क्रान्तियों में एक क्रान्ति यह भी है कि उन्होंने धर्म के गुह्य रूप को जो छिपा हुआ था, उघड़ा हुआ कर दिया। इसलिए पंडित उन पर नाराज रहे हों तो कोई आश्चर्य नहीं। क्योंकि उन्होंने वह काम किया जैसे कोई डाक्टर सीधी हिन्दी में लिखने लगे कि अजवाइन का सत ले आओ तो दूसरे सारे डाक्टर उस पर नाराज हो जाएँगे कि तुम क्या कर रहे हो, तुम सब धंधा चौपट करवा दोगे। तो महावीर पर पंडितों की नाराजगी बड़ी अर्थपूर्ण है। इसलिए उन्होंने सीधी-सीधी जनभाषा का उपयोग किया है, शास्त्रों की भाषा को एकदम छोड़ दिया है जैसे कि शास्त्र हों ही नहीं। महावीर इस तरह बोल रहे हैं कि जैसे शास्त्र रहे ही नहीं। उनका वह उल्लेख भी नहीं करते। ऐसा

नहीं है कि उन शास्त्रों में कुछ भी न था। उन शास्त्रों में बहुत कुछ था। और महावीर जो कह रहे हैं वह यह है कि कोई खोज करेगा तो उसे शास्त्रों में भी मिल जाएगा, लेकिन महावीर उन शास्त्रों को बीच में लाना ही नहीं चाहते क्योंकि उन शास्त्रों को लाते ही शास्त्रीयता आती हैं, पांडित्य आता है, सारी दूकान आती है, सारी व्यवस्था आती है। वह ऐसे बोल रहे हैं जैसे कि कोई पहला आदमी जमीन पर खड़ा होकर बोल रहा हो जिसको किसी शास्त्र का कोई पता भी न हो।

प्रश्न : गोशालक की कथा का क्या महत्त्व है? महावीर ने प्रथम दो मुनियों को न बचा कर तीसरे को ही क्यों बचाया?

उत्तर : असल में कहानियों को समझना बहुत मुश्किल होता है क्योंकि वे प्रतीक हैं। और उन प्रतीकों में बड़ी बातें हैं जो खोली जाएँ तो ख्याल में आ सकती हैं, न खोली जाएँ तो बड़ी कठिनाइयां पैदा करती हैं। महावीर पर गोशालक ने तेजोलेश्या का प्रयोग किया है। वह एक ऐसी मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया का, एक योग का प्रयोग कर रहा है कि जिसमें कोई भी जल जाए और भस्म हो जाए। महावीर को बचाने के लिए एक साधु उठा, वह नष्ट हो गया। दूसरा उठा वह मर गया। महावीर देखते रहे। तीसरा उठा उसको महावीर ने रोक लिया। क्या दो के समय महावीर तटस्थ रहे और तीसरे के समय तटस्थता छोड़ दी? यानी दो के समय उनमें कोई करुणा न आई। तीसरे के समय उन पर करुणा आ गई। अगर रोकना था तो पहली ही बार रोक देना था ताकि दो व्यक्ति न मर पाते। या नहीं रोकना था, तटस्थ ही रहना था तो तटस्थ ही रहना था। कोई मरता या जीता, इसकी चिन्ता न थी।

इसमें बहुत बातें हो सकती हैं। पहली बात यह कि व्यक्ति किसलिए उठा, यह बड़ा महत्त्वपूर्ण है। जो व्यक्ति उठा पहले, जरूरी नहीं कि महावीर को बचाने उठा हो। सिर्फ दिखाने उठा हो कि मैं बचा सकता हूँ, सिर्फ अहंकार से उठा हो और अहंकार को कोई भी नहीं बचा सकता, महावीर भी नहीं बचा सकते हैं। अहंकार तो जलेगा और नष्ट होगा। कहानी तो सीधी-सीधी होती है लेकिन पीछे हमें उतरने की जरूरत होती है। पहला आदमी किसलिए उठा? क्या वह यह सोचता है कि क्या करेगा गोशालक मेरा? मैं उससे ज्यादा प्रबल हूँ; अभी उसे पछाड़ कर रख दूँगा। तो महावीर चुपचाप बैठे रहे होंगे। क्योंकि असल में वहाँ एक महावीर का साधु और दूसरा गोशालक—ऐसा नहीं रहा होगा। वहाँ दो गोशालक थे। दो अहंकार थे जो लड़ने को खड़े हो गए।

महावीर चुप रह गए। चुप रहना ही पड़ा होगा और कोई उपाय न रहा होगा। तीसरे व्यक्ति के सम्बन्ध में हो सकता है कि वह किसी अहंकार से न उठा हो। विनम्र सीधा-साधा आदमी रहा हो, सिर्फ आहूति देने उठा हो। एक व्यक्ति और मरे, इतनी देर भी महावीर जी जाएँ, इसलिए उठा हो। महावीर ने रोका उसे।

असल में कहानी सब नहीं कह पाती और हजारों साल से चलने के बाद रूखे तथ्य हाथ में रह जाते हैं जिनके पीछे की सब व्यवस्था साथ में नहीं रह जाती। क्या कारण होगा ? लेकिन अगर महावीर को हम समझ सकते हैं तो हमें बहुत कठिनाई नहीं मालूम पड़ती। जिन दो व्यक्तियों को बचाने के लिए वे कुछ नहीं कहें हैं, वे दो व्यक्ति ऐसे होंगे जिनको बचाने के लिए कुछ किया ही नहीं जा सकता होगा। वे दो व्यक्ति ऐसे होंगे जो महावीर के लिये खड़े ही नहीं हो रहे हैं, अपने लिए ही खड़े हो रहे हैं जो गोशालक को भी कुछ दिखा देना चाहते हैं कि हम भी कुछ हैं। तो महावीर के पास सिवाय दर्शक होने के और कोई उपाय नहीं रहा होगा। तीसरे व्यक्ति को उन्होंने रोका, तो इसका मतलब यह हो सकता है कि तीसरा व्यक्ति अहंकार से उठा हो, सिर्फ इसलिए कि जितनी देर तक मैं मरूँगा उतनी देर तक महावीर बचते हैं। वह इतनी विनम्रता से उठा हो कि महावीर को कुछ कहना पड़ा, रोकना पड़ा।

महावीर के चित्त में क्या हुआ यह समझना हमें कठिन हो जाता है। क्योंकि हम ऊपर से तथ्य देखते हैं—कि दो को मर जाने दिया, एक को बचा लिया। हमें ख्याल में नहीं आता कि भीतर क्या कारण हो सकता है। भीतर से महावीर देखते खड़े होंगे तो सिवाय इसके कुछ भी नहीं दिखाई पड़ा होगा। उन दोनों के प्रति भी करुणा रही हो क्योंकि महावीर के लिए करुणा कोई शर्तबंद चीज नहीं है कि इस व्यक्ति के लिए रहेगी और उनके लिए नहीं रहेगी। लेकिन वे दोनों करुणा के पात्र रहे होंगे। महावीर यह भी जानते होंगे कि उन्हें रोकने से कोई मतलब नहीं है। क्योंकि कुछ लोग हैं जो रोकने से और बढ़ते हैं। न रोके जाएँ तो शायद रुक जाएँ। अंहकारी व्यक्ति ऐसा ही होता है। उसे रोको तो और तेज होता है। तो महावीर चुप रहे होंगे। एक घटना से मैं तुम्हें समझाऊँ।

मैं जब पढ़ता था तो एक युवक मेरे साथ पढ़ता था। उसका एक बंगाली लड़की से प्रेम था। इतना दीवाना था, इतना पागल था कि वह दो साल

यूनिवर्सिटी छोड़ कर कलकत्ता जाकर रहा, ताकि ठीक बंगाली हावभाव, बंगाली भाषा, बंगाली कपड़ा, बंगाली उठना-बैठना, सब बंगाली हो जाए। वह दो साल बाद बंगाली होकर लौटा और इतना बंगाली हो गया कि हिन्दी भी बोलता तो ऐसे बोलता जैसे बंगाली हिन्दी बोलता है। लेकिन ठीक वक्त पर उस लड़की ने इन्कार कर दिया। उस लड़की को मैंने पूछा कि क्या बात हो गई है? इन्कारी का क्या कारण है? तो उस लड़की ने कहा कि वह मेरे पीछे इतना पागल है और इतनी गुलाम वृत्ति से भरा हुआ है कि ऐसे गुलाम को पति बनाना मुझे पसन्द नहीं है। व्यक्ति ऐसा तो चाहिए जिसमें कुछ तो अपना हो, कुछ व्यक्तित्व तो हो?

अब बड़ी मजेदार घटना घटी। वह बेचारा इसलिए झुका चला आ रहा था और सब स्वीकार करता चला जाता था कि लड़की उसे पसन्द करे। वह लड़की कहे रात तो रात, दिन तो दिन—ऐसा सब भाव ले लिया था लेकिन यही कारण उस लड़की का विवाह से इन्कार करने का था। उसने इन्कार कर दिया। एक रात मुझे खबर आई, नौ बजे होंगे कि उसने कमरे में अपने को बंद कर लिया है, ताला अन्दर से लगा लिया है और जो भी बाहर से कहे 'दरवाजा खोलो' तो वह कहता है कि मेरी लाश निकलेगी, अब मुझसे बात मत करो। अब जिन्दा मेरे निकलने की कोई जरूरत नहीं है। यह बात फैल गई। भीड़ इकट्ठी हो गई। सब प्रियजन इकट्ठे हो गए। बूढ़ा बाप रोया। जितना रोया उतनी उसकी जिद्द बढ़ती गई। मुझे खबर आई, मैं गया। मैंने देखा वहाँ बाहर का सब इन्तजाम। मैंने कहा : यह सब मिल कर उसको मार डालेंगे क्योंकि उसका जोश बढ़ता चला जा रहा था। जितना वह समझाते थे कि अच्छी लड़की ला देंगे वह कहता : अच्छी लड़की! मेरे लिए कोई अच्छी लड़की ही नहीं है दूसरी। अच्छे-बुरे का सवाल ही नहीं है। जितना वह समझाते कि ऐसा करेंगे, वैसा करेंगे दरवाजा खोलो, वह बढ़ता चला जा रहा है, वह रुकता नहीं। मैंने उनसे कहा : अगर आप उसे बचाना चाहते हैं तो कृपा करके दरवाजे से हट जाएँ, मुझे बात करने दें।

मैं दरवाजे पर गया। मैंने उससे कहा : अरुण! अगर मरना है तो इतना शोर-गुल मचाने की जरूरत नहीं। मरने वाले इतना शोर-गुल नहीं मचाते। यह तो जीने वालों के ढंग हैं। मरने वाले चुपचाप मर जाते हैं। तुम्हें तीन घंटे हो गए। क्या तीन चार साल लगेंगे मरने में? तुम जल्दी मरो ताकि हम सब तुम्हें मरघट पर पहुँचा कर निश्चिन्त हो जाएँ। उसने चुपचाप सुना, वह

कुछ नहीं बोला। अभी वह बड़ा चिल्ला-चिल्ला कर बोल रहा था। मैंने कहा : बोलते क्यों नहीं ? उसने कहा : हा ! मैं मर जाऊँगा। मैंने कहा : इसमें हमें कोई एतराज ही नहीं है। कौन किसको रोक सकता है ? आज रोकेंगे, कल मर जाओगे। इसलिये रोकें भी क्यों ? दरवाजा खोलो। मरने वाले क्या ऐसा दरवाजा बन्द करके भयभीत दिखाई पड़ते हैं ? एक ही तो भय है जिन्दगी में मर न जाएँ, और तो कोई भय ही नहीं। और तुमने जब वह भय भी त्याग दिया तो अब तुम किससे डर कर अन्दर बन्द हो। दरवाजा खोलो। उसने दरवाजा खोला और मुझे नीचे से ऊपर तक ऐसा देखा जैसे मैं उनका दुश्मन हूँ। मैंने कहा : तुम मेरे साथ गाड़ी में बैठ जाओ, चलो। उसने कहा : कहाँ जाना है ? मैंने कहा : भेड़ाघाट जबलपुर में अच्छी जगह है मरने के लिए। समझदार आदमी कम से कम मरने के लिए अच्छी जगह तो चुन ले। नासमझ तो जिन्दा रहने के लिए भी अच्छी जगह नहीं चुनता। तो तू भेड़ाघाट मर। और मैं तेरा मित्र रहा इतने दिन तक तो मेरा कर्त्तव्य है कि तुझे आखिरी बिदा करने जाऊँ। यानी मित्र का यही मतलब है कि जो हर वक्त काम आए। इस वक्त कोई तेरे काम नहीं पड़ेगा, इस वक्त मैं ही तेरे काम पड़ सकता हूँ। समझने लगा कि यह आदमी पागल हो गया है। लेकिन अब मुझसे कहने की कोई हिम्मत न रही। क्योंकि अब धमकी देने का कोई सवाल न था कि मर जाऊँगा। यह धमकी तो बेमानी थी।

वह चुपचाप चला आया। रात हम सोए। दोनों तरफ बिस्तर लगा कर, एक बीच में अलार्म घड़ी रखकर मैंने कहा कि ठंडी रात है और हो सकता है कि मेरी नींद न खुले। और अलार्म बजे तो तुम कृपा करके मुझे उठा देना क्योंकि तीन बजे हमें निकल चलना है। एक घंटे का रास्ता है। तुम वहाँ कूद जाना। मैं अन्तिम नमस्कार करके लौट आऊँगा और मुझे फिर वापस भी आना है। और भोर होने के पहले आना चाहिये नहीं तो तुम मरोगे, फँसूँगा मैं। तो तीन बजे ही ठीक होगा। सब बातें वह मेरी ऐसे सुनता रहा चौंक कर लेकिन वह मुझसे कुछ कहता नहीं था। रात हम सो गए। अलार्म बजा। उसने जल्दी से बन्द किया। जब मैं हाथ ले गया तो वह अलार्म बन्द कर रहा था। उसका हाथ मैंने अपने हाथ में ले लिया। मैंने कहा : ठीक है अब मेरी भी नींद खुल गई है। उसने कहा लेकिन अभी मुझे बहुत ठंड मालूम हो रही है। मैंने कहा : यह तो जीने वालों की भाषा है। ठंड मालूम होना, गरमी मालूम होना, यह कोई मरने वालों के ख्याल नहीं हैं। ठंड का क्या मतलब है ? यह आखिरी ठंड है। घंटे

भर का सवाल है। सब खत्म। और मुझे वापस भी लौटना है। मैंने उससे कहा कि ठंड तो मुझे लगेगी क्योंकि तू जब डूब जाएगा तब मुझे वापस भी फिर आना है।

वह एकदम गुस्से में बैठ गया और बोला कि आप मेरे दोस्त हो कि दुश्मन ? आप मेरी जान लेना चाहते हो; मैंने आपका क्या बिगाड़ा है ? मैंने कहा : मैं तुम्हारी जान नहीं लेना चाहता हूँ और न तुमने मेरा कभी कुछ बिगाड़ा है। लेकिन अगर तुम जीना चाहते हो तो मैं जीने में साथी हो जाऊँगा। अगर तुम मरना चाहते हो तो मैं उसमें साथी हो जाऊँगा। मैं तुम्हारा साथी हूँ। तुम्हारी क्या मर्जी है। उसने कहा : मैं जीना चाहता हूँ। मैंने कहा, तो इतना शोरगुल क्यों मचा रहे थे ?

अब इस आदमी को क्या हुआ ? देखिए। यह आदमी अब भी जी रहा है। और जब भी मुझे मिलता है तो कहता है : आपने मुझे बचाया है, नहीं तो मैं मर जाता। वे सारे बाहर के लोग मुझे मारने की तैयारी करवा रहे थे। वे जितना मुझे बचाने की बातें करते उतना मेरा जोश बढ़ता चला जाता। आदमी के मन को समझना बड़ा मुश्किल है, एकदम मुश्किल है। और यह भी समझना मुश्किल है कि किस भाँति आदमी का चित्त काम करता है।

क्यों महावीर किसी को रोकते हैं, किसी को नहीं रोकते हैं, इसे एकदम ऊपर से नहीं पकड़ लेना है। इसे बहुत भीतर से देखना चाहिए कि महावीर के लिए क्या कारण हो सकता है। करुणा उनकी समान है। लेकिन व्यक्ति भिन्न-भिन्न है। रोकना किसके लिए सार्थक होगा, किसके लिए नहीं सार्थक होगा, यह भी वह जानते हैं। कौन रोकने से रुकेगा, कौन रोकने से बढ़ेगा यह भी वह जानते हैं। कौन किस कारण से बढ़ रहा है, यह भी वह जानते हैं। इसलिए हो सकता है कि दो व्यक्तियों को नहीं, दो सौ व्यक्तियों को भी न रोकते। एक एक व्यक्ति भिन्न-भिन्न है। उनकी सारी व्यवस्था भिन्न-भिन्न है। और उस व्यक्ति को अगर हम गौर से देखेंगे तो उस व्यक्ति के साथ हमें भिन्न-भिन्न व्यवहार करना पड़ेगा। इसका यह मतलब नहीं है कि मैं भिन्न-भिन्न व्यक्तियों के साथ भिन्न-भिन्न हो जाता हूँ। मैं न भी भिन्न-भिन्न होऊँ तब भी प्रत्येक व्यक्ति भिन्न है, और उसे देख कर मुझे कुछ करना जरूरी है।

फिर और भी बहुत सी बातें महावीर देखते हैं, जो कि साधारणतः नहीं देखी जा सकतीं। उनको मैं इसलिए बात नहीं करता हूँ कि वह एकदम अदृश्य

की बातें हैं। महावीर यह देख सकते हैं कि इस व्यक्ति की उम्र समाप्त हो गई है। यह सिर्फ निमित्त है इसके मरने का, इसलिए चुप भी रह सकते हैं। और कोई कारण भी न हो, सिर्फ इतना ही दिखता हो कि इस आदमी की उम्र तो समाप्त हो गई है और यह सिर्फ निमित्त है इसके मरने का और कोई निमित्त सुन्दर है तो इसे मर जाने दें। और एक व्यक्ति की उम्र समाप्त नहीं हुई है, और व्यर्थ उलझाव में पड़ा है, व्यर्थ उपद्रव में पड़ा है, सोच सकते हैं रोक लें तो वह उसे रोक लेते हैं।

किन्हीं क्षणों में मरना भी हितकर है लेकिन उतने क्षण की अनुभूति और उतनी गहराई हमें ख्याल में नहीं आ सकती हैं। अगर मैं किसी को प्रेम करता हूँ तो कोई ऐसा भी क्षण हो सकता है जब मैं चाहूँ कि वह मर ही जाए। हालांकि यह कैसी अजीब बात है क्योंकि जिसको हम प्रेम करते है, उसे हम कभी भी मरने नहीं देना चाहते। चाहे जीना उसके मरने से ज्यादा दुःखदाई हो जाए तो भी हम उसे जिन्दा रखना चाहते हैं किसी भी हालत में। एक बूढ़ा बाप है, नब्बे साल का हो गया है, बीमार है, दुःखी है, आँख नहीं है, उठ नहीं सकता, बैठ नहीं सकता। फिर भी बेटे, बहू, बेटियाँ, प्रेम में उसको जिन्दा रखे चले जा रहे हैं, चेष्टा कर रहे हैं उसको जिन्दा रखने की। अब पता नहीं यह प्रेम है या बहुत गहरे में सताने की इच्छा है। कहना बहुत मुश्किल है। अगर सब में यह प्रेम है तो बड़ा अजीब प्रेम मालूम पड़ता है कि मेरे सुख के लिए आप जिन्दा रहें। मैं आपको दुःख में भी जिन्दा रखना चाहूँ तो यह प्रेम नहीं है। मैं दुःखी होना पसंद करूँगा। आप मर जाएँगे, मुझे दुःख होगा, पीड़ा होगी। एक खाली घाव रह जाएगा। वह कभी नहीं भरेगा। वह मैं पसन्द करूँगा। लेकिन यह पीड़ा और दुःख आपका नहीं सहूँगा। मगर ऐसे प्रेम का, शायद पाना बहुत कठिन होगा कि कोई बेटा अपने बाप को जहर दे दे और कहे कि अब नहीं जीना है आपको क्योंकि मेरा प्रेम नहीं कहता है कि आपको जीना है। मुझे दुःख होगा आपके मरने का। वह दुःख मैं सहूँगा। लेकिन आप—मुझे दुःख न हो—इसलिए जिएँ यह तो ठीक नहीं। ऐसे क्षण हो सकते हैं मगर ऐसे बेटे का प्रेम समझ में आना बहुत मुश्किल है। लेकिन कभी वह वक्त आएगा दुनिया में जब बेटे इतना प्रेम भी करेंगे, पत्नियाँ इतना प्रेम भी करेंगी, पति इतना प्रेम भी करेंगे। प्रेम का मतलब ही यह है कि हम दूसरे को दुःख में न डाल सकें, उसे हम सुख में ले जा सकें।

तो इसलिए किसी भी घटना में बहुत गहरे उतरने की जरूरत है। अब तक हमें ख्याल में आ सकता है कि क्या प्रयोजन रहा होगा। और न भी ख्याल में आए तो भी जल्दी निष्कर्ष बहुत मंहगी चीज है। और महावीर जैसे व्यक्ति के प्रति तो जल्दी निष्कर्ष बहुत ही मंहगा है क्योंकि उन्हें समझना बहुत कठिन है। जिस जगह हम खड़े होते हैं, वहाँ से जो हमें दिखाई पड़ता है, हम वहीं तक सोच सकते हैं। जिन्हें दूर तक दिखाई पड़ता होगा, वे क्या सोचते हैं, कैसे सोचते हैं, वे सोचते भी हैं कि नहीं सोचते हैं यह सब हमारे लिए विचार करना मुश्किल है। वे किसी भांति जीते हैं, क्यों उस भांति जीते हैं, अन्यथा क्यों नहीं जीते यह भी हमें सोचना मुश्किल हो जाता है। हम ज्यादा से ज्यादा अपना ही रूप प्रोजेक्ट कर सकते हैं। हम यहीं सोच सकते हैं कि इस हालत में हम होते तो क्या करते, दो आदमियों को न मरने देते, या फिर तीनों को ही मरने देते। ये दो ही उपाय थे हमारे सामने। पर हमें उस चेतनास्थिति का कोई अनुभव नहीं है, जो बहुत दूर तक देखती है, और जिसका हमें कोई ख्याल नहीं है।

महावीर और गोशालक एक गांव से गुजर रहे थे। गोशालक ने कहा : जो होने वाला है वही होता है। महावीर कहते हैं : ऐसा ही है, जो होने वाला है वही होता है। पास में ही जिस खेत से वे गुजर रहे हैं, दो पंखुड़ियों वाला एक पौधा लगा हुआ है, जिसमें अभी कलियाँ हैं जो कि कल फूल बनेंगी। गोशालक उस पौधे को उखाड़ कर फेंक देता है और कहता है कि यह पौधा फूल होने वाला था, और अब नहीं होगा। वे दोनों गांव से भिक्षा लेकर वापस लौटते हैं। इस बीच पानी गिर गया है, पानी गिरने से कीचड़ हो गया है और उस पौधे ने कीचड़ में फिर जड़ें पकड़ ली हैं, वह फिर खड़ा हो गया है। जब वह उस जगह से वापस लौटते हैं, तो महावीर उससे कहते हैं कि देख! वह 'कली फूल बनने लगी। वह पौधा लग गया है जमीन से और कली फूल बन गई है।

जिसे दूर तक दिखाई पड़ता है उसे बहुत सी बात दिखाई पड़ती है जो हमारे ख्याल में भी नहीं आतीं और जिन्दगी बहुत लम्बा विस्तार है। जैसे कोई एक उपन्यास के पन्ने को फाड़ डाले और उस पन्ने को पढ़े तो क्या तुम सोचते हो कि उस पन्ने से पूरे उपन्यास के बाबत कोई नतीजा निकल सकता है। हो सकता है कि उपन्यास का बिल्कुल उल्टे नतीजों पर अन्त हो। जो उस पन्ने पर लिखा हो उससे भिन्न चला जाए क्योंकि यह पन्ना सिर्फ उस लम्बी पुस्तक का

छोटा सा हिस्सा है। जिन्दगी में हम भी क्या करते हैं। एक टुकड़े को उठा लेते हैं और उस टुकड़े को फैला कर पूरी जिन्दगी को जांचने चल पड़ते हैं। मुश्किल है; ऐसा नहीं जांचा जा सकता। पूरी जिन्दगी को देखना होगा और पूरी जिन्दगी को देखेंगे तो हम एक टुकड़े को भी समझ सकते हैं। नहीं तो यह टुकड़ा भी हमारी समझ में नहीं आ सकता।

प्रश्न : ध्यान के लिए शुद्धीकरण की आवश्यकता है और जब भी किसी का मन केन्द्र पर है, तो उसकी बाह्य क्रिया, उठना-बैठना अनायास स्वयं हो जाती है। जब महावीर ध्यान के लिए बैठते हैं तो कुकुरासन और गोदोहासन यह विचित्र बात क्यों ?

उत्तर : यह भी समझने जैसी बात है। महावीर को ज्ञान भी हुआ गोदोहासन में। जैसे कोई गाय को दोहते वक्त बैठता है, ऐसे बैठे-बैठे महावीर को परम ज्ञान की उपलब्धि हुई। यह बड़ा अजीब आसन है। न तो वह गाय दोह रहे थे, गाय भी दोह रहे होते तो एक बात थी। वह गाय भी नहीं दोह रहे थे। बैठे थे ऐसे। क्यों बैठे थे ? ऐसे कोई साधारणतः बैठता नहीं। यह बड़ी विचित्र स्थिति मालूम पड़ती है। इसे समझना चाहिए। इसमें तीन बातें समझनी जरूरी हैं।

पहली बात तो यह कि गोदोहासन हमें असहज लगता है। लेकिन सहज और असहज हमारी आदतों की बातें हैं। पश्चिमी व्यक्ति को जमीन पर बैठना असहज है। पालथी मारकर बैठना तो ऐसी असहज बात है कि पश्चिमी व्यक्ति को सीखने में छः महीने भी लग सकते हैं। और छः महीने मालिश चले उसकी और वह बेचारा हाथ पैर भी सिकोड़े तभी वह ठीक से पालथी मार सकता है और फिर भी वह सहज नहीं होने वाला। क्योंकि पश्चिम में नीचे बैठता ही नहीं कोई। सब कुर्सी पर बैठते हैं। इसलिए नीचे बैठने की जो हमारी अत्यन्त सहज बात मालूम पड़ती है वह जो लोग नहीं बैठते उनके लिए अत्यन्त असहज है। जो अभ्यास में हैं, वही सहज मालूम पड़ता है। जिसका अभ्यास नहीं है, वह असहज मालूम होने लगता है। हो सकता है महावीर निरन्तर पहाड़ में, जंगल में, वर्षा में, धूप में, ताप में रहे—न कोई घर, न कोई द्वार, न बैठने के लिए कोई आसन, न कोई कुर्सी, न कोई गद्दी। कुछ भी नहीं है तो, यह बहुत कठिन नहीं है कि महावीर जंगल में रोज सहज उकड़ू ही बैठते रहे हों। यह बहुत कठिन नहीं है।

फिर महावीर की एक धारणा और अद्भुत है। महावीर कहते हैं जितना कम से कम पृथ्वी पर दबाव डाला जाए उतना अच्छा है। क्योंकि उतनी कम हिंसा होने की सम्भावना है। महावीर रात सोते हैं तो करवट नहीं बदलते क्योंकि जब एक ही करवट सोया जा सकता हो, तो दूसरी करवट विलासपूर्ण है। अकारण दूसरी करवट लेने में कोई चींटी, कोई मकोड़ा मर सकता है। किसी वृक्ष के तले, जंगल में वह सो रहे हैं। करवट बदली है। चींटियां मर सकती हैं। तो महावीर एक ही करवट सो लेते हैं। और दूसरी करवट बदलते नहीं रात भर। ऐसा जो व्यक्ति है, वह उकडू ही बैठता रहा होगा।

जीवन में उनकी जो दृष्टि है, वह यह है कि क्यों व्यर्थ किसी के जीवन को नुकसान पहुँचाएँ। सारी पृथ्वी पर लोग अलग-अलग ढंग से उठते-बैठते, सोते-जागते, खाते-पीते हैं। जो हमें बिल्कुल सहज लगता है, वह दूसरे को बिल्कुल असहज लगेगा। तुम हाथ जोड़ कर नमस्कार करते हो, बिल्कुल सहज लगता है। कुछ लोग हैं जो जीभ निकाल कर नमस्कार करते हैं। दो आदमी मिलेंगे तो दोनों जीभ निकालेंगे। अब हम सोच भी नहीं सकते कि किसी को नमस्कार करो तो जीभ निकालो। लेकिन दो आदमी मिलें तो हाथ जोड़ें यह कौन सी बात है। अगर हाथ जोड़े जा सकते हैं तो जीभ भी निकाली जा सकती है। कुछ कौमों में जब आदमी मिलते हैं तो नाक से नाक रगड़कर नमस्कार करते हैं। यह बिल्कुल उनके लिए सहज मालूम होगा। लेकिन हम दो आदमियों को सड़क पर नाक से नाक लगाते देखें तो हमें हैरानी होगी कि कुछ दिमाग खराब हो गया है। पश्चिम में चुम्बन सहज-सरल सी बात है। हमारे लिये भारी ऊहापोह की बात है कि कोई आदमी सड़क पर दूसरे आदमी को चूम ले। जो अभ्यास में हो जाता है वह सहज लगने लगता है। जो अभ्यास में नहीं है वह असहज लगने लगता है।

महावीर अहिंसा की दृष्टि से दो पंजों पर बैठते रहे होंगे। सर्वाधिक, न्यूनतम हिंसा उसमें है। दूसरा उनके लिए यह सहज भी हो सकता है। अगर दस आदमियों को रात सोते देखें तो आप उन्हें अलग-अलग ढंग से सोते देखेंगे। चूंकि अभी अमेरिका में एक प्रयोगशाला बनाई गई है जिसमें अब तक वे दस हजार लोगों को सुलाकर देख चुके हैं। कोई बीस साल से परीक्षण चलता है जिसमें अजीब-अजीब नतीजे निकाले गए हैं। कोई दो आदमी एक जैसे सोते नहीं। सोने का ढंग, उठने का ढंग अपना-अपना है।

दूसरी बात यह कि जगत् में सहज कुछ भी नहीं है। परिस्थिति अनुकूल, प्रतिकूल, व्यक्ति के सोचने, समझने का ढंग, जीने की व्यवस्था अलग-अलग स्थितियाँ ला सकती हैं। जैसे आम तौर पर महावीर खड़े होकर ध्यान करते हैं। वह भी साधारण नहीं लगता क्योंकि साधारणतः लोग बैठ कर ध्यान करते हैं। शायद खड़े होकर ध्यान करने में ज्यादा सरल पड़ता हो क्योंकि उसमें मूर्च्छा और तन्द्रा का कोई उपाय नहीं है और हो सकता है कि उकडू बैठने में भी वही दृष्टि हो। उकडू बैठ कर भी आप सो नहीं सकते। महावीर कहते हैं: भीतर पूर्ण सजग रहना है। पूर्ण सजगता के लिए अथक श्रम जरूरी है। हो सकता है कि निरन्तर प्रयोग से उन्हें पता चला हो कि उकडू बैठ कर नींद आने का कोई उपाय नहीं तो वह उकडू बैठने लगे हों। फिर महावीर का मस्तिष्क परम्परागत नहीं है।

महावीर का मार्ग परम्परा-मुक्त ही नहीं बल्कि एक अर्थ में परम्परा-निरोधक भी है। वे किसी भी चीज में किसी का अनुकरण नहीं करते। उन्हें जो सरल और आनन्दपूर्ण लगेगा, वह वैसा ही करेंगे। जगत् में किसी ने किया हो या न किया हो, यह सवाल नहीं है। हम सब परम्परा के अनुयायी हैं। सब जैसे बैठते हैं, वैसे ही हम बैठते हैं। सब जैसे खड़े होते हैं, वैसे ही हम खड़े होते हैं। सब जैसे वस्त्र पहनते हैं, वैसे ही हम वस्त्र पहनते हैं। सब जैसी बातें करते हैं, वैसी ही हम बातें करते हैं। क्योंकि सबके साथ हमें रहना है और सबसे भिन्न होकर खड़े होना अत्यन्त कठिन है इसलिए सबके साथ चलना सरल मालुम पड़ता है।

महावीर इस तरह के व्यक्ति नहीं हैं। वे कहते हैं: सब क्या करते हैं, यह सवाल नहीं है। मुझे क्या करने जैसा लगता है यह सवाल है। और हो सकता है कि मुझसे पहले किसी को भी करने जैसा न लगा हो और हो सकता है कि मेरे बाद भी किसी को करने जैसा न लगे, लेकिन जो मुझे करने जैसा लगता है, उसका मुझे अधिकार है। मैं वैसा ही जिऊँगा; वैसा ही करूँगा। इन अर्थों में वह निपट व्यक्ति-स्वातन्त्र्य के अपूर्व पक्षपाती हैं। ऐसी-ऐसी बातों में भी, जिनमें कि हम कहेंगे कि इनमें स्वातंत्र्य की क्या जरूरत है।

यह भी समझ लेना जरूरी है इस प्रसंग में कि हमारे शरीर की, और हमारे मन की दशाओं के बीच में एक तरह का तादात्म्य हो जाता है। जैसे आपने देखा होगा कि अगर कोई आदमी चिन्तित है' तो वह सिर खुजलाने लगेगा। सभी नहीं खुजलाने लगते। कोई चिन्तित होगा तभी सिर खुजलायेगा। अगर यह आदमी बिना कारण भी सिर खुजलाने लगे तो आप पाएँगे कि वह चिन्तित

हो जाएगा . प्रत्येक चीज जुड़ जाती है । आदमी की शारीरिक गतिविधि में भी उसकी मानसिक गतिविधि जुड़ जाती है । अगर शरीर की गतिविधि बदल दी जाए तो उसके मन की पुरानी गतिविधि के तोड़ने में सहायता मिलती है । तो कई बार साधक ऐसी व्यवस्था करता है जिसमें उसका पुराना मन अभिव्यक्ति न पा सके क्योंकि पुराने मन की जो-जो आदतें थीं, वह उनके बिल्कुल विपरीत चलने लगता है । वह उस पुराने मन को मौका नहीं देता सबल होने का ।

हमें यह ख्याल में नहीं कि हमारी छोटी-छोटी बातें जुड़ी हैं । हमें यह भी ख्याल में नहीं है कि हम जब खास तरह के कपड़े पहनते हैं तो खास तरह के आदमी हो जाते हैं । और दूसरी तरह के कपड़े पहनते हैं तो दूसरी तरह के आदमी हो जाते हैं । एक ढंग से बैठते हैं तो एक तरह के आदमी हो जाते हैं । दूसरे ढंग से बैठते हैं तो दूसरी तरह के आदमो हो जाते हैं । क्योंकि हमारा जो मस्तिष्क है, वह इन छोटे-छोटे संकेतों पर जीता है और चलता है । बहुत छोटे-छोटे संकेत उसने पकड़ रखे हैं । अब हो सकता है कि महावीर का उकडू बैठना एक अजीब घटना है । साधारणतः कोई उकडू नहीं बैठता । उनका उकडू बैठना, गोदोहासन में ध्यान करना मेरी दृष्टि में गहरे से गहरा अर्थ रखता है कि चित्त को इस तरह बैठने की कोई जोड़ नहीं है पुरानी । इस शरीर की स्थिति में पुराना चित्त जोर नहीं डाल सकता ।

एक जेन फकीर हुआ । उसकी मृत्यु करीब आई । सब मित्र और प्रियजन पास बैठे हैं । लोग उसे प्रेम करते हैं । उन तक खबर पहुँच गई है । झोपड़े के चारों तरफ मेला लग गया है । निकटतम शिष्य खाट के पास खड़े हैं । वह खाट से उठ कर खड़ा हो गया है और उसने कहा कि मैं एक बात पूछना चाहता हूँ कि कभी तुमने किसी आदमी के खड़े-खड़े मर जाने की खबर सुनी । उन्होंने कहा । खड़े-खड़े मर जाने की ? कोई खड़ा-खड़ा मरेगा ? लोग सोए-सोए ही मरते हैं क्योंकि मरने के पहले ही लोग लेट जाते हैं । तब भीड़ में से एक आदमी ने कहा : नहीं, नहीं, ऐसा नहीं है । मैंने एक फकीर के सम्बन्ध में सुना है कि वह खड़ा-खड़ा ही मर गया था । तो उसने कहा : फिर जाने दो । तुमने कभी किसी आदमी के चलते-चलते मरने की खबर सुनी है । तो लोगों ने कहा : आप ये बातें क्यों पूछ रहे हैं ? चलते-चलते मरना ! चलते-चलते किसलिए मरेगा ? असल में, चलना ही रुक जाता है इसीलिए तो मरता है । फिर भी भीड़ में से एक आदमी ने कहा : नहीं, नहीं, यह भी हमने सुना है कि कभी प्राचीन समय में एक आदमी हुआ है जो चलते-चलते मर गया । तो उस फकीर ने कहा वह

भी जाने दो। मतलब कि अपने लिए कोई नया ढंग खोजना पड़ेगा, उस फकीर ने कहा, जैसा कोई भी न मरा हो। तो लोगों ने कहा : यह आप क्या बातें कर रहे हैं। उस फकीर ने कहा : अच्छा तो ऐसा करो, शीर्षासन करते हुए किसी के मरने की खबर सुनी है? लोगों ने कहा कि यह तो नहीं सुना और न सोचा कभी कि कोई आदमी शीर्षासन करते हुए मर जाएगा। उस फकीर ने कहा तो चलो फिर यही ठीक रहेगा। क्योंकि दूसरों जैसा क्या मरना? मरने में एक प्रामाणिकता चाहिए। दूसरे जैसा क्या मरना? वह आदमी शीर्षासन के बल खड़ा हो गया और मर गया। लेकिन लोग बहुत डरे उसकी लाश को कौन उतारे, यह भी भय समा गया। आदमी मर ही गया सचमुच लेकिन शीर्षासन वह अब भी कर रहा है। मर तो गया है। श्वांस लोगों ने जाँच ली, हृदय के पास जाकर देखा। धक-धक बन्द है। फिर भी लोगों को लगा कि आदमी अभी शीर्षासन कर रहा है।

भीड़ में बड़ी शंका फैल गई। तो लोगों ने कहा : अच्छा ठहरो थोड़ा। इसको कुछ मत करो। इसकी बहन पास में रहती है, वह भी भिक्षुणी है, पास के मन्दिर में है। उसको बुला लाओ। वह इसकी आदतों से परिचित है। बहन भागी आई। उसने आकर उसको जोर का धक्का दिया और कहा : अभी तक तुम शरारत नहीं छोड़ते हो। मरते वक्त भी कोई ऐसी बातें करनी पड़ती हैं। जिन्दगी भर अपने जैसे होने की दौड़ थी। मरने में भी उसको कायम रखोगे। तो वह आदमी खिलखिलाया, हँसा, गिर गया और मर गया। अभी तक वह मरा नहीं था। अभी तक वह मजाक कर रहा था मरने के लिए। एकदम से सोचोगे तो फौरन ख्याल में आ जाएगा कि क्या ऐसा भी आदमी अहंकारी हो सकता है?

हम अपनी जिन्दगी के साथ कभी मजाक नहीं कर सकते। असल में हम सदा दूसरे के साथ मजाक करते हैं। अहंकार सदा दूसरे के साथ मजाक करता है। सिर्फ निरहंकारी भी अपने साथ मजाक कर सकता है। जिन्दगी की बात तो दूर रही, मरते वक्त भी मजाक करता है। अहंकारी सदा गम्भीर है। सब चीजें गम्भीर हैं वहाँ। मगर निरहंकारी आदमी कैसा बच्चों के खेल जैसा मरने को ले रहा है और उसमें भी खिलवाड़ कर रहा है। और जब वह गिर पड़ा हँसते हुए तो उस भीड़ में हँसी का फव्वारा छूट गया कि क्या अद्भुत आदमी है यह जो मरते वक्त भी खिलखिला कर हँसा है।

अहंकार हमें जल्दी से ख्याल में आ सकता है। जब भी कोई व्यक्ति, व्यक्ति होने की कोशिश करता है तो वह अहंकारी है। और जिस व्यक्ति के पास व्यक्तित्व नहीं होता उसी के पास अहंकार होता है। इसे ठीक से समझ लें। लेकिन जिसके पास व्यक्तित्व होता है, उसे अहंकार होता ही नहीं क्योंकि वह आदमी जैसा है वैसा ही होगा। वह इस दुनिया में कोई फिक्र नहीं करेगा। लेकिन न फिक्र करना उसकी चिन्ता नहीं है, उसकी इच्छा नहीं है। वह तो जो होना चाहता है, वह है। अगर इसमें इन्कार हो जाता है सारे जगत् को तो हो जाए।

जब कोई व्यक्ति जो होने को पैदा हुआ है वही हो जाता है, तभी वह अहंकार से मुक्त होता है। और अहंकार है क्या असल में? जो हमारे भीतर होना चाहिए और नहीं है उसकी जगह हम अहंकार को बनाए हुए हैं। अहंकार आत्मा को धोखा देने का काम कर रहा है। जैसा किसी आदमी के पास असली हीरे नहीं हैं तो उसने नकली हीरे की अँगूठी पहन ली है। नकली हीरे की अँगूठी जो है वह असली हीरे की झलक पैदा करती है दूसरों की आँखों में। लेकिन जिसके पास असली हीरे की अँगूठी है वह नकली हीरों की अँगूठी किस-लिए पहने? वह उसे फेंक देगा। वह दो कौड़ी की हो गई।

जिसके पास आत्मा है, अहंकार से उसका सम्बन्ध ही क्या क्योंकि अहंकार की जरूरत ही इसलिए थी। और न वह किसी से हाथ जुड़वाने की चिन्ता रखेगा। वह जैसा चाहेगा वैसा जिएगा। और वैसा आदमी दुनिया को कहेगा कि तुम जैसा जीना चाहो, जियो। लेकिन ऐसे व्यक्ति को पहचानना मुश्किल हो जाएगा। बहुत बार ऐसा व्यक्ति हमें अहंकारी मालूम पड़ेगा क्योंकि ऐसे व्यक्ति की मौजूदगी ही हमारे अहंकार को चोट पहुँचाएगी। और ऐसा व्यक्ति चूंकि विनम्रता ग्रहण नहीं करेगा, इसलिए अहंकार को ऐसे व्यक्ति से कोई तृप्ति नहीं मिलेगी।

विनम्रता है क्या? दूसरे के अहंकार को तृप्ति देना। तो जो व्यक्ति दूसरे के अहंकार को तृप्ति देता है, हम कहते हैं कि यह बड़ा विनीत आदमी है, बहुत विनम्र आदमी है। लेकिन उसकी विनम्रता हम पहचानते कैसे हैं? पहचानते इस तरह हैं कि वह झुककर हमें नमस्कार करता है। असल में विनम्रता की भाषा अहंकारियों ने खोजी है। अब वे दूसरों को कहते हैं कि सब विनम्र हो जाओ, विनम्रता बड़ी ऊँची चीज है, क्योंकि अगर विनम्र हो जाओगे तो ही अहंकार को खड़ा कर सकोगे, नहीं तो उनका अहंकार कहाँ खड़ा होगा। 'सभी

अविनम्र हो गए तो मुश्किल हो जाएगी। लेकिन जो व्यक्ति 'होने' की खोज है, उसमें न कोई अहंकार है न कोई विनम्रता है। वह यह कह रहा है कि 'मैं' 'मैं', हूँ 'आप', आप रहें इसमें कोई झगड़ा नहीं है। वह न विनम्रता पाल रहा है, न अहंकार पाल रहा है। वह दोनों एक ही चीजें हैं। वह यह कह रहा है कि 'मैं' मैं हूँ, 'तुम' तुम हो। अब बीच में झंझट क्या लेनी है? 'तुम' तुम रहो, 'मुझे' मुझे रहने दो। लेकिन यह हमें बहुत कठिन मालूम पड़ेगा क्योंकि हमारे अहंकार से इसका कोई सम्बन्ध नहीं मिलता है। हम चाहते हैं कि या तो हमारी गर्दन दबाएँ तो हम समझें कि यह कुछ है, या हम इसकी गर्दन दबाएँ तो यह समझे कि हम कुछ हैं। लेकिन वह कहता है कि कोई किसी की गर्दन मत दबाओ। 'तुम' तुम हो, 'मैं' मैं हूँ। कृपा करो। तुम्हें जैसा रहना है तुम रहो, मुझे जैसा रहना है मैं रहूँ। लेकिन न हम खुद रह सकते हैं न हम दूसरे को रहने देना चाहते हैं।

और फिर जो आदमी अपने पर मजाक कर ले, वह आदमी बहुत अद्भुत है। अपने पर मजाक करना बहुत कठिन बात है। दूसरे पर मजाक हम करते हैं, मजाक एक शिष्ट तरकीब है दूसरे को अपमानित करने की। एक शिष्ट तरकीब है जिसमें दूसरा हम से झगड़ भी नहीं सकता, क्योंकि मजाक ही तो हम कर रहे हैं, और हम उसे गहरी चोट भी पहुँचा रहे हैं। तो हम दूसरे पर हँस सकते हैं लेकिन अपने पर हँसने वाला आदमी, अपनी जिन्दगी पर हँसने वाला आदमी और अपनी मौत पर हँसने वाला आदमी बहुत अनूठा है। बहुत ही अनूठा है क्योंकि वह बुनियादी खबर दे रहा है कि अब दूसरे का तो सवाल ही नहीं रहा, अब हम खुद ही अपने पर हँसने जैसी हालत पा रहे हैं। यानी यह जो मेरा व्यक्तित्व है यह भी हँसने योग्य है। इसमें कुछ ऐसी बात नहीं है। इसे गम्भीरता से लेने का सवाल नहीं है। लेकिन दुनिया में साधु सन्त बड़े गम्भीर होकर बैठे हैं। उनकी गम्भीरता का बुनियादी कारण यह है कि उन्होंने दूसरों का मजाक करना बन्द कर दिया है और अपना मजाक करना वे सीख नहीं पाए। उनकी गम्भीरता का बहुत गहरे में कारण है 'हँसे कैसे?' दूसरे की मजाक बन्द कर दी क्योंकि वह ठीक नहीं थी और अपनी मजाक का शुरू करना बहुत कठिन बात है। वह हो नहीं सकती। तो वे गम्भीर हो गए हैं। यह जो गम्भीरता दिखती है साधुओं की, उसका कारण यही है। मगर जो अपने पर हँस सकता है, वह अगर दूसरे पर हँसता है तो चोट नहीं पहुँचाता। क्योंकि दूसरे को लगता है कि वह आदमी हमको भी अपना ही मानता है।

अद्‌भुत बात है इस फकीर की। वह उनमें से है जो मरने का भी अपना ढंग खोजते हैं, जो मृत्यु को भी एक प्रामाणिकता और व्यक्तित्व देना चाहते हैं। और महावीर इन व्यक्तियों में अद्‌भुत हैं। वह प्रत्येक चीज को अपना व्यक्तित्व देना चाहते हैं। यानी संसार के शास्त्र कहें कि गोदोहासन में किसी को ज्ञान हुआ है तो महावीर गोदोहासन में बैठकर ज्ञान पा लेंगे।

कबीर के मरने का वक्त आया। मरते वक्त तक कबीर काशी में रहा। काशी के पास थोड़ी दूर पर मगहर एक गाँव है। कथा यह है कि काशी में अगर गधा भी मरे तो देवता हो जाता है। मगहर में अगर देवता भी मरे तो गधा हो जाता है। मगहर के लोग काशी में मरने आते हैं क्योंकि मगहर में तो बड़ा डर रहता है। दस-पाँच दिन पहले मरने के करीब कोई हुआ तो उसे काशी में ले आते हैं। कबीर जिन्दगी भर काशी रहे। मरने का वक्त आया तो कहा कि मुझे मगहर ले चलो। लोगों ने कहा कि आप पागल हो गये हैं क्या। मगहर से लोग मरने यहाँ आते है। जिन्दगी भर तो यहाँ जिये, अब मगहर जाते हो मरने। मगहर में मरता है जो आदमी वह गधा हो जाता है। कबीर ने कहा : वह ठीक है। अगर मगहर में मरने से गधा हुए तो वह मगहर की वजह से हुए, अगर काशी में मरने से कोई देवता हुआ तो वह काशी की वजह से हुआ। दोनों में कोई फर्क नहीं है क्योंकि किसी और ही वजह से बात हो गई। बात तो अपनी वजह से होनी चाहिए। तो मुझे पता कैसे चले कि अपनी ही वजह से देवता हुए हैं। तो कबीर मरे मगहर में।

महावीर कह रहे हैं कि यह कोई सवाल नहीं है कि इस आसन से ध्यान होगा कि उस आसन से ध्यान होगा। आसन से ध्यान का कोई सम्बन्ध ही नहीं। तीसरी बात जो मैं कहना चाहता हूँ : आसन से ध्यान का कोई सम्बन्ध ही नहीं है। क्योंकि ध्यान है आन्तरिक घटना, आसन है बाहर शरीर की स्थिति। जो जिसको आसान हो वही आसन है। सभी को एक जैसा आसन नहीं भी होता तो महावीर यह भी सूचना देना चाह रहे हैं कि यह धारणा भूल है कि पद्मासन से, सिद्धासन में ही ध्यान होगा और ज्ञान की उपलब्धि होगी। क्योंकि इस भाँति तो हम ज्ञान को शरीर की बैठक से बाँध रहे हैं : असल में शरीर से क्या लेना-देना है। भीतर जो है वह किसी आसन में हो सकता है।

महावीर के गोदोहासन की मूर्तियाँ जैनियों के मन्दिरों में नहीं मिलतीं। मूर्तियाँ बनी हैं पद्मासन में क्योंकि पुरानी धारणा है कि ज्ञानी को पद्मासन में

ज्ञान होता है। किन्तु महत्त्वपूर्ण घटना तो केवल ज्ञान की है। वह आदमी, आसन में बैठकर केवल ज्ञान को उपलब्ध हुआ इसकी नहीं है। निर्वाण वगैरह मूल्य की बातें नहीं हैं। अच्छे अदमी को हम, "मर गया है" ऐसा कहना ठीक नहीं समझते, इसलिए निर्वाण वगैरह कहते हैं। अच्छा आदमी मरता है तो मर गया, उसे कैसे कहें ? तो उसे निर्वाण कहते हैं ? निर्वाण सिर्फ शरीर का छूटना है। मगर उससे गहरे में भी शरीर पहले छूट चुका है। मगर जैसे महावीर हमें जँचना चाहिए, हम वैसा उनको बना लेते हैं। अब दिगम्बर महावीर के नग्न चित्र भी बनाएँगे तो एक झाड़ के पास बनाएँगे ताकि झाड़ की शाखाओं में उनकी नग्नता छिप जाए। मगर उन्हें सीधा नग्न खड़ा न कर सकेंगे।

ये महावीर से ज्यादा होशियार लोग हैं। अगर झाड़ के पास ही महावीर खड़े रहते हों कि कहीं नंगापन न दिख जाए तो फिर झंझट क्या है ? उससे तो लंगोटी अच्छी है कि कहीं जा भी तो सकते हैं उसको पहनकर। झाड़ के पास खड़े होना बहुत ही बेमानी है। मगर हमारा जो दिमाग है अत्यन्त क्षुद्र, वह सब फौरन ढाल लेता है अपने हिसाब में। फिर जो शक्ल हम बनाते हैं, व्यवस्था हम देते हैं, वह हमारी होती है। वह सच्ची नहीं होती। अब एक आदमी अगर नंगा होने की हिम्मत करे तो उसके अनुयायी उसे नंगा न होने देंगे। अगर वह हो ही जाए, न माने तो वे कई तरकीबें निकालेंगे, पीछे उसे लीप-पोतकर बराबर कर देंगे कि वह आदमी नंगा नहीं था।

इस तरह चलता है, क्रान्तियाँ पैदा होती हैं और मर जाती हैं। रोज-रोज क्रान्ति की जरूरत पड़ जाती है। रोज-रोज उन लोगों की जरूरत है जो फिर से आकर चीजों को तोड़ दें। और यह बड़ी दुर्भाग्यपूर्ण घटना है। लेकिन यही होता रहा है कि जितना बड़ा क्रान्तिकारी होगा उसको उतना ही ज्यादा लीप-पोत दिया जाएगा। यह ख्याल में रखना चाहिए कि दुनिया में जो क्रान्तिकारी नहीं हुए उनकी प्रामाणिक स्थिति हमें उपलब्ध है। वे जैसे थे हमें उपलब्ध हैं। लेकिन दुनिया में जो बड़े क्रान्तिकारी हुए उनको हमने लीप-पोत दिया। उनका हमें कोई पता नहीं कि वे कैसे थे। बिल्कुल और ही शक्ल उपलब्ध है जो कि वे कभी नहीं रहे होंगे।

तो प्रश्न ठीक ही है। वह सब चीजें, वह सब जो उन्हें ठीक लगता है, वैसे ही करते हैं। वह किसी देवता से नहीं पूछेंगे, किसी गुरु से नहीं पूछेंगे, वे यह नहीं कहेंगे कि आसन में नहीं होगा। अगर कोई पूछता है उनसे कि कैसे बैठे

हो, ऐसे कहीं ज्ञान मिला है किसी को, तो वे कहेंगे : तुम अपने रास्ते जाओ, क्योंकि ज्ञान को अगर आना है तो मेरी शर्तों पर, मैं कोई ज्ञान की शर्तें मानने वाला नहीं हूँ। मेरी शर्तों पर, मैं जैसा हूँ, उसको वैसे में आना है तो ठीक। अगर कोई व्यक्ति इतना हिम्मतवर और साहसी है तो परमात्मा को उसी की शर्तों पर आना होगा। कोई रुकावट उसमें नहीं पड़ सकती। यह अगर ख्याल में आ जाए तो व्यक्ति-स्वातंत्र्य की धारणा स्पष्ट हो जाती है।

अब मैं कहता हूँ कि किसी भी आसन में सोए, बैठे, लेटे, खड़े ध्यान हो सकता है। यह अपने-अपने चुनाव की बात है कि उसके लिए कैसा सरल हो सकता है। क्योंकि गोदोहासन तक में एक व्यक्ति मोक्ष में जा चुका है। इसलिए अब कोई चिन्ता की बात नहीं। अब किसी भी आसन में यह घटना घट सकती है। लेकिन शायद ही कोई जैन मुनि गोदोहासन में बैठा मिल जाए क्योंकि आज-कल का जैन मुनि परम्परागत ढंग बाँध कर बैठा है। उसको चलाए जाता है। महावीर का गोदोहासन परम्परा को तोड़ने का प्रतीक है सिर्फ। महावीर जैसा व्यक्ति छोटी-मोटी चीजों में भी परम्परा को तोड़ देना चाहेगा। यानी ऐसी छोटी बातों में भी वह कहेगा, नहीं, मैं जैसा हूँ वैसा हूँ। और प्रत्येक व्यक्ति में इतना साहस आना चाहिए तो ही व्यक्ति साधक हो सकता है। और जिस दिन परम साहस प्रकट होता है उसी दिन सिद्ध होने में क्षण भर की भी देर नहीं लगती।

प्रश्न : आपने पिछले दिनों महावीर के सम्बन्ध में एकान्त की बात कही थी। तो क्या महावीर का आत्मदर्शन भी एकान्त ही था, सम्पूर्ण नहीं था ?

उत्तर : इस सम्बन्ध में दो बातें समझ लेनी चाहिए। एक शब्द है 'दृष्टि' और दूसरा शब्द है 'दर्शन'। दृष्टि एकांकी, अधूरी और खण्ड-खण्ड होगी। दृष्टि का मतलब है कि मैं एक जगह खड़ा हूँ, वहाँ से जैसा दिखाई पड़ रहा है, जो दिखाई दे रहा है, वह महत्त्वपूर्ण है और जिस जगह मैं खड़ा हूँ वह जगह भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। जहाँ से खड़े होकर मैं देख रहा हूँ, जैसा मुझे दिखाई पड़ेगा वह दृष्टि होगी और इसी के सम्बन्ध में दर्शन शब्द को समझना बड़ा कीमती है।

दर्शन का मतलब है जहाँ सब दृष्टियाँ मिट गईं, जहाँ मेरे खड़े होने की कोई जगह न रही, सच में जहाँ मैं ही न रहा। वहाँ जो होगा, उसका नाम दर्शन है। दर्शन सदा ही समग्र होगा। दृष्टि सदा ही खण्डित होगी। तो

जिसे हम आत्मानुभूति कहें यहाँ जब दृष्टियाँ सब मिट गईं, असल में देखने वाला भी मिट गया, असल में वह जगह भी मिट गई जहाँ हम खड़े थे, वह भी मिट गया जो खड़ा हो सकता है, सब मिट गया, मेरी तरफ से कुछ भी न बचा, अब जो मुझे प्रतीति होगी, अब जो अनुभव घटित होगा वह समग्र घटित होगा। तो महावीर का जो दर्शन है, या बुद्ध का या कृष्ण का या क्राइस्ट का या मुहम्मद का वह सदा ही समग्र होगा।

दर्शन कभी भी अधूरा नहीं हो सकता क्योंकि अधूरा बनाने वाली जो भी बातें थीं, वे सब समाप्त हो गईं। और एक तरफ से समझें।

जब तक मेरे चित्त में विचार हैं, तब तक मेरे पास दृष्टि होगी, दर्शन नहीं होगा। क्योंकि मैं अपने विचार के चश्मे से देखूँगा। मेरे विचार का जो रंग होगा, वही उस चीज पर भी पड़ जाएगा, जिसे मैं देखूँगा। और दर्शन होगा तब जब मैं निर्विचार हो जाऊँगा, जब कोई विचार मेरे पास नहीं होगा। जब विचार मात्र नहीं होगा, खाली जगह से मैं देखूँगा, जहाँ मेरा कोई पक्ष नहीं, कोई विचार नहीं, कोई शास्त्र नहीं, कोई सिद्धान्त नहीं, मैं हिन्दू नहीं, मुसलमान नहीं, ईसाई नहीं, जैन नहीं। जब मैं कोई भी नहीं, निपट खाली मन रह गया है वहाँ से जब देखूँगा तो वह जो होगा दर्शन होगा। विचार, दृष्टि तक ले जाता है, निर्विचार, दर्शन तक।

एक बात और भी समझनी उपयोगी है। दर्शन कितना ही समग्र हो—समग्र होगा ही—लेकिन जब दर्शन को कोई प्रकट करने जाएगा तब फिर दृष्टि शुरू हो जाएगी। क्योंकि दर्शन को फिर प्रकट करने के लिए विचार का उपयोग करना पड़ेगा। और जैसे ही विचार का उपयोग किया कि समग्र नहीं हो सकता। असल में विचार की एक व्यवस्था है, वह कभी भी पूरी नहीं हो सकती। विचार चीजों को तोड़कर देखता है। और वस्तु में, सत्य में, सब चीजें जुड़ी हुई हैं। अगर हम विचार से देखने जाएँगे तो जन्म अलग है, मृत्यु अलग है। जन्म और मृत्यु को विचार में जोड़ना अत्यन्त कठिन है। क्योंकि जन्म बिल्कुल उलटी चीज है, मृत्यु बिल्कुल उलटी चीज है। लेकिन वस्तुतः जीवन में जन्म और मृत्यु, एक ही चीज के दो छोर हैं। वहाँ जन्म अलग नहीं, मृत्यु अलग नहीं। जो जन्म पर शुरू होता है, वही मृत्यु पर बिदा होता है। वह एक ही यात्रा के दो बिन्दु हैं। पहला बिन्दु जन्म है, अन्तिम बिन्दु मृत्यु है। अगर हम जीवन को देखेंगे तो ये इकट्ठे हैं और अगर विचार से सोचने जाएँगे तो जन्म और मृत्यु अलग-अलग हो जाएँगे। अगर विचार में सोचेंगे तो काला

और सफेद बिल्कुल अलग-अलग हैं। ठंडा और गर्म बिल्कुल अलग-अलग हैं। लेकिन अगर अनुभव में सोचने जाएँगे तो ठंडा और गर्म एक ही चीज के दो रूप हैं, काला और सफेद भी एक ही नमूने के दो छोर हैं। लेकिन जब भी हम प्रकट करने चलेंगे तो हमें फिर विचार का उपयोग करना पड़ेगा।

मुहम्मद को, महावीर को, बुद्ध को, कृष्ण को, क्राइस्ट को जो अनुभूति हुई है वह तो समग्र है लेकिन जब वे उसे अभिव्यक्त करते हैं तो वह समग्र नहीं रह जाती। तब वह एक दृष्टि रह जाती है। और इसीलिए जो प्रकट दृष्टियाँ हैं, उनमें विरोध पड़ जाता है। दर्शन में कोई विरोध नहीं है लेकिन प्रकट दृष्टि में विरोध है।

मैं और आप श्रीनगर आ रहे हैं। श्रीनगर तो एक ही है जिसमें मैं आऊँगा और आप आएँगे। फिर हम दोनों श्रीनगर से गए। फिर कोई हमसे कहेगा कि क्या देखा? जो मैं कहूँगा वह भिन्न होगा, जो आप कहेंगे उससे। श्रीनगर एक था। हम आए एक ही नगर से थे। लेकिन हो सकता है कि मुझे झील पसन्द हो और मैं झील की बात करूँ, और आपको पहाड़ पसन्द हो और आप पहाड़ की बात करें। और हो सकता है कि मुझे दिन पसन्द हो मैं सूरज की बात करूँ और आपको रात पसन्द हो आप चाँद की बात करें। और हमारी दोनों बातें ऐसी मालूम पड़ने लगें कि हम दो नगरों में गए होंगे। क्योंकि एक चाँद की बात करता है एक सूरज की, एक अंधेरे को बात करता है एक उजाले की, एक सुबह की बात करता है एक सांझ की, एक पहाड़ की बात करता है एक झील की। शायद सुनने वाले को मुश्किल हो जाए यह बात कि यह पहाड़ और झील, यह चाँद और सूरज, यह रात और दिन—ये सब किसी एक ही नगर के हिस्से हैं। ये इतने विरोधी भी मालूम पड़ सकते हैं कि ताल-मेल बिठाना मुश्किल हो जाए। वे जो खबरें हम ले जाएँगे, वे दृष्टियाँ होंगी, वे विचार होंगे। लेकिन जो हमने जाना और जिया था, वह दर्शन था। उस दर्शन में श्रीनगर एक था। वहाँ रात और दिन जुड़े थे, पहाड़ और झील जुड़ी थी, वहाँ अच्छा-बुरा जुड़ा था, वहाँ सब इकट्ठा था। लेकिन जब हम बात करने गए, चुनाव हमने किया, छाँटा तो हम अलग खड़े हो गए। और हमने एक दृष्टि से चुनाव किया।

जैसे ही कोई बात बोली जाएगी वैसे ही दृष्टि बन जाएगी। और यही बहुत खतरा रहा है कि दृष्टियों को दर्शन समझने की भूल होती रही है और इसलिए जैनों की एक दृष्टि है, दर्शन नहीं; हिन्दुओं की एक दृष्टि है, दर्शन नहीं; मुसल-

मानों की एक दृष्टि है, दर्शन नहीं। अगर दर्शन की हम बात करते हैं तो हिन्दू, मुसलमान जैन—सब खो जाएंगे। वहाँ तो एक ही रह जाएगा। वहाँ कोई दृष्टि नहीं है, कोई विचार नहीं है।

महावीर का जो अनुभव है, वह तो समग्र है लेकिन अभिव्यक्ति समग्र नहीं हो सकती। जब भी हम कहने जाते हैं, तभी समग्र को हम कह नहीं सकते। परमात्मा का अनुभव तो बहुत बड़ी बात है। छोटे से, सरल अनुभव भी समग्ररूपेण प्रकट नहीं होते। आपने फूल को देखा। यह बहुत सुन्दर है—ऐसा अनुभव किया। फिर आप कहने गए। फिर जब आप कहते हैं तो आपको लगता है कि कुछ बात अधूरी रह गई। यानी बहुत-बहुत सुन्दर है, ऐसा कहने पर भी पता नहीं चलता फूल जैसा था उसका। वह जो आपको अनुभव हुआ जीवन्त, वह जो आपका सम्पर्क हुआ फूल से, वह जो सौन्दर्य आप पर प्रकट हुआ, वह जो सुगन्ध आई, वह जो हवाओं ने फूल का नृत्य देखा, वह जो सूरज की किरणों ने फूल की खुशी देखी वह कितनी ही बार कहें कि बहुत-बहुत सुन्दर है तब भी लगता है कि बात कुछ अधूरी रह गई, कुछ बेस्वाद, बिना सुगन्ध की, मृत, मुर्दा रह गई। कुछ पता नहीं चलता। वह जो देखा था उसका कोई पता नहीं चलता। जब हम साधारण सी भी बात कहते हैं तो जो हमने अनुभव किया उसके वर्णनों में बहुत कमी पड़ जाती है। और जब कोई असाधारण अनुभव को कहने जाता है, तब इतनी कमी पड़ जाती है जिसका हिसाब लगाना कठिन है। और दुनिया में जो सम्प्रदाय हैं, वह कही हुई बात पर निर्भर हैं—जानी हुई बात पर नहीं। जानी हुई बात पर कभी सम्प्रदाय निर्मित हो जाएँ यह असम्भव है क्योंकि जो जाना गया है, वह भिन्न है ही नहीं।

एक बार ऐसा हुआ कि फरीद यात्रा कर रहा था। कुछ मित्र साथ थे। और कबीर का आश्रम निकट आया। फरीद के मित्रों ने कहा कि कितना अच्छा हो कि हम कबीर के पास दो दिन रुक जाएँ। आप दोनों की बातें होंगी तो हम धन्य हो जाएंगे। शायद ही जन्मों में ऐसा अवसर मिले कि कबीर और फरीद का मिलना हो और लोग सुन लें। फरीद ने कहा कि तुम कहते हो तो हम जरूर रुक जाएँगे, लेकिन बात शायद ही हो। उन्होंने कहा लेकिन बात क्यों नहीं होगी? फरीद ने कहा कि वह तो चलकर ठहरेंगे तो ही पता चल सकता है। कबीर के मित्रों को भी खबर लग गई और उन्होंने कहा कि फरीद निकलता है इधर से, रोक लें। प्रार्थना करें हमारे आश्रम में रुक जाएँ दो दिन। आप दोनों की बातें होंगी तो कितना आनन्द होगा! कबीर ने कहा :

रोको जरूर, आनन्द बहुत होगा लेकिन बातें शायद ही हों। पर उन्होंने कहा : बातें क्यों न होंगी ? कबीर ने कहा कि वे तो फरीद आ जाए तो पता चले। फरीद को रोक लिया गया। वे दोनों गले मिले। वे दोनों हँसे। वे दोनों पास बैठे। दो दिन बीत गए लेकिन कोई बात नहीं हुई। सुनने वाले बहुत ऊब गए हैं, बहुत घबड़ा गए हैं। फिर बिदाई भी हो गई। फिर कबीर गाँव के बाहर जाकर छोड़ भी आए। वे गले मिले, रोए भी लेकिन फिर भी नहीं बोले। छूटते ही कबीर के शिष्यों ने पूछा : यह क्या पागलपन है ? दो दिन आप बोले ही नहीं। कबीर के शिष्यों ने पूछा : यह क्या हुआ ? हम तो घबड़ा गए। दो दिन कैसे चुप रहे ? कबीर ने कहा : जो मैं जानता हूं, वही फरीद जानते हैं। अब बोलने का उपाय क्या है ?

दो अज्ञानी बोल सकते हैं, एक ज्ञानी और एक अज्ञानी बोल सकता है। दो ज्ञानियों के बोलने का उपाय क्या है ? और जो बोलता है वह नाहक अज्ञानी बन जाता है क्योंकि वह जो बोल कर कहता है वह दूसरे ने जो जाना है उससे छोटा होता है। और एक बोल कर कहता है तो जानते हुए कि सामने बोल कर कहना बहुत कठिन बात है। क्योंकि उसको लगता है कि उसका जाना हुआ तो अपार है और बोला हुआ छोटा है। तो जो बोलता है वह नासमझ होता है।

फरीद के शिष्यों ने पूछा तो फरीद ने कहा क्या बोलते ? कबीर के सामने क्या बोलते ? बोल कर मैं फँसता। क्योंकि जो बोलता है वह बोलने से ही गलत हो जाता है। जो जान गया है उसके सामने बोला हुआ सब गलत है। सब न जाना गया हो तो तभी बोला हुआ सच मालूम पड़ता है। लेकिन जिसने जाना हो उसके सामने बोला हुआ इतना फीका है, जैसे मैंने आपको देखा हो निकट से, जाना हो, पहचाना हो और फिर मुझे कोई सिर्फ आपका नाम बता दे और नाम का ही परिचय बता दे तो नाम क्या परिचय बनेगा ? जिस व्यक्ति को मैं जानता हूँ उसका नाम क्या परिचय बनेगा ? हाँ, जिसको हम नहीं जानते उसके लिए नाम भी परिचय बन जाता है। लेकिन जिसको हम जानते हैं उसके नाम से क्या फर्क पड़ता है ? नाम कोई परिचय नहीं बनाता। नाम कोई परिचय है क्या ? फरीद ने कहा कि जरूरी था कि मैं चुप रह जाऊँ क्योंकि बोल कर जो मैं कहता, वह सिर्फ नाम होता। और उस आदमी ने जो जाना उसका नाम लेना एकदम बड़ी भूल होती।

तो जहाँ ज्ञान ही वहाँ भेद नहीं है और जहाँ शब्द है वहाँ भेद है। जैसे ही शब्द का प्रयोग करना शुरू हुआ, भेद पड़ने शुरू हो गए। जैसे हम सूरज की

किरण को देखें वहाँ कोई भेद नहीं है। सूरज की किरण सीधी और साफ है। लेकिन एक प्रिज्म लें और फिर सूरज की किरण को देखें तो प्रिज्म किरण को सात टुकड़ों में तोड़ देता है। प्रिज्म के इस पार सूरज की इकहरी किरण देखनी मुश्किल है। प्रिज्म के उस पार सूरज की सात खण्डों में विभाजित किरण देखनी मुश्किल है। शब्द प्रिज्म का काम कर रहा है। जो जाना गया है वह शब्द के उस पार है, जो कहा गया है वह शब्द के इस पार है। शब्द के इस पार सब टूट जाता है खण्ड खण्ड। शब्द के उस पार सब अखण्ड है।

इसलिए महावीर ने जो जाना है वह तो समग्र है लेकिन जो कहा है वह चाहे महावीर कहें, चाहे कोई भी कहे, समग्र नहीं हो सकता। वह एकान्त ही होगा, वह खंड ही होगा। और इसीलिए जैन खंडित होगा; वह एकांती होगा। क्योंकि महावीर ने जो कहा है, वह उसे पकड़ेगा। महावीर का समग्र उसकी पकड़ में नहीं आने वाला। इसलिए वह जैन होकर बैठ जाएगा। वह अनेकान्त को भी 'वाद' बना लेगा। वह महावीर के दर्शन को भी दृष्टि बना लेगा और उसको पकड़ कर बैठ जाएगा। इसलिए सभी अनुयायी खंड सत्य को पकड़ने वाले होते हैं।

और यह भी समझ लेना जरूरी है कि जिसने खंड सत्य को पकड़ा है, वह जाने-अनजाने अखंड-सत्य का दुश्मन हो जाता है क्योंकि उसका आग्रह होता है कि मेरा खंड ही समग्र है। और सभी खंडवालों का यही आग्रह होता है कि मेरा खंड समग्र है। सभी खंड मिलकर समग्र हो सकते हैं लेकिन प्रत्येक खंड का यह दावा है कि मैं समग्र हूँ, दूसरे खंड का भी यही दावा है कि मैं समग्र हूँ। यह दावे मिलकर समग्र नहीं हो सकते। यह दावे सारी मनुष्य जाति को खंड-खंड में बांट देते हैं। मनुष्य जो कि अखंड है, इसी तरह टुकड़ों में, सम्प्रदायों में बंटकर टूट गया है।

दृष्टि पर हमारा जोर होगा तो सम्प्रदाय होंगे। दर्शन पर हमारा जोर होगा तो सम्प्रदायों का कोई उपाय नहीं। मेरा सारा जोर दर्शन पर है, दृष्टि पर जरा भी नहीं। महावीर का भी जोर दर्शन पर है और बड़े मजे की बात है कि जितनी दृष्टियों से हम मुक्त होते चले जाते हैं उतना ही हम दर्शन के निकट पहुँच जाते हैं। आमतौर से शब्दों से ऐसा भ्रम होता है कि दृष्टि ही दर्शन देती है। लेकिन दृष्टि ही सबसे बड़ी बाधा है दर्शन में। अगर मेरी कोई भी दृष्टि है तो मैं सत्य को कभी नहीं जान सकता हूँ। अगर मेरी कोई दृष्टि नहीं है, मैं

दृष्टिमुक्त, दृष्टिशून्य होकर खड़ा हो गया हूँ तो ही मैं पूर्ण को जान सकता हूँ क्योंकि तब पूर्ण को मेरे तक आने में कोई बाधा नहीं है।

प्रश्न : दर्शन और अनुभूति एक बात है ?

उत्तर : हाँ, बिल्कुल ही एक बात है।

प्रश्न : महावीर ने घर में ही रहकर साधना क्यों नहीं की ? बाहर आने की क्या आवश्यकता थी ?

उत्तर : ये सवाल भी हमें उठते हैं। ये प्रश्न भी महत्त्वपूर्ण हैं। क्योंकि घर और बाहर हमें दो विरोधी चीजें मालूम पड़ती हैं। हमें ऐसा लगता है कि घर एक अलग दुनिया है, और बाहर एक अलग दुनिया है। हमें कभी भी ख्याल नहीं आता कि घर और बाहर, एक ही विराट् के दो हिस्से हैं। एक श्वाँस भीतर गई तो मैं कहता हूँ कि भीतर गई। और एक क्षण भीतर रही नहीं कि बाहर हो गई। जो एक क्षण पहले बाहर थी वह एक क्षण बाद भीतर हो जाती है। जो एक क्षण भीतर थी वह एक क्षण बाद बाहर हो जाती है। क्या बाहर है और क्या भीतर है ? कौन सा घर है, और कौन सा घर से अतिरिक्त अन्यथा है ?

हमारी जो दृष्टि है वह हमने बड़ी सीमित बना रखी है। घर से हमारा मतलब है जो अपना है और बाहर से हमारा मतलब है जो अपना नहीं है। लेकिन क्या ऐसा नहीं हो सकता कि किसी के लिए कुछ भी ऐसा न हो जो अपना नहीं है। और अगर किसी व्यक्ति के लिए ऐसा हो जाए कि कुछ भी ऐसा नहीं है जो अपना नहीं है तो घर और बाहर का सवाल समाप्त हो गया। तब घर ही रह गया, बाहर कुछ भी न रहा। या उलटा भी कह सकते हैं कि बाहर ही रह गया, घर कुछ भी न रहा। एक बात तय है कि जिस व्यक्ति को दिखाई पड़ना शुरू होगा उसे बाहर और भीतर की जो भेद रेखा है, वह मिट जाएगी। वही बाहर है, वही भीतर है।

ये हवाएँ हमारे घर के भीतर भर गई हैं तो हम कह रहे हैं घर के भीतर। और हमें ख्याल नहीं है कि प्रतिपल ये हवाएँ बाहर हुई चली जाती हैं और प्रतिपल जो बाहर थीं वे भीतर चली आती हैं। घर के भीतर हवाएँ कुछ अलग हैं घर के बाहर से ? यह जो प्रकाश घर में आ गया है वह कुछ अलग है उस प्रकाश से जो बाहर है। हाँ, इतना ही फर्क है कि दिवालों ने इसकी प्रखरता छीन ली है। दीवालों ने इसे उतना ताजा और जीवन्त नहीं रहने दिया है

जितना वह बाहर है। हवाएँ जो घर के भीतर आ गई हैं थोड़ी गंदी हो गई हैं। दीवालों ने, सीमाओं ने उनकी स्वच्छता छीन ली है, ताजगी छीन ली है। और अगर कोई व्यक्ति घर के भीतर बैठे-बैठे पाता है कि अस्वच्छ हो गया है सब और द्वार के बाहर जाकर आकाश खुले नीचे खड़ा हो जाता है तो हम नहीं कहते हैं कि उसने घर छोड़ दिया है, हम इतना ही कहते हैं कि घर के बाहर और बड़ा घर है जहाँ और स्वच्छ हवाएँ हैं और स्वच्छ सूरज है, और साफ सुन्दर जगह है। आदमी की बनाई हुई दीवालें हैं और गौर से हम देखें तो हमारे मोह की दीवाले हैं जो हमारा घर बनाती हैं।

तो मकान बाँधे हुए हैं या हमारा 'मेरा' बाँधे हुए हैं? इसे हम जरा ठीक से समझ लें तो हमें दिखाई पड़ेगा 'मेरा' हमारा घेरा है। बहुत गहरे में 'मेरे' का भाव, महत्त्व हमारा मकान है। और ध्यान रहे जो कहता है 'मेरा' वह अनिवार्य रूप से शेष को 'तेरे' में बदल देता है: जो कहता है 'मेरा' वह शेष को शत्रु बना लेता है। जो कहता है 'अपना' वह दूसरे को पराया बना देता है।

गांधी जी के आश्रम में एक भजन गाया जाता था। 'वैष्णव जन तो तेने कहिए जे पीर पराई जाने।' कोई मुझे पढ़कर सुना रहा था तो मैंने कहा कि इसमें थोड़ा सुधार कर लेना चाहिए। असल में वैष्णव जन तो वह है जो पराए को ही नहीं जानता। पराई पीर तो बहुत दूसरी बात है। पराए की पीर को जानना हो तो पराए को मानना जरूरी है, और अपने को भी मानना जरूरी है। वैष्णव जन तो वह है जो जानता ही नहीं कि कोई पराया है, और तभी यह सम्भव भी है कि पराए की पीर उसे अपनी मालूम होने लगे, तभी जबकि पराया न रह जाए।

तो जो एक हमारे 'मैं' का घेरा है, वही हमारा घर है—'मेरा घर', 'मेरी पत्नी', 'मेरे पिता', 'मेरा बेटा', 'मेरा मित्र', एक 'मेरे' की हमने दुनिया बनाई हुई है। उस 'मेरे' की दुनिया में हमने कई तरह की दीवालें उठाई हुई हैं—पत्थर की भी उठाई हैं, प्रेम की भी उठाई हैं, घृणा की भी उठाई हैं, द्वेष की भी, राग की भी। और एक घर बनाया है। जबकि पूछा जाता है कि महावीर ने घर क्यों छोड़ दिया है। क्या घर में ही सम्भव नहीं था? नहीं, घर ही सम्भव नहीं था। घर ही असम्भावना थी। अगर हम बहुत गौर से देखेंगे तो वह जो 'मेरे' का भाव था वही तो असम्भावना थी। वही रोकता था, वही समस्त से नहीं जुड़ने देता था। लेकिन अगर किसी को दिखाई पड़ गया हो कि

सब ही 'मेरा' है, या कुछ भी ऐसा नहीं जो 'मेरा' है और 'तेरा' है तो फिर कौन-सा घर है जो अपना है और कौन-सा घर है जो अपना नहीं है।

हमें एक ही बात दिखाई पड़ती है कि महावीर ने घर छोड़ा। वह क्यों दिखाई पड़ती है क्योंकि हम घर को पकड़े हुए हैं। हमारे लिए जो सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण प्रश्न है, वह यह कि इस आदमी ने घर क्यों छोड़ा क्योंकि हम घर को पकड़े हुए लोग हैं। घर को छोड़ने की बात ही असह्य है। यह कल्पना भी असह्य है कि घर छुड़ा लिया जाए। इस आदमी ने घर क्यों छोड़ा? लेकिन हम समझ नहीं पा रहे कि घर की धारणा क्या है?

महावीर ने घर छोड़ा या कि घर मिट गया? जैसे ही जाना तो घर मिट गया। जैसे ही समझा तो मेरा और अपना कुछ भी न रहा। सबका सब हो गया। यह अगर हमें दिखाई पड़ जाए तो बड़ा फर्क पड़ जाता है। हम यहाँ बैठे हुए हैं। दस करोड़ मील दूर पर सूरज है। वह अगर ठंडा हो जाए तो हमें पता भी नहीं चलेगा कि वह ठंडा हो गया क्योंकि उसी के साथ हम सब ठंडे हो जाएँगे। दस करोड़ मील जो सूरज है, वह भी हमारे प्राण के स्पन्दन को बाँधे हुए है, वह भी हमारे घर का हिस्सा है। उसके बिना हम हो ही नहीं सकते। वह हमारे होने को भी संभाले हुए है। लेकिन कब हमने सूरज को घर का साथी समझा है? कब हमने माना है कि सूरज भी अपना है मित्र और अपने परिवार का है? लेकिन जिसे हमने कभी परिवार का नहीं समझा है उसके बिना हम कोई भी नहीं होंगे। न परिवार होगा न हम होंगे। वह दस करोड़ मील दूर बैठा हुआ सूरज भी हमारे हृदय की धड़कन का हिस्सा है। घर के भीतर है या बाहर अगर यह सवाल पूछा जाए तो क्या उत्तर होंगे?

सूरज घर के भीतर है या घर के बाहर? अगर सूरज को घर के बाहर करते हैं तो हम जीवित नहीं रहते। सूरज अगर हमारे घर के भीतर हो तो ही हम जीवित हैं। हवाएँ, जो सारी पृथ्वी को घेरे हुए हैं, हमारे घर के भीतर हैं, अगर एक क्षण को न हो जाएँ तो हम उसी क्षण 'न' हो जाएँगे। सूरज तो पास है। दूर के चाँद तारे भी, दूर के यह ग्रह उपग्रह भी, दूर के सूरज और महासूरज भी—वे सब भी किसी न किसी अर्थ में हमारे जीवन का हिस्सा है।

पत्नी ने आपका खाना बना दिया है तो वह आपके घर के भीतर है। लेकिन एक गाय ने घास चरी है और आपके लिए दूध बना दिया है तो वह आपके घर के भीतर नहीं है। और घास को सीधा आप चर कर दूध नहीं बना

सकते हैं। बीच में एक गाय चाहिए जो घास को उस स्थिति में बदल दे जहाँ से वह आपके योग्य हो जाए। लेकिन घास ने भी कुछ किया है। उसने भी मिट्टी को बदला है और घास बन गया। घास आपके घर के भीतर है या बाहर? क्योंकि अगर घास न हो तो आपके होने की कोई सम्भावना नहीं है। और घास अगर न हो तो मिट्टी को खाकर गाय भी दूध नहीं बना सकती। और घास मिट्टी ही है लेकिन उस रूप में जहाँ से गाय उसका दूध बना सकती है और जहाँ से दूध आपका भोजन बन सकता है।

क्या हमारा घर है? क्या हमारे घर के बाहर है? अगर हम आँख खोल कर देखना शुरू करें तो हमें पता चलेगा कि सारा जीवन एक परिवार है, जिसमें एक कड़ी न हो तो कुछ भी नहीं होगा। जीवन मात्र एक परिवार है एक सामने पड़ा हुआ पत्थर भी किसी न किसी अर्थ में हमारे जीवन का हिस्सा है। अगर वह भी न हो तो हम नहीं कह सकते कि क्या होगा? सब बदल सकता है। तो जिसको जीवन की इतनी विराटता का दर्शन हो जाएगा, वह कहेगा कि सभी सब हैं, सभी मेरे हैं, सभी अपने हैं या कोई भी अपना नहीं है। ये दो भाषाएँ रह जाएँगी उसके पास। अगर वह विधायक ढंग से बोलेगा तो वह कहेगा : मेरा ही परिवार है सब और अगर वह निषेधात्मक ढंग से बोलेगा तो वह कहेगा कि 'मैं ही नहीं हूँ, परिवार कैसा?' ये दो उपाय रह जाएँगे और ये दोनों उपाय एक ही अर्थ रखते हैं।

तो महावीर ने छोड़ा घर, परिवार यह बिल्कुल भूल है। असल में बड़े परिवार के दर्शन हुए, छोटा परिवार खो गया। और जिसको सागर मिल जाए, वह बूँद को कैसे पकड़े बैठा रहेगा? बूंद को तभी तक कोई पकड़ सकता है जब तक सागर न मिला हो और सागर मिल जाए तो हम कहेंगे कि बूंद को आपने छोड़ा। असल में हमें सागर दिखाई नहीं पड़ता, सिर्फ बूंद ही दिखाई पड़ती है। बूंद को पकड़े हुए लोग, बूंद को छोड़ते हुए लोग—ऐसे हमें दिखाई पड़ते हैं। हमें सागर नहीं दिखाई पड़ता। लेकिन जिसे सागर दिखाई पड़ जाए, वह कैसे बूंद को पकड़े रहे। तो बूंद को पकड़ना निपट अज्ञान हो जाएगा। ज्ञान विराट् में ले जाता है, अज्ञान क्षुद्र को बाँध कर पकड़ा देता है। अज्ञान क्षुद्र में ही रुक जाता है, ज्ञान निरन्तर विराट् से विराट् हो जाता है।

महावीर ने घर नहीं छोड़ा, घर को पकड़ना असम्भव हो गया। और इन दोनों बातों में फर्क हैं। जब हम कहते हैं कि घर छोड़ा तो ऐसा लगता है कि घर से कोई दुश्मनी है। और जब मैं कहता हूँ कि घर को पकड़ना असम्भव

हो गया तो ऐसा लगता है कि और बड़ा घर मिल गया, विराट् सा घर। उसमें पहला घर छूट नहीं गया, सिर्फ वह बड़े घर का हिस्सा हो गया। यह हमारे ख्याल में आ जाए तो त्याग का एक नया अर्थ ख्याल में आ जाएगा।

त्याग का अर्थ कुछ छोड़ना नहीं, त्याग का बहुत गहरा अर्थ विराट् को पाना है। लेकिन त्याग शब्द में खतरा है। उसमें छोड़ना छिपा हुआ है। उसमें लगता है कि कुछ छोड़ा है। मेरी दृष्टि में, महावीर या बुद्ध या कृष्ण जैसे लोगों को त्यागी कहने में बुनियादी भूल है। इनसे बड़ा भोगी खोजना असम्भव है। अगर अर्थ समझ लें तो त्याग का अर्थ है कुछ छोड़ना, भोगी का अर्थ है कुछ पाना।

महावीर से बड़ा कोई भोगी होना असम्भव है क्योंकि जगत् में जो भी है सब उसका ही हो गया है; उसका भोग भी अनन्त हो गया है, उसका घर भी अनन्त हो गया है, उसकी स्वाँस भी अनन्त हो गई है, उसका प्राण भी अनन्त हो गया है, उसका जीवन भी अनन्त हो गया है। इतने विराट् को भोगने की सामर्थ्य क्षुद्र चित्त में नहीं होती। क्षुद्र, क्षुद्र को ही भोग सकता है इसलिए वह क्षुद्र को पकड़ लेता है। लेकिन जब विराट् होने लगे तो ?

एक नदी है, वह चलती है हिमालय से और सागर में गिर गई है। दो तरह से देखी जा सकती है यह बात। कोई नदी से पूछ सकता है : तूने पुराने किनारे क्यों छोड़ दिए ? तूने पुराने किनारों का त्याग क्यों किया ? ऐसे भी पूछा जा सकता है नदी से : किनारे क्यों छोड़े तूने ? और नदी ऐसा भी कह सकती है कि किनारे मैंने छोड़े नहीं, किनारे अनन्त हो गए हैं। किनारे अब भी हैं। लेकिन अब उनकी कोई सीमा नहीं है। अब वे असीम हो गए हैं। अब जो छोटे-छोटे किनारे थे, एक छोटी सी धारा बहती थी और रोज छोटे किनारे छोड़ती चली आई है इसलिए बड़ी होती चली गई। गंगोत्री पर बड़ा छोटा किनारा था गंगा का। फिर आकर सागर के पास बड़े-बड़े किनारे हो गए। लेकिन फिर भी किनारे थे। फिर सागर में उसने अपने को छोड़ दिया। सागर के बड़े किनारे हैं, लेकिन फिर भी किनारे हैं। कल वह भाप बनेगी और आकाश में उठ जाएगी और किनारे छोड़ देगी, कोई किनारा नहीं रह जाएगा।

जीवन की खोज मूलतः किनारों को छोड़ने की या बड़े किनारों को पाने की खोज है। लेकिन जिसको असीम और अनन्त मिल जाता हो उससे जब हम पूछने जाते हैं कि तुमने किनारे क्यों छोड़े तो क्या उत्तर होगा उसके पास ? वह

सिर्फ हँसेगा और कहेगा कि तुम भी आओ और छोड़कर देखो क्योंकि जो मैंने पाया है वह बहुत ज्यादा है और उसमें वह पुराना मौजूद ही है।

जो तुम कहते हो छोड़ दिया, वह कहीं छोड़ा नहीं। घर छूटा नहीं है महावीर का, सिर्फ बड़ा हो गया है। इतना बड़ा हो गया है कि हमें दिखाई भी नहीं पड़ता क्योंकि हमें छोटे घर ही दिखाई पड़ सकते हैं। अगर घर बहुत बड़ा हो जाए तो फिर हमें दिखाई नहीं पड़ता।

त्याग से हटा देनी चाहिए बात और विराट् भोग पर ज्यादा जोर दिया जाना चाहिए। और मेरी अपनी समझ है कि जो त्याग से हमने बाँध लिया है इन सब महापुरुषों को इसलिए हम इनके निकट नहीं पहुँच पाए क्योंकि त्याग बहुत गहरे में किसी व्यक्ति को भी अपील नहीं कर सकता है। बहुत गहरे में, त्याग की बात ही निषेध की बात है। यह छोड़ो वह छोड़ो, छोड़ने की भाषा ही मरने की भाषा है। छोड़ना आत्मघाती है। इसलिए अगर धर्म इस बात पर जोर देता हो कि छोड़ो, छोड़ो, तो बहुत थोड़े से लोग हैं जो उसमें उत्सुक हो सकते हैं। और अक्सर ऐसा होगा कि रुग्ण लोग उत्सुक हो जाएँगे और स्वस्थ लोग उत्सुक नहीं रह जाएँगे। स्वस्थ भोगना चाहता है, रुग्ण छोड़ना चाहता है क्योंकि वह भोग नहीं सकता। बीमार, आत्मघाती चित्त के लोग इकट्ठे हो जाएँगे धर्म के नाम पर। स्वस्थ, जीवन्त, जीवन जानने वाले अलग चले जाएँगे, कहेंगे धर्म हमारा नहीं है। इसलिए तो लोग कहते हैं। युवावस्था में धर्म की क्या जरूरत ? वह तो वृद्धावस्था के लिए है। जबकि चीजें अपने से छूटने लगती हैं तो उन्हें छोड़ ही दो। फिर अब क्या दिक्कत है ? छोड़ ही दो, छूट ही रहा है, छीना ही जा रहा है, लेकिन जब जीवन भोग रहा है, पा रहा है, उपलब्ध कर रहा है तब छोड़ने की भाषा समझ में नहीं आती। इसलिए मन्दिरों में, मस्जिदों में, गिरजों में बूढ़े लोग दिखाई पड़ते हैं, जवान आदमी दिखाई नहीं पड़ते।

वह जो छोड़ने पर जोर था उसने दिक्कत डाल दी है। मैं इस जोर को एकदम बदलना चाहता हूँ। मैं कहता हूँ : भोगो और ज्यादा भोगो ? परमात्मा को भोगो और उसका भोग बहुत अनन्त है, क्षुद्र पर मत रुक जाना। क्षुद्र को छोड़ना तो इसलिए कि विराट् को भोगना है। जितना हम विराट् होते चले जाएंगे, उतना हमारा अस्तित्व मिटता चला जाएगा। लेकिन असल में, 'अस्तित्व

मिट जाता है', ऐसा कहना भूल है। मेरा अस्तित्व मिट जाता है इतना ही कहना सही है। ईगो चली जाती है, अस्तित्व तो रहेगा।

प्रश्न : नदी सागर में गई तो नदी का कैसे पता लगेगा ?

उत्तर : पता नहीं लगेगा लेकिन नदी है। अस्तित्व तो है। नदी में जो कण-कण था, वह खोया नहीं है, वह सब है। हाँ, नदी की तरह नहीं है, सागर की तरह है। और नदी की तरह अब नहीं खोजा जा सकता। नदी मर गई लेकिन नदी का जो अस्तित्व था वह पूरा का पूरा सुरक्षित है।

प्रश्न : फिर आप कहते हैं कि छोड़ना तो आत्मघाती है।

उत्तर : हाँ, बिल्कुल आत्मघाती है। छोड़ने की भाषा ही आत्मघाती है। नदी से मत कहो कि नदी होना छोड़ो। नदी से कहो कि सागर होना सीखो। नदी से मत कहो कि छोड़ो, नदी से कहो कि भोगो। विराटता के पहले रुको मत। दौड़ो, कूद जाओ सागर में, भोगो, सागर को भोगो। मुझे लगता है कि जगत् को ज्यादा धार्मिक जीवन दिया जा सकता है। क्योंकि जो हमारा सामान्य चित्त है और सामान्य चित्त का जो भाव है, वह भोगने का है, त्यागने का नहीं है। और सामान्य चित्त को अगर धर्म की ओर उठाना है तो उसे विराट् भोग का आमंत्रण बनाना चाहिए। अभी उल्टा हो गया है। जो छोटा-मोटा भोग चल रहा है उसके भी निषेध करने का आमंत्रण बना हुआ है। उसे भी इन्कार करो। और यह मैं मानता हूँ कि अगर हम विराट् को भोगने जाएँगे तो क्षुद्र का निषेध करना पड़ेगा। नदी को सागर बनना है तो वह नदी नहीं रह जाएगी। यह कोई कहने की बात नहीं है। नदी को सागर बनना है तो उसे नदी होना छोड़ना ही होगा। लेकिन इस बात पर जोर मत दो।

दो घटनाएँ घट रही हैं। नदी मिट रही है—एक घटना। नदी सागर हो रही है—दूसरी घटना। किस पर जोर देते हैं आप ? अगर सागर होने पर जोर देते हैं तो मैं मानता हूँ कि ज्यादा नदियों को आप आकर्षित कर सकते हैं कि वे सागर बन जाएँ। अगर आप कहते हैं कि नदी मिट जाओ, सागर की बात मत करो तो शायद ही कोई एक आध नदी को आप तैयार कर लें जो मिटने को राजी हो जाए, जो नदी होने से घबड़ा गई हो। बाकी नदियाँ तो रुक जाएँगी और कहेंगी : हम बहुत आनन्दित हैं। हमें नहीं मिटना है। हाँ मिटना तभी सार्थक है जब विराट् का मिलना सार्थक हो रहा हो, अर्थ दे रहा हो।

तो मेरा जोर इस बात पर है कि धर्म का त्याग मत करो। धर्म को विराट् भोग बनाओ। त्याग आएगा, वह सीधा अपने आप होगा। अगर आपको आगे की सीढ़ी पर पैर रखना है तो पिछली सीढ़ी छूटेगी। लेकिन इस पर जोर मत दो कि पीछे की सीढ़ी छोड़नी है। जोर इस पर दो कि आगे की सीढ़ी पानी है।

प्रश्न : जैसे त्याग शब्द ने गलती की अब तक, वैसे आपका भोग शब्द भी गलती कर सकता है ?

उत्तर : बिल्कुल कर सकता है। सब शब्द गलती करते हैं। शब्द कोई हो इससे कोई फर्क नहीं पड़ेगा। सब शब्द गलती कर सकते हैं क्योंकि अन्ततः शब्द गलती नहीं करते, अन्ततः लोग गलती करते हैं। लेकिन त्याग शब्द व्यर्थ हो गया है। और त्याग के विपरीत कोई शब्द नहीं है सिवाय भोग के। लेकिन जो मैं कह रहा हूँ अगर उसे ठीक से समझा जाए तो मेरा भोग त्याग के विपरीत नहीं है। मेरा भोग त्याग में से ही है क्योंकि मैं कह रहा हूँ कि दूसरी सीढ़ी पर पैर रखना है तो पहली सीढ़ी छोड़नी ही पड़ेगी। लेकिन मेरा जोर दूसरी सीढ़ी पर पैर रखने पर है। मेरा जोर आगे बढ़ने पर है। मेरा जोर पिछली सीढ़ी छोड़ने पर नहीं है। जोर इस बात पर है कि अगली सीढ़ी पाओ। इसे मैं भोग कह रहा हूँ। पिछला जोर इस बात पर था कि जिस सीढ़ी पर खड़े हो उसे छोड़ो। वह जोर छोड़ने पर था। पिछली सीढ़ी छोड़ो—इसके लिए बहुत कम लोगों को राजी किया जा सकता है क्योंकि जिस तरह हम खड़े हैं, उसे भी छोड़ दें यह कठिन है। हाँ, जो उस सीढ़ी पर अत्यन्त दुःख में है, शायद वह छोड़ने को राजी हो जाए। वह कहे कि इससे बुरा तो कुछ नहीं हो सकता, यह तो छोड़ ही देते हैं फिर जो होगा, होगा।

रुग्ण चित्त त्याग की भाषा को समझ लेता है, स्वस्थ चित्त त्याग की भाषा को नहीं समझ सकता। वृद्ध चित्त त्याग की भाषा को समझ लेगा, युवा चित्त त्याग की भाषा को नहीं समझ सकेगा। इसलिए मैं कह रहा हूँ कि पिछले पाँच हजार वर्षों में धर्म ने जो भी रूपरेखा ली है, वह रुग्ण, विक्षिप्त, वृद्ध, बीमार—इस तरह के लोगों को आकृष्ट करने का कारण बनी। 'त्याग' शब्द पर जोर देने का परिणाम यह हुआ कि जो स्वस्थ, जीवन्त, जीने के लिए लालायित है वह उस ओर नहीं गया है। उसने कहा : जब जीवन की लालसा चली जाएगी, तब देखेंगे, अभी तो हमें जीना है।

मैं यह कह रहा हूं कि यह जो जीवन्त धारा है, इसे आकृष्ट करो। और यह तभी आकृष्ट होगी जब विराट् जीवन का ख्याल इसके सामने होगा कि छोड़ना नहीं है, पाना है। और छोड़ना होगा ही इसमें क्योंकि बिना छोड़े कुछ भी पाया नहीं जा सकता है। असम्भव ही है कि हम बिना छोड़े कुछ भी पा लें। कुछ भी हम पाने चलेंगे तो कुछ छोड़ना पड़ेगा। और इसलिए सवाल छोड़ने के विरोध का नहीं है। सवाल जोर का है, हम किस चीज पर जोर दें।

भोग शब्द में बहुत निन्दा छिप गई है। वह त्यागियों ने पैदा की है। इसलिए मैं भोग का ही उपयोग करना चाहता हूं, जानबूझ कर। क्योंकि वह जो भोग की निन्दा है, वह इन त्यागियों ने ही पैदा की है। वे कहते हैं कि भोग की बात ही मत करो, रस की बात ही मत करो, सुख की बात ही मत करो, क्योंकि त्याग करना है। मेरा कहना है कि यह पूरी की पूरी भाषा गलत हो गई है। इसने गलत तरह के आदमी को आकृष्ट किया है, स्वस्थ आदमी को आकृष्ट नहीं किया है।

जीवन को भोगना है उसकी गहराइयों में। जीवन को जीना है उसकी आत्यन्तिक उपलब्धियों में, उसके पूर्ण रस में, उसके पूर्ण सौन्दर्य में। परमात्मा इन अर्थों में प्रकट होना चाहिए कि जो व्यक्ति जितना परमात्मा में जा रहा है उतने जीवन की गहराइयों में जा रहा है। अभी तक का जो त्यागवादी रुख था वह ऐसा था कि जो व्यक्ति परमात्मा की ओर जा रहा है, वह जीवन की ओर पीठ कर रहा है, वह जीवन को छोड़कर भाग रहा है, वह जीवन की गहराइयों में नहीं आ रहा है, वह जीवन को इन्कार कर रहा है। वह कहता है कि जीवन हमें नहीं चाहिए, हमें मृत्यु चाहिए इसलिए; वह मोक्ष की बातें करता है। दूसरी ओर अगर कोई जीवन को मानकर चलेगा तो भी सब छूट जाएगा लेकिन तब उस छूटने पर जोर नहीं होगा।

मेरा जोर यह है कि आपके हाथ में पत्थर है तो मैं आपसे नहीं कहता कि आप पत्थर फेंक दो। मैं आपसे कहता हूं : सामने हीरों की खदान है। मैं नहीं कहता कि पत्थर फेंको। मैं कहता हूं कि हीरे बड़े पाने योग्य हैं और सामने चमक रहे हैं। मैं यह जानता हूं कि हाथ खाली करने पड़ेंगे। क्योंकि बिना हाथ खाली किए हीरों से हाथ भरेंगे कैसे? पत्थर छूट जाएंगे, लेकिन यह छूटना बड़ा सहज होगा। आपको शायद पता भी नहीं चलेगा कि अब आपने हाथ से पत्थर गिरा दिए और हीरे हाथ में भर लिए। शायद आपको ख्याल भी नहीं आएगा कि मैंने पत्थर छोड़े क्योंकि जिसे हीरे मिल गए वह पत्थर छोड़ने की

बात ही नहीं कर सकता। लेकिन पुराना जोर इस बात पर था कि पत्थर छोड़ो और इसलिए ऐसे लोग हैं जो पत्थर छोड़ने के आधार पर ही जिन्दगी भर जी रहे हैं कि हमने पत्थर छोड़े। उन्हें कुछ मिला कि नहीं, इसका कुछ पता नहीं, उन्हें आगे की सीढ़ी मिली कि नहीं, इसका कुछ पता नहीं क्योंकि मैं यह कहता हूँ कि यह हो सकता है कि पत्थर छोड़ दिए जाएँ और हीरे न मिलें। लेकिन यह कभी नहीं हो सकता कि हीरे मिल जाएँ और पत्थर न छोड़े जाएँ। हाथ खाली भी रह सकते हैं।

त्याग की भाषा में बहुत से लोगों के हाथ खाली भी करवा दिए हैं। तो जिसके हाथ खाली हैं, वह उन लोगों पर क्रोध से भर जाता है जिनके हाथ भरे हैं। इसलिए हमारा साधु-संन्यासी बहुत ग्लानि में जीता है। वह चौबीस घंटे उनकी निन्दा कर रहा है जिनके हाथ भरे हैं, जो भोग रहे हैं, जो जीवन में सुख पा रहे हैं। वह उन सब को गालियाँ दे रहा है; उनको नरक भेजने का इन्तजाम कर रहा है। उनको आग में जलवा डालेगा, वह इन्तजाम कर रहा है। यह उसकी मानसिक तृप्तियाँ हैं। वह खाली हाथ का आदमी उन लोगों से बदला ले रहा है, जिनके हाथ भरे हुए हैं और जो राजी नहीं है खाली हाथ करने को। और जो लोग उनके आस-पास इकट्ठे हुए हैं उनको भी उसके हाथ खाली दिखाई पड़ते हैं, भरा हुआ कुछ दिखाई पड़ता नहीं। क्योंकि मेरा मानना यह है कि अगर भरा हुआ कुछ दिखाई पड़े तो स्वाभाविक होगा कि हम भी उसी यात्रा पर निकल जाएँ जहाँ आदमी और भी भर गया है।

आप एक संन्यासी के पास जाते हैं, एक त्यागी के पास जाते हैं तो आप भला कितनी ही प्रशंसा करें उसके त्याग की, आप कितना ही कहें कि 'बड़े हिम्मत का आदमी है, इसने यह छोड़ा, वह छोड़ा, लेकिन न तो उसकी आँखों में, न उसके व्यक्तित्व में, न उसके जीवन में, यह सुगंध दिखाई पड़ती है जो कुछ आने की है।' मेरा मानना है कि अगर उसके जीवन में कुछ आ जाए तो वह भी त्याग की बातें बन्द कर दे क्योंकि वह भूल जाएगा उन पत्थरों को जो छोड़े हैं। अब हीरों की चर्चा होगी जो पाए हैं। लेकिन जो भी त्याग की बातें वह करते चला जा रहा है, अभी भी पत्थर छोड़ने की बातें करता चला जा रहा है, निश्चित है कि उसके हाथ में कुछ और नहीं आया है। पत्थर छूट गए हैं। अब एक ही रस रह गया है कि मैंने इतने पत्थर छोड़े, मैंने यह छोड़ा, वह छोड़ा। यही उसका रस रह गया है। और हम जो चारो ओर इकट्ठे लोग हैं, हमें भी और कुछ दिखाई नहीं पड़ता है उसमें। सिर्फ छोड़ना दिखाई पड़ता है।

छोड़ना कभी भी चित्त के लिए आकर्षण नहीं बन सकता। असहज सहज नहीं है। पाना ही चित्त के लिए सहज आकर्षण है। तो अगर वह हमारे ख्याल में हो जाए, अगर वह साफ हो जाए तो महावीर ने घर छोड़ा—इस भाषा को हम नहीं बोलेंगे। महावीर ने घर छोड़ा यह तथ्य है। तथ्य इतना है कि महावीर घर में नहीं रहे। लेकिन इसको हम किस तरह से देखें यह हम पर निर्भर है यह महावीर पर निर्भर नहीं है अब। और मेरी दृष्टि यह है कि महावीर घर छोड़कर जितने आनन्दित दिखाई पड़ते हैं, जितने प्रसन्न दिखाई पड़ते हैं, उनके जीवन में जैसी सुगंध मालूम पड़ती है, वह खबर देती है कि घर छोड़ो नहीं, बड़ा घर मिल गया है। अगर घर ही छूटता और बाहर रह गए होते सड़क पर तो यह हालत नहीं होने वाली थी। बड़ा घर मिल गया, महल मिल गया, झोपड़ा ही छूटा है। इसलिए जो छूटा है, उसकी बात ही नहीं। जो मिल गया है, वह चारों ओर से उसको आनन्द से भर रहा है।

लेकिन महावीर के पीछे चलने वाले साधु को देखें। ऐसा लगता है कि वह सड़क पर खड़ा है, जो था वह खो दिया और जो मिलना था वह मिला नहीं। तो एक अधूरे में अटक गया है। वह एक कष्ट में जी रहा है, वह एक परेशानी में जी रहा है। और हमें जरा सोच लेना चाहिए कि हम किसी को परेशानी में जीते देखकर आदर क्यों देते हैं?

असल में यह भी बड़ी गहरी हिंसा का भाव है। एक आदमी जब परेशानी में होता है तो हम उसको आदर देते हैं। और परेशानी अगर खुद ही स्वेच्छा से ली है तब हम और आदर देते हैं। लेकिन यह हमारा आदर भी रुग्ण है। असल में हम दूसरे को दुःख देना चाहते हैं, भीतर से हमारे चित्त में यही होता है कि हम किसको कितना दुःख दे दें। और जब कोई ऐसा आदमी मिल जाता है जो दुःख खुद ही वरण करता है तो हम बड़े आदर से भर जाते हैं कि यह आदमी बिल्कुल ठीक है। यह हमारे भीतर की किसी बहुत गहरी आकांक्षा को तृप्त करता है। अगर एक आदमी सुखी हो जाए तो आप सुखी नहीं होते। एक आदमी ज्यादा से ज्यादा सुख में जाने लगे तो आप दुःख में जाने लगते हैं।

किसी का सुख में जाना आपका दुःख में जाना बन जाता है लेकिन किसी का दुःख में जाना आपका दुःख में जाना नहीं बनता। हालांकि कभी हो जाता है कि कोई आदमी दुःख में पड़ा हो तो आप बहुत सहानुभूति प्रकट करते हैं लेकिन अगर थोड़ा भीतर झांकेंगे तो आप पाएंगे कि सहानुभूति में भी रस आ रहा है। हो सकता है कोई आदमी बड़ा सुखी हो गया है, या बड़े मकान में जीने

लगा है तो आप प्रशंसा भी करते हो और कहते हो कि बहुत अच्छा है, भगवान् की कृपा है लेकिन इसमें भी भीतर ईर्ष्या घाव कर रही होगी लेकिन जब कोई आदमी स्वेच्छा से दुःख में जाता है तब हम उसको बड़ा आदर देते हैं क्योंकि वह वही काम कर रहा है जो हम चाहते थे कि करे। इसलिए त्यागियों, तपस्वियों, तथाकथित छोड़ने वाले लोगों को जो इतना सम्मान मिला है उसका यही कारण है। आप किसी सुखी आदमी को कभी सम्मान नहीं दे सकते। दुःखी हो, और दुःख ओढा गया हो, तब हम उसके पैरों में सिर रख देंगे कि आदमी अद्भुत् है।

यह भी मेरा मानना है कि मनुष्य जाति भीतर से रुग्ण है, इसकी वजह से त्यागियों को सम्मान मिलता है। अगर मनुष्य जाति स्वस्थ होगी तो सुखी लोगों को सम्मान मिलेगा। जो स्वेच्छा से ज्यादा से ज्यादा सुखी हो गए हैं, उनका सम्मान होगा। और यह भी ध्यान रहे कि हम जिसको सम्मान देते हैं, धीरे-धीरे हम भी वैसे होते चले जाते हैं। दुःख को सम्मान दिया जाएगा तो हम दुःखी होते चले जाएँगे; सुख को सम्मान दिया जाएगा तो हम सुख की यात्रा पर कदम बढ़ाएँगे। लेकिन अब तक सुखी आदमियों को सम्मान नहीं दिया गया। अब तक सिर्फ दुःखी आदमियों को सम्मान दिया गया है। यह मनुष्य जाति के भीतर दूसरे को दुःख देने की प्रबल आकांक्षा का हिस्सा है।

प्रश्न : क्या त्यागी आपस में एक दूसरे को सम्मान नहीं देंगे ?

उत्तर : सम्मान देंगे। अगर बड़ा त्यागी मिल जाए, अपने को ज्यादा दुःख देने वाला मिल जाए तो सम्मान देंगे। कारण वही होगा। छोटा त्यागी बड़े त्यागी को सम्मान देगा। क्योंकि छोटा त्यागी पन्द्रह दिन खाता है, बड़ा त्यागी महीने भर भूखा बैठा हुआ है। छोटा त्यागी बड़े त्यागी को सम्मान देगा लेकिन बात वही है। दूसरे का दुःख देख कर हमारे मन में सम्मान पैदा होने की बात ही एक भयंकर भूल है।

२२

प्रश्नोत्तर-प्रवचन

यूरोप में ईसाइयों का एक पन्थ था जो जूतों में लोहे की कीलें लगा लेता था और उनके पैरों में घाव हो जाते थे। उनमें जो गुरु होते, वे सिर्फ जूतों में ही कीलें न लगाते, वे एक पट्टा बांधते कमर में और उस पट्टे में भी गहरे कील गड़े रहते जो पूरे वक्त छिदते रहते। उठें, बैठें, हिलें और करवट लें, तो खून बहता रहता। जो जितना ज्यादा खून बहाता वह उतना परम गुरु हो जाता। यानी इस बात का नापजोख रखना पड़ता कि कितने घाव हुए हैं। तुम दस कीलें गड़ाए हुए हो कि पन्द्रह। तो दस वाला पन्द्रह वाले को आदर देता। एक दूसरा कोड़े मारने वालों का सम्प्रदाय था। इस सम्प्रदाय का साधु सुबह उठकर अपने शरीर को नंगा करके कोड़े मारता था। इसकी चर्चा होती गांव भर में कि फलां आदमी एक सौ कोड़े मारता है सुबह। हमको यह बात अजीब लगती है। लेकिन हम भी कहते हैं कि फला साधु ने पन्द्रह दिन का उपवास किया, फलां आदमी ने इक्कीस दिन का उपवास किया, फलां आदमी महीने भर से उपवास पर है। हम अखबार में फोटो भी निकालते हैं, जुलूस भी निकालते हैं कि इस आदमी ने दो महीने उपवास किया है। यह बड़ा अद्भुत आदमी है। दो महीने भूखा मरा है। यह भी कोड़ा ही मारना है। यह भी कीलें ही ठोकना है। लेकिन हमें ख्याल भी नहीं है कि आज तक मनुष्य जाति क्यों खुद को दुःख देने वाले लोगों को इतना आदर देती रही है। जरूर कहीं रुग्ण भाव काम कर रहा है।

चूंकि हमने त्याग के बाबत चिन्तन किया इसलिए ये ग्रेडेशन बन गए। अगर हम भोग के लिए चिन्तन करेंगे तो भी ग्रेडेशन बन जाएंगे। भोग भी दिखता है; यह भी दिखता है कि कौन आदमी कितना आनन्दित है, कौन आदमी

कितना शान्त है, कौन आदमी प्रत्येक चीज से कितना सुख लेता है। समझ लें कि एक आदमी फूल के पौधे के पास खड़ा हुआ है, गुलाब के पास खड़ा हुआ है तो दिखता है कि वह अपना हाथ कांटे में चुभो रहा है। वह आदमी हमें नहीं दिखेगा जो फूल की सुगन्ध ले रहा है। वह भी दिख सकता है लेकिन हमने उसे देखा नहीं है। अब तक हमने उस आदमी को आदर दिया है जिसने गुलाब के कांटे को हाथ में चुभो लिया है और खून बहा लिया है। हमने कहा कि यह आदमी अद्भुत है। हमने उस आदमी को आदर दिया। जिसने फूल की सुगंध ली है हमने कहा कि यह आदमी तो साधारण है, फूल की सुगंध कोई भी लेता है। असली सवाल तो कांटे चुभोने का है। मगर वास्तविक स्थिति इससे बिल्कुल भिन्न है। कांटा चुभोने वाला भी बीमार है, रुग्ण है और कांटा चुभोने वाले को आदर देने वाला भी खतरनाक है, रुग्ण है। फूल सूँघने वाला भी स्वस्थ है और फूल सूँघने वाले को सम्मान देने वाला भी स्वस्थ है।

एक ऐसा समाज चाहिए जहाँ सुख का समादर हो, दुःख का अनादर हो। लेकिन हुआ उल्टा है और इस समाज ने इस तरह का धर्म पैदा कर लिया कि इस जगत् में जो सबसे ज्यादा सुखी लोग थे उनको सबसे ज्यादा दुःखी लोगों की श्रेणी में रख दिया। इसलिए महावीर जैसे व्यक्ति को सर्वाधिक सुखी लोगों में से गिना जाना चाहिए। यानी उनके आनन्द की कोई सीमा लगानी मुश्किल है। यह आदमी चौबीस घंटे आनन्द में है। लेकिन हमारी त्याग की दृष्टि ने वह सारा आनन्द क्षीण कर दिया। हमने यह कहना शुरू किया कि यह आदमी इतने आनन्द में इसलिए है क्योंकि इसने इतना-इतना त्याग किया। जो इतना-इतना त्याग करेगा वह इतने आनन्द में हो सकता है लेकिन बात उल्टी है। यह आदमी इतने आनन्द में है इसलिए इससे इतना त्याग हो गया। यह त्याग हो जाना इतने आनन्द में होने का परिणाम है। कोई आदमी इतने आनन्द में होगा तो उससे इतने त्याग हो जाएँगे। लेकिन हमने उल्टा पकड़ा। हमने पकड़ा कि इतने-इतने त्याग किए तो महावीर इतने आनन्द में हुए। तुम भी इतने त्याग करोगे तो इतने आनन्द में हो जाओगे। बस बात एकदम गलत हो गई।

त्याग करने से कोई आनन्द में नहीं हो जाता। हाथ के पत्थर छोड़ देने से हीरे नहीं आ जाते। लेकिन हीरे आ जाएँ तो पत्थर छूट जाते हैं। त्याग पीछे है, पहले नहीं। और अगर महावीर को हम इस भाषा में देखें और मुझे लगता है कि यही सही भाषा है उनको देखने की, तो हमारा धर्म के प्रति, जीवन के प्रति दृष्टिकोण अलग होगा। महावीर ने घर नहीं छोड़ा, बड़ा घर पाया।

मैं छोड़ने की भाषा के ही विरोध में हूँ। बड़ा घर पाया, छोटा घर छूट गया। लेकिन इसका मतलब यह नहीं कि वह उसके दुश्मन हो गए। इसका मतलब सिर्फ यह है कि अब छोटे घर में रहना असम्भव हो गया है। अब बड़ा घर मिल गया है तो छोटा घर उसका हिस्सा हो गया है।

मैं मानता हूँ कि प्रत्येक चीज भ्रान्ति ला सकती है। यह सवाल नहीं है। अगर इसमें भी चुनाव करना हो तो मैं कहता हूँ कि भोग भी भ्रान्ति ला सकता है। अगर भोग या त्याग दोनों में ही चुनाव करना हो तो मैं कहता हूँ कि फिर भोग ही ठीक है क्योंकि वह जीवन के स्वस्थ, सहज और सरल होने का प्रतीक है। और यह भी बड़े मजे की बात है कि जो आदमी भोगने चलेगा उससे त्याग धीरे-धीरे अनिवार्य हो जाएँगे। वह जैसे-जैसे भोग में उतरेगा वैसे-वैसे बड़े भोग की सम्भावनाएँ प्रकट होंगी। और त्याग उससे अनिवार्य हो जाएँगे। लेकिन जो आदमी त्याग करने चलेगा, उससे पुराने भोग की सम्भावनाएँ छिन जाएँगी और नये भोग की सम्भावनाएँ प्रकट नहीं होंगी। वह आदमी सूखता चला जाएगा। यानी यह बात सच है कि ज्यादा खाना भी खतरनाक है, न खाना भी खतरनाक है। फिर भी अगर दोनों में चुनाव हो तो मैं कहूँगा ज्यादा खाना चुन लेना क्योंकि न खाने वाला तो मर ही जाएगा नाहक। ज्यादा खाने वाला बीमार ही पड़ सकता है। और ज्यादा खाने वाला आज नहीं, कल इस अनुभव को पहुँच जाएगा कि कम खाना सुखद है। लेकिन न खाने वाला कभी इस अनुभव पर नहीं पहुँचेगा क्योंकि वह मर ही जाएगा।

मेरा कहना यह है कि अगर भूल भी चुननी हो तो सोच-समझकर चुननी चाहिए। भूल सब जगह सम्भव है क्योंकि आदमी अज्ञान में है। इसलिए जो कुछ भी पकड़ता है तो वह भ्रान्ति ला सकता है लेकिन फिर भी भ्रान्ति ऐसी चुननी चाहिए जिससे लौटने का उपाय हो। जैसे न खाने से लौटने का कोई उपाय नहीं है, लेकिन ज्यादा खाने से लौटने का उपाय है। मेरा मतलब आप साफ समझ रहे हैं न ? ज्यादा खाने से लौटने का उपाय है और ज्यादा खाना खुद दुःख देगा फिर लौटना पड़ेगा। लेकिन न खाना दुःख नहीं देगा, समाप्त कर देगा, मिटा ही डालेगा। उससे लौटने की सम्भावना कम हो जाएगी।

फिर यह बात तो ठीक ही है कि सभी शब्द हमें भरमा सकते हैं, भटका सकते हैं क्योंकि हम शब्दों से वही अर्थ निकाल लेना चाहते हैं, जो हम चाहते हैं कि निकले। हम यह नहीं देखना चाहते कि जो कहा गया है वह हमेशा

रहेगा। इसलिए जो आदमी जिन शब्दों का प्रयोग करता है, उन शब्दों के लिए बहुत साफ दृष्टि साथ देनी चाहिए। मैं कह रहा हूँ कि भोग अन्ततः त्याग बन जाता है, लेकिन त्याग अन्ततः भोग नहीं बनता। एक वेश्या भी ब्रह्मचर्य को उपलब्ध हो सकती है लेकिन जो जबरदस्ती ब्रह्मचर्य थोप कर साध्वी बन गई है, उसका ब्रह्मचर्य को उपलब्ध होना बहुत मुश्किल है। एक वेश्या का अनुभव निरन्तर उसे ब्रह्मचर्य की दिशा में गतिमान करता है। लेकिन थोपा हुआ ब्रह्मचर्य निरंतर वासना की दिशा में गतिमान करता है।

प्रश्न : वे लोग जो खुद को कोड़े मारते हैं अथवा दूसरे को कोड़े मारते हैं, स्वयं को दुःख देते हैं अथवा दूसरों को दुःख देते हैं वे सारे लोग कामशक्ति के विकृत रूप (सेक्स परवर्ट्‌स) हैं। इसी ढंग से इधर हम जिन्हें त्यागी कहते हैं वे कामशक्ति के विकृत रूप हैं और निर्माता हैं साधु के। दोनों सेक्स परवर्ट्‌स में क्या अन्तर है ? क्या हम दोनों को एक ही स्तर पर रख सकते हैं ?

उत्तर : आपकी बात बहुत ठीक है। सारे पिछले सौ वर्षों के मनोविज्ञान की खोज यह है कि दूसरे को दुःख देना या अपने को दुःख देना या दुःखियों को आदर देना या दुःख की सम्भावना को सहारा देना किसी न किसी प्रकार की कामशक्ति का विकृत रूप है। यह बिल्कुल ही सच बात है। इसे समझना जरूरी है। असल में काम या सेक्स निम्नतम सम्भावना है सुख की। समझना चाहिए कि काम प्रकृति के द्वारा दिया गया सुख है इससे कोई ऊपर उठे, और बड़े सुख को खोज ले तो फिर काम के सुख की जरूरत नहीं रह जाती। धीरे-धीरे काम रूपान्तरित हो जाता है और अन्ततः ब्रह्मचर्य बन सकता है लेकिन इससे बड़े सुख को न खोजें और इस सुख को भी इन्कार कर दें तो फिर दुःख की सम्भावनाएँ शुरू हो जाती हैं। यह सीमारेखा है। कामवासना के नीचे दुःख की सम्भावनाएँ हैं, कामवासना के ऊपर सुख की सम्भावनाएँ हैं। अगर कोई बड़े सुख को खोज ले तो कामवासना से मुक्त हो जाता है। अगर कोई बड़े सुख को न खोजे और कामवासना को इन्कार कर दे तो नीचे दुःखों में उतर आता है।

तो कामवासना बीच की रेखा है जहाँ से हमारे सुख दुःखों में रूपान्तरित होते हैं। यह सीमारेखा है, जहाँ नीचे दुःख है, ऊपर सुख है। इसलिए दुःखी आदमी कामी हो जाता है। सुखी आदमी कामी नहीं होता। क्योंकि दुःखी के लिए ही सुख है। जैसे दरिद्र समाज है, दीन समाज है, दुःखी समाज है तो वह एकदम बच्चा पैदा करेगा। गरीब आदमी जितने बच्चे पैदा करता है, अमीर

आदमी नहीं करता। अमीर आदमी को अक्सर गोद लेने पड़ते हैं। उसका कारण है कि गरीब आदमी के पास एक ही सुख है बाकी सब दुःख ही दुःख हैं। इस दुःख से बचने के लिए एक ही मौका है उसके पास कि वह कामवासना में चला जाए। एकमात्र सुख का जो अनुभव उसे हो सकता है, वह वही है। अमीर आदमी को और भी बहुत सुख हैं। सुख फैल जाता है तो कामवासना तीव्र नहीं रह जाती। उसकी तीव्रता कम हो जाती है। सुख कई जगहों में फैल जाता है। वह बहुत तरह के सुख लेता है—संगीत का भी, साहित्य का भी, नृत्य का भी, विश्राम का भी। उसका सुख और तलों पर फैलता है। फैलने की वजह से काम की तीव्रता कम हो जाती है। गरीब और किसी तरह के सुख नहीं लेता। बस एक ही तरह का सुख रह जाता है। वह सेक्स भर उसको सुख देता है। बाकी सब दुःख हैं दिन भर। सिर्फ मेहनत, गिट्टी फोड़ना, तोड़ना—वही सब हैं।

सेक्स है प्रकृति के द्वारा दिया गया सुख। अगर कोई आदमी इसमें ही जीता चला जाए तो सामान्यतः जीवन दुःख होगा, सेक्स सुख होगा। और आदमी सारे दुःख सहेगा सिर्फ सेक्स के सुख के लिए। लेकिन अगर इससे ऊपर उठना शुरू हो जाए यानी और सुख खोजें, वहीं धर्म का जगत् है, सेक्स के ऊपर सुख खोजने का जगत् है। जैसे-जैसे सेक्स के ऊपर सुख मिलना शुरू होता है वह शक्ति जो सेक्स से प्रकट होकर सुख पाती थी, नये द्वारों से झांक कर सुख पाने लगती है और धीरे-धीरे सेक्स के द्वार से विदा लेने लगती है, ऊपर उठने लगती है। इसको कोई कुंडलिनी कहे, कोई और नाम दे, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता।

मामला केवल इतना है कि सेक्स सेण्टर के पास सारी शक्ति इकट्ठी है। वह रिजरवायर है। अगर आप शक्ति को ऊपर ले जा सकते हैं तो वह रिजरवायर नीचे की तरफ शक्ति को फेंकना बंद कर देगा। और अगर आप ऊपर नहीं ले जा सकते तो वह रिजरवायर रिलीज करेगा। और बड़े मजे की बात है कि सेक्स का जो सुख है साधारणतः वह रिलीज का ही सुख है। इतनी शक्ति इकट्ठी हो जाती है कि वह भारी हो जाती है तो वह उसको रिलीज कर देता है। अब समझ लो एक आदमी ऊपर भी नहीं गया और सेक्स के रिजरवायर को भी उसने रिलीज करना बंद कर दिया तो अब उसकी शक्तियाँ नीचे उतरनी शुरू होंगी, सेक्स से भी नीचे क्योंकि सेक्स सुख की सीमा है। उसके नीचे दुःख की सीमाएँ हैं। और ये शक्तियाँ क्या करेंगी? अब ये शक्तियाँ क्या करेंगी?

या तो ये दुःख को सताएँगी या दूसरे को सताएँगी। और मजे की बात यह है कि जो मजा आएगा वह सेक्सुअल जैसा ही है। यानी जो आदमी अपने को कोड़े मार रहा है, वह कोड़े मार कर उतनी शक्ति रिलीज कर देगा जितनी सेक्स से रिलीज होती तो सुख देती। उतनी शक्ति रिलीज होने पर वह थक कर विश्राम करेगा। उसको बड़ा आराम मिलेगा। हमको लगेगा कि उस आदमी ने बड़ा कष्ट दिया अपने को। उसके लिए एक तरह का आराम है क्योंकि वह शक्ति रिलिज हो गई।

ऐसा आदमी खुद को दुःख देने में सुख पाने लगेगा। यह एक तरह का खुद को दुःख देने में सुख पाना है। जो आदमी खुद को दुःख देने में सुख पाने लगेगा, वह दूसरों को दुःख देने में भी सुख पाने लगेगा। वह दूसरों को भी सताएगा। वह दूसरों को भी परेशान करेगा। वह दूसरों को भी परेशान करने के कई उपाय खोजेगा।

आपने पूछा है कि क्या धार्मिक विकृत परवर्ट) व्यक्ति और साधारण विकृत व्यक्ति में कोई फर्क है। मेरा कहना है कि थोड़ा फर्क है। साधारण विकृत व्यक्ति उस धार्मिक विकृत व्यक्ति से अच्छी हालत में इसलिए है कि उसको भी यह बोध निरन्तर होगा कि कुछ पागलपन हो रहा है, कुछ गलती हो रही है, कुछ भूल हो रही है, मैं कुछ बीमार हूँ। धार्मिक विकृत को यह बोध भी नहीं होता। वह समझता है कि उससे गलती हो ही नहीं रही। वह साधना कर रहा है। वह सही कर रहा है। और जो वह कर रहा है उसके लिए उसने न्याययुक्त कारण खोज रखे हैं। इसलिए वह कभी अपने को पागल, विक्षिप्त या रुग्ण नहीं समझेगा। दूसरी बात यह है कि साधारण विक्षिप्त आदमी अपनी विक्षिप्तता को छिपाएगा, प्रकट नहीं करेगा। हो सकता है कि वह रात में अपनी पत्नी की गर्दन दबाए, कांटे चुभोए।

'डी सादे' एक बहुत बड़ा लेखक हुआ। उसके प्रेम करने का ढंग ही यही था। उसी से दुःखवादी (सैडिस्ट) शब्द बना। वह जब भी किसी स्त्री को प्रेम करता उसके लिए कोड़ा, चाकू, कांटे अपने साथ रखता। एक ही बैग था उसके पास। जब वह किसी स्त्री को प्रेम करता तब वह दरवाजे बन्द कर देता। उसका पहला काम यह था कि वह उसको नग्न कर देता और कोड़े मारना शुरू कर देता। वह भागती और चिल्लाती। वह जितनी चीखती और चिल्लाती उतना उसको आनन्द आने लगता। वह कांटे चुभोता। आम तौर से हमको ख्याल में

नहीं आता है कि अगर प्रेम में कोई व्यक्ति किसी स्त्री को नाखून खपा रहा है, नोच रहा है तो किसी अंश में यह सैडिज्म है। अब एक आदमी जरा इसमें आगे चला गया, उसको नाखून काफी नहीं मालूम पड़ते, तो उसने कांटे बना रखे हैं। लेकिन मजे की बात यह है कि 'डी सादे' से सैकड़ों स्त्रियों का सम्बन्ध रहा। वह बहुत अद्‌भुत आदमी था। उसको न मालूम कितनी स्त्रियाँ प्रेम करती थीं—वह ऐसा आदमी था। वह बड़ा प्रतिभाशाली भी था। जिन स्त्रियों ने उसको प्रेम किया उनका भी कहना है कि जो आनन्द उसके साथ आया वह कभी किसी के साथ नहीं आया। अब यह बड़े मजे की बात है कि उसका कोड़ा मारना भी स्त्रियाँ पसंद करती थीं। कारण कि वह कोड़े मार कर इतनी वेदना पैदा कर देता कि वे दौड़ रही हैं, वह कोड़े मार रहा है, कांटे चुभो रहा है, बाल खींच रहा है, नाखून चुभो रहा है, काट रहा है तो स्त्री के पूरे शरीर को वह इतना कम्पन से भर देता कि जब वह सेक्स में जाता उसके साथ तो स्त्री आनन्द की चरम सीमा को उपलब्ध होती जो कि साधारणतः स्त्रियाँ नहीं छू पातीं। सम्भोग में सौ में से निन्यानवें स्त्रियाँ आनन्द की चरम सीमा को कभी नहीं पहुँच पातीं क्योंकि उनका पूरा शरीर ही नहीं जग पाता। तो इतना सताने के बाद भी वे उसको पसंद करतीं। वह आदमी अद्‌भुत था। और उसका कहना था कि जब तक मैं सता न लूँ तब तक मुझे कुछ आनन्द आता ही नहीं।

ठीक डी सादे जैसा एक दूसरा आदमी था 'मेसोच' जिसके नाम पर 'मैसोचिज्म' चला है। वह अपने को सताता था। और सता कर बड़ा सुखी होता था। असल में हमारे पास जो शक्ति बच जाती है, या तो हम उसे सुख को दिशा में गतिमान कर सकते हैं या फिर दुःख की दिशा में। दो ही दिशाएँ हैं। तीसरी कोई दिशा नहीं। आप ठहर नहीं सकते बीच में। या तो आप सुख की दिशा में अपने को ले जाएँ, नहीं तो फिर शक्तियाँ दुःख की दिशा में जाना शुरू हो जाएँगी।

अब एक तीसरा आदमी भी है जो थोड़ा अपने को भी सताता है, थोड़ा दूसरे को भी सताता है। सताने के कई ढंग हो सकते हैं जो हमको ख्याल में नहीं आते। असल में आदमी कैसे-कैसे सताता है, वह हमें पता ही नहीं चलता। जब वह सीमा के बाहर हो जाता है तब पता चलना शुरू होता है कि मामला गड़बड़ हो गया, यह आदमी कुछ गड़बड़ हो गया। मैं यह कह रहा हूँ कि दो ही दिशाएँ हैं। अगर आप बीच में ठहरते हैं तो दोनों दिशाओं का गोलमोल आपके व्यक्तित्व में होगा। कभी आप सताएँगे, कभी न सताएँगे। इसलिए यह

होता है कि पति कभी पत्नी को सताएगा भी, कभी प्रेम भी करेगा। सताएगा फिर प्रेम करेगा, प्रेम करेगा फिर सताएगा। पत्नी भी सताएगी। एक दिन प्रेम करती दिखाई पड़ेगी, दूसरे दिन सताती दिखाई पड़ेगा। सुबह उपद्रव मचाएगी, सांझ पैर दाबेगी। यह कुछ समझ में आना मुश्किल होता है कि यह दोनों बातें एक साथ क्यों चलती हैं। और ध्यान रहे कि जिससे हमने थोड़ी देर प्रेम किया, थोड़ी देर बाद हम उसको सताएँगे। अक्सर यह होता है कि पति-पत्नी लड़ते-लड़ते प्रेम में आ जाते हैं और प्रेम में आते-आते लड़ना शुरू कर देते हैं। यह तो रही साधारण व्यक्ति की बात लेकिन जो असाधारण (एबनार्मल) व्यक्ति है वह या तो सुख की दिशा में चला जाता है या दुःख की दिशा में चला जाता है। लेकिन सुख की दिशा में जाने से शायद वह अन्ततः परमात्मा तक पहुँच जाता है क्योंकि परमात्मा परम सुख है। और दुःख की दिशा में जाने से शायद वह शैतान तक पहुँच जाता है क्योंकि शैतान होना अन्तिम दुःख है।

यहाँ एक और बात को भी समझ लेना जरूरी है कि धार्मिक आदमी इन कामों को प्रकट में करेगा; अधार्मिक आदमी इनको अप्रकट में करेगा। धार्मिक आदमी ज्यादा खतरनाक भी है क्योंकि वह प्रकट में करके उनको फैलाता भी है, उनका विस्तार भी करता है। वह लोगों में यह भाव भी पैदा करता है कि जो वह काम कर रहा है वे कोई विक्षिप्तता के नहीं। वे काम बड़ी साधना के हैं। और पागल आदमी को यह ख्याल में आ जाए कि वह ऊँची बात कर रहा है तो पागलपन के ठीक होने की सम्भावना ही नहीं रहती। हिन्दुस्तान में पागलों की संख्या कम है, यूरोप में पागलों की संख्या ज्यादा है। लेकिन अभी संन्यासी, साधुओं और अपने को सताने वालों की संख्या हिन्दुस्तान के पागलों से जोड़ दी जाए तो संख्या बराबर हो जाती है। वहाँ जो आदमी पागल है वह पागल है; जो आदमी पागल नहीं है वह पागल नहीं है। यहाँ पागल और गैर पागल के पीछे एक रास्ता दूसरा ही है।

जबलपुर में एक आदमी है जो एक सौ आठ बार बर्तन साफ करेगा तब पानी भर कर लाएगा। यह आदमी यूरोप में हो तो पागल समझा जाएगा। यह आदमी हिन्दुस्तान में है तो धार्मिक समझा जाता है। लोग कहते हैं कि परम धार्मिक आदमी है, शुद्धि का कैसा ख्याल है। यह आदमी एक सौ आठ बार बर्तन साफ करता है। और इसमें भी अगर कोई स्त्री निकल गई बीच में तो

टूट गई पहली श्रृंखला। वह फिर एक से शुरू करेगा। यह आदमी धार्मिक है। कई लोग इसके पैर छुएँगे और कहेंगे कि आदमी परम धार्मिक है। कभी-कभी उसका दिन-दिन लग जाएगा इसी में क्योंकि वह नल पर बर्तन धो रहा है, और स्त्री फिर निकल गई, अशुद्ध हो गया बर्तन। अब वह फिर शुद्ध कर रहा है। अब यह आदमी अगर यूरोप में हो तो फौरन पागलखाने में भेज दिया जाएगा। मगर यहाँ वह मन्दिर में बैठ जाएगा, पुजारी हो जाएगा, साधु हो जाएगा। इसको आदर मिलने लगेगा। तो धार्मिक पागलपन ज्यादा खतरनाक है।

महावीर के जीवन की एक घटना है। महावीर ने सब तरह के उपकरण बन्द कर दिए हैं। वह साथ में कोई सामान नहीं रखेंगे क्योंकि साधन भी एक बोझ हो जाता है। जिस व्यक्ति ने सारे जीवन को अपना ही मान लिया है वह समझ गया कि अब ठीक है, कल सुबह जो होगा, होगा। तो महावीर कुछ साथ न रखेंगे। कौन बोझ को ढोता फिरे? वह बाल बनाने का उस्तरा भी नहीं रखते। जब बाल बहुत बढ़ जाते हैं तो उनको उखाड़ देते हैं। महावीर के लिए यह बाल का उखाड़ना भी विक्षिप्तता का कारण नहीं है। यह अत्यन्त सहज बात है क्योंकि कुछ रखना नहीं है साथ। सरलतम यही है कि बाल उखाड़ दिए, साल-दो साल में बढ़ गए, फिर उखाड़ दिए, यात्रा चलती रही। इतना भी सामान साथ क्यों रखकर बांधना? क्यों बोझ लेना है? क्योंकि सामान का बोझ नहीं है गहरे में लेकिन सामान को पकड़ कर रखने में सुरक्षित होने की कामना है। और वह असुरक्षित ही पूरा जीते हैं। कोई सुरक्षा का भाव नहीं, कुछ रखने का भाव नहीं। जहाँ जो मिल गया वही हाथ में लेकर खा लेते हैं। कौन बर्तन का उपद्रव साथ में करे? लेकिन महावीर का यह बाल उखाड़ना कुछ पागलों के लिए बहुत आकर्षक मालूम पड़ा होगा। पागलों का एक वर्ग है जो बाल उखाड़ता है, जो बाल उखाड़ने में रस लेता है। वह भी एक तरह का सताना है अपने को। तो इसमें कठिनाई नहीं है कि महावीर का बाल उखाड़ना देखकर कुछ पागल बाल उखाड़ने में रस लेने लगे हों, महावीर के पीछे साधु हो गए होंगे इसलिए कि अब बाल उखाड़ने से कोई उनको पागल नहीं कह सकता।

महावीर नग्न हो गए हैं क्योंकि अगर कोई व्यक्ति इतना सरल हो जाए, इतना निर्दोष हो जाए कि उसे नग्नता का बोध ही न रहे तो कोई बात नहीं। खुद की नग्नता का बोध हमें तभी तक होता है जब तक हम दूसरे के शरीर को नग्न देखना चाहते हैं। जब तक हमारा शरीर कोई नग्न देख ले इससे भयभीत

होते हैं। यह दोनों बातें एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। जब तक हम दूसरे के कपड़े उघाड़ना चाहते हैं तब तक हम खुद पर कपड़े ढाँकना चाहते हैं। लेकिन जिस आदमी का दूसरे के शरीर को नग्न देखने का भाव चला गया हो वह खुद नग्न खड़ा हो सकता है। महावीर नग्न खड़े हो गए। लेकिन कुछ लोग हैं जो अपने को नंगा दिखाना चाहते हैं। यह पागलों का वर्ग है। तो महावीर के पास-पास ऐसे संन्यासी हो गए हैं जो यह चाहते हैं कि कोई उन्हें नंगा देखे यानी उनकी चाह बिल्कुल दूसरी है। लेकिन घटना एक सी मालूम होती है।

अभी यूरोप में और कई मुल्कों में ऐसे लोग हैं जो रास्ते के किनारे पर खड़े रहेंगे। जब कोई अकेला निकल रहा है तो पेन्ट खोलकर, नंगा होकर एकदम भाग जाएँगे उसको दिखाकर। इन पर रोक है कि ये आदमी खतरनाक है। अब इनको क्या हो रहा है? इनको क्या रस आ रहा है? दूसरा इनको नंगा देख ले यह इनका रस है। और ये पागल हैं। ये निपट पागल हैं। लेकिन हिन्दुस्तान में ये नंगे साधु हो सकते हैं और तब इनका पागलपन हमको पता ही नहीं चलेगा।

अब कठिनाई यह है कि जीवन में दोनों घटनाएँ घट सकती हैं। एक आदमी इसलिए नग्न हो सकता है कि अब उसके मन में नग्नता को छिपाने, ढाँकने, देखने का कोई भाव ही नहीं रहा। वह परम सरल हो गया है तो बच्चे की तरह नग्न हो सकता है। और एक आदमी पागल की तरह नग्न हो सकता है लेकिन नग्न होने में उसे रस है कि लोग उसे नंगा होते हुए देखें। और यह दोनों घटनाएँ एक साथ घट सकती हैं। इसलिए बड़ी कठिनाई है जीवन को साफ-साफ समझने में। लेकिन कठिनाई पहचानी जा सकती है, नियम बनाए जा सकते हैं। जो आदमी सरलता की वजह से नग्न हुआ है, वह जीवन के और हिस्सों में भी सरल होगा। मगर जिसे नग्नता का आनन्द है उसके लिए यह भोग का ही हिस्सा है। उसके लिए, कपड़े छोड़े, जोर इस पर नहीं, लेकिन नग्नता आई, जोर इस पर है। दूसरी ओर एक आदमी ऐसा है जिसका जीवन इतना सरल हो गया जैसे एक बच्चे का, पशु-पक्षी का—सरल और निर्दोष कि वह नग्न खड़ा हो गया। लेकिन यह आदमी जीवन के दूसरे हिस्सों में एकदम सरल होगा, निष्कपट होगा, निर्दोष होगा। इसके जीवन के दूसरे हिस्सों में कहीं पागलपन के लक्षण नहीं होंगे। लेकिन जो आदमी सिर्फ इसलिए नग्न हुआ है कि दूसरे लोग उसको नंगा देखें, यह उसकी बीमारी है। वह आदमी दूसरे

हिस्सों में सरल नहीं होगा। दूसरे हिस्सों में भी उसकी विक्षिप्तता प्रकट होगी, उसका पागलपन प्रकट होगा।

और इस देश में निर्णय लेने की जरूरत पड़ गई है अब। क्योंकि यह कोई पाँच हजार साल से उपद्रव चल रहा है। उस उपद्रव में तय करना मुश्किल हो गया है कि कौन आदमी प्रामाणिक है और कौन आदमी पागलपन की ओर झुक रहा है। ये दोनों ही हो सकते हैं, इसलिए बहुत साफ रेखा खींचना जरूरी है।

धार्मिक पागलपन ज्यादा खतरनाक चीज है क्योंकि उसमें धर्म भी जुड़ा हुआ है। पागलपन सीधा हो तो एक अर्थ में सरल होता है। क्योंकि पागल आदमी निरीह हो जाता है। धार्मिक पागल निरीह नहीं होता, दूसरों को निरीह करता है। खुद तो उनके ऊपर खड़ा हो जाता है। अब जैसे कि सेंट जोन आफ आर्क को एक पोप ने आग में जलाए जाने की सजा दी। आग में जला दी गई वह औरत। जलाई इसलिए गई कि वह धर्म के विपरीत बातें कर रही थी। पोप को पूरा मजा था इस बात का कि वह धार्मिक आदमी है और एक औरत को जला रहा है क्योंकि वह बहुत अधार्मिक बातें कर रही है और वह भगवान् का काम कर रहा है। अब एक स्त्री को जलाना और जोन जैसी सरल स्त्री को जलाना एकदम अधार्मिक कृत्य था। लेकिन पोप को एक तृप्ति है। अगर कोई दूसरा आदमी ऐसा काम कर दे तो वह आदमी पागल सिद्ध होता है, अपराधी सिद्ध होता है। पोप अपराधी नहीं हुआ।

सात साल बाद, दूसरे पोप जब सत्ता में आए तो उन्होंने विचार किया और पाया कि यह तो ज्यादती हो गई; जोन तो बड़ी सरल औरत थी और उसे तो सन्त की पदवी दी जानी चाहिए। तो वह सेन्ट जोन बनी। जिस पोप ने आग लगवाई थी वह पोप अपराधी हो गया था लेकिन वह मर चुका था। अब क्या किया जाए? तो इस पोप ने उसको सजा दी कि उसकी हड्डियों को निकाल कर जूते मारे जाएँ और सड़क पर घसीटा जाए। उस मरे हुए पोप की हड्डियाँ निकाली गईं, उसकी कब्र खोली गई, उसको जूते मारे गए, उसके ऊपर थूका गया और उसकी हड्डियों को सड़क पर घसीट कर अपमानित किया गया। अब यह आदमी उससे भी ज्यादा पागल है। लेकिन इसका पागलपन दिखाई नहीं पड़ता। इसका पागलपन एक धार्मिक परिभाषा ले रहा है। यह धार्मिक एक जाल पैदा करेगा शब्दों का जो कि बिल्कुल ठीक मालूम पड़ेगा। धर्म इसकी विक्षिप्तता को औचित्य दे रहा है।

धर्म ने बहुत तरह की विक्षिप्तताओं को औचित्य दिया है। पर इस औचित्य को तोड़ देने की जरूरत है और यह साफ समझ में आ जाना चाहिए कि यह तभी टूटेगा जब हम दुःख को धर्म से अलग करेंगे। नहीं तो वह टूटेगा नहीं। क्योंकि वह जो दुखःवाद है, उसी के भीतर सारा औचित्य छिप जाता है। दूसरे को दुःख देना भी, अपने को दुःख देना भी सब उसमें छिप जाता है। इसलिए मेरी दृष्टि में धर्म सुख की खोज है, परम सुख की। और धार्मिक व्यक्ति वह है जो स्वयं भी आनन्द की ओर निरन्तर गति करता है और चारों ओर भी निरन्तर आनन्द बढ़े, इसके लिए चेष्टारत होता है। न वह स्वयं को दुःख देता है, न वह दूसरे को दुःख देने की आकांक्षा करता है। न उसके मन में दुःख का कोई आदर है न कोई सम्मान है। ऐसे व्यक्ति को अगर हम धार्मिक कहें तो धर्म परम आनन्द की दिशा बनता है। नहीं तो अब तक वह परम दुःख की दिशा बना हुआ है।

प्रश्न : महावीर नासाग्र दृष्टि से ध्यानावस्थित हुए। क्या यह ध्यान की ही मुद्रा है ?

उत्तर : यह बड़ी महत्त्वपूर्ण बात है। नासाग्र दृष्टि का मतलब है—आँख आधी बंद, आधी खुली। अगर नाक के अग्रभाग को आप आँख से देखेंगे तो आधी आँख बंद हो जाएगी, आधी खुली रहेगी। न तो आँख बंद न आँख खुली। साधारणतः हम दो ही काम करते हैं। या तो आँख बंद होती है नींद में या आँख खुली होती है जागरण में। नासाग्र दृष्टि होती ही नहीं। इसका कोई कारण नहीं है। आँख या तो पूरी खुली होती है या पूरी बंद होती है। दोनों के बीच में एक बिन्दु है जहाँ आँख आधी खुली है, आधी बंद है। अगर हम खड़े होंगे और नासाग्र दृष्टि होगी तो करीब चार फुट तक जमीन हमें दिखाई पड़ेगी। तो साधारणतः कोई भी नासाग्र नहीं होता।

इसमें दो तीन बातें महत्त्वपूर्ण हैं। एक तो यह कि पूरी बंद आँख, आँखों के जो स्नायु हैं भीतर उनको निद्रा में ले जाए। पूरी बंद आँख निद्रा में ले जाती है। आँख जिसकी बन्द होती है पूरी तो मस्तिष्क के जो स्नायु आँख से जुड़े हैं, वे एकदम शिथिल हो जाते हैं और निद्रा हो जाती है। पूरी खुली आँख जागरण लाती है। ध्यान दोनों से अलग अवस्था है। न तो वह निद्रा है, न वह जागरण है। वह निद्रा जैसा शिथिल है, जागरण जैसा चेतन है। ध्यान तीसरी अवस्था है। नींद नहीं है वह और जागरण भी नहीं है वह। और नींद भी है और जागरण भी है। उसमें दोनों के तत्त्व हैं। नींद में जितनी

शिथिलता होती है उतनी ध्यान में होनी चाहिए। और जागरण में जितना चैतन्य होता है उतना ध्यान में होना चाहिए। तो ध्यान एक मध्य अवस्था है और नासाग्र दृष्टि आँख के पीछे के स्नायुओं को मध्य अवस्था में छोड़ देती है। उस हालत में न तो स्नायु इतने तने होते हैं जितने कि जागरण में तने होते हैं, न इतने शिथिल होते हैं जितने कि निद्रा में शिथिल होते हैं और सो जाते हैं। मध्य में होते हैं। एक मध्य बिन्दु, सम बिन्दु होता है। नासाग्र दृष्टि का यौगिक मूल्य है, फ़िजियोलॉजिकल मूल्य है और ध्यान के लिए वह कीमती प्रभाव पैदा करती है।

दूसरी बात समझने की यह है कि पूरी आँख बन्द कर लेने पर व्यक्ति सब ओर से बन्द हो जाता है, जगत् से टूट जाता है। पूरी आँख बन्द है तो व्यक्ति का जगत् से सब सम्बन्ध टूट गया। पूरी आँख खुली है तो व्यक्ति को बाहर के जगत् से जोड़ देती है और वह अपने को भूल जाता है। उसे अपना कोई पता ही नहीं रहता। बन्द आँख में सब मिट जाता है, वही खुद रह जाता है। खुली आँख में सब सत्य हो जाता है और वह खुद ही मिट जाता है।

आधी बन्द, आधी खुली आँख का यह भी अर्थ है कि न तो हम टूटे हुए हैं सब से और न जुड़े हुए हैं सबसे। और न ही यह बात सच है कि सब सच है और हम झूठे हैं और न ही यह बात कि सब झूठे हैं और हम सच हैं। हम भी हैं और सब भी है। महावीर का सारा जोर सम पर है निरन्तर। 'सम्यक्' शब्द उनका सर्वाधिक प्रयोग में आने वाला शब्द है। प्रत्येक चीज में सम, प्रत्येक बात में मध्य, प्रत्येक बात में वहाँ खड़े हो जाना जहाँ अतियाँ न हों। आँख के मामले में भी उनकी अनति है। न तो पूरी खुली आँख और न पूरी बंद।

संसार भी सत्य है आधा। जितना हमें दिखाई पड़ता है उतना सत्य नहीं है। हम भी सत्य हैं लेकिन आधे, जितना बन्द आँख से मालूम पड़ते हैं उतने ही। शंकर कहते हैं : सब जगत् असत्य है, सत्य है ही नहीं। आँख बन्द हो तो जगत् एकदम असत्य हो जाता है। क्या सत्य है? तो जो व्यक्ति आँख बन्द करके ध्यानावस्थित होने की चेष्टा करेगा वह माया के किसी न किसी सिद्धान्त के करीब पहुँच जाएगा। क्योंकि जब बन्द आँख में उसे आत्मा का अनुभव होगा तो जगत् एकदम असत्य मालूम पड़ेगा। तो जिन लोगों ने कहा है कि जगत् माया है, वह बन्द आँख का अनुभव है। अगर बन्द आँख से ध्यान किया गया तो जगत् असत्य ही हो जाएगा क्योंकि कुछ बचता ही नहीं वहाँ। सिर्फ स्वयं

बच जाता है। बन्द आँख में बाहर के जगत् का कोई अनुभव नहीं रह जाता, स्वयं की अनुभूति रह जाती है। वह इतनी प्रखर होती है कि कोई भी कह देगा कि बाहर जो था सब असत्य था।

अगर कोई बाहर के जगत् में पूरी आँख खुली करके जी रहा है जैसा चार्वाक तो वह कहता है : "भीतर कुछ भी नहीं है, आत्मा को सब झूठी बातें हैं, खाओ, पियो, मौज करो।" यह बाहर पूरी खुली आँख का अनुभव है कि बाहर ही सब कुछ है। खाओ, पियो, मौज करो, भीतर कुछ भी नहीं है, भीतर गए कि मरे, भीतर है ही नहीं कुछ, आत्मा जैसी कोई चीज नहीं है, अगर कोई पूरी खुली आँख के अनुभव से जिये तो इन्द्रियों के रस ही शेष रह जाते हैं, आत्मा विलीन हो जाती है, तब जगत् सत्य होता है, आत्मा असत्य हो जाती है।

'महावीर कहते हैं : जगत् भी सत्य है और आत्मा भी सत्य है।' जगत् असत्य नहीं है और आत्मा भी असत्य नहीं है। यह एक दृष्टि है : आँख बन्द करके अगर कोई अनुभव करेगा तो स्वयं सत्य मालूम पड़ेगा, जगत् असत्य मालूम पड़ेगा। और अगर कोई आदमी ध्यान में नहीं बैठेगा और बाहर के जगत् में ही जिएगा तो वह कहेगा : आत्मा असत्य है, जगत् ही सत्य है।

ये दो दृष्टियाँ हैं। यह दर्शन नहीं है। महावीर कहते हैं : जगत् भी सत्य है, आत्मा भी सत्य है; पदार्थ भी सत्य है, परमात्मा भी सत्य है। दोनों एक बड़े सत्य के हिस्से हैं। दोनों सत्य हैं। और प्रतीक है वह नासाग्र दृष्टि। यानी महावीर कभी पूरी आँख बन्द करके ध्यान नहीं करेंगे, पूरी खुली आँख रखकर भी ध्यान नहीं करेंगे। आधी आँख खुली और आधी बन्द ताकि बाहर और भीतर एक सम्बन्ध बना रहे। जागे भी, न जागे भी। बाहर और भीतर एक प्रवाह होता रहे चेतना का। ऐसी स्थिति में जो ध्यान को उपलब्ध होगा उस ध्यान में उसे ऐसा नहीं लगेगा कि मैं ही सत्य हूँ। ऐसा भी नहीं लगेगा कि बाहर असत्य है या बाहर ही सत्य है। ऐसा लगेगा कि सत्य दोनों में है। वह दोनों को जोड़ रहा है। वह आधी खुली आँख प्रतीकात्मक रूप से भी अर्थ रखती है और ध्यान के लिए सर्वोत्तम है लेकिन थोड़ी कठिन है। क्योंकि दो अनुभव हमें बहुत सरल हैं—खुली आँख, बन्द आँख। लेकिन आधी खुली आँख थोड़ी कठिन है लेकिन सर्वोत्तम है।

प्रश्न : आप चार्वाक को भी उसी श्रेणी में लेते हैं जिस श्रेणी में शंकर हैं?

उत्तर : नहीं, उससे बिल्कुल उल्टी श्रेणी है वह।

प्रश्न : स्तर दोनों का एक ही है ?

उत्तर : नहीं, स्तर भी एक नहीं है। दोनों अधूरे सत्यों को कह रहे हैं इस मामले भर में एक हैं।

प्रश्न : शंकर ने बन्द आँख में ध्यान किया तो उसको दुनिया कैसी मालूम पड़ेगी ?

उत्तर : असत्य मालूम पड़ेगी।

प्रश्न : चार्वाक ने खुली आँख में ध्यान किया तो उसको दुनिया कैसी मालूम पड़ेगी ?

उत्तर : ध्यान किया नहीं, बस खुली आँख रखी। खुली आँख में ध्यान करने का उपाय नहीं है। खुली आँख में तो बाहर का जगत् ही सब कुछ है। और उसी में जिया, पिया, मौज किया और कभी भीतर गया नहीं क्योंकि भीतर जाना पड़ता तो आँख बन्द करनी पड़ती। अभी पश्चिम में एक था जोड़ नाम का विचारक। उससे कई बार लोगों ने कहा कि कभी ध्यान भी करो। गुरजिएफ से वह मिलने गया। तो गुरजिएफ ने कहा कि कभी आँख भी बन्द करो। उसने कहा : फुरसत कहाँ, लेकिन सुबह उठता हूँ तो भाग दौड़ शुरू हो जाती है। सांझ जब सोता हूँ तब तक भागता रहता हूँ। ध्यान की फुरसत कहाँ ? अलग वक्त कहाँ ? या मैं जागता हूँ या सोता हूँ। फुरसत कहाँ है ? और तीसरी बात यह कि उपाय कहा है ? कहा या तो जागो या सोयो। सोओ तो तुम ही रह जाते हो, जागो तो सब रह जाते हैं, तुम नहीं रह जाते।

जोड ने जो कहा, वह ठीक कहा। ऐसे अगर चार्वाक से कोईकहता तो वह कहता : कैसा ध्यान ! जब थक जाते हैं, सो जाते हैं। जब थकान मिट जाती है फिर जग जाते हैं। जीते हैं इन्द्रियों में, इसलिए जीते हैं। अगर जाग सकते हो तो जिओ। जितनी देर जाग सकते हो जिओ। जितना जाग कर जी सको जिओ, जितना भोग सको भोगो। प्रत्येक चीज का रस लो। और भीतर क्या है ? भीतर कुछ भी नहीं है। भीतर एक झूठ है। क्योंकि भीतर जो कभी गया नहीं है, भीतर झूठ ही हो जाएगा। तो चार्वाक बाहर ही जी रहा है। वही उसके लिए सत्य है। शंकर जैसे व्यक्ति भीतर ही जी रहे हैं। तो जो भीतर है वही सत्य है और बाहर का सब असत्य हो गया है। एक अर्थ में ये दोनों समान हैं, इस अर्थ में कि ये आधे सत्य को पूरा सत्य कह रहे हैं। फिर भी चुनाव करना हो तो शंकर चुनने योग्य हैं, चार्वाक चुनने योग्य नहीं है क्योंकि

चार्वाक कह रहा है कि बस इतना ही जीवन है। खाओ, पियो। बस इतना ही जीवन है। महावीर कह रहे हैं कि दोनों बातें सत्य हैं।

प्रश्न : यह तो आप दोनों बातों को उल्टा कह रहे हैं ?

उत्तर : नहीं।

प्रश्न : आप कह रहे हैं कि चुनने योग्य हो तो चार्वाक को नहीं, शंकर को चुना जाए।

उत्तर : हाँ, हाँ ! बिल्कुल ही।

प्रश्न : तो क्या शंकर त्याग की ओर गया ?

उत्तर : नहीं। मैं कहता हूँ कि वह ज्यादा गहरे योग की ओर गया क्योंकि भीतर में जितना योग है, उतना बाहर नहीं है।

प्रश्न : क्या चार्वाक भोग की ओर गया ?

उत्तर : नहीं, यह मैं नहीं कह रहा हूँ। ऐसी भूल हो जाती है, मेरी निरन्तर बातों से। साधारणतः हम चार्वाक को भोगी कहेंगे। साधारणतः मैं चार्वाक को त्यागी कहूँगा। मैं कहूँगा कि वह, जो अन्तर्योग है, बड़ा योग है उसको छोड़ रहा है। चार्वाक कह रहा है कि घी भी ऋण लेकर पीना पड़े तो पियो। ऋण की चिन्ता मत करो। बस घी मिलना चाहिए। तो वह घी पर ही जी रहा है। लेकिन बहुत बाहर जी रहा है। खाने-पीने तक उसका योग है। लेकिन एक अन्तर्योग भी है। उस ओर कोई दृष्टि नहीं है। उस ओर कोई ध्यान नहीं है। शंकर भी बड़े योगी हैं। क्योंकि शंकर ज्यादा गहरे योग में जा रहे हैं। और महावीर चूंकि प्रत्येक चीज में एक सन्तुलन और समता का ध्यान रखते हैं, वे कहेंगे चार्वाक को कि तुम बिल्कुल ठीक कहते हो कि बाहर सत्य है। लेकिन अगर तुम भीतर जाओगे तो तुम पाओगे कि वहाँ भी सत्य है। शंकर को भी यही कहेंगे कि तुम बिल्कुल ही ठीक कहते हो, एकदम ठीक हो बात है कि भीतर सत्य है। लेकिन तुम्हारे आँख बंद करने से बाहर असत्य नहीं हो जाता। सिर्फ इतना ही है कि तुम्हें पता चलना बंद हो जाएगा।

पूरा जीवन बाहर और भीतर से मिलकर बना है। एक को तोड़ देना दूसरे के हित में अधूरा है। इस दृष्टि में महावीर अनेकांगी है। और प्रत्येक पहलू पर क्या-क्या विरोध है वह दोनों में से सत्य को निचोड़ लेना चाहते हैं।

२३

प्रश्नोत्तर-प्रवचन

प्रश्न : जब चेतना आत्मा का स्वभाव है तो मूर्छा का क्या अर्थ है ?

उत्तर : मूर्छा का अर्थ है, जागृति का और कहीं उपस्थित होना। यह ख्याल में आ जाए तो कठिनाई नहीं रह जाती। हमें ऐसा लगता है कि अगर स्वभाव जागृत है तो फिर मूर्छा कहाँ है ? समझ लो कि एक टार्च हमारे पास है जिसका स्वभाव प्रकाश है और समझ लो कि टार्च जल रही है। फिर हम कहते हैं कि टार्च जल रही है और टार्च का स्वभाव प्रकाश है। फिर अंधेरा कहाँ है ? लेकिन टार्च का एक फोकस है और जिस बिन्दु पर पड़ता है वहाँ तो प्रकाश है। शेष सब जगह अंधेरा हो जाता है। और यह भी हो सकता है कि टार्च खुद अंधेरे में हो। इसमें कुछ विरोध नहीं है। टार्च का फोकस बाहर की तरह पड़ रहा है। यद्यपि टार्च का स्वभाव प्रकाश है लेकिन टार्च खुद अंधेरे में खड़ी है।

हमारा स्वभाव जागरण है लेकिन हमारी जागृति बाहर की तरफ फैली हुई है। हम तब भी जागृत हैं। एक आदमी सड़क पर चल रहा है, चारों तरफ देखता है। दूकानें दिखाई पड़ रही हैं। लोग दिखाई पड़ रहे हैं। नहीं तो चलेगा कैसे अगर सोया हुआ हो ? सब दिखाई पड़ रहा है, केवल एक आदमी को छोड़कर जो वह स्वयं है। सब तरफ जागृति फैली हुई है, सब दिखाई पड़ रहा है—सड़क, दूकान, मकान, तांगा, कार, रिक्शा सब। सिर्फ एक बिन्दु भर दिखाई नहीं पड़ रहा है वह जो स्वयं है।

इसका मतलब यह हुआ कि जागृति दो तरह से हो सकती है। बहिर्मुखी और अन्तर्मुखी। अगर बहिर्मुखी जागृति होगी तो अन्तर्मुखता अन्धकारपूर्ण हो जाएगी। वहाँ मूर्छा हो जाएगी। मूर्छा का कुल मतलब इतना है कि प्रकाश की

धारा उस तरफ नहीं बह रही है। अगर जागृति अन्तर्मुखी होगी तो बाहर की तरफ मूर्छा हो जाएगी। साधारणतः जागृति के दो ही रूप हो सकते हैं : अन्तर्मुखता और बहिर्मुखता। अगर कोई बहिर्मुखी है तो अन्तर्मुखता में बाधा पड़ेगी। अगर कोई अन्तर्मुखी है तो बहिर्मुखता में बाधा पड़ेगी। लेकिन अन्तर्मुखता का अगर और विकास हो तो एक तीसरी स्थिति भी जागृति की उपलब्ध होती है जहाँ अन्तर और बाह्य मिट जाता है, जहाँ सिर्फ प्रकाश रह जाता है। वह है पूर्ण जागृत स्थिति जहाँ बाहर और भोतर का भेद मिट जाता है। लेकिन बहिर्मुखता से कभी कोई इस तीसरी स्थिति में नहीं पहुँच सकता है।

पहली स्थिति है बहिर्मुखता, दूसरी स्थिति है अन्तर्मुखता। तीसरी स्थिति है दोनों के पार हो जाना। और इस पार हो जाने का जो बिन्दु है, वह अन्तर्मुखता है। इस पार हो जाने का बिन्दु बहिर्मुखता नहीं है। क्योंकि जब हम बाहर हैं तब हम अपने पर भी नहीं है। अपने से और ऊपर जाने की कोई सम्भावना नहीं है। बाहर से लौट आना है अपने पर और फिर अपने से भी ऊपर चले जाना है। उस स्थिति में बाहर-भीतर सब प्रकाशित हो जाते हैं।

मूर्छा का अर्थ, अभी जिसे हम समझ लें, इतना ही है कि हम बाहर हैं। बाहर हैं का मतलब है कि हमारा ध्यान बाहर है। और जहाँ हमारा ध्यान है वहाँ जागृति है और जहाँ हमारा ध्यान नहीं वहाँ मूर्छा है। समझो कि तुम भागे चले जा रहे हो। मकान में आग लग गई है। पैर में कांटा गड़ गया है। पैर में पता नहीं चलता कि पैर में कांटा गड़ा है। मकान में आग लगी है तो पैर में गड़े कांटे का पता कैसे चले? सारा ध्यान आग लगे हुए मकान पर अटक गया है। पैर तक जाने के लिए ध्यान की छोटी सी किरण भी नहीं है जो शरीर से पैर तक पहुँच जाए यात्रा करके और पता लगा ले कि कांटा गड़ गया है। फिर मकान की आग बुझ गई है, फिर सब ठीक हो गया है। और अचानक पैर का कांटा दुखने लगता है। इतने देर तक पैर के कांटे का कोई पता नहीं था क्योंकि ध्यान वहाँ नहीं था। ध्यान कहीं और था। जहाँ हमारा ध्यान था, वहाँ हम जागृत थे। जहाँ हमारा ध्यान नहीं था, वहाँ हम मूर्छित थे।

काशी नरेश ने कोई पचास वर्ष पहले एक आपरेशन कराया। वह अपनी तरह का आपरेशन था क्योंकि वह किसी तरह की मूर्छा की दवा लेने को तैयार न थे। और डाक्टर बिना मूर्छा की दवा दिए उतना बड़ा पेट का आपरेशन करने को तैयार न थे। लेकिन नरेश का कहना था कि मुझे गीता पढ़ने दी जाए।

जब मैं गीता पढ़ूंगा तो फिर कोई खतरा नहीं होगा क्योंकि तब फिर मेरा सारा चित्त वहाँ होगा। तो मूर्छित करने की अलग से जरूरत क्या है। मैं वहाँ मूर्छित रहूँगा ही पेट के प्रति। लेकिन डाक्टर मानने को राजी न थे। इसमें खतरा था। एक सैकेंड को भी अगर ध्यान पेट पर आ गया तो मृत्यु हो जाएगी। बड़ा आपरेशन था। तो पहले उन्होंने प्रयोग के लिए जांच-पड़ताल की और पाया कि जब वह गीता पढ़ते हैं तब वह कहीं भी नहीं रह जाते। बस वह गीता पर ही हो जाते हैं।

तो यह पहला आपरेशन था अपनी तरह का जो एक व्यक्ति के ध्यान को एक तरफ बहाने से किया गया। आपरेशन हुआ और सफल हुआ। वह अपनी गीता पढ़ते रहे और पेट का आपरेशन किया गया। किसी भी तरह की बेहोशी की कोई दवा नहीं दी गई। और जिन डाक्टरों ने किया वे चकित रह गए। अब हुआ इतना कि अगर किसी का चित्त गीता की तरफ प्रवाहित हो सके तो कोई कठिनाई नहीं है कि उसका एक अंग काट दिया जाए और उसे पता न चले क्योंकि पता चलता है ध्यान की धारा को। ध्यान की धारा वहाँ तक जाँए तो पता चलता है। नहीं तो पता नहीं चलता है।

एक आदमी दो तीन वर्षों से पैरेलिसस से बीमार था। वह हिल भी नहीं सकता था। चिकित्सक परेशान थे। क्योंकि वस्तुतः उस आदमी को लकवा नहीं था, कोई शारीरिक कारण न थे। किसी न किसी तरह का उसको मानसिक लकवा था। उसे ख्याल था कि लकवा लग गया है और ख्याल इतना मजबूत हो गया था कि वह हाथ पैर हिला-डुला भी नहीं सकता था और उठ भी नहीं सकता था। फिर तीन साल से निरन्तर पड़ा था बिस्तर पर और ध्यान निरन्तर लकवा पर ही रहा तीन वर्षों तक। वह लकवा मजबूत हो चला था। तीन वर्ष बाद एक दिन आधी रात उसके मकान में आग लग गई। और एक सैकेंड को उसका ध्यान लकवे से हटकर आग पर चला गया जो बिल्कुल स्वाभाविक था। वह आदमी निकल कर मकान के बाहर आ गया। जब बाहर आ गया और लोगों ने उसे देखा तो लोगों ने कहा : 'अरे तुम !' तो उसने देखा। वह वापिस लकवा खा कर गिर पड़ा।

हुआ क्या ? यह आदमी बाहर आया कैसे ? अगर यह लकवा सच में था तो यह आदमी मकान के बाहर नहीं आ सकता था। उसका पूरा ध्यान लकवे से हट गया। इतने जोर से हट गया कि मकान में आग लगी और उसे स्मरण भी न रहा कि मेरा शरीर भी है, शरीर को लकवा भी है। वह बाहर आ गया।

लेकिन जैसे ही स्मरण दिलाया गया, वह वापस गिर पड़ा। और वह खुद ही नहीं मान सकता कि यह कैसे हुआ ? यह गिर जाना क्या ? फिर पूरा का पूरा ध्यान लकवे पर आ गया।

हमारा ध्यान जहाँ है, वहाँ हम जागृत हो जाते हैं। जहाँ से हमारा ध्यान हट जाता है, वहाँ हम मूर्छित हो जाते हैं। अगर हम ठीक से समझें तो मूर्छा हमारी जागृति की छाया है। जहाँ मूर्छा होती है वहाँ जागृति नहीं होती; जहाँ जागृति होती है वहाँ मूर्छा नहीं होती। लेकिन जिस ओर जागृति का रुख होगा उससे ठीक उल्टी तरफ मूर्छा का रुख होगा।

तो एक तरफ से देखने में प्रश्न ठीक मालूम पड़ता है कि स्वभाव हमारा जागरण है, चेतना है। तो यह अचेतना कैसी, यह मूर्छा कैसी ? लेकिन इसी स्वभाव के कारण है वह भी। वह भी इसी की छाया है पीछे पड़ने वाली हम रास्ते पर चलते हैं। सूरज निकला हुआ है। हम पूरे प्रकाशित हैं। हमारे पीछे एक छाया बनती है सूरज के कारण। छाया बनने का कारण कोई दूसरा नहीं है और हमारे प्रकाशित होने का कारण भी कोई दूसरा नहीं है। लेकिन हम पूछ सकते हैं कि जो हम तक को प्रकाशित कर देता है, वह इतनी सी छाया को प्रकाशित नहीं करता। असल में जितने हिस्से में हम प्रकाश को रोक लेते हैं, उतने हिस्से में पीछे छाया बन जाती है। वह छाया हमारे द्वारा रोका गया प्रकाश है। अगर हम काँच के व्यक्ति हों तो फिर छाया नहीं बनेगी। क्योंकि फिर हमारे आर-पार किरणें निकल जाएँगी। जितना पारदर्शी होगा उतनी छाया नहीं बनेगी। और अगर थोड़ा भी अपारदर्शी है तो उतनी छाया बन जाएगी।

इसे इस तरह भी समझना चाहिए। हमारा स्वभाव तो प्रकाश है लेकिन अभी हमारा प्रकाश किन्हीं-किन्हीं केन्द्रों पर प्रवाहित होता है। वह दिए की भाँति कम, टॉर्च की भाँति ज्यादा है। टॉर्च भी दिया बन सकती है। सिर्फ उसके फोकस को अलग कर देने की बात है। ऊपर के फोकस को अलग करके अगर हम टॉर्च को रख देंगे तो टॉर्च दिया बन जाएगी। असल में टॉर्च दिया ही है, सिर्फ उस पर एक फोकस भी लगा हुआ है। अगर हम दिए पर भी फोकस लगा लें तो प्रकाश बंध जाएगा और उस धारा में बहेगा।

हमारा चित्त भी फोकस का काम कर रहा है पूरे वक्त। भीतर प्रकाश है, चित्त फोकस का काम कर रहा है। जितना बड़ा हमारा चित्त होता है, जैसा चित्त होता है, वैसा फोकस बनता है। जिस चीज पर हमारा चित्त अटक जाता है, सारे प्रकाश की धारा वहीं बहने लगती है। चित्त बाहर भी ले जा सकता है,

चित्त भीतर भी ले जा सकता है। लेकिन अगर चित्त बिल्कुल मिट जाए तो फोकस टूट जाएगा। फिर भीतर-बाहर कुछ न रह जाएगा, सिर्फ प्रकाश रह जाएगा। तो चित्त को तोड़ने की साधना ही अन्ततः लक्ष्य है क्योंकि चित्त बीच का माध्यम है।

पूरे वक्त हमारी आँखों की पुतली छोटी-बड़ी होती रहती है। जितने प्रकाश की जरूरत है, वह उस मात्रा में छोटी या बड़ी हो जाती है। धूप में तुम जाओ तो पुतली सिकुड़ कर छोटी हो गई क्योंकि उतनी रोशनी को भीतर ले जाने की कोई जरूरत नहीं है। अँधेरे में तुम आए तो पुतली बड़ी हो गई क्योंकि अब ज्यादा प्रकाश भीतर जाए तो ही दिखाई पड़ सकता है। तो पूरे वक्त, आँख की जो पुतली है, उसका जो लेंस है वह छोटा हो रहा है; बड़ा हो रहा है—जैसी जरूरत है, वैसा हो रहा है। हमारा चित्त भी वैसा है। वह भी छोटा-बड़ा हो रहा है पूरे वक्त। और जैसी जरूरत है, वैसा उसका फोकस बन जाता है। अगर मकान में आग लगी है, तो फोकस एकदम छोटा हो जाता है। सब तरफ से प्रकाश को खींच कर मकान पर ही रोक देता है। अगर ध्यान जाए कि सिनेमा देखने जाना है, परीक्षा देनी है, किताब पढ़नी है तो फिर मकान की आग को कौन बचाएगा ? तो चित्त सब चीजों को अलग कर देता है और फोकस बिल्कुल छोटा हो जाता है जो सिर्फ मकान को देखता है। बस मकान में आग लगी है। तुम एक खतरे से गुजर रहे हो। नीचे खाई है, खड्ड है। एक पैर फिसल जाए, नीचे गिर जाओगे। चित्त का फोकस एकदम छोटा हो जाएगा। अब तुम्हें कुछ नहीं दिखाई पड़ेगा। अब रहा दो फुट का छोटा सा रास्ता, और तुम। सारा का सारा फोकस वहीं हो जाएगा। सब ओर से चित्त हट जाएगा। ऊपर चाँद तारे भी होंगे। चित्त के लिए इतनी जरूरत है अभी कि वह सजग रहे, छोटा फोकस हो, थोड़ी जगह पर ज्यादा प्रकाश पड़े। खतरे के बाहर हो।

एक आदमी आराम कुर्सी पर बैठा हुआ है। अभी वह घोड़े पर सवार था और पहाड़ की एक पतली पगडंडी से निकल रहा था जहाँ से गिरे तो प्राण निकल जाएँ। बस एक-एक कदम दिखाई पड़ रहा था। वह आदमी घर लौट आया। अब वह आराम कुर्सी पर बैठा हुआ है। चित्त का फोकस खूब बड़ा हो गया। अब वह जमाने भर की बातों को एक साथ सोच रहा है, घर की, दूकान की, मित्रों की। अब चित्त का पूरा फोकस बड़ा हो गया है। बड़ा परदा हो गया है जैसे फिल्म का, जिसमें हजारों चीजें चल रही हैं एक साथ और कोई

चिन्ता नहीं है। चित्त को जहाँ भागना है, भागता है, दौड़ना है दौड़ता है। चित्त फोकस ले रहा है और इस चित्त को बाहर देखने की निरन्तर जरूरत है।

बहिर्मुखता जीवन की व्यर्थता में उलझा देती है एकदम और भीतर से तोड़ देती है। दूसरी बात, अन्तर्मुखता जीवन से तोड़ देती है भीतर डुबो देती है कि सब तरफ से दरवाजे बंद हो गए। पहली बात भी अधूरी है। दूसरी बात भी अधूरी है। असल में एक तीसरी स्थिति है जबकि हम फोकस को तोड़ देते हैं। न हम भीतर देखते हैं न बाहर देखते हैं। सिर्फ देखना रह जाता है, न बाहर की तरफ बढ़ता हुआ, न भीतर की तरफ बढ़ता हुआ। सिर्फ प्रकाश रह जाता है जिसका कोई फोकस नहीं है। जैसे कि एक दिया जल रहा है। सब ओर एक-सा प्रकाश फैलता है। पर दिए से भी हम ठीक से नहीं समझ सकते। क्योंकि दिए का भी बहुत गहरे में छोटा-सा फोकस है। इसलिए दिया छूट जाता है, अपने प्रकाश के बाहर छूट जाता है। एक तीसरी स्थिति है जहाँ न व्यक्ति अन्तर्मुखी है, न बहिर्मुखी है। जहाँ व्यक्ति सिर्फ है, न बाहर की ओर देख रहा है, न भीतर की ओर देख रहा है, बस है। यह बस होना मात्र का नाम है जागृति—पूर्ण जागृति।

तो महावीर कहते हैं : ऐसा जो पूरी तरह जाग गया वह साधु है। जो सोया है वह असाधु है। असाधु दो तरह के हो सकते हैं : एक जो बाहर की ओर सोया हुआ है, एक जो भीतर की ओर सोया हुआ है। साधु एक ही तरह का हो सकता है जो सोया हुआ ही नहीं है, जिसकी मूर्च्छा कहीं भी नहीं है। और इसलिए एक छोटा सा, फर्क ख्याल में लेना चाहिए कि एकाग्रता और ध्यान में बुनियादी फर्क है।

एकाग्रता का मतलब है कि ध्यान किसी एक बिन्दु पर एकाग्र हो जाए। लेकिन शेष सब जगह सो जाएं। जैसा कि महाभारत में कथा है कि द्रोण ने पूछा अपने शिष्यों से कि वृक्ष पर तुम्हें क्या दिखाई पड़ता है। तो किसी ने कहा पूरा वृक्ष। किसी ने कहा कि वृक्ष के पीछे सूरज भी दिखाई पड़ता है। किसी ने कहा कि दूर गाँव भी दिखाई पड़ रहा है, पूरा आकाश दिखाई पड़ता है, बादल दिखाई पड़ते हैं, सब दिखाई पड़ता है। अर्जुन कहता है कि कुछ भी नहीं दिखाई पड़ता। सिर्फ वह जो पक्षी लटकाया हुआ है नकली, उसकी आँख दिखाई पड़ती है। तो द्रोण कहते हैं कि तू ही एकाग्र चित्त है।

एकाग्र चित्त का मतलब यह हुआ कि जिस बिन्दु को हम देख रहे हैं, बस सारा ध्यान वहीं हो गया है, सिकुड़ कर एक जगह आ गया है, शेष के प्रति बन्द हो गया है, शेष के प्रति सो गया है। तो एकाग्रता एक बिन्दु के प्रति जागरण और शेष सब बिन्दुओं के प्रति सो जाना है। लेकिन चंचलता और एकाग्रता में थोड़ा फर्क है। एकाग्रता का बिन्दु बदलता नहीं, चंचलता का बिन्दु बदलता चला जाता है। फर्क नहीं है दोनों में। एकाग्रता में एक बिन्दु रह गया है। शेष सब सो गया है। सब तरह मूर्छा है। बस एक बिन्दु की तरफ जागृति रह गई है। चंचलता में भी यह है लेकिन फर्क इतना है कि चंचलता में एक बिन्दु तेजी से बदलता रहता है, अभी यह है, अभी वह है, और शेष के प्रति सोया रहता है।

ध्यान का मतलब है ऐसा कोई बिन्दु नहीं है जिसके प्रति चित्त सोया हुआ है। तो ध्यान एकाग्रता नहीं है, ध्यान चंचलता भी नहीं है। ध्यान बस जागरण है।

इसे और गहराई में समझें। अगर हम किसी के प्रति जागते हैं तो हम समग्र के प्रति नहीं जाग सकते। अगर तुम मेरी बात सुन रहे हो तो शेष सारी आवाजें जो इस जगत् में चारों ओर हो रही हैं, तुम्हें सुनाई नहीं पड़ेंगी। मेरी तरफ एकाग्रता हो जाएगी तो बाहर कोई पक्षी चिल्लाया, कोई कुत्ता भौंका, कोई आदमी निकला, उसका तुम्हें पता नहीं चलेगा। यह एकाग्रता हुई। जागरूकता का अर्थ यह है कि एकसाथ जो भी हो रहा है, वह सब पता चल रहा है। हम किसी एक चीज के प्रति जागे हुए नहीं हैं। समस्त जो हो रहा है उसके प्रति जागे हुए हैं। मेरी बात भी सुनाई पड़ रही है, कौआ आवाज लगा रहा है वह भी सुनाई पड़ रहा है, कुत्ता भौंका वह भी सुनाई पड़ रहा है। और यह सब अलग-अलग नहीं क्योंकि काल में ये सभी एक साथ घट रहे हैं। यानी अभी जब हम बैठे हैं तो हजार घटनाएँ घट रही हैं। इन सब के प्रति एक साथ जागा हुआ होने को महावीर अमूर्छा कहेंगे, जागरण कहेंगे। और ऐसा जागरण इतना बड़ा हो जाए कि न केवल बाहर की आवाज सुनाई पड़े, बल्कि अपने श्वास की धड़कन भी सुनाई पड़े, अपनी आंख के पलक का हिलना भी पता चल रहा हो, भीतर चलते विचार भी पता चल रहे हों, जो भी हो रहा है इस क्षण में मेरी चेतना के दर्पण पर प्रतिफलित हो रहा है वह सब मुझे पता चल रहा हो, अगर वह समग्र मुझे पता चल रहा है—भीतर से लेकर बाहर तक तो फोकस टूट गया, तब जागरण रह गया। यह पूर्ण स्वभाव की उपलब्धि हुई।

यह पूर्ण स्वभाव सदा से हमारे पास है। हम उसका उपयोग ऐसा कर रहे हैं कि वह कभी पूर्ण नहीं हो पाता। बल्कि अपूर्ण बिन्दुओं पर हम पूरी ताकत लगा कर सीमित कर लेते हैं। जागरण हमारे पास है लेकिन हमने कभी जागरण समग्र के प्रति प्रयोग नहीं किया है। न प्रयोग करने के कारण शेष के प्रति मूर्छा है, कुछ के प्रति जागरूकता है और इसलिए यह सवाल पैदा हो जाता है कि मूर्छा कहाँ से आई? मूर्छा कहीं से भी नहीं आई। मूर्छा हमारे द्वारा निर्मित है। और निरन्तर अनुभव दिखाई पड़ जाएगा तो मूर्छा विसर्जित हो जाएगी। तब हम पारदर्शी हो जाएँगे। तब सिर्फ जागरण होगा और उसकी कोई छाया नहीं बनेगी। कहीं भी कोई छाया नहीं बनेगी।

प्रश्न : तीर्थंकरों के जीवन में हम पूर्व तीर्थंकरों की परम्परा के आचार्य नहीं देखते। किन्तु महावीर के समय पार्श्वनाथ की परम्परा के आचार्य थे। वह परम्परा बाद में भी चलती रही। इसका क्या कारण था? नये तीर्थंकर का जन्म तो पुरातन परम्परा के लुप्तप्राय होने पर होता है। जब पार्श्वनाथ की परम्परा प्रचलित थी तब नवीन तीर्थंकर की स्थापना क्यों की गई और पुराने की कैसे चलती रही?

उत्तर : पहली बात तो यह समझनी चाहिए कि परम्परा बनती है तब जब जीवित सत्य खो जाता है। परम्परा जीवित सत्य की अनुपस्थिति पर रह गई सूखी रेखा है। परम्परा तो चल सकती है करोड़ों वर्षों तक। परम्परा बनती ही तब है जब हमारे हाथ में अतीत का मृत बोझ रह जाता है। मैंने सुना है कि एक घर से बूढ़ा बाप था। उसके छोटे बच्चे थे। बाप भी मर गया, माँ भी मर गई। बच्चे बहुत ही छोटे थे। देर उम्र में बच्चे हुए थे। फिर वे बड़े हुए। उन बच्चों ने निरन्तर देखा था अपने पिता को कि रोज भोजन के बाद आले पर जाकर वह कुछ उठाता-रखता था। पिता के मर जाने पर उन्होने सोचा कि यह काम रोज का था। यह कोई साधारण काम न होगा। जरूर कोई अनुष्ठान होगा। तो उन्होंने जाकर देखा तो वहाँ बाप ने दाँत साफ करने के लिए एक छोटी सी लकड़ी रख छोड़ी थी। वह पिता रोज भोजन के बाद उठता, आले पर जाकर दाँत साफ करता। उन बच्चों ने सोचा : इस लकड़ी का जरूरी कोई अर्थ है। यह तो उन्हें पता नहीं था कि अर्थ क्या हो सकता है। यह भी पता नहीं था कि पिता बूढ़ा था। उसे दाँत साफ करने के लिए लकड़ी की जरूरत थी।

तो बच्चे नियमित रूप से आले के पास जाते, लकड़ी को उठाकर देखते, और रख देते। पिता का नियम रोज पालन करते रहे। फिर वे बड़े हुए। फिर उन्होंने बहुत कमाई की, फिर उन्होंने नया मकान बनाया तो सोचा कि इतनी छोटी सी लकड़ी भी क्या रखनी? अब उन्हें कुछ भी पता न था कि वह लकड़ी किसलिए थी तो उन्होंने एक सुन्दर कारीगर से एक बड़ा लकड़ी का डंडा बनवाया, उस पर खुदाई करवाई। और उसे आले में उन्होंने उसे स्थापित कर दिया। बड़ा आला बनवाया, अब रोज उठाने की बात न रही। उनके भी बच्चे पैदा हो गए। उन बच्चों ने भी अपने पिता को बड़े आदर-भाव से उस आले के पास जाते देखा था। फिर उनके पिता भी चल बसे। फिर बच्चे वहाँ जाकर रोज नमस्कार कर लेते क्योंकि उनके पिता उस आले के पास भोजन के बाद जरूर ही जाते थे। यह नियमित कृत्य हो गया था। परम्परा बन गई थी। अब इसमें कुछ भी अर्थ न रह गया था। एक जड़ लीक पड़ जाती है जो पीछे चलती है।

महावीर के समय में विचार की लीक छूट गई थी। आचार्य थे, साधु थे लेकिन मृत थी धारा। मृतधारा कितने समय तक चल सकती है? और मृतधारा जिद्दी हो जाती है। महावीर ने नयी विचारदृष्टि को जन्म दिया, नयी हवा फैली। नया सूरज निकला। लेकिन पुरानी लीक पर चलने वाले लोगों ने नये को स्वीकार नहीं किया। वह अपनी लीक को बाँधे हुए चलते गए। ऐसा भी हुआ कि महावीर ने जो कहा था वह भी चला और जो पिछली परम्परा थी, वह भी चलती रही। एक मृतधारा की तरह उसकी थोड़ी सी रूपरेखा भी चलती रही।

यह प्रश्न सार्थक दिखाई पड़ता है लेकिन सार्थक नहीं है। परम्परा मात्र होने से कोई जीवित नहीं होता। बल्कि उलटी ही बात है। जब कोई चीज परम्परा बनती है तब मर गई होती है। और आचार्यों के होने से जरूरी नहीं है कि वे किसी जीवित परम्परा के वंशधर हों। सच तो यह है कि उनका होना इसी बात की खबर है कि अब कोई जीवित अनुभवी व्यक्ति नहीं रह गया जो जानता हो। इसलिए जो जाना गया था उसको जानने वाले लोग गुरु का काम निबाहने लगते हैं। साधु भी हैं लेकिन न तो साधु से कुछ होता है, न शिक्षकों से कुछ होता है, न गुरुओं से कुछ होता है जब तक कि जीवित अनुभव को लिए हुए कोई व्यक्ति न हो। और वे व्यक्ति खो गए थे। वे व्यक्ति न रहे थे। इसलिए महावीर के मार्ग-दर्शन में इस बात से कोई अवरोध नहीं पड़ता है

कि पिछले तीर्थंकर के लोग शेष थे। उनमें जो भी थोड़े समझदार जीवित साधक थे, वे महावीर के साथ आ गए। जो नहीं थे, जिद्दी थे, अन्धे थे, आग्रह रखते थे वे अपनी लीक को पकड़ कर चलते गए।

फिर महावीर जैसे व्यक्तियों का जन्म पिछले व्यक्तियों से नहीं जोड़ा जा सकता। जोड़ने की कोई जरूरत नहीं है। जब भी जगत् में जरूरत होती है, प्राण पुकार करते हैं, तब कोई न कोई उपलब्ध चेतना करुणावश वापस लौट आती है। जरूरत पर निर्भर है, हमारी पुकार पर निर्भर है। जैसे इस युग में धीरे-धीरे पुकार कम होती चली गई है। एक वक्त था कि लोग ईश्वर को इन्कार करने का भी कष्ट करते थे। अब लोग ऐसे हैं जो इन्कार करने का कष्ट भी नहीं उठाना चाहते। ईश्वर को इन्कार करने में भी उत्सुकता थी। जो इन्कार करता था, वह रस लेता था। अब ऐसे लोग हैं जो कहेंगे : 'बस छोड़ो, ठीक है। हो तो हो, न हो तो न हो ईश्वर का अस्तित्व इन्कार करने की भी किसी को फुरसत नहीं है। स्वीकार करने की आशा तो बहुत दूर है। लेकिन इन्कार करने के लिए भी फुरसत नहीं है। नीत्से ने कहा है कि वह वक्त जल्दी आएगा जब ईश्वर को कोई इन्कार भी न करेगा। तुम उस दिन के लिए तैयार रहो। ठीक कहा उसने। पूरे युग की भावदृष्टि बताती है कि स्थिति क्या है।

जिसकी हमारे गहरे प्राणों में आकांक्षा और प्यास होती है, वह आकांक्षा और प्यास ही उसका जन्म बनती है। एक गड्ढा है। पहाड़ पर पानी गिरता है। पहाड़ पर नहीं भरता पानी। गिरता पहाड़ पर है, भरता गड्ढे में है। गड्ढा तैयार है, प्रतीक्षा कर रहा है। पानी भागा हुआ चला आता है, गड्ढे में भर जाता है। शायद हम में से कोई यह कहे कि पानी की बड़ी करुणा है कि वह गड्ढे में भर गया, गड्ढे की बड़ी पुकार है। क्योंकि वह खाली है इसलिए पानी को आना पड़ा। बाकी गहरे में दोनों बातें एक साथ सच हैं। जब भी जरूरत है, जब भी प्राण प्यासे हैं तब कोई भी उपलब्ध चेतना, इस गड्ढे को भरने के लिए उतर आती है। महावीर के वक्त पुरानी परम्परा चलती थी, पुराने गुरु थे। पर वे मृत थे। कोई जीवन उनमें न था। इसलिए उनके आविर्भाव पर कोई असंगति की बात नहीं कही जा सकती।

प्रश्न : महावीर ने हमें नया क्या दिया ? प्रेम की चर्चा तो जब से मनुष्यजाति है तब से ही होती आई है।

उत्तर : सत्य न तो नया है न पुराना। सत्य सदा है। जो सदा है वह न कभी पुराना होगा और न कभी नया हो सकता है। जो नया होता है, वह कल

पुराना हो जाएगा। जो आज पुराना दीखता है, वह कल नया था। असल में सत्य के सम्बन्ध में नये और पुराने शब्द एकदम व्यर्थ हैं। नया वह होता है जो जन्मता है, पुराना वह होता है जो बूढ़ा होता है। सत्य न जन्मता है, न बूढ़ा होता है, न मरता है।

लहर नयी हो सकती है, लहर पुरानी भी हो सकती है। लेकिन सागर न नया है, न पुराना है। बादल नये हो सकते हैं, पुराने भी हो सकते हैं। लेकिन आकाश न नया है न पुराना है। असल में आकाश वह है जिसमें नया बनता पुराना होता, पुराना मिटता नया बनता है। लेकिन स्वयं आकाश न तो नया है न पुराना है। सत्य भी नया पुराना नहीं है। इसलिए जब भी कोई दावा करता है कि सत्य प्राचीन है या नया तब भी वह मूर्खतापूर्ण दावा करता है। नये-पुराने के दावे ही नासमझी से भरे हैं।

दो ही तरह के दावेदार दुनिया में हुए हैं। एक वे हैं जो कहते हैं कि सत्य पुराना है, हमारी किताब में लिखा हुआ है। हमारी किताब इतने हजार वर्ष पुरानी है। दूसरे दावेदार हैं जो कहते हैं कि सत्य बिल्कुल नया है क्योंकि किसी किताब में नहीं लिखा हुआ है। लेकिन सत्य के सम्बन्ध में ऐसे कोई दावे नहीं किये जा सकते। फिर भी क्या कहा जा सकता है? फिर यही कहा जा सकता है कि जो सत्य निरन्तर है उससे भी हमारा निरन्तर सम्बन्ध नहीं रहता। सम्बन्ध कभी-कभी होता है। सत्य निरन्तर है। सत्य एक निरन्तरता है, शाश्वतता है, लेकिन जरूरी नहीं कि आकाश हमारे ऊपर निरन्तर है तो हम आकाश को देखते ही रहें। और अगर कोई ऐसा गाँव हो जहाँ के सारे लोग जमीन की ओर देखते ही वक्त गुजारते हों और उस गाँव में किसी को पता ही न हो कि आकाश भी है और अगर एक आदमी आकाश की ओर आँख उठाए और चिल्ला कर लोगों को पुकारे कि देखते हो आकाश है, तुम क्यों जमीन की ओर आँखें गड़ाये हुए मरे जा रहे हो तो शायद उनमें से कोई कहे कि इसने बड़ा नया सत्य बताया है या शायद उनमें से कोई कहे कि इसमें क्या नया है; हमारे बाप-दादों ने, आकाश की बातें किताबों में लिखी है। लेकिन ये दोनों ही ठीक नहीं कह रहे।

सवाल यह नहीं है कि आकाश के सम्बन्ध में कुछ कहा गया है या नहीं कहा गया है। सवाल यह भी नहीं है कि आकाश के सम्बन्ध में जो कहा गया है वह नया है या पुराना। सवाल यह है कि क्या उससे हमारा निरन्तर संबंध है।

महावीर जो कहते हैं, बुद्ध जो कहते हैं, जीसस जो कहते हैं, कृष्ण जो कहते हैं वह शायद वही है जो निरन्तर मौजूद है। लेकिन उससे हमारा निरन्तर सम्बन्ध छूट जाता है। वह फिर चिल्ला-चिल्ला कर, पुकार-पुकार कर, उस ओर आँखें उठवाते हैं। आँखें उठ भी नहीं पातीं कि हमारी आँखें फिर वापिस लौट आती हैं।

इस अर्थ में अगर हम देखेंगे तो जब भी कोई व्यक्ति सत्य को उपलब्ध होता है तो कहना चाहिए नया ही उपलब्ध होता है। सत्य कोई नया पुराना नहीं है लेकिन व्यक्ति को जब भी उपलब्ध होता है तो वह नया है। इस अर्थ में भी सत्य को नया कहा जा सकता है क्योंकि दूसरे का सत्य बासी हो जाता है और हमारे लिए कभी काम का नहीं होता। हमारे लिए तो तब काम का होगा जब वह फिर नया होगा।

महावीर ने क्या नया दिया यह सवाल नहीं है क्योंकि अगर नया दिया भी होगा तो अब एकदम पुराना हो गया। सवाल यह नहीं है कि महावीर ने क्या नया दिया ? सवाल यह है कि सामान्य जन जैसा जीता है क्या महावीर उससे भिन्न जिए हैं। वह जीना बिल्कुल नया था। नया इस अर्थ में नहीं कि वैसा पहले कभी कोई नहीं जिया होगा। कोई भी जिया हो, करोड़ों लोग जिए हों, तो भी फर्क नहीं पड़ता। जब मैं किसी को प्रेम करता हूँ तो वह प्रेम नया ही है। मुझसे पहले करोड़ों लोगों ने प्रेम किया है लेकिन कोई भी प्रेमी यह मानने को राजी नहीं होगा कि मैं जो प्रेम कर रहा हूँ, वह बासी या पुराना है। वह नया है। उसके लिए बिल्कुल नया है। और दूसरे का प्रेम किसी दूसरे के काम का नहीं है। वह अनुभूति अपने ही काम की है।

तो महावीर बिल्कुल ही अपने सत्य को उपलब्ध होते हैं, जो उन्हें उपलब्ध हुआ है, वह बहुतों को उपलब्ध हुआ होगा, बहुतों को उपलब्ध होता रहेगा। लेकिन उस उपलब्धि पर किसी व्यक्ति की कोई सील-मोहर नहीं लग जाती। यानी मैं अगर कल सुबह उठकर सूरज को देखूँ तो आप आकर मुझसे यह नहीं कह सकते हैं कि तुम बासी सूरज को देख रहे हो क्योंकि मैं भी इस सूरज को देख चुका हूँ। इसे करोड़ों लोग देख चुके हों तब भी सूरज बासी नहीं हो जाता आपके देखने से। और जब मैं देखता हूँ तब नया ही देखता हूँ। उतना ही ताजा, जितना ताजा आपने देखा होगा। सूरज पर कुछ बासे होने की छाप नहीं बन जाती। सत्य पर भी नहीं बन जाती।

ठीक है, प्रेम की चर्चा बहुत लोगों ने की है, बहुत लोग करते रहेंगे। लेकिन फिर भी जब कोई प्रेम को उपलब्ध होगा तब वह नया ही उपलब्ध

होगा। महावीर जब प्रेम को उपलब्ध हुए हैं, जिसे अहिंसा कहते हैं, तो वे नये ही उपलब्ध हुए हैं। सत्य के सम्बन्ध में तो नया पुराना नहीं होता लेकिन अनुभूति के सम्बन्ध में नया पुराना होता है और अभिव्यक्ति के सम्बन्ध में तो बहुत नया पुराना होता है। महावीर ने जो अभिव्यक्ति दी है अहिंसा को वह एकदम अनूठी और नयी है। शायद वैसी किसी ने भी पहले नहीं दी थी। अभिव्यक्ति नयी हो सकती है क्योंकि अभिव्यक्ति पुरानी पड़ जाती है। अब महावीर की अभिव्यक्ति भी पुरानी पड़ गई है। आज अगर मैं कुछ कहूँगा कल पुराना पड़ जाएगा। कल तो बहुत दूर है, अभी मैंने कहा और वह अभी पुराना हो गया।

अभिव्यक्ति नयी भी होती है, अभिव्यक्ति पुरानी भी पड़ जाती है। 'सत्य' न नया होता है और न पुराना पड़ता है। लेकिन फिर भी जब सत्य किसी व्यक्ति को उपलब्ध होता है तो एकदम नया ही उपलब्ध होता है—ताजा, युवा, अछूता, एकदम कुँवारा। इसलिए जिसको उपलब्ध होता है, वह अगर चिल्ला कर कहता है कि नया सत्य मिल गया तो उस पर नाराज भी नहीं होना है। क्योंकि उसे ऐसा ही लगा है। उसके जीवन में पहली बार ही यह सूरज निकला है। किसी और के जीवन में निकला हो, इससे कोई सम्बन्ध ही नहीं है। उसे बिल्कुल ही नया हुआ है। वह एकदम ताजा हो गया है उसके स्पर्श से कि वह चिल्लाकर कह सकता है कि यह बिल्कुल नया है।

शास्त्रों में भी खोजी जा सकती है वह बात जो उसे हुई है। और शास्त्र का अधिकारी कह सकता है कि क्या नया है? यह तो हमारी किताब में लिखा है। मगर सारी किताबों में भी लिखा हो तब भी जब व्यक्ति को सत्य मिलेगा तो उसकी प्रतीति ताजे की, नये की उपलब्धि की ही होगी। उसे हम यों भी कह सकते हैं कि सत्य सदा जीवन्त है, ताजा और नया है। यह हमारे कहने की दृष्टि पर निर्भर करता है कि हम क्या कहते हैं।

मेरी अपनी समझ यह है कि प्रत्येक व्यक्ति को सत्य नया ही उपलब्ध होता है। सत्य सदा से है लेकिन जब कोई व्यक्ति सत्य से सम्बन्धित होता है तब सत्य उसके लिए नया हो जाता है और प्रत्येक व्यक्ति की अनुभूति जिसे वह अभिव्यक्त करता है नयी होती है क्योंकि वैसी अभिव्यक्ति कोई दूसरा नहीं दे सकता क्योंकि वैसा कोई दूसरा व्यक्ति न हुआ है, न है, न हो सकता है।

अब हम कितनी साधारण सी बात समझते हैं एक व्यक्ति का पैदा होना। मेरे पैदा होने में या आपके पैदा होने में कितना बड़ा जगत् सम्बन्धित है, इसका

हमें कोई ख्याल नहीं है। मेरे पैदा होने में आज तक, इस समय के बिन्दु तक, विश्व की जो भी स्थिति थी, वह सबकी सब जिम्मेदार है और अगर मुझे फिर से पैदा करना हो तो ठीक इतनी ही विश्व की स्थिति पूरी की पूरी पुनरुक्त हो तो ही मैं पैदा हो सकता हूँ, नहीं तो पैदा नहीं हो सकता। मेरे पिता चाहिए, मेरी माँ चाहिए। वे भी उन्हीं पिताओं और माताओं से पैदा होने चाहिए जिनसे वे पैदा हुए।

इस तरह हम पीछे लौटते चले जाएँगे तो हम पाएँगे कि पूरी विश्व की स्थिति एक छोटे से व्यक्ति के पैदा होने में संयुक्त है, जुड़ी हुई है। और अगर इसमें एक इंच भी इधर-उधर हो जाए तो मैं पैदा नहीं हो सकूँगा। जो भी पैदा होगा, वह कोई दूसरा होगा। और अगर मुझे पैदा करना हो तो इतने जगत् का पूरा का पूरा अतीत फिर से पुनरुक्त हो तभी मैं पैदा हो सकता हूँ। इसकी कोई सम्भावना नहीं दिखाई पड़ती। यह कैसे पुनरुक्त होगा? तो एक व्यक्ति को दुबारा पैदा नहीं किया जा सकता। और इसलिए एक व्यक्ति के अनुभव को, उसकी अभिव्यक्ति को भी दुबारा पैदा नहीं किया जा सकता। इस अर्थ में अगर हम देखते चले तो सत्य का अनुभव व्यक्तिगत है। वह एकदम एक ही अनुभव प्रत्येक को भिन्न-भिन्न होता है।

रवीन्द्रनाथ ने लिखा है कि एक बूढ़ा आदमी था जो मेरे पड़ोस में रहता था। पिता के दोस्तों में एक था जो अक्सर उनके पास आता और मुझे बहुत परेशान करता। जब मैं आत्मा, परमात्मा की कविताएँ लिखता तो वह खूब हँसता और हाथ पकड़ कर हिला देता कि क्या ईश्वर का अनुभव हुआ है, क्या ईश्वर को देखा है और इतना खिल-खिल कर हँसता कि उस आदमी से डर पैदा हो जाता। और वह कहीं सड़क पर मिल जाता तो बचकर निकल जाता क्योंकि वह वहीं पकड़ लेता। अनुभव हुआ है ईश्वर का? ईश्वर को देखा है? और मेरी हिम्मत न पड़ती कहने की कि सच में अनुभव क्या हुआ है। कविताएँ लिख रहा था। वह आदमी बहुत ज्यादा परेशान करने लगा था।

एक बार वर्षा के दिन मैं घर के बाहर समुद्र की तरफ गया। सूरज निकला है। सुबह का वक्त है। समुद्र के जल पर भी सूरज का प्रतिबिम्ब बना है। रास्ते के किनारे जो गन्दे पानी के गड्ढे बने हैं उनमें भी सूरज का प्रतिबिम्ब बना है। लौटते वक्त मुझे अचानक ऐसा लगा कि सागर का जो प्रतिबिम्ब है और इस गन्दे गड्ढे में जो प्रतिबिम्ब है इन दोनों में कोई भेद नहीं है। मुझे लगा कि प्रतिबिम्ब को गंदा गड्ढा कैसे छू सकता है? प्रतिबिम्ब कैसे गंदा

होगा ? वह चाहे शुद्ध जल में बने, चाहे गंदे जल में वह तो वही है। लेकिन फिर भी सागर में वह और दिखाई पड़ रहा है, गंदे डबरे में और दिखाई पड़ रहा है।

उस दिन मैं इतनी खुशी से लौटा कि रास्ते पर जो भी मिला मैं आनन्द से भर गया। मैं उसे गले लगाता, आलिंगन करता। वह आदमी भी मिल गया जिससे मैं बचकर निकलता था। मुझे पहली बार लगा कि वह आदमी भी ईश्वर है। और आज मैंने उसे भी गले लगा लिया। उस आदमी ने कहा ठीक है, अब मैं पहचाना कि तुझे अनुभव हो गया है, अब नहीं पूछूंगा। क्योंकि जब मैं तेरे पास आता था तो तू ऐसे बचता था मुझसे कि मुझे लगता था कि इसको कैसे ईश्वर का अनुभव हुआ होगा। मैं भी तो ईश्वर ही हूँ। अगर ईश्वर का अनुभव हो गया है तो अब किससे बचना है, किससे भागना है ? अब तुझे अनुभव हो गया, अब ठीक है। अब मैं देखता हूँ तेरी आँख में। तीन दिन तक यह हालत रही। आदमी चुक गए तो गाय, भैंस, घोड़े जो भी मिल जाते, उनसे भी गले लगता। वे भी चुक जाते तो वृक्षों के गले लगता। तीन दिन यह अवस्था थी। उन तीन दिनों में जो जाना बस फिर वह जीवन भर के लिए सम्पदा बन गया। सब चीज में वही दिखाई पड़ने लगा।

यह एक छोटी सी घटना है। गंदे डबरे में बना हुआ प्रतिबिम्ब सागर में बने हुए प्रतिबिम्ब से भिन्न थोड़े ही हो जाएगा। वह तो वही है। फिर भी, सागर का प्रतिबिम्ब सागर का ही है, गड्ढे का गड्ढे का है। महावीर में जो प्रतिबिम्ब बनेगा सत्य का, वह वही है जो मुझ में बने, आप में बने, किसी में बने। लेकिन फिर भी महावीर का महावीर का होगा, मेरा मेरा होगा, आपका आपका होगा। चाँद वही है, सूरज वही है, सत्य वही है, प्रतिबिम्ब भी वही है। लेकिन जिन-जिन में बनता है, वह अलग-अलग है। और फिर जब वे उसकी अभिव्यक्ति देने जाते हैं तब और अलग हो जाते हैं। महावीर के पहले भी चर्चा थी प्रेम की और बाद में भी रहेगी। लेकिन महावीर में जो प्रतिबिम्ब बना है, वह निपट महावीर का है। वैसा प्रतिबिम्ब न कभी बना था, न बन सकता है।

प्रश्न : क्या आप मत-मतान्तरों के पक्षपाती हैं ? क्या बुद्ध के बौद्ध, महावीर के जैन, ईसा के ईसाई आदि सम्प्रदाय समाप्त करके एक मानव धर्म की स्थापना नहीं की जा सकती ?

उत्तर : मैं मत-मतान्तरों का तनिक भी पक्षपाती नहीं हूँ। न कोई जैन है, न कोई बौद्ध है, न कोई हिन्दू है, न कोई ईसाई है, न कोई मुसलमान है।

दुनिया में दो तरह के ही लोग हैं सिर्फ—धार्मिक और अधार्मिक। जो धार्मिक है, वह बुद्ध हो सकता है, महावीर हो सकता है, कृष्ण हो सकता है, क्राइस्ट हो सकता है। लेकिन वह हिन्दू, जैन, मुसलमान और ईसाई नहीं हो सकता। धार्मिक व्यक्ति वही हो पाता है जो बुद्ध और महावीर हो सकता है। अधार्मिक व्यक्ति न बुद्ध हो पाता है न महावीर हो पाता है। वह जैन हो जाता है और बुद्ध हो जाता है। अधार्मिक आदमियों के सम्प्रदाय हैं। धार्मिक आदमी का कोई सम्प्रदाय नहीं।

इसे ऐसा भी कह सकते हैं कि धर्म का कोई सम्प्रदाय नहीं है, सब सम्प्रदाय अधर्म के हैं। अधार्मिक आदमी महावीर होने की हिम्मत नहीं जुटा पाता, जीसस नहीं हो सकता, बुद्ध नहीं हो सकता, कृष्ण नहीं हो सकता। अधार्मिक आदमी क्या करे? अधार्मिक आदमी भी धार्मिक होने का मजा लेना चाहता है लेकिन धार्मिक नहीं हो सकता क्योंकि धार्मिक हो जाना एक बड़ी क्रान्ति से गुजरना है। तब वह एक सस्ता रास्ता निकाल लेता है। वह कहता है कि महावीर तो हम नहीं हो सकते लेकिन जैन तो हो सकते हैं। वह कहता है कि महावीर को हम मान तो सकते हैं, अगर महावीर नहीं हो सकते। मानने में तो कोई कठिनाई नहीं है। हम महावीर के अनुयायी तो हो सकते हैं। तो हम जैन हैं। लेकिन उसे पता नहीं कि जिन हुए बिना कोई जैन कैसे हो सकता है? जिसने जीता नहीं सत्य को वह जैन कैसे हो सकता है? महावीर इसलिए जिन हैं क्योंकि उन्होंने सत्य को जीता है। यह इसलिए जैन है कि यह महावीर को मानता है।

जागे बिना कोई बौद्ध कैसे हो सकता है? बुद्ध जागकर बुद्ध हुए हैं। बुद्ध का अर्थ है जागा हुआ यानी जो जाग गया। बुद्ध को जगाना पड़ा बुद्ध होने के लिए लेकिन हम जागने की हिम्मत नहीं जुटा पाते तो हम बुद्ध को मान लेते हैं और बौद्ध हो जाते हैं। जीसस को सूली पर लटकाना पड़ा था क्राइस्ट होने के लिए लेकिन सूली पर लटकना बहुत मुश्किल है। हम एक सूली बना लेते हैं लकड़ी की, चाँदी की, सोने की, गले में लटका लेते हैं और क्रिश्चियन हो जाते हैं। ये तरकीबें हैं धार्मिक होने से बचने की।

सम्प्रदाय तरकीबें हैं धार्मिक होने से बचने की। धर्म का कोई सम्प्रदाय नहीं है। धार्मिक आदमी का कोई पक्ष नहीं है। सब अधार्मिक आदमी के झगड़े

हैं। मेरा तो कोई पक्ष नहीं, कोई मत नहीं। महावीर से मुझे प्रेम है, इसलिए मैं महावीर की बात करता हूँ; बुद्ध से मुझे प्रेम है, मैं बुद्ध की बात करता हूँ; कृष्ण से मुझे प्रेम है, मैं कृष्ण की बात करता हूँ; क्राइस्ट से मुझे प्रेम है, मैं क्राइस्ट की बात करता हूँ। मैं किसी का अनुयायी नहीं हूँ। किसी का मत चलना चाहिए, इसका भी पक्षपाती नहीं हूँ। इस बात का जरूर आग्रह मन में है कि इन सबको समझा जाना चाहिए। क्योंकि इन्हें समझने से बहुत परोक्षरूप से हम अपने को समझने में समर्थ होते चले जाते हैं। इनके पीछे चलने से कोई कहीं नहीं पहुँच सकता। लेकिन इन्हें अगर कोई पूरी तरह से समझ ले तो स्वयं को समझने के लिए बड़े गहरे आधार उपलब्ध हो जाते हैं।

दूसरी बात यह है कि क्या मानवधर्म की स्थापना नहीं की जा सकती। यह सब नासमझी की बातें हैं। दुनिया में कभी एक धर्म स्थापित नहीं हो सकता। असल में सभी धर्मों ने यह कोशिश की है। और इस कोशिश ने इतना पागलपन पैदा किया जिसका कोई हिसाब नहीं। इस्लाम भी यही चाहता है कि एक ही धर्म—इस्लाम—स्थापित हो जाए। ईसाई भी यही चाहते हैं कि उन्हीं का धर्म स्थापित हो जाए। बौद्ध भी यही चाहते हैं। जैन भी यही चाहेंगे कि उन्हीं का धर्म रह जाए। मानवधर्म वही होगा जो उनका धर्म है। अपने धर्म को वह मानव मात्र का धर्म बना लेना चाहते हैं। यह कोशिश असफल होने को बनी हुई है। क्योंकि मनुष्य-मनुष्य इतना भिन्न है कि कभी एक धर्म होना असम्भव है। धार्मिकता हो सकती है एक में। इस दोनों बातों के भेद को भी समझ लीजिए।

मैं किसी मानव धर्म के पक्ष में नहीं हूँ। क्योंकि अगर मैं मानव धर्म की कोशिश में लगूँ तो वह सिर्फ हजार धर्मों में एक हजार एक और होगा। इससे ज्यादा कुछ नहीं होगा। सभी धर्म मानव-धर्म की आवाज लेकर आए और मनुष्य का एक धर्म स्थापित करने की चेष्टा की लेकिन उन्होंने एक की संख्या और बढ़ा दी और कोई अन्तर नहीं पड़ सका। मेरी दृष्टि यह है कि मानव धर्म एक हो यह बात ही बेमानी है। धार्मिकता हो जीवन में। धार्मिकता के लिये किसी संगठन की जरूरत नहीं कि सारे मनुष्य इकट्ठे हों, एक ही मस्जिद में, एक ही मन्दिर में, एक ही झंडे के नीचे। यह सब पागलपन की बातें हैं। धर्म का इनसे कोई लेना-देना नहीं। हाँ पृथ्वी धार्मिक हो इसकी चेष्टा होनी चाहिए। मनुष्य धार्मिक हो इसकी चेष्टा होनी चाहिए। कोई एक मनुष्य धर्म निर्मित करता है तो फिर वहीं पागलपन शुरू होगा और फिर एक सम्प्रदाय खड़ा होकर

नया उपद्रव करेगा और कुछ भी नहीं कर सकता है। तो मैं किसी मानव धर्म को स्थापित करने की चेष्टा में नहीं हूँ।

मेरी चेष्टा कुल इतनी है कि धार्मिकता क्या है, धार्मिक होने का मतलब क्या है। यह साफ हो जाए और जगत् में धार्मिक होने की आकांक्षा जग जाए। और फिर जिसको जिस ढंग से धार्मिक होना हो वह हो जाए। वह कैसी टोपी लगाए, वह चोटी रखे कि दाढ़ी रखे, वह कपड़े गेरुए पहने कि सफेद पहने, मन्दिर में जाए कि मस्जिद में, पूरब में हाथ जोड़े कि पश्चिम में, यह एक-एक व्यक्ति की स्वतन्त्रता होगी। इसके लिए कोई संगठन, कोई शास्त्र, कोई परम्परा आवश्यक नहीं है। मैं इस चेष्टा में नहीं हूँ कि एक मानव धर्म स्थापित हो, मैं इस चेष्टा में हूँ कि धर्मों के नाम से सम्प्रदाय बिदा हो जाएँ। बस वह जगह खाली कर दें। उनकी कोई जगह न रह जाए।

आदमी हो, सम्प्रदाय न हो, और आदमी को धार्मिक होने की कामना पैदा हो, उसका प्रयास हो, फिर हर आदमी अपने ढंग से धार्मिक हो और जिसको जैसा ठीक लगे वैसा हो। सिर्फ धार्मिक होने की बात समझ में आ जाए, उतनी बात ख्याल में आ जाए तो दुनिया में धार्मिकता होगी, सम्प्रदाय नहीं होंगे। लेकिन कोई मानव धर्म नहीं बन जाएगा। धार्मिकता होगी। और एक-एक व्यक्ति अपने-अपने ढंग से धार्मिक होगा। और जगत् में दो तरह के लोग रह जाएँगे—धार्मिक और अधार्मिक। अधार्मिक होंगे वे जो धार्मिक होने के लिए राजी नहीं हैं।

लेकिन मेरी दृष्टि यह है कि अगर सम्प्रदाय मिट जाएँ तो अधार्मिक आदमी बहुत कम रह जाएँगे क्योंकि बहुत से लोग इसलिए अधार्मिक हैं कि साम्प्रदायिक लोगों की मूर्खताएँ देखकर वे धर्म के साथ खड़े होने को राजी नहीं हैं। कोई बुद्धिमान आदमी इनके साथ खड़ा नहीं हो सकता। ये बुद्धुओं की इतनी बड़ी जमाते हैं कि इनमें बुद्धिमान आदमी का खड़ा होना मुश्किल है। तो वह अन्ततः अधार्मिक दिखने लगता है। खोजबीन की जाए तो शायद पता चले कि उसके धार्मिक होने की अभिलाषा इतनी तीव्र थी कि इसमें से कोई उसे तृप्त नहीं कर सका। इसलिए वह अलग खड़ा हो गया।

अगर सम्प्रदाय मिट जाएँ तो दुनिया में धार्मिक आदमी के प्रति विरोध भी विलीन हो जाएगा। और धार्मिकता इतने आनन्द की बात है कि असम्भव है ऐसा आदमी खोजना जो धार्मिक होना न चाहता हो। लेकिन धार्मिकता बननी

चाहिए स्वतन्त्रता। धार्मिकता बननी चाहिए सहजता। धार्मिकता बननी चाहिए सद्‌विचार, विवेक। धार्मिकता न हो पाखंड, न हो दमन, न हो जबर-दस्ती, न हो जन्म से, न हो क्रिया-काण्ड से। धार्मिकता हो मन से, समझ से, तो पृथ्वी पर धर्म होगा—लेकिन मानव धर्म नहीं।

कोई आदमी अपने को क्या करता है, इससे क्या प्रयोजन है? यह सवाल नहीं है। वह कैसी प्रार्थनाएँ करता है यह सवाल नहीं है। वह किससे प्रार्थना करता है यह सवाल नहीं है। वह प्रार्थनापूर्ण है यह सवाल है। वह आदमी किस शास्त्र को सत्य कहता है, किस परम्परा को सत्य कहता है यह बात व्यर्थ है। सार्थक बात यह है कि वह आदमी किस सत्य के अन्वेषण में संलग्न है, किस प्रकार के प्रेम को, ईसाइयत के प्रेम को, जैनियों की अहिंसा को, बौद्धों की करुणा को ढूंढने में लगा है, किस का शोरगुल मचाता है, किसका नारा लगाता है यह सवाल नहीं है। सवाल यह है: क्या वह आदमी प्रेमपूर्ण है? क्या वह आदमी अहिंसक है? क्या उस आदमी में करुणा है? करुणा का कोई लेबल हो सकता है? प्रेम पर कोई छाप हो सकती है? कैसा प्रेम? किताबें हैं ऐसी जिनके शीर्षक हैं: ईसाई प्रेम। अब ईसाई प्रेम क्या बला होगी? क्या मतलब होगा ईसाई प्रेम का? प्रेम हो सकता है। मगर ईसाई प्रेम क्या?

मैं किसी मानव धर्म के लिए चेष्टारत नहीं हूँ, पुरानी दो तरह की चेष्टाएँ हैं, दोनों असफल हो गई हैं। एक चेष्टा यह है कि किसी एक धर्म ने कोशिश की कि वह सबका धर्म बन जाए। वह सफल नहीं हो सकी। उससे बहुत रक्त-पात हुआ, बहुत उपद्रव फैला। फिर उससे हार कर दूसरी चेष्टा हुई कि सब धर्मों में जो सारभूत है, उसको निकाल कर, निचोड़ कर इकट्ठा कर लिया जाए। थियोसाफी ने वह प्रयोग किया कि सब धर्मों में जो-जो महत्त्वपूर्ण है, सबको निकाल लो।

प्रश्न: अकबर ने भी किया था?

उत्तर: हाँ, अकबर ने भी किया था। अकबर ने भी दीने इलाही की शक्ल में उसकी कोशिश की। अकबर भी असफल हुआ, थियोसॉफी भी असफल हुई वह भी सम्भव नहीं हो सका। वह कोशिश भी इसलिए असफल हुई कि उसने भी सब सम्प्रदायों को मान्यता दे दी थी। यानी यह तो कहा नहीं कि साम्प्रदायिक होना भूल है, उसने कहा कि साम्प्रदायिक होने में कोई भूल नहीं है। तुम्हारे पास भी सत्य है वह भी हम ले लेते हैं। कुरान से भी, बाइबल से

भी, हिन्दू से भी, मुसलमान से भी—सबसे ले लेते हैं। सबको जोड़कर हम एक मानव धर्म बना लेते हैं। उससे कोई सम्प्रदाय खंडित न हुआ। सम्प्रदाय अपनी जगह खड़े रहे और थियोसॉफी एक नया सम्प्रदाय बन गई। उससे कुछ फर्क नहीं पड़ा। थियोसॉफिस्ट का अपना-अपना मन्दिर, अपनी व्यवस्था हो गई। थियोसॉफिस्ट का अपनी पूजा का ढंग अपना हिसाब हो गया। एक नया धर्म खड़ा हो गया। उसका अपना तीर्थ बना, अपना सब हिसाब हुआ। लेकिन उससे किसी पुराने सम्प्रदाय को कोई चोट नहीं पहुँची।

दो कोशिशें की गईं। एक, धर्म सर्वग्राही हो जाए, वह नहीं हुआ। दूसरा, सभी धर्मों में जो सार है उसको इकट्ठा कर लिया जाए, वह भी नहीं हो सका। अब मैं आपको तीसरी दिशा सुझाना चाहता हूँ और वह यह कि सम्प्रदाय मात्र का विरोध किया जाए; सम्प्रदाय मात्र को विसर्जित किया जाए और धार्मिकता की स्थापना की जाए—धर्म की नहीं, धार्मिकता की। अगर वह सम्भव हो सका तो मानव धर्म तो नहीं बनेगा, कोई एक धर्म, एक चर्च नहीं होगा, एक पोप नहीं होगा, एक झंडा नहीं होगा लेकिन फिर भी; बहुत गहरे अर्थों में मानव धर्म स्थापित हो जाएगा। उस गहरे अर्थ पर ही मेरी दृष्टि है।

२४

प्रश्नोत्तर-प्रवचन

प्रश्न : जब आत्मा अमर है, ज्ञानस्वरूप है, फिर वह कैसे अज्ञान में गिरती है, कैसे बन्धन में गिरती है, कैसे शरीर लेती है ? जबकि शरीर छोड़ना है, शरीर से मुक्त होना है तो यह कैसे सम्भव हो पाता है ?

उत्तर : यह सवाल महत्त्वपूर्ण है और बहुत ऊपर से देखे जाने पर समझ में नहीं आ सकता। थोड़ा भीतर गहरे झांकने से बात स्पष्ट हो जाती है कि ऐसा क्यों होता है। जैसे इस कमरे में आप हैं और आप इस कमरे के बाहर कभी नहीं गए, बड़े आनन्द में हैं, बड़े सुरक्षित हैं, न कोई भय, न कोई अंधकार, न कोई दुःख। लेकिन इस कमरे के बाहर आप कभी नहीं गए। तो इस कमरे में रहने की दो शर्तें हो सकती हैं। एक तो यह कि आपको इस कमरे से बाहर जाने की स्वतन्त्रता ही नहीं है। यानी आप जाना भी चाहें तो नहीं जा सकते। आप परतंत्र हैं इस कमरे में रहने को। एक तो शर्त यह हो सकती है। दूसरी शर्त यह हो सकती है कि अगर आप परतंत्र हैं बाहर जाने के लिए तो आपका सुख, आपकी शांति, आपकी सुरक्षा सभी थोड़े दिनों में आपको कष्टदायी हो जाएगी क्योंकि परतंत्रता से बड़ा कष्ट और कोई भी नहीं है। अगर आपको सुख में रहने के लिए बाध्य किया जाए तो सुख भी दुःख हो जाएगा। एक आदमी को हम कहें कि हम तुम्हें सारे सुख देते हैं सिर्फ स्वतंत्रता नहीं, यानी यह भी स्वतंत्रता नहीं कि अगर तुम चाहो तो उन सुखों को भोगने से इन्कार कर सको, तुम्हें भोगना ही पड़ेगा तो वह सुख भी दुःख में बदल जाएगा। परतंत्रता बड़ा दुःख है। वह सारे सुखों को मिट्टी करी देती है। अगर यह शर्त हो इस कमरे के भीतर रहने की कि बाहर नहीं जा सकते, सुख नहीं छोड़ सकते तो यह सब सुख दुःख हो जाएंगे और बाहर निकलने की प्यास

इतनी तीव्र हो जाएगी, दुःख इतना गहरा हो जाएगा जिसका हिसाब लगाना मुश्किल है। और यह शर्त कि बाहर नहीं जा सकोगे, अनिवार्य रूप से बाहर ले जाने का कारण बनेगी। यह भी हो सकता है कि फिर बाहर दुःख हो, लेकिन फिर भी आप भीतर आना पसन्द न करें। क्योंकि भीतर से बाहर जाने की कोई आशा नहीं है। एक स्थिति यह है।

दूसरी स्थिति यह है कि आप को पूरी स्वतंत्रता है कि आप बाहर जाएँ, या भीतर रहें। लेकिन आप कभी बाहर नहीं गए हैं। आपने भीतर के सब सुख, सब शान्ति, सब ज्ञान जाना है। लेकिन बाहर अज्ञान है और आप बाहर जाते हैं और जाएँगे तभी आप जान सकेंगे कि बाहर क्या है। जाएँगे जानने के लिए, यात्रा करेंगे, भटकेंगे, दुःख भोगेंगे तो फिर वापस लौटेंगे। और जब आप वापस आएँगे तो पहले का सुख आपको करोड़ गुना ज्यादा मालूम पड़ेगा क्योंकि बीच में दुःख का एक अनुभव है। पीड़ा से आप गुजरे हैं। हो सकता है कि पहले उस कमरे के भीतर के सुख आपको सुख भी न मालूम पड़े हों क्योंकि आपको कोई दुःख न था। और प्रकाश आपको प्रकाश न मालूम पड़ा हो क्योंकि आपने अँधेरा ही नहीं देखा। अब जब आप बाहर के जगत् से वापस लौटते हैं तो आप जानते हैं कि प्रकाश क्या है क्योंकि आपने अँधेरा जाना है, क्योंकि आपने पीड़ा जानी है, इसलिए आप अब आनन्द को पहचानते हैं तो पहले का सुख रहा भी होगा तो भी बोधपूर्वक न रहा होगा। जागृत नहीं हो सकते हैं उसके प्रति आप। आप मूर्छित ही रहे होंगे। उस सुख में भी मूर्छित रहे होंगे। लेकिन जब बाहर के सारे दुःखों को झेलकर, कठिनाइयों से वापिस कदम उठा-उठा कर अपने घर पर पहुँचते हैं तो आप सचेतन पहुँचते हैं।

यानी मेरा कहना यह है कि आत्मा उसी अवस्था में पुनः पहुँचती है जिस अवस्था में वह थी। इस संसार की पूरी यात्रा उसे किसी नयी जगह पहुँचा देती। लेकिन इस यात्रा के बाद पहुँचना अनुभव को सचेतन, गहरा व अद्‌भुत बना देती है। यानी वही स्थिति अब मोक्ष मालूम होती है। वह स्थिति तब भी थी लेकिन तब वह मोक्ष न थी। हो सकता है कि तब वह बन्धन जैसी मालूम पड़ी हो क्योंकि आपके विपरीत कोई अनुभव न था। आत्मा स्वतन्त्र है, स्वयं के बाहर जाने के लिए। इसके लिए कोई परतंत्रता नहीं है। आत्मा स्वतन्त्र है भटकने के लिए और जहाँ भूल करने की स्वतंत्रता न हो वहाँ स्वतन्त्रता नहीं। भूल करने की स्वतंत्रता गहरी से गहरी स्वतंत्रता है।

आत्मा स्वतंत्र है पहली बात। यानी आत्मा अमर है, आत्मा ज्ञानपूर्ण है, उतना ही गहरा यह सत्य भी है कि आत्मा स्वतंत्र है। उस पर कोई परतंत्रता नहीं है। स्वतंत्रता का मतलब है कि वह चाहे तो सुख उठाए चाहे तो दुःख उठाए, चाहे तो ज्ञान में जिए चाहे तो अंधकार में खो जाए, चाहे तो वासना में जिए और चाहे तो वासना से मुक्त हो जाए। स्वतंत्रता का मतलब है कि दोनों मार्ग उसके लिए बराबर खुले हैं। और इसलिए बहुत अनिवार्य है कि स्वतंत्रता की यह सम्भावना उसे उन स्थितियों में ले जाएगी जो दुःखदायी हैं। और तभी उस अनुभव से आप वापिस लौट सकते हैं।

तो मैंने जैसा कहा कि निगोद वह स्थिति है जहाँ उन्होंने कोई विपरीत अनुभव नहीं किया है। निगोद वह स्थिति है जहाँ उन्होंने स्वतंत्रता का उपयोग नहीं किया है। इसलिए निगोद एक परतंत्रता की स्थिति है। संसार वह स्थिति है जहाँ आत्मा ने स्वतंत्रता का उपयोग करना शुरू किया है। वह भटकी है, उसने भूलें की हैं, उसने दुःख पाए हैं, उसने शरीर ग्रहण किए हैं, उसने न मालूम कितने प्रकार के शरीर ग्रहण किये हैं। उसने हजारों तरह की वासनाएँ पाली और पोसी हैं और प्रत्येक वासना के अनुकूल शरीरों को ग्रहण किया है—यह भी उसकी स्वतंत्रता है।

मैंने शरीर ग्रहण किया है तो यह मेरा निर्णय है। इसमें कोई दुनिया में धक्के नहीं दे रहा है कि तुम शरीर ग्रहण करो। यह मेरी परम स्वतंत्रता की सम्भावना का ही एक हिस्सा है कि मैं शरीर ग्रहण करूँ। फिर मैं कौन-सा शरीर ग्रहण करूँ? यह भी मेरी स्वतंत्रता है कि मैं चींटी बनूँ, कि मैं हाथी बनूँ, कि मैं आदमी बनूँ, कि मैं देवता बनूँ, कि मैं प्रेत बनूँ—मैं क्या बनूँ? यह भी सवाल मेरे ऊपर ही निर्भर है। इसके लिए भी कोई मुझे धक्के नहीं दे रहा है। लेकिन चूँकि मेरी आत्मा स्वतंत्र है, इसलिए मैं इन सारी चीजों का उपयोग कर सकता हूँ और उपयोग के बाद ही मैं इनसे मुक्त हो सकता हूँ। इसके पहले मुक्त भी नहीं हो सकता।

इसलिए निगोद में जो आत्मा है, वह मुक्त है। अमुक्त का कुल मतलब इतना है कि उसने स्वतंत्रता का उपयोग ही नहीं किया है। निगोद में आत्मा मूर्छित रहती है। मूर्छित का भी वही मतलब है। सचेतन वह मोक्ष में होगी। और सचेतन वह तभी होगी जब दुःख उठाएगी, पीड़ा उठाएगी, कष्ट भोगेगी, तभी सचेतन होगी। जब अपनी स्वतंत्रता का दुरुपयोग करेगी, तभी सचेतन होगी।

तो मैं कह रहा हूँ कि स्वतंत्रता आत्मा का मूलभूत हिस्सा है और स्वतंत्रता का अर्थ ही यह है मैं जहाँ जाना चाहूँ, मेरे ऊपर कोई बन्धन नहीं है। अगर मैं वासना में उतरना चाहूँ, तो मैं गहरी से गहरी वासना में उतर सकता हूँ। संसार की कोई भी शक्ति मुझे रोकने को नहीं है। बल्कि, चूँकि आत्मा स्वतन्त्र है इसलिए संसार की प्रत्येक शक्ति मुझे साथ देगी। मैं वासना में उतरना चाहता हूँ, संसार मुझे सीढ़ियाँ बना देगा। परमात्मा की सारी शक्तियाँ मेरे हाथ में मुझे उपलब्ध हो जाएँगी। मैं शरीर ग्रहण करूँ, कैसा शरीर ग्रहण करूँ, तो मेरी वासना जैसी होगी वैसा मैं शरीर ग्रहण कर लूँगा। यह सारी की सारी स्वतंत्रता का ही हिस्सा है। लेकिन जब यह शरीर ग्रहण करना, यह दुःख, यह पीड़ा, यह परेशानी, यह भटकन, यह अनन्त यात्रा, यह आवागमन, यह पुनरुक्ति, बार-बार यह चक्कर जब जोर पकड़ने लगेगा, जब कष्ट गहरा होगा तो मुझे कुछ न कुछ याद पड़ना शुरू हो जाएगा।

कोई घर जो मैंने कभी छोड़ दिया, यह जो हमें स्मृति है वह निगोद की है। यानी यह जो हमको स्मरण है कि कहीं कुछ भूल हो रही है, अशान्त नहीं होना, शान्त होना है, शान्ति अच्छी लगती है, अशान्ति बुरी लगती है, शान्ति में हम किसी क्षण में रह चुके हैं अन्यथा यह कैसे सम्भव था कि दुःख बुरा लगता है, आनन्द अच्छा लगता है, आनन्द की कोई गहरी स्मृति कहीं भीतर है जो कहती है कि वापस लौट चलो, वही अच्छा था। लेकिन उसको भी अनन्तकाल व्यतीत हो गया है इस यात्रा में गए हुए कि बहुत चित्र नहीं है कि हम कहाँ लौट जाएँ, क्या करें। लेकिन बार-बार ऐसा अनुभव होता है कि कहीं हम भूल में हैं, कहीं किसी विजातीय, किसी विदेशी जगत् में हैं। जहाँ हमें होना चाहिए, वहाँ हम नहीं हैं। कुछ न कुछ चीज कहीं और रखी गई है, ऐसा प्रतिपल प्रतीत होता रहता है। यह प्रतीति धर्म बनती है। इस प्रतीति की गहरी से गहरी जिज्ञासा फिर खोज बनती है उस जगह की जहाँ से हमने स्वतंत्रता का उपयोग शुरू किया था, उस बिन्दु की जहाँ हम थे और जहाँ से हम चल पड़े और अब हम फिर वापस लौटे हैं।

यह जो वापिस लौटना है, यह भी हमारा निर्णय है। यह उसी स्वतंत्रता का सहयोग है। हम वापिस लौटते हैं। हम उसी बिन्दु को जब फिर उपलब्ध होंगे तो यह बिन्दु यद्यपि वही होगी लेकिन हम बदल गए होंगे। इसे समझ लेना जरूरी है। उसी जगह हम फिर वापिस पहुँच जाएँगे जहाँ से हमने यात्रा शुरू की थी। लेकिन जब हम पहुँचेंगे, जगह वही होगी, हम बदल गए होंगे।

मुल्ला नसरुद्दीन के जीवन में एक बहुत अद्भुत घटना है। वह एक गाँव के बाहर बैठा हुआ है, अपने गाँव के बाहर एक झाड़ के नीचे। चाँदनी रात है। एक व्यक्ति उसके पास आया जिसने हजारों रुपयों से भरी थैली उसके सामने पटकी, और कहा: "नसरुद्दीन, मैं करोड़पति हूँ। मेरे पास रुपयों के अम्बार हैं। लेकिन सुख नहीं है। तो मैं सारी पृथ्वी पर घूम रहा हूँ कि सुख कैसे पाऊँ, कहाँ पाऊँ? और मुझे कहीं सुख नहीं मिला। हाँ लोगों ने मुझे बारम्बार कहा कि नसरुद्दीन से मिलो, शायद वह तुम्हें सुख का कोई रास्ता बता दे। तो मैं कैसे सुख पाऊँ। सब मेरे पास है लेकिन सुख नहीं है। मुझे कोई रास्ता बताओ।" नसरुद्दीन ने दो क्षण उसे देखा। आँख बन्द की। फिर एकदम से उठा और उसकी जो लाखों रुपयों की थैली थी, उसको लेकर भागा। वह आदमी चिल्ला कर उसके पीछे भागा कि नसरुद्दीन यह तुम क्या कर रहे हो? तुमसे ऐसी आशा न थी। यह तुम क्या कर रहे हो? तुम मेरा रुपया चुराकर भागे जा रहे हो।

नसरुद्दीन तेजी से भागा। गाँव उसका परिचित है। वह आदमी अपरिचित है। वह गली, कूचों में चक्कर देने लगा। आधी रात का वक्त है। गाँव सन्नाटे में है। वह आदमी चिल्लाता है। लोग उठते भी हैं तो भी किसी की समझ में नहीं आता कि क्या हो गया है। पूरे गाँव में चक्कर देकर नसरुद्दीन ने उस आदमी को थका मारा। वह चिल्ला रहा है कि हाय लुट गया! भगवान् बचाओ। मैं मर गया! अब मेरा क्या होगा? और वह भागता हुआ पूरे गाँव का चक्कर लगवा रहा है। आखिर वह नसरुद्दीन उसी झाड़ के नीचे आकर थैली को पटक कर खड़ा हो गया। वह आदमी आया, उसने थैली को हाथ लगाया और कहा: धन्यवाद! नसरुद्दीन ने कहा कि यह भी एक तरकीब है सुख पाने की। उसने कहा कि देख, यह थैली तेरे पास पहले भी थी। लेकिन तूने इसे ऐसे पटक दिया जैसे कि यह कचरा हो। यह थैली अब भी है। लेकिन बीच के अनुभव हैं। यह भी सुख पाने का एक तरकीब है। नसरुद्दीन ने कहा।

मेरी अपनी समझ यह है कि मोक्ष और निगोद में इतना ही फर्क है। जो थैली थी वह खो भी गई। थैली थी—यह निगोद है। यह मोक्ष की यात्रा का पहला बिन्दु है जहाँ हम थे। थैली खो भी गई—यह संसार है। थैली वापिस पा लेते हैं—यह मोक्ष है। और यह खो जाना बहुत अनिवार्य है। नहीं तो इस थैली में क्या है, इसका अर्थ ही भूल जाएँगे। यह खो देना अनिवार्य हिस्सा है

और खोकर जब आप दुबारा पाते हैं तब आपको पता चलता है कि आनन्द क्या है। निगोद में भी वही था, पर उसे खोना जरूरी था ताकि वह पाया जा सके। असल में जो मिला ही हुआ है, उसका हमें पता होना बन्द हो जाता है। जो हमें मिला ही हुआ है, धीरे-धीरे हम उसके प्रति अचेतन हो जाते हैं, मूर्छित हो जाते हैं क्योंकि उसे याद रखने की कोई जरूरत ही नहीं होती। ये सवाल ही मिट जाता है हमारे मन से कि वह है क्योंकि वह है हो। वह इतना है कि जब हम थे तब वह था। तो जरूरी है कि उसे फिर से सचेतन होने के लिए खो दिया जाए। संसार आत्मा की यात्रा में खोने का बिन्दु है। और वह भी हमारी स्वतंत्रता है।

पर निगोद और मोक्ष में, जमीन आसमान का फर्क है। बात बिल्कुल एक ही है। लेकिन निगोद बिल्कुल मूर्छित है, मोक्ष बिल्कुल अमूर्छित है। और निगोद को मोक्ष बनाने की जो प्रक्रिया है, वह संसार है। यानी इस प्रक्रिया के बिना निगोद मोक्ष नहीं बन सकता। इसलिए अगर हम स्वतंत्रता के तत्त्व को समझ लें तो हमें सब समझ में आ जाएगा कि यह सारी यात्रा हमारा निर्णय है, यह हमारा चुनाव है। हमने ऐसा चाहा है, इसलिए ऐसा हुआ है। हमने जो चाहा है, वही हो गया है। कल अगर हम न चाहेंगे इसे तो यह होना बन्द हो जाएगा। परसों अगर हम बिल्कुल न चाहेंगे सब निर्णय छोड़ देंगे, तो वही संन्यास का अर्थ है। जब हम न चाहेंगे, हम छोड़ देंगे। हम नहीं चाहते हैं अब, हम वापिस लौटना शुरू हो जाएँगे। वही बिन्दु हमें फिर उपलब्ध होगी लेकिन हम बदल गए हैं।

इस खोने की यात्रा में हमने विपरीत का अनुभव किया होगा, हमने दरिद्रता जानी होगी। अब सम्पत्ति हमें सम्पत्ति मालूम पड़ेगी, आनन्द हमें आनन्द मालूम पड़ेगा। इसलिए प्रत्येक आत्मा के जीवन में यह अनिवार्य है कि वह संसार में घूमे और इसलिए कई बार ऐसा हो जाता है कि जो संसार में जितने गहरे उतर जाते हैं, जिनको हम पापो कहते हैं, वे उतनी ही तीव्रता से वापिस लौट आते हैं। और दूसरी ओर जो साधारण जन पाप भी नहीं करते, जो संसार में भी गहरे नहीं उतरते, वे शायद मोक्ष की ओर भी उतनी जल्दी नहीं लौटते क्योंकि लौटने में तीव्रता तभी होगी जब दुःख और पीड़ा भी तीव्र हो जाएगी। जब हम इतनी पीड़ा से गुजरेंगे कि लौटना जरूरी हो जाए—लेकिन अगर हम बहुत पीड़ा से नहीं गुजरे हैं तो शायद लौटना जरूरी न हो। जैसे वह थैली लेकर नसरुद्दीन भागा था—पूरी थैली लेकर भागा था। पीड़ा भारी थी। वह दो

रुपये लेकर भागा होता तो हो सकता है कि उस आदमी ने थैली बाँध ली होती और वह अपने घर चला गया होता कि ठीक है लेकिन तब इस थैली की उपलब्धि का वह रस नहीं हो सकता था क्योंकि थैली फिर वही की वही थी और आदमी फिर गाँव-गाँव में पूछता कि आनन्द का रास्ता क्या है ?

सुख कैसे मिले ? नसरूद्दीन ने कहा कि 'सुख को खोओ तो सुख मिलेगा।' अब यह बड़ा अजीब मालूम पड़ता है। जिसे पाना है, उसे खोओ क्योंकि अगर वह पाया ही हुआ है तो उसका पता ही नहीं चलेगा। तो संसार में हम वही खोते हैं जो हमें मिला हुआ है। मोक्ष में हम वही पाते हैं जो हमें मिला हुआ है। और यह सारा का सारा चक्र स्वतंत्रता के केन्द्र पर घूमता है। जितना ज्ञान, जितना आनन्द, उससे भी गहरी स्वतंत्रता—इसलिए मुक्ति की हमारी इतनी आकांक्षा है, बंधन का इतना विरोध है और हम मुक्त होना चाहते हैं लेकिन बन्धन को अनुभव कर लेंगे तभी।

प्रश्न : आत्मा स्वतन्त्र है। लेकिन वासना के कारण परतन्त्र हो रही है ?

उत्तर : वासना भी उसकी स्वतन्त्रता है। वासना को भी वही चुनती है, बंधन को भी वही चुनती है। यानी मैं स्वतन्त्र होकर चाहूँ तो हथकड़ी अपने हाथ में बांध लूँ। कोई मुझे रोकने वाला नहीं है। और इसके लिए भी स्वतन्त्र हूँ कि चाबी से ताला लगाकर चाबी को फेंक दूँ, कि उसको खोजना ही मुश्किल हो जाए। मैं इसके लिए भी स्वतन्त्र हूँ कि अपनी हथकड़ी पर सोना चढ़ा लूँ। लेकिन अन्तिम निर्णय मेरा ही है। यहाँ कोई किसी को परतन्त्र नहीं कर रहा है। हम होना चाहते हैं तो हो रहे हैं। हम नहीं होना चाहते तो नहीं होंगे।

बहुत गहरे में जो वासना का है वह भी हमारा चुनाव है। कौन तुमसे कहता है कि वासना करो। तुम्हें लगता है कि वासना को जानें, पहचानें, शायद उसमें भी सुख हो, तो उसे खोजें तो तुम यात्रा करो। यात्रा जरूरी है ताकि तुम जानो कि सुख वहाँ नहीं था और दुःख ही था। और अगर वासना का दुःख प्रकट हो जाएगा तो तुम वासना छोड़ दोगे। तब तुम्हें कोई रोकने नहीं आएगा कि क्यों वासना छोड़ी जा रही है। कोई तुम्हें कहने नहीं आएगा कभी कि क्यों तुम वासना पकड़ रहे हो।

मनुष्य की स्वतन्त्रता परम है और स्वतन्त्रता तभी पूर्ण है जब बुरा करने का भी हक हो। अगर कोई कहे कि अच्छा करने की स्वतन्त्रता है, बुरा करने

की नहीं तो स्वतन्त्रता कैसी है यह? एक बाप अपने बेटे से कहे कि तुझे मन्दिर जाने की स्वतन्त्रता है, वेश्यालय जाने की नहीं तो यह मन्दिर जाने की स्वतन्त्रता कैसी स्वतन्त्रता हुई? यह तो परतन्त्रता हुई। अगर आप कहें कि मन्दिर जाने की ही तुझे स्वतन्त्रता है बस तू मन्दिर ही जा सकता है, वेश्यालय जाने की स्वतन्त्रता नहीं है, वहाँ तू नहीं जा सकता तो यह स्वतन्त्रता कैसी हुई? यह मन्दिर जाने की स्वतंत्रता को स्वतन्त्रता का नाम देना झूठा है। यह बाप परतन्त्रता को स्वतन्त्रता के नाम से लाद रहा है। लेकिन अगर बाप स्वतन्त्रता देता है तो वह कहता है कि तुझे हक है कि तू चाहे तो मधुशाला जा, चाहे तो मन्दिर जा। तू अनुभव कर, सोच, समझ, जो तुझे ठीक लगे, कर। परम स्वतन्त्रता का मतलब होता है सदा भूल करने की स्वतन्त्रता भी।

प्रश्न : और हमें स्वतन्त्रता के कारण ही भूल होती है?

उत्तर : स्वतन्त्रता के कारण भूल नहीं होती।

प्रश्न : चुनाव बुरे का ही होता है?

उत्तर : यह जरूरी नहीं है। क्योंकि बुरे का चुनाव करने के बाद जिन्होंने भले का चुनाव किया है, वह भी उन्हीं का है। यानी जो मोक्ष गए हैं, मोक्ष जाने में वे उतना ही चुनाव कर रहे हैं जितना कि संसार में आकर वे चुनाव कर रहे हैं। असल में जो मन्दिर की ओर जा रहा है वह भी उसका चुनाव है; जो वेश्यालय की ओर जा रहा है वह भी उसका चुनाव है। जहाँ तक स्वतन्त्रता का सम्बन्ध है, दोनों बराबर हैं। स्वतन्त्रता का दोनों उपयोग कर रहे हैं। यह दूसरी बात है कि एक बन्धन बनाने के लिए उपयोग कर रहा है, एक बंधन तोड़ने के लिए उपयोग कर रहा है। यह बिल्कुल दूसरी बात है। और इसके लिए भी हमें स्वतन्त्रता होनी चाहिए कि अगर मैं बंधन ही बनाना चाहता हूँ और हथकड़ियाँ ही डालना चाहता हूँ तो दुनिया में मुझे कोई रोक न सके। नहीं तो वह भी परतंत्रता होगी। यानी मान लो कि मैं हथकड़ी डालकर बैठना चाहता हूँ, जंजीरें बाँधकर पैरों में और दुनिया मुझे कहे कि यह हम न करने देंगे तो यह परतंत्रता हो जाएगी क्योंकि हथकड़ियाँ डालने की मुझे स्वतंत्रता है। क्योंकि अन्तिम निर्णायक मैं हूँ और जो मैं कह रहा हूँ वह यह कि अगर सुख को जानना हो तो दुःख की स्वतन्त्रता भोगनी ही पड़ेगी। उसकी ही पृष्ठभूमि में सुख की सफेद रेखाएँ उभरेंगी। हम वहीं लौट आते हैं जहाँ से हम आते हैं लेकिन न तो हम वही रह जाते हैं, न वही बिन्दु

वही रह जाता है क्योंकि हमारी सब दृष्टि बदल जाती है। एक सन्त फिर बच्चा हो जाता है लेकिन एक बच्चा सन्त नहीं हो जाता।

प्रश्न : तो फिर मोक्ष की अवस्था में अगर वह वापिस आना चाहे—समझो करुणावश, फिर वह चुन सकता है, चुनाव तो फिर भी हो सकता है?

उत्तर : बिल्कुल चुनाव हो सकता है। लेकिन सिर्फ करुणावश ही। लेकिन फिर वह संसार में आता नहीं है। हमें दिखता भर है आया हुआ। यह भी समझ लेना जरूरी है कि हम जिस भाँति संसार में आते हैं फिर वह उस भांति संसार में नहीं आता।

मैंने पीछे कहीं एक वक्तव्य दिया है। जापान में एक फकीर था जो कुछ चोरी कर लेता और जेलखाने चला जाता। उसके घर के लोग परेशान थे। वे कहते थे कि हमारी बदनामी होती है तुम्हारे पीछे और तुम आदमी ऐसे हो कि तुम्हें प्रेम करना पड़ता है और तुम्हारे पीछे हम भी बदनाम होते हैं। अब तुम बूढ़े हो गए, अब तुम चोरी बंद करो। लेकिन फिर वह कहता है कि वह जो जेल में बंद हैं, उनको खबर कौन देगा कि बाहर कैसा मजा है। मैं उन्हें खबर देने जाता हूँ और कोई रास्ता नहीं इसलिए कुछ चोरी कर लेता हूँ और जेल चला जाता हूँ। और वहाँ जो बंद हैं उनको खबर देता हूँ कि बाहर स्वतन्त्रता कैसी है। उनको कौन खबर देगा अगर वहाँ चोर ही चोर जाते रहेंगे? लेकिन इस फकीर का जाना भिन्न है। और यह फकीर एक अर्थ में वहाँ जाता ही नहीं। क्योंकि यह चोरी चोरी के लिए नहीं करता। जब इसके हथकड़ियाँ डाली जाती हैं तब भी यह कैदी नहीं है और जब यह जेल में बंद किया जाता है तब भी यह कैदी नहीं है। यह कैद से बाहर का आदमी है बल्कि और कैदियों को भी मुक्त करने के ख्याल से आया हुआ है।

तो जब बुद्ध या महावीर या जीसस जैसा आदमी जमीन पर आता है तो हमें लगता है कि वह आया। सच में वह आता नहीं है। यह संसार अब उसके लिए संसार नहीं है। अब यह उसके अनुभव की यात्रा नहीं है। अब इसमें उसकी कोई पकड़ नहीं है, कोई जकड़ नहीं है। अब इसमें कोई रस नहीं है। इसमें कुल करुणा इतनी है कि वे जो और भटक रहे हैं उनको वह खबर दे जाए कि एक और लोक है जहाँ पहुँचना हो सकता है। यहाँ करुणावश उतरना हो सकता है। लेकिन यह करुणा अन्तिम वासना है क्योंकि अगर बहुत गौर से देखें तो करुणा में भी थोड़ा सा अज्ञान शेष है जिसको अज्ञान नहीं कह

सकते लेकिन जिसको ज्ञान भी नहीं कहा जा सकता। बहुत बारीक अज्ञान की रेखा शेष है। वह यह है कि किसी को मुक्त किया जा सकता है क्योंकि जो अपनी स्वतन्त्रता से अमुक्त हुए हैं उनको तुम कैसे मुक्त करोगे? कोई दुःख में है, यह भी अज्ञान है। क्योंकि वह दुःख उसके स्वयं का निर्णय है। और किसी को उसके समय के पहले वापिस लौटाया जा सकता है यह भी सम्भव नहीं। उसका अनुभव तो पूरा होगा ही। यानी अगर इस शर्त पर हम गौर करें तो करुणा अन्तिम वासना है। पर उसे वासना कहने में, अज्ञान कहने में भी बुरा लगता है। इसलिए वह एक आध बार जन्म ले सकता है, इससे ज्यादा नहीं। क्योंकि तब वह करुणा भी क्षीण हो जाएगी। वह भी जल जाएगी। वह भी विलीन हो जाएगी।

प्रश्न : यह बात आप कहते हैं कि समय के पहले नहीं लौटता है?

उत्तर : समय के पहले का मतलब यह नहीं है कि किसी का समय कोई तय है। समय के पहले का मतलब यह है कि उसका पूरा भोग हो जाए। समय के पहले का मतलब यह नहीं है कि एक तारीख तय है कि उस तारीख को तुम लौटोगे। तारीख तय नहीं है लेकिन तुम्हारा अनुभव तो पूरा हो जाए। उसके पहले तुम्हें नहीं लौटाया जा सकता।

प्रश्न : क्या मेरे पर ही निर्भर करता है कि कब लौटें?

उत्तर : बिल्कुल तुम पर ही निर्भर करता है, नहीं तो परतंत्र हो जाओगे तुम। फिर मुक्ति नहीं हो सकती तुम्हारी कभी भी। अगर किसी ने तुम्हें मुक्त कर दिया तो वह नयी तरह की परतंत्रता होगी। फिर तुम कभी मुक्त नहीं हो सकते। और इसलिए मैं कहता हूँ कि परम स्वतंत्रता है आत्मा को दुःख भोगने की, नरकों की यात्रा करने की, पीड़ाओं में उतरने की, ईर्ष्याओं में जलने की—सब में उतर जाने की उसे पूरी स्वतंत्रता है और कोई उसे लौटा नहीं सकता।

प्रश्न : उतरने की जरूरत क्या है वापस? जिन आत्माओं को करुणा की अन्तिम इच्छा रहती है वही उतरती हैं। सभी को उतरने की जरूरत नहीं है।

उत्तर : यही तो मैं कह रहा हूँ। उतरने की जरूरत नहीं है। लेकिन मैं यह कह रहा हूँ कि करुणा अन्तिम वासना है और यह उसका चुनाव है। यानी यह जो मैं कह रहा हूँ कि स्वतंत्रता, परम स्वतंत्रता है हमें। और अगर मैं आज मुक्त हो जाता हूँ और फिर भी लौट आना चाहता हूँ तो दुनिया में मुझे कोई

रोकने को नहीं है। यानी अगर मुझे ऐसा लगता है कि मैं आपके द्वार पर खटखटाऊँ यह भी जानते हुए कि किसी को जगाया नहीं जा सकता उसके पहले। यह भी हो सकता है कि मैं जानता होऊँ कि किसी को जागने के पहले जगाया नहीं जा सकता, सब की अपनी सुबह है और वक्त पर सबकी नींद पूरी होगी तभी वे जागेंगे और बीच में जगाना दुःखद भी हो क्योंकि वे फिर सो जाएँ, यानी नींद तो पूरी हो जानी चाहिए किसी की। मैं जाकर पाँच बजे उसका दरवाजा खटखटा दूँ और वह जाग भी जाए, करवट बदले और फिर सो जाए। और शायद पहले वह पाँच बजे उठा था, अब वह आठ बजे उठे क्योंकि यह बीच का जो अन्तर पड़ा, वह नुकसान दे जाए उसे।

आप जगेंगे कि नहीं, सवाल यह नहीं है। सवाल यह है कि मैं जाग कर जो आनन्द अनुभव कर रहा हूँ, वह मुझे परेशान किए जा रहा है। वह आनन्द मुझे कह रहा है : जाओ, किसी के द्वार खटखटा दो। यानी अब बहुत गहरे में हम समझें तो आप नहीं हैं केन्द्र करुणा के। यानी आप जगेंगे कि नहीं यह विचारणीय नहीं है। लेकिन जो जग गया है, वह एक ऐसे आनन्द को अनुभव करता है कि अन्तिम वासना उसकी यह होगी कि वह अपने प्रियजनों को खबर कर दे, भले ही प्रियजन उसको गाली दें कि बेवक्त नींद तोड़ दी, दुश्मन दरवाजा खटखटा रहा है।

बहुत गहरे में देखने पर पता चलेगा कि यह करुणा अपना चुनाव है। हमसे, आपसे कोई गहरा सम्बन्ध नहीं है। वासना भी अपना चुनाव है। जैसे समझ लें कि मैं आपको प्रेम करने लगू यह मेरा चुनाव है। जरूरी नहीं कि आप मुझसे प्रेम करें और जरूरी नहीं कि मेरे प्रेम से आपको आनन्द भी मिले। और हो सकता है कि मेरा प्रेम आपको दुःख दे और मेरा प्रेम आपको परेशानी में डाले। फिर भी मैं आपके लिए प्रेम से भरा हूँ। यह मेरी भीतरी बात है। और मैं प्रेम करूँगा और यह प्रेम आपके लिए क्या लाएगा, कुछ भी नहीं कहा जा सकता। हालाँकि मेरा प्रेम कोशिश करे कि आपके लिए हित आए, मंगल आए, लेकिन यह जरूरी नहीं।

करुणा को मैं कह रहा हूँ अन्तिम वासना। जिसकी सारी वासनाएँ क्षीण हो गईं, उस आदमी को आनन्द उपलब्ध हो गया। अन्तिम वासना एक रह जाती है कि वह आनन्द दूसरों को भी उपलब्ध हो जाए। अब अपने लिए पाने को कुछ भी शेष नहीं रहा। उसने आनन्द पा लिया। अब एक अन्तिम

वासना शेष रह जाती है कि यह आनन्द दूसरों को भी उपलब्ध हो जाए और वह भी एक तीव्र भाव है, हालांकि वह भी चुनाव है।

तो जरूरी नहीं कि सभी शिक्षक वापिस लौटें। इसलिए मैंने कहा कि यह मौज की बात है कि कोई सीधा चुपचाप विलीन हो सकता है मोक्ष में, कोई ठिठक जाए, वापिस लौट आए। हालांकि वह भी एक जन्म, दो जन्म के बाद विलीन हो जाएगा कहीं लेकिन वह अन्तिम उपाय कर सकता है। यह भी अज्ञान का ही हिस्सा है बहुत गहरे में, क्योंकि अगर पूर्ण ज्ञान हो तो यह बात भी खत्म हो जाने वाली है। जो जा रहा है, अपनी-अपनी स्वतंत्रता है, अपनी-अपरी यात्रा है। लेकिन वैसा पूर्ण ज्ञानी हमें कठोर मालूम पड़ेगा। क्योंकि राह चलता अगर कोई प्यासा पड़ा है तो शायद उसको पानी भी न दे। क्योंकि वह कहेगा, अपनी-अपनी यात्रा है। हालांकि वह तुम्हें कठोर मालूम पड़ेगा।

तो अपनी-अपनी यात्रा है। त्याग भी तुम्हारा चुनाव है, तुमने जो पीछे किया, जैसे जी हुआ, जैसे तुम चले, वैसे तुम पहुंचे। जब तक जरा सी क्षीण आत्मा है विशेष करुणा की जरूरत होगी और तब तक व्यक्तित्व रहेगा। पूर्ण वासना निषेध होने पर ही व्यक्तित्व विलीन हो जाता है। तो पूर्ण जैसा व्यक्ति तुम्हें बहुत कठोर मालूम होगा। यानी शायद हम समझ ही न पाएँ कि यह आदमी कैसा है? कोई आदमी कुएँ में डूब कर मर रहा होगा तो वह खड़ा देखता रहेगा। अपनी-अपनी यात्रा है, अपना-अपना चुनाव है। इसको पकड़ना मुश्किल हो जाएगा, इसको पहचानना मुश्किल हो जाएगा। कोई आदमी आग में हाथ डाल रहा होगा तो वह खड़ा देखता रहेगा कि अपना-अपना अनुभव है, अपना-अपना ज्ञान है; आग में हाथ डालोगे तो अनुभव होगा कि हाथ जलता है; तो मैं कह कर क्यों व्यर्थ बात करूँ? मेरे कहने से कुछ होगा नहीं; तुम जब हाथ डालोगे, तभी तुम जानोगे। और अगर बिना हाथ डाले तुमने जान लिया तो हो सकता है कि और कष्ट में तुम पड़ जाओ। क्योंकि मैं तुम्हें कह दूँ कि आग में डालने से हाथ जलता है और तुम मान जाओ लेकिन तुम्हारा अनुभव न हो, कल तुम्हारे घर में आग लग जाए और तुम सोचो कि कौन जलता है तो जिम्मेदार कौन होगा? यानी मैं ही हूँगा? इससे तो अच्छा होता कि तुम हाथ डाल लेते और जल जाते, कल तुम्हारे घर में आग लगती तो तुम निकल कर बाहर हो जाते क्योंकि तुम्हारा अनुभव काम करता।

अपना अनुभव ही काम करता है। और इसलिए व्यक्तित्व के विदा होने की जो अन्तिम वेला होगी उस वेला में करुणा प्रकट होगी। यह ऐसे ही है जैसे

सूर्यास्त की लालिमा है। कभी ख्याल ही नहीं किया कि सूर्यास्त की लालिमा का क्या मतलब है। सुबह भी लालिमा होती है। अभी सूरज बढ़ेगा और चढ़ेगा; अभी फैलेगा और विस्तीर्ण होगा, अभी जलेगा और तपेगा। अभी दोपहर पाएगा और जवान होगा। सुबह की लालिमा सिर्फ खबर है जन्म की। वह भी वासना है लेकिन विकासमान, फैलने वाली। साँझ को फिर आकाश लाल हो जाएगा। यह सूर्यास्त की लालिमा है लेकिन वह अन्तिम लालिमा है। लेकिन फैलने की नहीं, सिकुड़ने की है। अब सब सिकुड़ता जा रहा है। सूरज सिकुड़ रहा है, किरणें वापस लौट रही हैं, सूरज डूबता चला जा रहा है। लेकिन लौटती किरणें भी लालिमा फेंकेंगी, उगती किरणों ने भी फेंकी थीं और अगर किसी को पता न हो तो उगते और डूबते सूरज में भेद करना मुश्किल हो सकता है। अगर पता न रहा हो, एक आदमी दो चार दिन बेहोश रहा हो और एकदम होश में लाया जाए और उससे कहा जाय कि सूरज डूब रहा है कि उठ रहा है तो उसे थोड़ा वक्त लग जाएगा क्योंकि उगता और डूबता सूरज एक-सा लगता है। किरणों का जाल एक में फैलता होता है, एक में सिकुड़ता होता है। एक में लालिमा घटती है, एक में बढ़ती है। लेकिन लालिमा दोनों में होती हैं, किरणें दोनों में होती हैं। थोड़ी देर लग सकती है उसको पहचानने में कि यह लालिमा सिकुड़ने की है या फैलने की है।

तो व्यक्ति का पहला जन्म किरण होता है जहाँ से वासना फैलती है। वासना ही फैलती हुई इच्छाएँ हैं—फैलता हुआ सूर्योदय। जब सब इच्छाएँ सिकुड़ जाती हैं और सूरज का सिर्फ गोल हिस्सा रह जाता है डूबता हुआ आखिरी—इसकी फिर भी लालिमा है।

डूबते की है यह आखिरी लालिमा। यह करुणा है। यह डूब जाएगा। और कई बार चूक हो जाती है। हम समझते हैं कि सूरज उग रहा है और जब तक हम समझ पाते हैं तब तक वह डूब जाता है। और हम उससे कुछ लाभ नहीं ले पाते हैं। यह बहुत बार होता है। बुद्ध गाँव में आते हैं, महावीर गाँव में आते हैं, जीसस भी आते हैं, कृष्ण भी आते हैं। लेकिन हो सकता है कि अभी सूर्योदय हो रहा है। और तुम वासनाग्रस्त हो और तुम चूक गए हो और तब तक सूरज डूब गया। फिर रोते बैठे रहो। फिर कुछ भी नहीं हो सकता। तब जानने के लिए उपाय नहीं रह जाता। लेकिन उगता, डूबता सूरज एक जैसे मालूम पड़ते हैं। हो सकता है कि बुद्ध जिस गाँव में आए हों, लोगों ने सोचा हो कि यह सब भी वासना है।

एक गाँव में बुद्ध तीन बार गुजरे जीवन में। तो गाँव में एक आदमी था जो अपनी दूकान पर बैठा रहा। लोगों ने उससे कहा कि बुद्ध आए हैं। उसने कहा कि अभी तो बहुत ग्राहक हैं, दुबारा जब आएँगे तब सुन लूँगा। बुद्ध तीन बार उस गाँव से गुजरे। आखिर बुद्ध भी क्या कर सकते हैं, कितनी बार उस गाँव से गुजर सकते हैं? बुद्ध की सीमा है और गाँव भी बहुत हैं। और बुद्ध भी क्या कर सकते हैं? अगर ग्राहकी चलती ही रहे और वह कहे आज तो बहुत काम है, दुबारा जब आएंगे तब देखा जाएगा।

फिर बुद्ध दुबारा उस गाँव में नहीं आते। लेकिन एक दिन उस गाँव से खबर आती है कि पड़ोस के गाँव में बुद्ध का अन्तिम दिन है, लोग इकट्ठे हो रहे हैं। वे मरने के करीब हैं और उन्होंने कह दिया कि जल्दी ही डूब जाएँगे, अस्त हो जाएँगे, जिन्हें जो पूछना हो, भागो। उस आदमी ने दूकान बन्द की, शायद दूकान भी बन्द नहीं कर पाया। घर के लोगों ने कहा : क्या करते हो, अभी बहुत वक्त है, अभी काम है, अभी दूकान पर काफी लोग हैं। उसने कहा, वह तो ठीक है, लेकिन फिर उस आदमी से मिलना नहीं हो पाएगा। वह आदमी भागता हुआ दूसरे गाँव गया। वहाँ लोग इकट्ठे थे। बुद्ध ने उनसे पूछा : तुम्हें कुछ और पूछना है? उन सब ने कहा कि हमने इतना पूछा और इतना जाना कि अब कुछ भी पूछने को नहीं है, अब तो करने को है कि हम कुछ करें। तो बुद्ध ने कहा कि फिर मैं विदा लूँ। तीन बार उन्होंने पूछा जैसी कि उनकी आदत थी। लोगों ने कहा : कुछ भी नहीं पूछना, अब क्या पूछने को है?

तब बुद्ध ने कहा कि मैं विदा लूँ और वृक्ष के पीछे चले गए। ध्यान में बैठे और डूबने लगे। तब वह आदमी भागा हुआ पहुँचा। तब उसने कहा कि बुद्ध कहाँ हैं? लोगों ने कहा चुप, अब बात मत करना। अब वह वृक्ष के पीछे चले गए हैं। अब वह शान्ति से अपने में उतर रहे हैं, वापिस डूब रहे हैं, व्यक्तित्व छोड़ रहे हैं, निर्वाण में जा रहे हैं। उस आदमी ने कहा : मेरा क्या होगा? क्योंकि मैं चूक ही गया हूँ, उनसे कुछ पूछना था। लोगों ने कहा, पागल हो गए हो। चालीस साल से इसी इलाके में वह चक्कर लगाते थे तब तुम कहाँ थे? उसने कहा तब दूकान पर बहुत भीड़ थी। भीड़ तो आज भी थी। लेकिन तब मैंने समझा था सूरज उग रहा है। तब मुझे यह ख्याल न था कि डूबने का वक्त भी आ जाएगा। पर मुझे पूछना है, देर मत करो क्योंकि सूरज तो डूबा जा रहा है। लेकिन लोगों ने कहा कि तुम जोर से आवाज मत करना, नहीं तो वह इतने करुणावान् हैं कि वापिस लौट सकते हैं। लेकिन तभी बुद्ध

बाहर आ गए वृक्ष के पीछे से और उन्होंने कहा कि ऐसा मत करो, नहीं तो सदियों तक लोग मेरा नाम धरेंगे कि बुद्ध जिन्दा थे और एक आदमी पूछने आया और द्वार से खाली हाथ लौट गया। अभी नहीं ? क्या तुझे पूछना है ?

यह जो लौटना है यह उतना ही लौटना है जितना कि सच में कोई मोक्ष से लौट आए। इससे कुछ बहुत फर्क नहीं है। लेकिन यह अन्तिम वासना है, और यह अन्तिम वासना भी अर्थपूर्ण है। इसलिए कि जगत् में इससे ज्ञान की सम्भावना होती है, इतने विचार का जन्म होता है। अगर यह न हो तो जगत् में प्रकाश की कोई खबर ही न पाए। अगर कोई इतना करुणावान् न हो कि इसलिए चोरी करे कि जेलखाने जाए तो हो सकता है कि जेलखाने के लोग भूल ही जाएँ कि बाहर कोई जगत् भी है। लेकिन एक बात पक्की है कि जगे हुए लोग हमारे मन में जागने की कोई न कोई सूक्ष्म वासना पैदा कर जाते हैं। जगे हुए लोगों की मौजूदगी, इनकी बात, इनका चलना, इनका उठना, इनका बैठना—हमारे भीतर कहीं कोई धक्का दे जाता है, शायद अपने घर की याद दिला जाता है। यह करुणा इसलिए अर्थपूर्ण है।

मेरी दृष्टि में तो जगत् में कुछ भी अर्थहीन नहीं है। वासना भी अर्थपूर्ण है, करुणा भी अर्थपूर्ण है, निगोद भी अर्थपूर्ण है, मोक्ष भी अर्थपूर्ण है। संसार के सब काम अर्थपूर्ण हैं। लेकिन सबसे पीछे जो परम सत्य है वह स्वतन्त्रता का है। वह हम स्वतन्त्रता के तत्त्व का प्रयोग कर रहे हैं। कैसा कर रहे हैं यह हम पर निर्भर है। हित के लिए कर रहे हैं, अहित के लिए कर रहे हैं यह हम पर निर्भर है। अपने सुख के लिए कर रहे हैं, दुःख के लिए कर रहे हैं इसकी भी स्वतन्त्रता है।

महावीर और बुद्ध जैसे व्यक्तियों ने ईश्वर को जो इन्कार किया उसमें एक कारण यह भी है। ईश्वर के इन्कार में, भगवान् के इन्कार में भगवत्ता का इन्कार नहीं है। ईश्वर को इन्कार किया है लेकिन ईश्वरपन में पूर्ण स्वीकृति है। अगर ईश्वर को मानें तो स्वतन्त्रता फिर पूरी नहीं हो सकती और अगर उसके रहते स्वतन्त्रता पूरी हुई तो वह बेमानी है। यानी अगर वह है और उसको हम कहते हैं स्रष्टा, नियम और फिर कहते हैं कि आदमी पूर्ण स्वतन्त्र है तो महावीर कहते हैं कि दोनों में मेल नहीं है। उसकी मौजूदगी ही बाधा बनेगी। उसका नियमन भी किसी तरह की परतन्त्रता होगी।

इसलिए वे परमात्मा का इन्कार करते हैं ताकि परतन्त्रता का कोई उपाय न रह जाए। इसका यह मतलब नहीं कि वह परमात्मा से इन्कार करते हैं।

इसका मतलब है कि परमात्मा के व्यक्तित्व को इन्कार करते हैं और परमात्मा को सब में व्याप्त मानते हैं लेकिन नियामक नहीं। परमात्मा के ऊपर वह किसी को नहीं बिठाते हैं। फिर हो सकता है कि परतन्त्रता परमात्मा की इच्छा हो जैसा कि साधारण आस्तिक मानता है कि उसकी इच्छा हुई तो उसने जगत् बनाया। फिर हम बिल्कुल परतंत्र मालूम होते हैं। यानी हमारी इच्छा से हम जगत् में नहीं हैं, उसकी इच्छा से हम जगत् में हैं। फिर उसकी इच्छा होगी तो वह जगत् मिटा देगा। हम मोक्ष में हो जाएँगे और जब तक उसकी इच्छा नहीं होगी तब तक कोई उपाय भी नहीं है। तब जगत् बहुत बेमानी है, वह कठ-पुतलियों का खेल हो जाता है, जिसमें कोई अर्थ नहीं रह जाता। जहाँ स्वतंत्रता नहीं है वहाँ कोई अर्थ नहीं है। जहाँ परम स्वतन्त्रता है वह प्रत्येक चीज में अर्थ है। और परम स्वतन्त्रता की घोषणा के लिए ईश्वर को इन्कार कर देना पड़ा कि उसको हम कोई जगह नहीं देंगे; वह है ही नहीं।

साधारण आस्तिक की दृष्टि में परमात्मा नियामक है, नियन्ता है, स्रष्टा है तो स्वतन्त्रता खत्म हो गई। मगर गहरे आस्तिक की दृष्टि में ईश्वर स्वतन्त्रता है। वह जो परम स्वतन्त्रता का व्यास कण-कण है, उस सबका समग्र नाम ही परमात्मा है। अगर इसको हम समझ पाएँ तो फिर पापी को दोष देने का कोई कारण नहीं। इतना ही कहना काफी है कि तूने स्वतन्त्रता को जिस ढंग से चुना है वह दुःख लाएगी। इससे ज्यादा कुछ भी कहने को नहीं। लेकिन वह कह सकता है कि अभी मुझे दुःख अनुभव करने हैं। निन्दा का कोई कारण नहीं, कोई सवाल नहीं। मैं कहता हूँ कि मुझे गड्ढे में उतरना है। आप कहते हैं गड्ढे में प्रकाश नहीं होगा। सूरज की किरणें गड्ढे तक नहीं पहुँचेंगी। वहाँ अँधेरा है। मैं कहता हूँ लेकिन मुझे गड्ढे का अनुभव लेना है। तो अगर आपने अनुभव लिया हो गड्ढे का तो गड्ढे में जाने की सीढ़ियाँ मुझे बता दें। अगर आप गए हों गड्ढे में, और आप जरूर गए होंगे क्योंकि आप कहते हैं कि वहाँ सूरज की किरणें नहीं पहुँचतीं तो मैं भी गड्ढे को जानना चाहता हूँ ताकि गड्ढे में जाने की वासना बिदा हो जाए। तो निन्दा कहाँ है?

मेरी दृष्टि में पापी व्यक्ति की कोई निन्दा नहीं है और पुण्यात्मा व्यक्ति की कोई प्रशंसा नहीं है। क्योंकि सवाल यह नहीं है कि वह अपनी स्वतन्त्रता का उपयोग कर रहा है और तुम अपनी स्वतन्त्रता का दुरुपयोग कर रहे हो। और मजा यह है तुम तो सुख के लिए स्वतन्त्रता का उपयोग कर रहे हो। प्रशंसा की बात क्या है? प्रशंसा करनी हो तो उसकी करो जो दुःख के लिए अपनी

स्वतन्त्रता का उपयोग कर रहा है, जो अजीब आदमी है, हिम्मतवर भी है, साहसी भी है, क्योंकि दुःख उठाता है और दुःख में जाने के लिए स्वतन्त्रता का उपयोग भी कर रहा है। हो सकता है कि वह इतना दुःख जानकर लौटे कि उसके लिए सुख की गहराइयों का अन्त न रहे।

सभी को जाना पड़ेगा अंधकार में ताकि वे प्रकाश में आ सकें और सभी को स्वयं को खोना पड़ेगा ताकि वे स्वयं को पा सकें। यह बहुत अजीब बात मालूम पड़ती है लेकिन बात यही है और अगर कोई इसको भी पूछे कि ऐसा क्यों है तो वह बेमानी पूछता है। ऐसा है और इससे अन्यथा नहीं है। इसके सिवाय जानने का कोई उपाय नहीं है। आग जलाती है। कोई पूछे कि क्यों जलाती है तो हम कहेंगे बस आग जलाती है। बस एक ही उपाय है। न जलना हो तो हाथ मत डालो आग में। जलना हो तो हाथ डाल दो आग में। आग जलाती है। और आग क्यों जलाती है, इसका कोई उपाय नहीं है। और बर्फ क्यों ठंडी है, इसका कोई उपाय नहीं है। बर्फ ठंडी है, आग आग है। चीजें जैसी हैं, वैसी हैं।

स्वतन्त्रता जगत् की मौलिक स्थिति है। इससे अन्यथा नहीं है। आगे जाने का कोई उपाय नहीं है क्योंकि अगर कोई कहे कि किसने यह स्वतन्त्रता दी, तो दी गई स्वतन्त्रता स्वतन्त्रता नहीं होगी। किसी ने स्वतन्त्रता नहीं दी। अगर किसी ने स्वतन्त्रता ली तो स्वतन्त्रता तभी लेनी पड़ती है जब कि परतन्त्रता हो, नहीं तो स्वतन्त्रता लेने का कोई सवाल ही नहीं। अगर स्वतन्त्रता है तो उसे न कोई देता है न कोई लेता है। वह जगत् का स्वरूप है, वह वस्तुस्थिति है, वह स्वभाव है। और उसके उपयोग की बात है। कोई उसको दुःख के लिए उपयोग करता है, करे; कोई सुख के लिए उपयोग करता है, करे। सुख वाला चिल्ला कर कह सकता है भाई, देखा, उस तरफ जाकर दुःख होगा। फिर भी दुःख वाला कह सकता है कि आप गए तब मैं नहीं चिल्लाया। आप क्यों परेशान होते हैं? मुझे जाने दें। तो बात खत्म हो जाती है। इससे ज्यादा कोई मतलब नहीं है।

इसलिए मुझे निरन्तर लोग पूछते हैं कि आप इतना लोगों को समझाते हैं, क्या हुआ? तो मैं कहता हूँ कि यह पूछना ही ठीक नहीं है। अगर हम पूछते हैं तो हम उनकी स्वतन्त्रता में बाधा डालते हैं। यानी मेरा काम था कि मैं चिल्ला दिया। मेरा काम था चिल्लाना। उन्होंने मुझे कहा भी नहीं था कि चिल्लाओ।

यह मेरी मौज थी कि मैं चिल्लाया। यह मेरा चुनाव था। यह उनकी मौज थी कि उन्होंने सुना या उनकी मौज थी कि नहीं सुना। या उनकी मौज थी कि सुना और अनसुना कर दिया। इस बात में वे स्वतन्त्र थे। इससे आगे पूछने की कोई जरूरत ही नहीं।

हम सब अपनी स्वतन्त्रता में जी रहे हैं और दुःख या सुख हमारे निर्णय हैं। और इसलिए बड़ी मौज है, और जिन्दगी बड़ी रसपूर्ण है। कहीं कोई रोकने वाला नहीं है, कहीं कोई मालिक नहीं है। हम ही मालिक हैं। और इतना समझ में आ जाए तो फिर और क्या समझाने को शेष रह जाता है?

कोई निर्णायक है ही नहीं सिवाय आपके। वह आपका निर्णय है। अब जैसे कि नसरुद्दीन थैली लेकर भाग गया। वह आदमी यह भी निर्णय कर सकता है कि ठीक है, ले जाओ, हम नहीं आते पीछे और कभी न लौटे। वह उसका निर्णय है कि वह पीछा करता है और तब तक पीछा करता है जब तक पा नहीं लेता। लेकिन वह कह सकता है कि ठीक है, ले जाओगे तो हो सकता है कि तुम्हें खोजना पड़े कि मैं कहाँ गया। हालत यह हो जाए कि तुम खोजते थक जाओ, दुःखी हो जाओ, परेशान हो जाओ क्योंकि तुम कोई चोर तो थे नहीं। वह थैली तो लौटाना है।

प्रश्न : यह निर्णय करना कौन कराता है? इसका कोई उत्तर नहीं?

उत्तर : कोई नहीं कराता। आप करते हैं। स्वतन्त्रता का मतलब ही यही है कि आप निर्णायक हैं और आप ही निर्णय करते हैं।

प्रश्न : प्रारब्ध क्या है?

उत्तर : प्रारब्ध कुछ भी नहीं। अपने किए हुए निर्णय प्रारब्ध बन जाते हैं। जैसे कि मैंने एक निर्णय किया कि मैं इस कमरे में बैठूंगा। तो एक ही बात हो सकती है कि या तो मैं इस कमरे में बैठूं, या बाहर बैठूं। निर्णय करते ही प्रारब्ध शुरू हो जाता है। निर्णय का मतलब है कि मैं प्रारब्ध निर्मित कर रहा हूं। अब मैं एक ही काम कर सकता हूं—बाहर बैठूं कि भीतर। भीतर बैठता हूं तो यह प्रारब्ध हो गया। मेरा निर्णय शुरू हो गया। अब मैं बाहर नहीं हो सकता एक ही साथ। अगर बाहर जाऊंगा तो भीतर नहीं होऊंगा। भीतर के सुख दुःख भीतर मिलेंगे, बाहर के सुख दुःख बाहर मिलेंगे। अब वह फिर मेरा प्रारब्ध हो गया क्योंकि जो मैंने निर्णय किया वह मैं भोगूंगा।

अब एक आदमी ने निर्णय किया है कि मैं धूप में बैठूंगा। तो धूप का जो भी फल होने वाला है, वह उसे मिलने वाला है। इसमें धूप जिम्मेदार नहीं है। इसमें कोई जिम्मेदार नहीं है। धूप का काम धूप है। आपका काम है कि आपने निर्णय किया धूप में बाहर बैठने का। आपका चेहरा काला हो जाएगा। वह जिम्मेदारी आपकी है। वह आपका प्रारब्ध हो जाएगा। लेकिन आज अगर चेहरा काला हो गया तो उसको ठीक करने में दस दिन लग जाएँगे। तो दस दिन तक प्रारब्ध पीछा करेगा क्योंकि वह जो हो गया उसका क्रम होगा। तो हम जिसको प्रारब्ध कहते हैं वह हमारे अतीत में किए गए निर्णयों का इकट्ठा सारांश है। वह निर्णय हमने किए थे, उनकी व्यवस्था हो गई है। वे हमें करने पड़ रहे हैं।

प्रश्न : और अभी पुरुषार्थ करेंगे, सोचेंगे?

उत्तर : बिल्कुल नहीं, वह तो सवाल ही नहीं, पुरुषार्थ और प्रारब्ध का। तुम स्वतन्त्र हो आज भी। और आज तुम जो करोगे वह फिर निर्णय बनेगा और फिर एक तरह का प्रारब्ध निर्मित होगा उससे। बहुत गौर से देखें तो मोक्ष भी एक प्रारब्ध है। जो आदमी स्वतन्त्र होने का निर्णय करता है अन्त में मुक्त हो जाता है। संसार भी एक प्रारब्ध है। प्रारब्ध का मतलब ही इतना होता है कि तुमने कुछ निर्णय किया फिर उस निर्णय का फल भोगो।

प्रश्न : शास्त्रों में पुरुषार्थ मानी हुई भवितव्यता बताई है। इसका क्या अर्थ है?

उत्तर : शास्त्रों से मुझे कुछ मतलब ही नहीं। शास्त्रों से क्या लेना-देना है। शास्त्र लिखने वाले की मौज थी। तुम्हारी मौज है पढ़ो या न पढ़ो। वह कहीं बांधता नहीं। उससे क्या लेना-देना? उससे क्या प्रयोजन?

प्रश्न : क्या वासना की उन्मत्तता के समय मुक्तात्मा स्वतंत्रता का उपयोग संसार में आने के लिए कर सकता है?

उत्तर : नहीं कर सकता क्योंकि एक आदमी आग में हाथ डालने के लिए पहली बार स्वतन्त्रता का उपयोग कर सकता है। लेकिन जल जाने के बाद उपयोग करेगा, मुश्किल है। एक बच्चा है वह दिए पर हाथ रखकर लौ पकड़ सकता है। स्वतंत्रता का उपयोग उसने किया, हाथ जल गया, अनुभव हुआ। अब दुबारा इस बच्चे से कम आशा है कि दिएं की लौ पकड़े, क्योंकि इसका

अनुभव भी इसके साथ खड़ा हो गया। अब स्वतन्त्रता का वैसा उपयोग करना मुश्किल है।

तो जो मुक्त हो गया वह संसार का दुःख झेलने के लिए वासना करे यह असम्भव है। चाहे तो आ जाए, कोई रोकने वाला नहीं है उसको, लेकिन वह चाह नहीं सकता। महावीर अगर सिद्धशिला छोड़कर वापिस आना चाहें तो कोई उन्हें रोक नहीं सकता। कौन रोकने वाला है? लेकिन महावीर नहीं आ सकते क्योंकि अब अनुभव भी साथ है। यहाँ का अनुभव काफी भोग लिया, वह दुःख काफी झेल लिया। वह अनुभव इतना गहरा हो गया कि उसका कोई अर्थ नहीं है, उसका कोई प्रयोजन नहीं है।

२५

प्रश्नोत्तर-प्रवचन

दुःख, सुख, और आनन्द इन तीन शब्दों को समझना बहुत उपयोगी होगा। दुःख और सुख भिन्न चीजें नहीं हैं बल्कि उन दोनों के बीच में जो भेद है वह ज्यादा से ज्यादा मात्रा का, परिमाण का, डिग्री का है। और इसलिए दुःख सुख बन सकता है और सुख दुःख बन सकता है। जिसे हम सुख कहते हैं वह भी दुःख बन सकता है और जिसे हम दुःख कहते हैं वह भी सुख बन सकता है। इन दोनों के बीच का जो फासला है, भेद है, वह भेद विरोधी का नहीं है, वह भेद मात्रा का है। एक आदमी को हम गरीब कहते हैं; एक आदमी को हम अमीर कहते हैं। गरीब और अमीर में भेद किस बात का है? विरोध है दोनों में? आमतौर से ऐसा दिखता है कि गरीब और अमीर विरोधी व्यवस्थाएँ हैं। लेकिन सच्चाई यह है कि गरीबी-अमीरी एक ही चीज की मात्राएँ हैं। एक आदमी के पास एक रुपया है तो गरीब है, एक करोड़ रुपया है तो अमीर है। अगर एक रुपए में गरीब है तो एक करोड़ में अमीर कैसे हो सकता है? इतना ही हम कह सकते हैं कि यह एक करोड़ गुना कम गरीब है। और एक करोड़ वाला अमीर है तो एक रुपए वाला गरीब कैसे? फिर इतना ही हम कह सकते हैं कि यह एक करोड़ गुना कम अमीर है। इन दोनों में जो भेद है, वह ऐसा नहीं है जैसा दो विरोधियों में होता है। वह भेद ऐसा है जैसे एक ही चीज की मात्रा में होता है। लेकिन गरीबी दुःख हो सकती है और अमीरी सुख हो सकती है। गरीब दुःखी है और अमीर होना चाहता है। तो दुःख और सुख में जो भी भेद है, वह भेद सिर्फ मात्रा का ही है। इसी भाँति हमारी सारी सुख की अनुभूतियाँ दुःख से जुड़ी हुई हैं और हमारी सारी दुःख की अनुभूतियाँ भी सुख से जुड़ी हुई हैं। इन दोनों के बीच जो डोल रहा है वह संसार में है। संसार में

होने का मतलब इतना ही नहीं है कि सिर्फ दुःखानुभूति। अगर संसार में सिर्फ दुःख की अनुभूति हो तो कोई भटक ही नहीं। फिर तो भटकने का उपाय ही न रहा। भटकता सिर्फ इसलिए है कि सुख की आशा होती है, अनुभूति दुःख की होती है। और सुख मिल जाता है तो मिलते ही दुःख में बदल जाता है।

संसार की अनुभूति को दो तीन तरह से देखना चाहिए। एक तो यह कि सुख सदा भविष्य में होता है कि कल मिलेगा। और कल मिलने वाले सुख के लिए आज हम दुःख झेलने को तैयार होते हैं। आज के दुःख को हम इस आशा में झेल लेते हैं कि कल सुख मिलेगा। अगर कल सुख की कोई आशा न हो तो आज के दुःख को एक क्षण भी झेलना कठिन है। उमरखय्याम ने एक गीत लिखा है और उस गीत में वह कहता है कि मैं कई जन्मों से भटक रहा हूँ और सबसे पूछ चुका हूँ कि आदमी भटकता क्यों है। लेकिन कोई उत्तर नहीं मिलता। और तब मैंने थक कर एक दिन आकाश से ही पूछा कि तूने तो सब भटकते लोगों को देखा है और उन सबको भी देखा है जो भटकने के बाहर हो गए, और उन सबको भी देखता रहेगा जो भटकन में आएँगे और उनको भी देखता रहेगा जो भटकन के बाहर होंगे। तू ही मुझे बता दे कि आदमी भटकता क्यों है? तो चारों ओर आकाश से, वह अपने गीत में कहता है, मुझे आवाज सुनाई पड़ी : आशा के कारण। आदमी भटकता क्यों है? आशा के कारण। और आशा क्या है? इस बात की सम्भावना और आश्वासन कि कल सुख मिलेगा, आज दुःख झेल लो।

आज का दुःख हम झेलते हैं कल के सुख की आशा में। फिर जब कल सुख मिलता है तो बड़ी अजीब घटना घटती है। सुख मिलते ही फिर दुःख हो जाता है। जो चीज उपलब्ध हो जाती है वह कुछ भी नहीं होती। कितनी कल्पना की थी कि उसके मिलने पर यह होगा, वह होगा। प्रत्येक व्यक्ति अपने अनुभव को थोड़ा जाँचेगा तो हैरान होगा कि उसने कितने-कितने सपने संजोए हैं। फिर वह चीज मिल गई और पाया कि कुछ भी न हुआ। वह सबके सब सपने कहाँ खो गए, यह पता ही न चला। वह सब की सब कल्पनाएँ कैसे विलीन हो गईं, कुछ पता न चला। चीज हाथ में आई कि जो-जो उसके मिलने की सम्भावना में छिपा हुआ सुख था, वह एकदम तिरोहित हो गया। जब तक नहीं मिला था तब तक प्रतीक्षा में सुख था। जब मिल जाता है तब सब सुख समाप्त हो जाता है। फिर दौड़ शुरू हो जाती है क्योंकि जहाँ दुःख है, वहाँ से हम भागेंगे।

यह भी समझ लेना चाहिए कि जहाँ दुःख है, वहाँ हम रुक नहीं सकते। वहाँ से हम भागेंगे क्योंकि जहाँ दुःख है वहाँ कैसे रुका जा सकता है। सुख भागता है, दुःख से हम हट जाना चाहते हैं और दुःख से हटने का उपाय क्या है? एक ही उपाय दिखाई पड़ता है साधारणतः और वह यह है कि सुख की किसी आशा में हम आज के दुःख को भुला दें, विस्मरण कर दें। तो फिर जैसे ही दुःख शुरू होता है, हम नयी आशा में बंध जाते हैं। इस तरह आदमी जीता दुःख में है, होता दुःख में है लेकिन उसकी आँखें सुख में लगी होती हैं। जैसे आदमी चलता पृथ्वी पर है, देखता आकाश को है। आकाश पर देखने में सुविधा हो सकती है कि पृथ्वी पर होना भूल जाए। फिर भी होंगे पृथ्वी पर। हम खड़े हुए दुःख में हैं लेकिन आँखें सदा सुख में है। इससे हमें सुविधा हो जाती है कि हम दुःख को भूल जाते हैं और दुःख को झेलने की क्षमता उपलब्ध कर लेते हैं।

अब अगर बहुत गहरे में देखा जाए तो सुख सिर्फ सम्भावना है, सत्य कभी नहीं। दुःख सदा सत्य है, तथ्य है, वास्तविक है लेकिन दुःख कैसे झेला जाए? तो हम उसे सुख की आशा में झेल लेते हैं। कल का सुख आज के दुःख को सहनीय बना देता है। और वह सुख जो कल का है, कभी मिलता नहीं। और जिस दिन मिल जाता है भूल-चूक से उसी दिन हम पाते हैं कि भ्रान्ति टूट गई। वह जो आशा हमने बाँधी थी, सही सिद्ध नहीं हुई। लेकिन इससे सिर्फ इतना ही हम समझ पाते हैं कि यह सुख सही नहीं था। दूसरे सुख सही होंगे। उनकी आशा में आगे दौड़ते रहो। यह भूल भ्रान्ति सिद्ध हो गई, टूट गई, दुःख आ गया तो अब फिर चित्त भागेगा।

हम एक आशा से उखड़ते हैं, आशा-मात्र से नहीं उखड़ते हैं। एक सुख की व्यर्थता को जानते हैं लेकिन सुखमात्र की व्यर्थता को नहीं जान पाते। इसलिए यह होड़ जारी रहती है। अगर दुःख ही है जीवन में और सुख की कोई सम्भावना नहीं है तो एक व्यक्ति क्षणमात्र भी संसार में नहीं रह सकता। एक क्षण भर रहना भी मुश्किल है। एक क्षण में ही वह मुक्त हो जाएगा। लेकिन आशा उसे आगे गतिमान् रखती है। और मुक्त व्यक्ति को जो मिलता है उसे सुख नहीं कहना चाहिए। उसे जो मिलता है, वह सुख और दुःख दोनों से भिन्न है। इसलिए उसे आनन्द कहना चाहिए।

अब यह बड़े मजे की बात है कि आनन्द से विपरीत कोई शब्द नहीं है। सुख दुःख एक दूसरे के विपरीत हैं लेकिन आनन्द के विपरीत कोई अवस्था ही

नहीं। आनन्द सुख नहीं है। अगर उसे सुख बनाया तो फिर दुःख की दुनिया शुरू हो गई। साधारणतः हम कहते हैं कि वह व्यक्ति आनन्द को उपलब्ध होता है जो दुःख से मुक्त हो जाता है। लेकिन यह कहने में थोड़ी भ्रान्ति है। कहना ऐसा चाहिए कि आनन्द को वह व्यक्ति उपलब्ध होता है, जो सुख दुःख से मुक्त हो जाता है। क्योंकि जो सुख दुःख हैं, वह कोई दो चीज नहीं है। इसलिए साधारण जन को निरन्तर यह भूल हो जाती है समझने में और वह आनन्द को सुख ही समझ लेता है। समझता है कि दुःख से मुक्त हो जाना ही सुख है। इसलिए बहुत से लोग सत्य की खोज में या मोक्ष की खोज में वस्तुतः सुख की ही खोज में होते हैं। इसलिए महावीर ने एक बहुत बढ़िया काम किया है। सुख के खोजी को उन्होंने कहा है कि वह स्वर्ग का खोजी है। आनन्द के खोजी को उन्होंने कहा कि वह मोक्ष का खोजी है।

दुःख का खोजी नरक का खोजी है, सुख का खोजी स्वर्ग का खोजी है। लेकिन दोनों से अलग जो मुक्ति का खोजी है, वह आनन्द का खोजी है। स्वर्ग मोक्ष नहीं है। महावीर के पहले बहुत व्यापक धारणा यही थी कि स्वर्ग परम उपलब्धि है। उसके आगे क्या उपलब्धि है? सब सुख मिल गया तो परम उपलब्धि हो गई। लेकिन मनोवैज्ञानिक रीति से समझना चाहिए कि जहाँ सुख होगा, वहाँ दुःख अनिवार्य है। जैसे, जहाँ उष्णता होगी, वहाँ शीत अनिवार्य है। जहाँ प्रकाश होगा, वहाँ अँधकार अनिवार्य है। असल में ये एक ही सत्य के दो पहलू हैं और एक साथ ही जीते हैं। और इनमें से एक को बचाना और दूसरे को फेंक देना असम्भव है। ज्यादा से ज्यादा इतना ही किया जा सकता है कि हम एक को ऊपर कर लें और दूसरा नीचे हो जाए। जब हम सुख के भ्रम में होते हैं तब दुःख नीचे छिपा है और प्रतीक्षा करता है कि कब प्रकट हो जाऊँ। और जब हम दुःख में होते हैं तब सुख नीचे छिपा होता है और प्रतिपल आशा दिए जाता है कि अभी प्रकट होता हूँ, अभी प्रकट होता हूँ। लेकिन दोनों चीजें एक ही हैं और अगर यह समझ में आ जाए तो सुख का भ्रम टूट जाता है।

सुख का भ्रम टूटे तो दुःख का साक्षात् होता है। सुख का भ्रम बना रहे तो दुःख का साक्षात् नहीं होता। क्योंकि उस भ्रम के कारण हम दुःख को सहनीय बना लेते हैं। हम उसे झेल लेते हैं। सुख का भ्रम दुःख का पूर्ण साक्षात् नहीं होने देता, जैसा दुःख है उसे पूरा प्रकट नहीं होने देता। उसकी पूरी पैनी धार हमें छेद नहीं पाती। सुख, दुःख की धार को खोखला कर देता है। असल में हम दुःख की ओर देखते ही नहीं। हम सुख की ओर ही देखे चले जाते हैं।

दुःख इधर पैरों के नीचे से निकलता है लेकिन हम कभी आंख गड़ा कर दुःख को नहीं देखते हैं। दुःख से सुख की आशा में हम सदा भागे चले जाते हैं।

वही व्यक्ति सुख के भ्रम से मुक्त होगा जिसे यह दिखाई पड़ेगा कि सुख जैसा कुछ भी नहीं है। लौटकर पीछे देखो तो ख्याल में आ सके। लेकिन हम सदा देखते हैं आगे, इसलिए ख्याल में नहीं आता। लौटकर पीछे देखो : ऐसा कौन सा क्षण था जब सुख पाया। तो बड़ी हैरानी होगी पीछे लौटकर देखने से। एकदम मरुस्थल मालूम पड़ता है, जहाँ सुख का कोई फूल कभी नहीं खिला। हालाँकि बहुत बार जब अतीत नहीं था, भविष्य था तो हमने सोचा था कि सुख मिलेगा। फिर वह अतीत हो गया और हमारी आशा भविष्य में चली गई। कल जो भविष्य था, आज अतीत हो गया। आंज जो भविष्य है, कल अतीत हो जाएगा। और अतीत को लौटकर देखो तो सुख कभी न था। हालाँकि ठीक इतनी ही आशा तब भी थी—मिलने की, पाने की, उपलब्धि की। और इतनी ही धारणा अब भी है। और आगे भी हम वही कर रहे हैं जो हमने पीछे किया था। आज झेल रहे हैं कल की आशा में। इसलिए आज को देख नहीं पाते। इस सूत्र को समझ लेना चाहिए कि जो व्यक्ति सुख के भ्रम में है वह दुःख का साक्षात्कार नहीं कर सकता है। भविष्य में सुख का भ्रम दुःख का साक्षात्कार नहीं होने देता। बल्कि असलियत यह है कि हम सुख का भ्रम इसलिए पैदा करते हैं ताकि दुःख का साक्षात्कार न हो सके।

एक आदमी भूखा पड़ा है। वह भूख का साक्षात्कार नहीं कर पाता क्योंकि वह उस वक्त कल जो भोजन बनेगा, मिलेगा उसके सपने देख रहा है। एक आदमी बीमार पड़ा है। वह बीमारी का साक्षात्कार नहीं कर पाता क्योंकि वह कल के उन सपनों में सोया है जब वह स्वस्थ हो जाएगा।

हम पूरे समय चूक गए हैं उस जगह से जहाँ हम हैं। और जहाँ हम हैं वहाँ निरन्तर दुःख है। शायद उस दुःख को झेलना इतना कठिन है कि हमें चूकना पड़ता है, भागना पड़ता है। हम पलायन करते हैं। सुख का भ्रम टूट जाए तो भागोगे कहाँ, यह कभी सोचा है? हमें दुःख में जीना पड़ेगा, दुःख भोगना पड़ेगा, दुःख जानना पड़ेगा, दुःख के साथ आँखें गड़ानी पड़ेंगी, क्योंकि कोई उपाय नहीं है कहीं और जाने का। हम हैं और दुःख है। जो व्यक्ति दुःख का साक्षात्कार कर लेता है वह उस तीव्रता पर पहुँच जाता है, जहाँ से वह लौटता है। जब सब ओर दुःख के काँटे उसे छेद लेते हैं और भविष्य में कोई

आशा नहीं रह जाती और आगे कोई उपाय भी नहीं रह जाता तब वह जाएगा कहाँ ? फिर वह अपने में लौटता है । जिस दिन दुःख का पूर्ण साक्षात्कार होता है, उसी दिन वापसी शुरू हो जाती है । उसी दिन व्यक्ति लौटने लगता है । इसे समझ लेना ।

दुःख से भागोगे तो सुख में पहुँच जाओगे । दुःख में जाओगे तो आनन्द में पहुँच जाओगे । दुःख से नहीं भागे, दुःख में खड़े हो गए, दुःख को पूरा देखा और दुःख को साक्षात् किया तो रूपान्तरण शुरू हुआ । क्योंकि जैसे ही दुःख का पूर्ण साक्षात्कार हुआ, हम वही फिर कैसे कर सकेंगे जिससे दुःख आए । फिर हम उन्हीं ढंगों से कैसे जी सकेंगे जिनसे दुःख आता है । फिर हम उन्हीं वासनाओं, उन्हीं तृष्णाओं में कैसे फिरेंगे जिनका फल दुःख है । फिर हम वे बीज कैसे बोएँगे जिनके फलों में दुःख आता है । लेकिन दुःख को हमने कभी देखा नहीं । दुःख का साक्षात् आनन्द की यात्रा बन जाता है । बुद्ध कहते हैं यह किया तो इससे यह हुआ; यह मत करो, उससे यह नहीं होगा । ऐसा नियम है । मैंने गाली दी, गाली लौटी । मैंने दुःख दिया, दुःख आया । अब अगर इस दुःख का पूरा-पूरा बोध मुझे हो जाए तो कल मैं गाली नहीं दूँगा कल मैं दुःख नहीं पहुँचाऊँगा क्योंकि पहुँचाया हुआ दुःख वापिस लौट आता है और तब दुःख की सम्भावना क्षीण हो जाती है । इसी तरह जीवन के प्रत्येक विकल्प पर कैसे-कैसे दुःख पैदा होता है, वह मुझे दिखाई पड़ना शुरू हो जाए तो कोई आदमी दुःख में कभी नहीं उतरता ।

सब आदमी सुख की नाव पर सवार होते हैं, दुःख की नाव पर कोई सवार नहीं होता । कौन दुःख की नाव पर सवार होने को राजी होगा । अगर पक्का पता है कि यह नाव दुःख के घाट उतार देगी तो इस पर कौन सवार होगा । हम दुःख की नाव में सवार होते हैं लेकिन घाट सदा सुख का होता है । नाव अगर राह में कष्ट भी देती है, डूबने का डर भी है तो भी कोई फिक्र नहीं । घाट के उस पार सुख है । लेकिन दुःख की नाव सुख के घाट पर कैसे पहुँच सकती है ? असल में दुःख देने वाला साधन सुख का साथी कैसे बन सकता है ? असल में प्रथम कदम पर जो हो रहा है, वही अन्तिम पर भी होगा । अगर मैंने ऐसा कदम उठाया है जो अभी दुःख दे रहा है तो यह कैसे सम्भव है कि यही कदम कल और आगे चलकर सुख देगा । इतना ही सम्भव है कि कल और आगे बढ़कर दुःख देगा । क्योंकि आज जो छोटा है, कल और बड़ा हो जाएगा । कल

मैं दस कदम और उठा लूँगा, परसों दस कदम और उठा लूँगा और यह रोज बढ़ता चला जाएगा।

यह दुःख का छोटा सा बीज रोज वृक्ष होता चला जाएगा। इसमें और शाखाएँ निकलेंगी, इसमें और फल लगेंगे, इसमें और फूल लगेंगे। और न केवल फूल बल्कि एक बीज बहुत जल्दी वृक्ष होकर करोड़ बीज हो जाएगा। बीज गिरेंगे और वृक्ष उठेंगे और यह अन्तहीन फैलाव है। यानी एक बीज कितने वृक्ष पैदा कर सकता है, कोई हिसाब लगाए। शायद पृथ्वी पर जितने वृक्ष हैं उन्हें एक ही बीच पैदा कर सकता है। शायद सारे ब्रह्माण्ड में जितने वृक्ष हैं, एक ही बीज पैदा कर सकता है। एक बीज की फैलने की कितनी अनन्त सम्भावना है, इसको सोचने जाओगे तो एकदम घबड़ा जाओगे। अनन्त सम्भावना इसलिए है कि एक ही बीज करोड़ बीज हो सकता है। फिर प्रत्येक बीज करोड़ बीज होता चला जाता है, इसके फैलाव का कोई रुकाव नहीं है।

हम जो पहला कदम उठाते हैं वह बीज बन जाता है और अन्तिम फल उसकी सहज परिणति है। लेकिन हम बीज जहर के बो देते हैं, इस आशा में कि फल अमृत के होंगे। वे कभी अमृत के नहीं होते। बार-बार हमने यह अनुभव किया है। निरन्तर प्रतिपल हमने यह जाना है कि जो बीज बोए थे, वही फल आ गए। लेकिन हम अपने को धोखा देने में कुशल हैं और जब फल आते हैं तो हम कहते हैं: जरूर कहीं कोई भूल हो गई है। जरूर परिस्थितियाँ अनुकूल न थीं। हवाएँ ठीक न थीं। सूरज वक्त पर न निकला, वर्षा ठीक समय पर न हुई, ठीक समय पर खाद नहीं डाला गया। इसलिए फल कड़वे आ गए।

हम दूसरी सब चीजों पर दोष देते हैं। लेकिन हम एक चीज को छोड़ जाते हैं कि बीज जहरीला था। और मजे की बात यह है कि अगर वर्षा ठीक समय पर न हुई हो, अनुकूल परिस्थिति न मिली हो, माली ने ठीक वक्त पर खाद न दिया हो, सूरज न निकला हो तो हो सकता है कि फल जितना बड़ा हो सकता था, उतना बड़ा न हुआ हो। हो सकता है कि जितना जहरीला फल मिला वह छोटा ही रहा हो। इसे थोड़ा समझना चाहिए। जितना दुःख हमें मिलता है, आम तौर से हम कह देते हैं कि यह परिस्थितियों के ऊपर निर्भर है। यह परिस्थितियाँ हमें दुःख दे रही हैं। मैं तो ठीक हूँ लेकिन मित्र, पत्नी, पिता, पति, संसार, परिस्थितियाँ अनुकूल नहीं हैं। ऐसे हम बीज को बचा रहे हैं। मैंने जो किया वह तो ठीक है, लेकिन साथ अनुकूल न मिला। हवाएँ उल्टी

बह गईं, सूरज न निकला, सब गड़बड़ हो गया। लेकिन ध्यान रहे कि अगर प्रतिकूल परिस्थिति में इतना कडुवा फल आया तो अनुकूल परिस्थितियों में कितना कडुवा फल आता है इसका कोई हिसाब नहीं। हम जो इच्छाएँ करते हैं अगर वे पूरी की पूरी हो जाएँ तो हम इतने बड़े दुःख में गिरेंगे जितने दुःख में हम कभी भी नहीं गिरे। इसे थोड़ा समझना चाहिए।

आमतौर से हम सोचते हैं कि हम इसलिए दुःखी हैं कि हमारी इच्छाएँ पूरी नहीं होती हैं। हमारा तर्क यह है, हमारे दुःख का कारण यह है कि हम इच्छा करते हैं, वह पूरी नहीं होती। जबकि सच्चाई यह है, हमारे दुःख का कारण यह है कि हम जो इच्छा करते हैं, वह दुःख का बीज है और वह बिना पूरा हुए इतना दुःख दे जाती है तो अगर पूरी हो जाए तो कितना दुःख दे जाएगी, बहुत मुश्किल है कहना। समझ लें कि एक व्यक्ति की अभी इच्छा पूरी नहीं हुई, वह बहुत दुःखी रहता है। उससे पूछो तो वह कहेगा कि मैं इतना दुःखी हूँ जिसका कोई हिसाब नहीं क्योंकि जिसे पाना है वह नहीं मिल रहा है। हजार बाधाएँ आ रही हैं। एक प्रेमी है जो अपनी प्रेयसी को पाने की खोज में लगा है। वह नहीं मिली है। एक प्रेयसी है जो अपने प्रेमी को पाने की खोज में लगी है, वह नहीं मिला है। लेकिन प्रेयसी मिल जाए तो एक इच्छा पूरी हुई मिलने की और मिलते ही जो आशाएँ हैं वे सब तत्काल क्षीण हो जाएँगी क्योंकि पाने का, जीतने का, सफल होने का जो भी सुख है वह सब चला गया। वह जो इतने दिन तक आशा थी कि पाने पर यह होगा, वह होगा, वह आशा चली गई क्योंकि वह सब आशा पाने से सम्बन्धित न थी। वह सब आशा हमारे ही सपने और काव्य थे, हमारी ही कल्पनाएँ थीं जो हमने आरोपित की हुई थीं।

और एक प्रेयसी दूर से जैसी लगती है वैसी पास से नहीं। दूर के ढोल सुहावने होते हैं। दूर की चीजें सुहावनी होती हैं। असल में दूरी एक सुहावनापन पैदा करती है। जितनी दूरी उतनी सुखद क्योंकि दूर से हम चीजों को पूरा नहीं देख पाते। जो नहीं देख पाते हैं वह हम अपना सपना ही उसकी जगह रख देते हैं। दूर से एक व्यक्ति को हम देखते हैं। दिखती है एक रूप-रेखा लेकिन बहुत कुछ हम अपने सपने से उसमें जोड़ देते हैं। इसमें दूसरे व्यक्ति का कहीं कसूर नहीं है। लेकिन जो हमने जोड़ा था वह पिघलकर बहने लगे निकट आने पर, और जो हमने सपना जोड़ दिया था, काव्य जोड़ दिया था वह मिटने लगे, जैसा व्यक्ति था वैसा प्रकट हो जाए ऐसा हमने कभी नहीं सोचा।

असल में हम सोच भी कैसे सकते हैं कि दूसरा व्यक्ति कैसा है। हम सिर्फ कामना कर सकते हैं कि ऐसा हो। लेकिन हमारी कामनाओं के अनुकूल किसी व्यक्ति का जन्म नहीं हुआ है। व्यक्ति का जन्म उसकी अपनी कामनाओं के अनुकूल हुआ है। कोई किसी दूसरे व्यक्ति की इच्छाओं के अनुकूल पैदा नहीं हुआ है। प्रत्येक व्यक्ति अपनी इच्छाओं के अनुकूल पैदा हुआ है। लेकिन हमने अपनी इच्छाएँ आरोपित की थीं। वे मिलते ही खंडित हो जाएँगी और वह व्यक्ति प्रकट होगा जैसा हमने उसे कभी नहीं जाना था और जितने हमने सपने जोड़े थे वास्तविकता उन सबको तोड़ देगी, एक-एक चीज़ में तोड़ देगी।

फिर मैंने चाहा था कि व्यक्ति पूरा मिल जाए। यानी मैं कहूँ रात तो वह कहे रात, मैं कहूँ दिन तो वह कहे दिन। यह इच्छा कभी पूरी नहीं होगी। और मजे की बात यह है कि उसने भी यही कामनाएँ की थीं कि मैं कहूँ रात तो वह कहे रात और मैं कहूँ दिन तो वह कहे दिन। दोनों के प्रेम की कसौटी यही थी। तब बड़ी मुश्किल हो गई बात क्योंकि आप भी उससे कहलवाना चाहते हैं, वह भी आपसे कहलवाना चाहता है। सोचा था शान्ति, होगा संघर्ष; सोचा था सुख, और होगा विषाद। लेकिन मजे की बात यह है कि यह तो इसलिए हो रहा है कि मैंने जो चाहा था वह नहीं हो सका है। मैंने कहा था रात और चाहा था कि वह भी कहे रात। यह नहीं हो सका, इसलिए मैं दुःखी हूँ। इच्छा के कारण दुखी नहीं हूँ। ठीक व्यक्ति नहीं मिला, इच्छा पूरी नहीं हुई, इसलिए मैं दुखी हूँ। पूरी हो जाए तो मैं सुखी हो जाऊँ। लेकिन कोई दूसरा व्यक्ति मिल जाए जो तुम कहो रात तो वह भी कहे रात हालांकि दिन हो। तुमने उसके पैर में जंजीरें बाँधीं तो भी तुमने कहा आभूषण, उसने कहा आभूषण। तुमने उस व्यक्ति को पाया कि वह तुम्हारे बिल्कुल ही अनुकूल है, तुम जैसे हो वैसा ही है—तुम्हारी छाया। और ऐसे व्यक्ति को पाकर तुम्हें जितना दुःख होगा उसका अनुमान तुम लगा ही नहीं सकते क्योंकि वह व्यक्ति ही नहीं होगा, वह एक मशीन होगा, वह एक यंत्र होगा। उसमें कोई व्यक्तित्व नहीं होगा, उसमें कोई आत्मा नहीं होगी और जिस व्यक्ति में कोई व्यक्तित्व नहीं होगा, कोई आत्मा नहीं होगी उससे क्या तुम प्रेम कर पाओगे? उससे तुम एक क्षण प्रेम नहीं कर सकते। यह इच्छा पूरी हो जाए तो इतना दुःख होगा जितना इच्छा के न पूरी होने से कभी भी नहीं हुआ है। कोई भी छाया नहीं खरीदना चाहता। हम व्यक्ति चाहते हैं लेकिन हमारी इच्छा बड़ी अनूठी है। हम ऐसा व्यक्ति चाहते हैं जो हमारी बात माने। इन दोनों बातों में कोई

मेल ही नहीं है। अगर वह व्यक्ति होगा तो अपने ढंग से जिएगा। और अगर हमारी बात मानेगा तो व्यक्ति नहीं होगा, उसमें कोई आत्मा नहीं होगी। वह मरी हुई चीज होगी, वह फर्नीचर की तरह होगा जिसे कहीं भी उठाकर रख दिया, वह वहीं रखा रह गया।

एक आदमी गरीब है और वह कहता है कि मैं इसलिए गरीब हूँ कि जितना धन मैं चाहता हूँ, वह मुझको नहीं मिलता। अगर मुझे उतना धन मिल जाए तो मैं दुखी न रहूँ। ठीक है उसे उतना धन दे दिया गया। पहली बात यह है कि उसे इतना धन मिलने पर उसकी इच्छा और आगे चली जायगी। वह कहेगा : इतने से क्या होता है, यह तो कुछ भी नहीं है। समझ लीजिए कि उसकी इच्छा है कि सारे जगत् का धन उसे मिल जाए और उसकी यह इच्छा पूरी हो जाय कि उसे सारी पृथ्वी का धन मिल जाए तो क्या आपको पता है कि वह कितना दुःख झेलेगा ? आपको कल्पना भी नहीं है। धनी होने का मजा ही इसमें था कि दूसरे धनियों को पीछे छोड़ा। धनी होने का मजा ही यह था कि प्रतियोगिता थी, प्रतिस्पर्धा थी कि उसमें हम जीतें। अगर एक व्यक्ति को सारी दुनिया का धन मिल जाए उसकी इच्छा के अनुकूल तो वह बिल्कुल उदास हो जाएगा क्योंकि न कोई प्रतिस्पर्धा है, न कोई प्रतिस्पर्धा का उपाय है। अगर सारी पृथ्वी का धन एक व्यक्ति को मिल जाए तो वह व्यक्ति आत्महत्या कर लेगा क्योंकि वह कहेगा अब क्या करें ? और वह बहुत उदास हो जाएगा।

सिकन्दर के सम्बन्ध में एक कथा है कि सिकन्दर से डायोजनीज ने कहा कि अगर तूने सारी पृथ्वी जीत ली तो फिर सोचा है कि क्या होगा ? सिकन्दर ने कहा कि अभी तो जीतना ही मुश्किल है। लेकिन डायोजनीज ने कहा कि अभी तो जीतना ही मुश्किल है। लेकिन डायोजनीज ने कहा कि समझ लें, जीत ही ली, फिर क्या होगा ? और कहानी है कि सिकन्दर एकदम उदास हो गया। उसने कहा कि यह मैंने कभी ख्याल नहीं किया। लेकिन सच ही अगर पूरी पृथ्वी जीत ली तो फिर ? वह डायोजनीज से पूछने लगा कि फिर क्या करूँगा ? डायोजनीज ने कहा कि मान लो कि तूने सारी पृथ्वी जीत ली तब तू सुखी होगा कि दुखी होगा ? यह भी दूर रहा। तू तो अभी दुःखी हो गया यह बात सोचकर कि सारी पृथ्वी जीत लो तो फिर ? फिर सवाल ही क्या रहा ? हमारी इच्छाएँ पूरी नहीं होतीं तो हम दुख पाते हैं, हमारी इच्छाएँ पूरी हो

जाए तो हम परम दुःख पाएँगे। लेकिन हम यही समझते हैं कि हम इसलिए दुःख पाते हैं कि हमारी इच्छाएँ पूरी नहीं होतीं।

टालस्टाय ने एक कहानी लिखी है। एक बाप की तीन बेटियाँ हैं। तीनों की अलग-अलग जगह शादियाँ हो गई हैं। एक लड़की किसान के घर है, एक लड़की कुम्हार के घर है, एक लड़की जुलाहे के घर है। वर्षा आने के दिन हैं लेकिन वर्षा नहीं आई। कुम्हार बड़ा खुश है। उसकी पत्नी भगवान् को धन्यवाद देती है कि भगवान् तेरा धन्यवाद क्योंकि हमारे सब घड़े बनाए हुए रखे थे। यदि वर्षा आती तो हम मर जाते। एक आठ दिन पानी रुक जाए तो हमारे सब घड़े पक जाएँ और बाजार चले जाएँ। लेकिन किसान की पत्नी बड़ी परेशान है क्योंकि खेत तैयार हैं, पानी नहीं गिर रहा है। अगर आठ दिन की देरी हो गई तो फिर फसल बोने में देरी हो जाएगी और हमारे बच्चे भूखे मर जाएँगे। तीसरी लड़की जुलाहे के घर है। उसके कपड़े तैयार हो गए हैं। उसने रंग कर लिया है और वह भगवान् से कहती है कि अब तेरी मर्जी। चाहे आज गिरा, चाहे कल गिरा; अब हमें कोई फर्क नहीं पड़ता है। कहानी कहती है कि भगवान् अपने देवताओं से पूछता है कि बोलो : मैं क्या करूँ ? मैं किसकी इच्छा पूरी करूँ। और ये तो सिर्फ तीन लोग हैं। अगर सारी पृथ्वी के लोगों की इच्छाएँ पूछी जाएँ और पूरी कर दी जाएँ इसी वक्त तो पृथ्वी समाप्त हो जाए।

हमारी इच्छाएँ और उनके दौर से हम क्या पाना चाह रहे हैं, हमें कुछ भी पता नहीं है लेकिन भ्रान्ति चलती चली जाती है क्योंकि हमारा ख्याल यह होता है कि दुःख मिल रहा है इसलिए कि इच्छा पूरी नहीं हुई। सुख मिलता अगर इच्छा पूरी हो जाती। लेकिन जो गहरे इस विचार में उतरेगा उसे पता चल जाएगा कि कोई इच्छा की पूर्ति सुख नहीं लाती है बल्कि वह बड़ा दुःख लाती है। अपूर्ति इतना दुःख लाती है तो पूर्ति कितना दुःख लाएगी। बीज को जब इतनी सुविधा मिली तो वह इतना जहरीला फल लाया है। पूरी सुविधा मिलती तो कितना जहरीला फल लाता।

तो प्रत्येक इच्छा दुःख में ले जाती है लेकिन सुख में ले आने का आश्वासन देती है। प्रत्येक नाव दुःख की है लेकिन सुख के, घाट उतार देने का वचन है। और हजार बार हम नाव में बैठते हैं रोज और हजार बार दुःख की नाव दुःख के घाट पर उतार देती है। लेकिन हम कहते हैं कि कहीं कोई भूल हो गई है

अन्यथा यह कैसे हो सकता है कि जो नाव सुख के घाट की ओर चली थी वह दुःख के घाट पर पहुँच जाए। लेकिन हम यह कभी नहीं पूछते कि कहीं नाव ही तो दुःख की नहीं है।

सवाल यह नहीं है कि आप कहाँ पहुँचेंगे। सवाल यह है कि आप कहाँ से चलते हैं, आप किस पर सवार हैं। यह सवाल ही नहीं कि फल कैसा होगा। सवाल यह है कि बीज कैसा बोया ? जीसस कहते हैं कि जो बोओगे वही तुम काटोगे लेकिन काटते वक्त पछताना मत। पछताना हो तो बोते वक्त। काटते वक्त पछताने का क्या सवाल ? फिर तो काटना ही पड़ेगा, लेकिन हम सब काटना कुछ और चाहते हैं, बोते कुछ और हैं। और यह जो द्वन्द्व है चित्त का कि बोते कुछ और हैं और काटना कुछ और चाहते हैं, हमें भटका सकता है अनन्त काल तक, अनन्त जन्मों तक, और इस भ्रम को तोड़ देने की जरूरत है—इससे जाग जाने की जरूरत है और एक सूत्र समझ लेने की जरूरत है कि जो हम बोते हैं वही हम काटते हैं। हो सकता है कि बीज पहचान में न आता हो। क्योंकि बीज जाहिर नहीं है, अप्रकट है, अभी अभिव्यक्त नहीं हुआ है। यहाँ एक बीज रखा है। हो सकता है न पहचान सकें कि इसका वृक्ष कैसा होगा ? क्योंकि बीज में वृक्ष है लेकिन दिखाई नहीं पड़ता।

जीसस कहते हैं कि जो तुम बोते हो वही तुम काटते हो। मैं इससे उल्टी बात भी जोड़ देना चाहता हूँ कि जो तुम काटो समझ लेना कि वही तुमने बोया था क्योंकि हो सकता है कि बोते वक्त तुम न पहचान सके हो। बोते वक्त पहचानना जरा कठिन भी है क्योंकि बीज में कुछ दिखाई नहीं पड़ता साफ-साफ। बीज क्या होगा ? जहर होगा कि अमृत होगा ? तो हो सकता है कि बोते वक्त भूल हो गई हो लेकिन काटते वक्त तो भूल नहीं हो सकती। हो सकता है कि नाव में बैठते वक्त ठीक से न समझ पाए हो कि नाव क्या है, लेकिन घाट पर उतरते वक्त तो समझ पाओगे कि घाट कैसा है। नाव ने कहाँ पहुँचा दिया है, यह तो समझ में आ जाएगा।

तो काटते वक्त देख लेना। अगर दुःख कटा हो तो जान लेना कि दुःख बोया था और तब जरा समझने की कोशिश करना कि आगे दुःख के बीज को तुम पहचान सको कि वह कौन-कौन से बीज हैं जो दुःख ले आते हैं। कितनी बार ईर्ष्या दुःख लाती है, कितनी बार घृणा दुःख लाती है, कितनी बार क्रोध दुःख लाता है। लेकिन हम हैं कि फिर उन्हीं का बीज बोए चले जाते हैं ? और

बार-बार हम पछताते हैं कि यह दुःख क्यों? दुःख हमें झेलना नहीं और बीज दुःख के ही बोते हैं। और इस द्वन्द्व में कितना समय हम व्यतीत करते हैं, कितने जन्म और कितने जीवन। लेकिन द्वन्द्व हमें दिखाई नहीं पड़ता क्योंकि हमारी खूबी यह है, हमारा मजा यह है, हमारी आत्मवंचना यह है कि हम सिर्फ जो काटता है उस वक्त नाराज होते हैं कि यह कैसी चीज कटी। लेकिन जो हमने बोया है, हम उसका ख्याल ही नहीं करते।

अगर सही नहीं कटा है तो समझना कि सही नहीं बोया था। और दोनों के तारतम्य को समझ लेना जरूरी है ताकि कल हम सही बोएँ। जिस घाट पर उतरे हैं, वहाँ खतरा है हमारी नाव को लेकिन हम कल फिर उसी नाव पर बैठ गये हैं और दूसरे घाट पर उतरने की घटना फिर घटती है। और हैरानी यह है कि आदमी रोज-रोज वही-वही भूल करता है, नयी भूलें नहीं करता। नयी भूल भी कोई करे तो कहीं पहुँच जाएँ। भूल भी पुरानी ही करता है। लेकिन कुछ ऐसा है कि पीछे जो हमने किया उसे हम भूल जाते हैं और फिर से हम वही सोचने लगते हैं।

एक आदमी ने अमेरिका में आठ विवाह किए। उसने पहला विवाह किया बड़ी आशाओं से जैसा कि सभी लोग करते हैं। लेकिन सब आशाएँ महीने में मिट्टी में मिल गईं। तो उसने सोचा कि औरत ठीक नहीं मिली जैसा कि सभी आदमी समझते हैं। उसकी सभी आशाएँ धूमिल हो गईं। तो उसने तलाक दे दिया। फिर साल भर लगाकर उसने दूसरी स्त्री बामुश्किल खोजी और वह अब बड़ा खुश था क्योंकि अब पहले अनुभव के बाद उसने खोज-बीन की थी। फिर उतनी आशाओं के साथ उसने पाया कि छः महीने में सब गड़बड़ हो गया है। तो उसने समझा कि फिर स्त्री ठीक नहीं मिली है।

इस आदमी ने आठ शादियां की जीवन में और हर बार यही हुआ। आठवीं शादी के बाद वह एक मनोवैज्ञानिक के पास गया और कहा कि मैं बड़ी मुश्किल में पड़ गया हूँ। मैं आठ विवाह कर चुका और जिन्दगी गंवा चुका लेकिन हर बार वैसी की वैसी औरत मिली। तब वैज्ञानिक ने कहा कि वह तो ठीक है लेकिन तुम्हारी खोजबीन का मापदण्ड क्या था? अगर कसौटी वह थी जिसने तुमने पहली औरत को कसा था तो कसौटी फिर भी वही रही होगी जिससे तुमने दूसरी औरत को कसा और हर बार तुम उस टाइप की स्त्री को खोज लाए जिस टाइप की स्त्री को तुम खोज सकते थे। तुम जिस तरह के

आदमी हो उस तरह का आदमी जैसी स्त्री को खोज सकता था, तुम खोज लाए।

हो सकता है कि बहुत पुराने दिनों में इसी अनुभव के आधार पर एक ही विवाह की व्यवस्था कर ली गई हो। क्योंकि एक आदमी एक ही तरह की स्त्रियां खोज सकता है साधारणतः यानी इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। हर बार नाप बदल जाएगा, शकल बदल जायगी लेकिन स्त्री वह वैसी ही खोज लाएगा जैसा उसका दिमाग है। उस दिमाग से वह वैसी ही स्त्री फिर खोज लाएगा। फिर बार-बार फिजूल की परेशानी में क्यों पड़ेगा। कुछ समझदार लोगों ने कहा है कि एक ही विवाह काफी है, एक ही दफा खोज लो वही बहुत है। और यह भी हो सकता है कि उसी अनुभव के आधार पर व्यक्ति खोजेगा जो उसका पहला अनुभव होगा, इसलिए उसमें भूल हो जाना निश्चित है। इसलिए मां बाप जिन्हें ये अनुभव हो चुके हैं उसके लिए खोजते हैं। जो इस अनुभव से गुजर चुके हैं और बेवकूफी भोग चुके हैं और ना समझी झेल चुके हैं, वे शायद ज्यादा ठीक से खोज सकें। और आदमी की जो पहली खोज होगी वह उसमें भूल करेगा। इसलिए हो सकता है कि वह मां-बाप पर छोड़ दिया गया हो।

इधर निरन्तर अनुभव के बाद कुछ मनोवैज्ञानिक अमेरिका में यह कहने लगे हैं कि बाल-विवाह शुरू कर दो। यह बात भी दुखद है कि मां-बाप बच्चे का विवाह तय करें। लेकिन जैसी स्थिति है उससे यही सुखद मालूम पड़ता है। इससे भिन्न होना अभी कठिन है और यह हो सकता है कि जब हम दुःख के बीजों को समझ लें तो हम जो खोज करें वह और तरह की हो। हम जिस नाव पर सवार हों वह और तरह की हो जीवन के सब मामलों में।

सुख दुःख को अलग मत समझना। सुख दुःख को एक समझना। हां, जरा देरी लगती है दोनों को मिलने में। फासला है। फासले की वजह से दो समझ लिए जाते हैं। मुष्टि छोटी है और फासला बड़ा है। हमको कमरे की दोनों दीवारें दिखाई पड़ती हैं। और हम जानते हैं कि दोनों दीवारें इसी कमरे की हैं और हम ऐसी भूल न करेंगे कि यह दीवार बचा लें और यह मिटा दें। क्योंकि ऐसी भूल हम करेंगे तो दीवार भी गिरेगी और मकान भी गिरेगा। अगर दीवारें गिरानी हों तो दोनों को गिरा दो, न गिरानी हों तो दोनों को बचने दो क्योंकि दोनों दीवारें दिखाई पड़ती हैं। लेकिन कमरा इतना बड़ा हो सकता है कि जब भी हमें दिखाई पड़ती हो एक ही दीवार दिखाई पड़ती हो।

दूसरी दीवार इतने फासले पर है कि हम कभी सोच ही न पाते हों कि यह कमरा और यह दीवार उसी दीवार से जुड़े हैं और यह वही कमरा है। उसमें फासले बड़े हैं और आदमी की दृष्टि बड़ी छोटी है। ज्यादा देर तक वह देख नहीं पाता, उसे खबर नहीं हो पाती कि कब मैंने क्या बोया था, कब मैं क्या काट रहा हूँ। यह दूसरी दीवार है। और ये दोनों एक हैं।

आदमी को ठीक से दृष्टि मिल जाए दूर तक देखने की तो हम उसे अपने सुखों की आकांक्षा में घिरा हुआ पाएंगे। हमारे सब दुःख हमारे सुख की आशाओं में ही पैदा किए गए हैं। हमारे सब दुःख हमने ही सुख की सम्भावनाओं में बोए हैं। काटते वक्त दुःख निकलें, सम्भावनाएं सुख की हैं। बीज हमने दुःख के ही बोए हैं। इसे हम देखें, अपनी जिन्दगी में खोजें। अपने दुःख को देखें और पीछे लौट कर देखें कि हम कैसे उनको बोते चले आए हैं। और कहीं ऐसा तो नहीं कि आज भी हम वही कर रहे हैं।

आखिर यह दिखाई पड़ जाए तो तुम सुख की आशा को छोड़ दोगे। सुख की आशा एक दुराशा है, असम्भावना है। अगर ऐसा दिखाई पड़ जाए कि जीवन में सुख की सम्भावना ही नहीं है, दुःख ही होगा चाहे तुम उसे कितना ही सुख कहो, आज नहीं कल वह दुःख हो जाएगा। अगर जिन्दगी में दुःख की ही सम्भावना है तो सुख की आशा छूट जाती है। और जिस व्यक्ति की आशा छूट जाती है वह दुःख के साथ सीधा खड़ा हो जाता है। भागने का उपाय न रहा। यहां दुःख है, और यहां मैं हूं और हम आमने-सामने हैं। और मजे की बात यह है कि जो आदमी दुःख के सामने खड़ा हो जाता है उसका दुःख ऐसे तिरोहित हो जाता है कि जैसे कभी था ही नहीं। तब दुःख नहीं जीत पाता क्योंकि तब दुःख के जीतने की तरकीब ही गई। तरकीब थी सुख की सम्भावनाओं में। दुःख के जीत की जो तरकीब थी, वह थी सुख की सम्भावना में। वह सुख की सम्भावना नहीं रही। दुःख यहां सामने खड़ा है और मैं यहां खड़ा हूँ और अब कोई उपाय नहीं है, न मेरे भागने का, न दुःख के भागने का। दुःख और हम हैं आमने-सामने। यह साक्षात्कार है। इस साक्षात्कार में जो रहस्यपूर्ण घटना घटती है वह यह है कि दुःख तिरोहित हो जाता है। मैं अपने में वापिस लौट आता हूं क्योंकि सुख पर जाने की चेष्टा छोड़ देता हूं। सुख में जाने का एक रास्ता था, वह रास्ता मैंने छोड़ दिया है। अब दुःख के सामने सीधा खड़ा हो गया हूं। अब यह एक ही रास्ता है कि मैं अपने में लौट आऊं क्योंकि दुःख में तो कोई रह ही नहीं सकता, या तो सुख की आशा में भागेगा या अपने पर लौट

जाएगा; या आनन्द में चला जाएगा या सुख में चला जाएगा। सुख में हम जाते रहे हैं। और आनन्द में नहीं पहुँच पाए हैं। अगर दुःख में हम सीधे खड़े हो जाएं तो हम आनन्द में पहुँच जाते हैं।

आनन्द सुख में नहीं है। आनन्द सुख दुःख का अभाव है। आनन्द में न सुख है, न दुःख है। इसलिए बुद्ध ने आनन्द शब्द का प्रयोग नहीं किया है। बुद्ध ने बहुत समझ कर शब्दों का प्रयोग किया है। इतनी समझ किसी आदमी ने नहीं दिखाई क्योंकि आनन्द में कितना ही समझाओ सुख का भाव छुपा हुआ है। यानी कितना भी मैं समझाऊं कि आनन्द सुख नहीं है आप फिर भी कहेंगे कि आनन्द कैसे मिले ? और जब आप कहेंगे तब आपके मन में यही होगा कि सुख कैसे मिले ? शब्द बदल लेंगे लेकिन भाव सुख का ही रहेगा तो आप कहेंगे कि ठीक है, फिर तरकीब बताइए कि आनन्द कैसे पाया जाए। दुःख है तो दुःख से कैसे बचा जाए ? कोई विधि बताइये कि हम आनन्द कैसे पा लें और आनन्द तो पाना जरूरी है। और अगर गहरे में देखेंगे तो आप आनन्द शब्द का प्रयोग ठीक नहीं कर रहे हैं आप कह रहे हैं कि सुख पाना जरूरी है। सुख कैसे पाया जाए ? दुःख से कैसे बचा जाए ?

बहुत कठिन है आदमी को समझाना कि आनन्द सुख नहीं है और आमतौर पर हम दोनों का पर्यायवाची प्रयोग करते हैं कि आदमी सुखी है, बड़े आनन्द में है। बुद्ध ने इसलिए प्रयोग किया 'शांति'। वह आनन्द नहीं कहते हैं। आनन्द शब्द ठीक नहीं है, खतरनाक है। शांति में भाव बिल्कुल दूसरा है। शांति का अर्थ है न सुख न दुःख, सब शान्त। कोई तरंग नहीं है न दुःख की, न सुख की। न सुख का भाव है न दुःख का भाव है। न कहीं जाना है, न कहीं आना है। ठहर गया है सब। रुक गए हैं, मौन हैं, चुप हैं। झील पर एक भी लहर नहीं है। इसलिए बुद्ध कहते हैं : मैं आनन्द का आश्वासन नहीं देता। क्योंकि मैं तुम्हें आनन्द का आश्वासन दूँगा और तुम सुख का आश्वासन लोगे। कठिनाई यह है कि बात आनन्द की की जाएगी, समझी सुख की जाएगी क्योंकि हमारी आकांक्षा सुख की है।

२६

समापन प्रवचन

महावीर पर इतने दिनों तक आनन्दपूर्ण बात की। यह ऐसे ही था जैसे मैं अपने सम्बन्ध में बात कर रहा हूँ : पराये के सम्बन्ध में बात नहीं की जा सकती। दूसरे के सम्बन्ध में कुछ कहा नहीं जा सकता। अपने सम्बन्ध में ही सत्य कहा जा सकता है। अब महावीर पर इस भाँति मैंने बात नहीं की, जैसे वे कोई दूसरे और पराये हैं। जैसे हम अपने आन्तरिक जीवन के सम्बन्ध में ही बात कर रहे हों ऐसा ही मैंने उन पर बात की है। उन्हें केवल निमित्त माना है और उनके चारों ओर उन सारे प्रश्नों पर चर्चा की है जो प्रत्येक साधक के मार्ग पर अनिवार्य रूप से खड़े हो जाते हैं। महत्त्वपूर्ण भी यही है।

महावीर एक दार्शनिक की भाँति नहीं हैं। वे एक सिद्ध, एक महायोगी हैं। दार्शनिक तो बैठकर विचार करता है जीवन के सम्बन्ध में। योगी जीता है जीवन में। दार्शनिक पहुँचता है सिद्धान्तों पर, योगी पहुँचता है सिद्धावस्था पर। सिद्धान्त बातचीत है, सिद्धावस्था उपलब्धि है। महावीर पर ऐसी ही बात की है जैसे वे कोई मात्र कोरे विचारक नहीं हैं। और इसलिए भी बात की है कि जो इस बात को सुनेंगे, समझेंगे, वे भी जीवन में कोरे विचारक न रह जाएँ। विचार अद्भुत हैं लेकिन पर्याप्त नहीं। विचार कीमती है, लेकिन कहीं पहुँचाता नहीं। विचार से ऊपर उठे बिना कोई भी व्यक्ति आत्म-उपलब्धि तक नहीं पहुँचता है।

महावीर कैसे विचार से उठे, कैसे ध्यान से, कैसी समाधि से ये सब बातें हमने कीं, कैसे महावीर को परम जीवन उपलब्ध हुआ और कैसे परम जीवन की उपलब्धि के बाद भी वे अपनी उपलब्धि की खबर देने वापिस लौट आए—ऐसी करुणा की भी हमने बात की। जैसे कोई नदी सागर में गिरने के पहले

लौट कर देखे एक क्षण को, ऐसे ही महावीर ने अपनी अनन्त जीवन की यात्रा के अन्तिम पड़ाव पर पीछे लौट कर देखा है। लेकिन उनके पीछे लौटकर देखने को केवल वे ही लोग समझ सकते हैं, जो अपने जीवन की अन्तिम यात्रा की ओर आगे देख रहे हैं। महावीर पीछे लौटकर उन्हें देखें लेकिन हम उन्हें तभी समझ सकते हैं जब हम भी अपने जीवन के आगे के पड़ाव की ओर देख रहे हों। अन्यथा महावीर को नहीं समझा जा सकता।

साधारणतः महावीर को दो हजार पाँच सौ वर्ष हुए। वह अतीत की घटना है। इतिहास यही कहेगा। मैं यह नहीं कहूँगा। साधक के लिए महावीर भविष्य की घटना है। उसके जीवन में आने वाले किसी क्षण में वह वहाँ पहुँचेगा जहाँ महावीर पहुँचे हैं। और जब तक हम उस जगह न पहुँच जाएँ तब तक महावीर को समझा नहीं जा सकता है। क्योंकि उस अनुभूति को हम कैसे समझेंगे जो अनुभूति हमें नहीं हुई है। अन्धा कैसे समझेगा प्रकाश के सम्बन्ध में। और जिसने कभी प्रेम नहीं किया वह कैसे समझेगा प्रेम के सम्बन्ध में।

हम उतना ही समझ सकते हैं जितने हम हैं, जहाँ हम हैं। हमारे होने की स्थिति से हमारी समझ ज्यादा नहीं होती। इसलिए महापुरुष के प्रति अनिवार्य होता है कि हम नासमझी में रहें। महापुरुष को समझना अत्यन्त कठिन है बिना स्वयं महापुरुष हुए। जब तक कि कोई व्यक्ति उस स्थिति में खड़ा न हो जाए जहाँ कृष्ण है, जहाँ क्राइस्ट है, जहाँ मुहम्मद हैं, जहाँ महावीर हैं तब तक हम समझ नहीं पाते। और जो हम समझते हैं वह अनिवार्य रूपेण भूल भरा होता है। इसलिए एक बात ध्यान में रखनी चाहिए।

महावीर को समझना हो तो सीधे ही महावीर को समझ लेना सम्भव नहीं है। महावीर को समझना हो तो बहुत गहरे में स्वयं को समझना और रूपान्तरित करना ज्यादा जरूरी है। लेकिन हम तो शास्त्र से समझने जाते हैं और तब भूल हो जाती है। शब्द से, सिद्धान्त से, परम्परा से समझने जाते हैं तब भूल हो जाती है। हम तो स्वयं के भीतर उतरेंगे तो उस जगह पहुँचेंगे जहाँ महावीर कभी पहुँचे हों। तभी हम समझ पाएँगे।

मैंने जो बातें कीं इन दिनों में, उन बातों का शास्त्रों से कोई सम्बन्ध नहीं है। इसलिए हो सकता है कि बहुतों को वे बातें कठिन भी मालूम पड़ें, स्वीकार-योग्य भी न हों, जिनकी शास्त्रीय बुद्धि है; उन्हें अत्यन्त अजीब मालूम पड़ें और वे शायद पूछें कि शास्त्रों में यह सब कहाँ है तो उनसे मैं पहले ही कह देना

चाहता हूँ कि शास्त्रों में हो या न हो, जो स्वयं में खोजेगा वह इनको पा लेगा और स्वयं से बड़ा न कोई शास्त्र है और न कोई दूसरी आप्तता है।

वे मुझसे यह भी पूछ सकते हैं कि मैं किस अधिकार से कह रहा हूँ। तो उनसे पहले यह भी कह देना उचित है कि मेरा कोई शास्त्रीय अधिकार नहीं है। मैं शास्त्रों का विश्वासी नहीं हूँ बल्कि जो शास्त्र में लिखा है, वह मुझे इसीलिए संदिग्ध हो जाता है कि शास्त्र में लिखा है। क्योंकि वह लिखने वाले के चित्त की खबर देता है। मगर जिसके सम्बन्ध में लिखा गया है, उसके चित्त की नहीं। फिर हजारों वर्षों की धूल उस पर जम जाती है। और शास्त्रों पर जितनी धूल जम गई है उतनी किसी और चीज पर नहीं जमी है।

मुझे एक घटना स्मरण आती है। एक आदमी एक घर में 'शब्दकोष' बेचने गया। घर की गृहिणी ने उसे टालने के लिए उससे कहा कि 'शब्दकोष' हमारे घर में है। वह सामने टेबिल पर रखा है। लेकिन उस आदमी ने कहा : देवी जी क्षमा करें, वह कोई शब्दकोष नहीं है, वह कोई धर्मग्रन्थ मालूम होता है। स्त्री बड़ी परेशान हुई। वह धर्मग्रन्थ था। पर दूर से टेबिल पर रखी किताब को कैसे वह व्यक्ति पहचान गया। उस देवी ने पूछा : कैसे आप जान गये कि वह धर्मग्रन्थ है। उसने कहा उस पर जमी हुई धूल बता रही है। शब्दकोष पर धूल नहीं जमती। उसे कोई रोज खोलता है, देखता है, पढ़ता है। उसका उपयोग होता है। उस पर इतनी धूल जमी है कि यह निश्चित ही धर्मग्रन्थ है।

सब धर्मग्रन्थों पर धूल जम जाती है क्योंकि न तो हम उनसे जीते हैं, न जानते हैं। फिर धूल इकट्ठी होती चली जाती है। सदियों की धूल इकट्ठी होती चली जाती है। उस धूल में से पहचानना मुश्किल हो जाता है कि क्या-क्या है? इसलिए मैंने महावीर और अपने बीच शास्त्र को नहीं लिया है। उसे अलग ही रखा है। महावीर को सीधा देखने की कोशिश की है। और सीधा हम उसे ही देख सकते हैं जिससे हमारा प्रेम हो। जिससे हमारा प्रेम न हो उसे हम कभी सीधा नहीं देख सकते। और वही हमारे सामने पूरी तरह प्रकट होता है जिससे हमारा प्रेम हो। जैसे सूरज के निकलने पर कली खिल जाती है और फूल बन जाती है। ऐसा ही जिससे भी हम आत्यन्तिक रूप से प्रेम कर सकें, उसका जीवन बन्द कली से खिले फूल का जीवन हो जाता है। जरूरत है कि हम प्रेम कर पाएँ।

ज्ञान की जरूरत कम है, ज्ञान तो दूर ही कर देता है और ज्ञान से शायद ही कोई किसी को जान पाता हो। सूचनाएँ बाधा डाल देती हैं। सूचनाओं से शायद ही कोई कभी किसी से परिचित हो पाता हो। वे बीच में खड़ी हो जाती हैं। वे पूर्वाग्रह बन जाती हैं, पक्षपात बन जाती हैं। हम पहले से ही जानते हुए होते हैं। जो हम जानते हुए होते हैं वही हम देख भी लेते हैं। जो महावीर को भगवान् मानकर जाएगा उसे महावीर में भगवान् भी मिल जाएँगे। लेकिन वह उसके अपने आरोपित भगवान् हैं। जो महावीर को नास्तिक, महा-नास्तिक मान कर जाएगा उसे नास्तिक, महानास्तिक भी मिल जाएगा। वह नास्तिकता उसकी अपनी रोपी हुई होगी। जो महावीर को मान कर जाएगा वही पा लेगा। क्योंकि गहरे में हम अन्ततः अपनी मान्यता को निर्मित कर लेते हैं और खोज लेते हैं, और व्यक्ति इतनी बड़ी घटना है कि उसमें सब मिल सकता है। फिर हम चुनाव करते हैं। जो हम मानते जाते हैं, वह हम चुन लेते हैं। और तब जो हम जानते हैं वह जानते हुए लौटना नहीं है। वह हमारी ही मान्यता की प्रतिध्वनि है।

प्रेम के जानने का रास्ता दूसरा है, ज्ञान के जानने का रास्ता दूसरा है। ज्ञान पहले जान लेता है, फिर खोज पर निकलता है। प्रेम जानता नहीं। खोज पर निकल जाता है—अज्ञान में, अपरिचित में। प्रेम सिर्फ अपने हृदय को खोल लेता है, प्रेम सिर्फ दर्पण बन जाता है कि जो भी उसके सामने आएगा, जो भी जो है, वही उसमें प्रतिफलित हो जाएगा। इसलिए प्रेम के अतिरिक्त कोई कभी किसी को नहीं जान सका है। हम सब ज्ञान के मार्ग से ही जानते हैं, जीते हैं इसलिए नहीं जान पाते। महावीर को प्रेम करेंगे तो पहचान जाएँगे, कृष्ण को प्रेम करेंगे तो पहचान जाएँगे।

और भी एक मजे की बात है कि जो महावीर को प्रेम करेगा, वह कृष्ण को, क्राइस्ट को, मुहम्मद को प्रेम करने से बच नहीं सकता। अगर महावीर को प्रेम करने वाला ऐसा कहता हो कि महावीर से मेरा प्रेम है, इसलिए मैं मुहम्मद से कैसे प्रेम करूँ, तो जानना चाहिए कि प्रेम उसके पास नहीं है। क्योंकि अगर महावीर से प्रेम होगा तो जो उसे महावीर में दिखाई पड़ेगा वही बहुत गहरे में मुहम्मद में, कृष्ण में, क्राइस्ट में, कनफ्यूसियस में भी दिखाई पड़ जाएगा, जरथुस्त में भी दिखाई पड़ जाएगा। प्रेम प्रत्येक कली को खोल लेता है जैसे सूरज प्रत्येक कली को खोल लेता है। पंखुड़ियाँ खुल जाती हैं। और तब अन्त में सिर्फ फूल का खिलना रह जाता है। पंखुड़ियाँ गैर अर्थ की हो जाती हैं, सुगंध

बेमानी हो जाती है, रंग भूल जाते हैं। और अन्ततः प्रत्येक फूल में जो घटना गहरी रह जाती है, वह है उसका खिल जाना।

महावीर खिलते हैं एक ढंग से, कृष्ण खिलते हैं दूसरे ढंग से। लेकिन जिसने इस फूल के खिलने को पहचान लिया वह इस खिलने को सारे जगत् में सब जगह पहचान लेगा। इन व्यक्तियों में से एक से भी कोई प्रेम कर सके तो वह सबके प्रेम में उतर जाएगा, लेकिन दिखाई उल्टा पड़ता है। मुहम्मद को प्रेम करने वाला महावीर को प्रेम करना तो दूर, घृणा करता है। बुद्ध को प्रेम करने वाला, क्राइस्ट को प्रेम नहीं करता है। तब हमारा प्रेम संदिग्ध हो जाता है। इसका अर्थ यह है कि हमारा प्रेम, प्रेम नहीं है। शायद यह भी गहरे में कोई स्वार्थ है, कोई सौदा है। शायद हम अपने प्रेम के द्वारा भी महावीर से कुछ पाना चाहते हैं।

शायद हमारा प्रेम भी एक गहरे सौदे का निर्णय है कि हम इतना प्रेम तुम्हें देंगे, तुम हमें क्या दोगे। और तब हम अपने प्रेम में संकीर्ण होते चले जाते हैं और तब प्रेम इतना सीमित हो जाता है कि घृणा में और प्रेम में कोई फर्क नहीं रह जाता। क्योंकि जो प्रेम एक पर प्रेम बनता हो, और शेष पर घृणा बन जाता हो वह एक पर भी कितने दिन प्रेम रहेगा! घृणा हो जाएगी बहुत। महावीर को प्रेम करने वाला महावीर को प्रेम करेगा और शेष को अप्रेम करेगा। अप्रेम इतना ज्यादा हो जाएगा कि वह प्रेम का बिन्दु कब विलीन हो जाएगा, पता भी नहीं चलेगा। घृणा के बड़े सागर में प्रेम की छोटी सी बूँद को कैसे बचाया जा सकता है। वह तो प्रेम के बड़े सागर में ही प्रेम की बूँद बच सकती है। घृणा के बड़े सागर में प्रेम की बूँद नहीं बचाई जा सकती। लेकिन हम चाहते हैं कि हमारे प्रेम की बूँद बच जाए और शेष घृणा का सागर हो।

एक मुसलमान फकीर औरत हुई राबिया। कुरान में एक जगह वचन आता है : "शैतान को घृणा करो।" तो उसने उस वचन पर स्याही फेर दी। लेकिन कुरान में कोई सुधार करे, यह तो उचित नहीं है। हसन नाम का एक फकीर उसके घर मेहमान था। सुबह उसने कुरान पढ़ने को उठाई तो देखा उसमें सुधार किया गया है। तो उसने कहा कि यह कौन नासमझ है जिसने कुरान में सुधार किया है। कुरान में तो सुधार नहीं किया जा सकता। राबिया ने कहा कि मुझ को ही सुधार करना पड़ा।

हसन ने कहा कि तू नास्तिक मालूम होती है। कुरान और सुधार करने की तेरी हिम्मत! यह तो बड़ा पाप है। राबिया ने कहा : पाप हो या नहीं,

मुझे पता नहीं। उसमें एक वाक्य था। लिखा है कि शैतान को घृणा करो। लेकिन मेरे मन से तो घृणा चली गई। शैतान भी मेरे सामने खड़ा हो जाए तो मैं घृणा करने में असमर्थ हूँ। मैं शैतान को भी प्रेम ही कर सकती हूँ। यह अब अनिवार्यता हो गई है क्योंकि प्रेम के अतिरिक्त मेरे हृदय में कुछ नहीं रहा है। शैतान के लिए भी घृणा कहाँ से लाऊँ? और राबिया ने कहा कि एक नई बात तुम्हें बताऊँ कि जब तक मेरे मन में घृणा थी तब तक परमात्मा के लिए भी प्रेम करने का उपाय न था। क्योंकि हृदय में घृणा हो तो परमात्मा के लिए प्रेम कैसे लाओगे? प्रेम आएगा कहाँ से, आसमान से तो नहीं आएगा, हृदय से आएगा। और एक ही हृदय में दोनों का अस्तित्व साथ-साथ नहीं होता। जिस हृदय में घृणा है वहाँ प्रेम का निवास नहीं और जिस हृदय में प्रेम है वहाँ घृणा का निवास नहीं। वह ऐसे ही है कि जिस कमरे में उजाला है वहाँ अंधकार नहीं, जिस कमरे में अँधेरा है वहाँ उजाला नहीं। तो राबिया ने कहा कि मैं बड़ी मुश्किल में पड़ गई हूँ। अगर शैतान को घृणा करनी है तो मैं चाहे मानूँ या न मानूँ, परमात्मा को भी घृणा करती रहूँगी। नाम प्रेम के दूँगी लेकिन वे झूठे होंगे क्योंकि घृणा करने वाले चित्त में प्रेम कहाँ? और अगर मुझे परमात्मा को प्रेम करना है तो मुझे शैतान को भी प्रेम करना पड़ेगा। क्योंकि प्रेम करने वाले हृदय में घृणा की सम्भावना कहाँ? इसलिए मुझे यह लकीर काट देनी पड़ी। भले इसके लिए कितना ही पाप लगे अब इसके लिए कोई उपाय नहीं।

यह राबिया ने ठीक कहा। या तो हमारा हृदय प्रेमपूर्ण होगा या घृणापूर्ण होगा। यह असम्भव है कि एक व्यक्ति महावीर को प्रेम करता हो और बुद्ध को प्रेम न करे। महावीर की बात दूसरी है, सच तो यह है कि एक व्यक्ति प्रेम करता हो तो वह प्रेम ही कर सकता है। बुद्ध, महावीर का भी सवाल नहीं, साधारण जनों को भी प्रेम कर सकता है। यह प्रेम करना अब कोई सौदा नहीं है। अब यह उसका स्वभाव है। अब कोई उपाय ही नहीं है। अब वह प्रेम ही करेगा जैसे कि रास्ते के किनारे एक फूल खिला हो। फूल से सुगन्ध गिरती हो। रास्ते से कौन निकलता है यह फूल थोड़े ही पूछता है। अच्छा कि बुरा, अपना कि पराया, मित्र कि शत्रु—फूल नहीं पूछता। फूल की सुगन्ध रास्ते पर फैलती रहती है और जो भी रास्ते से निकलता है उसको सुगन्ध मिलती है। ऐसा भी नहीं कि फूल जब चाहे सुगन्ध को रोक ले, जब चाहे छोड़ दे। ऐसा भी नहीं है कि रास्ता खाली हो जाए तो फूल अपनी सुगन्ध को रोक ले। खाली रास्ते पर भी फूल की सुगन्ध गिरती रहती है क्योंकि सुगन्ध फूल का स्वभाव है।

जिस दिन प्रेम स्वभाव हो जाता है, उस दिन हम प्रेम ही कर सकते हैं। इसलिए मैं यह कहना चाहता हूँ कि अगर प्रेम सीमित और संकीर्ण हो तो जानना कि वह प्रेम नहीं है। वह घृणा का ही एक रूप है। और इसलिए अनुयायी कभी प्रेमपूर्ण नहीं होता। अनुयायी कभी प्रेमपूर्ण नहीं होता क्योंकि जो प्रेमपूर्ण है, वह कैसे अनुयायी होगा ? या तो वह सबका अनुयायी होगा या किसी का अनुयायी नहीं होगा। उसका प्रेम इतना विस्तीर्ण है कि वह किसके पीछे जाएगा ? क्योंकि एक के पीछे जाने में दूसरे को छोड़ना पड़ता है और एक के पीछे जाने में हजार को छोड़ना पड़ता है। और जिसका प्रेम इतना बड़ा है वह किसी को भी नहीं छोड़ सकता, वह किसी के भी पीछे नहीं जाता। वह अनुयायी नहीं रह जाता।

इसलिए मैंने कहा कि मैं महावीर का अनुयायी नहीं हूँ, न बुद्ध का, न कृष्ण का। क्योंकि किसी एक के पीछे जाने से सबको छोड़े बिना कोई रास्ता नहीं। इसलिए मैं किसी के पीछे नहीं गया हूँ और न कहता हूँ कि कोई किसी के पीछे जाए। और भी एक मजे की बात है कि जो किसी के पीछे जाएगा, वह अपने भीतर नहीं जा सकता। क्योंकि पीछे जाने की दिशा होती है बाहर, और भीतर जाने की दिशा होती है भीतर। तो जो किसी का भी अनुयायी है, वह आत्म-अनुभव को उपलब्ध नहीं हो सकता क्योंकि उसे जाना पड़ता है किसी के पीछे। और आत्म-अनुभव में सबको छोड़कर उसे जाना है स्वयं के भीतर; इसलिए मैं कहता हूँ कि जो सबको प्रेम करता है उसे किसी को पकड़ने का उपाय नहीं रहता। सब छूट जाते हैं और वह अपने भीतर जा सकता है।

यह भी समझ लेने की बात है कि प्रेम अकेला मुक्त करता है। घृणा बाँधती है और जो प्रेम भी बाँधता हो, मैं कहता हूँ, वह भी घृणा का ही रूप है। क्योंकि प्रेम बाँधता ही नहीं; प्रेम एकदम मुक्त कर देता है। प्रेम का कोई बंधन नहीं है। प्रेम न किसी पर ठहरता है न किसी पर रुकता है, न किसी को रोकता है न किसी को ठहराता है। प्रेम की न कोई शर्त है, न कोई सौदा है। प्रेम तो परम मुक्ति है।

एक को भी अगर हम प्रेम कर लें तो हम पाएँगे कि एक जो था वह द्वार बन गया अनेक का। और कब एक मिट गया और प्रेम अनेक पर पहुँच गया है, कहना कठिन है। पर हम एक को भी प्रेम नहीं कर पाते। क्योंकि हम प्रेमपूर्ण नहीं हैं। हम ज्ञानपूर्ण हैं किन्तु प्रेमपूर्ण बहुत कम हैं। कारण कि ज्ञान संग्रह

करना पड़ता है और प्रेम बाँटना पड़ता है। जो चीज संग्रह करनी पड़ती है वह हम कर लेते हैं क्योंकि उससे हमारे अहंकार की तृप्ति मिलती है। हम धन इकट्ठा कर लेते हैं, ज्ञान इकट्ठा कर लेते हैं, त्याग इकट्ठा कर लेते हैं, जो भी चीज हम इकट्ठी कर सकते हैं, कर लेते हैं। लेकिन प्रेम का मामला उल्टा है। प्रेम अकेली घटना है जिसे हम इकट्ठी नहीं कर पाते, जिसको बाँटना पड़ता है। प्रेम को आप इकट्ठा नहीं कर सकते। एक आदमी धन को इकट्ठा करके धनी हो जाएगा। लेकिन ऐसे ही कोई आदमी प्रेम को इकट्ठा करके प्रेमी नहीं हो सकता। प्रेम की धारा ठीक उल्टी है। जितना बाँटो, उतना प्रेम। जितना इकट्ठा करो उतना कम। जिसकी इकट्ठी करने की वृत्ति है, वह प्रेमी नहीं हो सकता।

पंडित की प्रवृत्ति इकट्ठी करने की होती है। वह ज्ञान इकट्ठा कर लेता है। ज्ञान इकट्ठा किया जा सकता है और फिर वह महावीर को या बुद्ध को या कृष्ण को जानने में असमर्थ हो जाता है। सच बात तो यह है कि फिर वह कृष्ण या बुद्ध या महावीर को जानता नहीं बल्कि अपने ज्ञान के आधार पर पुनः निर्मित करता है। वह फिर एक नया आदमी खड़ा कर लेता है जो कि कभी था ही नहीं। वह उसके ज्ञान के अनुकूल व्यक्ति बना लेता है। इसलिए सभी महापुरुषों का चित्र झूठा हो जाता है। उन सबकी जो पीछे स्मृति बनती है, वह झूठी हो जाती है। वह हमारे द्वारा बनाई गई होती है। ज्ञान से कोई द्वार नहीं है किसी को समझने का, प्रेम से द्वार है। क्योंकि प्रेम नहीं कहता कि तुम ऐसे हो तो ही मैं मानूंगा। प्रेम कहता है तुम जैसे हो, उसको मैं प्रेम करने के लिए तैयार हूँ। प्रेम कहता ही नहीं कि तुम ऐसे हो तो मैं प्रेम करूँगा। अगर मैं महावीर को प्रेम करता हूँ तो वह मुझे कपड़े पहने हुए भी मिल जाएँ तो भी मैं प्रेम करूँगा और वह नंगे भी मिल जाएँ तो भी मैं प्रेम करूँगा। लेकिन एक अनुयायी है। वह कहता है कि महावीर अगर नग्न हैं तो ही मैं प्रेम करूँगा। अगर वह नग्न नहीं हैं तो प्रेम नहीं है।

एक घटना घटी। मेरी एक मित्र महिला हालैंड गई थी। वहाँ कृष्णमूर्ति का एक अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन था। कुल छः सात हजार लोग सारी दुनिया से इकट्ठे हुए थे कृष्णमूर्ति को सुनने। वह मेरी परिचित महिला एक दूकान पर साँझ को गई और उसके साथ दो और यूरोपियन महिलाएँ थीं। वे तीनों एक छोटी-सी दूकान पर कुछ खरीदने गई हैं, वहाँ वह देखकर हैरान रह गई हैं क्योंकि कृष्णमूर्ति वहाँ टाई खरीद रहे हैं। तो केवल यही बात बड़ी अजीब मालूम पड़ी कि कृष्णमूर्ति जैसा ज्ञानी एक साधारण सी दूकान पर टाई खरीदता

हो। ज्ञानी तो खत्म हो ही गया उसी क्षण। और फिर न केवल टाई खरीद रहे हैं बल्कि यह टाई लगाकर देखते हैं, वह टाई लगाकर देखते हैं, वह भी पसंद नहीं पड़ती, वह भी पसंद नहीं पड़ती। सारी दूकान की टाई फैला रखी हैं। तो वे तीन महिलाओं के मन में बड़ा सन्देह भर गया कि हम किस व्यक्ति को सुनने इतनी दूर से आई और वह व्यक्ति साधारण सी दूकान पर टाई खरीद रहा है। और वह भी टाई में अभी रंग मिला रहा है कि कौन सा मेल खाता है, कौन सा मेल नहीं खाता है। उन दो यूरोपियन महिलाओं ने मेरी परिचित महिला को कहा कि हम अब सुनने नहीं आएंगी। बात खत्म हो गई है। एक साधारण आदमी को सुनने के लिए इतनी दूर से व्यर्थ परेशान हुईं। जिसको अभी कपड़ों का भी ख्याल है इतना, उसको क्या ज्ञान मिला होगा। दोनों महिलाएँ सम्मेलन में सम्मिलित हुए बिना लौट गईं।

उस मेरी परिचित महिला ने जाकर कृष्णमूर्ति से कहा कि आपको पता नहीं है कि आपके टाई खरीदने से कितना नुकसान हुआ। दो महिलाएँ सम्मेलन छोड़कर चली गईं क्योंकि वे यह नहीं मान सकती कि एक ज्ञानी व्यक्ति टाई खरीदता हो। कृष्णमूर्ति ने कहा : चलो ! दो का मुझ से छुटकारा हुआ; दो का भ्रम टूटा, यह भी क्या कम है ? कृष्णमूर्ति ने कहा कि क्या मैं टाई न खरीदूं तो ज्ञानी हो जाऊंगा ? अगर ज्ञानी होने की इतनी सस्ती शर्त है तो कोई भी नासमझ उसे पूरी कर सकता है। अगर इतनी सस्ती शर्त से कोई ज्ञानी हो जाता तो कोई भी नासमझ इसे पूरी कर सकता। लेकिन इतनी सस्ती शर्त पर मैं ज्ञानी नहीं होना चाहता। और इतनी सस्ती शर्त पर जो मुझे ज्ञानी मानने के लिए तैयार हैं, वे न मानें यही अच्छा है, यही शुभ है।

लेकिन हम सब की ऐसी शर्तें होती हैं और शर्तें इसीलिए होती हैं कि हमारा कोई प्रेम नहीं है। हमारी अपनी धारणाएं हैं। इन धारणाओं पर हम कसने की कोशिश करते हैं आप ही को। और ध्यान रहे जितना अद्भुत व्यक्ति होगा उतना ही सारी धारणाओं को तोड़ देगा। वह किसी धारणा पर कसा नहीं जा सकता। असल में अद्भुत व्यक्ति का अर्थ ही यह है कि पुरानी कसौटियां उस पर काम नहीं करतीं। प्रतिभाशाली व्यक्ति न केवल खुद को निर्मित करता है बल्कि खुद को मापे जाने की कसौटियां भी निर्मित करता है। और इसलिए ऐसा हो जाता है कि महावीर जब पैदा होते हैं तो पुराने महापुरुषों के अनुयायी महावीर को पहचान नहीं पाते क्योंकि उनकी कसौटियां महावीर पर लागू नहीं

पड़तीं। पुराने महापुरुषों का जो अनुयायी है उसने धारणाएं बना रखी हैं जिन्हें वह महावीर पर कसने की कोशिश करता है। महावीर उस पर नहीं उतर पाते इसलिए व्यर्थ हो जाता है। लेकिन महावीर का अनुयायी वही बातें बुद्ध पर कसने की कोशिश करता है और तब फिर मुश्किल हो जाती है। हमारा चित्त अगर पूर्वाग्रह से भरा है, महापुरुष तो दूर एक छोटे से व्यक्ति को भी हम प्रेम नहीं कर सकते। एक पत्नी पति को प्रेम नहीं कर पाती क्योंकि पति कैसा होना चाहिए, इसकी धारणा पक्की मजबूत है। एक पति पत्नी को प्रेम नहीं कर पाता क्योंकि पत्नी कैसी होनी चाहिए, शास्त्रों से सब उसने सीख कर तैयार कर लिया है और वही अपेक्षा कर रहा है। वह इस व्यक्ति को, जो सामने पत्नी या पति की तरह मौजूद है, देख ही नहीं रहा।

मैंने जो बातें महावीर के सम्बन्ध में कही हैं, उन पर मेरा कोई पूर्वाग्रह नहीं है। किन्हीं सूचनाओं के, किन्हीं धारणाओं के, किन्हीं मापदण्डों के आधार पर मैंने उन्हें नहीं कसा। मेरे प्रेम में वह जैसे दिखाई पड़ते हैं, वैसी मैंने बात की। और जरूरी नहीं है कि मेरे प्रेम में वे जैसे दिखाई पड़ते हैं वैसे आपके प्रेम में भी दिखाई पड़ते हों। अगर वैसा भी मैं आग्रह करूं तो मैं फिर आपसे धारणाओं की अपेक्षा कर रहा हूं।

मैंने अपनी बात कही जैसा वे मुझे दिखाई पड़ते हैं, जैसा मैं उन्हें देख पाता हूं। और इसलिए एक बात निरन्तर ध्यान में रखनी जरूरी होगी कि महावीर के सम्बन्ध में जो भी मैंने कहा है, वह मैंने कहा है। और मैं उसमें अनिवार्य रूप से उतना ही मौजूद हूं जितने महावीर मौजूद हैं। वह मेरे और महावीर के बीच हुआ लेन-देन है। उसमें अकेले महावीर नहीं हैं। उसमें अकेला मैं भी नहीं हूं। उसमें हम दोनों हैं। और इसलिए बिल्कुल ही असम्भव है कि जो मैंने कहा है ठीक बिल्कुल वैसा ही किसी दूसरे को भी दिखाई पड़े। मैं किसी दूर वस्तु की तरह खड़े हुए व्यक्ति की बात नहीं कर रहा हूं। मैं तो उस महावीर की बात कर रहा हूं जिसमें मैं भी सम्मिलित हो गया हूं, जो मेरे लिए एक आत्मगत अनुभूति बन गया है।

जो मेरी बात को पढ़ेंगे उन्हें समझने में बहुत कठिनाई और मुश्किल हो सकती है। सबसे बड़ी मुश्किल यह होगी कि वे उस जगह खड़े नहीं हो सकते, जहां मैं खड़े होकर देख रहा हूं। लेकिन इतनी ही उनकी कृपा काफी होगी कि वे उनकी चिन्ता न करें। एक व्यक्ति ने एक जगह खड़े होकर कैसे महावीर को देखा है, यह समझ भर लें। और फिर अपनी जगह से खड़े होकर देखने की

कोशिश करे। यह जरूरी नहीं कि उनका जो ख्याल होगा, वह मुझसे मेल खाए। मेल खाने की कोई जरूरत भी नहीं है। लेकिन अगर इतने निष्पक्ष भाव से मेरी बातों को समझा गया तो जो भी व्यक्ति इतने निष्पक्ष भाव से समझेगा, उसे महावीर को समझने की बड़ी अद्भुत कुशलता उपलब्ध होगी। अगर उसने बहुत गौर से समझा है तो वह महावीर को ही नहीं, बुद्ध को भी, मुहम्मद को भी, कृष्ण को भी समझने में इतना ही समर्थ हो जाएगा।

इतिहास जो बाहर से दिखाई पड़ता है, लिखा जाता है। और जो बाहर से दिखाई पड़ता है, वह एक अत्यन्त छोटा पहलू होता है। इसलिए इतिहास बड़ी सच्ची बातें लिखते हुए भी बहुत बार असत्य हो जाता है। बर्क नाम का एक इतिहासज्ञ कोई पन्द्रह वर्षों से विश्व इतिहास लिख रहा था। दोपहर की बात है कि घर के पीछे शोर-गुल हुआ, दरवाजा खोलकर वह पीछे गया। उसके मकान के बगल से गुजरने वाली सड़क पर झगड़ा हो गया था। एक आदमी की हत्या कर दी गई थी। बड़ी भीड़ थी, सैकड़ों लोग इकट्ठे थे। आंखों देखे गवाह मौजूद थे और वह एक-एक आदमी से पूछने लगा कि क्या हुआ। एक आदमी कुछ कहता है, दूसरा कुछ कहता है, तीसरा कुछ कहता है। आंखों देखे गवाह मौजूद हैं। लाश सामने पड़ी है, खून सड़क पर पड़ा हुआ है। अभी पुलिस के आने में देर है। हत्यारा पकड़ लिया गया है। लेकिन हर आदमी अलग-अलग बात करता है। किन्हीं दो आदमियों की बातों में कोई ताल-मेल नहीं कि क्या हुआ? झगड़ा कैसे हुआ? कोई हत्यारे को जिम्मेदार ठहरा रहा है, कोई मृतक को जिम्मेदार ठहरा रहा है, कोई कुछ कह रहा है और कोई कुछ रहा है। वे सब आंखों देखे गवाह हैं। बर्क खूब हंसने लगा। लोगों ने पूछा, आप किसलिए हंस रहे हैं। आदमी की हत्या हो गई है। उसने कहा कि मैं और किसी कारण से हंस रहा हूं। अन्दर आया और वह पन्द्रह वर्षों की जो मेहनत थी उसमें आग लगा दी और अपनी डायरी में लिखा कि मैं हजारों साल पहले की घटनाओं पर इतिहास लिख रहा हूं। मेरे घर के पीछे एक घटना घट गई है जिसमें चश्मदीद गवाह मौजूद हैं। फिर भी किसी का वक्तव्य मेल नहीं खाता। हजार-हजार साल पहले जो घटनाएं घटीं उनके लिए किस हिसाब से हम मानें कि क्या हुआ, क्या नहीं हुआ, कौन सही है कौन सही नहीं। कहना मुश्किल है। बर्क ने लिखा है कि इतिहास भी एक कल्पना हो सकती है अगर हमने बहुत ऊपर से पकड़ने की कोशिश की।

और कल्पना भी सत्य हो सकती है अगर हमने बहुत भीतर से पकड़ने की कोशिश की। सवाल वस्तुपरक नहीं है। सवाल आत्मपरक है।

जो महावीर उतने ही महत्वपूर्ण हैं जितना महावीर को देखने वाला है। और वह वही देख पाएगा जितना देख सकता है। क्या हम महावीर को अपने भीतर लेकर जी सकते हैं? जैसे एक मां अपने पेट में एक बच्चे को लेकर जीती है। क्या हम जिसे प्रेम करते हैं उसे हम अपने भीतर लेकर जीने लगते हैं? उस जीने से जो निखर आता है, उसमें हमारा भी हाथ होता है। उसमें महावीर भी होते हैं, हम भी होते हैं। यह इतना ही गहरा है जैसे कि जब आप रास्ते के किनारे लगे हुए फूल को देखकर कहते हैं 'बहुत सुन्दर' तो आप सिर्फ फूल के बाबत ही नहीं कह रहे हैं, अपने बाबत भी कह रहे हैं। क्योंकि हो सकता है कि पड़ोस से एक आदमी निकले, और कहे: "क्या सुन्दर है इसमें! इसमें तो कुछ भी सुन्दर नहीं है। साधारण-सा फूल है; घास का फूल।" वह आदमी जो कह रहा है, वह भी उसी फूल के सम्बन्ध में कह रहा है। रात एक भूखा आदमी है। आकाश की तरफ देखता है। चांद उसे रोटी की तरह मालूम पड़ता है। जैसे रोटी तैर रही हो आसमान में।

हेनरिक हेन एक जर्मन कवि था। वह तीन दिन तक भूखा भटक गया जंगल में। पूर्णिमा का चांद निकला तो उसने कहा, "आश्चर्य अब तक मुझे चांद में सदा स्त्रियों के चेहरे दिखाई पड़े थे और पहली दफा मुझे चांद रोटी दिखाई पड़ी। मैंने कभी सोचा ही नहीं था कि चांद भी रोटी जैसा दिखाई पड़ सकता है लेकिन भूखे आदमी को दिखाई पड़ सकता है।" तीन दिन के भूखे आदमी को चांद ऐसा लगा जैसे रोटी आकाश में तैर रही हो। आकाश में रोटी तैर रही है। चांद तो है ही, इसमें एक भूखे आदमी की नजर भी है। एक फूल सुन्दर है, इसमें फूल तो है ही, एक सौन्दर्य बोध वाले व्यक्ति की नजर भी सम्मिलित है। कोई फूल इतना सुन्दर नहीं है अकेले जितना आंख उसे सुन्दर बना देती है और प्रेम करने वाला उसे सुन्दर बना देता है और ऐसी चीजें खोल देता है उसमें जो शायद साधारण किनारे से गुजरने वाले को कभी दिखाई न पड़ी हों।

तो मैंने जो भी कहा है, वह महावीर के सम्बन्ध में ही कहा है। लेकिन मैं उसमें मौजूद हूं और जो हम दोनों को समझने की कोशिश करेगा वही मेरी बात को समझ पा सकता है। जो सिर्फ मुझे समझता है वह नहीं समझ पाएगा। जो सिर्फ शास्त्र से महावीर को समझता है वह भी नहीं समझ पाएगा। यहां दो

व्यक्ति, जैसे दो नदियाँ हैं, संगम पर आकर घुल-मिल जाएं और तय करना मुश्किल हो जाए कि कौन-सा पानी किसका है, ऐसा ही मिलना हुआ है। और मैं मानता हूँ कि ऐसा मिलना हो तो ही नदी को पहचाना जाता है, नहीं तो पहचाना नहीं जाता। और इसलिए इस निवेदन के साथ महावीर की जड़ प्रतिमा को, मृत प्रतिमा को, शब्दों से निर्मित रूपरेखा को मैंने बिल्कुल ही अलग छोड़ दिया है। मैंने एक जीवित महावीर को पकड़ने की कोशिश की है और यह कोशिश तभी सम्भव है जब हम इतने गहरे में प्रेम दे सकें कि हमारा प्राण उनके प्राण से एक हो जाए तो ही वे पुनर्जीवित हो सकते हैं। और प्रत्येक बार जब भी कोई व्यक्ति कृष्ण, बुद्ध, महावीर के निकट पहुँचेगा तब उसे ऐसे ही पहुँचना पड़ेगा। उसे फिर प्राण डाल देने पड़ेंगे। अपने ही प्राण उंडेल देना तो ही उसे दिखाई पड़ सकेगा कि क्या है लेकिन फिर भी इस बात को निरन्तर ध्यान में रखने की जरूरत है कि यह एक व्यक्ति के द्वारा देखे गए महावीर की बात है—दूसरे व्यक्ति को इतनी ही परम स्वतंत्रता है कि वह और तरह से देख सके और इन दोनों में न कोई विरोध की बात है, न कोई संघर्ष की बात है और न किसी विवाद की कोई जरूरत है।

आप पूछते हैं कि जो मैंने कहा उसके लिए शास्त्रों के सिवाय आधार भी क्या हो सकता है? और मैं शास्त्रों के आधार को पूर्णतः निषेध करता हूँ।

फकीर था एक बोकोजू। बुद्ध के सम्बन्ध में बहुत सी बातें उसने कहीं हैं जो शास्त्रों में नहीं हैं। और बहुत से ऐसे वक्तव्य भी दिए हैं जिनका कहीं भी कोई उल्लेख नहीं हैं। पंडित उसके पास आए शास्त्र लेकर और कहा कि कहाँ हैं बुद्ध की ये बातें? शास्त्रों में ये नहीं हैं। तो बोकोजू ने कहा, 'जोड़ लेना।' किन्तु उन्होंने कहा, 'बुद्ध ने यह कहा ही नहीं है।' तो बोकोजू ने कहा कि बुद्ध मिलें तो उनसे कह देना कि बोकोजू ऐसा कहता था कि कहा है। और न कहा हो तो कह देंगे। यह बोकोजू अद्भुत आदमी रहा होगा। और बुद्ध से कहलवाने की हिम्मत किसी बड़े गहरे प्रेम से ही आ सकती है। या कोई साधारण हिम्मत नहीं है। यह उतने गहरे प्रेम से आ सकती है कि बुद्ध को सुधार करना पड़े।

एक और घटना मुझे स्मरण आती है। एक संत रामकथा लिखते थे और रोज शाम पढ़कर सुनाते थे। कहानी यह है कि हनुमान तक उत्सुक हो गए उस कथा को सुनने के लिए। अब हनुमान का तो सब देखा हुआ था लेकिन

कथा इतनी रसपूर्ण हो रही थी कि हनुमान भी छिपकर उसे सुनते थे। वह जगह आई, जहाँ हनुमान अशोक वाटिका में गए सीता से मिलने। तो संत ने कहा। हनुमान गए अशोक वाटिका में, वहाँ सफेद फूल खिले थे। सुनकर हनुमान अपने से बाहर हो गए क्योंकि फूल सब लाल थे। हनुमान ने खुद देखा था। इस आदमी ने देखा भी नहीं था। हजारों साल बाद कहानी कह रहा था यह संत। हनुमान ने खड़े होकर कहा : माफ करें—इसमें जरा सुधार कर लें। फूल सफेद नहीं, लाल थे। उस आदमी ने कहा कि फूल सफेद ही थे। हनुमान ने कहा कि मुझे स्पष्ट करना पड़ेगा कि मैं खुद हनुमान हूँ और मैं गया था। अब तो सुधार कर लो। तो उसने कहा, नहीं, तुम्हीं सुधार कर लेना। फूल सफेद ही थे।

हनुमान ने कहा, 'यह तो हद हो गई। हजारों साल बाद तुम कथा कह रहे हो और मैं मौजूद था, मैं खुद गया था। तुम मेरी कथा कह रहे हो और मुझे इन्कार कर रहे हो।' उस आदमी ने कहा, लेकिन फूल सफेद ही थे, तुम सुधार कर लेना अपनी स्मृति में। हनुमान बहुत नाराज हुए। कथा कहती है कि उस संत को लेकर वे राम के पास गए। राम से उन्होंने कहा, 'हद हो गई है। इस आदमी की जिद देखो! मुझसे सुधार करवाता है। मेरी स्मृति में फूल बिल्कुल लाल थे। राम ने कहा कि वह सन्त ही ठीक कहते हैं। फूल सफेद ही थे, तुम सुधार कर लेना। तो हनुमान ने कहा, हद हो गई। राम ने कहा कि तुम इतने क्रोध में थे कि तुम्हारी आँखें खून से भरी थीं, फूल लाल दिखाई पड़े होंगे। फूल सफेद थे।

बहुत बार देखा हो तो भी जरूरी नहीं कि सच हो। और बहुत बार न देखा हो तो भी हो सकता है कि सच हो। सच बड़ी रहस्यपूर्ण बात है। अभी मैं एक नगरी में था। एक बौद्ध भिक्षु मिलने आए। कुछ बात चल रही थी तो मैंने कहा कि बुद्ध के सामने एक व्यक्ति बैठा हुआ था। वह पैर का अँगूठा हिला रहा था। बुद्ध बोल रहे थे। बुद्ध ने उससे कहा कि 'मित्र, तेरे पैर का अँगूठा क्यों हिलाता है?' उस आदमी ने अपने पैर का अँगूठा हिलाना रोक लिया और कहा कि अपनी बात आप जारी रखिए, फिजूल की बातों से क्या मतलब! बुद्ध ने कहा कि नहीं, मैं पीछे बात शुरू करूँगा, पहले पता चल जाए कि पैर का अँगूठा क्यों हिलता है? उस आदमी ने कहा कि मुझे पता ही नहीं। मैं क्या बताऊँ क्यों हिलता है। बुद्ध ने कहा कि तू बड़ा पागल आदमी है। तेरा अँगूठा हिलता है और तुझे पता नहीं। जब शरीर की होश नहीं रखेगा तो

आत्मा की होश बहुत दूर की बात है। तब बौद्ध भिक्षु ने कहा कि यह किस ग्रन्थ में लिखा हुआ है। मैंने कहा : मुझे पता नहीं, हो सकता है न हो। लेकिन न भी हो तो घटना घटनी चाहिए। क्या फर्क पड़ता है कि घटी कि न घटी। यह भी बहुत मूल्य का नहीं है कि कौन सी घटना घटती है कि नहीं घटती। बहुत मूल्य का यह है कि वह घटना क्या कहती है। बुद्ध ने बहुत मौकों पर यह बात लोगों को कही होगी कि जो शरीर के प्रति नहीं जगा हुआ है, वह आत्मा के प्रति कैसे जगेगा? और बहुत बार उन्होंने लोगों को टोका होगा उनकी मूर्छा में। घटना कैसी घटी होगी यह बहुत गौण बात है। महत्वपूर्ण बात यह है कि बुद्ध जागरण के लिए निरन्तर आग्रह करते हैं। और जो शरीर के प्रति सोया हुआ है, वह आत्मा के प्रति कैसे जागेगा, और बहुत बार वे लोगों को मूर्छा में पकड़ लेते हैं और कहते हैं कि 'देखो! तुम बिल्कुल सोए हो।' और सोए हुए आदमी को बताना पड़ता है कि 'यह रही नींद!' और नींद तभी टूट सकती है। घटना बिल्कुल सच है, ऐतिहासिक न हो तब भी। ऐतिहासिक होने से भी क्या होता है? इतिहास भी क्या है? जहाँ घटनाएँ पर्दे पर साकार हो जाती हैं, इतिहास बन जाता है। और घटनाएँ अगर पर्दे के पीछे ही रह जाएँ तो इतिहास नहीं बनता है। इस देश में और सारी दुनिया में जो लोग जानते हैं, वे बड़े अद्‌भुत हैं।

कहानी है कि वाल्मीकि ने राम की कथा राम के होने के पहले लिखी। यह बड़ी मधुर और बड़ी अद्‌भुत बात है। राम हुए नहीं तब वाल्मीकि ने कथा लिखी और फिर राम को कथा के हिसाब से होना पड़ा। फिर कोई उपाय न था क्योंकि वाल्मीकि ने लिख दी तो फिर राम को वैसा होना पड़ा। वह सब करना पड़ा जो वाल्मीकि ने लिख दिया था। यह बड़ी अद्‌भुत बात है, इतनी अद्‌भुत कि इसे सोचना भी हैरान करने वाला है। पहले राम हो जाएँ फिर कथा लिखी जाए, यह समझ में आता है। लेकिन वाल्मीकि कथा लिख दें और फिर राम को होना पड़े और सब वैसा ही करना पड़े, जो वाल्मीकि ने लिख दिया था, मुश्किल है। वाल्मीकि ने लिख दिया है तो अब वैसा करना पड़ेगा। तो उस बोकूजो ने जो कहा कि कह देना बुद्ध को कि वह फिर यह कह दें, अगर न कहा हो तो कह दें तो वह उसी अधिकार से कह रहा है जिस अधिकार से वाल्मीकि कथा लिख गए हैं।

इतिहास पीछे लिखा जाता है। सत्य पहले ही लिखा जा सकता है क्योंकि सत्य का मतलब है जिससे अन्यथा हो ही नहीं सकता। इतिहास का मतलब है,

जैसा हुआ लेकिन इससे अन्यथा हो सकता था। सत्य का मतलब है जैसा हो सकता है, जिससे अन्यथा कोई उपाय नहीं है। महावीर, बुद्ध, जीसस इन जैसे लोगों के प्रति इतिहास की फिक्र नहीं करनी चाहिए। इतिहास इतनी मोटी बुद्धि की बात है कि ये बारीक लोग उससे निकल ही जाएं, पकड़ में हो न आएं। उन्हें तो किसी और आंख से देखने की जरूरत है, सत्य की आंख से। और उस आंख से देखने पर बहुत सी बातें उद्घाटित होंगी जो शायद इतिहास नहीं पकड़ पाया है। और इसलिए मैंने जो कहा है और आगे भी कृष्ण, बुद्ध, कनफ्यूसियस, लाओत्से और क्राइस्ट के सम्बन्ध में जो कहूंगा, उसका ऐतिहासिक होने से कोई सम्बन्ध नहीं है। इसलिए जिनको ऐतिहासिक बुद्धि हो उनसे कोई झगड़ा ही नहीं है, उनसे कोई विवाद ही नहीं है। जगत् को एक कवि की दृष्टि से भी देखा जा सकता है और तब जगत् इतने रहस्य खोल देता है जितने इतिहास की दृष्टि से देखने वालों के सामने उसने कभी भी नहीं खोले हैं।

काव्य का अपना दर्शन है। चूंकि वह ज्यादा प्रेम से भरा है इसलिए ज्यादा सत्य के निकट है। शास्त्र उससे मेल भी पड़ सकते हैं, बेमेल भी पड़ सकते हैं। चूंकि हमें ख्याल में नहीं रहा है इसलिए जिन लोगों ने अतीत में इन सारे महापुरुषों की गाथाएँ लिखी हैं उनको समझना मुश्किल हो गया। क्योंकि उन गाथाओं को लिखते वक्त भी सत्य पर दृष्टि ज्यादा थी, तथ्य पर बहुत कम। तथ्य तो रोज बदल जाते हैं; सत्य कभी नहीं बदलता। इतिहास तथ्यों का लेखा-जोखा रखता है। सत्य का लेखा-जोखा कौन रखेगा? इसलिए जिनको सत्य की बहुत फिक्र थी उन्होंने इतिहास लिखा तक नहीं। यह बात बेमानी थी कि कौन आदमी कब पैदा हुआ, किस तारीख में, किस तिथि में। यह बात बेमानी थी कि कौन आदमी कब मरा। यह बात भी अर्थहीन थी कि कौन आदमी कब उठा, कब चला, कब क्या किया। महत्त्वपूर्ण तो वह अन्तर्घटना थी जिसने सत्य के निकट पहुँचा दिया और सत्य उस घटना को प्रकट कर सके, ऐसी पूरी की पूरी व्यवस्था की। व्यवस्था बिल्कुल ही काल्पनिक हो सकती है तो भी कठिनाई नहीं है। इतिहास बिल्कुल ही वास्तविक है तो भी व्यर्थ हो सकता है।

इतिहास यह है कि जीसस एक बढ़ई के बेटे थे। और सत्य यह है कि वे ईश्वर के पुत्र हैं। इतिहास खोजने जाएगा तो बढ़ई के बेटे से ज्यादा क्या खोज पाएगा? लेकिन जिन्होंने जीसस को देखा उन्होंने जाना कि वे परमात्मा के बेटे हैं। यह किसी और आंख से देखी गई बात है और इन दोनों बातों में तालमेल

नहीं हो सकता है क्योंकि बढ़ई के बेटे और ईश्वर के बेटे में बहुत फर्क है। इससे ज्यादा फर्क क्या हो सकता है। फिर भी मैं कहूँगा कि उन्होंने बढ़ई का बेटा ही देखा वे पहचान नहीं पाए उस आदमी को जो बढ़ई से आया था, लेकिन बढ़ई का बेटा नहीं था। इसका आना और बड़े जगत् से था और वह नहीं पहचान पाया कोई भी, क्योंकि जब जीसस ने कहा कि सारा राज्य मेरा है और जो मेरे साथ चलते हैं, वे साम्राज्य के मालिक हो जाएँगे तो जो तथ्यों को जानने वाले थे वे चिन्तित हो गए। उन्होंने कहा मालूम होता है कि जीसस कोई क्रान्ति, कोई बगावत करना चाहता है और जो सच में राजा है उस पर हावी होना चाहता है। जब जीसस को पकड़ा गया और उसको काँटे का ताज पहनाया गया और पूछा गया कि क्या तुम राजा हो तो उसने कहा, हाँ! लेकिन फिर भी समझ में नहीं आ सका कि वह आदमी क्या कह रहा है? फिर उससे पूछा गया, क्या तुम सम्राट् होने का दावा करते हो? तो उसने कहा, 'हाँ, क्योंकि मैं सम्राट् हूँ।' लेकिन यह बात बिल्कुल असत्य थी क्योंकि जीसस सम्राट् नहीं थे। एक गरीब आदमी के बेटे थे। उस लाख आदमियों की भीड़ में जो सूली देने इकट्ठे हुए थे, दस-पाँच ही थे जो पहचान पाए कि हाँ वह सम्राट् है। बाकी ने कहा 'खत्म करो, इस आदमी को। यह कैसी झूठी बातें बोल रहा है।' और पायलट ने, जो गवर्नर था, जिसकी आज्ञा से सूली दी गई थी; मरते वक्त जीसस के पास खड़े होकर पूछा : सत्य क्या है? जीसस चुप रह गए। कुछ उत्तर नहीं दिया। सूली हो गई। प्रश्न वहीं खड़ा रह गया। जीसस ने उत्तर इसलिए नहीं दिया कि सत्य दिखाई पड़ता है या नहीं दिखाई पड़ता है पूछा नहीं जा सकता है। तथ्य पूछे जा सकते हैं। बताया जा सकता है कि यह तथ्य है। जो कोई पूछे सत्य क्या है तो बताया नहीं जा सकता। वह देखा जा सकता है। तो जीसस चुपचाप खड़े रह गए कि देख लो अगर दिखाई पड़ जाए तो तुम्हें पता चल जाएगा कि सत्य क्या है, यह आदमी सम्राट् है या नहीं। और अगर तथ्य की बात पूछते हो तो फिर ठीक है, आदमी बढ़ई का लड़का है, सूली पर लटका देने योग्य है क्योंकि दिमाग खराब हो गया है और अपने को सम्राट् घोषित कर रहा है।

इधर मैं निरन्तर इस सम्बन्ध में चिन्तन करता रहा हूँ कि तथ्य को पकड़ने वाली बुद्धि सत्य को पकड़ सकती है या नहीं। और मुझे लगता है कि नहीं पकड़ सकती। सत्य को पकड़ने के लिए और गहरी आँख चाहिए जो तथ्यों के भीतर उतर जाता है और तब ऐसे सत्य हाथ लगते हैं जिनकी तथ्य कोई खबर नहीं दे पाता। इसी दृष्टि से यह सारी बात मैंने कही है।

परिशिष्ट १ : अहिंसा

परिशिष्ट २ : ध्यान

परिशिष्ट (१)

अहिंसा[1]

अहिंसा एक अनुभव है, सिद्धान्त नहीं। और अनुभव के रास्ते बहुत भिन्न हैं, सिद्धान्त को समझने के रास्ते बहुत भिन्न हैं—अक्सर विपरीत। सिद्धान्त को समझना हो तो शास्त्र में चले जाएँ, शब्द की यात्रा करें, तर्क का प्रयोग करें। अनुभव में गुजरना हो तो शब्द से, तर्क से, शास्त्र से क्या प्रयोजन है? सिद्धान्त को शब्द से बिना नहीं जाना जा सकता और अनुभूति शब्द से कभी नहीं पाई गई। अनुभूति पाई जाती है निःशब्द में और सिद्धान्त है शब्द में। दोनों के बीच विरोध है। जैसे ही अहिंसा सिद्धान्त बन गई वैसे ही मर गई। फिर अहिंसा के अनुभव का क्या रास्ता हो सकता है?

जब महावीर जैसा या बुद्ध जैसा कोई व्यक्ति है तो उसके चारों तरफ जीवन में हमें बहुत कुछ दिखाई पड़ता है। जो हमें दिखाई पड़ता है, उसे हम पकड़ लेते हैं : महावीर कैसे चलते हैं, कैसे खाते हैं, क्या पहनते हैं, किस बात को हिंसा मानते हैं, किस बात को अहिंसा, महावीर के आचरण को देखकर हम निर्णय करते हैं और सोचते हैं कि वैसा। आचरण अगर हम भी बना लें तो शायद जो अनुभव है वह मिल जाए। लेकिन यहाँ भी बड़ी भूल हो जाती है। अनुभव मिले तो आचरण आता है, लेकिन आचरण बना लेने से अनुभव नहीं आता। अनुभव हो भीतर तो आचरण बदलता है, रूपान्तरित होता है। लेकिन आचरण को कोई बदल ले तो अभिनय से ज्यादा नहीं हो पाता। महावीर नग्न खड़े हैं तो हम भी नग्न खड़े हो सकते हैं। महावीर की नग्नता किसी निर्दोष तल पर नितान्त सरल हो जाने से आई है। हमारी नग्नता हिसाब से, गणित से, चालाकी से आएगी। हम सोचेंगे नग्न हुए बिना मोक्ष नहीं मिल सकता। तो फिर एक-एक बात को उतारते चले जाएँगे। हम नग्नता का अभ्यास करेंगे। अभ्यास से कभी कोई सत्य आया है? अभ्यास से अभिनय आता है।

---

१. दिल्ली-विश्वविद्यालय द्वारा आयोजित अखिल भारतीय अहिंसा-गोष्ठी में दिया गया भगवान् श्री का यह प्रवचन मूल पुस्तक के विषय से सम्बद्ध होने के कारण यहाँ दिया जा रहा है—सम्पादक।

एक गाँव के पास से मैं गुजर रहा था। एक मित्र संन्यासी हो गए हैं। उनका झोपड़ा पड़ता था पास, तो मैं देखने गया। जंगल में, एकान्त में झोपड़ा है। पास पहुँच कर देखा मैंने कि अपने कमरे में वह नग्न टहल रहे हैं। दरवाजा खटखटाया तो देखा वह चादर लपेट कर आए हैं। मैंने उनसे पूछा। भूलता नहीं हूँ, खिड़की से मुझे लगा कि आप नंगे टहल रहे थे। फिर चादर क्यों पहन ली है? उन्होंने कहा : नग्नता का अभ्यास कर रहा हूँ। धीरे-धीरे एक-एक वस्त्र छोड़ता गया हूँ। अब अपने कमरे में नग्न रहता हूँ। फिर धीरे-धीरे मित्रों में, प्रियजनों में, फिर गाँव में, फिर राजधानी में नग्न रहने का इरादा है, धीरे-धीरे नग्नता का अभ्यास कर रहा हूँ क्योंकि नग्न हुए बिना मोक्ष नहीं है।

यह व्यक्ति भी नग्न खड़े हो जाएँगे। महावीर की नग्नता से इनकी नग्नता का क्या सम्बन्ध होगा? मैंने उनसे कहा कि संन्यासी होने के बजाय सरकस में भर्ती हो जाओ तो अच्छा है। ऐसे भी संन्यासियों में अधिकतम सरकस में भर्ती होने की योग्यता रखते हैं। अभ्यास से साधी हुई नग्नता का क्या मूल्य है? भीतर निर्दोषता का कोई अनुभव हो, कोई फूल खिले सरलता का और बाहर वस्त्र गिर जाएँ और पता न चले तो यह समझ में आ सकता है। लेकिन हमें तो दिखाई पड़ता है आचरण, अनुभव तो दिखाई नहीं पड़ता। महावीर को हमने देखा तो दिखाई पड़ा आचरण। अनुभव तो दिखाई नहीं पड़ सकता। लेकिन महावीर का आचरण सबको दिखाई पड़ सकता है। फिर हम उस आचरण को पकड़ कर नियम बनाते हैं, संयम का शास्त्र बनाते हैं, अहिंसा की व्यवस्था बनाते हैं और फिर उसे साधना शुरू कर देते हैं। फिर क्या खाना, क्या पीना, कब उठना, कब सोना, क्या करना, क्या नहीं करना—उस सबको व्यवस्थित कर लेते हैं, उसका एक अनुशासन थोप लेते हैं। अनुशासन पूरा हो जाएगा और अहिंसा की कोई खबर न मिलेगी। अनुशासन से अहिंसा का क्या सम्बन्ध? सच तो यह है कि ऊपर से थोपा गया अनुशासन भीतर की आत्मा को उघाड़ता कम है, ढाँकता ज्यादा है। जितना बुद्धिहीन आदमी हो उतना अनुशासन को सरलता से थोप सकता है। जितना बुद्धिमान् आदमी हो उतना मुश्किल होगा, उतना वह उस स्रोत की खोज में होगा जहाँ से आचरण आया छाया की भाँति।

इसलिए पहली बात मैंने कही : अहिंसा अनुभव है। दूसरी बात आपसे कहता हूँ कि अहिंसा आचरण नहीं है। आचरण अहिंसा बनता है लेकिन

अहिंसा स्वयं आचरण नहीं है। इस घर में हम दिए को जलाएं तो खिड़कियों के बाहर भी रोशनी दिखाई पड़ती है। लेकिन दिया खिड़की के बाहर दिखाई पड़ती रोशनी का ही नाम नहीं है। दिया जलेगा तो खिड़की से रोशनी भी दिखाई पड़ेगी। अब उसके पीछे आने वाली घटना है जो अपने आप घट जाती है।

एक आदमी गेहूं बोता है तो गेहूं के साथ भूसा अपने आप पैदा हो जाता है, उसे पैदा नहीं करना पड़ता। लेकिन किसी को भूसा पैदा करने का ख्याल हो और वह भूसा बोने लगे तो फिर कठिनाई शुरू हो आएगी। बोया गया भूसा भी सड़ जाएगा, नष्ट हो जाएगा। उससे भूसा तो पैदा होने वाला ही नहीं। गेहूं बोया जाता है, भूसा पीछे से अपने-आप साथ-साथ आता है। अहिंसा वह अनुभव है, वह आचरण है जो पीछे से अपने आप आता है, लाना नहीं पड़ता। जिस आचरण को लाना पड़े वह आचरण सच्चा नहीं है। जो आचरण आए, उतरे, प्रकट हो, फैले, पता भी न चले, सहज वही आचरण सत्य है। तो दूसरी बात यह है कि आचरण को साध कर हम अहिंसा को उपलब्ध न हो सकेंगे। अहिंसा आए तो आचरण भी आ सकता है। फिर अहिंसा कैसे आए? हमें सीधा-सरल यही दिखाई देता है कि जीवन को एक व्यवस्था देने से अहिंसा पैदा हो जाएगी। लेकिन असल में जीवन को व्यवस्था देने से अहिंसा पैदा नहीं होती। चित्त के रूपान्तरण से अहिंसा पैदा होती है। और यह रूपान्तरण कैसे आए, इसे समझने के लिए दो-तीन बातें समझनी उपयोगी होंगी।

पहला तो यह शब्द अहिंसा बहुत अद्भुत है। यह शब्द बिलकुल नकारात्मक है। महावीर प्रेम शब्द का भी प्रयोग कर सकते थे, नहीं किया। जीसस तो प्रेम शब्द का प्रयोग करते हैं। शायद प्रेम शब्द का प्रयोग करने के कारण ही जीसस जल्दी समझ में आते हैं बजाय महावीर के। महावीर निषेधात्मक शब्द का प्रयोग करते हैं। अहिंसा में वह कहना चाहते हैं 'हिंसा नहीं है।' वह और कुछ भी नहीं कहना चाहते। हिंसा न हो जाए तो जो शेष रह जाएगा, वह अहिंसा होगी। अहिंसा को लाने का सवाल ही नहीं है। वह उस शब्द में ही छिपा है। अहिंसा को विधायक रूप से लाने का कोई सवाल ही नहीं है, कोई उपाय ही नहीं है।

इसे और एक तरह से देखना जरूरी है। हिंसा और अहिंसा विरोधी नहीं हैं। प्रकाश और अंधकार विरोधी नहीं हैं। अगर प्रकाश और अंधकार विरोधी

हों तो हम अंधकार को लाकर दिए के ऊपर डाल सकते हैं; दिए को बुझाना पड़ेगा। नहीं, अंधकार विरोधी नहीं है प्रकाश का, अंधकार अभाव है प्रकाश का। अभाव और विरोध में कुछ फर्क है। विरोधी का अस्तित्व होता है, अभाव का अस्तित्व नहीं होता। अंधेरे का कोई अस्तित्व नहीं होता प्रकाश का अस्तित्व है। अगर अंधेरे के साथ कुछ करना हो तो सीधा अंधेरे के साथ कुछ नहीं किया जा सकता। न तो अंधेरा लाया जा सकता है न निकाला जा सकता है। नहीं तो दुश्मन के घर में हम अंधेरा फेंक आएं। कुछ भी करना हो अंधेरे के साथ तो प्रकाश के साथ करना पड़ेगा। अंधेरा लाना हो तो प्रकाश बुझाना पड़ेगा। अंधेरा हटाना हो तो प्रकाश जलाना पड़ेगा। इसलिए जब यहाँ अंधेरा मिटता है तो प्रकाश हो जाता है। हम कहते हैं, अंधेरा मिट गया, इससे ऐसा लगता है जैसे अंधेरा था। लेकिन अंधेरा है सिर्फ प्रकाश का अभाव। प्रकाश आ गया—इतना सार्थक है। और प्रकाश आ गया तो अंधेरा कैसे रह सकता है ? वह अब नहीं है। न वह कभी था।

महावीर निषेधात्मक अहिंसा शब्द का प्रयोग करते हैं। वह कहते हैं कि हिंसा है, हिंसा में हम खड़े हुए हैं। हिंसा न हो जाए तो जो शेष रह जाएगा उसका नाम अहिंसा है। लेकिन अगर किसी ने अहिंसा को विधायक बनाया तो वह हिंसक रहते हुए अहिंसा साधने की कोशिश करेगा। हिंसक रहेगा और अहिंसा साधेगा। हिंसक के द्वारा अहिंसा कभी नहीं साधी जा सकती। और अगर साध भी लेगा तो उसकी अहिंसा में हिंसा के सब तत्त्व मौजूद रहेंगे। वह अहिंसा से भी सताने का काम शुरू कर देगा। इसलिए मैं गांधीजी की अहिंसा को अहिंसा नहीं मानता हूँ। गांधीजी की अहिंसा उस अर्थ में अहिंसा नहीं है जिस अर्थ में महावीर की अहिंसा है। गांधीजी की अहिंसा में भी दूसरे को दबाने, दूसरे को बदलने, दूसरे को भिन्न करने का आग्रह है। उसमें हिंसा है। अगर हम ठीक से कहें तो गांधीजी की अहिंसा अहिंसात्मक हिंसा है। मैं आपकी छाती पर छुरी लेकर खड़ा हो जाऊं और कहूं कि जो मैं कहता हूं वह ठीक है, आप उसे मानें तो यह हिंसा है। और मैं अपनी छाती पर छुरी लेकर खड़ा हो जाऊं और कहूं कि जो ठीक है वह मानें नहीं तो मैं छुरी मार लूंगा, यह अहिंसा कैसे हो जाएगी ?

अनशन कैसे अहिंसा हो सकता है ? सत्याग्रह कैसे अहिंसा हो सकता है ? उसमें दूसरे पर दबाव डालने का भाव पूरी तरह उपस्थित है। सिर्फ दबाव डालने का ढंग बदल गया है। एक आदमी कहता है कि मैं भूखा मर जाऊंगा

अगर तुम नहीं बदले। अम्बेडकर के विरोध में गांधी जी ने अनशन किया। अम्बेडकर झुक गया। लेकिन बाद में अम्बेडकर ने कहा कि गांधी जी इस भूल में न पड़ें कि मेरा हृदय बदल गया है। मैं सिर्फ यह सोचकर कि मेरे कारण गांधीजी जैसा आदमी न मर जाए, पीछे हट गया हूं। और गांधीजी अपने पूरे जीवन में एक आदमी का भी हृदय परिवर्तन नहीं कर पाए। असल में, हिंसा से हृदय परिवर्तन हो ही नहीं सकता। हिंसा दमन है, दबाव है, जबरदस्ती है। हाँ, जबरदस्ती दो ढंग की हो सकती है। मैं आपको मारने की धमकी दूं, तब भी जबरदस्ती है और मैं अपने को मारने की धमकी दूं, तब भी जबरदस्ती है। और मेरी दृष्टि में दूसरी जबरदस्ती ज्यादा खतरनाक है। पहली जबरदस्ती में आपके पास उपाय भी है सीधा सिर खड़ा करके लड़ने का। दूसरी जबरदस्ती में मैं आपको निःशस्त्र कर रहा हूं, आपका नैतिक बल भी छीन रहा हूं, आपको दबा भी रहा हूं। अहिंसा अगर हिंसा के भीतर रहते साधी जाएगी तो ऊपर अहिंसा हो जाएगी, भीतर हिंसा मौजूद रहेगी। क्योंकि अहिंसा और हिंसा विरोधी चीजें नहीं हैं। गांधी जी के ख्याल में अहिंसा और हिंसा विरोधी चीजें हैं। अहिंसा को साधो तो हिंसा खत्म हो जाएगी। लेकिन कौन साधेगा अहिंसा को ? हिंसक आदमी साधेगा तो अहिंसा भी साधन बनेगी उसकी हिंसा का। वह फिर अहिंसा से वही उपयोग लेना शुरू कर देगा जो उसने तलवार से लिया होगा।

पूछा जा सकता है कि महावीर ने जिन्दगी भर सत्याग्रह क्यों नहीं किया ? पूछा जा सकता है कि महावीर ने किसी को बदलने का आग्रह क्यों नहीं किया ? सच तो यह है कि सत्याग्रह शब्द ही बेहूदा है। सत्य का कोई आग्रह नहीं हो सकता क्योंकि जहाँ आग्रह है, वहाँ सत्य कैसे टिकेगा ? आग्रह असत्य का ही होता है। सब सत्याग्रह असत्य आग्रह है। कैसे सत्य का आग्रह हो सकता है ? महावीर कहते हैं कि सत्य का आग्रह भी किया तो हिंसा शुरू हो गई क्योंकि अगर मैंने यह कहा कि जो मैं कहता हूं वही सत्य है तो मैंने हिंसा करनी शुरू कर दी। मैंने दूसरे व्यक्ति को चोट पहुंचानी शुरू कर दी। इसलिए महावीर सत्य का आग्रह भी नहीं करते। इसी से उनके स्यात् की कल्पना है, इसी से उनके अनेकान्त की धारणा का जन्म हुआ है।

एक छोटी सी कहानी समझाना चाहूंगा। एक गांव में एक क्रोधी आदमी है जिसके क्रोध ने चरम स्थिति ले ली है। उसने अपने बच्चे को कुएँ में धक्का

देकर मार डाला। उसने अपनी पत्नी को मकान के भीतर करके आग लगा दी। फिर पछताया है, दुःखी हुआ है। गाँव में एक मुनि आए हुए हैं। वह उनके पास गया और उनसे कहा कि मैं अपने क्रोध को किस प्रकार मिटाऊँ। मुझे कुछ रास्ता बताएँ कि मैं इस क्रोध से मुक्त हो जाऊँ। मुनि ने कहा कि सब त्याग कर दो, संन्यासी हो जाओ, सब छोड़ दो तभी क्रोध जाएगा। मुनि नग्न थे। उस व्यक्ति ने भी कपड़े फेंक दिए। वह वहीं नग्न खड़ा हो गया। मुनि ने कहा : अब तक मैंने बहुत लोग देखे संन्यास माँगने वाले लेकिन तुम जैसा तेजस्वी कोई भी नहीं दिखा। इतनी तीव्रता से तुमने वस्त्र फेंक दिए। लेकिन मुनि भी न समझ पाए कि जितनी तीव्रता से कुएँ में धक्का दे सकता है, वह उतनी ही तीव्रता से वस्त्र भी फेंक सकता है। वह क्रोध का ही रूप है। असल में क्रोध बहुत रूपों में प्रकट होता है। क्रोध संन्यास भी लेता है। इसलिए संन्यासियों में निन्यानवें प्रतिशत क्रोधी इकट्ठे मिल जाते हैं। उनके कारण हैं।

उसने वस्त्र फेंक दिए हैं, वह नग्न हो गया है, वह संन्यासी हो गया है। दूसरे साधक पीछे पड़ गए हैं। उससे साधना में कोई आगे नहीं निकल सकता। क्रोध किसी को भी आगे नहीं निकलने देता। क्रोध ही इसी बात का है कि कोई मुझ से आगे न हो जाए। वह साधना में भी उतना ही क्रोधी है। लेकिन साधना की खबर फैलने लगी। जब दूसरे छाया में बैठे रहते हैं वह धूप में खड़ा रहता है। जब दूसरे भोजन करते हैं वह उपवास करता है। जब दूसरे शीत से बचते हैं वह शीत झेलता है। उसके महातपस्वी होने की खबर गाँव-गाँव में फैल गई है। उसके क्रोध ने बहुत अद्भुत रूप ले लिया है। कोई नहीं पहचानता, वह खुद भी नहीं पहचानता कि यह क्रोध ही है जो नये-नये रूप ले रहा है।

फिर वह देश की राजधानी में आया। दूर-दूर से लोग उसे देखने आते हैं। देश की राजधानी में उसका एक मित्र है बचपन का। वह बड़ा हैरान है कि वह क्रोधी व्यक्ति संन्यासी कैसे हो गया हालांकि नियम यही है। वह देखने गया उसे। संन्यासी मंच पर बैठा है। वह मित्र सामने बैठ गया। संन्यासी की आँखों से मित्र को लगा है कि वह पहचान तो गया। लेकिन मंच पर कोई भी बैठ जाए फिर वह नीचे मंच वालों को कैसे पहचाने? पहचानना बहुत मुश्किल है। फिर वह मंच कोई भी हो। चाहे वह राजनीतिक हो, चाहे गुरु की हो। मित्र ने पूछा, आपका नाम? संन्यासी ने कहा शान्तिनाथ। फिर परमात्मा

की बात करते रहे। मित्र ने संन्यासी से फिर वही प्रश्न किया। संन्यासी का हाथ डंडे पर गया। उसने कहा : बहरे तो नहीं हो, बुद्धिहीन तो नहीं हो ? कितनी बार कहूँ कि मेरा नाम है शांतिनाथ। मित्र थोड़ी देर चुप रहा। कुछ और बात चलती रही आत्मा-परमात्मा की। फिर उसने पूछा कि क्षमा करिए। आपका नाम क्या है ? फिर आप सोच सकते हैं क्या हुआ ? वह डंडा उस मित्र के सिर पर पड़ा। उसने कहा कि तुझे समझ नहीं पड़ता कि मेरा नाम क्या है ? मित्र ने कहा कि अब मैं पूरी तरह समझ गया। यह पता लगाने के लिए तीन बार नाम पूछा है कि आदमी भीतर बदला है या नहीं बदला है।

अहिंसा काँटों पर लेट सकती है, भूख सह सकती है, शीर्षासन कर सकती हैं, आत्म-पीड़ा बन सकती है अगर भीतर हिंसा मौजूद हो। दूसरों को भी दुःख और पीड़ा का उपदेश दे सकती है। हिंसा भीतर होगी तो वह इस तरह के रूप लेगी, खुद को सताएगी, दूसरों को सताएगी और इस तरह के ढंग खोजेगी कि ढंग अहिंसक मालूम होंगे लेकिन भीतर सताने की प्रवृत्ति परिपूर्ण होगी। असल में अगर एक व्यक्ति अपने अनुयायी इकट्ठा करता फिरता हो तो उसके अनुयायी इकट्ठा करने में और हिटलर के लाखों लोगों को गोली मार देने में कोई बुनियादी फर्क नहीं है। असल में गुरु भी माँग करता है अनुयायी से कि तुम पूरी तरह मिट जाओ, तुम बिल्कुल न रहो, तुम्हारा कोई व्यक्तित्व न बचे। समर्पित हो जाओ पूरे। अनुयायी की माँग करने वाला गुरु भी व्यक्तित्व को मिटाता है सूक्ष्म ढंगों से, पोंछ देता है व्यक्तियों को। फिर सैनिक रह जाते हैं जिनके भीतर आत्मा समाप्त कर दी गई है। हिटलर जैसा आदमी सीधा गोली मार कर शरीर को मार देता है।

पूछना जरूरी है कि शरीर को मिटा देने वाले ज्यादा हिंसक होंगे या फिर आत्मा को, व्यक्तित्व को मिटा देने वाले ज्यादा हिंसक होते हैं ? कहना मुश्किल है। लेकिन दिखाई तो यही पड़ता है कि किसी के शरीर को मारा जा सकता है और हो सकता है कि व्यक्ति बच जाए। तब आपने कुछ भी नहीं मारा। और यह भी हो सकता है कि शरीर बच जाए और व्यक्ति भीतर मार डाला जाए तो आपने सब मार डाला। अगर भीतर हिंसा हो, ऊपर अहिंसा हो तो दूसरों को मारने की, दबाने की नई-नई तरकीबें खोजी जाएँगी और तरकीबें खोजी जाती हैं। यह भी हो सकता है कि एक आदमी सिर्फ इसीलिए एक तरह का चरित्र बनाने में लग जाए कि उस चरित्र के माध्यम से वह किसी को दबा सकता है, बड़ा चोट सकता है और मैं पवित्र हूँ, मैं सन्त हूँ, मैं साधु हूँ—इसको

भावना से दूसरे की छाती पर बैठ सकती है, इस अहंकार को दूसरे की फांसी बना सकता है, इसकी पूरी सम्भावना है।

इसलिए महावीर अहिंसा की विधायक साधना का कोई प्रश्न ही नहीं उठाते। बात बिल्कुल दूसरी है उनके हिसाब से। उनके हिसाब से बात यह है कि मैं हिंसक हूँ, दूसरे को दुःख देने में मुझे सुख मालूम होता है; दूसरे के सुख से भी दुःख मालूम होता है। यह हमारी स्थिति है, यहाँ हम खड़े हैं। अब क्या किया जा सकता है? ऐसे आचरण को क्षीण किया जाए जो दूसरे का अहित करता हो, और ऐसे आचरण को प्रस्तावित किया जाए जो दूसरे का मंगल करता हो। एक रास्ता यह है। इस रास्ते को मैं नैतिक कहता हूँ और नैतिक व्यक्ति कभी पूरे अर्थों में अहिंसक नहीं हो सकता।

गांधी जी को मैं नैतिक महापुरुष कहता हूँ, धार्मिक महापुरुष नहीं। शायद उन जैसा नैतिक व्यक्ति हुआ भी नहीं। लेकिन वह नैतिक ही हैं। उनकी अहिंसा नैतिक तल पर है। महावीर नैतिक व्यक्ति नहीं हैं। महावीर धार्मिक व्यक्ति हैं। और धार्मिक व्यक्ति से मेरा क्या प्रयोजन है? धार्मिक व्यक्ति से मेरा प्रयोजन है ऐसा व्यक्ति जिसने अपनी हिंसा को जाना-पहचाना और जिसने अपनी हिंसा के साथ कुछ भी नहीं किया, जो अपनी हिंसा के प्रति पूरी तरह ध्यानस्थ हुआ, जागृत हुआ, जिसने अपनी हिंसा की कुरूपता को पूरा-पूरा देखा और कुछ भी नहीं किया।

तो मेरी दृष्टि ऐसी है कि अगर कोई व्यक्ति अपने भीतर की हिंसा को पूरी तरह देखने में समर्थ हो जाए और उसे पूरा पहचान ले, उसके अणु-परमाणुओं को पकड़ ले, उठने-बैठने चलने में, मुद्रा में जो हिंसा है उस सबको पहचान ले, जान ले, साक्षी हो जाए, विवेक से भर जाए तो वह व्यक्ति अचानक पाएगा कि जहाँ-जहाँ विवेक का प्रकाश पड़ता है हिंसा पर, वहाँ-वहाँ हिंसा विदा हो जाती है, उसे विदा नहीं करना होता। वह वहाँ से क्षीण हो जाती है, समाप्त हो जाती है। न उसे बदलना पड़ता है, न उसे बदलना पड़ता है। सिर्फ चेतना के समक्ष आते वह वैसे ही विदा हो जाती है जैसे सुबह सूरज निकले और ओस विदा होने लगे। वह ओसकण विदा होते हैं सूरज के निकलते ही, उन्हें विदा करना नहीं होता। उसके ताप को वह झेलने में असमर्थ हैं। चेतना का एक ताप है। महावीर जिसे तप कहते हैं, वह चेतना का ताप है। अगर चेतना पूरी की पूरी व्यक्ति के प्रति जागरूक हो जाए तो व्यक्तित्व में जो भी कुरूप है वह रूपान्तरित होना शुरू हो जाएगा। उसे रूपान्तरित करना नहीं होगा।

कुछ दिन पहले एक घटना घटी। मेरे एक मुसलमान मित्र हैं। हाई कोर्ट के वकील हैं। जिस गांव का मैं हूं वह उसी गांव के हैं। मेरे पास आए कोई साल भर हुआ। उन्होंने कहा कि बहुत वर्षों से सोचता हूं कि आपसे आकर बात करूं। लेकिन नहीं आया क्योंकि जब भी मैं आप जैसे लोगों के पास आता हूं तो वे कहते हैं कि यह छोड़ो, वह छोड़ो। न मुझसे जुआ छूटता, न शराब छूटती, न मांस छूटता। बात वहीं अटक जाती है। कुछ भी नहीं छूटता। फिर मैं वहीं का वहीं रह जाता हूं। फिर मैंने उनसे पूछा, 'आज आप कैसे आ गए?' उन्होंने कहा कि किसी के घर भोजन पर गया था और उन्होंने कहा कि आप तो कुछ छोड़ने को कहते नहीं। तो मैं सीधा यहीं चला आया हूं। मैंने उनसे कहा कि मैं छोड़ने को क्यों कहूंगा? छोड़ने से मुझे कोई सम्बन्ध नहीं है। आप छोड़ो मत, जागो। आप कुछ देखने की कोशिश करो भीतर, कुछ निरीक्षण करो, कुछ होश में भरो, कुछ मूर्छा को तोड़ो। उन्होंने कहा: क्या किया जा सकता है? क्या मुझे जुआ नहीं छोड़ना पड़ेगा? शराब नहीं छोड़नी पड़ेगी?

मैंने उनसे कहा कि आप जिस चेतना की स्थिति में हैं उसमें शराब अनिवार्य है। अगर एक शराब छोड़ेंगे दूसरी शराब पकड़ेंगे, दूसरी शराब छोड़ेंगे तीसरी शराब पकड़ेंगे। और इतनी किस्म-किस्म की शराबें हैं जिनका कोई हिसाब नहीं। अधार्मिक शराबें हैं, धार्मिक शराबें भी हैं। एक आदमी भजन कीर्तन कर रहा है दो घंटे से और मूर्छित हो गया है। वह उतना ही रस ले रहा है भजन-कीर्तन में, वही रस मूर्छा का जो एक शराबी ले रहा है। मन्दिर में भी शराबी इकट्ठे होते हैं। वहां भी मूर्छित होने की तरकीबें खोजते हैं। एक आदमी नाच रहा है, ढोल-मंजीरा पीट रहा है। उस नाच में, ढोल मंजीरा पीटने में मूर्छित हो गया। अब वह शराब का ही मजा ले रहा है। बहुत किस्म की शराबें हैं।

मैंने उनसे कहा लेकिन चेतना अगर शराब पीने वाली है तो आप शराब बदल सकते हैं, शराब नहीं छूट सकती। चेतना बदले तो कुछ हो सकता है। मैंने उन्हें महावीर का एक छोटा सा सूत्र कहा। महावीर कहते हैं: उठो तो विवेक से, चलो तो विवेक से, बैठो तो विवेक से, सोओ तो विवेक से। विवेक का मतलब है कि चलते समय पूरी चेतना हो कि मैं चल रहा हूं, बैठते समय पूरी चेतना हो कि मैं बैठ रहा हूं, उठते समय पूरी चेतना हो कि मैं उठ रहा हूं। बेहोशी में कोई कृत्य न हो पाए, सोए-सोए कोई कृत्य न हो पाए। होशपूर्वक

जीना हो तो धीरे-धीरे भीतर के समस्त चित्त के प्रति जागना है और जागते ही रूपान्तरण शुरू हो जाता है। जागकर रूपान्तरण करना नहीं पड़ता है। बुद्ध जिसे सम्यक् स्मृति कहते हैं महावीर उसे विवेक कहते हैं, जीसस ने उसे अवेयरनेस कहा है, गुरजियफ ने उसे सैल्फ रिमैम्बिरिंग कहा है। कुछ भी नाम दिया जा सकता है। लेकिन एक ही बात है हम सोए-सोए जागते हैं।

मैंने सुना है कि बुद्ध एक गांव से गुजर रहे हैं। एक मित्र से बात कर रहे हैं। एक मक्खी कंधे पर आकर बैठ गई है। बुद्ध ने बात करते हुए मक्खी उड़ा दी है। बात जारी रखी है और मक्खी उड़ा दी है। फिर रुक गए। मक्खी तो उड़ गई है, फिर रुक गए हैं। फिर दुबारा हाथ ले गए वहां जहां मक्खी थी, अब वह वहां नहीं है। साथी मित्र ने पूछा : आप क्या कर रहे हैं ? बुद्ध ने कहा कि मैं तुमसे बातचीत करने में लीन था और मैंने मक्खी को बिल्कुल मूर्छित भाव से उड़ा दिया जैसे कोई बेहोश उड़ाता हो। अब मैं होशपूर्वक उड़ा रहा हूं जैसा कि मुझे उड़ाना चाहिए था।

तो मैंने अपने मित्र को कहा कि जीवन की क्रियाओं में होशपूर्वक जीने का प्रयोग करो। छः महीने बाद वह मेरे पास आए और मुझे कहा कि आपने मुझे धोखा दिया है। शराब पीनी मुश्किल होती चली जाती है क्योंकि दो बातें एक साथ चलनी असम्भव हैं। अगर मुझे होशपूर्वक जीना है तो मैं शराब नहीं पी सकता। और अगर होशपूर्वक नहीं जीना है तो मैं शराब पी सकता हूं। लेकिन अब होशपूर्वक जीने में जो आनन्द की अनुभूति शुरू हुई है वह शराब पीने से कभी नहीं मिली।

एक और बात उन्होंने मुझे कही कि एक अद्भुत अनुभव मुझे हुआ है कि जब मैं दुःखी था तो शराब दुख को भुला देती थी। इधर अभी महीनों निरंतर जागने की कोशिश से सुख की एक धार भीतर बहनी शुरू हुई है, एक झरना भीतर फूटना शुरू हुआ है। शराब पीता हूं तो मैं भूल जाता हूं। शराब सिर्फ भुलाती है सुखी आदमी को सुख भुला देती है, दुःखी आदमी को दुःख भुला देती है और दुखी आदमी शराब खोजे, समझ में आता है। सुखी आदमी शराब कैसे खोज सकता है ? तो उन्होंने कहा कि मुश्किल हो गया है। मैंने कहा : मुश्किल हो जाए बात अलग, लेकिन मुझसे उसकी बात मत करना। आप जागने का, ध्यान का प्रयोग जारी रखें ?

मेरी दृष्टि में महावीर ने अहिंसा का उपदेश ही नहीं दिया। महावीर ने तो ध्यान का एक उपदेश दिया। उस ध्यान से जो भी गुजरा, वह अहिंसक हो गया। उस ध्यान से गुजरने वाले को अहिंसक हो जाना पड़ा। उस ध्यान से जो गुजरेगा वह अहिंसक हो ही जाएगा। अहिंसा की अलग से शिक्षा देने की कोई जरूरत नहीं है। लेकिन अब महावीर के पीछे चलने वाले लोग हैं। वे 'अहिंसा परमो धर्मः' की तख्तियां लगाए हुए बैठे हैं। वे बैठे रहेंगे तख्तियां लगाए हुए और अहिंसा चलती रहेगी। और वे अपने बच्चों को अहिंसा का उपदेश दे रहे हैं। वे सारी दुनिया में शोरगुल मचा रहे हैं कि अहिंसक हो जाना चाहिए सब को। और उन्हें शायद मूल सूत्र का पता ही नहीं है कि अहिंसक कोई होगा कैसे? भीतर चित्त जागे तो जागे चित्त से हिंसा विसर्जित होती है। जागे हुए चित्त में हिंसा नहीं रह जाती। जागा हुआ चित्त हिंसा से मुक्त हो जाता है; हिंसा से मुक्त होना नहीं पड़ता। और तब जो शेष रह जाता है, वह अहिंसा है।

अहिंसा शब्द नकारात्मक है। हिंसा चली जाती है, जो शेष रह जाती है, वह अहिंसा है। ब्रह्मचर्य, सत्य विधायक शब्द हैं। अहिंसा, अपरिग्रह, अचौर्य नकारात्मक शब्द हैं। यह सोचने जैसा है। असल में परिग्रह की वृत्ति विदा हो जाती है तो जो शेष रह जाता है वह अपरिग्रह है। अपरिग्रह को सीधा नहीं साधा जा सकता। और कोई अगर अपरिग्रह को सीधा साधेगा तो वह परिग्रही हो जाएगा, अपरिग्रही नहीं। अगर कोई धन छोड़ेगा तो जितनी पकड़ उसकी धन के साथ थी, उतनी अब धन छोड़ा इस बात के साथ शुरू हो जाएगी।

मैं एक संन्यासी के पास ठहरा था। वह दिन में दो-तीन बार मुझसे कहे कि मैंने लाखों रुपयों पर लात मार दी है। चलते वक्त सांझ को मैंने कहा: लात आपने कब मारी? उन्होंने कहा कोई तीस साल हुए। तो मैंने कहा कि जाते वक्त एक बात कह जाऊँ। वह लात ठीक से लग नहीं पाई। नहीं तो तीस साल तक याद रखने की क्या जरूरत है? लात लग ही नहीं पाई, बिल्कुल चूक गई। लाखों रुपए मेरे पास थे, यह भी अहंकार था। लाखो रुपए मैंने छोड़े, यह भी अहंकार है। और पुराने अहंकार से यह ज्यादा सूक्ष्म, ज्यादा जटिल और ज्यादा खतरनाक है। अगर कोई परिग्रह छोड़ेगा तो त्याग को पकड़ेगा।

मैं महावीर को त्यागी नहीं कहता हूं। महावीर ने कोई परिग्रह नहीं छोड़ा, इसलिए त्यागी का कोई सवाल नहीं है। महावीर का परिग्रह विदा हो गया है।

जो शेष रह गया है वह अपरिग्रह है। कोई चोरी छोड़ेगा तो सिर्फ छोड़ा हुआ चोर होगा। इससे ज्यादा कुछ भी नहीं हो सकता। भीतर चोरी जारी रहेगी। हाथ-पांव बांध लेगा, रोक लेगा अपने को छाती पर पत्थर रखकर कि चोरी नहीं करनी लेकिन भीतर चोर होगा। कोई चोरी करने से थोड़ी ही चोर होता है। लेकिन अगर कोई जागेगा और चोरी बिदा हो जाएगी तो अचौर्य शेष रहा जाएगा। अहिंसा, अचौर्य, अपरिग्रह नकारात्मक है। क्योंकि कुछ बिदा होगा तो कुछ शेष रह जाएगा।

और यह बड़े मजे की बात है कि अगर हिंसा बिदा हो जाए, परिग्रह बिदा हो जाए, चोरी बिदा हो जाए—अगर यह तीनों बिदा हो जाएं तो अहिंसा, अचौर्य और अपरिग्रह की जो चित्तदशा होगी उसमें सत्य का उदय होगा। इन तीन के बिदा होने पर सत्य का अनुभव होगा। ये द्वार बन जाएंगे और सत्य दिखाई पड़ेगा। सत्य को कोई खोज नहीं सकता। हमें पता ही नहीं कि वह कहाँ है। हम उस स्थिति में आ जाएँ जहाँ द्वार खुल जाए तो सत्य दिखाई पड़ेगा। सत्य होगा इन तीन के द्वार से उपलब्ध अनुभव और ब्रह्मचर्य होगा उसकी अभिव्यक्ति। वह जो सत्य मिल गया उस जीवन के सब हिस्सों में प्रकट होने लगेगा। ब्रह्मचर्य का अर्थ है ब्रह्म जैसी चर्या, ईश्वर जैसा आचरण। ये तीन बनेंगे द्वार और तीन में अहिंसा सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है। क्योंकि जिस आदमी की हिंसा बिदा हो गई है, वह चोरी कैसे करेगा ? क्योंकि चोरी करने में हिंसा है और जिस आदमी की हिंसा बिदा हो गई है, वह कैसे संग्रह करेगा, क्योंकि सब संग्रह के भीतर चोरी है। इसलिए अगर हम बाकी दो को बिदा भी कर दें तो तीन बातें रह जाती हैं : अहिंसा, सत्य, ब्रह्मचर्य। अहिंसा के दो हिस्से हैं—अचौर्य, अपरिग्रह।

अहिंसक चित्त में सत्य का अनुभव होगा और ब्रह्मचर्य उसका आचरण होगा। लेकिन यह अहिंसा समाधि से, ध्यान से उपलब्ध होती है। आप कह सकते हैं कि बहुत से ध्यानी लोग हुए हैं जो अहिंसक नहीं हैं। जैसे, रामकृष्ण जैसा व्यक्ति भी मांसाहारी है। रामकृष्ण मछली खाते हैं और विवेकानन्द भी। तो विचार होता है कि रामकृष्ण जैसा व्यक्ति भी अगर ध्यान को, समाधि को उपलब्ध होकर मछलियों से मुक्त नहीं होता है तो मामला क्या है ? मेरी दृष्टि में महावीर का जो ध्यान है, उस ध्यान से गुजरने पर ही अहिंसा की उपलब्धि हो सकती है। वह जागने का ध्यान है। और रामकृष्ण का जो ध्यान है, वह जागने का नहीं, सो जाने का, मूर्छित हो जाने का ध्यान है। रामकृष्ण का ध्यान

ठीक से समझा जाए तो वह सिर्फ मूर्छा है। इसलिए रामकृष्ण तीन-तीन, चार-चार दिन बेहोश पड़े रहते हैं। मुख से फेन गिर रहा है, आँखें बन्द हैं, हाथ पैर अकड़ गए हैं। मेरी दृष्टि में उनकी चेतना भी खो गई है। वह उसी हालत में हैं जिस हालत में कोई हिस्टीरिया में हो। और इसलिए उनके व्यक्तित्व में कोई अन्तर नहीं होगा। हिंसा जारी रहेगी। महावीर और बुद्ध की इस जगत् को जो सबसे बड़ी देन है वह इस भाँति के ध्यान का प्रयोग है। जिस प्रयोग का अनिवार्य परिणाम अहिंसा होती है और जिस ध्यान के प्रयोग का अनिवार्य परिणाम अहिंसा न होती हो, उस ध्यान के प्रयोग का अन्तिम परिणाम ब्रह्मचर्य भी नहीं हो सकता है क्योंकि काम वासना भी बहुत गहरे में हिंसा का ही एक रूप है।

जिसके भीतर गाली उठती है वह गाली देता है, क्रोध आता है तो क्रोध करता है। वह आदमी स्पष्ट है, सहज है, जैसा है वैसा है। उसके बाहर और भीतर में कोई फर्क नहीं है। परम ज्ञानी के भी बाहर और भीतर में फर्क नहीं होता। परम ज्ञानी जैसा भीतर होता है वैसा ही बाहर होता है। अज्ञानी जैसा बाहर होता है वैसा ही भीतर होता है। बीच में एक पाखण्डी व्यक्ति है जो भीतर कुछ होता है, बाहर कुछ होता है। पाखण्डी व्यक्ति बाहर ज्ञानी जैसा होता है, भीतर अज्ञानी जैसा होता है। पाखण्डी का मतलब है भीतर अज्ञानी जैसा। उसके भीतर भी गाली उठती है, क्रोध उठता है, हिंसा उठती है। और बाहर वह ज्ञानी जैसा होता है, अहिंसक होता है, 'अहिंसा परमो धर्मः' की तख्ती लगाकर बैठता है, सच्चरित्रवान् दिखाई पड़ता है, सब नियम पालन करता है, अनुशासन-बद्ध होता है। बाहर उसका कोई व्यक्तित्व नहीं।

कोई अहिंसा का अनुयायी नहीं हो सकता। कोई उपाय नहीं है। अहिंसा को आचरण से साधने कोई जाएगा तो अभिनय, पाखण्ड में पड़ जाएगा। सामने के द्वार से अहिंसक होगा, पीछे के द्वार से हिंसा जारी रहेगी। मिथ्या अहिंसा और भी खतरनाक है क्योंकि वह अहिंसा मालूम पड़ती है और अहिंसा नहीं है। फिर उपाय क्या है? फिर उपाय सिर्फ एक है क्योंकि अहिंसा है एक नकारात्मक स्थिति—हिंसा जहाँ नहीं है ऐसी स्थिति। और हिंसा में हम खड़े हैं। हम क्या करें? दो ही उपाय हैं। या तो हम हिंसा से लड़ें या अहिंसक होने की कोशिश करें। कोशिश से साधी गई अहिंसा कभी भी अहिंसा नहीं हो सकती। क्योंकि कोशिश करने वाला हिंसक है। और हिंसक ने जो कोशिश की है उसमें हिंसा

मोजूद है। और हिंसक ने जो भी कोशिश की है, उसमें हिंसा प्रविष्ट हो जाएगी। फिर क्या करें ?

एक ही उपाय है : अपनी हिंसा के साक्षी बन जाने का। कुछ भी न करें, करने की बात ही छोड़ दें। मैं जैसा हूं—हिंसक, क्रोधी, अत्याचारी, अनाचारी, दुराचारी—जैसा भी मैं हूं, मैं उसके प्रति जागा हुआ रह जाऊं और इस स्थिति में रहने की कोशिश करूं कि मैं जानूं जो भी हूं, बदलने की फिक्र ही न करूं, सिर्फ जानूं। बदलने की फिक्र में जान भी नहीं पाते हैं और अगर कोई जान ले तो बदल पाता है। ज्ञान ही रूपान्तरण है, ज्ञान ही क्रान्ति है। अपनी हिंसा को जान लेना अहिंसा को उपलब्ध हो जाना है।

इससे यह मतलब मत समझ लेना कि आपको अहिंसा का जो अनुभव होगा, वह नकारात्मक होगा। एक अर्थ में अहिंसा की स्थिति नकारात्मक है। हिंसा चली जाएगी, जो शेष रह जाएगा वह अहिंसा है। इस अर्थ में वह नकारात्मक है। लेकिन जब अहिंसा प्रकट होगी और सारे जीवन से उसकी किरणें फूट पड़ेंगी, उससे ज्यादा कोई विधायक अनुभूति नहीं है। इसलिए महावीर ने परमात्मा की बात ही बन्द कर दी है। क्योंकि अहिंसा का अनुभव हो जाए तो परमात्मा का अनुभव हो गया। कोई जरूरत न समझी उस बात की। अहिंसा का पूर्ण अनुभव परमात्मा का अनुभव है।

हिंसा विदा हो सकती है, विदा की नहीं जा सकती। दिया जल जाए तो अंधेरा विदा हो जाता है। ध्यान जग जाए तो हिंसा विदा हो जाती है।

ये थोड़ी सी बातें मैंने कहीं। मैं कोई पण्डित नहीं हूं, न होना चाहता हूं। भगवान् की कृपा से उस झंझट में, भूल में पड़ने का कोई मौका नहीं आया। सौभाग्य है कि आप सब विद्वज्जनों ने शान्ति और प्रेम से भरी बातें सुनीं। उसके लिए मैं बहुत अनुगृहीत हूं और अन्त में सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूं। मेरा प्रणाम स्वीकार करें।

प्रश्न : आपने जो अहिंसा के सम्बन्ध में महात्मा गांधी और महावीर की दृष्टि को प्रस्तुत किया है, आप स्वयं हिंसक हैं या अहिंसक—अपनी सम्मति कहें।

उत्तर : मेरे कहने का क्या फर्क पड़ेगा। मैं तो यही कहूंगा कि मैं हिंसक हूं। क्योंकि यह कहना भी कि मैं अहिंसक हूं हिंसा हो जाएगी। तो यही समझें कि मैं हिंसक हूं। और मेरे कहने से क्या पता चलेगा कि मैं क्या हूं, क्या नहीं

हूं। इसे बातचीत के बाहर छोड़ा जा सकता है सहज ही और जितना बातचीत के बाहर छोड़ दें उतना आसान होगा। मुझे नहीं समझना है आपको, अहिंसा को समझना है। और अहिंसा को समझना हो तो 'मैं' को बिल्कुल ही बाहर छोड़ देना चाहिए। न तो 'मैं' समझा जा सकता है, न समझाया जा सकेगा। क्योंकि 'मैं' तो बड़ी हिंसा हो जाएगी।

अभी-अभी दोपहर में मैं कह रहा था : एक व्यक्ति ने जाकर पूछा एक जेन फकीर से कि क्या आपको ईश्वर की उपलब्धि हो गई है। तो उस फकीर ने कहा कि अगर मैं कहूं कि उपलब्धि हो गई है तो जो जानते हैं वे मुझ पर हंसेंगे क्योंकि जिसे कभी खोया ही नहीं था उसकी उपलब्धि कैसी। अगर मैं कहूं कि मुझे उपलब्धि नहीं हुई तो तुम बिना कुछ जाने-समझे लौट जाओगे। और तब भी नुकसान होगा।

इससे क्या फर्क पड़ता है कि मुझे उपलब्धि हुई है या नहीं हुई है। यह निपट मेरा मामला है। इससे क्या लेना-देना है। लेकिन अहिंसा के सम्बन्ध में मैं जो कुछ कह रहा हूं उस सम्बन्ध में कुछ पूछेंगे तो अच्छा होगा अगर मेरे सम्बन्ध में कुछ पूछना हो तो मैं दुबारा आऊं तब फिर मैं अपने सम्बन्ध में बोलूं तो ठीक होगा।

प्रश्न : क्या महावीर से पहले इतने ऋषि-महर्षि हुए उन्होंने अहिंसा को नहीं समझा ?

उत्तर : मुझे पता नहीं ऋषि-महर्षि कहीं मिल जाएं तो उनसे पूछना चाहिए। समझा होगा, बहुत लोगों ने समझा होगा क्योंकि महावीर कोई शुरूआत नहीं है जगत् की और न महावीर कोई अन्त हैं। बहुत लोग उस दिशा में गए होंगे। असल में जो भी कभी गया होगा वह अहिंसा से गया होगा। लेकिन शायद हमारे पास ऐतिहासिक रूप से जो निकटतम आदमी है, वह महावीर है जिनके बाबत ज्यादा से ज्यादा हमें पता है।

महावीर के पहले भी अहिंसा को अनुभव करने वाले लोग रहे होंगे। लेकिन महावीर सबसे बड़े स्पष्ट व्याख्याता हैं। फिर यह भी होता है कई बार कि कोई आदमी जान ले तो जरूरी नहीं है कि बता सके। मैं जाऊं और चांदनी रात देखूं, तारे देखूं, और लौट कर आऊं और आप मुझसे कहें कि एक चित्र बनाकर बता दें जो सौन्दर्य आपने देखा है। हो सकता है कि मैं न बना सकूं क्योंकि रात की चांदनी देखना एक बात है और चित्र बनाने की कला अलग

बात थी । बहुत लोगों ने अहिंसा देखी हो लेकिन महावीर ने जिस ढंग से बताई है, शायद किसी शिक्षक ने नहीं बताई है ।

प्रश्न : आपने बताया कि जब भी अहिंसा को शब्द देते हैं वह वाद या सिद्धान्त का रूप धारण कर लेती है : वह अहिंसा हिंसा के रूप में परिणत हो जाती है । और आपने कहा कि विवेक द्वारा ही हम अपनी अनुभूति को जगा सकते हैं और कार्य का सम्पादन कर सकते हैं । तो मेरा प्रश्न यह है कि विशव-विवेक का स्फुरण कैसे हो और जब आप बताएंगे कि विवेक के स्फुरण करने में यह पद्धति होगी, तो वह पद्धति शास्त्र का रूप धारण कर लेगी ।

उत्तर : ठीक कहते हैं, बिल्कुल ठीक कहते हैं । आपने दो-तीन बातें पूछीं जो कि महत्वपूर्ण हैं । पहली बात यह कि मैंने कहा कि अहिंसा को संगठित नहीं किया जा सकता । असल में सिर्फ घृणा के लिए संगठित होने की जरूरत है । शत्रुता के लिए संगठित होने की जरूरत है । प्रेम के लिए संगठित होने की जरूरत ही नहीं है । प्रेम अकेले ही काफी है । घृणा अकेले काफी नहीं है, इसलिए घृणा संगत बनाती है । दुनिया के सब संगठन घृणा के ही संगठन हैं, हिंसा के ही संगठन हैं । और इसलिए जब घृणा का मौका आ जाता है तो लोग संगठित हो जाते हैं । जैसे भारत पर चीन का हमला हुआ तो लोग ज्यादा संगठित हो जाएंगे । हमला चला जाएगा संगठन कम हो जाएगा, क्योंकि हमला घृणा को पैदा करेगा, हिंसा को पैदा करेगा । असल में जो व्यक्ति प्रेम को उपलब्ध है वह अकेला ही काफी है । वह दूसरे को इकट्ठा करने नहीं जाता । दूसरे को इकट्ठा करने की कोई जरूरत ही नहीं । दूसरे को हम इकट्ठा तब करते हैं जब कुछ ऐसा करना हो जिसे अकेला करना कठिन हो जाए । प्रेम अकेले ही किया जा सकता है, अकेले ही बांटा जा सकता है । लेकिन संगठन की जरूरत है क्योंकि हमें बड़ी हिंसाएं करनी हैं, बड़ी हत्याएं करनी हैं राष्ट्रों के नाम पर, सम्प्रदायों के नाम पर, धर्मों के नाम पर । तो जब भी संगठन होगा, उसके केन्द्र में हिंसा होगी, घृणा होगी चाहे वह संगठन किसी का भी हो । हो सकता है कि अहिंसकों का हो हिंसकों के खिलाफ । तो भी वह हिंसा ही होगी । संगठन मात्र हिंसात्मक होंगे । अहिंसात्मक संगठन का कोई अर्थ नहीं होता । अहिंसात्मक व्यक्ति अकेला ही काफी है । दस अहिंसात्मक व्यक्ति भी मिलकर बैठ सकते हैं लेकिन वे एक-एक ही होंगे । संगठन का कोई अर्थ नहीं है, यह मैंने कहा ।

दूसरी बात आपने बहुत बढ़िया पूछी, वह यह कि स्फुरण कैसे हो विवेक का और साथ में यह भी पूछा कि मैं बताऊंगा तो फिर वह शास्त्र हो जाएगा। बिल्कुल ठीक है। अगर मेरे बताने के कारण आप उस पर चलेंगे तो आप शास्त्र पर चले। लेकिन अपने विवेक के कारण अगर आप उस पर चले तो शास्त्र यहीं पड़ा रह गया। जैसे मुझसे कोई पूछे कि तैरना कैसे? क्या उपाय है? तो मैं कहूंगा कि तैरने का कोई उपाय नहीं होता सिवाय तैरने के। लेकिन एक आदमी अगर कहे कि मैं नदी में तभी उतरूंगा जब मैं तैरना सीख जाऊंगा क्योंकि बिना तैरना सीखे कैसे उतरूं तो वह तर्कयुक्त बात कह रहा है। बिना तैरना सीखे उसे नदी में उतरना खतरे से भरा है। लेकिन सिखाने वाला कहेगा कि जब तक उतरोगे नहीं तब तक तैर भी नहीं सकोगे। तैरना भी सीखना हो तो पानी में उतरना होगा। लेकिन पहली बार पानी में उतरना तड़फड़ाना ही होगा, तैरना नहीं हो सकता। असल में तैरना क्या है? तड़फड़ाने का व्यवस्थित रूप है। पहले तड़फड़ाएंगे, फिर तड़फड़ाने में तकलीफ होगी तो व्यवस्थित हो जाएंगे। धीरे-धीरे आप पाएंगे कि तैरना आ गया, तड़फड़ाना चला गया। तैरना तड़फड़ाने का ही व्यवस्थित रूप है। आदमी पहले दिन पानी में पटकने से ही तैरता है। फिर बाद में जो विकास होता है, वह उसके अपने तैरने के अनुभव से होता है,

तो मैं आपको क्या कहूं कि विवेक कैसे जगे? विवेक को जगाना हो तो विवेक करना होगा; तैरना सीखना है तो तैरना शुरू करना होगा। और कोई उपाय नहीं है। रास्ते पर चलते, खाना खाते, बात करते, सुनते, उठते, बैठते विवेकपूर्ण होना होगा। लेकिन ठीक आप पूछते हैं कि जो मैं कह रहा हूं और मेरी बात जब मैंने समझाई तो शास्त्र हो गई। मगर यह ध्यान में रखना जरूरी है कि बात समझाने से शास्त्र नहीं होती, बात आपके समझने से शास्त्र होती है। अगर मैंने कहा कि बात किसी तीर्थंकर ने कही है, किसी सर्वज्ञ ने कही है, और आपने कहा कि ऐसे व्यक्ति ने कही है जो जानता है और भूल नहीं करता। फिर वह शास्त्र बन जाती है, नहीं तो किताब ही रह जाती है।

किताब और शास्त्र में फर्क है। जो किताब पागल हो जाती है वह शास्त्र है। जो किताब दावा करने लगती है वह शास्त्र बन जाती है। मैं किताबों का दुश्मन नहीं हूं, शास्त्र का दुश्मन हूं। किताबें तो रहनी चाहिए, बड़ी अद्भुत हैं, बड़ी जरूरी हैं। किताबों के बिना नुकसान हो जाएगा। लेकिन शास्त्र बड़े खतरनाक हैं। जब कोई किताब दावा करती है कि मैं परम सत्य हूं और जो

मेरे रास्ते से चलेगा वही पहुँचेगा, और जो मैंने कहा है, ऐसा ही करेगा तो पहुँचेगा अन्यथा नरक है, अन्यथा नरक की अग्नि में सड़ना पड़ेगा तब किताब शास्त्र हो गई। और जब कोई इसे इस तरह मान लेता है तो वह बाधक हो जाती है।

मैं जो कह रहा हूँ वह कोई शास्त्र नहीं है। मैं कोई प्रमाण नहीं हूँ। कोई आप्त वचन नहीं है मेरा। मैं कोई तीर्थंकर नहीं हूँ। मैं कोई सर्वज्ञ नहीं हूँ मैं एक अति सामान्य व्यक्ति हूँ। जो मुझे दिखता है वह आपसे निवेदन कर रहा हूँ। यह सिर्फ संवाद है। आपने सुन लिया, बड़ी कृपा है। मानने का कोई आग्रह ही नहीं है। लेकिन सुनते वक्त अगर आपने विवेक से सुना, अगर जागे हुए सुना और कोई चीज उस जागरण में आपको दिखाई पड़ गई तो वह चीज आपकी है, वह मेरी नहीं है। कल मैं उस पर दावा नहीं कर सकता कि वह मेरी है। अगर आपने होशपूर्वक सुना, विचारपूर्वक सुना, समझा, सोचा, खोजा और कोई बात आपको मिल गई तो वह आपकी है।

इसलिए सत्य कभी किसी को दिया नहीं जा सकता। मैं आपको कोई सत्य नहीं दे सकता। लेकिन मैं जो कह रहा हूँ, मैं जो बात कर रहा हूँ, उस बात करने के वक्त आप इतने जागे हुए हो सकते हैं, विवेक से भरे हुए हो सकते हैं कि कोई सत्य आपको दिखाई पड़ जाए। कई बार ऐसा भी होता है कि अज्ञानियों से भी सत्य मिल जाता है। कई बार ऐसा भी होता है कि ज्ञानी भी सत्य नहीं दे पाते।

मैंने सुना है कि बंगाल में एक फकीर हुआ, राजा बाबू उनका नाम था। वह हाइकोर्ट के मजिस्ट्रेट थे, जस्टिस थे, रिटायर्ड हुए थे, साठ साल के थे। सुबह के वक्त घूमने निकले हैं एक लकड़ी लेकर, रोज की आदत के अनुसार। एक मकान के सामने से निकले हैं। दरवाजा बन्द है। घर के भीतर कोई मां, कोई भाभी, किसी बेटे को, किसी देवर को उठा रही है। उसे पता भी नहीं कि कोई बाहर राजा बाबू नाम का बूढ़ा आदमी जा रहा है। उसने भीतर अपने बेटे को कहा : राजा बाबू, उठो, अब बहुत देर हो गई, सुबह हो गई, सूरज निकल आया, कब तक सोए रहोगे? और बाहर राजा बाबू चले जा रहे हैं, उन्हें एकदम सुनाई पड़ा : राजा बाबू उठो, सुबह हो गई, सूरज निकल आया है, कब तक सोए रहोगे? वह छड़ी उन्होंने वहीं फेंक दी, दरवाजे पर नमस्कार किया उस स्त्री के लिए जिसको कि पता भी नहीं होगा क्योंकि वह तो घर के

भीतर थी। घर वापिस लौट आए। आकर कहा कि अब मैं जा रहा हूं। तो घर के लोगों ने कहा कि कहां जाते हो। तो उन्होंने कहा : राजा बाबू, उठो, सुबह हो गई, सूरज निकल आया, कब तक सोए रहोगे ? उन लोगों ने कहा : पागल हो गए हैं। क्या बातें कर रहे हैं ? तो उन्होंने कहा कि आज कुछ सुनाई पड़ गया, कुछ मिल गया। अब मैं जाता हूं।

मैंने यह भी सुना है कि एक फकीर अपने गुरु के निवास पर बीस वर्षों तक रहा। उसे कुछ भी न मिला। सब समझाना व्यर्थ हो गया। फिर गुरु ने कहा कि अब तू समझना भी छोड़ क्योंकि समझने से बीस साल में नहीं मिला तो अब तू समझना छोड़ दे। अब तेरा मन हो तो तू बैठ जा, न मन हो तो उठ जा। समझना हो तो समझ, न समझना हो तो न समझ, सोना हो तो सो जा। जो तुझे करना हो कर। अब तू समझना छोड़ दे। क्योंकि समझना भी एक दिक्कत दे रहा है, क्योंकि समझना भी तो एक तनाव ले आता है। किसी का नाम भूल गया हो, खोजते हैं, खो जाता है फिर छोड़ देते हैं फिर चाय पीने लगते हैं, गड्ढा खोदने लगते हैं बगीचे में और अचानक ही वह नाम याद आ जाता है। समझना भी तनाव पैदा कर देता है।

उसने कहा : ठीक है. अब मैं समझना भी छोड़ता हूं। उसी दिन वह दरवाजे के बाहर निकला, बाहर पीपल का वृक्ष है। सूखे पत्ते गिर रहे हैं। पतझड़ है। वह खड़ा हो गया, पत्ते गिर रहे हैं सूखे वह वापिस लौट कर पहुंचा। गुरु के पैर पकड़ लिए और कहा कि मैं समझ गया। गुरु ने कहा कि मैं तो थक गया समझा-समझा कर। तू अब तक नहीं समझा। उसने कहा : आज मैं समझने का ख्याल छोड़कर बाहर द्वार पर जाकर खड़ा हुआ। पीपल के पत्ते गिर रहे हैं। पत्ते सूख गए हैं और गिर रहे हैं। मुझे वह सब दिख गया जो आपने बहुत बार समझाया। मुझे मृत्यु दिख गई और मैं मर गया उन पत्तों के साथ। अब मैं वह आदमी नहीं हूं जो रोज आया करता था। अब मैं एक सूखा पत्ता हूं। गुरु ने कहा कि अब तुझे मेरे पास आने की जरूरत भी नहीं है। अब बात खत्म हो गई है। पीपल ही तेरा गुरु है, उसी को नमस्कार कर और विदा हो जा। अब पीपल को पता भी नहीं होगा।

कैसे पता होगा ? मैं समझाऊं तो उससे आप नहीं समझ पाएंगे। आप खुद समझेंगे तो ही समझेंगे। और वह समझ सदा आपकी अपनी होगी, वह मेरी नहीं हो सकती। हां, मैं एक मौका, एक अवसर पैदा कर सकता हूं समझाने

की कोशिश का। हो सकता है कोई उस वक्त जागा हुआ हो, उसे सुनाई पड़ जाए कि राजा बाबू उठो, कब तक सोए रहेंगे। लेकिन यह शास्त्र नहीं बनता। महावीर की वाणी शास्त्र नहीं बनती अगर हम महावीर को सर्वज्ञ और तीर्थंकर न बनाते। बुद्ध की वाणी शास्त्र न बनती अगर हम बुद्ध को भगवान् न बनाते। कृष्ण की वाणी शास्त्र न बनती अगर हम उन्हें भगवान् ने न बनाते। लेकिन हम बिना भगवान् बनाए रुक नहीं सकते क्योंकि बिना भगवान् बनाए हमें समझना पड़ेगा, भगवान् बनाने से झंझट उनकी तरफ हो जाती है। हमें समझने की कोई जरूरत नहीं रह जाती है।

हम शास्त्र को पकड़ लेते हैं, और पक्का कर लेना चाहते हैं कि महावीर आप्त हैं, उपलब्ध हैं, उनको ज्ञान मिल गया है, वह सर्वज्ञ हैं। अगर संदिग्ध हों तो हम फिर किसी और को खोजें। जीसस भगवान् के बेटे हैं, मुहम्मद पैगम्बर हैं, इस तरह हम पक्का विश्वास जुटा लेना चाहते हैं ताकि झंझट मिट जाए। फिर हम पकड़ लें। वह हमारा विवेक न जगाना पड़े।

विवेक से बचने के लिए हम शास्त्र को पकड़ते हैं। विवेक को जगाना हो तो पीपल के पत्ते भी जगा सकते हैं, जगत् की कोई घटना भी जगा सकती है, किताब भी जगा सकती है, किसी आदमी का बोलना भी जगा सकता है, किसी आदमी का चुप होना भी जगा सकता है। समझना हो तो चुप भी समझ में आती है, न समझना हो तो बोला हुआ सत्य भी समझ में नहीं आता।

मैं कोई पद्धति की बात नहीं कर रहा हूँ। विवेक कोई पद्धति नहीं हो सकती। विवेक का स्मरण आ सकता है। फिर आपको कूदना पड़ेगा तैरना पड़ेगा, तड़फड़ाना पड़ेगा। धीरे-धीरे आ जाएगा विवेक। जिस दिन आ जाएगा उस दिन आपको लगेगा कि किसी का दिया हुआ नहीं आया। किसी गुरु का दिया हुआ नहीं, किसी शास्त्र का दिया हुआ नहीं उस दिन आपको लगेगा कि 'मेरे ही भीतर सोया था जग गया है, मेरे भीतर सोया था जग गया ही था आ गया है, जो उपलब्ध था वही पा लिया है, जिसे कभी नहीं खोया था वही मिल गया है।

प्रश्न : पहला प्रश्न यह है कि समाज का अहिंसा से क्या सम्बन्ध है। दूसरा प्रश्न यह है कि महावीर ने अहिंसा या सत्य की दो ढाई हजार वर्ष पहले बात कही उसका आज क्या मतलब हो सकता है। तीसरा प्रश्न यह है कि जो आप कहते हैं कि नैतिक अहिंसा अलग है और धार्मिक अहिंसा अलग

हैं, अगर आप दोनों में से अहिंसा को हटा दें तो इसका मतलब यह है कि जब आप धर्म की बात पर आ जाते हैं तो वह नष्ट हो जाती है।

उत्तर : जो प्रश्न आपने पूछे हैं उनका समाधान मैं करूंगा तो नहीं होगा। समाधान आप खोजेंगे तो मिल जाएगा। मैं कोशिश कर सकता हूँ। पहली बात आप पूछते हैं कि आज के समाज के साथ अहिंसा का क्या सम्बन्ध है। समाज का अहिंसा से कभी सम्बन्ध नहीं था। समाज तो हिंसक है और हिंसा पर ही खड़ा है। अहिंसा का सम्बन्ध व्यक्तियों से है। अभी वह दिन दूर है जबकि सभी व्यक्ति अहिंसक हो जाएँगे और जो समाज होगा वह अहिंसक होगा। समाज का सम्बन्ध अभी अहिंसा से नहीं है, न अब तक कभी था। आगे सम्भावना है। कभी होगा, यह पक्का नहीं कहा जा सकता। व्यक्ति अहिंसा को उपलब्ध हो सकते हैं। लेकिन अगर व्यक्ति अहिंसा को उपलब्ध होते चले जाएं तो समाज उनसे निर्मित होगा, वह धीरे-धीरे अहिंसक होता चला जाएगा। अभी तक अहिंसक व्यक्ति पैदा हुए हैं, अहिंसक समाज पैदा नहीं हुआ है। महावीर अहिंसक होंगे, जैन थोड़े ही अहिंसक हैं ? बुद्ध अहिंसक होंगे, बौद्ध थोड़े ही अहिंसक हैं ? अहिंसक व्यक्ति पैदा हुए हैं अब तक, अहिंसक समाज नहीं पैदा हुआ। व्यक्ति बढ़ते चले जाएँगे और किसी दिन अहिंसक व्यक्तियों का पलड़ा भारी हो जायगा। अहिंसक व्यक्तियों से एक अहिंसक समाज की सम्भावना भी प्रकट होगी। अभी कोई आशा नहीं है जल्दी।

दूसरी बात आप पूछते हैं कि ढाई हजार साल पहले महावीर ने अहिंसा की जो बात कही उसका आज क्या मतलब हो सकता है ? कहां बैलगाड़ी का जमाना और कहां जेट का जमाना ? कहां महावीर को बिहार के बाहर जाना मुश्किल और कहां आदमी का चांद पर चला जाना ? बिल्कुल ठीक पूछते हैं आप। लेकिन इस बात का ख्याल नहीं है कि कुछ चीजें हैं जो न बैलगाड़ी पर यात्रा करती हैं और न जेट पर। कुछ चीजें हैं जिनका जेट से और बैलगाड़ी से कोई सम्बन्ध नहीं है। अन्तर्यात्रा के लिए न तो बैलगाड़ी की जरूरत है और न जेट की। अगर अन्तर्यात्रा में बैलगाड़ी की जरूरत होती तो महावीर की बात गलत हो जाती। अन्तर्यात्रा तो आज भी वैसी ही होगी जैसी ढाई हजार साल पहले होती थी और करोड़ वर्ष बाद भी जब कोई भीतर जाएगा तो वही विधि है बाहर को छोड़ने की और भीतर जाने की।

भीतर जाने में कभी कोई फर्क नहीं पड़ने वाला। और जो भीतर है उसमें भी समय से कोई फर्क नहीं पड़ता। वह समय के बाहर है। वह कालातीत है। इसलिए इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। धर्म इसी अर्थ में सनातन है। धर्म का अनुभव सनातन है, सामयिक नहीं है। उसका काल से कोई सम्बन्ध नहीं है। जब भी कोई व्यक्ति सत्य को उपलब्ध होगा वह उसी सत्य को उपलब्ध होगा जिस सत्य को कभी कोई उपलब्ध हुआ या कोई कभी उपलब्ध होगा। दो सत्य नहीं हैं। सत्य न नया है, न पुराना है। सत्य चिरंतन है, वही है। उसे पाने के लिए हमारा मन बड़े अधैर्य में है। हम चाहते हैं कोई सस्ती तरकीब, कोई ऐसी तरकीब कि एक गोली खा लें और आत्मज्ञान उपलब्ध हो जाए। कोई ऐसी तरकीब कि एक बटन दबाएं और आत्मा उपलब्ध हो जाए। हम इस फिराक में हैं। क्योंकि असल में शायद हमें आत्मा को उपलब्ध करने की कोई अभीप्सा ही नहीं है। सारी दुनिया में आदमी चाहता है कि सब कुछ अभी बन जाए, एकदम अभी हो जाए। लेकिन कुछ चीजें ऐसी हैं, कुछ बातें ऐसी हैं जो अभी अगर करना चाहेंगे तो कभी न होंगी क्योंकि अभी करने वाला चित्त इतना तनावग्रस्त होता है कि अभी नहीं कर सकता।

एक छोटी सी कहानी से समझाऊं। कोरिया में भिक्षुओं की एक कहानी है। एक वृद्ध भिक्षु ने अपने जवान भिक्षु के साथ एक नदी को पार किया है। नाव से उतरे हैं, दोनों के ऊपर ग्रन्थों का बोझ है जैसा भिक्षुओं के ऊपर होता है। बोझ को लेकर उतरे हैं, जल्दी से केवट से पूछा है कि गांव कितनी दूर है क्योंकि हमने सुना है कि सूरज ढलने पर गांव के दरवाजे बन्द हो जाते हैं। सूरज ढलने के करीब है। हम पहुँच पाएंगे या नहीं। रात तो न हो जाएगी। जंगल है, अंधेरा है, खतरा है। केवट से नाव को बांधते हुए धीरज से कहा कि अगर धीरे-धीरे गए तो पहुँच भी सकते हो। लेकिन अगर जल्दी गए तो कोई पक्का नहीं है। उन दोनों ने जब यह बात सुनी तो कहा कि यह तो पागल आदमी है, इसकी बातों में पड़ना तो झंझट का काम है, भागो, क्योंकि यह कह रहा है कि धीरे-धीरे गए तो पहुँच भी सकते हो, जल्दी गए तो कोई पक्का नहीं है। इस आदमी से क्या पूछना? दोनों भागे।

सूरज ढलने लगा है और वे भाग रहे हैं। अंधेरा होने लगा है, अंधेरा रास्ता है, पहाड़ी रास्ता है, अनजान हैं। बूढ़ा आदमी जो है, वह गिर पड़ा है, घुटने टूट गए हैं। वह केवट नाव बांध कर पीछे आया है और कह रहा है कि मैंने कहा था, मेरा बहुत बार का अनुभव है, जो धीरे गए हैं वे पहुँच गए हैं, वे

जल्दी के कारण नहीं पहुंच पाए हैं। एक चित्त की अवस्था है : जल्दी ! अभी ! यह विक्षिप्त चित्त की अवस्था है। पश्चिमी देशों में चित्त जल्दी में है, इतनी जल्दी में कि वह भीतर प्रवेश नहीं कर सकता। भीतर प्रवेश के लिए चाहिए अत्यंत शांत धैर्य वह अभी भी हो सकता है; ऐसा भी नहीं है कि जन्मों के बाद ही होगा अगर जन्मों के बाद की प्रतीक्षा हो तो अभी हो सकता है। और अभी करना हो तो जन्मों तक प्रतीक्षा भी करनी पड़ सकती है।

आखिरी बात आपने यह पूछी है कि नैतिक अहिंसा मिथ्या अहिंसा है, सच्ची अहिंसा नहीं है। नैतिक अहिंसा के पीछे हिंसा मौजूद रहेगी। और एक धार्मिक अहिंसा है जो अहिंसा है इस अर्थ में कि वहां से हिंसा बिदा हो गई है। तो आपने कहा कि इसका मतलब तो यह हुआ कि धर्म अनैतिक है। हां, एक अर्थ में यही मतलब हुआ। अनैतिक के दो रूप हैं : एक तो नीति से नीचे और एक नीति से ऊपर। दोनों अनैतिक हैं। जो नीति से ऊपर उठते हैं वही धर्म को उपलब्ध होते हैं। नीचे भी उतरते हैं लोग। उनको हम अनैतिक कहते हैं। अनैतिक शब्द ठीक नहीं मालूम पड़ता। इसलिए कहना चाहिए अतिनैतिक।

धर्म अतिनैतिक है, वह नैतिक नहीं है। पापी भी अनैतिक है, वह नीति से नीचे उतर आया, उसने खुलकर हिंसा करनी शुरू कर दी। वह पापी है। नैतिक वह है जिसने हिंसा भीतर दबा ली और अहिंसा का बाना पहन लिया। यह सज्जन है, यह नैतिक है। धार्मिक वह है जिसकी हिंसा बिदा हो गई है और अहिंसा ही शेष रह गई है। यह अतिनैतिक है, यह भी अनैतिक है। यह भी नीति के पार चला गया। इसको भी नैतिक नहीं कहा जा सकता।

महावीर की, बुद्ध की या कृष्ण की वाणी नैतिक नहीं है, अतिनैतिक है और इसलिए जब पश्चिम में पहली बार भारतीय ग्रन्थों का अनुवाद शुरू हुआ तो पश्चिम के विचारकों को तकलीफ मालूम पड़ी कि इनमें नीति का तो कोई उपदेश ही नहीं है। उपनिषदों के पूरे अनुवाद हो गए लेकिन उन्हें मालूम हुआ कि कहीं कोई नीति का उपदेश ही नहीं है। ऐसा होना ही चाहिए। धर्म तो नीति से बहुत ऊपर की बात है। सन्त सज्जन से बहुत भिन्न बात है। सज्जन थोपा हुआ दुर्जन है। भीतर मौजूद है दुर्जनता। ऊपर सज्जनता है। सन्त वह है जिसके सज्जन, दुर्जन दोनों बिदा हो गए हैं। वहां कोई भी नहीं है। न नीति है, न अनीति है। वहां सब शांति है।

प्रश्न : आपने कहा कि बाह्य आचरण से सब हिंसक हैं। इसके साथ-साथ आपने कहा कि चूंकि रामकृष्ण परमहंस, विवेकानन्द मांस खाते थे,

इसलिए वे अहिंसक नहीं थे। साथ ही साथ आपने कहा कि बुद्ध और महावीर अहिंसक थे। बुद्ध तो मांस खाते थे, वह अहिंसक कैसे थे ?

उत्तर : यह बात आपने अच्छी पूछी। मेरा मानना है कि आचरण से अहिंसा उपलब्ध नहीं होती। मैंने यह नहीं कहा कि अहिंसा से आचरण उपलब्ध नहीं होता। इसके फर्क को समझ लीजिए आप। हो सकता है कि मैं मछली न खाऊं। लेकिन इससे मैं महावीर नहीं हो जाऊंगा। लेकिन यह असम्भव है कि मैं महावीर हो जाऊं और मछली खाऊं। इस फर्क को आप समझ लें। आचरण को साधकर कोई अहिंसक नहीं हो सकता लेकिन अहिंसक हो जाए तो आचरण में अनिवार्य रूपान्तरण होगा।

दूसरी बात यह कि मैंने बुद्ध और महावीर को अहिंसक कहा लेकिन बुद्ध मांस खाते थे। बुद्ध मरे हुए जानवर का मांस खाते थे। उसमें कोई भी हिंसा नहीं है। लेकिन महावीर ने उसे वर्जित किया किसी सम्भावना के कारण। जैसा कि आज जापान में है। सब होटलों के, दूकानों के ऊपर तख्ती लगी हुई है कि यहां मरे हुए जानवर का मांस मिलता है। अब इतने मरे हुए जानवर कहां से मिल जाते हैं, यह सोचने जैसा है। बुद्ध चूक गए, बुद्ध से भूल हो गई। हालांकि मरे हुए जानवर का मांस खाने में हिंसा नहीं है क्योंकि हिंसा का मतलब है कि मार कर खाना। मारा नहीं है तो हिंसा नहीं है। लेकिन यह कैसे तय होगा कि लोग फिर मरे हुए जानवर के नाम पर मारकर नहीं खाने लगेंगे। इसलिए बुद्ध से चूक हो गई है और उसका फल पूरा एशिया भोग रहा है।

बुद्ध की बात तो बिल्कुल ठीक है लेकिन बात के ठीक होने से कुछ नहीं होता किन लोगों से कह रहे हैं, यह भी सोचना जरूरी है। महावीर की समझ में भी आ सकती है यह बात कि मरे हुए जानवर का मांस खाने में क्या कठिनाई है। जब मर ही गया तो हिंसा का कोई सवाल नहीं है। लेकिन जिन लोगों के बीच हम यह बात कह रहे हैं; वह कल पीछे के दरवाजे से मारकर खाने लगेंगे। वह सब सज्जन लोग हैं, वह सब नैतिक लोग हैं, बड़े खतरनाक लोग हैं। वह रास्ता कोई न कोई निकाल ही लेंगे वह पीछे का कोई दरवाजा खोल ही लेंगे। मैं बुद्ध और महावीर दोनों को पूर्ण अहिंसक मानता हूं। बुद्ध की अहिंसा में रत्ती भर कमी नहीं है लेकिन बुद्ध ने जो निर्देश दिया है, उसमें चूक हो गई है। वह चूक समाज के साथ हो गई है। अगर समझदारों की दुनिया हो तो चूक होने का कोई कारण नहीं है।

एक मित्र यह पूछते हैं कि विवेक के लिए विवेक के प्रति जागना क्या अपनी अविवेक बुद्धि के साथ प्रतिहिंसा न होगी। फिर आप मेरे विवेक का मतलब नहीं समझे। मैं यह नहीं कह रहा हूं कि विवेक से अविवेक को काटें। अगर काटें तो हिंसा होगी। मैं तो यह कह रहा हूं कि आप सिर्फ विवेक में जागें। कुछ है जो कट जाएगा, कट जाएगा इस अर्थ में कि वह था ही नहीं, आप सोए हुए थे इसीलिए था, अन्यथा वह गया। कटेगा भी कुछ नहीं, अंधेरा कटेगा थोड़े ही दिए के जलाने से। इसलिए अंधेरे के साथ कभी भी हिंसा नहीं हुई है। वह नहीं रहेगा बस।

विवेक जगेगा और अविवेक चला जाएगा। इसमें मैं हिंसा नहीं देख पाता हूं जरा भी। आप यह कहते हैं कि यह तो ठीक, दिखाई पड़ता है कि दिए को जलाया और अंधेरा चला गया। इसको हम सच मान सकते हैं क्योंकि यह हमारा अनुभव है। दूसरे को कैसे सच मानें? मैं कहता ही नहीं कि मानें। अनुभव हो जाएगा तो मान लेंगे। इसको मैं कहता भी नहीं कि मानें मैं कहता हूं कि आप प्रयोग करके देखें। यदि संशय सच में ही जगा है तो प्रयोग करवा कर ही रहेगा। तभी संशय सच्चा है। तो प्रयोग करके देख लें। विवेक जग जाए और अगर अहिंसा रह जाए तो समझना कि मैं जो कहता था, सत्य नहीं कहता था। लेकिन अब तक ऐसा नहीं हुआ है और न हो सकता है।

परिशिष्ट (२)

ध्यान

गहरे ध्यान की पहली जरूरत तो यह है कि उसका स्मरण जितने ज्यादा समय तक रह सके उतना ही गहरा हो सकता है। एक सरल सी प्रक्रिया पर रोजदिन भर ख्याल रखें। चलते उठते बैठते सोते जब तक ख्याल रहे स्वांस पर ख्याल रहे, पूरे वक्त स्मृति स्वांस पर रहे कि स्वांस भीतर जा रहा है तो हमारी स्मृति भी उसके साथ भीतर जाए, बोध भी कि स्वांस भीतर गया। स्वांस बाहर जा रहा है तो बोध भी स्वांस के साथ बाहर जाए। आप स्वांस पर ही तैरने लगें, स्वांस पर ही चेतना की नाव को लगा दें—बाहर जाए तो बाहर, भीतर जाए तो भीतर। स्वांस के साथ ही आपका भी कम्पन होने लगे और इसे बिल्कुल न भूलें कभी। जब भी भूल जाएं और जब से याद आए, फौरन फिर शुरू कर दें। घूमने गए हैं, बगीचे में गए हैं, कहीं भी गए हैं, कार में बैठे हैं तो इसको नहीं छोड़ देना है। इसको सतत ही स्मरण रखें। तो एक तीन-चार दिन में स्मरण टिकने लगेगा और जैसे-जैसे स्मरण टिकने लगेगा वैसे-वैसे ही आपका चित्त शांत होने लगेगा। ऐसी शांति जो आपने कभी नहीं जानी होगी क्योंकि जब चित्त पूर्ण स्वांस के साथ चलने लगता है तो विचार अपने आप बन्द होने लगते हैं। विचार का उपाय नहीं रहता क्योंकि ये दो बातें एक साथ नहीं हो सकतीं। स्वांस पर चित्त होगा तो विचार बन्द होंगे और विचार पर चित्त जाएगा तो स्वांस पर नहीं रहेगा। दोनों बातें एक-साथ नहीं हो सकतीं। यह असम्भव है। इसलिए मैं स्वांस पर ध्यान रखने के लिए कह रहा हूं ताकि विचार वहां खो जाएं।

विचार सीधे हटाने तो बहुत कठिन हैं क्योंकि वह तो दबाना हो जाता है। यहां हम हटा नहीं रहे विचारों को। विचारों से कोई सम्बन्ध ही नहीं। हम तो अपनी पूरी चेतना को दूसरी जगह लिए जा रहे हैं और चूंकि चेतना वहां होती जहां विचार हैं इसलिए उनको हट जाना पड़ता है। यानी हम किसी आदमी को यह नहीं कह रहे कि तुम इस कमरे को छोड़ो, यह कमरा ठीक नहीं है। तुम इस कमरे को छोड़ो, यह कमरा ठीक नहीं है। तुम भागो यहां से।

और उस आदमी को कमरा अच्छा लग रहा है। सिर्फ हम उसको यह कहते हैं कि बाहर बगिया है, बड़े अच्छे फूल लगे हैं? आते हो क्या? हम उससे कमरा छोड़ने की बात ही नहीं कर रहे। कह रहे हैं बाहर फूल हैं, बगिया है, सूरज निकला है, आते हो क्या? हम बाहर आने का निमंत्रण दे रहे हैं। कमरा छोड़ने का आग्रह नहीं कर रहे। बाहर आ जाएगा तो कमरा छूट जायगा। इसलिए कमरे की हमें चिन्ता नहीं करनी है। तो विचार छोड़ने का ख्याल ही नहीं करना है। स्वांस पर ध्यान चला जाए तो विचार छूट जाते हैं क्योंकि स्वांस बिल्कुल दूसरा तल है, जहां विचार नहीं है। और विचार एक दूसरा तल है जहां स्वांस का स्मरण नहीं हो सकता। तो यह बिल्कुल ही विरोधी प्रक्रियाएं हैं। और अगर एक तल पर ले जाते हैं तो दूसरे से अपने-आप मुक्ति हो जाती है।

तो पूरे समय, ऐसा नहीं कि कभी थोड़ी बहुत देर, क्योंकि तब फिर गहरा नहीं हो पाएगा तो पूरे समय स्वांस पर ध्यान रखें। सुबह उठें तो पहला स्मरण स्वांस का; रात सोएं तो अन्तिम स्मरण स्वांस का। तो अपने-आप आपका बोलना कम हो जायगा। क्योंकि जैसे आप बोलेंगे, आपका ध्यान स्वांस से हट जाएगा फौरन। इसलिए मैं मौन रहने के लिए भी नहीं कहता। क्योंकि ये दोनों बातें एकसाथ नहीं चल सकतीं। आप बोले कि स्वांस से ध्यान गया। स्वांस का ध्यान रखना है तो बोलना बंद करना होता है, अपने-आप हो जाता है। तो कम बोलना पड़ेगा। बहुत कम बोलिए। लेकिन अक्सर होता क्या है? इतनी शांत जगह में भी आकर जब हम बातें करते हैं तो शांत जगह विलीन हो जाती है और शांति का जो प्रभाव है वह हममें प्रवेश नहीं कर पाता। बातों की हम दीवार खड़ी रखते हैं। जैसे कि आप बैठ गए आकर कमरे में, बात करने लगे तो आप भूल जाएंगे कि आप श्रीनगर में हैं, कि वह डल लेक है, पहाड़ी है, सब गायब। वह जो बातों का तल है, वह आपको सब भुला देगा। तो जैसे आप बम्बई में होते हैं, दिल्ली में होते हैं वही हो जायगा। उसमें कोई फर्क नहीं पड़ता।

तो बातचीत से बचें और ध्यान स्वांस पर ले जाएं। बातचीत अपने आप क्षीण हो जाएगी। यदि हम चाहते हैं कि पन्द्रह दिन में धीरे-धीरे ऐसा हो जाए तो अकारण, व्यर्थ, फिजूल बातचीत न करें तभी ध्यान गहरा होगा। मैं यह नहीं कह रहा हूं कि बोलो मत लेकिन बोलो वही जो जरूरत का है, काम का है, बाकी चुप। और चुप इसलिए कि ध्यान स्वांस पर रहे। थोड़ा एकान्त में भी जाएं जब मौका मिल जाए। साथ मत ले जाएं किसी को क्योंकि तब दूसरा

साथ होता है तो ध्यान दूसरे पर होता है। बड़ी सूक्ष्म बात है। अगर ख्याल करें कि दूसरा मौजूद है तो आप उसको भूल नहीं सकते। इस कमरे में आप अकेले बैठे हैं और इस कमरे में एक आदमी को और लाकर बिठा दिया और आपसे कहा कि आपको कोई मतलब नहीं, आपको जो करना हो करिए। आप चाहे किताब पढ़ो और चाहे आप कुछ भी करो। वह आदमी यहां मौजूद है। आप भूल नहीं सकते और आपकी चेतना सतत उसके होश से भरी रहेगी। और उसको अगर आप भूल गए हो तो पत्नी बहुत बुरा मानेगी। पति को अगर पत्नी भूल गई हो तो पति बुरा मानता है। असल में हम बुरा ही तब मानते हैं जब कोई हमारा हमें भूलता है। उसी सैकेंड हम बुरा मानते हैं। क्योंकि हमारी पूरी आकांक्षा दूसरे का ध्यान हम पर हो, यह बनी रहती है और जिसको हम प्रेम वगैरह कहते हैं, वह कुछ नहीं है, वह एक दूसरे पर ध्यान देने का सुख है और कुछ नहीं सिवाय कि दूसरा मुझे याद रखे। इसके कारण हैं बहुत गहरे। कारण यह है कि हमको अपना तो कोई स्मरण नहीं। तो हम अपने अस्तित्व को दूसरे को स्मरण कराकर ही अनुभव कर पाते हैं। और कोई उपाय ही नहीं। अगर दूसरा भूल गया तो हम गए।

समझ लीजिए कि आप यहां हैं और आपके सब मित्र भूल गए तो आपका दुनिया में क्या रह गया? आप गए। आपका अस्तित्व ही खत्म हो गया। आप हो ही नहीं फिर। दीपचंद पन्द्रह दिन से यहां हैं। और दीपचंद जी को सारे लोग भूल गए। दीपचंद कहीं जाता है, कोई नमस्कार नहीं करता। कोई नहीं कहता : कहो, कैसे हो! कोई नहीं पूछता, कोई फिक्र नहीं करता, कोई देखता, ही नहीं उसकी तरफ, कोई ध्यान ही नहीं देता तो दीपचंद एकदम मिट गए। क्योंकि दीपचंद अपने भीतर तो कुछ हैं ही नहीं। एक ध्यान का ही जोर है जो कुछ है। इसलिए जो ध्यान देता है वह प्यारा मालूम पड़ता है; जो नहीं देता वह दुश्मन मालूम पड़ता है; जो मुंह फेर लेता है वह दुश्मन है; जो पास आ जाता है वह मित्र है और हमारा सारा सम्बन्ध उसी पर खड़ा है।

पति-पत्नी, प्रेमी-प्रेयसी, मित्र-मित्र, बाप-बेटे, सब उसी पर खड़े हैं कि ध्यान दो। अगर बाप को लगता है कि बेटा ध्यान नहीं दे रहा है उसको तरफ तो वह नाखुश होता है। बेटे को लगता है कि बाप ध्यान नहीं दे रहा है तो वह नाखुश होता है। लोग बीमार पड़ते हैं इसलिए कि दूसरा ध्यान दे। क्योंकि अगर वैसे ध्यान नहीं मिलता तो पत्नी बीमार पड़ गई। अब तो पति को ध्यान देना पड़ेगा। अब तो बैठे रहो छुट्टी लेकर, दफ्तर छोड़ कर। स्त्रियों को तीस

प्रतिशत से ज्यादा बीमारियां सिर्फ ध्यान की बीमारियां हैं। जैसे इनको लगा कि ध्यान नहीं दिया जा रहा है, ये बीमार पड़ गई। बस और कोई उपाय नहीं है उनके पास। ये कैसे आपका ध्यान आकृष्ट करें? जिन बच्चों को मां का प्रेम नहीं मिलता वे निरन्तर बीमार पड़ते हैं, बीमार पड़ने का और कोई कारण नहीं है। माँ की कमी नहीं, ध्यान की कमी है। माँ की कोई बात नहीं, माँ से ज्यादा ध्यान कोई नहीं दे पाता। इसलिए कि सब कमी हो गई। नर्स रख दो तो वह उनको दूध पिला देती हैं, ध्यान नहीं देती है। उसका ध्यान रहता है कि उसको पाँच बजे जाना है। बच्चे को कपड़ा नहीं चाहिए, कपड़े से ज्यादा ध्यान चाहिए।

ध्यान बोझिल है बहुत गहरा, वह न मिले तो चूक हो जाती है। इसलिए दूसरे को साथ न ले जाएँ क्योंकि वह माँग करता है पूरे वक्त कि आप ध्यान दो और आप भी माँग करते हो कि वह ध्यान दे। और यह सौदा साथ में चलता है, इसलिए ध्यान दोनों को देना पड़ता है। तो अकेले हो जाएँ थोड़ी देर को और जहाँ भी जाएँ ऐसा ख्याल करें कि अकेले हैं हम, जैसा कोई दूसरा है ही नहीं साथ। इसको थोड़ा ख्याल करेंगे तो ही आप स्वांस पर ध्यान दे पाएँगे। नहीं तो दूसरा मिल गया तो गया मामला।

स्वांस पर पूरा वक्त ध्यान रखें और घंटा, आधा घंटा कभी भी एकान्त में बैठ कर ध्यान रखें। आँखें बंद कर लें और स्वांस पर ही ध्यान रखें। क्योंकि बाहर चलते हैं, काम करते हैं, बार-बार चूक हो जाती है। पैर में काँटा गड़ गया है तो ध्यान कहाँ स्वाँस पर रहा? ध्यान तो काँटे पर चला गया। प्यास लगी तो ध्यान पानी पर चला जाएगा। एक घंटे के लिए कहीं एकान्त मिल जाए तो वहाँ बैठ जाएँ। रात बहुत बढ़िया होगी। कपड़े वगैरह पहनकर कहीं भी दीवार से टिक जाएँ और बैठ जाएँ और पूरा घंटा स्वाँस में ही बिता दें। तो इन पन्द्रह दिनों में उतना बड़ा काम हो जाएगा जो आप अकेले पन्द्रह वर्षों में नहीं कर पाएंगे। हो सकता है कि इसमें दो चार घटनाएँ घटें, उनकी चिन्ता नहीं करनी है।

जैसे स्वाँस पर जितना ध्यान देंगे नींद कम हो जाएगी। उसकी जरा भी चिन्ता न करें। जितनी देर नींद खुली रहे बिस्तर पर ही स्वाँस पर ध्यान रहे। चार-पाँच दिन स्वाँस पर ध्यान रखने से नींद उड़ भी जा सकती है। उस पर जरा भी चिन्ता न करें। क्योंकि स्वाँस पर ध्यान रखने से जो काम होता है, वह पूरा हो जाता है, विश्राम मिल जाता है। नींद दो तरह से खत्म होती है।

तनाव से भी और विश्राम से भी। चिन्ता से भी नींद खत्म होती है क्योंकि चिन्ता इतना तनाव से भर देती है कि मस्तिष्क शिथिल ही नहीं हो पाता तो नींद खत्म हो जाती है। और अगर कोई ध्यान का प्रयोग करे तो चित्त इतना शांत हो जाता है कि नींद से जो शांति की जरूरत थी वह पूरी हो जाती है। इसलिए नींद का कोई कारण नहीं रह जाता। वह विदा हो जाती है। तो उसका ध्यान नहीं करेंगे, जरा भी फिक्र नहीं करेंगे।

और कुछ अजीब-अजीब अनुभव हो सकते हैं तो उन पर भी चिन्ता नहीं करेंगे। वे अलग-अलग सबको हो सकते हैं। एक से होते भी नहीं। इसलिए एक घंटे का दोपहर को वक्त दिया है कि वैसा कोई अनुभव हो तो मुझसे अलग बात कर लें और उसकी बात किसी दूसरे से, आप मत करें। क्योंकि दूसरा सिर्फ हंसेगा और आपको पागल समझेगा क्योंकि वैसा अनुभव उसको नहीं हो रहा है। इसलिए उसको दूसरे से कहना ही मत कभी। क्योंकि वह सबको अलग-अलग होता है। हो सकता है स्वांस पर ध्यान देते समय किसी को एकदम ऐसा लगे कि उसका शरीर बहुत बड़ा हो गया है और एकदम फैल गया है, विस्तार हो गया है उसके शरीर का और वह एक दम घबड़ा जाए कि यह क्या हो गया, अब उठ सकेंगे कि नहीं उठ सकेंगे। इतना भारी हो जाए कि एकदम पत्थर हो जाए, इना हल्का हो जाए कि ऐसा लगे कि जमीन से ऊपर उठ गया है, जमीन और हमारे बीच फासला हो गया है, मैं ऊपर उठा जा रहा हूं, मैं लौट पाऊंगा या नहीं लौट पाऊंगा। कुछ भी लग सकता है।

एकदम स्वांस पर ध्यान देते-देते अचानक लग सकता है कि स्वांस डूबी जा रही है और कहीं मैं मर तो नहीं जाऊंगा। गहन अंधकार का अनुभव हो सकता है, तेज चमकती बिजलियों का अनुभव हो सकता है। सुगन्ध अनुभव हो सकती है, कुछ भी हो सकता है, बहुत तरह की बातें हो सकती हैं तो उनको चुपचाप खुद ही अपने भीतर रखें, किसी से कहें ही नहीं। जब मैं आपको अलग मिलूंगा दरवाजा बंद करके तो आप मुझको कहें। और मुझसे कहकर फिर आप दुबारा उसकी किसी से बात मत करें। उसके कई कारण हैं। एक तो दूसरा कभी उस पर विश्वास नहीं कर सकता, कभी नहीं करेगा क्योंकि वैसा उसको हो नहीं रहा है। और वह हंसेगा और उसकी हंसी आपको नुकसान पहुंचाएगी, बहुत गहरा नुकसान पहुंचाएगी।

दूसरी बात है कि हमें जो अनुभव होते हैं, अगर हम उनकी बात करें तो वह फिर दुबारा नहीं होते क्योंकि वे होते हैं अनायास और जब हम उनकी बात

कर देते हैं तो फिर नहीं होते। और भी एक बड़े मजे की बात है कि ये जो गहरी अनुभूतियां हैं उनको बिल्कुल रहस्य की तरह छिपाना चाहिए। नहीं तो ये बिखर जाती हैं। उनमें भी बड़ी ताकत है। जैसे कि हम तिजोरी में धन छिपा देते हैं और जैसे कि हम कपड़े पहनते हैं और सूरज की गर्मी को भीतर रोक लेते हैं, सर्दी पड़ रही है तो हम कपड़े पहने हुए हैं इसलिए कि सर्दी हमारी गर्मी को खींच लेगी बाहर और शरीर मुश्किल में पड़ जाएगा। तो पूरे वक्त हमारा शरीर बाहर के सम्पर्क में अपनी गर्मी को खो रहा है, अपनी शक्ति खो रहा है। जब बहुत गहरी अनुभूतियां अन्दर होती हैं तो एक खास तरह की शक्ति पैदा होती है उन अनुभवों के साथ। अगर आपने बात की तो वह तत्काल बिखर जाती है, खो जाती है। तो उसकी बात ही नहीं करना। निकटतम सम्बन्धियों से भी बात मत करना, पत्नी से भी नहीं कहना। उसको बिल्कुल अपने अन्दर छिपा लेना ताकि वह बढ़े, गहरी हो और गहरे अनुभवों में ले जाए। इसलिए उसकी बात मत करना। और फिर एक-एक अलग-अलग के साथ बात करूँगा कि उसे कैसा लग रहा है। यह जो साधारण था वह मैंने कह दिया है।

लेकिन श्वांस पर ध्यान केन्द्रित करना बहुत गहरा प्रयोग है। 'मैं कौन हूँ' भी बहुत गहरा प्रयोग है। लेकिन वह विचार की दिशा से निर्विचार में जाने की कोशिश है। यह विचार ही है कि 'मैं कौन हूँ' और यह विचार की ही इतनी तीव्रता में जाना है कि जाकर वह उतार दे आपको निर्विचार में। तो 'मैं कौन हूँ' में कुछ लोगों को तनाव भी हो सकता है; परेशानी भी हो सकती है। लेकिन अभी जो मैंने प्रयोग बताया है इसमें किसी को कोई तनाव नहीं, कोई परेशानी नहीं।

और मैं हर एक तरह की विधियों की बात करता हूँ, सिर्फ इस कारण कि बहुत तरह के लोग हैं, न जाने किसको कौन-सी विधि कब पकड़ में आ जाए। तो जिसको जो पकड़ में आ जाए, वह उस पर चला जाए। एक सौ बारह विधियां हैं ध्यान की। बहुत अच्छा होगा कि मैं एक बार उन एक सौ बारह विधियों पर सात-आठ दिन बैठकर बात करूं ताकि एक पूर्ण संकलन पूरी विधियों का अलग हो जाए।

रहस्यदर्शी ऋषि रजनीश : एक झलक

भगवान् श्री रजनीश वर्तमान युग के एक अन्तर्द्रष्टा क्रांतिकारी विचारक, आधुनिक संत, रहस्यदर्शी ऋषि और जीवन-सर्जक सद्‌गुरु हैं।

वैसे तो धर्म, अध्यात्म व साधना में ही उनका जीवन-प्रवाह है; लेकिन कला, साहित्य, दर्शन, राजनीति, समाजशास्त्र, आधुनिक विज्ञान आदि में भी वे अनूठे और अद्वितीय हैं।

जो भी वे बोलते हैं, वह सब जीवन की आत्यंतिक गहराइयों व अनुभूतियों से उद्‌भूत होता है। वे हमेशा जीवन-समस्याओं की गहनतम जड़ों को स्पर्श करते हैं। जीवन को उसकी समग्रता में जानने, जीने और प्रयोग करने के वे जीवन्त प्रतीक हैं।

जीवन की चरम ऊंचाइयों में जो फूल खिलने संभव हैं, उन सबका दर्शन व्यक्तित्व में संभव है।

भगवान् श्री का व्यक्तित्व अथाह सागर जैसा है। उनके सम्बन्ध में संकेत मात्र हो सकते हैं। जो व्यक्ति परम आनंद, परम शांति, परम मुक्ति, परम निर्वाण को उपलब्ध होता है उसके स्वांस-स्वांस से, रोयें-रोयें से, प्राणों के कण-कण से एक संगीत, एक गीत, एक नृत्य, एक आह्लाद, एक सुगंध, एक आलोक, एक अमृत की प्रतिपल वर्षा होती रहती है और समस्त अस्तित्व उससे नहा उठता है। इस संगीत, इस गीत, इस नृत्य को कोई प्रेम कहता है, कोई अनंद कहता है और कोई मुक्ति कहता है। लेकिन वे सब एक ही सत्य को दिये गये अलग-अलग नाम हैं।

ऐसे ही हैं—भगवान् श्री रजनीश जो मिट गये हैं, शून्य हो गये हैं, जो अस्तित्व व अनस्तित्व के साथ एक हो गये हैं, जिनका स्वांस-स्वांस अंतरिक्ष की स्वांस हो गयी है, जिनके हृदय की धड़कनें चांद-तारों की धड़कनों के साथ एक हो गयी हैं, जिनकी आंखों में सूरज-चांद-तारों की रोशनी देखी जा सकती है, जिनकी मुस्कराहटों में समस्त पृथ्वी के फूलों की सुगंध पायी जा सकती है, जिनकी वाणी में पक्षियों के प्रातः गीतों की निर्दोषता व ताजगी है और जिनका सारा व्यक्तित्व ही एक कविता, एक नृत्य व एक उत्सव हो गया है।

इस नृत्यमय, संगीतमय, सुगंधमय, आलोकमय व्यक्तित्व से प्रतिपल निकलने वाली प्रेम की, करुणा की लहरों के साथ जब लोगों को जिज्ञासा व मुमुक्षा का संयोग होता है तब प्रवचनों के रूप में उनसे ज्ञान-गंगा बह उठती है।

उनके प्रवचनों में जीवन के, जगत् के, साधना के, उपासना के विविध रूपों व रंगों का स्पर्श है। उनमें पाताल की गहराइयाँ हैं और विराट् अंतरिक्ष की ऊँचाइयाँ हैं। देश व काल की सीमाओं के अतिक्रमण के बाद जो महाशून्य और निःशब्द की अनुभूति शेष रह जाती है उसे शब्दों में, इशारों में, मुद्राओं में व्यक्त करने का सफल-असफल प्रयास भी उनके प्रवचनों में रहता है।

उनके प्रवचन सूत्रवत् हैं, सीधे हैं, हृदयस्पर्शी हैं, मीठे हैं, तीखे हैं और साथ ही पूरे व्यक्तित्व को झकझोरने व जगाने वाले भी हैं। उनके प्रवचनों और ध्यान के प्रयोगों से व्यक्ति की निंद्रा, प्रमाद व मूर्छा टूटती है और वह अन्तः व बाह्य रूपान्तरण, जागरण और क्रांति में संलग्न हो जाता है।

—स्वामी योग चिन्मय

भगवान् श्री रजनीश हिन्दी साहित्य

क्रम	पुस्तक	मूल्य
१	महावीर : मेरी दृष्टि में	४०.००
२	महावीर वाणी	३०.००
३	जिन खोजा तिन पाइयाँ	२०.००
४	ईशावास्योपनिषद्	१२.००
५	प्रेम है द्वार प्रभु का	८.००
६	समुन्द समाना बुन्द में	७.००
७	घाट भुलाना बाट बिनु	७.००
८	सूली ऊपर सेज पिया की	७.००
९	सत्य की पहली किरण	६.००
१०	संभावनाओं की आहट	६.००
११	अन्तर्वीणा	६.००
१२	ढाई आखर प्रेम का	६.००
१३	मैं कहता आँखन देखी	६.००
१४	साधना-पथ	५.००
१५	मिट्टी के दिये	५.००
१६	संभोग से समाधि की ओर	५.००
१७	अन्तर्यात्रा	५.००
१८	अस्वीकृति में उठा हाथ (भारत, गाँधी और मेरी चिन्ता)	५.००
१९	प्रेम के फूल	५.००
२०	गीता-दर्शन (पुष्प-१)	६.००
२१	गहरे पानी पैठ	५.००
२२	क्रांति-बीज	४.००
२३	पथ के प्रदीप	४.००
२४	सत्य की खोज	४.००
*२५	प्रभु की पगडण्डियाँ	४.००
२६	समाजवाद से सावधान	५.००
*२७	ज्यों की त्यों धरि दीन्हीं चदरिया	५.००
*२८	गीता-दर्शन (पुष्प-२)	४.००
२९	मैं कौन हूँ ?	३.००
३०	शून्य की नाव	३.००
*३१	अज्ञात की ओर	२.००
*३२	नये संकेत	२.००
३३	सिंहनाद	२.००
३४	प्रेम और विवाह	१.५०
३५	प्रगतिशील कौन ?	१.५०
३६	विद्रोह क्या है ?	१.५०
३७	ज्योतिष : अद्वैत का विज्ञान	१.५०
३८	ज्योतिष अर्थात् अध्यात्म	१.५०
*३९	जन-संख्या विस्फोट : समस्या और समाधान (परिवार नियोजन का परिवर्धित संस्करण)	१.५०
*४०	सत्य के अज्ञात सागर का आमन्त्रण	१.५०
*४१	सारे फासले मिट गये	१.२५
*४२	कुछ ज्योतिर्मय क्षण	१.००
*४३	सूर्य की ओर उड़ान	१.००
*४४	मन के पार	१.००
४५	युवक और यौन	१.००
*४६	नये मनुष्य के जन्म की दिशा	०.७५
*४७	प्रेम के पंख	०.७५
*४८	अमृत-कण	१.००
*४९	अहिंसा-दर्शन	१.००
*५०	पूर्व का धर्म : पश्चिम का विज्ञान	०.५०
५१	क्रांति के बीच सबसे बड़ी दीवार	०.३५
५२	बिखरे फूल	१.००
५३	क्रांति की नयी दिशा : नयी बात	०.३०
*५४	युवक कौन ?	०.३०
५५	संस्कृति के निर्माण में सहयोग (जीवन जागृति केन्द्र : क्या, क्यों, कैसे ?)	०.३०
५६	अवधिगत संन्यास	०.३०
५७	व्यस्त जीवन में ईश्वर की खोज	०.२५
५८	क्रांति की वैज्ञानिक प्रक्रिया	१.५०
५९	धर्म और राजनीति	१.००
६०	ध्यान : एक वैज्ञानिक दृष्टि	१.००

—प्रेस के लिए बड़ी पुस्तकें—

६१ मैं मृत्यु सिखाता हूँ	२०.००
६२ निर्वाण उपनिषद्	१५.००
६३ ताओ उपनिषद् (दो खण्डों में, प्रथम १९ सूत्र)	४०.००
६४ कृष्ण : मेरी दृष्टि में	
६५ गीता-दर्शन, अध्याय ६ (४ खण्डों में प्रथम दस अध्याय)	३०.००
६६ नव-संन्यास क्या ?	७.००
६७ मुल्ला नसरुद्दीन	५.००
६८ शून्य के पार	४.००
६९ बूँद-बूँद से घट भरे (२०० अंग्रेजी पत्रों का अनुवाद)	

—छोटी पुस्तिकाएँ प्रेस में—

७० ध्यान : नये आयाम (सक्रिय ध्यान और कीर्तन ध्यान)	

सूचना—*चिन्ह अंकित पुस्तकें पुनर्मुद्रण के लिए प्रेस में लम्बित हैं।

गुजराती में अनुवादित साहित्य

१ अन्तर्यात्रा	५.००
२ सम्भोगथी समाधि तरफ	४.००
३ साधना-पथ	३.००
४ पन्थना प्रदीप	३.००
५ माटीना दिवा	३.५०
६ हूँ कोण छूं ?	३.००
७ क्रान्ति-बीज	२.५०
८ अज्ञात प्रति	२.००
९ नवां संकेत	१.७५
१० सत्यना अज्ञात सागरनुँ आमंत्रण	१.५०
११ मननी पार	१.५०
१२ सूर्य तरफनुँ उड्डयन	१.००
१३ जीवन अने मृत्यु	१.००
१४ केटलीक ज्योतिर्मय क्षण	०.७५
१५ नवा मनुष्यना जन्मनी दिशा	०.७५
१६ प्रेमनी पाँखे	०.७५
१७ अमृत-कण	०.५०
१८ अहिंसा-दर्शन	०.५०
१९ तरुण विद्रोह	०.५०
२० भ्रान्त समाजवाद	०.३०
२१ अतीतनी आलोचना, भावीनु चिन्तन	०.३५
२२ गाँधीमां डोकियुं अने समाजवाद	०.३५
२३ अभिनव संन्यास	०.५०
२४ ध्यान	०.७५
२५ प्रेम	०.७५
२६ परिवार	०.७५
२७ संकल्प	०.७५
२८ परिवार नियोजन	०.७५
२९ प्रेमनी प्राप्ति	०.४०
३० तीर्थ	२.००
३१ सहज योग	१.००
३२ अकाम	१.००
३३ सन्यास अने संसार	१.००
३४ प्रेमनां फूलो	५.००
३५ व्यस्त जीवनमां ईश्वरनी शोध	०.६०
३६ धर्म-विचार नहि उपचार	०.६०
३७ क्रान्तिनी वैज्ञानिक प्रक्रिया	०.६०
३८ उठ जाग जुवान	०.५०
३९ प्रेम परमात्मा अने परिवार	०.७५
४० परमात्मा क्यां छे ?	०.७५
४१ गाँधीवाद वैज्ञानिक दृष्टिए	०.५०
४२ गाँधीजीनी अहिंसा	०.५०
४३ धर्म अने राजकारण	०.४०

४४ समाजवादथी सावधान	०.७५
४५ सत्यम्, शिवम्, सुन्दरम्	०.६०
४६ सन्त, ईश्वर अने अनुभूति	०.७५
४७ बन्धन अने मुक्ति	०.७५
४८ ताओ	०.७५
४९ पूर्णावतार कृष्ण	०.६०
५० गांधीवादी क्यां छे ?	०.६०
५१ मृत्यु पर विजय	१.५०
५२ अन्तर्द्रष्टा आचार्य रजनीश जी (जीवन चरित)	०.७५
५३ अन्तर्द्रष्टा आचार्य रजनीश जी (जीवन प्रसंगो)	०.८०
५४ अन्तर्द्रष्टा आचार्य रजनीश जीनी ज्ञानवाणी	१.५०
५५ जीवनना मन्दिरमां द्वार छे मृत्युनुं	१.००
५६ दिव्य लोकनी चाबी (महावीर-वाणी-१)	१.००
५७ भाव जगतना रहस्य (महावीर-वाणी-२)	१.००
५८ शरण स्वीकारूं छूं हुं तमारू (महावीर-वाणी-३)	१.००
५९ ज्योतिष : अद्वैतनुं विज्ञान	२.००
६० स्वानुभवनी कसौटीओ	१.००
६१ सत्यनी शोध	४.२५

मराठी में अनुवादित साहित्य

१ पथ-प्रदीप	८.००
२ संभोगातून समाधिकडे	५.००
३ प्रेम-पुष्प	३.५०
४ साधना-पथ	३.००
५ क्रान्ति-बीज	२.५०
६ सिंहनाद	२.००
७ अभिनव सक्रिय ध्यान	१.००
८ प्रेमाचे पंख	०.७५
९ अहिंसा-दर्शन	५.५०
१० अमृत-कण	० ५०
११ समाजवाद पासून सावध रहा	०.५०
१२ पाण्यात बुडी घे खोल	२.००
१३ गीता दर्शन (अध्याय-२, भाग-१)	१.००

पंजाबी (गुरमुखी) साहित्य

१ साधना-पथ	३.००
२ अहिंसा-दर्शन	०.४०
*३ जीवन जो राज (सिंधी भाषा में)	०.५०

ग्रीक भाषा में साहित्य

१ एरन एपो टु एपेरपेरन (बियोन्ड एण्ड बियोन्ड)
२ योग सान एना अपथ्रोमितो सिमवान (योग : एज स्पॉन्टेनियस हेपनिंग)

पत्रिकाओं के वार्षिक शुल्क

१ ज्योति-शिखा (हिन्दी त्रैमासिक)	८.००
२ युक्रान्द (हिन्दी मासिक)	१२.००
३ योग-दीप (मराठी पाक्षिक)	१०.००
४ संन्यास (अंग्रेजी द्वैमासिक)	१८.००

पुस्तक प्राप्ति स्थान :

जीवन जागृति केन्द्र

● ३१, इजरायल मोहल्ला
भमवान भुवन, मस्जिद बन्दर रोड,
बम्बई-९
फोन : ३२७६१८
३२१०८५

● ए-१, वुडलेण्ड्स,
पेडर रोड, (केम्प्स कार्नर के पास)
बम्बई-२६
फोन : ३८११५९

AVAILABLE ENGLISH BOOKS OF

BHAGWAN SHREE RAJNEESH

1. Translated from Original Hindi version :

(Postage extra)

		Price in India
1.	Path to Self-Realization	5.00
2.	Seeds of Revolution	8.00
3.	Philosophy of Non-Violence	0.80
4.	Who Am I ?	3.00
5.	Earthen Lamps	4.50
6.	Wings of Love and Random Thoughts	3.50
7.	Towards the Unknown	1.50
8.	Form Sex to Superconsciousness	6.00
9.	The Mysteries of Life and Death	4.00
10.	Lead Kindly Light	1.50
★11.	What is Rebellion !	

II. Original English Books :

12.	Meditation : A New Dimension	2.00
13.	Beyond and Beyond	2.00
14.	Flight of the Alone to the Alone	2.50
15.	LSD : A Shortcut to False Samadhi	2.00
16.	Yoga : A Spontaneous Happening	2.00
17.	The Vital Balance	1.50
18.	The Gateless Gate	2.00
19.	The Silent Music	2.00
20.	Turning In	2.00
★21.	The Eternal Message	2.00
22.	What is Meditation ?	3.00
★23.	The Dimensionless Dimension	2.00

24. Wisdom of Folly
★25. Two Hundred Two
★26. Meet Mulla Nasrudin
★27. Thus Spoke Mulla Nasrudin
★28. Let Go
★29. Beyond Laughter

← (New 6.00 Mulla Jokes

★30. The Inward Revolution 15.00
★31. I Am the Gate 10.00
32. Seriousness 2.00
33. Secrets of Discipleship 3.00
★34. Dynamics of Meditation 20.00
★35. The Ultimate Alchemy (2 vols)

III. Critical Studies on Bhagwan Shree Rajneesh :

36. Acharya Rajneesh : a Glimpse 1.25
37. Acharya Rajneesh : The Mystic of Feeling 20.00
38. Lifting the Veil 10.00

Note : Star (*) marked books are in Press.

For enquiries and books please contact :

JEEVAN JAGRITI KENDRA

(Life Awakening Centre)

Israil Mohalla
31, Bhagwan Bhuvan
Masjid Bunder Road
BOMBAY-9
Phones : 327618/321085

A-1, Woodlands
Peddar Road
BOMBAY-26
Tel. 381159